मार्कण्डेय महापुराणम्

अनुवादक :

स्व० कन्हैयालाल मिश्र

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

मार्कण्डेय महा पुराणम्

अनुवादक :
डॉ० कन्हैयालाल मिश्र

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग
... मार्ग, इलाहाबाद

मार्कण्डेयमहापुराणम्

मार्कण्डेयमहापुराणम्

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादक :
स्व० पण्डित कन्हैयालाल मिश्र

शक १९१७ : सन् १९९६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

भारतीय जीवन-साहित्य के श्रृङ्गार 'पुराण' अतीत को वर्तमान के साथ जोड़नेवाली स्वर्णिम श्रृङ्खला हैं। विश्वसाहित्य की अक्षयनिधि में अठारह पुराण सर्वश्रेष्ठ अठारह रत्न हैं।

प्रतीकवाद, परोक्षवाद और रहस्यवाद से अनुप्राणित ये पुराण हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन के दर्पण हैं तथा अपनी सरल बोधगम्यता और प्रवुद्धकथानक-शैली के कारण अतिप्राचीन होते हुए भी नवीनता और स्फूर्ति उत्पन्न करते हैं। भारतीय साहित्य की पृष्ठभूमि पर पौराणिक कथाओं की अजस्र प्रवाहिनी सतत् प्रवाहित होती रहे, इसी शिवसङ्कल्प को सार्थक करने तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी में पुराण-साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने के लिए सम्मेलन के प्राण स्व० पुरुषोत्तमदास जी टण्डन ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा पुराण-प्रकाशन-योजना संचालित की। सम्मेलन की पुराण-प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत दशम प्रसून के रूप में श्री मार्कण्डेयमहापुराण का प्रकाशन किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि हिन्दी साहित्य-सम्मेलन अपने वित्तीय संसाधनों से अब तक १. ब्रह्म, २. ब्रह्मवैवर्त, ३. अग्नि, ४. वायु, ५. मत्स्य, ६. वृहन्नारदीय, ७. कूर्म, ८. स्कन्दपुराणान्तर्गत (केदारखण्ड) तथा ९. प्रकाश्यमान भविष्यपुराण के ब्राह्मपर्व का हिन्दी-अनुवाद सहित प्रकाशन कर चुका है।

मार्कण्डेयपुराण में भुवनकोश, हरिश्चन्द्रोपाख्यान, मदालसाचरित तथा विशेष रूप से देवीमाहात्म्य (दुर्गासप्तशती) का समावेश होने से इस पुराण की उपादेयता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गयी है। फलस्वरूप यह ग्रन्थ नितान्त ज्ञानवर्द्धक एवं लोकोपकारी है।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन वेंकटेश्वरप्रेस, बम्बई के आधार पर किया जा रहा है, एतदर्थ हम उनके प्रति आभारी हैं।

ग्रन्थ के सुष्ठु प्रकाशन में सम्मेलन के पुराण-सहायक आचार्य रुद्रप्रसाद मिश्र, श्री शेषमणि पाण्डेय, डॉ० लालताप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० शेषनारायण शुक्ल ने जो नैष्ठिक सहयोग प्रदान किया है, उनके प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में हम इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स तथा मनोज ऑफसेट के व्यवस्थापकों श्री कृष्ण कुमार मित्तल, एवं श्री मनोज मित्तल के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने पूरी निष्ठा से अल्प समय में इस पुराण का मुद्रण किया है।

अन्त में हम सुधी पाठकों को सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुराण-साहित्य के दशम प्रसून के रूप में श्री मार्कण्डेय महापुराण को समर्पित करते हुए आशा ही नहीं प्रत्युत पूर्ण विश्वास करते हैं कि यह पुराण निश्चित ही पुराणामृत-पिपासुओं को तृप्ति प्रदान करेगा।

मकर-संक्रान्ति
संवत् : २०५२

प्रभात शास्त्री

अनुक्रमणिका

●

भूमिका

भारतीय साहित्य में पुराणों का स्थान एवं महत्त्व

संस्कृत-साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण एवं अत्यन्त विस्तृत विभाग 'पुराण वाङ्मय' के रूप में प्रतिष्ठित है। मत्स्यपुराण के अनुसार इस विशाल वाङ्मय की श्लोक संख्या सवा पाँच लाख है।[१] अष्टादश महापुराणों का विस्तार प्रायः चार लाख श्लोकों में उपनिबद्ध है। इसमें पुराण-परम्परा पर ही आधारित प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थों में रामायण एवं महाभारत को भी सम्मिलित कर लेने पर सम्पूर्ण वाङ्मय की श्लोक संख्या सवा पाँच लाख हो जाती है। उल्लेख्य है कि यह संख्या उप तथा औपपुराणों की श्लोक संख्या को छोड़कर है। संस्कृत-साहित्य की यह अकेली शाखा न केवल विस्तार की दृष्टि से अपितु विषयवस्तु की दृष्टि से भी विश्व-साहित्य में बेजोड़ है।

यद्यपि वेद को ही समस्त धर्म का मूल माना गया है[२] तथापि वेदों का उपबृंहण करने के कारण[३] पुराणों की महत्ता वेदों से भी अधिक है। [६]अल्पश्रुत व्यक्ति से वेद डरता है कि कहीं यह मुझ पर प्रहार न कर दे, :

विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।[४]

इस प्रकार वेदार्थ को समझने के लिए हमें पुराणार्थ को समझना होगा, क्योंकि असन्दिग्ध रूप से पुराणों में ही वेद प्रतिष्ठित हैं :

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥[५]

भारतीय जन-मानस में पुराणों के प्रति अगाध श्रद्धा रही है। सामान्य जन भी उनका आस्वादन कर सकें, एतदर्थ विभिन्न भारतीय भाषाओं में उनके अनुवाद तथा सारभूत ग्रन्थ लिखे गये। पुराण एवं महाकाव्य अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों के भी उपजीव्य बन गये। इस श्रृङ्खला में हिन्दी में तुलसी का रामचरितमानस, तमिल में कम्ब-रामायण और तेलगु में रंगनाथ रामायण उल्लेखनीय हैं। रामायण, महाभारत, हरिवंशपुराण, मत्स्यपुराण तथा भागवतपुराण के फारसी अनुवाद भी किये गये।[६]

---

१. मत्स्य०, ५३.७२ (३): एवं सपादाः पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिताः। तथा वही, ५३.७३ (१) : पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः।

२. मनुस्मृति, २.६ (१); मत्स्य०, ५२.७ (२), वेदोऽखिलो धर्ममूलम्......
मिलान कीजिए : गौतम धर्म सूत्र, १.१.२।

३. महाभारत, १.१.२ ६७ (१); वायुपुराण, १.२०१ (१) :
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

४. महाभारत, १.१.२६७(२); वायु०, १.२०१ (२)।

५. बृहन्नारदीयपुराण, २.२४.१७।

६. देखिए, आनन्दस्वरूप गुप्त द्वारा लिखित भूमिका, वामनपुराण, काशिराज न्यास, रामनगर, वाराणसी, १९६८, पृ० ९-१०।

भारतेतर एशियाई देशों में पुराण :

एशियाई देशों, विशेषरूप से दक्षिण पूर्व एशिया-तिब्बत, चीन, जापान, इण्डोचाइना, इण्डोनेशिया, बालिद्वीप तथा जावा में भारतीय धर्मों का प्रचार-प्रसार हुआ। फलस्वरूप पौराणिक साहित्य, विशेषतया रामायण, महाभारत और ब्रह्माण्डपुराण ने वहाँ अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त की थी। आर० फैडरिक के अनुसार, बालिद्वीप में शैव उपासकों में ब्रह्माण्डपुराण अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है।[1] अनेक मूल संस्कृत-ग्रन्थों के प्राचीन जावा भाषा में रूपान्तर उपलब्ध हैं, जिनमें ब्रह्माण्डपुराण उल्लेखनीय है। रामायण ने भी जावा द्वीप में लोकप्रियता प्राप्त की थी। एक विद्वान् के अनुसार प्राचीन जावा भाषा में उपलब्ध रामायण के कुछ अंश भट्टिकाव्य से अनूदित हैं तथा शेष उसके कुछ अंशों के भावानुवाद हैं।[2] रामायण का प्रभाव न केवल जावा तथा बालिद्वीप में था अपितु कम्बोडिया, लाओस, थाईलैण्ड तथा चीन आदि भी इसके प्रभाव से वञ्चित नहीं था।

यूरोप का प्राचीन भारतीय साहित्य तथा पुराण-वाङ्मय से परिचय एवं उनकी अनुवाद परम्परा :

प्राचीन भारतीय साहित्य ने यूरोप पर भी गहरी छाप डाली। सर्वप्रथम भारत के कतिपय प्रसिद्ध ग्रन्थों के अरबी तथा फारसी अनुवाद यूरोप पहुँचे। ईरान की प्राचीन पहलवी भाषा में अनूदित पञ्चतन्त्र का रूपान्तर सीरियाई (५७० ई०) तथा अरबी (लगभग ७६० ई०) में हुआ तथा इस अरबी रूपान्तर के अनुवाद अनेक यूरोपीय भाषाओं में हुए। डच यात्री अब्राह्म रोजर ने १६५१ ई० में भर्तृहरि की सूक्तियों का पुर्तगाली भाषा में अनुवाद प्रकाशित किया। "विवादार्णव सेतु' नामक धर्म निबन्ध के फारसी अनुवाद के हालहेड कृत अंग्रेजी अनुवाद (१७७६ ई०) ने यूरोपीय विद्वानों को संस्कृतसाहित्य के अध्ययन एवं अन्वेषण की ओर आकर्षित किया। औरंगजेब के भाई दाराशिकोह द्वारा किये गये उपनिषदों के फारसी अनुवाद का लैटिन रूपान्तर फ्रांस के एक विद्वान् ने १९वीं सदी के प्रारम्भ में किया, जिससे जर्मन दार्शनिक शोपेनहार बहुत प्रभावित हुआ था।

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में संस्कृत के अंग्रेज विद्वानों ने संस्कृत के मूल ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत करना प्रारम्भ किये। **चार्ल्स विल्किन्स** का भगवद्गीता का अंग्रेजी अनुवाद (१७८५ ई०) मूल संस्कृत ग्रन्थ का यूरोपीय भाषा में किया गया प्रथम अनुवाद था। तदनन्तर इसी विद्वान् ने १७८७ ई० में हितोपदेश का भी अनुवाद प्रस्तुत किया। **सर विलियम जोन्स ने** इसी बीच प्राचीन भारतीय साहित्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए उसके अध्ययन पर जोर दिया और स्वयं भी अनेक संस्कृत ग्रन्थों का सम्पादन एवं अनुवाद प्रस्तुत किया। उन्होंने कालिदास कृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक (१७८९ ई०) तथा मनुस्मृति (१७९४ ई०) के अनुवाद प्रकाशित किये। तीन वर्ष बाद (१७९७ ई०) में इसका जर्मन अनुवाद भी प्रकाशित हुआ।

---

१. J R A S (जे० ए० सो०), १८७६, पृ० १७१।

२. ए० डी० पुसालकर, S.T.E.P. (स्टडीज इन द एपिक्स एण्ड दि पुराणाज आफ इण्डिया), पृ० १२५।

उपर्युक्त कार्यों से प्रभावित होकर संस्कृतसाहित्य में यूरोपीय विद्वानों की रुचि बढ़ी और उनमें से अनेक विद्वान् संस्कृत के अध्ययन के लिए भारत आये । इनमें आस्ट्रियाई पादरी फ्रा पाओलिने (जिसने १७७६-८९ ई० तक भारत में रहकर 'सिस्टेमा ब्रह्मणिकम' नामक ग्रन्थ की रचना करके इसके द्वारा यूरोप को भारत के ब्राह्मण-साहित्य से परिचित कराया) अंग्रेज विद्वान् एलेक्जेण्डर, हेमिल्टन, कालब्रूक, सरविलियम जोन्स तथा ग्रीक विद्वान् गैलोनीज (जिसने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ४० वर्ष तक बनारस में रहकर अनेक संस्कृत ग्रन्थों, जिनमें मार्कण्डेयपुराण का देवी माहात्म्य भी शामिल है, का ग्रीक भाषा में अनुवाद किया) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मन विद्वान् फ्रैडरिक श्लैगल ने पेरिस में हेमिल्टन से संस्कृत का अध्ययन किया और जर्मनी में भाषाविज्ञान की नींव डाली तथा रामायण, मनुस्मृति, भगवद्गीता और शाकुन्तलोपाख्यान (महाभारत के अन्तर्गत) के कुछ अंशों के जर्मन में अनुवाद किये, जो मूल संस्कृत से जर्मन भाषा में किये हुए प्रथम अनुवाद थे । इससे जर्मन विद्वानों को संस्कृत के अध्ययन की प्रेरणा प्राप्त हुई तथा इस कार्य में उनकी रुचि बढ़ी । आगे चलकर बाथलिंक तथा रॉथ द्वारा सम्पादित संस्कृत जर्मन कोश सैन्ट पीटर्स वर्ग में (सात भागों में) प्रकाशित हुआ (१८५७-७५ ई०) । इससे जर्मन विद्वानों को संस्कृत के अध्ययन में अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई ।

एच० टी० कालब्रूक ने १८०५ ई० में एक वेद परिचयात्मक निबन्ध (On the veda) लिखा, जिससे यूरोपवासियों को पहली बार वेदों के बारे में जानकारी मिली । १८३८ ई० में फ्रैडरिक रोजन ने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक को लन्दन से प्रकाशित किया । इसी के साथ वेदों का भाषा विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन एवं अनुसन्धान प्रारम्भ हुआ । फ्रेञ्च विद्वान् ई० बर्नौफ ने वेदों का गम्भीर अध्ययन किया । वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् रुडाल्फ रॉथ तथा मैक्समूलर उसके शिष्य थे। रॉथ ने १८४६ ई० में अपने ग्रन्थ 'जुर लिटरेचर अण्ड जेशिष्टे डेश वेद स्टुटगार्ट से प्रकाशित किया, जिसमें वैदिक साहित्य तथा इतिहास का सर्वाङ्गपूर्ण परिचय मिलता है। मैक्समूलर ने सायण भाष्य के आधार पर ऋग्वेद का जर्मन भाषा में अनुवाद किया तथा सायण भाष्य सहित सम्पूर्ण ग्रन्थ को १८४९-७५ ई० में प्रकाशित किया। इसके पश्चात् अनेक यूरोपीय विद्वान् वेदों के अध्ययन में प्रवृत्त हुए तथा चारों वेदों के अनेक अनुवाद एवं व्याख्यात्मक अध्ययन प्रकाशित हुए । इन विद्वानों में एच० एच० विल्सन[१], एच० ग्रासमैन[२], अल्फ्रैड लुडविग्[३], आर० टी० एच० ग्रिफिथ[४], एच० ओल्डेन वर्ग[५], ए० वेवर[६] तथा ए० ए० मैक्डानेल[७] और

---

१. ऋग्वेद का सायण भाष्य पर आधारित अंग्रेजी अनुवाद ।

२. ऋग्वेद का सायण भाष्य से स्वतन्त्र जर्मन अनुवाद, लीजिंग, १८७६-७७ ।

३. ऋग्वेद का जर्मन अनुवाद (जिसमें सायण भाष्य तथा अन्य आधुनिक साधनों की सहायता ली गयी है।) ।

४. ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद, बनारस, १८९६-९७ ।

५. ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद, सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट, वाल्यूम X L V I, आक्सफोर्ड, १९८७ ।

६. ऋग्वेद, फोर्श्श, बर्लिन, १९०५ ।

७. वाजसनेयि संहिता का महीधर भाष्य के साथ सम्पादन, लन्दन, १८५२ तैत्तिरीय संहिता का माधव भाष्य के साथ सम्पादन, कलकत्ता, १८५४-९९ ।

ए० बी० कीथ[१] आदि के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

१८वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में ही यूरोपीय विद्वानों का ध्यान पुराणों की ओर जा चुका था। सर्वप्रथम १७८८ ई० में भागवतपुराण के तमिल रूपान्तर का फ्रेञ्च अनुवाद पेरिस से प्रकाशित हुआ, जिससे यूरोपवासी भारतीय पुराण-साहित्य से पहली बार परिचित हुए। बाद में फ्रेञ्च से जर्मन भाषा में इसका अनुवाद किया गया, जो १७९१ ई० में ज्यूरिक से प्रकाशित हुआ। आगे चलकर महाकाव्यों तथा पुराणों के सम्पूर्ण तथा आंशिक अनेक अनुवाद विभिन्न यूरोपीय भाषाओं में प्रकाशित हुए, जिनमें ई० बर्नौफ के भागवतपुराण का फ्रेञ्च अनुवाद (लन्दन, १८४०-४७ ई०), एच० एच० विल्सन का विष्णु पुराण का तथा एफ० ई० पार्जिटर का मार्कण्डेयपुराण (१८८८-१९०५ ई०) का अंग्रेजी अनुवाद अत्यधिक ख्याति प्राप्त है।

१९ वीं सदी से यूरोपीय विद्वान् पुराणों के अध्ययन के प्रति अधिक जागरुक हुए। इन विद्वानों में कैनेडी, विल्सन तथा बर्नौफ के नाम प्रमुख हैं। इन विद्वानों ने पुराणों के महत्त्व को धार्मिक एवं साम्प्रदायिक क्षेत्र तक ही सीमित मानते हुए इतिहास एवं संस्कृत के पुनर्निर्माण की दिशा में उनके उपयोग को सर्वथा असमीचीन माना था।

२० वीं सदी के प्रारम्भ में एफ० ई० पार्जिटर ने समीक्षात्मक विवेचना करते हुए पुराणों के ऐतिहासिक मूल्य को स्वीकार किया। इसके पश्चात् तो पुराणों के अध्ययन की परम्परा ही चल पड़ी। आज हर दृष्टि से पुराणों का महत्त्व सर्वमान्य है तथा स्वदेश एवं विदेश के बहुसंख्य विद्वान् विभिन्न दृष्टिकोणों से उनके अध्ययन में प्रवृत्त हैं।[२]

अष्टादश पुराण तथा मार्कण्डेयपुराण :

महापुराण सूचियों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग विष्णुपुराण क्रम (३.६.२१-२४) का[३], द्वितीय कूर्मपुराण क्रम (१.१.१३-१५) का[४] और तृतीय लिङ्गपुराण क्रम (१.३९.६१-६४) का[५] अनुसरण करता है।

---

१. वैदिक इन्डेक्स, लन्दन।

२. द्रष्टव्य-सिंह, लाल शीतलाशरण,पुराण साहित्य और वामनपुराण,श्री प्रतापबहादुर सिंह स्मारक पौराणिक संस्थान, हरगाँव, सुल्तानपुर,१९९५।

३. अग्नि०, २७२. १-२३, भागवत०, १२.१३.४-८, भविष्य०, ब्रह्मपर्व,६१-६४; ब्रह्मवैवर्त०, ४.१३३.११ और आगे; मत्स्य०, ५३.१३-५६; पद्म० (आनन्दाश्रम संस्करण), १.६२.२-७; स्कन्द०, ७.१.२.२८-७७; वाराह०,११२.६९-७२; बृहन्नारदीय०, १.९२.२६.-२८; मार्क०, १३४.८-११।

४. पद्म० (आनन्दाश्रम संस्करण), उत्तर खण्ड, २१९.२५-२७; सौर पुराण, ९.६-१२; स्कन्द०, प्रभाषखण्ड,१.२.५.-७ यहाँ सौरपुराण की सूची में अष्टम स्थान पर आग्नेय तथा नवम स्थान पर मार्कण्डेयपुराण का उल्लेख है।

५. शिव० (वेंकटेश्वर संस्करण) उमा संहिता, ४४.१२०-२२।

प्रथम वर्ग के अनुसार १८ महापुराणों की सूची निम्नवत् है :

१. ब्राह्म २. पाद्म ३. वैष्णव ४. शैव[1] ५. भागवत ६. नारदीय ७. मार्कण्डेय ८. आग्नेय ९. भविष्य १०. ब्रह्मवैवर्त ११. लैङ्ग १२. वाराह १३. स्कान्द १४. वामन १५. कौर्म १६. मात्स्य १७. गारुड और १८. ब्रह्माण्ड ।

द्वितीय वर्ग की सूची में छठें क्रम पर नारदीय के स्थान पर भविष्य का तथा सातवें क्रम पर मार्कण्डेय के स्थान पर नारदीय का, आठवें क्रम पर आग्नेय के स्थान पर मार्कण्डेय का तथा नवें क्रम पर भविष्य के स्थान पर आग्नेय का उल्लेख है । शेष सूची समान है । केवल अठारहवें क्रम पर ब्रह्माण्ड के स्थान पर वायवीय का उल्लेख है, जो ब्रह्माण्ड के पर्याय रूप में ही उल्लिखित हुआ है । तृतीय वर्ग १२वें क्रम तक पूर्णतया वर्ग दो का अनुसरण करता है । इसमें तेरहवें क्रम पर स्कान्द का उल्लेख न होकर वामन का उल्लेख होने से आगे के क्रमों में व्यतिक्रम उत्पन्न हो गया है, परन्तु पुनः सत्तरहवें क्रम पर स्कान्द का उल्लेख होने से अठारहवें स्थान पर ब्रह्माण्ड ही आया है ।

उपर्युक्त सूचियों के अतिरिक्त कतिपय पुराणों के कुछ स्थलों पर पुराणों के क्रमों पर ध्यान नहीं दिया गया । उदाहरणार्थ भागवत०, १२.७.२३-२४; देवीभागवत०, १.७,१२; पद्म०, पाताल खण्ड, १११.९०.९४; पद्म०, उत्तरखण्ड, २६३.७७-८१ में दी गयी सूचियाँ उपर्युक्त तीनों वर्गों में से न तो किसी के क्रम का अनुसरण करती हैं और न ही परस्पर एक-दूसरे के क्रम का ।

मार्कण्डेयपुराण का ग्रन्थ परिमाण :

मार्कण्डेयपुराण का उल्लेख सभी महापुराण सूचियों में उपलब्ध है । अन्यान्य पुराणों में इसकी श्लोक संख्या ९००० बतायी गयी है,[2] जब कि मार्कण्डेयपुराण के प्रस्तुत संस्करण की वास्तविक श्लोक संख्या ६४३९ है । ग्रन्थ-परिमाण की दृष्टि से इसे वामनपुराण के समतुल्य माना जा सकता है, जिसकी श्लोक संख्या ६००० है, किन्तु ध्यान रहे यह श्लोक संख्या वामनपुराण के पूर्वार्द्ध की ही है । सम्पूर्ण ग्रन्थ १०,००० श्लोकों में था, जिसमें से उत्तर भाग लुप्त हो गया है । इस प्रकार ग्रन्थपरिमाण की दृष्टि से मार्कण्डेयपुराण सबसे छोटा है ।

मार्कण्डेयपुराण के वक्ता मार्कण्डेय ऋषि :

इस पुराण के वक्ता मार्कण्डेय ऋषि हैं । यह मृकण्डु के पुत्र थे ।[3] प्रारम्भ में यह अल्पायु थे,

---

१. सौर पुराण में इस स्थान पर वायु का उल्लेख है । श्री आनन्दस्वरूप गुप्त के अनुसार 'वस्तुतः वायुपुराण का ही शिवभक्ति-प्रतिपादन के कारण दूसरा नाम शैवपुराण भी है, यथा **'चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमिति स्मृतम् । शिवभक्तिसमायोगात् शैवं तच्चापराख्यया ।'** वामन०, भूमिका, पृ० २२, पा० टि० : १७, तच्चापराख्यया। (वेंकटेश्वर प्रेस मुद्रित अष्टादश पुराणदर्पण में रेवामाहात्म्य से उद्धृत)

२. नारदीय पुराण, (१) ९८.२; मत्स्य०, ५३.२६ आदि ।

३. भाग०, ४.१.४५ :

मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेवशिरामुनिः
आराधयन् हृषीकेषं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ।।

किन्तु शिव तथा विष्णु की आराधना से इन्होंने दीर्घायु प्राप्त कर दुर्जेय मृत्यु को जीत लिया था।[१] यह पाशुपत शैवधर्म के अनुयायी थे। इन्हें वृहद्व्रतधर, जटिल (जटाधारी) तथा कमण्डलु, दण्ड, उपवीत, अक्षसूत्र, मेखला, कुश, भस्म, तथा वल्कल वस्त्र एवं कृष्णाजिन धारण करने वाला कहा गया है।[२] भागवत तथा गरुड पुराणों में इन्हें विष्णु-उपासक के रूप में प्रदर्शित किया गया है। वस्तुतः शैव तथा वैष्णवों के वाद-विवाद को समाप्त करके इन्होंने उनके मतों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया था और इसी उद्देश्य से विष्णु से अनुमति लेकर उनके प्रसिद्ध पुरुषोत्तम क्षेत्र में शैव-भागवत-विवाद प्रतिषेधक एवं शिव-विष्णु-एकत्त्व-प्रतिपादक शिव मन्दिर की स्थापना की थी।[३] इस समन्वय के प्रयास के फलस्वरूप ही हरिहर सम्प्रदाय का जन्म हुआ। देश के विभिन्न भागों से हरिहर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका आधा भाग शिव का तथा आधा विष्णु का है। यह संयुक्त मूर्त्ति 'वृषाकपि' नाम से भी

---

१. वही, १२.८.११; पद्मपुराण (उत्तरखण्ड, २३७.७५-९०) तथा गरुडपुराण (१.२२५.१-८) में मृत्यु अष्टक श्लोक कथित है, जो क्रमशः शिव तथा विष्णु के प्रति अभिहित है। दोनों में ही क्रमशः शिव एवं विष्णु की आराधना से मार्कण्डेय द्वारा मृत्यु के जीते जाने का उल्लेख है :

रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकंठमुमापतिम्।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥

पद्म०, २३७.७५-९०।
तथा गरुड०, १.२२५.८ :

इति तेन जितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम्॥

२. **वृहद्व्रतधरः शान्तो जटिलो वल्कलाम्बरः।**
विभ्रतकमण्डलुं दण्डमुपवीतं समेखलम्।
कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये।

सूर्यपुराण, २९.११-१२ में भी कहा गया है :

वामदेवश्च मैत्रेय मार्कण्डेय परीगयाः।
कृष्णाजिनोत्तरीयास्ते जटिला भस्मभूषिताः।
रुद्रा इव महात्मानो वेदवेदाङ्गपारगाः॥

३. ब्रह्म०, अ० ५६ :

शैव भागवतानां च वादार्थप्रतिषेधकम्।
अस्मिन् क्षेत्रवरे पुण्ये निर्मले पुरुषोत्तमे॥६४
शिवस्याऽऽयतनं देव करोमि परमं महत्।
प्रतिष्ठेयं तथा तत्र तव स्थाने च शङ्करम्॥६५

× × ×

शिवे संस्थापिते विप्र मम संस्थापनं भवेत्।
नाऽऽवयोरन्तरं किञ्चिदेकभावौ द्विधा कृतौ॥६९

जानी जाती है।[1]

मार्कण्डेयपुराण की विषयानुक्रमणी :

नारदीयपुराण (अध्याय ९८) में मार्कण्डेयपुराण की विषयानुक्रमणी इस प्रकार दी गयी है:

अथ ते संप्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयाभिधं मुने।
पुराणं सुमहत्पुण्यं पठतां शृण्वतां सदा॥१
यत्राधिकृत्य शकुनीन्सर्वधर्मनिरूपणम्।
मार्कण्डेयपुराणं तन्नवसाहस्रमीरितम्॥२
मार्कण्डेयमुनेः प्रश्नो जैमिनेः प्राक्समीरितः।
पक्षिणां धर्मसंज्ञानां ततो जन्मनिरूपणम्॥३
पूर्वजन्मकथा चैषां विक्रिया चादिवस्पतेः।
तीर्थयात्रा बलस्याथ द्रौपदेयकथानकम्॥४
हरिश्चन्द्रकथा पुण्या युद्धमाडीबकाभिधम्।
पितापुत्रसमाख्यानं दत्तात्रेयकथा ततः॥५
हैहयस्याथ चरितं महाख्यानसमन्वितम्।
मदालसा कथा प्रोक्ता ह्यलर्कचरितान्विता॥६
सृष्टिसंकीर्तनं पुण्यं नवधा परिकीर्तितम्।
कल्पान्तकालनिर्देशो यक्षसृष्टिनिरूपणम्॥७
रुद्रादिसृष्टिरप्युक्ता द्वीपचर्यानुकीर्तनम्।
मनूनां च कथा नाना कीर्तिताः पापहारिकाः॥८
तासु दुर्गाकथात्यन्तं पुण्यदा चाष्टमेऽन्तरे।
तत्पश्चात्प्रणवोत्पत्तिस्त्रयी तेजः समुद्भवा॥९
मार्तण्डस्य च जन्माख्या तन्माहात्म्यसमन्विता।
वैवस्वतान्वयश्चापि वत्सप्रीश्चरितं ततः॥१०
खनित्रस्य ततः प्रोक्ता कथा पुण्या महात्मनः।
अविक्षिच्चरितं चैव किमिच्छव्रतकीर्तनम्॥११
नरिष्यन्तस्य चरितं इक्ष्वाकुचरितं ततः।
नलस्य चरितं पश्चाद्रामचन्द्रस्य सत्कथा॥१२
कुशवंशसमाख्यानं सोमवंशानुकीर्तनम्।
पुरूरवः कथा पुण्या नहुषस्य कथाद्भुता॥१३

---

१. पाण्डेय, डॉ० राजबली, हिन्दू धर्मकोश, पृ० ७०१,
उदाहरणार्थ—हरिवंशपुराण, २१६.४७ :
ततो विभुः प्रवर वराहरूप धृक् वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया।
तथा वही; ३.५२ : वृषाकपिश्च शंभुश्च कपर्दी रैवतस्तथा। :

ययातिचरितं पुण्यं यदुवंशानुकीर्तनम् ।
श्री कृष्णबालचरितं माथुरं चरितं ततः ।।१४
द्वारकाचरितं चाथ कथा सर्वावतारजा ।
ततः सांख्यसमुद्देशः प्रपञ्चासत्त्वकीर्त्तनम् ।।१५
मार्कण्डेयस्य चरितं पुराणश्रवणे फलम् ।
यः शृणोति नरो भक्त्या पुराणमिदमादरात् ।।१६
मार्कण्डेयाभिधं वत्स सलभेत्परमां गतिम् ।
यस्तु व्याकुरुते चैतच्छैवं स लभते पदम् ।।१७
तत्प्रयच्छेल्लिखित्वा यः सौवर्णकरिसंयुतम् ।
कार्तिक्यां द्विजवर्षाय स लभेद् ब्रह्मणः पदम् ।।१८
शृणोति श्रावयेद्वापि यश्चानुक्रमणीमिमाम् ।
मार्कण्डेयपुराणस्य स लभेद्वाञ्छितं फलम् ।।१९

नारदीय पुराण में उल्लिखित उपर्युक्त विषयों में से इक्ष्वाकु चरित से लेकर मार्कण्डेय चरित तक के विषयों का वर्तमान मार्कण्डेयपुराण में अभाव है। नारदीयपुराण के काल में ये समस्त विषय मार्कण्डेयपुराण में अवश्य सम्मिलित रहे होंगे, जिन्हें आगे चलकर इसमें से निकाल दिया गया होगा। इससे यह भी सङ्केत मिलता है कि समय-समय पर पुराणों के अनेकानेक संस्करण किये गये, उनमें प्राचीन विषयों के संशोधन एवं परिमार्जन हुए, नवीन विषयों के भी समावेश किये गये तथा उनका संक्षिप्तीकरण भी किया गया।

मार्कण्डेयपुराण का वैष्णव संस्कार :

प्रारम्भ में यह पुराण शैव पुराण रहा होगा, क्योंकि इसके व्याख्याता मार्कण्डेय जी शैव थे। आगे चलकर भागवत धर्म का पुनरुत्थान होने पर इस पुराण का पुनः वैष्णव संस्कार हुआ होगा। तभी चतुर्व्यूहवाद का समावेश इसमें किया गया। इस पुराण का प्रारम्भ भगवान् विष्णु की वन्दना से होता है :

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः ।
तद्वः पुनातुहरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलंघितभूर्भुवः स्वः ।।
पायात्स वः सकलकल्मषभेददक्षः क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्त्तिः ।
श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति सङ्गात् ।।

(मार्क०, १.१.२)

इस पुराण के प्रारम्भ में ही जैमिनि महामुनि मार्कण्डेय से प्रश्न करते हुए विष्णु को देवताओं में श्रेष्ठ बताते हैं [त्रिदशनां यथा विष्णुर्द्विपदां...... । मार्क०, १.४ (१)] यहाँ उन्होंने प्रश्न किया कि भगवान् विष्णु ने निर्गुण होते हुए भी किस प्रकार मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण किया : **कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः** (मार्क०, १.१३ (१))। इस प्रश्न के उत्तर में मार्कण्डेय मुनि चतुर्व्यूहवाद

का सहारा लेते हैं। वे इस सन्दर्भ में नारायण शब्द की निरुक्ति करते हैं[१] तथा सगुण एवं निर्गुण रूपवाले उन भगवान् को सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके चार अवस्थाओं में स्थित बताते हैं।[२] उनका प्रथम रूप अनिर्देश्य गुणातीत प्रकाश रूप एवं सर्वव्यापक है। उनका यह रूप वासुदेव नाम वाला है।[३] दूसरी शेष नामक मूर्त्ति है, जो त्रियकत्व से युक्त है और तामसी कही गयी है, अपने शिर पर पृथ्वी को धारण करती हैं।[४] तीसरी मूर्त्ति धर्म का संस्थापन करने वाली एवं सतोगुण सम्पन्न है, वह कर्म करती हुई प्रजा-पालन में तत्पर है।[५] उसे प्रद्युम्न नाम से जाना जाता है।[६] चतुर्थ मूर्त्ति सर्पशैय्या पर आश्रित होकर जल के मध्य शयन करती है। यह रजोगुण सम्पन्न होकर सृष्टि का निर्माण करती है।[७] इस मूर्त्ति का नाम मार्कण्डेयपुराण में नहीं मिलता। श्रीमद्भागवतपुराण में इसे अनिरुद्ध कहा गया है।[८] चतुर्व्यूह सिद्धान्त के अर्न्तगत वासुदेव, संकर्षण, (शेष), प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध को क्रमशः चित्त, अहंकार, बुद्धि तथा मन का प्रतीक माना गया है। उपर्युक्त विवेचन से मार्कण्डेयपुराण का वैष्णव संस्कार होना सिद्ध होता है।

---

१. मार्क०, ४.४३ :

आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

२. वही, ४.४४ :

स देवो भगवान्सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः।
चतुर्द्धा संस्थितो ब्रह्मन्सगुणो निर्गुणस्तथा॥

३. वही, ४.४५-४६।

४. वही, ४. ४८ :

द्वितीया पृथिवी मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः।
तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपाश्रिता॥

५. वही, ४. ४९ :

तृतीया कर्मकुरुते प्रजापालनतत्परा।
सत्त्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी॥

६. वही, ४. ५७ (२) :

प्रद्युम्नेति च साख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता।

७. वही, ४. ५० :

चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा।
रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि॥

८. श्रीमद्भागवत ०, ३.१.३४ :

यः सात्वतां कामदुधोऽनिरुद्धः मनोमयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम्।

मार्कण्डेयपुराण की वक्तृ-श्रोतृ-परम्परा एवं रचनास्थली :

मार्कण्डेयपुराण को मार्कण्डेय मुनि ने स्वयम्भू ब्रह्मा से प्राप्त कर[१] क्रौष्टुकि के प्रति अभिहित किया था।[२] उस समय पक्षियों ने भी वह कथा सुन ली थी[३], जिसे कालान्तर में उन्होंने जैमिनि को सुनाया।[४] इस पुराण की रचनास्थली विन्ध्य पर्वत है[५], जिसकी रेवा-तट पर स्थित एक कन्दरा में[६] निवास करने वाले पक्षियों ने इसे जैमिनि को सुनाया था।

मार्कण्डेयपुराण का काल :

जोधपुर में प्राप्त दधिमती माता के शिलालेख में इस पुराण (सप्तशती) का प्रसिद्ध श्लोक—

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते ॥

(मार्क०, ८८.९) से उद्धृत है। इस अभिलेख पर सं० २८९ उत्कीर्ण है, जो भण्डारकर के अनुसार गुप्त संवत् है। इस प्रकार इस अभिलेख का समय (२८९ + ३१९) = ६०८ ई० निश्चित होता है। स्पष्टतः इस काल में सप्तशती का व्यापक रूप में प्रचार रहा होगा। अत एव मार्कण्डेयपुराण निश्चित रूप से ६०० ई० के पूर्व की रचना है।

वाराहमिहिर ने मातृका निर्माण के लिए इस पुराण की मान्यता आधार रूप में स्वीकार की है। अतः निश्चित ही वाराहमिहिर (पञ्चमशती ई०) के पूर्व यह पुराण प्रतिष्ठित हो चुका था। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार यारकन्द नदी से लेकर गोदावरी तक तथा मेरु (पामीर) से लेकर दक्षिण-पूर्व समुद्र-तट पर स्थित मन्दराचल तक का भौगोलिक क्षितिज मार्कण्डेयपुराण के दृष्टिपथ में आया है, जो गुप्त राज्य का सूचक है। पद्मिनी विद्या, जिसमें धन के आदर्शों का वर्णन है, वस्तुतः गुप्त

---

१. मार्क०, १३४.२ (२)-३ (१) :

अनादिसिद्धमेतद्धि पुरा प्रोक्तं स्वयंभुवा।
मार्कण्डेयाय मुनये यत्तेऽस्माभिरुदाहृतम् ॥

२. वही, १३४. १ :

एवमुक्त्वा जैमिनेयं मार्कण्डेयो महामुनिः।
विसृज्यक्रौष्टुकि मुनिं चक्रे मध्याह्निकीं क्रियाम् ॥

३. वही, १३४.२ (१) :

अस्माभिश्च श्रुतं तस्माद्यत्ते प्रोक्तं महामुने।

४. वही, १. २०. ४. ३, २४; १३४. ४०-४२।

५. वही, ४. २२।

६. वही, १. २०-२२; ४. १-२।

कालीन समृद्धि की द्योतक है ।[१] इसका समावेश तथा उपर्युक्त भौगोलिक क्षेत्र का परिचय मार्कण्डेय पुराण को गुप्त कालीन रचना सिद्ध करता है ।

पञ्चलक्षण की दृष्टि से इस पुराण में सर्ग (अध्याय ४२,४४-४९,१०१), प्रतिसर्ग (अ० ४३),वंश एंव राजवंशानुचरित (अ०१०१ और आगे) का वर्णन तो है ही, इसका मन्वन्तर वर्णन (अ० ४३, ५०, ६४, ६६, ७१-७४, ७६, ७७, ९१, ९६) अति विस्तृत है । इस प्रकार यह पुराण पञ्चलक्षणों पर भी खरा उतरता है ।

मार्कण्डेयपुराण की रचना तीन स्तरों में हुई है :

१.अध्याय १ से ४२ तक, जिसके वक्ता पक्षी हैं,

२. अध्याय ४३ से अन्त तक, जिसके वक्ता-श्रोता मार्कण्डेय ऋषि और क्रौष्टुकि हैं तथा

३. सप्तशती (अध्याय ८१ से ९३), जो स्वतन्त्र अंश है ।

इस पुराण के चार प्रकरण अति महत्त्वपूर्ण हैं :

१. भुवनकोश (अ०' ५०-५७)

२. हरिश्चन्द्रोपाख्यान,(अ० ७-९)

३. मदालसा चरित (अ० १८-३३)

४. देवी-माहात्म्य (अ० ७८-९०)

यहाँ इन प्रकरणों के महत्त्व पर प्रकाश डालना समीचीन होगा ।

भुवनकोश :

भुवनकोश पुराणों का एक अति महत्त्वपूर्ण प्रकरण है । वायुपुराण की भाँति ही मार्कण्डेय पुराण का भुवनकोश भी अत्यन्त विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण है, जिससे भारत वर्ष ही नहीं, अपितु प्राचीन विश्व की भौगोलिक स्थिति पर विशिष्ट प्रभाव पड़ता है । डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार मार्कण्डेयपुराण का भुवनकोश वायु आदि प्राचीन पुराणों पर ही आधारित है । इस प्रकरण के वैज्ञानिक शोध की महती आवश्यकता है ।

हरिश्चन्द्रोपाख्यान :

मार्कण्डेयपुराण में ऐतरेयब्राह्मण के मिथ्यावादी तथा वरुण को ठगने वाले हरिश्चन्द्र के स्थान पर सत्यव्रती हरिश्चन्द्र की कथा वर्णित की गयी है, जो सत्य को ही परम धर्म मानते थे, क्योंकि सत्य में ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है :

सत्यं चोक्तं परोधर्मः स्वर्गःसत्ये प्रतिष्ठितः । मार्क०, ८.४१ (२)

वस्तुतः हरिश्चन्द्र एक आदर्श राजा हैं, जो अकेले स्वर्ग नहीं जाना चाहते । वे राजा के पुण्य में सम्पूर्ण प्रजा की साझेदारी मानते हैं । वे कहते हैं :

---

१. अग्रवाल, डॉ० वी० एस०, पद्मिनी विद्या ऑफ दि मार्कण्डेयपुराण, पुराणम्, वाल्यूम १, अङ्क २, पृ० १८८-९७ ।

यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर ।
ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह ।। मार्क०, ८. २६२

मार्कण्डेयपुराण में राजा हरिश्चन्द्र का उपाख्यान अत्यन्त रोचक एवं प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया गया है । विश्वामित्र के द्वारा कड़ी परीक्षा लिए जाने पर भी वे धर्म से विचलित नहीं हुए । त्याग-तितिक्षा एवं क्षमा का ऐसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है । इस आख्यान से निश्चित रूप से जन सामान्य को सत्य तथा धर्म के पथ पर चलने की प्रबल प्रेरणा प्राप्त हो सकती है ।

मदालसा-चरित :

मदालसा गन्धर्व राजा विश्वावसु की पुत्री थी (मार्क०, १९. २८) । वज्रकेतु दानव के पुत्र पातालकेतु ने उसका हरण किया था (मार्क०, १९.२९-३०) । राजा शत्रुजित् के पुत्र कुवलयाश्व (ऋतध्वज) ने दानव का वध करके मदालसा से विवाह किया और दानव सेना को परास्त किया । पति की मृत्यु का झूठा समाचार पाकर मदालसा ने प्राण त्याग दिया । पत्नी से वियुक्त होकर ऋतध्वज ने किसी अन्य स्त्री से विवाह न करने का निर्णय लिया । कालान्तर में नागराज की सहायता से मृत मदालसा जीवित हो उठी और उसे पुनः ऋतध्वज ने प्राप्त किया । समय-समय पर मदालसा ने विक्रान्त, सुबाहु, शत्रुमर्दन तथा अलर्क नामक पुत्रों को जन्म दिया । सभी पुत्रों को मदालसा ने उचित उपदेश दिये, जिसके परिणामस्वरूप वे महान् ज्ञानी बने । इन पुत्रों में अलर्क प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है, जिसे माता ने विशेषरूप से शिक्षित किया । मदालसा के इस पुत्र को दत्तात्रेय ने भी शिक्षा दी थी, जिससे वह विशेष ज्ञानी बना । इन पुत्रों के निर्माण में मदालसा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की । मदालसा का यह चरित नारी मात्र के लिए अनुकरणीय आदर्श है ।

देवीमाहात्म्य :

देवीमाहात्म्य मार्कण्डेयपुराण का अति महत्त्वपूर्ण भाग है । यह सप्तशती नाम से भी प्रसिद्ध है । देवीमाहात्म्य का बीज दुर्गा तत्त्व है, जो जगत् में चेतना रूप से व्याप्त है, उसका आधार है तथा उसके कार्य-व्यापार का मूल कारण है । सृष्टि के आदि में विष्णु के नाभि कमल पर स्थित प्रजापति ब्रह्मा को विष्णु के कान की मैल से उत्पन्न मधुकैटभ नामक असुर मार डालने के लिए उद्यत हुए । ब्रह्मा ने भगवान् जनार्दन को सोते हुए देखकर उन्हें जगाने के लिए उनके नेत्रों में निवास करने वाली योग निद्रा का स्तवन किया (मार्क०, ७८.५०-५२) । उस महामाया ने प्रकट होकर एकार्णव में शेष-शैया पर शयन करते हुए भगवान् जनार्दन को जगा दिया और उन्होंने मधु-कैटभ नामक असुरों का वध किया । तदनन्तर ब्रह्मा जी सृष्टि-कार्य सम्पन्न कर सके (मार्क०, ७८.६९-७७) ।

मधु-कैटभ की इस लघु कथा के पश्चात् महिषासुर की कथा आती है । महिषासुर देवताओं को जीत कर इन्द्र बन बैठा था । (मार्क०, ७९.२) । पराजित देवगण त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) की शरण में गये (मार्क०, ७९.७) । ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर तथा इन्द्र आदि देवताओं के शरीर से महान् तेज निकला, जो मिलकर एक हो गया (मार्क०, ७९.९.१०) । वह तेज-पुञ्ज देवी के रूप में परिणत हो गया (वही, ७९. ११-१७) । देवताओं ने जय-जयकार करते हुए देवी को अपने-अपने आयुध प्रदान किये (वही,

७९.१९)। देवी ने महिषासुर का वध कर के देवताओं के कष्ट का निवारण किया। यह कथा मार्कण्डेय पुराण के दो अध्यायों ७९, ८० में वर्णित है।

इसके पश्चात् शुम्भ-निशुम्भ-वध का आख्यान है। महिषासुर की भाँति ही शुम्भ-निशुम्भ ने भी इन्द्र समेत सभी देवताओं को पराजित करके उनका यज्ञिय भाग छीन लिया था। तिरस्कृत देवगण उस अपराजिता देवी की शरण में गये (मार्क०, ८२.४-५)। देवताओं की आराधना से प्रसन्न होकर देवी ने शुम्भ-निशुम्भ का सेना समेत वध किया। यह आख्यान अति विस्तृत (अध्याय, ८१-८७) है। अगले ८८ वें अध्याय में देवताओं द्वारा की गयी देवी की स्तुति तथा देवी द्वारा उनको दिये गये आश्वासन का उल्लेख है। अगले (८९ वें) अध्याय में देवी के इस स्तवन के माहात्म्य का वर्णन है। ९० वें अध्याय में राजा सुरथ और वैश्य द्वारा देवी की आराधना किये जाने का उल्लेख है, जिन्हें अम्बिका ने मनोवाञ्छित वरदान दिया। इस प्रकार मार्कण्डेयपुराण के देवी माहात्म्य का अन्त होता है।

देवी माहात्म्य की उपर्युक्त कथाएँ प्रतीकात्मक हैं और उनका प्रतीकार्थ अत्यन्त गहन है। इसकी व्याख्या के लिए स्वतन्त्र रूप से विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है। एतदर्थ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल की देवी माहात्म्य की सांस्कृतिक व्याख्या अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

अद्भुत विद्याओं के सन्दर्भ :

मार्कण्डेयपुराण में अनेक अद्भुत विद्याएँ सन्दर्भित हैं।

१. अनुलेपन विद्या :

एक ऐसे विशिष्ट पाद लेप का संकेत है, जिसका पैरों पर लेप करने पर आधे दिन में ही एक सहस्र योजन की यात्रा करने की शक्ति आ जाती है। मार्कण्डेयपुराण में वरुणा नदी के तट पर अरुणास्पद नगर में रहने वाले एक ऐसे ब्राह्मण का उल्लेख है, जो सम्पूर्ण पृथ्वी को देखने का इच्छुक था। एक दिन उसके यहाँ विविध औषधियों के प्रभाव को जानने वाला तथा मन्त्र विद्या में प्रवीण एक अतिथि आया। ब्राह्मण की देश-दर्शन की इच्छा को जानकर उसने उसके पैरों पर औषधि निर्मित एक लेप लगा करके निर्दिष्ट दिशा को अभिमन्त्रित किया। इससे उस ब्राह्मण में आधे दिन में ही एक हजार योजन जाने की शक्ति आ गयी।इस लेप के प्रभाव से वह हिमालय पर्वत पर पहुँच गया। वहाँ घूमकर वह हिमालय की छटा को देखने लगा। परन्तु हिम से उसका पाद-लेप धुल जाने के कारण उसकी वह शक्ति नष्ट हो गयी। (मार्क०, ५८.५-१९)।

२. स्वेच्छारूपधारिणी विद्या :

इस विद्या के ज्ञाता को यथेष्ट रूप धारण करने की शक्ति मिल जाती थी। कन्धर के द्वारा विद्युत रूप राक्षस का वध किये जाने पर उसकी पत्नी मदनिका ने इसी विद्या के प्रभाव स्वरूप सौपर्ण रूप धारण करके कन्धर को आत्म समर्पण किया था। वह स्वेच्छारूपधारिणी[१] थी। महिषासुर का स्वेच्छा से सिंह, योद्धा, मतङ्ग तथा महिष-रूप-धारण कर लेना भी इसी विद्या का प्रभाव था।

---

१. मार्क०, २.३० :

कन्धरस्य च सा वेश्म प्राप्येच्छारूपधारिणी।
मेनका तनयासुभ्रूः सौपर्णं रूपमाददे ॥

३. अस्त्रग्रामहृदय विद्या :

यह विद्या अस्त्रों के रहस्यों का ज्ञान करा देती है, जिससे अनायास ही शत्रु पराजित हो जाते हैं। इन्दीवर नामक विद्याधर की पुत्री मनोरमा ने यह विद्या स्वरोचिष् को प्रदान की थी [मार्क०, ६०.२३-२८]। मार्कण्डेय पुराण में इस विद्या का परम्परा-क्रम निम्नप्रकार दिया गया है :

१. रुद्र
२. स्वायम्भुवमनु
३. वसिष्ठ
४. चित्रायुध (मनोरमा की माता के पिता)
५. इन्दीवर (मनोरमा के पिता) और
६. मनोरमा

४. सर्वभूत रुत् विद्या :

इस विद्या से समस्त जीव-जन्तुओं की बोलियों को समझा जा सकता है। मन्दर विद्याधर की विभावरी नामक कन्या ने यह विद्या स्वरोचिष् को प्रदान की थी (मार्क०, ६१.२-३)।

५. पद्मिनी विद्या :

इस विद्या का ज्ञाता निधियों को वश में कर लेता था, जिससे उसे कभी धन की कमी नहीं होती थी। पार की पुत्री कलावती ने यह विद्या सती (दक्ष-पुत्री) से प्राप्त करके स्वरोचिष् को प्रदान की थी [मार्क०, ६१.१४-१७]। मार्कण्डेयपुराण के ६५ वें अध्याय में पद्मिनी विद्या की निधियों का वर्णन है।

६. रक्षोघ्नं विद्या :

रक्षोघ्न मन्त्र के विधिवत् पाठ द्वारा यज्ञों से राक्षसों का उच्चाटन किया जाता था (मार्क० ६७.२१)।

इन विद्याओं के अतिरिक्त भी अनेकानेक अद्‌भुत विद्याओं का उल्लेख विभिन्न पुराणों में मिलता है, जिनके सम्बन्ध में आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन है : 'पुराणों में ऐसी विद्याएँ आख्यानकों के प्रसङ्ग में वर्णित हैं, जिन पर आधुनिक मानव प्रायः विश्वास नहीं करता, परन्तु उस युग में वे सच्ची थीं तथा उनका उपयोग जन साधारण के बीच किया जाता था।...........पुराणों के गम्भीर अनुशीलन से यदि इन विद्याओं के स्वरूप का परिचय मिल सके तो इस वैज्ञानिक युग में नवीन चमत्कार आज भी दिखलाये जा सकते हैं' (पुराण विमर्श, पृ० ३१४-१६)।

मार्कण्डेयपुराण की वेदमूलकता :

पुराण वेदों का उपबृंहण करते हैं और उनमें पर्याप्त वैदिक सामग्री विद्यमान है, यह तथ्य विद्वानों को प्रायः मान्य हो चुका है। मार्कण्डेयपुराण में वेद-विषयक सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती हैं, जिसके विषय में यहाँ विचार किया जायेगा।

मार्कण्डेयपुराण का प्रारम्भ पक्षियों के संवाद से होता है। मार्कण्डेय ऋषि ने जैमिनि को उनके प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने एवं शङ्काओं के समाधान के निमित्त विन्ध्यपर्वत पर निवास करने वाले पक्षियों के पास जाने का निर्देश दिया। जैमिनि ने वहाँ जाकर पक्षियों से मार्कण्डेयपुराण की कथा सुनी

और इस प्रकार अपनी शङ्काओं का समाधान प्राप्त किया। इन पक्षियों के नाम थे पिगांक्ष, विरोध, सुमुख और सुपुत्र, जो उच्च कोटि के तत्त्वज्ञानी एवं शास्त्र-निष्णात थे। ऋग्वेद दशम मण्डल के १४२वें सूक्त के आठों मन्त्रों के ऋषि जरिता, द्रोण, सारिसृक्व तथा स्तम्बमित्र नाम के चार पक्षी हैं। महाभारत-आदि पर्व में इन्हें ही मन्दपाल ऋषि का पुत्र एवं ब्रह्मवादी बताया गया है। ऋग्वेद के उपर्युक्त सूक्त का देवता अग्नि है। ताण्ड्यब्राह्मण में सुपर्ण को अग्नि का प्रतिपादक कहा गया है [**यज्ञो वै सुपर्ण कृत्त्वा चरति**, ताण्ड्यब्राह्मण, १४.३.१०]। सुपर्ण द्वारा स्तुत होने के कारण ही अग्नि सुपर्णी है। स्पष्टतः सुपर्ण चार वेदों का प्रतीक है। इसी कारण पक्षियों की संवाद-योजना पुराणकार ने की है, जिसका उद्देश्य इस पुराण की वेदमूलकता प्रमाणित करना ही है।

मार्कण्डेयपुराण का मुख्य प्रतिपाद्य देवी-माहात्म्य है। देवी-तत्त्व वस्तुतः वैदिक अग्नि का ही पर्याय है। देव्यथर्वशीर्ष (९) में दुर्गा देवी को "वैरोचनी" कहा गया है। विरोचन अग्नि का नाम है। इसी मन्त्र में वैरोचनी दुर्गा देवी को अग्निवर्णा, ज्ञानदीप्त, कर्मफलदात्री एवं असुरसंहर्त्री कहा गया है :

तामग्निवर्णां तपसाज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्यामहेऽसुरान्नाशयित्र्ये ते नमः॥

यतः अग्नि ही कर्मफल का दाता है, और दुर्गा भी कर्मफलदात्री हैं, अतः अग्नि और दुर्गा में साम्य माना गया है।

मुण्डकोपनिषद् में अग्नि की देवी स्वरूपा सप्त जिह्वाओं—काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी तथा विश्वरुचि का उल्लेख है।[1] शङ्कर आदि भाष्यकार इन शब्दों की व्याख्या नहीं करते। इन भाष्यों के टीकाकार भी इन शब्दों के अर्थ के विषय में मौन हैं। मार्कण्डेयपुराण में इन जिह्वाओं की विशद व्याख्या मिलती है, जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है :

या जिह्वा भवतः काली कालनिष्ठाकरी प्रभो।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥
कराली नामया जिह्वा महाप्रलयकारणम्।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥
मनोजवा च या जिह्वा लघिमा-गुण लक्षणा।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥
करोति कामं भूतेभ्यो याते जिह्वा सुलोहिता।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥
सुधूम्रवर्णा या जिह्वा प्राणिनां रोगदायिका।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥
स्फुलिङ्गिनी च या जिह्वा यतः सकलपुद्गलाः।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥
याते विश्वसृजा जिह्वा प्राणिनां शर्मदायिनी।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्॥ मार्क०, ९६.५२-५८

---

१. मुण्डको०, १.२.४।

उल्लेख्य है कि मुण्डकोपनिषद् में उल्लिखित विश्वरुचि को ही यहाँ विश्वसृजां कहा गया है। द्रौपदी के पाँच पति कैसे हुए, जैमिनि के इस प्रश्न के उत्तर में पक्षियों ने कहा कि प्रथम इन्द्र (के तेजस्) के द्वारा त्वष्टा के पुत्र के मार दिये जाने से (मार्क०, ५.१), दूसरे वृत्रासुर का वध किये जाने से (मार्क०, ५.१०) और तीसरे अहल्या का सतीत्त्व हरण किये जाने से (मार्क०, ५. १२) इन्द्र धर्म और तेज से हीन हो गये (मार्क०, ५.१४)। किन्तु उन्हीं के तेज से पाँचो पाण्डवों ने जन्म ग्रहण किया (मार्क०, ५.२१-२३)। इन्द्र की पत्नी शची ने ही कृष्णा (द्रौपदी) के रूप में अग्नि से जन्म लिया था (मार्क०, ५.२४)। यतः पाँचो पाण्डव वस्तुतः एक ही इन्द्र के अलग-अलग रूप थे, अतः द्रौपदी एक इन्द्र की ही पत्नी थी, न कि पाँच विभिन्न लोगों की (मार्क०, ५.२५)।

उपर्युक्त पञ्चेन्द्र-कल्पना का समर्थन महाभारत (उद्योगपर्व, ३३.१०३) भी **'पाण्डोः पुत्राः पञ्च पञ्चेन्द्र कल्पाः'** कहकर करता है। इसका भी मूल वैदिक है। शतपथब्राह्मण में पञ्चप्राणों को ही इन्द्र कहा गया है। इन्द्र के कारण ही प्राणों द्वारा सञ्चालित इन्द्रियाँ 'इन्द्रिय' कही जाती हैं :

स सोऽयं मध्ये प्राणः एष एवेन्द्रः, तान्येष प्राणान् इन्द्रियेणैन्द्ध यदैन्द्र तस्यामिन्द्धः। इन्धो ह्वै यमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षम्। शतपथब्राह्मण, ६.१.१.२

प्रश्नोपनिषद् में भी प्राण को इन्द्र कहा गया है : **इन्द्र स्वं प्राण......** (प्रश्नोप०, २.२.९)। इस प्रकार पञ्चप्राण ही पाण्डव हैं। ये पञ्चप्राण स्थूल वाक् के रूप में ही अनुभवगम्य होते हैं। अतः द्रौपदी वाक् देवी है। पञ्चतत्त्व और प्रकृति अथवा पञ्चाहुति प्रजापति और सृजन-शक्ति के रूप में भी पाँच पाण्डवों (इन्द्रों) तथा द्रौपदी की कल्पना की जा सकती है।

अनेक वैदिक मन्त्र या तो पुराणों में उद्धृत हुए हैं, अथवा उनकी व्याख्या की गयी है। मुण्डकोपनिषद्, (२.२.४) के **'प्रणवो धनुः'** मन्त्र की व्याख्या में मार्क०, ३९.७ (२) में **'प्राणो धनुः'** श्लोक आता है।

मार्कण्डेयपुराण में सरस्वती स्तोत्र आया है (मार्क०, २१.३१-४८)। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसकी सांस्कृतिक व्याख्या करते हुए इसे अनेक वैदिक तत्त्वों का प्रतिपादक माना है।[1] इस स्तोत्र का श्लोक ३३ व ३४ मूलतः ऋग्वेद के **अस्य वामीय सूक्त** (१.१६४.४२) में उल्लिखित क्षर और अक्षर सिद्धान्त पर आधारित है, जिसे उपनिषद् और गीता में भी व्याख्यायित किया गया है। पञ्चभूत क्षर हैं और चैतन्य प्राण शक्ति अक्षर :

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते। गीता, १५.१६ (२)

मार्कण्डेयपुराण ब्रह्म को अक्षर और विश्व को क्षर कहता है :

अक्षरं परमं ब्रह्म जगच्चैतत्क्षरात्मकम्। मार्क०, २१.३४ (१)

देवी भूत और प्राण अर्थात् क्षर संसार और अक्षर कारण दोनों हैं। क्षर पदार्थों का निर्माण परमाणुओं से हुआ है (**भौमश्च परमाणवः**, मार्क०, २१.३४ (२))। किन्तु इस निर्माण के लिए अक्षर ही उत्तरदायी है (**ततः क्षरत्यक्षरम्**, ऋ०, १.१६४.४२)।

अक्षर अग्नि का पर्याय है, जिसे प्राण और आदित्य भी कहा गया है। अक्षर वस्तुतः अग्नि की शक्ति है, जिसे वाक् से समीकृत किया गया है। इसका संक्षिप्त रूप ॐ (ओम्) है।

---

१. [देखिए, पुराणम्, वाल्यूम-१, अङ्क-२, पृ० १३९-४५]।

ओम् अ ऊ म् इन तीन अक्षरों से बना है। यह प्राचीन त्रिक् सिद्धान्त का द्योतक है। मात्रात्रय, लोकत्रय, वेदत्रय (त्रयीविद्या), अग्नित्रय (अग्नित्रेता) **त्रीणि ज्योतींषि त्रिवर्गत्रयोगुणाः त्रयः शब्दाः** (भूः भुवः स्वः तीन व्याहृतियाँ) त्रयो दोषाः, त्रयो आश्रमाः, कालत्रय, त्रयावस्थाः,[1] ये सभी प्राचीन वैदिक सृष्टि विद्या के सिद्धान्तों के प्रतीक हैं, जिनका प्रतिपादन बहुलता से हुआ है। इन्हें व्याख्यायित किये जाने की आवश्यकता है।

मात्रात्रय वास्तव में अ ऊ म् इन तीन अक्षरों का वाचक है, जिसकी व्याख्या तीन छन्दों (गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती), तीन अग्नियों (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय), वेदत्रयी (ऋक, यजु और साम) तीन गुणों (सत्, रज, और तम) और तीन देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, और शिव) के रूप में की जा सकती है।

सरस्वती देवी की कल्पना मात्रात्रय के रूप में की गयी है:

एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति। मार्क०, २१.३८ (२)

यह सम्पूर्ण सृष्टि यज्ञमय है। यज्ञिय प्रक्रिया के लिए अग्नि और वाक् दोनों ही अनिवार्य हैं। सरस्वती देवी ही वाक् है और वाक् अग्नि का ही एक रूप है (वागेवाग्निः, शत० ब्रा०, ३.२.२.१३)। इसीलिए कहा गया है कि ब्रह्मवादी सरस्वती की सहायता से ही सात सोम संस्थाओं, सात हवि संस्थाओं तथा सात पाक संस्थाओं का सम्पादन करते हैं :

सोमसंस्था हविःसंस्था पाकसंस्थाश्च सप्त याः। मार्क०, २१.३९ (१)
तास्त्वदुच्चारणाद्देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः। मार्क०, २१.४० (१)

स्पष्टतः मार्कण्डेयपुराण के सरस्वती स्तोत्र के मूल में वैदिक त्रिक् सिद्धान्त के दर्शन होते हैं।

मार्कण्डेयपुराण पर किये गये कार्य :

प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन के प्रारम्भिक काल में ही यूरोपीय विद्वानों का ध्यान पुराणों की ओर गया और उसी समय मार्कण्डेयपुराण ने भी विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में विभिन्न यूरोपीय विद्वानों ने अपनी-अपनी भाषाओं में मार्कण्डेयपुराण के कतिपय अंशो के अनुवाद प्रस्तुत किए। जर्मन विद्वान् **एफ० रुकर्ट** ने १८५४ ई० में हरिश्चन्द्रोपाख्यान का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। बाद में उसी अंश का एक अंग्रेजी अनुवाद भी **जे० म्यूर** द्वारा किया गया। ग्रीक विद्वान् **गैलोनीज** ने मार्कण्डेयपुराण के देवीमाहात्म्य का ग्रीक भाषा में अनुवाद किया। उल्लेखनीय है कि मार्कण्डेयपुराण का यह अंश अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एवं सर्वाधिक प्रचलित है। इसके अनेक अनुवाद हुए। इसका लैटिन अनुवाद **लुडोविकस पोले** ने किया था,जो १८३१ ई० में बर्लिन से प्रकाशित हुआ था।

१८२३ ई० में **वेंकटराय स्वामी** ने तथा १९६३ में **डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल** ने इस अंश के अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करवाये। डॉ० अग्रवाल ने अनुवाद के साथ ही साथ इसका सांस्कृतिक

---

१. मार्क०, २१.३६-३८।

अध्ययन भी प्रस्तुत किया। सम्पूर्ण मार्कण्डेयपुराण का अंग्रेजी अनुवाद **एफ० ई० पार्जिटर** ने १८८८-१९०५ ई० में विब्लोथिका इण्डिका सीरीज के अन्तर्गत कलकत्ता से प्रकाशित करवाया। कतिपय विद्वानों ने इस पुराण का अध्ययन भी प्रस्तुत किया। पं० बदरीनाथ शुक्ल का **मार्कण्डेयपुराण : एक अध्ययन,** १९६०ई० में वाराणसी से तथा डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का **मार्कण्डेयपुराण : एक सांस्कृतिक अध्ययन,** १९६१ई० में इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। ये समस्त प्रकाशन मार्कण्डेयपुराण के अतिशायी महत्त्व के द्योतक हैं।

मार्कण्डेयपुराण के उपर्युक्त अध्ययन महत्त्वपूर्ण होते हुए भी पर्याप्त नही हैं। इस पुराण के विभिन्न प्रकरणों की विस्तार से वैज्ञानिक व्याख्या अभी भी प्रतीक्षित है। इसमें प्रयुक्त वैदिक सामग्रियों की विशद विवेचना तथा भुवनकोश की भौगोलिक सामग्री का सविस्तार अध्ययन अपेक्षित है। देवी-माहात्म्य के कथानक में आये प्रतीकों का उद्‌घाटन भी आवश्यक है, जिससे इस प्रकरण में प्रयुक्त दार्शनिक निहितार्थ को स्पष्ट रूप से समझा जा सके।इस दिशा में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसे और आगे बढ़ाया जा सकता है। निःसन्देह जीवन एवं जगत् की अनेकानेक समस्याओं का समाधान इसके अध्यंयन से सम्भव हो सकेगा।

पुराणों के महत्त्व को समझकर उन्हें सर्व सुलभ बनाने की दृष्टि से पुराणों के सानुवाद प्रकाशन की योजना हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा चलायी जा रही है, जिसके अन्तर्गत मार्कण्डेयपुराण का यह संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इसका सम्पूर्ण श्रेय सम्मेलन के वर्तमान प्रधानमन्त्री शास्त्र-मर्मज्ञ डॉ० प्रभात शास्त्री जी को है। अपने इस पुनीत कार्य के लिए वे सदा सादर स्मरण किये जाते रहेंगे। निःसन्देह यह योजना भारतीय विद्या के अध्ययन एवं अनुसंधान के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

अन्त में माँ भगवती से सबके मङ्गल की कामना के साथ :

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते।। (मार्क०, ८८.९)

डॉ० लालताप्रसाद द्विवेदी 'अगम'
उप-निदेशक,
श्री प्रतापबहादुर सिंह स्मारक पौराणिक संस्थान,
हरगाँव,
सुलतानपुर (उ० प्र०)
२२७८०७

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीमद्वेङ्कटेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

अथ मार्कण्डेयमहापुराणम्

(१)

अथ प्रथमोऽध्यायः

वपुशापकथनम्

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः ।
तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलङ्घितभूर्भुवः स्वः ॥१

पायात्स वः सकलकल्मषभेददक्षः क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः ।
श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति संगात् ॥२

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥३
तपःस्वाध्यायनिरतं मार्कण्डेयं महामुनिम् । व्यासशिष्यो महातेजा जैमिनिः पर्यपृच्छत ॥४
भगवन् भारताख्यानं व्यासेनोक्तं महात्मना । पूर्णमस्तमलैः शुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः ॥५
जातिशुद्धिसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम् । पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥६

अध्याय १

वपु का शापकथन

जो संसार के भय और दुःख के नाश करने में समर्थ हैं, एकान्त चित्तवाले योगिजन और संन्यासी जिनके चरणों को ध्यान द्वारा प्राप्त करके प्रणाम करते हैं, जिन्होंने प्रकट होकर भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक को वामनरूप से अतिक्रमण किया है, वह नारायण के चरणकमल आपको पवित्र करें।१। सब पापसमूहों के नाश करने में चतुर, क्षीरसागर में शेष जी के शरीर पर मूर्तिमान् हो शयन करनेवाले, जिनके श्वास से जल की कराल कणिका कम्पित होती हैं, जिसमें ऐसा समुद्र जिनके संग से नृत्य करता-सा दिखाई देता है, वह अविनाशी तुम्हारी रक्षा करें ।२। नारायण, नर, नरोत्तम और देवी सरस्वती को प्रणाम करके जयकीर्तन अर्थात् पुराणादि पाठ करें।३। एक समय महर्षि वेदव्यास जी के शिष्य महातेजस्वी जैमिनि ने परम तपस्वी, वेदादि पढ़ने में निरत, महामुनि मार्कण्डेय जी से पूँछा ।४। हे भगवन् ! महात्मा वेदव्यास जी ने भारत नामक जो ग्रंथ वर्णन किया है, वह सब अनेक शास्त्रों के मर्मार्थ से युक्त ।५। विशुद्ध शब्दों से परिपूर्ण छन्द और अलंकारादि से युक्त, कानों को सुखदायक शब्दों से संयुक्त और उसमें जो सब प्रश्न कहे हैं, उनका भी यथार्थ

त्रिदशानां यथा विष्णुर्द्विपदां ब्राह्मणो यथा । भूषणानां च सर्वेषां यथा चूडामणिर्वरः ॥७
यथायुधानां कुलिशमिन्द्रियाणां यथा मनः । तथेह सर्वशास्त्राणां महाभारतमुत्तमम् ॥८
अत्रार्थश्चैव धर्मश्च कामो मोक्षश्च वर्ण्यते । परस्परानुबन्धाश्च सानुबन्धाश्च ते पृथक् ॥९
धर्मशास्त्रमिदं श्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदं परम् । कामशास्त्रमिदं चाग्र्यं मोक्षशास्त्रं तथोत्तमम् ॥१०
चतुराश्रमधर्माणामाचारस्थितिसाधनम् । प्रोक्तमेतन्महाभाग वेदव्यासेन धीमता ॥११
तथा तात कृतं ह्येतद् व्यासेनोदारकर्मणा । यथा व्याप्तं महाशास्त्रं विरोधैर्नाभिभूयते ॥१२
व्यासवाक्यजलौघेन कुतर्कतरुहारिणा । वेदशैलावतीर्णेन नीरजस्का मही कृता ॥१३
कलशब्दमहाहंसं महाख्यानपराम्बुजम् । कथाविस्तीर्णसलिलं कार्ष्णं वेदं महाह्रदम् ॥१४
तदिदं भारताख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् । तत्त्वता ज्ञातुकामोऽहं भगवंस्त्वामुपस्थितः ॥१५
कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः । वासुदेवो जगत्सूतिस्थितिसंयमकारणम् ॥१६
कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा । पञ्चानां महिषी कृष्णा ह्यत्र नः संशयो महान् ॥१७
भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कस्माच्चक्रे हलायुधः ॥१८
कथं च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारा महारथाः । पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत् ॥१९

उत्तर सन्निवेशित हुआ है ।६। जैसे देवताओं में विष्णु, मनुष्यों में ब्राह्मण, सम्पूर्ण गहनों में जैसे चूड़ामणि ।७। अस्त्रों में जैसे वज्र और सब इन्द्रियों में जैसे मन प्रधान है, इसी प्रकार सब शास्त्रों में यह महाभारत ही एकमात्र है, इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सबही परस्पर मिले हुए और प्रकटित रूप में तथा पृथक्-पृथक् वर्णित हुए हैं ।८-९। अतएव यही धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और मोक्ष का साधन-शास्त्र है ।१०। हे महाभाग ! बुद्धिमान् महर्षि वेदव्यास जी ने चारों आश्रमों का आचार, अवस्थान और साधन सबही इसमें विशेष रूप से वर्णन किया है ।११। हे तात ! उदारकर्मा महर्षि वेदव्यास जी ने इस महाभारत नामक महाशास्त्र की इस प्रकार रचना की है कि, यह अत्यन्त विस्तृत होने पर भी इसमें किसी स्थल का परस्पर विरोध नहीं हुआ है ।१२। वासुदेव के वचनरूपी इस जलराशि ने वेदरूपी पर्वत से निकलकर कुतर्करूपी वृक्षों को उखाड़ पृथ्वी को रजरहित कर दिया है ।१३। कृष्णद्वैपायनप्रणीत पञ्चमवेदस्वरूप यह महाह्रद (तालाब) मधुर शब्दरूप महाहंस और महाआख्यानरूपी कमलों के द्वारा शोभायमान और विस्तीर्ण कथारूपी जल के द्वारा पूर्ण हुआ है ।१४। हे भगवन् ! जो वेदार्थ और श्रुतियों से युक्त है, उस महाभारत नामक शास्त्र का यथार्थ रूप से अर्थ जानने के निमित्त ही मैं आपके पास आया हूँ ।१५। जो जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं, वह जनार्दन वासुदेव[1] निर्गुण होकर भी किस कारण मनुष्यत्व को प्राप्त हुए थे ।१६। अकेली द्रुपदपुत्री द्रौपदी कृष्णा जिस प्रकार पाँच पाण्डवों की महिषी हुई थी ? इस विषय में मुझको महान् संदेह है ।१७। और महाबलशाली बलदेव जी ने तीर्थयात्रा के प्रसंग में किस प्रकार ब्रह्महत्या के पाप का प्रायश्चित्त किया था ? ।१८। और पाण्डव जिनके सहायक थे, उन महारथ द्रौपदी के

---

१. जिनके रोमों (बाल) के छिद्र में सम्पूर्ण जगत् अवस्थान करता है और जो सदा ही क्रीड़ा करते हैं, अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, उनको ही वासुदेव कहते हैं ।

एतत्सर्वं विस्तरशो ममाख्यातुमिहार्हसि । भवन्तो मूढबुद्धीनामवबोधकराः सदा ॥२०
इति तस्य वचः श्रुत्वा मार्कण्डेयो महामुनिः । दशाष्टदोषरहितो वक्तुं समुपचक्रमे ॥२१

मार्कण्डेय उवाच

क्रियाकालोऽयमस्माकं सम्प्राप्तो मुनिसत्तम । विस्तरे चापि वक्तव्ये नैष कालः प्रशस्यते ॥२२
ये तु वक्ष्यन्ति वक्ष्येऽद्य तानहं जैमिने तव । तथा च नष्टसन्देहं त्वां करिष्यन्ति पक्षिणः ॥२३
पिङ्गाक्षश्च विबोधश्च सुपुत्रः सुमुखस्तथा । द्रोणपुत्राः खगश्रेष्ठास्तत्त्वज्ञाः शास्त्रचिन्तकाः ॥२४
वेदशास्त्रार्थविज्ञाने येषामव्याहता मतिः । विंध्यकन्दरमध्यस्थास्तानुपास्य च पृच्छ च ॥२५
एवमुक्तस्तदा तेन मार्कण्डेयेन धीमता । प्रत्युवाचर्षिशार्दूलो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥२६

जैमिनिरुवाच

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्खगवागिव मानुषी । यत्पक्षिणस्ते विज्ञानमापुरत्यन्तदुर्लभम् ॥२७
तिर्यग्योन्यां यदि भवस्तेषां ज्ञानं कुतोऽभवत् । कथं च द्रोणतनयाः प्रोच्यन्ते ते पतत्त्रिणः ॥२८
कश्च द्रोणः प्रविख्यातो यस्य पुत्रचतुष्टयम् । जातं गुणवतां तेषां धर्मज्ञानं महात्मनाम् ॥२९

पुत्रों ने अविवाहित अवस्था में किस प्रकार अनाथ के समान प्राण त्याग किया ? ।१९। यह सब आप मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये, क्योंकि आप ही अबोध पुरुषों को ज्ञानोदय कराते हैं ।२०। योगशास्त्रोक्त अठारह[1] दोषरहित महामुनि मार्कण्डेय जी जैमिनि मुनि के इस प्रकार वचन सुनकर कहने लगे ।२१

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुनिसत्तम ! मेरे संध्यावन्दनादि करने का समय उपस्थित हुआ है, यह विस्तारसहित कहने का समय नहीं है ।२२। हे जैमिने ! जो पक्षी यह विषय तुमसे कहेंगे, उनका वर्णन करता हूँ, वह पक्षी यह विषय सुनाकर तुमको संदेहहीन करेंगे ।२३। पिंगाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख इत्यादि खगश्रेष्ठ द्रोण के पुत्र शास्त्रों का तत्त्व जाननेवाले पक्षी विन्ध्यपर्वत की कन्दरा में वास करते हैं, वेदशास्त्रार्थ ज्ञान में उनकी बुद्धि कभी नहीं रुकती है, तुम उनकी उपासना करके पूछो तो सब विषय जान सकोगे ।२४-२५। बुद्धिमान् मार्कण्डेय जी के इस प्रकार कहने पर उन ऋषिशार्दूल जैमिनि ने आश्चर्यचकित विस्फाटित नेत्र होकर फिर पूँछा ।२६

जैमिनि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! पक्षी मनुष्य के समान कथा कह सकते हैं, प्रथम तो यही आश्चर्य है और फिर इस पर भी उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ शास्त्रज्ञान प्राप्त किया है ।२७। जो हो, यदि तिर्यग्योनि में उनका जन्म हुआ है, तो फिर उनको ऐसा ज्ञान कहाँ से हुआ और किस लिए उनको द्रोणपुत्र कहते हैं ।२८। यह चार पक्षी जिसके पुत्र हैं, वह द्रोण कौन है और इन गुणवान् महात्मा पक्षियों को किस प्रकार धर्मज्ञान हुआ ? ।२९

---

१. निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, मोह, मद, उन्माद, प्रमाद, विस्मय, सन्देह, लोभ, असूया, मात्सर्य, कपटता, मिथ्या, नास्तिकता, अगमदर्शिता और अशिक्षा ।

मार्कण्डेय उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा यद्वृत्तं नन्दने पुरा । शक्रस्याप्सरसां चैव नारदस्य च सङ्गमे ॥३०
नारदो नन्दनेऽपश्यत्पुंश्चलीगणमध्यगम् । शक्रं सुराधिराजानं तन्मुखासक्तलोचनम् ॥३१
स तेनर्षिवरिष्ठेन दृष्टमात्रः शचीपतिः । समुत्तस्थौ स्वकं चास्मै ददावासनमादरात् ॥३२
तं दृष्ट्वा बलवृत्रघ्नमुत्थितं त्रिदशाङ्गनाः । प्रणेमुस्ताश्च देवर्षिं विनयावनताः स्थिताः ॥३३
ताभिरभ्यर्चितः सोऽथ उपविष्टे शतक्रतौ । यथार्हं कृतसंभाषा कथाश्चक्रे मनोरमाः ॥३४
ततः कथान्तरे शक्रस्तमुवाच महामुनिम्

शक्र उवाच

देह्याज्ञां नृत्यतामासां तव याभिमतेति वै ॥३५
रम्भा वा कर्कशा वाथ उर्वश्यथ तिलोत्तमा । घृताची मेनका वापि यत्र वा भवतो रुचिः ॥३६
एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठो वाचं शक्रस्य नारदः । विचिन्त्याप्सरसः प्राह विनयावनता स्थिताः ॥३७
युष्माकमिह सर्वासां रूपौदार्यगुणाधिकम् । आत्मानं मन्यते या तु सा नृत्यतु ममाग्रतः ॥३८
गुणरूपविहीनायाः सिद्धिर्नाट्यस्य नास्ति वै । चार्वधिष्ठानवन्नृत्यं नृत्यमन्यद्विडम्बनम् ॥३९

मार्कण्डेय उवाच

तद्वाक्यसमकालं च एकैकास्ता नतास्ततः । अहं गुणाधिका न त्वं न त्वं चान्याब्रवीदिदम् ॥४०

मार्कण्डेय जी बोले—जैमिने ! पूर्वकाल में नन्दनवन में इन्द्र, नारद और अप्सराओ के एकसाथ मिलने पर जो घटना हुई थी, वह एकाग्र चित्त से सुनो ।३०। एक दिन देवर्षि नारद जी ने हठात् उपस्थित होकर देखा कि, देवराज इन्द्र कितनी ही वेश्याओ से परिवेष्टित हो, उनके मुख की ओर देख रहे हैं ।३१। शचीपति इन्द्र ने उस महर्षिश्रेष्ठ को देखते ही उठकर अत्यन्त आदर किया और बैठने के लिए उनको अपना आसन दिया ।३२। इन्द्र को उठता हुआ देखकर स्वर्ग की वेश्याओ ने भी उठकर महर्षि को प्रणाम किया और विनीतभाव से नीचे को मस्तक किये खड़ी रही ।३३। नारद इस प्रकार उनसे पूजित हो जब इन्द्र के सहित बैठे, तब परस्पर यथायोग्य अनेक प्रकार की वार्ता करने लगे ।३४। इसी बीच में शचीपति इन्द्र ने महामुनि से कहा ।

इन्द्र बोले—हे महाभाग ! जिसको आपकी इच्छा हो गाने की आज्ञा दो ।३५। रम्भा, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा, उर्वशी, घृताची या मेनका, इनमें जिसकी अभिलाषा हो उसी को नृत्य करने की आज्ञा दो ।३६। द्विजश्रेष्ठ नारद जी ने देवराज इन्द्र के यह वचन सुन, कुछ समय तक विचार कर विनय करती हुई अप्सराओं से कहा ।३७। देखो, तुममें जो रमणी रूपवती और उदारता इत्यादि गुणो में अपने को गुणवती समझती हो, वही मेरे सन्मुख नृत्य करे ।३८। क्योंकि रूपवती और गुणवती के अतिरिक्त नाट्यशास्त्र में अन्य की सिद्धि नही होती । हाव, भाव और कटाक्ष विक्षेपादि युक्त नृत्य को ही नृत्य कहते हैं, अन्य नृत्य वृथा है ।३९

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर उनका यह वचन सुनकर एक-एक अप्सरा परस्पर कहने लगी "मैं ही

तासां सम्भ्रममालोक्य भगवान्पाकशासनः। पृच्छतां मुनिरित्याह वक्ता यां वो गुणाधिकाम् ॥४१
शक्रच्छन्दानुयाताभिः पृष्टस्ताभिः स नारदः। प्रोवाच यत्तदा वाक्यं जैमिने तन्निबोध मे ॥४२
तपस्यन्तं नगेन्द्रस्थं या वः क्षोभयते बलात्। दुर्वाससं मुनिश्रेष्ठं तां वो मन्ये गुणाधिकाम् ॥४३

मार्कण्डेय उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वा वेपितकन्धराः। अशक्यमेतदस्माकमिति ताश्चक्रिरे कथाः ॥४४
तत्राप्सरा वपुर्नाम मुनिक्षोभणगर्विता। प्रत्युवाचानुयास्यामि यत्रासौ संस्थितो मुनिः ॥४५
अद्य तं देहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम्। स्मरशस्त्रगलद्रश्मिं करिष्यामि कुसारथिम् ॥४६
ब्रह्मा जनार्दनो वापि यदि वा नीललोहितः। तमप्यद्य करिष्यामि कामबाणक्षतान्तरम् ॥४७
इत्युक्त्वा प्रजगामाथ प्रालेयाद्रिं वपुस्तदा। मुनेस्तपःप्रभावेण प्रशान्तश्वापदाश्रमम् ॥४८
सा पुंस्कोकिलमाधुर्या यत्रास्ते स महामुनिः। क्रोशमात्रं स्थिता तस्मादगायत वराप्सराः ॥४९
तद्गीतध्वनिमाकर्ण्य मुनिर्विस्मितमानसः। जगाम तत्र यत्रास्ते सा बाला रुचिरानना ॥५०
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं मुनिः संस्तस्य मानसम्। क्षोभणायागतां ज्ञात्वा कोपामर्षसमन्वितः ॥५१
उवाचेदं ततो वाक्यं महर्षिस्तां महातपाः ॥५२
यस्माद्दुःखार्जितस्येह तपसो विघ्नकारणात्। आगतासि मदोन्मत्ते मम दुःखाय खेचरि ॥५३

सबसे गुणों में अधिक हूँ, तुम नहीं।" ।४०। उनमें इस प्रकार विवाद उपस्थित हुआ देखकर भगवान् पाकशासन (इन्द्र) ने कहा, तुम इन मुनि से ही पूछो, तुममें कौन गुणवती है, वह यही कह सकते हैं।४१। हे जैमिने ! इन्द्र की इच्छानुसार चलने वाली वेश्याओं के पूछने पर महर्षि नारदजी ने उस समय जो कहा था, वह कहता हूँ, सुनो ।४२। नारद जी बोले—देखो, मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा पर्वत के ऊपर तपस्या करते हैं, उनको जो मोहित कर सकेगी, तुममें वही अधिक गुणशालिनी है ।४३

मार्कण्डेय जी बोले—उनका यह वचन सुनकर सब अप्सराओं ने मस्तक कम्पायमान करके कहा, इस कार्य के करने में हमारी सामर्थ्य नहीं है ।४४। उनमें वपुनामक एक अप्सरा ने अनेक बार अनेक मुनियों का तप भङ्ग किया था, इसी कारण उसने गर्वसहित कहा—आज्ञा कीजिये जहाँ दुर्वासा मुनि स्थित हैं, मैं वहीं जाऊँगी ।४५। मैं अभी कामबाण के आघात से उनकी मनोरूप लगाम को छेद कर इन्द्रियरूपी घोड़ों को उन्मार्गगामी करके देहरूपी रथ को बुद्धिरूप सारथिविहीन करूँगी ।४६। यदि ब्रह्मा, विष्णु अथवा महादेव भी हों, तो भी निःसन्देह इस समय उनका अन्तर कामबाणसे जर्जरित करूँगी ।४७। वपु नामक अप्सरा यह कहकर हिमालय पर्वत में गई, वहाँ मुनि की तपस्या के प्रभाव से आश्रमवासी हिंसक जीव भी अत्यन्त शान्त थे ।४८। अप्सराओं में श्रेष्ठ वपु जहाँ महामुनि दुर्वासा वास करते थे, वहाँ से एक कोशमात्र के अन्तर में अवस्थान करके पुंस्कोकिल के समान मनोहर कंठ से गान करने लगी ।४९। मुनिवर दुर्वासा इस गीत को सुनकर जहाँ वह कोकिलकंठी बाला स्थित थी, आश्चर्यचित्त से वहाँ गये ।५०। मुनिवर दुर्वासा ने उस सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनी को देख, मन को रोक "मेरे तप में विघ्न करने के लिये ही आई है" यह समझ अत्यन्त क्रोधयुक्त होकर उससे कहा ।५१-५२। रे मदोन्मत्त खेचरि ! मेरी इस दुःखोपार्जित तपस्या में तू विघ्न करने के लिए ही आई है ।५३। इस कारण रे दुर्बुद्धे !

तस्मात्सुपर्णगोत्रे त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता । जन्म प्राप्स्यसि दुष्प्रज्ञे यावद्वर्षाणि षोडश ।।५४
निजरूपं परित्यज्य पक्षिणीरूपधारिणी । चत्वारस्ते च तनया जनिष्यन्तेऽधमाप्सराः ।।५५
अप्राप्य तेषु च प्रीतिं शस्त्रपूता पुनर्दिवि । वासमाप्स्यसि वक्तव्यं नोत्तरं ते कथञ्चन ।।५६

इति वचनमसह्यं कोपसंरक्तदृष्टिश्चलकलवलयान्तां मानिनीं श्रावयित्वा ।
तरलतरतरङ्गा गां परित्यज्य विप्रः प्रथितगुणगणौघां सम्प्रयातः खगङ्गाम् ।।५७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वपुशापकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।१।

अथ द्वितीयोऽध्यायः (2)

चटकोत्पत्तिकथनम्

मार्कण्डेय उवाच

अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद् गरुडो नाम पक्षिराट् । गरुडस्याभवत्पुत्रः सम्पातिरिति विश्रुतः ।।१
तस्याप्यासीत्सुतः शूरः सुपार्श्वो वायुविक्रमः । सुपार्श्वतनयः कुन्तिः कुन्तिपुत्रः प्रलोलुपः ।।२
तस्यापि तनयावास्तां कङ्कः कन्धर एव च ।।३
कङ्कः कैलासशिखरे विद्युद्रूपेति विश्रुतम् । ददर्शाम्बुजपत्राक्षं राक्षसं धनदानुगम् ।।४
आपानासक्तममलस्त्रग्दामाम्बरधारिणम् । भार्यासहायमासीनं शिलापट्टेऽमले शुभे ।।५

तू मेरे क्रोध से कलुषित होकर सोलह वर्ष तक पक्षियों के कुल में जन्म ग्रहण करके रहेगी ।५४। रे अप्सराधम ! तू अपना रूप त्यागकर पक्षिरूप धारण करेगी तेरे चार पुत्र उत्पन्न होंगे ।५५। तू पुत्र उत्पन्न करने की प्रीति प्राप्त करने में वञ्चित होगी और शस्त्राघात से विनष्टपाप होकर फिर स्वर्ग में जायेगी, देखना इसमें अब कोई उत्तर न करना ।५६। ब्राह्मणश्रेष्ठ महर्षि दुर्वासा क्रोध से लाल नेत्र हो चंचल मनोरम कंकणधारिणी मानिनी वपु को यह वचन सुनाकर, पृथ्वी को छोड़, प्रसिद्ध गुणों से युक्त आकाशगंगा को चले गये ।५७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में वपुशापवर्णन नामक प्रथम अध्याय समाप्त ।१।

अध्याय २

चटक की उत्पत्ति का कथन

मार्कण्डेय जी बोले—सब पक्षियों के राजा गरुड़ अरिष्टनेमि के पुत्र हुए, गरुड़ का पुत्र सम्पाति हुआ ।१। अत्यन्त बलवान् और वायु के समान विक्रमशाली सुपार्श्व सम्पाति का पुत्र हुआ, इसका पुत्र कुन्ति और कुन्ति का पुत्र प्रलोलुप हुआ ।२। प्रलोलुप के दो पुत्र हुए, कंक और कन्धर ।३। कंक ने एक दिन कैलासपर्वत में जाकर पद्मपत्र के समान विशाल नेत्रवाले कुबेर के अनुचर विद्युद्रूप नामक राक्षस को देखा ।४। यह राक्षस उस समय निर्मल माला और अच्छे वस्त्र धारण किये स्वच्छ शिला पर भार्या के

तद्दृष्टमात्रं कङ्केन रक्षः क्रोधसमन्वितम् । प्रोवाच कस्मादायातस्त्वमितो ह्यण्डजाधम ॥६
स्त्रीसन्निकर्षे तिष्ठन्तं कस्मान्मामुपसर्पसि । नैष धर्मः सुबुद्धीनां मिथो निष्पाद्य वस्तुषु ॥७

कङ्क उवाच

साधारणोऽयं शैलेन्द्रो यथा तव तथा मम । अन्येषां चैव जन्तूनां ममता भवतोऽत्र का ॥८

मार्कण्डेय उवाच

ब्रुवाणमित्थं खड्गेन कङ्कं चिच्छेद राक्षसः । क्षरत्क्षतजबीभत्सं विस्फुरन्तमचेतनम् ॥९
कङ्कं विनिहतं श्रुत्वा कन्धरः क्रोधमूर्च्छितः । विद्युद्रूपवधायाशु मनश्चक्रेऽण्डजेश्वरः ॥१०
स गत्वा शैल शिखरं कङ्को यत्र हतः स्थितः । तस्य सङ्कलनं चक्रे भ्रातुर्ज्येष्ठस्य खेचरः ॥
कोपामर्षविवृत्ताक्षो नगेन्द्र इव निःश्वसन् ॥११
जगामाथ स यत्रास्ते भ्रातृहा तस्य राक्षसः । पक्षवातेन महता चालयन्भूधरान्वरान् ॥१२
वेगात्पयोदजालानि विक्षिपन्क्षतजेक्षणः । क्षणात्क्षयितशत्रुः स पक्षाभ्यां क्रान्तभूधरः ॥१३
पानासक्तमतिं तत्र तं ददर्श निशाचरम् । आताम्रवक्त्रनयनं हेमपर्यङ्कमाश्रितम् ॥१४
स्रग्दामापूरितशिखं हरिचन्दनभूषितम् । केतकीपत्रगर्भाभैर्दन्तैर्घोरतराननम् ॥१५

संग बैठा हुआ मद्यमान कर रहा था ।५। विद्युद्रूपराक्षस कंक को देखते ही अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगा—रे पक्षियों में अधम ! तू किस लिये यहाँ आया है? ।६। मैं स्त्री के संग बैठा हूँ, इस समय किस कारण तू मेरे समीप आया है ? क्योंकि रहस्यकार्य में बुद्धिमान् पुरुषों को ऐसा आरचण नहीं करना चाहिये।७

कंक ने कहा—इस पर्वत पर सबका समान अधिकार है, इसमें जिस प्रकार तुम्हारा अधिकार है, वैसा ही मेरा है और अन्यान्य जन्तुओं का भी उसी प्रकार हैं, फिर इस विषय में तुमको इतनी ममता क्यों है ? ।८

मार्कण्डेय जी बोले—कंक के इस प्रकार कहने पर उस राक्षस ने अत्यन्त क्रोधित हो खड्गाघात से उसका शिर काट डाला, शिर कटने के कारण रुधिर के गिरने से अतिभयंकर कार्य हुआ, तब कंक विचेतन होकर मर गया ।९। इसके पीछे पक्षियों में श्रेष्ठ कन्धर ने कंक को मरा हुआ सुन अत्यन्त क्रोधसहित विद्युद्रूप राक्षस के मारने की इच्छा की ।१०। अनन्तर बड़ा भाई कन्धर कंक जहाँ मारा गया था, कैलास पर्वत के उसी स्थान में जाकर उसका अन्त्यैष्टि कर्म किया और विस्फारित नेत्रों से सर्प के समान श्वास लेता हुआ ।११। भ्राता का मारने वाला विद्युद्रूप राक्षस जहाँ स्थित था, वहाँ गया, उसके गमन समय में पंखों की वायु के वेग से आहत होकर बड़े-बड़े पर्वत चलायमान होने लगे ।१२। और समुद्र का जल इधर-उधर बिखरने लगा । कंधर ने इस प्रकार एकमात्र पंखों के आश्रय से क्षणमात्र में ही पर्वत पर आक्रमण किया ।१३। पक्षिश्रेष्ठ कंधर ने पर्वत के ऊपर पहुँचकर देखा कि, निशाचर विद्युद्रूप सुवर्णमय शय्या पर बैठा हुआ मद्यपान कर रहा है, उसके मुखमंडल और दोनों नेत्रों ने कुछ लालवर्ण धारण किया है ।१४। और उसका मस्तक माला से युक्त, सर्वाङ्ग हरिचंदन के द्वारा चर्चित और मुखमण्डल केतकी पुष्प के गर्भपत्र के समान सफेद दातों की पंक्ति से शोभायमान होरहा है ।१५। और यह भी देखा कि, एक

वामोरुमाश्रितां चास्य ददर्शायतलोचनाम् । पत्नीं मदनिकां नाम पुंस्कोकिलकलस्वनाम् ।।१६
ततो रोषपरीतात्मा कन्धरः कन्दरस्थितम् । तमुवाच सुदुष्टात्मन्नेहि युध्यस्व वै मया ।।१७
यस्माज्ज्येष्ठो मम भ्राता विश्रब्धो घातितस्त्वया । तस्मात्त्वां मदसंसक्तं नयिष्ये यमसादनम् ।।१८
विश्वस्तघातिनां लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम् । यास्यसे निरयान्सर्वांस्तांस्त्वमद्य मया हतः ।।१९

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं पतगेन्द्रेण प्रोक्तं स्त्रीसन्निधौ तदा । रक्षः क्रोधसमाविष्टं प्रत्यभाषत पक्षिणम् ।।२०
यदि ते निहतो भ्राता पौरुषं तद्धि दर्शितम् । त्वामप्यद्य हनिष्येहं खड्गेनानेन खेचर ।।२१
तिष्ठ क्षणं नात्र जीवन्पतगाधम यास्यसि । इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभं विमलं खड्गमाददे ।।२२
ततः पतगराजस्य यक्षाधिपभटस्य च । बभूव युद्धमतुलं यथा गरुडशक्रयोः ।।२३
ततः स राक्षसः क्रोधात्खड्गमाविध्य वेगवत् । चिक्षेप पतगेन्द्राय निर्वाणाङ्गारवर्चसम् ।।२४
पतगेन्द्रश्च तं खड्गं किञ्चिदुत्प्लुत्य भूतलात् । वक्त्रेण जग्राह तदा गरुडः पन्नगं यथा ।।२५
वक्त्रपादतलैर्भङ्क्त्वा चक्रे क्षोभमथाण्डजः । तस्मिन्भग्ने ततः खड्गे बाहुयुद्धमवर्तत ।।२६
ततः पतगराजेन वक्षस्याक्रम्य राक्षसः । हस्तपादकरैराशु शिरसा च वियोजितः ।।२७
तस्मिन्विनिहतो सा स्त्री खगं शरणमभ्यगात् । किञ्चित्सञ्जातसन्त्रासा प्राह भार्या भवामि ते ।।२८

सर्वाङ्गसुन्दरी कोकिलकंठी नितम्बिनी उसके समीप बैठी है, यही उसकी पत्नी है । कामिनी के दोनों नेत्र बड़े और उसका नाम मदनिका है ।१६। इसके उपरान्त पक्षियों में श्रेष्ठ कन्धर ने अत्यन्त क्रोधित होकर पर्वत की कन्दरा में बैठे हुए निशाचर को बुलाकर कहा—रे दुष्टात्मन् ! शीघ्र आकर मुझसे युद्ध कर ।१७। जो कि, तुमने मदोन्मत्त होकर मेरे बड़े भाई कंक का वध किया है, इस कारण अब तुझको निसन्देह यमालय भेजूँगा ।१८। विश्वासघातकता, स्त्रीहत्या और बालकों की हत्या करने वाले पातकी जिन नरकों में जाते हैं, तू भी इस समय मेरे हाथ से मरकर उन्हीं नरकों में जायेगा ।१९

मार्कण्डेय जी बोले—वह निशाचर विद्युद्रूप पक्षिश्रेष्ठ कंधर के यह वचन अपनी पत्नी के निकट सुन, अत्यन्त क्रोधित होकर पक्षी से कहने लगा ।२०। रे खेचर ! तेरे भाई के मारने में मेरा पौरुष ही प्रकाश पाता है, अतएव अब इस खड्ग से तुझको भी निहत करूँगा ।२१। रे पतगाधम ! क्षणकाल ठहर, मेरे निकट से जीवित अवस्था में नहीं जा सकेगा, यह कहकर उस राक्षस ने अंजनपुंज के समान कृष्ण वर्ण का निर्मल खड्ग ग्रहण किया ।२२। पूर्वकाल में जिस प्रकार इन्द्र के संग गरुड का तुमुल युद्ध हुआ, वैसे ही इस राक्षस के संग पक्षी कंधर का संग्राम होने लगा ।२३। अनन्तर उस राक्षस ने अत्यन्त क्रोध में भरकर अग्नि के समान चमकता हुआ कृष्णवर्ण खड्ग वेगसहित पक्षी के ऊपर चलाया ।२४। पक्षी ने भी वैसे ही पृथ्वी से कुछ कूदकर गरुड जिस प्रकार सर्पों को चोंच में पकड़ते हैं उसी प्रकार उस खड्ग को चोंच में धारण कर लिया ।२५। पक्षिश्रेष्ठ कंधर चोंच में खड्ग धारणपूर्वक पैरों से उसको तोड़कर अत्यन्त क्रोधित हुआ और फिर उनका बाहुयुद्ध होने लगा ।२६। अनन्तर निशाचर पक्षी के द्वारा वक्षस्थल में आक्रान्त होकर पक्षी के प्रहार से जर्जरित हुआ और उसकी नाड़ी हाथ पैर तथा मस्तक देह से पृथक् हो गया ।२७। उस राक्षस के मरने पर उसकी पत्नी मदनिका ने भयाकुलचित्त से खगराज की शरणागत होकर कहा—हे

तामादाय खगश्रेष्ठः स्वकं गृहमगात्पुनः । गत्वा स निष्कृतिं भ्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात् ॥२९
कन्धरस्य च सा वेश्म प्राप्येच्छारूपधारिणी । मेनकातनया सुभ्रूः सौपर्णं रूपमाददे ॥३०
तस्यां स जनयामास तार्क्षीं नाम सुतां तदा । मुनिशापाग्निविप्लुष्टां वपुमप्सरसां वराम् ॥
तस्या नाम तदा चक्रे तार्क्षीमिति विहङ्गमः ॥३१
मन्दपालसुताश्चासंश्चत्वारोऽमितबुद्धयः । जरितारिप्रभृतयो द्रोणान्ता द्विजसत्तमाः ॥३२
तेषां जघन्यो धर्मात्मा वेदवेदाङ्गपारगः । उपयेमे स तां तार्क्षीं कन्धरानुमते शुभाम् ॥३३
कस्यचित्त्वथ कालस्य तार्क्षी गर्भमवाप ह । सप्तपक्षाहिते गर्भे कुरुक्षेत्रं जगाम सा ॥३४
कुरुपाण्डवयोर्युद्धे वर्तमाने सुदारुणे । भावित्वाच्चैव कार्यस्य रथमध्ये विवेश सा ॥३५
तत्रापश्यत युद्धं सा सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् । शरशक्त्यृष्टिभिर्भीमं यथा देवासुरं रणम् ॥३६
तत्रापश्यत्तदा युद्धं भगदत्तकिरीटिनोः । निरन्तरं शरैरासीदाकाशं शलभैरिव ॥३७
पार्थकोदण्डनिर्मुक्तमासन्नमतिवेगवत् । तस्या भल्लमहिश्यामं त्वचं चिच्छेद जाठरीम् ॥३८
भिन्ने कोष्ठे शशाङ्काभं भूमावण्डचतुष्टयम् । आयुषः सावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत् ॥३९
तत्पातसमकालं च सुप्रतीकाद्गजोत्तमात् । पपात महती घण्टा बाणसंछिन्नबन्धना ॥४०
समं समन्तात्प्राप्ता तु निर्भिन्नधरणीतला । छादयन्ती खमण्डानि स्थितानि पिशितोपरि ॥४१

महाशय ! मैं आपकी भार्या हुई ।२८। खगश्रेष्ठ कन्धर ने—निशाचर को मारकर भातृवधजनित शोक से निष्कृति लाभ की और मदनिका को संग लेकर अपने घर आया ।२९। मेनका की पुत्री निशाचरी मदनिका अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर लेती थी, इस कारण कंधर के घर आकर पक्षिरूप अवलम्बन किया ।३०। इसी पक्षिणी के उदर से दुर्वासा मुनि की शापानल से युक्त वपु अप्सराने जन्म ग्रहण किया, खगपति कंधर ने उसका नाम तार्क्षी रखा ।३१। हे द्विजसत्तम ! मन्दपाल नामक ब्राह्मण के चार पुत्र थे, उनमें बड़े का नाम जितारि और छोटे का नाम द्रोण था, वह सब अत्यन्त बुद्धिमान् थे ।३२। उनमें वेदवेदाङ्ग का तत्त्व जानने वाले धर्मात्मा द्रोण के संग खगराज कंधर की अनुमति से उस सर्वाङ्गसुन्दरी तार्क्षीका विवाह कर दिया था ।३३। अनन्तर कुछ दिन बीतने पर उस तार्क्षी को गर्भ रहा । गर्भ धारण के दिन से सात पक्ष बीतने पर तार्क्षी कुरुक्षेत्र में गई ।३४। उस समय कौरव पाण्डवों का दारुण युद्ध हो रहा था, किन्तु जो अवश्य होने वाली बात है उसको कोई खण्डित नहीं कर सकता, इसी से तार्क्षी उस युद्धस्थल में गई ।३५। पक्षिणी ने वहाँ पहुँचकर देखा कि, प्रत्त और अर्जुन तुमुल संग्राम कर रहे हैं, उनके निरन्तर छूटते हुए बाणों से आकाशमण्डल टीडी के समान व्याप्त हुआ है ।३६-३७। इधर पार्थ के धनुष से छूटे हुए वेग सहित एक बाण ने आकर तार्क्षी के जठर की त्वक् (खाल) बींध डाली ।३८। पक्षिणी की कुक्षि विदीर्ण होने पर चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण के चार अण्डे अत्यन्त ऊँचे स्थान से गिरकर भी आयुकाल विशेष विद्यमान होने के कारण रुई की समान भूमि में गिरे ।३९। इसी समय में भगदत्त के सुप्रतीक नामक गजराज का महाप्रयाण गलघण्टा बाण से छिन्न- भिन्न होकर गिरा ।४०। यद्यपि दोनों एक ही काल में पृथ्वी पर प्राप्त हुए, किन्तु घंटा इस प्रकार गिरा कि, उस मांसपिण्ड के उपस्थित सब अण्डों के चारों ओर भली भाँति ढक्कन के समान हो गया।४१।

हते च तस्मिन्नृपतौ भगदत्ते नरेश्वरे । बहून्यहान्यभूद्युद्धं कुरुपाण्डवसैन्ययोः ॥४२
वृत्ते युद्धे धर्मपुत्रे गते शान्तनवान्तिकम् । भीष्मस्य गदतोऽशेषाञ्श्रोतुं धर्मान्महात्मनः ॥४३
घण्टागतानि तिष्ठन्ति यत्राण्डानि द्विजोत्तम । आजगाम तमुद्देशं शमीको नाम संयमी ॥४४
स तत्र शब्दमशृणोच्चिचीकुचीति वाशताम् । बाल्यादस्फुटवाक्यानां विज्ञानेऽपि परे सति ॥४५
अथर्षिः शिष्यसहितो घण्टामुत्पाटच विस्मितः । अमातृपितृपक्षाणि शिशुकानि ददर्श ह ॥४६
तानि तत्र तथा भूमौ शमीको भगवान्मुनिः । दृष्ट्वा स विस्मयाविष्टः प्रोवाचानुगतान्द्विजान् ॥४७
सम्यगुक्तं द्विजाग्र्येण शुक्रेणोशनसा स्वयम् । पलायनपरं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं सुरार्दितम् ॥४८
न गन्तव्यं निवर्तध्वं कस्माद्व्रजत कातराः । उत्सृज्य शौर्ययशसी क्व गता न मरिष्यथ ॥४९
नश्यतो युध्यतो वापि तावद्भवति जीवितम् । यावद्धातासृजत्पूर्वं न यावन्मनसेप्सितम् ॥५०
एके म्रियन्ते स्वगृहे पलायन्तोऽपरे जनाः । भुञ्जन्तोऽन्नं तथैवापः पिबन्तो निधनं गताः ॥५१
विलासिनस्तथैवान्ये कामयाना निरामयाः । अविक्षताङ्गा शस्त्रैश्च प्रेतराजवशंगताः ॥५२
अन्ये तपस्यभिरता नीताः प्रेतनृपानुगैः । योगाभ्यासे रताश्चान्ये नैव प्रापुरमृत्युताम् ॥५३
शम्बराय पुरा क्षिप्तं वज्रं कुलिशपाणिना । हृदयेऽभिहतस्तेन तथापि न मृतोऽसुरः ॥५४

नरपतिश्रेष्ठ भगदत्त के उस युद्ध में मारे जाने पर भी कौरव और पाण्डवों की सेना का बहुत दिनों तक युद्ध हुआ ।४२। अनन्तर युद्ध समाप्त होने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर धर्मविषयक नाना प्रकार के उपदेश ग्रहण करने को शान्तनुपुत्र महात्मा भीष्म के निकट गये ।४३। इसके पीछे जहाँ घंटे से ढके हुए पक्षी के बच्चे विद्यमान थे, अकस्मात् संयमचित्त ब्राह्मणश्रेष्ठ शमीकमुनि उस स्थान में आये ।४४। और घंटे के भीतर पक्षी के बच्चों का "चिची कुची" शब्द उन्होंने सुना । यद्यपि बालकों को अत्यन्त ज्ञान हो गया था, किन्तु तो भी वह बाल्यकालवशतः अस्फुट अर्थात् जो समझ में न आवें, ऐसे शब्द उच्चारण करते थे ।४५। अनन्तर शिष्यों के सहित ऋषिश्रेष्ठ ने अकस्मात् पक्षिशावकों का शब्द सुनकर आश्चर्ययुक्त चित्त से घंटा उठाया और माता-पिता तथा पंखहीन पक्षी के बच्चों को देखा ।४६। मुनिश्रेष्ठ भगवान् शमीक मुनि ने भूतल में यथावत् स्थित पक्षी के बच्चों को देखकर अनुगत ब्राह्मणों से आश्चर्ययुक्त होकर कहा ।४७। हे ब्राह्मणो ! पूर्वकाल में देवताओं से ताड़ित होकर जब दैत्यों की सेना इधर-उधर भागने लगी, उस समय द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्य जी ने उससे सत्य ही कहा था ।४८। "हे दैत्यगण ! तुम मत भागो ! निवृत्त होओ ! इस प्रकार कातर होकर किस लिये जाते हो ? शौर्य और यश त्यागकर कहाँ जाओगे ? तुम क्या कभी नहीं मरोगे ? ।४९। पूर्व में विधाता ने जब तुमको उत्पन्न किया है, तो जब तक उनकी इच्छा न हो, तब तक युद्ध करो, न भागो, किसी प्रकार तुम नहीं मरोगे।५०। देखो, कोई अपने घर रहने पर भी मरता है कोई भागकर भी मरता है कोई पान-भोजन करते-करते ही प्राण त्याग करता है।५१। और कोई कामगामी व सुस्थ शरीर से विद्यमान रहकर भी दिव्यविलास वासना, भोगता हुआ शस्त्रादि से अविद्ध होकर भी काल के कराल गाल में गिरता है ।५२। और कोई तपस्या में निरत तथा कोई योगाभ्यास करते यमालय में गया है, किन्तु अमर कोई भी नहीं हुआ ।५३। पहले वज्रपाणि इन्द्र ने शम्बर के प्रति वज्र चलाया और उस वज्र से उसकी छाती फट जाने पर भी उस असुर का प्राण नष्ट नहीं हुआ ।५४। किन्तु उसी इन्द्र ने फिर उसी वज्र से सब

तेनैव खलु वज्रेण तेनैवेन्द्रेण दानवाः । प्राप्ते काले हता दैत्यास्तत्क्षणान्निधनं गताः ॥५५
विदित्वैवं न संत्रासः कर्तव्यो विनिवर्तत । ततो निवृत्तास्ते दैत्यास्त्यक्त्वा मरणजं भयम् ॥५६
इति शुक्रवचः सत्यं कृतमेभिः खगोत्तमैः । ये युद्धेऽपि न सम्प्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ॥५७
काण्डानां पतनं विप्राः क्व घण्टापतनं समम् । क्व च मांसवसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया ॥५८
केऽप्येते सर्वथा विप्र नैते सामान्यपक्षिणः । दैवानुकूलता लोके महाभाग्यप्रदर्शिनी ॥५९
एवमुक्त्वा स तान्वीक्ष्य पुनर्वचनमब्रवीत् । निवर्ततताश्रमं यात गृहीत्वा पक्षिबालकान् ॥६०
मार्जाराखुभयं यत्र नैषामण्डजजन्मनाम् । श्येनतो नकुलाद्वापि स्थाप्यतां तत्र पक्षिणः ॥६१
द्विजाः किंवातियत्नेन मार्यन्ते कर्मभिः स्वकैः । रक्ष्यन्ते चाखिला जीवा यथैते पक्षिबालकाः ॥६२
तथापि यत्नः कर्तव्यो नरैः सर्वेषु कर्मसु । कुर्वन्पुरुषकारं तु वाच्यतां याति नो सताम् ॥६३

इति मुनिवरचोदितास्ततस्ते मुनितनयाः परिगृह्य पक्षिणस्तान् ।
तरुविटपसमाश्रितालिसंघं ययुरथ तापसरम्यमाश्रमं स्वम् ॥६४
स चापि वन्यं मनसाभिकामितं प्रगृह्य मूलं कुसुमं फलं कुशान् ।
चकार चक्रायुधरुद्रवेधसां सुरेन्द्रवैवस्वतजातवेदसाम् ॥६५

असुरों के प्रति आघात किया, किन्तु उनका समय हुआ था, इस कारण वह यमसदन के अतिथि हुए ।५५। अतएव तुम यह सब जानकर भी किस लिये ऐसे त्रसित होते हो ? निवृत्त होओ निवृत्त होओ" दैत्यगण यह सुनकर मरने का भय त्यागकर निवृत्त हुए थे ।५६। हे विप्रगण ! इन पक्षिशावकों ने भी शुक्राचार्य के यह सब वचन सत्य किये थे। देखो, इस अलौकिक युद्ध में भी इनका प्राण नहीं गया ।५७। क्या आश्चर्य है, देखो, कहाँ तो सब अण्डों का गिरना, कहाँ उसी समय घण्टे का गिरना, और कहाँ मांस वसा (चरबी) और रक्त से पृथ्वी का आच्छादन परस्पर अत्यन्त अन्तर होने पर भी एक ही काल में सबका संघटन हुआ ।५८। यह कौन हैं ? हे विप्रगण ! बोध होता है कि, यह सामान्य पक्षी नहीं हैं दैव के अनुकूल होने पर महाभाग्यता उपस्थित होती है ।५९। यह कहकर महर्षि शमीक ने उनको फिर देखकर कहा—हे द्विजगण ! तुम निवृत्त होओ और पक्षिशावकों को लेकर फिर आश्रम में जाओ ।६०। जहाँ बिल्ली, चूहा, नकुल वा बाज पक्षी का भय उपस्थित न हो, वहाँ इन पक्षियों को रखो अथवा ।६१। हे ब्राह्मणो ! अधिक यत्न की क्या आवश्यकता है, क्योंकि जीवमात्र ही अपने अपने कर्म से निहत और रक्षित होते हैं, ये पक्षी के बच्चे यहाँ किससे रक्षित हुए हैं ? ।६२। किन्तु तो भी सब कार्यों में ही मनुष्य को यत्न करना चाहिए, नहीं तो पुरुषार्थ न करने से साधुओं के निकट निन्दनीय होना पड़ता है ।६३। मुनिबालकों ने महर्षि के यह वचन सुन पक्षी के बच्चों को ग्रहण कर वृक्षों की शाखाओं में गूँजते हुए भौंरों से युक्त रमणीय अपने तप के आश्रम में प्रस्थान किया ।६४। महर्षि शमीक ने भी इच्छानुसार वन के फल, मूल, पुष्प और कुश ग्रहण करके ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र, यम और अग्नि की पूजा की ।६५। वरुण, बृहस्पति, कुबेर, वायु, धाता और

अपांपतेर्गोष्पतिवित्तरक्षिणोः समीरणस्यापि तथा द्विजोत्तमः ।
धातुर्विधातुस्त्वथ वैश्वदेविकाः श्रुतिप्रयुक्ता विविधास्तु सत्क्रियाः ॥६६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे चटकोत्पत्तिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२।

अथ तृतीयोऽध्यायः

(3)

विन्ध्यप्राप्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अहन्यहनि विप्रेन्द्र स तेषां मुनिसत्तमः । चकाराहारपयसा तथा गुप्त्या च पोषणम् ॥१
मासमात्रेण जग्मुस्ते भानोः स्यन्दनवर्त्मनि । कौतूहलविलोलाक्षैर्दृष्ट्वा मुनिकुमारकैः ॥२
दृष्ट्वा महीं सनगरां साम्भोनिधिसरिद्वराम् । रथचक्रप्रमाणां ते पुनराश्रममागताः ॥३
श्रमक्लान्तान्तरात्मानो महात्मानो वियोनिजाः । ज्ञानं च प्रकटीभूतं तत्र तेषां प्रभावतः ॥४
ऋषेः शिष्यानुकम्पार्थं वदतो धर्मनिश्चयम् । कृत्वा प्रदक्षिणं सर्वे चरणावभ्यवादयन् ॥५
ऊचुश्च मरणाद्घोरान्मोक्षिताः स्मस्त्वया मुने । आवासभक्ष्यपयसां त्वं नो दाता पिता गुरुः ॥६
गर्भस्थानां मृता माता पित्रा नैवापि पालिताः । त्वया नो जीवितं दत्तं शिशवो येन रक्षिताः ॥७
क्षितावक्षततेजास्त्वं क्रमीणामिव शुष्यताम् । गजघण्टा समुत्पाटच कृतवान्दुःखरेचनम् ॥८

विधाता की पूजा और वेदोक्त विधि के अनुसार उनके होमादि विविध कार्य संपादित किये ।६६

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में चटकोत्पत्तिवर्णन नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ।२।

अध्याय ३

विन्ध्यप्राप्ति का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे विप्रेन्द्र ! मुनिश्रेष्ठ शमीकऋषि प्रतिदिन आहारदान, जलदान, और रक्षाद्वारा उनका पोषण करने लगे ।१। पक्षियों के बच्चे मुनिके द्वारा इस प्रकार पालित होकर एक मास के भीतर ही आकाशमार्ग में जाने लगे और मुनिकुमार कौतूहलाक्रान्त हो उनको देखने लगे ।२। तिर्यक् योनि में उत्पन्न हुए महात्मा पक्षी नद, नदी, सागर और नगरादि द्वारा परिपूर्ण रथके पहिये के समान पृथ्वी को देख अत्यन्त थकजाने पर फिर आश्रम में लौट आये । मुनिके प्रभाव से क्रमशः उनको ज्ञान उत्पन्न हुआ ।३-४। एक समय महर्षि शमीक शिष्यों के ऊपर कृपा करके धर्मोपदेश कर रहे थे, उसी समय पक्षियों ने प्रदक्षिणा करके उनके चरणों में अभिवादन अर्थात् प्रणाम किया।५। और कहा—"हे मुने! आपने हमें घोर मृत्यु के कष्ट से छुड़ाया है, आप ही ने हमको वासस्थान आहार और जल दिया है इस कारण आप ही हमारे पिता और गुरु हैं । गर्भवास के समय ही हमारी माता मर गई, पिता ने भी हमारा पालन नहीं किया, आपने ही हमारी बाल्यावस्था से आजतक रक्षा की है। हे अक्षततेजा ! हम जिस समय पृथ्वी में पड़े हुए कृमिके समान सूखते थे, उस समय आपने ही हाथी का घंटा उठाकर हमारा दुःख दूर

कथं वर्द्धेयुरबलाः खस्थान्द्रक्ष्याम्यहं कदा । कदा भूमेर्द्रुमं प्राप्तान्द्रक्ष्ये वृक्षान्तरं गतान् ॥९
कदा मे सहजा कान्तिः पांसुना नाशमेष्यति । एषां पक्षानिलोत्थेन मत्समीपविचारिणाम् ॥१०
इति चिन्तयता तात भवता प्रतिपालिताः । ते साम्प्रतं प्रवृद्धाः स्मः प्रबुद्धाः करवाम किम् ॥११
इत्यृषिर्वचनं तेषां श्रुत्वा संस्कारवत्स्फुटम् । शिष्यैः परिवृतः सर्वैः सह पुत्रेण शृङ्गिणा ॥१२
कौतूहलपरो भूत्वा रोमाञ्चपटसंवृतः । उवाच तत्त्वतो ब्रूत प्रवृत्तेः करणं गिरः ॥१३
कस्य शापादियं प्राप्तां भवद्भिर्विक्रिया परा । रूपस्य वचसश्चैव तन्मे वक्तुमिहार्हथ ॥१४

पक्षिण ऊचुः

विपुलस्वानिति ख्यातः प्रागासीन्मुनिसत्तमः । तस्य पुत्रद्वयं जज्ञे सुकृषस्तुंबुरुस्तथा ॥१५
सुकृषस्य वयं पुत्राश्चत्वारः संयतात्मनः । तस्यर्षेर्विनयाचारभक्तिनम्राः सदैव हि ॥१६
तपश्चरणशक्तस्य शास्यमानेन्द्रियस्य च । यथाभिमतमस्माभिस्तदा तस्योपपादितम् ॥१७
समित्पुष्पादिकं सर्वं यच्चैवाभ्यवहारिकम् । एवं तत्राथ वसतां तस्यास्माकं च कानने ॥१८
आजगाम महावर्ष्मा भग्नपक्षो जरान्वितः । आताम्रनेत्रः स्रस्तात्मा पक्षी भूत्वा सुरेश्वरः ॥१९
सत्यशौचक्षमाचारमतीवोदारमानसम् । जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छापभवाय च ॥२०

किया था ।६-८। "यह दुर्बल पक्षियों के बच्चे किस प्रकार से बर्द्धित हों, कब आकाश में उड़ें पृथ्वी से वृक्ष के ऊपर जायँ और कब एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जायँगे" ।९। और "कब मेरे समीप विचरण करते-करते उड़ेंगे ? कब इनके पंख संचालन की वायु से उठी हुई रजद्वारा मेरी स्वाभाविक कान्ति विनष्ट होगी ?" ।१०। हे तात ?! इस प्रकार विचार कर आपने हमारा पालन किया है, अब हम बड़े हुए हैं और आपकी कृपा से ज्ञान पाया है, इस समय हम क्या करें ? सो आज्ञा कीजिये ।११। शिष्यों से युक्त महर्षि शमीक उनका यह संस्कारयुक्त प्रस्फुट वचन सुनकर अपने पुत्र शृंगी के सहित अत्यन्त अचम्भे में पड़ गये ।१२। और अत्यन्त कौतूहल के कारण पुलकित देह से पक्षियों से कहने लगे ।१३। कि, सत्य कहो, तुमने ऐसे स्पष्टवचन किस प्रकार उच्चारण किये और किसके शाप से तुम्हारे वाक्य और रूपकी ऐसी विकृत स्थिति हुई है ? ।१४

पक्षियों ने कहा—हे मुनिसत्तम ! पूर्वकाल में विपुलस्वान् नामक एक मुनि थे, सुकृष और तुम्बुरु नामक उनके दो पुत्र हुए ।१५। हम सब उन महात्मा जितेन्द्रिय सुकृष के पुत्र हैं । विनय, आचार, भक्ति और नम्रता-अवलम्बन करके हम सदा ही उनके निकट रहते थे ।१६। वह जब संयतचित्त से तपस्या करते तब हम उनकी अभिलाषानुसार वस्तु ला देते ।१७। समिध, पुष्प और संपूर्ण भोजनकी सामग्री लाते वह इस प्रकार हमारे संग वन में वास करते थे । सुरेश्वर इन्द्र एक दिन बड़ा देह वृद्ध पक्षीका रूप धारण कर हमारे निकट आये, उनके पंख सब टूटे हुए, नेत्र ताम्रवर्ण और आत्मा शिथिल हो रहा था ।१८-१९। वह सत्य, शौच, क्षमा और आचारसंपन्न उदारचित्त मुनि से कोई विषय पूछने लगे और जाना जाता है कि, हमारे प्रति पितृशाप होने के कारण ही आये थे ।२०

पक्ष्युवाच

द्विजेन्द्र मां क्षुधाविष्टं परित्रातुमिहार्हसि । भक्षणार्थी महाभाग गतिर्भव ममातुला ।।२१
विन्ध्यस्य शिखरे तिष्ठन्पत्रिपत्रेरितेन वै । पतितोऽस्मि महाभाग श्वसनेनातिरंहसा ।।२२
सोऽहं मोहसमाविष्टो भूमौ सप्ताहमस्मृतिः । स्थितस्तत्राष्टमेनाह्ना चेतनां प्राप्तवानहम् ।।२३
प्राप्तचेताः क्षुधाविष्टो भवन्तं शरणं गतः । भक्ष्यार्थी विगतानन्दो दूयमानेन चेतसा ।।२४
तत्कुरुष्वामलमते मत्त्राणायाचलां मतिम् । प्रयच्छ भक्ष्यं विप्रर्षे प्राणयात्राक्षमं मम ।।२५
य एवमुक्तः प्रोवाच तमिन्द्रं पक्षिरूपिणम् । प्राणसन्धारणार्थाय दास्ये भक्ष्यं तवेप्सितम् ।।२६
इत्युक्त्वापुनरप्येनमपृच्छत्स द्विजोत्तमः । आहारः कस्तवार्थाय उपकल्प्यो भवेन्मया ।।
स चाह नरमांसेन तृप्तिर्भवति मे परा ।।२७

ऋषिरुवाच

कौमारं ते व्यतिक्रान्तमतीतं यौवनं च ते । वयसः परिणामस्ते वर्तते नूनमण्डज ।।२८
यस्मिन्नराणां सर्वेषामशेषेच्छा निवर्त्तते । स कस्माद्वृद्धभावेऽपि सुनृशंसात्मको भवान् ।।२९
क्व मानुषस्य पिशितं क्व वयश्चरमं तव । सर्वथा दुष्टभावानां प्रमथो नोपपद्यते ।।३०
अथवा किं मयैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम् । प्रतिश्रुत्य सदा देयमिति नो भावितं मनः ।।३१
इत्युक्त्वा तं स विप्रेन्द्रस्तथेति कृतनिश्चयः । शीघ्रमस्मान्समाहूय गुणतोऽनुप्रशस्य च ।।३२

पक्षी बोले—हे द्विजेन्द्र ! मैं भूख से अत्यन्त आतुर हुआ हूँ, मेरी रक्षा करो ! हे महाभाग ! मैं नितान्त भक्षणार्थी हूँ आपही मेरी गतिस्वरूप हैं ।२१। हे महाभाग ! मैं विन्ध्यपर्वत के शिखरचूड़ा में वास करता हूँ अकस्मात् पक्षिराज गरुड के पंखों की उठी वायुद्वारा इस स्थान में गिरते ही मूर्च्छित हो गया ।२२। इस अवस्था में एक सप्ताह-काल बीतने पर आठवें दिन मुझको चैतन्यता प्राप्त हुई । कुछ देर के बाद सुस्थ हुआ और क्षुधा से आतुर होकर आपकी शरण में आया, हे महाभाग ! मेरा हृदय भूँख से अत्यन्त कातर होकर मुझको निरानन्द कर रहा है ।२३-२४। हे विप्रर्षे ! मेरी रक्षा करने की चेष्टा कीजिये और जिससे मेरी क्षुधा नष्ट हो, ऐसा आहार दीजिये ।२५। उन महर्षि ने पक्षी से इस प्रकार सुनकर पक्षिरूपी इन्द्र से कहा—हे खग ! प्राणधारण के उपयोगी तुमको किस आहार की अभिलाषा है ? तुम्हारे आहार के उपयुक्त किस द्रव्य को लाऊँ ।२६। हे द्विजोत्तम ! यह कहकर फिर मुनिने कहा कि, बोलो क्या भोजन करोगे ? मैं तुम्हारे निमित्त किस आहार को लाऊँ ? तब उसने उत्तर दिया कि, मनुष्य का मांस खाने से मेरी परम तृप्ति होगी ।२७

ऋषि बोले—हे अण्डज ! तुम्हारी कौमार अवस्था बीतकर यौवन अवस्था हुई, वह भी अब बीतकर वृद्धावस्था आई है ।२८। जिसमें मनुष्य की भी समस्त वासना शेष होतीहै, किन्तु तो भी तुम वृद्ध होकर इतने नृशंसात्मक क्यों हो ।२९। देखो नरमांसभक्षण और वृद्धावस्था इन दोनों में बड़ा अन्तर है, तथापि दुष्ट पुरुषों की दुराशा निवृत्त नहीं होती ।३०। अथवा मुझको ही इन सब बातों की आलोचना करने की क्या आवश्यकता है ? "अंगीकार किया हुआ विषय अवश्य देना चाहिये" यही मन में विचार करना उचित है ।३१। हे द्विजेन्द्र ! उस पक्षी से यह कहकर कृतनिश्चय मुनिने शीघ्र हमको बुलाया

उवाच क्षुब्धहृदयो मुनिर्वाक्यं सुनिष्ठुरम् । विनयावनतान्सर्वान्भक्तियुक्तान्कृताञ्जलीन् ॥३३
कृतात्मानो द्विजश्रेष्ठ ऋणैर्युक्ता मया सह । जातं श्रेष्ठमपत्यं वो यूयं मम यथा द्विजाः ॥३४
गुरुः पूज्यो यदि मतो भवतां परमः पिता । ततः कुरुत मे वाक्यं निर्व्यलीकेन चेतसा ॥३५
तद्वाक्यसमकालं च प्रोक्तमस्माभिरादृतैः । यद्वक्ष्यति भवांस्तद्वै कृतमेवावधार्यताम् ॥३६

ऋषिरुवाच

मामेष शरणं प्राप्तो विहंगः क्षुत्तृषान्वितः । युष्मन्मांसेन येनास्य क्षणं तृप्तिर्भवेत वै ॥३७
तृष्णाक्षयश्च रक्तेन तथा शीघ्रं विधीयताम् । ततो वयं प्रव्यथिताः प्रकम्पोद्भूतसाध्वसाः ॥
कष्टं कष्टमिति प्रोच्य नैतत्कर्मेति चाब्रुवन् ॥३८
कथं परशरीरस्य हेतोर्देहं स्वकं बुधः । विनाशयेद्घातयेद्वा यथा ह्यात्मा तथा सुतः ॥३९
पितृदेवमनुष्याणां यान्युक्तानि ऋणानि वै । तान्यपाकुरुते पुत्रो न शरीरप्रदः सुतः ॥४०
तस्मान्नैतत्करिष्यामो नो चीर्णं यत्पुरातनैः । जीवन्भद्राण्यवाप्नोति जीवन्पुण्यं करोति च ॥४१
मृतस्य देहनाशश्च धर्माद्युपरतिस्तथा । आत्मानं सर्वतो रक्ष्यमाहुर्धर्मविदो जनाः ॥४२
इत्थं श्रुत्वा वचोऽस्माकं मुनिः क्रोधादिव ज्वलन् । प्रोवाच पुनरप्यस्मान्निर्दहन्निव लोचनैः ॥४३
प्रतिज्ञातं वचो मह्यं यस्मान्नैतत्करिष्यथ । तस्मान्मच्छापनिर्दग्धास्तिर्यग्योनौ प्रयास्यथ ॥४४

और गुण से प्रशंसा कर ।३२। हमारे विनयनम्र और भक्तियुक्त हो हाथ जोड़कर खड़े होने पर पिता ने क्षुब्ध चित्त से अति निष्ठुर यह वचन कहे ।३३। तुम सभी विद्वान् ब्राह्मण श्रेष्ठ और सन्तानोत्पादनद्वारा मेरे समान ऋण से मुक्त हुए हो, तुम जिस प्रकार मेरी सन्तान हो ऐसे ही तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए हैं ।३४। मैं तुम्हारा पिता हूँ तुम यदि मुझको गुरु और पूज्य विचारते हो तो अकपटचित्त से मेरे वचन का प्रतिपालन करो ।३५। तब हमने भी सादर कहा हे पिता ! आप जो आज्ञा करेंगे उनको हमारे द्वारा संपादित हुआ ही समझिये ।३६।

ऋषि बोले—हे बालको ! यह पक्षी भूख-प्यास से युक्त होकर मेरी शरण में आया है इस समय तुम्हारा मांस भोजन करने से क्षण काल के लिये इसकी तृप्ति ।३७। और रक्त के पीने से प्यास से निवृत्त होगी, इस कारण तुम शीघ्र यही करो तब हमने अत्यन्त व्यथितहृदय और भय से काँपते-काँपते कहा—यह अतीव कष्टदायक कार्य हमसे नहीं हो सकेगा ।३८। कौन पण्डितजन होकर पराया देह पुष्ट करने के लिये अपना जीवन नष्ट वा निहत करेगा ? क्योंकि आत्मा का सन्तान के समान रक्षा का यत्न करना चाहिये ।३९। पितृऋण और मनुष्यऋण जो शास्त्र में कहा गया है, संतान उसको ही छुड़ाती है परन्तु पुत्र देह नहीं दे सकता ।४०। इसलिये हमसे यह कार्य नहीं हो सकेगा, क्योंकि पहले भी किसी ने ऐसा आचरण नहीं किया है, जीवन होने से ही श्रेयः प्राप्ति होती है और पुण्यादि का आचरण कर सकता है।४१। मृत पुरुष के देह का विनाश होता है और धर्माचारादि नष्ट होते हैं, इसी कारण धर्म के जाननेवाले पण्डितों ने कहा है, कि आत्मा की सब प्रकार से सदा रक्षा करें।४२। मुनिवर हमारे यह वचन सुनते ही क्रोध से जलने लगे और क्रोध से लाल नेत्र कर मानो हमको दग्ध करने के लिये फिर बोले।४३। रे दुर्वृत्तगण ! मैंने इसके निकट प्रतिज्ञा की है और तुमने मेरा वचन प्रतिपालन नहीं किया, इस कारण मेरे

एवमुक्त्वा तदा सोस्मांस्तं विहंगममब्रवीत् । अन्त्येष्टिमात्मनः कृत्वा शास्त्रतश्चौर्ध्वदैहिकम् ।।४५
भक्षयस्व सुविश्रब्धो मामत्र द्विजसत्तम । आहारीकृतमेतत्ते मया देहमिहात्मनः ।।४६
एतावदेव विप्रस्य ब्राह्मणत्वं प्रचक्ष्यते । यावत्पतगजात्यग्र्य स्वसत्यपरिपालनम् ।।४७
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत्पुण्यं प्राप्यते महत् । कर्मणान्येन वा विप्रैर्यत्सत्यपरिपालनात् ।।४८
इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा सोऽन्तर्विस्मयनिर्भरः । प्रत्युवाच मुनिं शक्रः पक्षिरूपधरस्तदा ।।४९
योगमास्थाय विप्रेन्द्र त्यज्येदं स्वं कलेवरम् । जीवज्जन्तुं हि विप्रेन्द्र न भक्षामि कदाचन ।।५०
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा योगयुक्तोऽभवन्मुनिः । तं तस्य निश्चयं ज्ञात्वा शक्रोऽप्याह स्वदेहभृत् ।।५१
भोभो विप्रेन्द्र बुध्वस्व बुद्धया बोध्यं बुधात्मक । जिज्ञासार्थं मयाऽयं ते अपराधः कृतोऽनघ ।।५२
तत्क्षमस्वामलमते का चेच्छा क्रियतां तव । पालनात्सत्यवाक्यस्य प्रीतिर्मे परमा त्वयि ।।५३
अद्यप्रभृति ते ज्ञानमैन्द्रं प्रादुर्भविष्यति । तपस्यथ तथा धर्मे न ते विघ्नो भविष्यति ।।५४
इत्युक्त्वा तु गते शक्रे पिता कोपसमन्वितः । प्रणम्य शिरसास्माभिरिदमुक्तो महामुनिः ।।५५
बिभ्यतां मरणात्तात त्वमस्माकं महामते । क्षन्तुमर्हसि दीनानां जीवितप्रियता हि नः ।।५६
त्वगस्थिमांससंघाते पूयशोणितपूरिते । कर्तव्या न रतिर्यत्र तत्रास्माकमियं रतिः ।।५७
श्रूयतां च महाभाग यथा लोको विमुह्यति । कामक्रोधादिभिर्दोषैरवशः प्रबलारिभिः ।।५८

शाप से दग्ध होकर तिर्यग्योनिमें जाओगे ।४४। हे द्विजसत्तम ! उन्होंने हमसे यह कहकर शास्त्रानुसार अपनी अंत्येष्टि क्रिया सम्पादन करके उस पक्षी से कहा ।४५। हे खग ! तुम विश्वस्त चित्त से मुझको भक्षण करो मैंने अपने देह को तुम्हारा आहार किया ।४६। हे पतंगश्रेष्ठ ! ब्राह्मण जब तक अपना सत्य प्रतिपालन करता है, तब तक ही उसको ब्राह्मण कहा जाता है ।४७। सत्य प्रतिपालन में जिस प्रकार पुण्य संचय होता है, दक्षिणायुक्त यज्ञानुष्ठान से वा अन्य किसी कर्मद्वारा वैसा पुण्य प्राप्त नहीं होता ।४८। उन पक्षिरूप इन्द्र ने ऋषिश्रेष्ठ के यह वचन सुन, मनमें अत्यन्त विस्मित हो उनसे कहा ।४९। हे विप्रेन्द्र ! पहले योगावलम्बन करके अपना कलेवर त्याग कीजिये फिर आपका मांस भक्षण करूँगा, क्योंकि मैंने जीवित प्राणी का कभी भोजन नहीं किया ।५०। पक्षी का यह वचन सुनकर मुनिराज ने योगावलम्बन किया तब इन्द्र ने भी उनका यह संकल्प निश्चय जान अपना देह धारण करके कहा ।५१। हे पण्डिताग्रगण्य विप्रर्षे ! जानने योग्य विषय को बुद्धिपूर्वक बोध कीजिये । हे अनघ ! मैंने आपको भली भाँति जानने के लिये ही आपके निकट यह अपराध किया है ।५२। हे निर्मलचित ! मुझको क्षमा करो, आपकी क्या अभिलाषा है ? आज्ञा करो, सत्यवाक्य प्रतिपालन करने के कारण आपके प्रति मेरी अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई है ।५३। अबसे आपको ऐन्द्रज्ञान उत्पन्न होगा और तपस्याचरण में कभी विघ्न नहीं होगा ।५४। देवराज इन्द्र के इस प्रकार कहकर चले जाने पर हमने पिता के चरणों में प्रणाम करके क्रोधयुक्त महामुनि से कहा ।५५। हे पिता ! हे महामते ! हमने मरने के भय से अत्यन्त भीत और जीवनप्रियताके वशीभूत होकर ऐसा कहा है । अत एव हमको क्षमा कीजिये ।५६। यह देह त्वक्, अस्थि और मांस पीव चर्बी और शोणित से परिपूर्ण है, इसमें कुछ भी अनुराग नहीं करना चाहिये किन्तु हे तात ! उसी देह में हमारा अनुराग बढ़ा है।५७। हे महाभाग ! सुना है कि, प्रबलशत्रुस्वरूप काम क्रोधादि

प्रज्ञाप्राकारसंयुक्तमस्थिस्थूणं परं महत् । चर्मभित्तिमहारोधं मांसशोणितलेपनम् ॥५९
नवद्वारं महायासं सर्वतः स्नायुवेष्टितम् । नृपश्च पुरुषस्तत्र चेतनावानवस्थितः ॥६०
मंत्रिणौ तस्य बुद्धिश्च मनश्चैव विरोधिनौ । यतेते वैरनाशाय तावुभावितरेतरम् ॥६१
नृपस्य तस्य चत्वारो नाशमिच्छन्ति विद्विषः । कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहश्चान्यस्तथा रिपुः ॥६२
यदा तु स नृपस्तानि द्वाराण्यावृत्य तिष्ठति । सदा सुस्थबलश्चैव निरातङ्कश्च जायते ॥६३
जातानुरागो भवति शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥६४
यदा तु सर्वद्वाराणि विवृतानि न मुञ्चति । रागो नाम तदा शत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति ॥६५
सर्वव्यापी महायामः पञ्चद्वारप्रवेशनः । तस्यानुमार्गं विशति तद्वै घोरं रिपुत्रयम् ॥६६
प्रविश्याथ स वै तत्र द्वारैरिन्द्रियसंज्ञकैः । रागः संश्लेषमायाति मनसा च सहेतरैः ॥६७
इन्द्रियाणि मनश्चैव वशे कृत्वा दुरासदः । द्वाराणि च वशे कृत्वा प्राकारं नाशयत्यथ ॥६८
मनस्तस्याश्रितं दृष्ट्वा बुद्धिर्नश्यति तत्क्षणात् । अमात्यरहितस्तत्र पौरवर्गोज्झितस्तथा ॥६९
रिपुभिर्लब्धविवरः स नृपो नाशमृच्छति । एवं रागस्तथा मोहो लोभः क्रोधस्तथैव च ॥७०
प्रवर्तन्ते दुरात्मानो मनुष्यस्मृतिनाशकाः । रागात्क्रोधः प्रभवति क्रोधाल्लोभोऽभिजायते ॥७१
लोभाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥७२
एवं प्रणष्टबुद्धीनां रागलोभानुवर्त्तिनाम् । जीविते च सलोभानां प्रसादं कुरुसत्तम ॥७३

दोषद्वारा ही सब लोक मोहित होते हैं ।५८। हे पिता ! प्रज्ञारूपी दीवारों से वेष्टित यह देहरूप नगरी वर्त्तमान रहती है, अस्थि जिसका स्तम्भ है, जो चर्मरूपी भीत के द्वारा अत्यन्त रुद्ध, और मांसशोणितरूप कीचड़ से लिपी ।५९। नसें उसको चारों ओर से घेरे हुए हैं और जिसके बहुत बड़े नौ दरवाज़े हैं, उस पुरी में चैतन्यरूपी पुरुष राज्य करता है ।६०। राजा के दो मंत्री हैं, मन और बुद्धि । वह भी परस्पर विरोधी हैं, इसलिये परस्पर परस्पर को विनाश करने के लिये सदा यत्नवान् हैं ।६१। काम, क्रोध, लोभ और मोह नामक राजा के चार शत्रु हैं, वह सदा राजा के विनाश करने की चेष्टा करते हैं ।६२। वह राजा जिस समय पूर्वोक्त नवद्वार रुद्ध करके अवस्थान करता है, उसी समय वह अत्यन्त सुस्थ निरातंक होता है ।६३। और प्रेमवान् होता है, इस कारण उस समय उसको शत्रु अभिभूत नहीं कर सकते ।६४। वह जब सब द्वार खोलकर अवस्थान करता है, उसी समय में अनुराग नामक शत्रु नेत्रादि सब द्वारों पर आक्रमण करता है ।६५। यह शत्रु सर्व व्यापी और अत्यन्त प्रबल है । यह अनुरागरूपी शत्रु जब नेत्रादि द्वार में घुसता है, उसी समय लोभ मोह और क्रोधरूपी तीनों शत्रु उसके पीछे-पीछे दौड़ते हैं ।६६। वह रागरूपी शत्रु इन्द्रिय नामक सब दरवाजों के द्वारा पुरी में घुसकर मन और बुद्धि के संग युक्त होने की अभिलाषा करता है। यह दुर्द्धर्ष अनुराग इन्द्रियगण मन और सब द्वारों को वशीभूत करके प्रज्ञारूपी प्राकार (बुद्धिरूप परकोटा) को भग्न करता है ।६७-६८। बुद्धि भी मन को उसका आश्रय ग्रहण करता देखकर तत्काल नष्ट होती है, अतएव अमात्यहीन और प्रजावर्गसे त्यागा हुआ ।६९। वह राजा शत्रुओं से आक्रान्त छिद्र होकर नष्ट होता है । काम, क्रोध, लोभ और मोहरूप ।७०। दुरात्मागण पुरी में वास करते हैं, इसीलिये मनुष्य स्मरणशक्ति-विहीन होता है, अनुराग से क्रोध होता है, क्रोध से लोभ उत्पन्न होता है ।७१। लोभ से मोह की उत्पत्ति और मोह से स्मृति का नाश होता है, स्मृतिनाश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से ही मृत्यु होती है ।७२। हे तात ! राग और लोभ के वशीभूत होने से हमारी भी बुद्धि मरी हुई है, इसी कारण जीवन के प्रति इतना लोभ है, अत

योऽयं शापो भगवता दत्तः स न भवेत्तथा । न तामसीं गतिं कष्टां व्रजे स मुनिसत्तम ॥७४

ऋषिरुवाच

यन्मयोक्तं न तन्मिथ्या भविष्यति कदाचन । न मे वागनृतं प्राह यावदद्येति पुत्रकाः ॥७५
दैवमात्रं परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम् । अकार्यं कारितो येन बलादहमचिन्तितम् ॥७६
यस्माच्च युष्माभिरहं प्रणिपत्य प्रसादितः । तस्मात्तिर्यक्त्वमापन्नाः परं ज्ञानमवाप्स्यथ ॥७७
ज्ञानदर्शितमार्गाश्च निर्धूतक्लेशकल्मषाः । मत्प्रसादादसन्दिग्धाः परां सिद्धिमवाप्स्यथ ॥७८
एवं शप्ताः स्म भगवन्पित्रा दैववशात्पुरा । ततः कालेन महता योन्यन्तरमुपागताः ॥७९
जाताश्च रणमध्ये वै भवता परिपालिताः । वयमित्थं द्विजश्रेष्ठ खगत्वं समुपागताः ॥८०
नास्त्यसाविह संसारे यो न दिष्टेन बाध्यते । सर्वेषामेव जन्तूनां दैवाधीनं हि चेष्टितम् ॥८१

मार्कण्डेय उवाच

इतिं तेषां वचः श्रुत्वा शमीको भगवान्मुनिः । प्रत्युवाच महाभागः समीपस्थायिनो द्विजान् ॥८२
पूर्वमेव मया प्रोक्तं भवतां सन्निधाविदम् । सामान्यपक्षिणो नैते केऽप्येते द्विजसत्तमाः ॥
ये युद्धेऽपि न सम्प्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ॥८३
ततः प्रीतिमता तेन तेऽनुज्ञाता महात्मना । जग्मुः शिखरिणां श्रेष्ठं विन्ध्यं द्रुमलतायुतम् ॥८४

एव हे सत्तम ! प्रसन्न हों ।७३। आपने जो शाप दिया है यह शाप जिससे फलित न हो, हमारे ऊपर प्रसन्न होकर वही कीजिये, हे मुनिसत्तम ! तो यह कष्टदायक तामसी गति हमको प्राप्त नहीं होगी।७४

ऋषि बोले—"हे बालको ! मैंने जो कहा है, वह कभी मिथ्या नहीं होगा, अब तक कभी मेरे मुख से मिथ्या वचन नहीं निकला है ।७५। वृथा पौरुष को धिक्कार है, मैं विचार करता हूँ दैव ही इस विषय में बली है, दैव ने ही मुझको इस प्रकार के अचिन्तित अकार्य करने में प्रवृत्त किया है । तुमने प्रणाम करके मुझको प्रसन्न किया है, इस कारण तिर्यग् योनि में जन्म लेकर भी परम ज्ञानवान् होंगे ।७६-७७। मेरे प्रसाद से तुम ज्ञान द्वारा सतमार्ग अवलोकनपूर्वक पापों को नष्ट करके असंदिग्ध चित्त से प्रधानसिद्धि लाभ कर सकोगे ।" ।७८। हे भगवन् ! पूर्वकाल में दैव के वशीभूत होकर हमारे पिता ने इस प्रकार शाप दिया था फिर कुछ काल बीतने पर यह पक्षियोनि धारण की ।७९। हे द्विजवर ! युद्धस्थल में हमारा जन्म हुआ, आपने लाकर प्रतिपालन किया, अब हम आकाशमार्ग में जाने को समर्थ हो गये हैं ।८०। हे मुनिशार्दूल ! इस संसार में ऐसा कोई नहीं है, जो प्रारब्ध के वश में होकर न रहता हो सब प्राणियों की यावतीय चेष्टाएँ दैवाधीन हैं ।८१

मार्कण्डेय जी बोले—पक्षियों के इस प्रकार वचन सुनकर ऐश्वर्यादिषड्गुणसंपन्न मुनिश्रेष्ठ महाभाग भगवान् शमीक ने समीपवर्ति ब्राह्मणों से कहा।८२। हे विप्रगण ! मैंने पहले तुमसे यही कहा था कि, यह सामान्य पक्षी अलौकिक समर में भी जब कालकवल में कवलित नहीं हुए, तब निःसन्देह यह समान्य पक्षी नहीं हैं। बोध होता है, कोई ब्राह्मणकुमार हैं।८३। अनन्तर वह पक्षी प्रसन्न हुए महात्मा शमीक मुनि की आज्ञानुसार वृक्ष लतादिसे परिपूर्ण विन्ध्य पर्वत में चले गये।८४। वे धर्मपक्षी तब तक उस पर्वत में

यावदद्य स्थितास्तस्मिन्नचले धर्मपक्षिणः । तपःस्वाध्यायनिरताः समाधौ कृतनिश्चयाः ॥८५

इति मुनिवरलब्धसत्क्रियास्ते मुनितनया विहगत्वमभ्युपेताः ।
गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोये यतमनसो निवसन्ति विन्ध्यपृष्ठे ॥८६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे विन्ध्यप्राप्तिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(४)

चतुर्व्यूहावतारवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं ते द्रोणतनयाः पक्षिणो ज्ञानिनोऽभवन् । वसन्ति ह्यचले विन्ध्ये तानुपास्व च पृच्छ च ॥१
इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य जैमिनिः । जगाम विन्ध्यशिखरं यत्र ते धर्मपक्षिणः ॥२
तन्नागासन्नभूतश्च शुश्राव पठतां ध्वनिम् । श्रुत्वा च विस्मयाविष्टश्चिन्तयामास जैमिनिः ॥३
स्थानसौष्ठवसम्पन्नं जितश्वासमविश्रमम् । विस्पष्टमपदोषं च पठ्यते द्विजसत्तमैः ॥४
वियोनिमपि सम्प्राप्तानेतान्मुनिकुमारकान् । चित्रमेतदहं मन्ये न जहाति सरस्वती ॥५
बन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्चेष्टमपरं गृहे । त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्वं न जहाति सरस्वती ॥६
इति संचिन्तयन्नेव विवेश गिरिकन्दरम् । प्रविश्य च ददर्शासौ शिलापट्टगतान्द्विजान् ॥७

निवास करते रहे तथा तप और वेदपाठ में निरत होकर समाधि में ही अपना निश्चय दृढ किया ।८५। शमीक जी की यह आज्ञा पाकर, वह पक्षीरूप मुनिकुमार उनसे समस्त क्रिया का उपदेश ले, उस पर्वत के शिखर पर जहाँ अतिपवित्र निर्मल जल है, आनन्द पूर्वक वास करने लगे ।८६

श्रीमार्कण्डेयपुराण में विन्ध्यप्राप्ति-वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त ।३।

अध्याय ४

चतुर्व्यूहावतार विधि का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे जैमिनि ! वह ज्ञानवान् सब पक्षी इस प्रकार द्रोण के पुत्र हुए थे । वह विन्ध्यपर्वत मे वास करते हैं, तुम उनकी उपासना करके सब पूछो ।१। महर्षि जैमिनि मार्कण्डेयमुनि के यह वचन सुनकर जहाँ वह धर्मपक्षी वास करते थे उसी विन्ध्यपर्वत में गये ।२। जब वह पर्वत के निकट पहुँचे तो पक्षियों के वेदपाठ का शब्द उनके कान में सुनाई पड़ा, उस समय वह अत्यन्त अचंभे में होकर चिन्ता करने लगे ।३। "क्या आश्चर्य है ? ब्राह्मणगण पक्षिरूप अवलम्बन करके भी स्थान की श्रेष्ठता से श्वास जीतकर स्पष्टता और निर्दोषतासहित अविश्राम वेदपाठ करते हैं ।४। इन बालकों के तिर्यग्योनि में गिरने पर भी जो सरस्वती ने इनको नहीं त्यागा यह और भी अचंभे की बात है।५। इससे जाना जाता है कि, बंधुवर्ग, मित्र वा घर की समस्त अभीष्ट वस्तु सभी छोड़कर चली जाती हैं, किन्तु मात्र सरस्वती कभी नहीं छोड़ती।६। मुनिश्रेष्ठ जैमिनिने इस प्रकार चिन्ता करते-करते पर्वत की कन्दरा में प्रवेश किया

पठतस्तान्समालोक्य मुखदोषविवर्जितान् । सोऽथ शोकेन हर्षेण सर्वानिवाभ्यभाषत ॥८
स्वस्त्यस्तु वो द्विजश्रेष्ठा जैमिनिं मां निबोधत । व्यासशिष्यमनुप्राप्तं भवतां दर्शनोत्सुकम् ॥९
मन्युर्न खलु कर्तव्यो यत्पित्रातीव मन्युना । शप्ताः खगत्वमापन्नाः सर्वथादिष्टमेव तत् ॥१०
स्फीतद्रव्ये कुले केचिज्जातः किल मनस्विनः । द्रव्यनाशे द्विजेन्द्रास्ते शबरेण सुसान्त्विताः ॥११
दत्त्वा याचन्ति पुरुषा हत्वा वध्यन्ति चापरे । पातयित्वा च पास्यन्ते त एव तपसः क्षयात् ॥१२
एतद्दृष्टं सुबहुशो विपरीतं तथा मया । भावाभावसमुच्छेदैरजस्रं व्याकुलं जगत् ॥१३
इति संचिन्त्य मनसा न शोकं कर्तुमर्हथ । ज्ञानस्य फलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता ॥१४
ततस्ते जैमिनिं सर्वे पाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन् । अनामयं च पप्रच्छुः प्रणिपत्य महामुनिम् ॥१५
अथोचुः खगमाः सर्वे व्यासशिष्यं तपोनिधिम् । सुखोपविष्टं विश्रान्तं पक्षानिलहतक्लमम् ॥१६

पक्षिण ऊचुः

अद्य नः सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् । यत्पश्यामः सुरैर्वन्द्यं तव पादाम्बुजद्वयम् ॥१७
पितृकोपाग्निरुद्भूतो यो नो देहेषु वर्त्तते । सोऽद्य शान्तिं गतो विप्र युष्मद्दर्शनवारिणा ॥१८
कच्चित्ते कुशलं ब्रह्मन्नाश्रमे मृगपक्षिषु । वृक्षेष्वथ लतागुल्मत्वक्सारतृणजातिषु ॥१९
अथवा नैतदुक्तं हि सम्यगस्माभिरादृतैः । भवता संगमो येषां तेषामकुशलं कुतः ॥२०

और देखा कि, वह विप्रगण पत्थर की चट्टानपर विराजमान हैं ।७। सम्पूर्ण दोषों से रहित उन सब पक्षियों को वेदपाठ करता देखकर शोक और हर्ष के वशीभूत हो सबसे कहा ।८। हे द्विजगण ! तुम्हारा मंगल हो मैं व्यासशिष्य जैमिनि तुम्हारे दर्शन की लालसा से उत्कण्ठित होकर इस स्थान में आया हूँ ।९। अत्यन्त क्रुद्ध पिता के शाप से पक्षिरूप अवलम्बन करना पड़ा है, ऐसा जानकर शोक न करना, क्योंकि सब प्रारब्ध का ही फल है ।१०। देखो, धन मानादि विपुल विषयसंपन्न श्रेष्ठ वंश में किसी महात्मा का जन्म होता है और फिर उस द्रव्य के नष्ट होने पर वही भीलों के द्वारा सान्त्वना को प्राप्त होता है ।११। कोई दान करके भी भीख माँगता है, कोई वध करके निहत होता है, कोई दूसरे को निहत कराकर अन्य के द्वारा मरता है, तपस्या का क्षय होने से इसी प्रकार की घटना होती रहती है ।१२। मैंने अनके बार ऐसी घटना देखी है, इस प्रकार भावाभाव परम्परा द्वारा सब जगत् निरन्तर व्याकुल हुआ है ।१३। इस प्रकार मन में विचार कर तुम शोक न करना क्योंकि शोक वा हर्ष इत्यादि से अभिभूत न होना ही तपस्या का फल है ।१४। अनन्तर उन सब धर्मपक्षियों ने पाद्यार्घ्य इत्यादि से महामुनि की पूजा की और प्रणाम करके कुशल पूछी ।१५। फिर जब व्यासशिष्य तपोनिधि जैमिनि उनके पंखों की वायु से थकावट दूर करके सुखपूर्वक बैठे, तब वे पक्षी उनसे कहने लगे ।१६

पक्षी बोले—हे महाभाग ! अब हमारा जन्म सफल और जीवन सार्थक हुआ, क्योंकि आपके देवताओं से वंदित दोनों चरणकमलों का दर्शन किया ।१७। पितृदेव की कोपाग्नि अत्यन्त प्रबल होकर जो हमारे देह में वर्तमान रहती है हे विप्र ! वह अब आपके दर्शनरूपी जल से शान्त हो गई ।१८। हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे आश्रम के मृग पक्षिगण वृक्ष लता और त्वक् सार तृणादि पर्यन्त सबकी कुशल तो है ।१९। अथवा हमारा यह पूछना ही अनुचित है, क्योंकि जो आपके निकट वास करते हैं, उनको फिर अमंगल कहाँ ?

प्रसादं च कुरुष्वात्र ब्रूह्यागमनकारणम् । देवानामिव संसर्गो भवतोऽभ्युदयो महान् ॥
भवता सङ्गमो येषां तेषामकुशलं कुतः ॥२१

जैमिनिरुवाच

श्रूयतां द्विजशार्दूलाः कारणं येन कन्दरम् । विन्ध्यस्येहागतो रम्यं रेवावारिकणोक्षितम् ॥
सन्देहान्भारते शास्त्रे तान्प्रष्टुं गतवानहम् ॥२२
मार्कण्डेयं महात्मानं पूर्वं भृगुकुलोद्वहम् । तमहं पृष्टवान्प्राप्य सन्देहान्भारतं प्रति ॥२३
स च पृष्टो मया प्राह सन्ति विन्ध्ये महाचले । द्रोणपुत्रा महात्मानस्ते वक्ष्यन्त्यथविस्तरम् ॥२४
तद्वाक्यचोदितश्चेममागतोऽहं महागिरिम् । तच्छृणुध्वमशेषेण श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥२५

पक्षिण ऊचुः

विषये सति वक्ष्यामो निर्विशङ्कः शृणुष्व तत् । कथं तन्न वदिष्यामो यदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥२६
चतुर्ष्वपि हि वेदेषु धर्मशास्त्रेषु चैव हि । समस्तेषु तथाङ्गेषु यच्चान्यद्वेदसम्मितम् ॥२७
एतेषु गोचरोऽस्माकं बुद्धेर्ब्राह्मणसत्तम । प्रतिज्ञां तु समावोढुं तथापि नहि शक्नुमः ॥२८
तस्माद्वदस्व विश्रब्धं सन्दिग्धं यद्धि भारते । वक्ष्यामस्तव धर्मज्ञ न चेन्मोहो भविष्यति ॥२९

जैमिनिरुवाच

सन्दिग्धानीह वस्तूनि भारतं प्रति यानि मे । शृणुध्वममलास्तानि श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥३०

।२०। अब आप किस निमित्त आये हैं? अनुग्रहपूर्वक उसको प्रकाशित कीजिए। आपका आना और देवताओं का संसर्ग दोनों समान हैं। सुतराम् नहीं जाना जाता है कि, किस भाग्य के बल से आपका दर्शन हुआ।२१

जैमिनि बोले—हे द्विजशार्दूल ! मैं जिस कारण रेवा नदी के जलकणों से सिंचित हुआ, इस विंध्यपर्वत की मनोहर कन्दरा में आया हूँ, सो सुनो ! महाभारत शास्त्र में कई सन्देहों के होने से मैं पूँछने के लिये ।२२। भृगुकुलधुरंधर महात्मा मार्कण्डेयमुनि के निकट गया था और महाभारत के प्रति सन्देह उनसे पूछे थे ।२३। उन्होंने कहा कि, "विन्ध्याचल में महात्मा द्रोण के पुत्र वास करते हैं, तुम वहाँ जाकर उनसे पूछो, वही तुमसे इन प्रश्नों का उत्तर विस्तारसहित वर्णन करेंगे।" ।२४। मैं उनके ही वचनानुसार इस महापर्वत में आया हूँ, अब तुम मेरे उन सब प्रश्नों को भलीभांति सुनकर यथावत् व्याख्या कर दो ।२५

पक्षियों ने कहा—यदि वक्तव्य होगा तो कहेंगे, आप निःशंक चित्त से कहिये, जो हमारे बुद्धिगोचर होगा वह क्यों नहीं कहेंगे ? ।२६। चार वेद, समस्त धर्मशास्त्र वा सब वेदाङ्ग वा वेदसम्मत जो कोई शास्त्र ही क्यों न हो ।२७। हे द्विजसत्तम ! यद्यपि सब ही हमारे बुद्धिगोचर हैं, किन्तु तो भी हम प्रतिज्ञा नहीं कर सकते ।२८। अत एव महाभारत में आपको जो सन्देह है निःशंक चित्त से आज्ञा कीजिये, यदि मोह न हो तो हे धर्मज्ञ ! वह अवश्य ही आपसे कहेंगे ।२९

जैमिनि बोले—हे निर्मलचित्तविहंगमगण ! महाभारत के बीच जिन सब विषयों में मुझको सन्देह उत्पन्न हुआ है, वह सुनो और उनकी व्याख्या करो ।३०। मेरा सन्देह यही है कि "जो सब कारणों के

कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः । वासुदेवोऽखिलाधारः सर्वकारणकारणम् ॥३१
कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा । पञ्चानां महिषी कृष्णा सुमहानत्र संशयः ॥३२
भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कस्माच्चक्रे हलायुधः ॥३३
कथं च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारा महारथाः । पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत् ॥३४
एतत्सर्वं कथ्यतां मे सन्दिग्धं भारतं प्रति । कृतार्थोऽहं सुखं येन गच्छेयं निजमाश्रमम् ॥३५

पक्षिण ऊचुः

नमस्कृत्य सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे । पुरुषायाप्रमेयाय शाश्वतायाव्ययाय च ॥३६
चतुर्व्यूहात्मने तस्मै त्रिगुणायागुणाय च । वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामृताय च ॥३७
यस्मादणुतरं नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम् । येन विश्वमिदं व्याप्तमजेन जगदादिना ॥३८
आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् । वदन्ति यत्सृष्टमिदं तथैवान्ते च संहृतम् ॥३९
ब्रह्मणे चादिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना । ऋक्सामान्युद्गिरन्वक्त्रैर्यः पुनाति जगत्त्रयम् ॥४०
प्रणिपत्य तथैशानमेकबाणाविनिर्जितैः । यस्यासुरगणैर्यज्ञा विलुप्यन्ते न यज्विनाम् ॥४१

कारण और समस्त ब्रह्माण्ड के आधार हैं, वह जनार्दन वासुदेव निर्गुण होकर भी किस निमित्त मनुष्य हुए थे ? ।३१। एक द्रुपद की कन्या द्रौपदी किस प्रकार पाँच पाण्डवों की महिषी हुई थी ? यह महान् संशय है ।३२। महाबल हलायुध बलरामजी किस प्रकार तीर्थयात्रा प्रसंग में ब्रह्महत्या के पातक से छूटे थे ? ।३३। और महारथ युधिष्ठिर आदि पाँच पाण्डव जिनके सहायक थे, वह द्रौपदीके पुत्र अविवाहित अवस्था में अनाथ के समान किस प्रकार मरे ? ।३४। इन सब बातों में मुझको अत्यन्त सन्देह है, तुम इन महाभारतसंबंधी सन्देहों का यथावत उत्तर देकर मुझको कृतार्थ करो तो मैं सुख से ही अपने आश्रम को चला जाऊँगा ।३५

पक्षी बोले—जो देवताओं के अधीश्वर सर्वव्यापी और अत्यन्त प्रभावशाली हैं, जो पुरुषरूपी अर्थात् आत्मा, अप्रमेय, शाश्वत और अव्ययरूपी हैं ।३६। जो वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध[1] रूप "चतुर्व्यूहात्मक हैं" जो त्रिगुण और निर्गुण हैं, जो उत्तम और गरिष्ठ हैं, जो वरेण्य, अमृत ।३७। यज्ञाङ्ग और निखिल चराचरात्मक हैं, वेदान्तशास्त्र में जिनके स्वरूप का कुछ थोडा सा वर्णन किया गया है, सब जगत् में जिनकी अपेक्षा अन्य की सूक्ष्मतर और बृहत्तर नहीं है, यह संपूर्ण विश्व जिनके द्वारा व्याप्त है, जो अज और जगत् के आदि हैं ।३८। इस संसार में आविर्भाव, तिरोभाव, दर्शन और अदर्शन इत्यादि सब कार्य जिनके द्वारा संपन्न होते हैं, तथा जो उनसे अतीत, जगत् के सृष्टिकर्त्ता और संहार कर्त्ता कहे जाते हैं (उन भगवान् विष्णु को नमस्कार है) ।३९। जो आदि देव और चारों मुखों से सामादि चारों वेद उत्पन्न करके तीनों भुवनों को पवित्र करते हैं, उन ब्रह्मा जी को ध्यान के सहित नमस्कार है ।४०। असुरगण जिनके एक बाण से परास्त होकर याज्ञिकगणों के यज्ञ लोप करने में अशक्य होते हैं, उन देवादिदेव महादेव जी के

---

१. सृष्टिप्रकरण में सांख्यादि योगशास्त्र प्रसिद्ध अहंकारादि से इस चतुर्व्यूहकी उत्पत्ति है । कोई कोई इस स्थल में चतुर्व्यूह शब्द में जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयरूप कहते हैं, किन्तु उसमें अर्थका विशेष तात्पर्य नहीं रहता ।

प्रवक्ष्यामो मतं कृत्स्नं व्यासस्याद्भुतकर्मणः । येन भारतमुद्दिश्य धर्माद्याः प्रकटीकृताः ॥४२
आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥४३
स देवो भगवान्सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः । चतुर्द्धा संस्थितो ब्रह्मन्सगुणो निर्गुणस्तथा ॥४४
एका मूर्तिरनिर्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः । ज्वालामालोपरुद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिनां परा॥४५
दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा । वासुदेवाभिधानोऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते ॥४६
रूपवर्णादयस्तस्या न भावाः कल्पनामयाः । अस्त्येव सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठैकरूपिणी ॥४७
द्वितीया पृथिवी मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः । तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपाश्रिता ॥४८
तृतीया कर्म कुरुते प्रजापालनतत्परा । सत्त्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी ॥४९
चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा । रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि ॥५०
या तृतीया हरेर्मूर्त्तिः प्रजापालनतत्परा । सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि ॥५१
प्रोद्धूतानसुरान्हन्ति धर्मविच्छित्तिकारिणः । पाति देवान्सतश्चान्यान्धर्मरक्षापरायणान् ॥५२
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति जैमिने । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजत्यसौ ॥५३

चरणकमलों में प्रणाम करके ।४१। अत्यन्त अद्भुतकर्मकारी जो महर्षि बादरायणि के द्वारा महाभारत के उद्देश्य धर्मादि प्रगट हुआ है, वह व्यासदेव के मतानुयायी सभी विषय सम्यक् प्रकार से आपके प्रति प्रकाशित करेंगे ।४२। तत्त्वदर्शी मुनि कहते हैं, "नार" शब्द का अर्थ जल है, प्रथम वह जल ही एकमात्र जिनका "अयन" अर्थात् घर था, इससे उनको नारायण कहते हैं ।४३। हे ब्रह्मन् ! वही अनन्तलीलानिधान भगवान् विभु नारायण सगुण और निर्गुणात्मक द्विविध रूप से चार मूर्ति में अवस्थित हैं ।४४। उनकी एक मूर्ति जो अनिर्देश्य अर्थात् वाणी के अतीत हैं, पण्डितगण जिसको शुक्लवर्ण कहते हैं, चंद्रसूर्यादि समस्त तेजपुंजमय पदार्थरूप ज्वलामाला से जिसके सब अंग अवरुद्ध हैं, जो योगियों का एकमात्र आश्रयस्वरूप है ।४५। जो नित्यरूपिणी और जो मूर्त्ति तीनों गुणों का अतिक्रमण करके दूर और निकट स्थित रहती है, उस प्रधानस्वरूप पहली मूर्ति का नाम वासुदेव मूर्ति है, इसमें ममता का लेशमात्र भी नहीं है ।४६। उसके रूप, वर्ण इत्यादि सब भाव कल्पनात्मक हैं। यह मूर्ति सर्वकाल विराजमान, परमपवित्र स्वरूप और सदा एकरूप है ।४७। पाताल देश में वास करके जो मूर्त्ति मस्तक के ऊपर पृथ्वी धारण करती है, वह दूसरी मूर्त्ति है, उसका नाम शेष अर्थात् संकर्षण है, इस मूर्त्ति ने तामसी होने से तिर्यग्योनि का अवलम्बन किया है ।४८। भगवान् नारायण की जिस मूर्त्ति के द्वारा संपूर्ण कर्म सम्यक् प्रकार साधित होते हैं, जिसके द्वारा प्रजापालनादि सब कार्य सम्पादित होते हैं और जो मूर्त्ति धर्मसंस्थापनकारिणी अर्थात् धर्म की रक्षा करने वाली है, उस सत्त्वगुणमयी मूर्त्तिका नाम प्रद्युम्नमूर्ति है।४९। चौथी मूर्ति पन्नगशय्या पर जल में शयन करके वास करती है, रजोगुणात्मिका है और उसके द्वारा ही सदा सृष्टिकार्य संपन्न होता है, इस मूर्ति का नाम अनिरुद्धमूर्ति है ।५०। हरि की प्रजापालनकारिणी जो तीसरी मूर्ति है, उसके द्वारा ही सदा पृथ्वी में धर्मसंस्थापन होता है ।५१। धर्म का विनाश करने वाले उद्धत असुरगण उसी के द्वारा मरते हैं और उसके द्वारा ही धर्म रक्षापरायण साधु और दैत्य रक्षित होते हैं ।५२। हे जैमिने ! जिस-जिस समय धर्म की हानि होकर अधर्म की वृद्धि होती है, यह मूर्त्ति उस समय धर्म का उद्धार करने के निमित्त उत्पन्न होती

भूत्वा पुरा वराहेण तुण्डेनापो निरस्य च । एकया दंष्ट्रयोत्खाता नलिनीव वसुंधरा ।।५४
कृत्वा नृसिंहरूपं च हिरण्यकशिपुर्हतः । विप्रचित्तिमुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिताः ।।५५
वामनादींस्तथैवान्यान्न संख्यातुमिहोत्सहे । अवतारांश्च तस्येह माथुरः साम्प्रतं त्वयम् ।।५६
इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतारान्करोति वै । प्रद्युम्नेति च साख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ।।५७
देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च संस्थिता । गृह्णाति तत्स्वभावं च वासुदेवेच्छया सदा ।।५८
इत्येतत्ते समाख्यातं कृतकृत्योऽपि यत्प्रभुः । मानुषत्वं गतो विष्णुः शृणुष्वास्योत्तरं पुनः ।।५९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे चतुर्व्यूहावतारश्चतुर्थोऽध्यायः ।४।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

इन्द्रविक्रियावर्णनम्

पक्षिण ऊचुः

त्वष्ट्रिपुत्रे हते पूर्वं ब्रह्मन्निन्द्रस्य तेजसः । ब्रह्महत्याभिभूतस्य परा हानिरजायत ।।१
तद्धर्मं प्रविवेशाथ शाक्रतेजोऽपचारतः । निस्तेजाश्चाभवच्छक्रो धर्मे तेजसि निर्गते ।।२
ततः पुत्रं हतं श्रुत्वा त्वष्टा क्रुद्धः प्रजापतिः । अवलुञ्च्य जटामेकामिदं वचनमब्रवीत् ।।३

है ।५३। इसी मूर्त्ति ने पूर्वकाल में वराहरूप धारणपूर्वक दाँतों के अग्रभाग द्वारा जल हटाकर केवल दाढ़ों से सहज में ही पृथ्वी को नलिन के समान निकालकर पूर्ववत् स्थिर किया है ।५४। उसने ही नृसिंहमूर्त्ति धारण कर हिरण्यकशिपु को मारा है और उसी ने विप्रचित्ति इत्यादि दानवों का भी वध किया है ।५५। उसके वामनादि अन्यान्य सब अवतारों की गणना नहीं कर सकते, वह इस समय जो उत्पन्न हुई है वह माथुरमूर्त्ति श्रीकृष्ण हैं ।५६। इस प्रकार उस सत्यगुणात्मिका मूर्त्ति के अवतीर्ण होने पर प्रद्युम्नमूर्त्ति उसकी रक्षा करने में स्थित रहती है ।५७। वह देवत्व, मनुष्यत्व, वा तिर्यक् योनि इत्यादि में अवस्थित होकर वासुदेव की इच्छानुसार ततत्स्वभाव अवलम्बन करती है ।५८। हमने यह आपके निकट सब वर्णन किया, अब भगवान् विष्णु ने कृतकार्य होकर भी जिस कारण से मनुष्य देह ग्रहण किया है, इसका उत्तर फिर कहते हैं, सुनो ।५९

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में चतुर्व्यूहावतार वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५

इन्द्रविक्रिया का वर्णन

पक्षी बोले—हे ब्रह्मन् ! त्वष्टा नामक प्रजापति का पुत्र त्रिशिरा अधोमुख होकर तपस्या कर रहा था, इन्द्र ने उसकी तपस्या से डरकर उसका वध किया गया त्वष्टापुत्र त्रिशिरा के मरने पर ब्रह्महत्याजनित पापसे सुरपति के तेज की हानि हुई ।१। अधर्माचरण के कारण पाकशासन के इस तेज ने धर्म में प्रवेश किया, तब धर्म में तेज के चले जाने से शचीपति (इन्द्र) निस्तेज हो गये ।२। तदनन्तर त्वष्टा प्रजापति पुत्र के मरने की वार्ता सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए और महाक्रोधपूर्वक मस्तक की एक जटा तोड़कर कहने

अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं त्रयो लोकाः सदेवताः । स च पश्यतु दुर्बुद्धिर्ब्रह्महा पाकशासनः ॥४
स्वकर्माभिरतो येन मत्सुतो विनिपातितः । इत्युक्त्वा कोपरक्ताक्षो जटामग्नौ जुहाव ताम् ॥५
ततो वृत्रः समुत्तस्थौ ज्वालामाली महासुरः । महाकायो महादंष्ट्रो भिन्नाञ्जनचयप्रभः ॥६
इन्द्रशत्रुरमेयात्मा त्वष्ट्रितेजोपबृंहितः । अहन्यहनि सोऽवर्द्धदिषुपातं महाबलः ॥७
वधाय चात्मनो दृष्ट्वा वृत्रं शक्रो महासुरम् । प्रेषयामास सप्तर्षीन्सन्धिमिच्छन्भयातुरः ॥८
सख्यं चक्रुस्ततस्तस्य वृत्रेण समयांस्तथा । ऋषयः प्रीतमनसः सर्वभूतहिते रताः ॥९
समयस्थितिमुल्लंघ्य यदा शक्रेण घातितः । वृत्रो हत्याभिभूतस्य तदा बलमशीर्यत ॥१०
तच्छक्रदेहविभ्रष्टं बलं मारुतमाविशत् । सर्वव्यापिनमव्यक्तं बलस्यैवाधिदैवतम् ॥११
अहल्यां च यदा शक्रो गौतमं रूपमास्थितः । धर्षयामास देवेन्द्रस्तदा रूपमहीयत ॥१२
अङ्गप्रत्यङ्गलावण्यं यदतीव मनोरमम् । विहाय दुष्टं देवेन्द्रं नासत्यावगमत्ततः ॥१३
धर्मेण तेजसा त्यक्तं बलहीनमरूपिणम् । ज्ञात्वा सुरेशं दैतेयास्तज्जये चक्रुरुद्यमम् ॥१४
राज्ञामुद्रिक्तवीर्याणां देवेन्द्रविजिगीषवः । कुलेष्वतिबला दैत्या अजायन्त महामुने ॥१५
कस्यचित्त्वथ कालस्य धरणीभारपीडिता । जगाम मेरुशिखरं सदो यत्र दिवौकसाम् ॥१६
तेषां सा कथयामास भूरिभारावपीडिता । तनुजात्मजदैत्योत्थं खेदकारणमात्मनः ॥१७

लगे ।३। "इस समय देवताओं के सहित स्वर्ग और पाताल वासी सब प्राणी मेरा तेज देखें और मेरे पुत्र को मारनेवाला ब्रह्मघाती दुर्बुद्धि इन्द्रभी मेरा वीर्य देखे ।४। जिसने स्वकर्म में निरत मेरे पुत्र को मारा है" यह कहकर उन्होंने कोपसे लाल नेत्र किये उस जटा को अग्नि में होम कर दिया ।५। उसी समय ज्वालामाली महाशरीर, बड़ी डाढ़ों वाला और अंजनपिण्ड के समान रूपधारी वृत्र नामक एक महाअसुर अग्नि से उत्पन्न हुआ ।६। अप्रमेयात्मा महाबली इन्द्र का शत्रु वृत्र प्रजापति त्वष्टा के तेज से उत्पन्न होकर जितना ऊँचा धनुष से छूटा हुआ बाण जाता है, उसी के समान नित्य बढ़ने लगा ।७। इधर अपने संहार के लिये महाअसुर वृत्र को उत्पन्न हुआ देखकर देवराज इन्द्र ने भयातुर होकर उसके अंग संधि करने के निमित्त मरीच्यादि सप्त ऋषियों को भेजा ।८। सब प्राणियों के हित में रत प्रसन्न मन ऋषियों ने वृत्रासुर और इन्द्रसे परस्पर प्रतिज्ञा कराने के पीछे मित्रता की स्थापना कराई ।९। महासुर वृत्र प्रतिज्ञा मर्यादा उल्लंघन करके इन्द्र के द्वारा जिस समय मारा गया तब उसी ब्रह्महत्याजनित पाप से अभिभूत होने के कारण इन्द्र का बल नष्ट हो गया ।१०। उस बल ने इन्द्र के शरीर से भ्रष्ट होकर बल के एकमात्र अधिदेवता अव्यक्त सर्वव्यापी वायु में प्रवेश किया ।११। और इन्द्र ने जब गौतम का रूप धारण करके अहल्या से रमण किया, उस समय भी उनका रूप हीन हुआ था ।१२। उस समय शचीपति के अत्यन्त मनोहर अंग-प्रत्यंग का समस्त लावण्य दुरात्मा इन्द्र को छोड़कर दोनों अश्विनीकुमारों में चला गया ।१३। तब सुरराज को धर्म और तेज के द्वारा त्यागा जानकर तथा दुर्बल और हीनरूप विचा- [illegible]त्यों ने उनको जीतने के लिये उद्यम किया था ।१४। हे महामुने ! अत्यन्त बलशाली दैत्यों ने इन्द्र क[illegible] [illegible]ीतने की इच्छा से बल-वीर्य मदोद्धत राजाओं के कुल में जन्म लिया था ।१५। अनन्तर कुछ काल बीतने पर भगवती वसुन्धरा (पृथ्वी) दैत्यों के बोझ से पीड़ित हो सुमेरुपर्वत के मध्य देवताओं की सभा में गई ।१६। तब अत्यन्त बोझ से पीड़ित हुई भगवती वसुंधरा दैत्य-दानवों से उत्पन्न अपने दुःख का सब

एते भवद्भिरसुरा निहताः पृथुलौजसः । ते सर्वे मानुषे लोके जाता गेहेषु भूभृताम् ॥१८
अक्षौहिण्यो हि बहुलास्तद्भारार्त्ता व्रजाम्यधः । तथा कुरुध्वं त्रिदशा यथा शान्तिर्भवेन्मम ॥१९

पक्षिण ऊचुः

तेजोभागैस्ततो देवा अवतेरुर्दिवो महीम् । प्रजानामुपकारार्थं भूभारहरणाय च ॥२०
यदिन्द्रदेहजं तेजस्तन्मुमोच स्वयं वृषः । कुन्त्यां जातो महातेजास्ततो राजा युधिष्ठिरः ॥२१
बलं मुमोच पवनस्ततो भीमो व्यजायत । शक्रवीर्यार्धतश्चैव जज्ञे पार्थो धनञ्जयः ॥२२
उत्पन्नौ यमलौ माद्र्यां शक्रवारूपौ महाद्युती । पञ्चधा भगवानित्यमवतीर्णः शतक्रतुः ॥२३
तस्योत्पन्ना महाभागा पत्नी कृष्णा हुताशनात् । शक्रस्यैकस्य सा पत्नी कृष्णा नान्यस्य कस्यचित् ॥२४
योगीश्वराः शरीराणि कुर्वन्ति बहुलान्यपि ॥२५
पञ्चानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथितं तव । श्रूयतां बलदेवोऽपि यथा यातः सरस्वतीम् ॥२६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे इन्द्रविक्रिया नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५।

कारण उनसे कहने लगी ।१७। "हे देवताओं ! अत्यन्त बलवान् जिन सब असुरों को आपने मारा है अब उन्होंने मनुष्य लोक में राजाओं के घर जन्म लिया है ।१८। वह दैत्यगण असंख्य अक्षौहिणीपरिमित है, इस कारण मैं उनके बोझ से अत्यन्त पीड़ित होकर नीचे को झुकी जाती हूँ, बस, जिससे मुझको शान्तिलाभ हो, हे देवताओं ! आप वही कीजिये" ।१९।

पक्षी बोले—हे मुने ! अनन्तर देवता सब प्रजा का उपकार और पृथ्वी का भार हरण करने के लिये अपने-अपने तेजोभाग द्वारा स्वर्ग से पृथ्वी में अवतीर्ण हुए ।२०। तब स्वयं धर्म ने इन्द्र के देह से उत्पन्न उस तेज को कुन्ती के गर्भ में डाला, उससे ही महातेजा राजा युधिष्ठर उत्पन्न हुए ।२१। देवश्रेष्ठ पवन ने इन्द्र का जो तेज कुन्ती के गर्भ में निक्षेप किया उसी से भीमसेन का जन्म हुआ और इसी कुन्ती के गर्भ से सुरराज के आधे बलद्वारा पार्थ धनंजय ने जन्म लिया ।२२। और इन्द्र के लावण्यधारी दोनों अश्विनीकुमारों के द्वारा माद्री के गर्भ से महाद्युतिसम्पन्न जो यमलकुमार उत्पन्न हुए, वह भी इन्द्र के तेज से युक्त हैं । सुतरां भगवान् शतक्रतु (इन्द्र) ही इन पाँच अंश में अवतीर्ण हुए ।२३। और उनकी पत्नी शची ही यज्ञभाग याज्ञसेनीरूप में अग्नि से उत्पन्न हुई ।२४। तो स्थिर हुआ कि, एक द्रौपदी केवल इन्द्र की ही पत्नी है, अन्य किसी की नहीं क्योंकि महात्मा योगीश्वर पुरुष अपने शरीर को अनेक भाग में विभक्त कर सकते हैं ।२५ हे महाभाग ! जिस प्रकार पाँच जनों की एक पत्नी हुई थी, वह आपके निकट वर्णन किया अब बलदेव जी जिस प्रकार सरस्वती में गये थे वह सुनो ।२६

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में इन्द्रविक्रिया वर्णन नामक पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

अथ षष्ठोऽध्यायः

बलदेवब्रह्महत्यावर्णनम्

पक्षिण ऊचुः

रामः पार्थे परां प्रीतिं ज्ञात्वा कृष्णस्य लाङ्गली । चिन्तयामास बहुधा किं कृतं सुकृतं भवेत् ॥१
कृष्णेन हि विना नाहं यास्ये दुर्योधनान्तिकम् । पाण्डवान्वा समाश्रित्य कथं दुर्योधनं नृपम् ॥२
जामातरं तथा शिष्यं घातयिष्ये नरेश्वरम् । तस्मान्न पार्थं यास्यामि नापि दुर्योधनं नृपम् ॥३
तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामि तावदात्मानमात्मना । कुरूणां पाण्डवानां च यावदन्ताय कल्पते ॥४
इत्यामन्त्र्य हृषीकेशं पार्थदुर्योधनावपि । जगाम द्वारकां शौरिः स्वसैन्यपरिवारितः ॥५
गत्वा द्वारवतीं रामो हृष्टपुष्टजनाकुलाम् । श्वो गन्तव्येषु तीर्थेषु पपौ पानं हलायुधः ॥६
पीतपानो जगामाथ रेवतोद्यानमृद्धिमत् । हस्ते गृहीत्वा समदां रेवतीमप्सरोपमाम् ॥७
स्त्रीकदम्बकमध्यस्थो ययौ मत्तः पदा स्खलन् । ददर्श च वनं वीरो रमणीयमनुत्तमम् ॥८
सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् । पुण्यं पद्मवनोपेतं सपल्वलमहावनम् ॥९
सम्शृण्वन्प्रीतिजननान्बहून्मदकलाञ्शुभान् । श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्छब्दान्खगमुखेरितान् ॥१०

अध्याय ६

बलदेव द्वारा ब्रह्महत्या का वर्णन

पक्षी बोले—हलधर बलरामजी, अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की अत्यन्त प्रीति जान क्या करने से भला होगा, इसी की अनेक भाँति से चिन्ता करने लगे।१। श्रीकृष्ण को बिना संग लिये अकेला दुर्योधन के निकट नहीं जाऊँगा और पाण्डवों का पक्ष अवलम्बन कर।२। अपने ही जामाता तथा शिष्य पृथ्वीपति दुर्योधन को कैसे मारूँ ? इस कारण राजा दुर्योधन वा अर्जुन इन दोनों में किसी के निकट भी नहीं जाऊँगा।३। अत एव जब तक कौरवपाण्डवों का ध्वंस न हो, तब तक आप ही आप तीर्थों में भ्रमण करके आत्मा को पवित्र करूँ।४। बलराम जी मन में इस प्रकार विचार कर हृषीकेश, पार्थ और दुर्योधन को आमंत्रणपूर्वक अपनी सेना से वेष्टित हो द्वारका को चले गये।५। शौरि बलराम जी ने हृष्ट पुष्ट मनुष्यों से भरी द्वारावती नगरी में जाकर तीर्थयात्रा करने का विचार किया और ताड़ी का रस पिया। वह पान करने के पीछे अप्सरा के समान सगर्वा रेवती का हाथ पकड़कर अनेक प्रकार की सम्पत्ति से पूर्ण रैवत उद्यान में गये।६-७। वह मद्यपान से मत्त हो रहे थे, इस कारण स्त्रियों से परिवेष्टित होकर गमन करने पर भी पग-पग में उनके पैर डगमगाते थे अनन्तर वीरवर बलराम जी ने उस अति उत्तम रैवतक वन को देखा।८। यह उद्यान समस्त ऋतु के उत्पन्न फल और पुष्पों से शोभायमान तथा शाखामृगों (बंदरों) से व्याप्त था, वह अत्यन्त पवित्र कमलवन से युक्त, छोटे सरोवर और महावनद्वारा भलीभाँति विराजित था।९। बलराम जी रेवती के सहित वन में प्रवेश करके आह्लादजनक शुभसूचक गंभीर कानों को सुखदायक और मधुर नानाप्रकार के पक्षियों का

सर्वर्तुफलभाराढ्यान्सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलान् । अपश्यत्पादपाँस्तत्र विहगैरनुनादितान् ।।११
आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेलान्सतिन्दुकान् । आबिल्वकांस्तथा जीरान्दाडिमान्बीजपूरकान्।।१२
पनसांल्लकुचान्मोचान्नीपांश्चातिमनोहरान् । पारावतांश्च कङ्कोलान्नलिनानम्लवेतसान् ।।१३
भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्च महाफलान् । इंगुदान्करमर्दांश्च हरीतकविभीतकान् ।।१४
एतानन्यांश्च स तरून्ददर्श यदुनन्दनः । तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ।।१५
चम्पकान्सप्तकर्णांश्च कर्णिकारान्समालतीन् । पारिजातान्कोविदारान्मंदारान्बदरांस्तथा ।।१६
पाटलान्पुष्पितान्रम्यान्देवदारुद्रुमांस्तथा । सालांस्तालांस्तमालांश्च किंशुकान्वञ्जुलान्वरान्।।१७
चकोरैः शातपत्रैश्च भृंगराजैस्तथा शुकैः । कोकिलैः कालविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ।।१८
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथान्यैर्विविधैः खगैः । श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् ।।१९
सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च । कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ।।२०
कह्लारैः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः । कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ।।२१
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च । एभिश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः ।।२२
क्रमेणेत्थं वनं शौरिर्वीक्ष्यमाणो मनोरमम् । जगामानुगतः स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् ।।२३
स ददर्श द्विजांस्तत्र वेदवेदाङ्गपारगान् । कौशिकान्भार्गवाञ्श्चैवभरद्वाजान्सगौतमान् ।।२४
विविधेषु च संभूतान्वंशेषु द्विजसत्तमान् । कथाश्रवणबद्धोत्कानुपविष्टान्महत्सु च ।।२५

कूजन-श्रवण करने लगे ।१०। यह भी देखा कि, वहाँ के वृक्षों में सब ऋतुओं के फल लग रहे हैं, उन पर प्रसन्न हृदय से पक्षी चहचहा रहे हैं, और सारे वन में सब ऋतुओं के पुष्प फूल रहे हैं । भाँति-भाँति के हरे पीले लाल फल लटक रहे हैं ।११। आम, अमरा, नारियल तिंदु, बेल, अंजीर, अनार, नींबू ।१२। कटहल, बडहल, मोचरस, कदम, पारावत, कंकोल, नलिन, अमलवेला ।१३। भिलाव, तैंदू, तिल, हिंगोट, करोंद, हड़, बहेड़ा ।१४। इन वृक्षों को यदुनन्दन बलरामजी ने वहाँ देखा और इन के अतिरिक्त अशोक, पुन्नाग, केतकी, मौलसिरी ।१५। चम्पा, सप्तकर्ण, कनेर, मालती, पारिजात, कोविदार, मन्दार, बेर ।१६। पाटल, देवदारु, सुखुआ, ताल, तमाल, पलाश, वंजुल आदि अच्छे-अच्छे फलफूलवाले वृक्षों से वह वन संयुक्त है ।१७। और इन वृक्षों पर चकोर, शातपत्र, भृंगराज, शुक, सारिका, कोयल, कोकिला, हरैल, जीवजीवक ।१८। प्रियपुत्र और चातक इत्यादि भाँतिभाँति के पक्षी श्रवण मनोहर मधुर शब्द करते हुए इन सब वृक्षों की शाखाओं का आश्रय करके वास कर रहे हैं ।१९। रैवतक उद्यान में निर्मल जल से शोभायमान सब सरोवर शोभित हैं, जिनको देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाय, कुमुद, पुण्डरीक, नीलकमल ।२०। कह्लार और कमल इत्यादि कुसुमसमूह से सब ओर शोभायमान और कलहंस चक्रवाक तथा जलमुर्गावी ।२१। प्लव, हंस और कारण्डवादि जलचर पक्षी और कूर्महरियल इत्यादि जलचर जीवों से व्याप्त होकर अपूर्व शोभा धारण करते हैं ।२२। स्त्रियों के सहित शौरि बलरामजी क्रम से उस वन को देखते-देखते अति उत्तम लतागृह में गये ।२३। वहाँ पर क्या देखा कि, वेदवेदाङ्ग के ज्ञाता ब्राह्मण कितने ही कुशिकवंशी कितने ही भृगुवंशी कितने ही भरद्वाज वंशी और कितने ही गौतमवंश के थे ।२४। और भी कितने ही वंश के ब्राह्मण पवित्र और उत्तम मनुष्य बैठे कथा सुन रहे थे ।२५। कोई

कृष्णाजिनोत्तरीयेषु कुशेषु च बृसीषु च । सूतं च तेषां मध्यस्थं कथयानं कथाः शुभाः ॥२६
पौराणिकीः सुरर्षीणामाद्यानां चरिताश्रयाः । दृष्ट्वा रामं द्विजाः सर्वे मधुपानारुणेक्षणम् ॥२७
मत्तोऽयमिति मन्वानाः समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः । पूजयन्तो हलधरमृते तं सूतवंशजम् ॥२८
ततः क्रोधसमाविष्टो हली सूतं महाबलः । निजघान विवृत्ताक्षः क्षोभिताशेषदानवः ॥२९
अध्यास्यति पदं ब्राह्मं तस्मिन्सूते निपातिते । निष्क्रान्तास्ते द्विजाः सर्वे वनात्कृष्णाजिनाम्बराः ॥३०
अवधूतं तथात्मानं मन्यमानो हलायुधः । चिन्तयामास सुमहन्मया पापमिदं कृतम् ॥३१
ब्राह्मं स्थानं गतो ह्येष यत्सूतो विनिपातितः । तथा हीमे द्विजाः सर्वे मामवेक्ष्य विनिर्गताः ॥३२
शरीरस्य च मे गन्धो लोहस्येवासुखावहः । आत्मानं चावगच्छामि ब्रह्मघ्नमिव कुत्सितम् ॥३३
धिगमर्षं तथा मद्यमतिमानमभीरुताम् । यैराविष्टेन सुमहन्मया पापमिदं कृतम् ॥३४
तत्क्षयार्थं चरिष्यामि व्रतं द्वादशवार्षिकम् । स्वकर्मख्यापनं कुर्वन्प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥३५
अथ येयं समारब्धा तीर्थयात्रा मयाधुना । एतामेव प्रयास्यामि प्रतिलोमां सरस्वतीम् ॥३६
अतो जगाम रामोऽसौ प्रतिलोमां सरस्वतीम् । ततः परं शृणुष्वेमं पाण्डवेयकथाश्रयम् ॥३७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे बलदेवब्रह्महत्याकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६।

मृगछाला पर कोई वस्त्र पर कोई कुशासन पर और कितने ही पुरुष घास इत्यादि पर विराजमान हैं, और उनके बीच में पुराणवक्ता सूतजी बैठे हुए कल्याणमयी कथा वाचन कर रहे हैं ।२६। उस पुराण की कथा, जिसमें देवता और ऋषियों का वर्णन है । इतने ही में उन ब्राह्मणों की दृष्टि बलराम जी पर पड़ी तो देखा कि, मदिरा के मद से नेत्र लाल हो रहे हैं ।२७। जब समस्त मुनियों ने उन्हें मदोन्मत्त देखा, तब सूतजी के अतिरिक्त और सबने अत्यन्त शीघ्रता के साथ उठकर बड़े आदरसत्कार से बलराम जी का पूजन किया ।२८। अनन्तर अशेष दानवों के मारने वाले महाबल पराक्रमशाली बलराम जी ने सूत के द्वारा अपना तिरस्कार अर्थात् निरादर हुआ विचारकर अत्यन्त क्रोध सहित लाल-लाल नेत्र कर सूत को निहत किया ।२९। पुराणतत्त्वज्ञ सूतके मरने और ब्रह्मलोक में गमन करने पर ब्रह्मपद मृगछालाओं पर बैठे हुए सब ब्राह्मण ही उस वन से चले गयें ।३०। तब बलराम जी जिनके देह पर मद झलक रहा था पछताने और चिन्ता करने लगे कि, "क्यों मैंने ऐसे महापाप का अनुष्ठान किया ?" ।३१। मैंने जिस सूत का वध किया, वह ब्राह्मस्थान में चला गया, और अब सब ब्राह्मण मुझको देखकर चले जाते हैं ।३२। मेरे शरीर से लोहे के समान असुरता जनाने वाली गंध बाहर निकलती है और आत्मा को भी ब्रह्महत्याजनित पाप में कलुषित बोध होता है ।३३। रे अमर्ष ! तुझको धिक्कार है, मद को धिक्कार, अत्यन्त मान को धिक्कार, और अत्यन्त साहस को भी धिक्कार है, क्योंकि इन्हीं सब में आसक्त होकर मैंने ऐसे महापाप का अनुष्ठान किया है ।३४। इस ब्रह्महत्याजनित महापाप को ध्वंस करने के लिये बारह वर्ष तक व्रत करूँगा और इस पाप को सर्वत्र विख्यात करके अति उत्तम प्रायश्चित करूँगा ।३५। अथवा मैं जो इस तीर्थ यात्रा का उद्योग कर रहा हूँ, इस यात्रा में ही प्रतिलोमा सरस्वती में जाऊँगा ।३६। हे मुने ! यह कहकर वह यदुकुल धुरंधर बलराम जी प्रतिलोमा सरस्वती में चले गये अब दूसरी पाण्डवों के पुत्रों की कथा कहते हैं, सुनो।३७

श्रीमार्कण्डेय महापुराण में बलदेव द्वारा ब्रह्महत्या कथन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अथ सप्तमोऽध्यायः

द्रौपदेयोत्पत्तिवर्णनम्

धर्मपक्षिण ऊचुः

हरिश्चन्द्रेति राजर्षिरासीत्त्रेतायुगे पुरा । धर्मात्मा पृथिवीपालः प्रोल्लसत्कीर्तिरुत्तमः ॥१
न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणाम् । नाधर्मरुचयः पौरास्तस्मिञ्छासति पार्थिवे ॥२
बभूवुर्न तथोन्मत्ता धनवीर्यतपोमदैः । नाजायन्त स्त्रियश्चैव काश्चिदप्राप्तयौवनाः ॥३
स कदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन्मृगम् । शुश्राव शब्दमसकृत्त्रायस्वेति च योषिताम् ॥४
स विहाय मृगं राजा माभैषीरित्यभाषत । मयिशाशति दुर्मेधाः कोऽयमन्यायवृत्तिमान् ॥५
तत्क्रन्दितानुसारी च सर्वारम्भविघातकृत् । एतस्मिन्नन्तरे रौद्रो विघ्नराट्समचिन्तयत् ॥६
विश्वामित्रोऽयमतुलं तप आस्थाय वीर्यवान् । प्रागसिद्धा भवादीनां विद्याः साधयति व्रती ॥७
साध्यमानाः क्षमामौनचित्तसंयमिनाऽमुना । ता वै भयार्त्ताः क्रन्दन्ति कथंकार्यमिदं मया ॥८
तेजस्वी कौशिकश्रेष्ठो वयमस्य सुदुर्बलाः । क्रोशन्त्येतास्तथा भीता दुष्पारं प्रतिभाति मे ॥९

अध्याय ७

द्रौपदेयोत्पत्ति-वर्णन

धर्मात्मा पक्षी बोले—हे जैमिनि ! पहले त्रेतायुग में हरिश्चन्द्र नाम के एक धार्मिक राजा थे, वह अत्यन्त कीर्तिमान् पृथ्वी के पालक और सुन्दर पुरुष थे।१। उन नृपवर हरिश्चन्द्र के पृथ्वीशासनकाल में प्रजा को दुर्भिक्ष वा व्याधि या अकाल मृत्यु का फल वा अधर्म कुछ नहीं था।२। उस मसय उनकी प्रजा धन, बल वा धर्म के मद से उन्मत्त नहीं होती थी और स्त्रियाँ भी विना यौवन प्राप्त हुए अकाल में सन्तान उत्पन्न नहीं करती थीं।३। एक समय वह महाबाहु वन में शिकार ढूँढ़ रहे थे, उसी समय में "रक्षा करो, रक्षा करो" इस प्रकार कितनी ही स्त्रियों के कंठ का शब्द बारम्बार उनके कान में सुनाई दिया।४। तब राजा हरिश्चन्द्र ने मृगया को छोड़कर "डरो मत, डरो मत" शब्द उच्चारण किया और कहा, मेरे पृथ्वी शासन करने के समय कौन दुर्बुद्धि अन्यायवृत्ति का आचरण कर रहा है ? ।५। यह कहकर उस रुदन करते हुए व्यक्ति का अनुसरण किया, उसी समय में संपूर्ण कार्यों का विनाश करने वाला भयंकर विघ्नराज चिन्ता करने लगा।६। इस वन में महातेजस्वी मुनिवर विश्वामित्र जी व्रतावलम्बनपूर्वक अतुल तपस्या करके पूर्व जिनको नहीं साध सके, उन्हीं भावादि सब विद्याओं का साधन करते हैं।७। क्षमा मौन और चित्तसंयम करके मुनिवर जिन विद्याओं के साधने की चेष्टा करते हैं, वह स्त्रीमूर्त्ति सब विद्या भय से अत्यन्त भीत हो "रक्षा करो, रक्षा करो" कहकर रुदन करती हैं, अब मैं क्या उपाय करूँ ? ।८। क्योंकि यह विश्वामित्र मुनि अमित तेजस्वी हैं और मैं इनके निकट अत्यन्त दुर्बल हूँ, तथा यह सब विद्या भी भय से अत्यन्त रोती हैं सुतरां बड़ी ही कठिन वार्त्ता उपस्थित है।९। अथवा अब मुझको किसी बात की चिन्ता करनी नहीं पड़ेगी,

अथवायं नृपः प्राप्तो माभैरिति वदन्मुहुः । इममेव प्रविश्याशु साधयिष्ये यथेप्सितम् ॥१०
इति संचिन्त्य रौद्रेण विघ्नराजेन वै ततः । तेनाविष्टो नृपः कोपादिदं वचनमब्रवीत् ॥११
कोऽयं बध्नाति वस्त्रान्ते पावकं पापकृन्नरः । बलोष्णतेजसा दीप्ते मयि पत्यावुपस्थिते ॥१२
सोऽद्य मत्कार्मुकाक्षेपविदीपितदिगन्तरैः । शरैर्विभिन्नसर्वाङ्गो दीर्घनिद्रां प्रवेक्ष्यति ॥१३
विश्वामित्रस्ततः क्रुद्धः श्रुत्वा तन्नृपतेर्वचः । क्रुद्धे चर्षिवरे तस्मिन्नेशुर्विद्याः क्षणेन ताः ॥१४
स चापि राजा तं दृष्ट्वा विश्वामित्रं तपोनिधिम् । भीतः प्रावेपतात्यर्थं सहसाश्वत्थपर्णवत् ॥१५
स दुरात्मन्निति यदा मुनिस्तिष्ठेति चाब्रवीत् । ततः स राजा विनयात्प्रणिपत्याभ्यभाषत् ॥१६
भगवन्नेष धर्मो मे नापराधो मम प्रभो । न क्रोद्धुमर्हसि मुने निजधर्मरतस्य मे ॥१७
दातव्यं रक्षितव्यं च धर्मज्ञेन महीक्षिता । चापं चोद्यम्य योद्धव्यं धर्मशास्त्रानुसारतः ॥१८

विश्वामित्र उवाच

दातव्यं कस्य के रक्ष्याः कैर्योद्धव्यं च ते नृप । क्षिप्रमेतत्समाचक्ष्व यद्यधर्मभयं तव ।१९

हरिश्चन्द्र उवाच

दातव्यं विप्रमुख्येभ्यो ये चान्ये कृशवृत्तयः । रक्ष्या भीताः सदा युद्धं कर्त्तव्यं परिपन्थिभिः ॥२०

क्योंकि यह राजा हरिश्चन्द्र बारम्बार "मत डरो, मत डरो" शब्द करता हुआ यहाँ आ गया है अतएव इस राजा के शरीर में प्रवेश करके ही अपनी अभिलाषा साधन करता हूँ ।१०। उस भयंकर विघ्नराज ने मन में इस प्रकार चिन्ता करके राजा के शरीर में प्रवेश किया, तब राजा ने और भी अधिक क्रोधित होकर कहा ।११। कौन पापी मनुष्य वस्त्र के अंचल में अग्नि को बाँधता है, जबकि, बलरूप उष्ण तेज से देदीप्यमान यह मैं पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र यहाँ आ पहुँचा हूँ ।१२। इस समय कौन मूढ़ धनुष से छूटे दिशाओं को प्रकाश करने वाले मेरे बाणों से समस्त अंगों में विद्ध होकर योगन्द्रिा को प्राप्त होगा ।१३। अनन्तर मुनिवर विश्वामित्र राजा हरिश्चन्द्र के अभिमानयुक्त यह वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए, ऋषि के क्रोधित होते ही वह सब विद्या नष्ट हो गईं ।१४। वह राजा हरिश्चन्द्र तपोनिधि विश्वामित्र को सहसा देखकर अत्यन्त भीत हो पीपल के पत्ते समान काँपने लगे ।१५। जब मुनिवर ! विश्वामित्र ने "दुरात्मन् ठहर" यह कहा, तब राजा प्रणामपूर्वक विनय सहित कहने लगे ।१६। हे भगवन् ! मेरा यही धर्म है, हे प्रभो ! मेरा अपराध ग्रहण न कीजिये, हे मुनिवर ! मैंने अपने धर्म को नहीं छोड़ा है, इस प्रकार मेरे प्रति क्रोध न करें ।१७। क्योंकि धर्मज्ञ राजाओं का यही कार्य है वह धर्मशास्त्रानुसार कभी दान करें, रक्षा करें और कभी धनुष-धारण करके युद्ध करें ।१८

विश्वामित्र ने कहा—हे राजन् ! यदि तुम्हें अधर्म का भय है, तो शीघ्र कहो किसको दान करना चाहिये ? किसकी रक्षा करनी चाहिये ? और किसके संगयुद्ध करना चाहिये ? ।१९

हरिश्चन्द्र ने कहा—हे तपोनिधान ! जो सदा व्रतानुष्ठान में तत्पर और ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी को दान करना चाहिये, डरे हुए पुरुष की रक्षा करनी चाहिये और शत्रुओं के संग युद्ध करना उचित है ।२०

विश्वामित्र उवाच

यदि राजा भवान्सम्यग्राजधर्ममवेक्षते । निर्वेष्टुकामो विप्रोऽहं दीयतामिष्टदक्षिणा ॥२१

पक्षिण ऊचुः

एतद्राजा वचः श्रुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना । पुनर्जातमिवात्मानं मेने प्राह च कौशिकम् ॥२२
उच्यतां भगवन्यत्ते दातव्यमविशङ्कितम् । दत्तमित्येव तद्विद्धि यद्यपि स्यात्सुदुर्लभम् ॥२३
हिरण्यं वा सुवर्णं वा पुत्रः पुत्री कलेवरम् । प्राणा राज्यं पुरं लक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मनः ॥२४

विश्वामित्र उवाच

राजन्प्रतिगृहीतोऽयं यस्ते दत्तः प्रतिग्रहः । प्रयच्छ प्रथमं तावद्दक्षिणां राजसूयिकीम् ॥२५

राजोवाच

ब्रह्मंस्तामपि दास्यामि दक्षिणां भवतो ह्यहम् । व्रियतां द्विजशार्दूल यस्तवेष्टः प्रतिग्रहः ॥२६

विश्वामित्र उवाच

ससागरां धरामेतां सभूभृद्ग्रामपत्तनाम् । राज्यं च सकलं वीर रथाश्वगजसंकुलम् ॥२७
कोष्ठागारं च कोशं च यच्चान्यद्विद्यते तव । विना भार्यां च पुत्रं च शरीरं च तवानघ ॥२८
धर्मं च सर्वधर्मज्ञ योगान्तमनुगच्छति । बहुना वा किमुक्तेन सर्वमेतत्प्रदीयताम् ॥२९

विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! तुम यदि सम्पूर्ण राजधर्म जानते हो तो मैं मुमुक्षु ब्राह्मण हूँ, मुझको अभिलषित दक्षिणा दो ।२१

पक्षी बोले—हे जैमिने ! राजा हरिश्चंद्र ने यह वचन सुनकर हृदय से आह्लादित और प्रफुल्लित होकर अपना नया जन्म विचारा और मुनि से कहा ।२२। हे भगवन् ! आप अपनी अभिलाषा कहिये, मैं उसे देने को प्रस्तुत हूँ और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि, जो कठिन बात भी होगी, तो भी मैं पूर्ण करूँगा ।३। हे ब्रह्मन् ! आपको सुवर्ण, रत्न, पुत्र, स्त्री, शरीर, प्राण, राज्य, गाँव, धन जिसकी इच्छा हो सो लीजिये ।२४

विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! आप जो देंगे, समझ लीजिये कि, मैंने भी उसको ग्रहण कर ही लिया है किन्तु अब प्रथम राजसूय यज्ञ की दक्षिणा दो ।२५

राजा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! यह भी आपको दूँगा । हे द्विजशार्दूल ! राजसूय यज्ञ की दक्षिणास्वरूप जो आपकी रुचि हो आज्ञा कीजिये ।२६

विश्वामित्र बोले—हे वीर ! इस समस्त नगर, ग्राम और पर्वत इत्यादि के सहित ससागरा पृथ्वी में रथ, अश्व गजादिसंकुल सब राजत्व ।२७। कोष्ठागार (अन्तर्गृह) राजकोश इत्यादि तुम्हारी जो सब वस्तु हैं, हे पापरहित ! बिना भार्या पुत्र और अपनी देह के ।२८। और धर्मशास्त्र के अनुसार जो तुम्हारा अनुगमन करते हैं, अधिक और क्या कहूँ हे धर्मज्ञ ! तुम्हारा जो कुछ है, वह सब मुझको दो ।२९

पक्षिण ऊचुः

प्रहृष्टेनैव मनसा सोऽविकारमुखो नृपः । तस्यर्षेर्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह कृताञ्जलिः ॥३०

विश्वामित्र उवाच

सर्वस्वं यदि मे दत्तं राज्यमुर्वी बलं धनम् । प्रभुत्वं कस्य राजर्षे राज्यस्थे तापसे मयि ॥३१

हरिश्चन्द्र उवाच

यस्मिन्नपि मया काले ब्रह्मन्दत्ता वसुन्धरा । तस्मिन्नपि भवान्स्वामी किमुताद्य महीपतिः ॥३२

विश्वामित्र उवाच

यदि राजंस्त्वया दत्ता मम सर्वा वसुन्धरा । यत्र मे विषये स्वाम्यं तस्मान्निष्क्रान्तुमर्हसि ॥३३
श्रोणीसूत्रादिसकलं मुक्त्वा भूषणसंग्रहम् । तरुवल्कलमाबध्य सह पत्न्या सुतेन च ॥३४

पक्षिण ऊचुः

तथेति चोक्त्वा कृत्वा च राजा गन्तुं प्रचक्रमे । स्वपत्न्या शैब्यया सार्धं बालकेनात्मजेन च ॥३५
व्रजतः सततो रुद्ध्वा पन्थानं प्राह तं नृपम् । क्व यास्यसीत्यदत्त्वा मे दक्षिणां राजसूयिकीम् ॥३६

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन्राज्यमेतत्ते दत्तं निहतकण्टकम् । अवशिष्टमिदं ब्रह्मन्नद्य देहत्रयं मम ॥३७

पक्षी बोले—मुनिवर कौशिक के यह वचन सुनकर उन राजा हरिश्चन्द्र ने प्रसन्नचित्त और विकारहित, हाथ जोड़कर कहा "जो आज्ञा" यही होगा ।३०

विश्वामित्र बोले—पृथ्वी, बल और धन इत्यादि सर्वस्व ही जब मुझको दिया है तो मेरे तपस्वी होकर राजत्व करने से हे राजर्षे ! इस राज्य में किसका प्रभुत्व रहेगा ।३१

हरिश्चन्द्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैंने जिस समय आपको यह ससागरा पृथ्वी दी है, उस समय से आप ही इसके स्वामी हुए हैं अब फिर प्रभुत्व की बात क्यों पूछते हो ।३२

विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! तुमने जब यह ससागरा सब पृथ्वी मुझको दे दी है तो अब मेरा स्वामित्व होगया, तुम इस राज्य से निकल जाओ ।३३। श्रोणिसूत्र अर्थात् कटिभूषण इत्यादि जो गहने तुम्हारी पत्नी के और तुम्हारे पुत्र के शरीर में वर्तमान हैं वह सब भी त्याग वृक्षों की छाल पहन पत्नी और पुत्र के सहित मेरे राज्य से बाहर हो जाओ ।३४

पक्षी बोले—हे जैमिने ! राजा हरिश्चन्द्र ने मुनिवर विश्वामित्र के उन वचनों को स्वीकार कर उन्हीं के अनुसार सब कार्य किया और अपनी स्त्री शैब्या तथा शिशु (बालक) के संग जाने में प्रवृत्त हुए ।३५। उसी समय में ऋषिश्रेष्ठ विश्वामित्र ने उनके जाने का मार्ग रोककर उनसे कहा—हे नृप ! राजसूय यज्ञ की दक्षिणा बिना दिये कहाँ जाते हो ? ।३६

हरिश्चन्द्र बोले—हे भगवन् ! यह समस्त ही निष्कण्टक राज्य आपको दे दिया है, अब इन तीन जनों के देह को छोड़कर मेरे पास और क्या है ।३७

विश्वामित्र उवाच

तथापि खलु दातव्या त्वया मे यज्ञदक्षिणा । विशेषतो ब्राह्मणानां हन्त्यदत्तं प्रतिश्रुतम् ।।३८
यावत्तोषो राजसूये ब्राह्मणानां भवेन्नृप । तावदेव तु दातव्या दक्षिणा राजसूयिकी ।।३९
प्रतिश्रुत्य च दातव्यं योद्धव्यं चाततायिभिः । रक्षितव्यास्तथा चार्त्तास्त्वयैव प्राक्प्रतिश्रुतम् ।।४०

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन्साम्प्रतं नास्ति दास्ये कालक्रमेण ते । प्रसादं कुरु विप्रर्षे सद्भावमनुचिन्त्य च ।।४१

विश्वामित्र उवाच

किं प्रमाणो मया कालः प्रतीक्ष्यस्ते जनाधिप । शीघ्रमाचक्ष्व शापाग्निरन्यथा त्वां प्रधक्ष्यति ।।४२

हरिश्चन्द्र उवाच

मासेन तव विप्रर्षे प्रदास्ये दक्षिणाधनम् । साम्प्रतं नास्ति मे वित्तमनुज्ञां दातुमर्हसि ।।४३

विश्वामित्र उवाच

गच्छ गच्छ नृपश्रेष्ठ स्वधर्ममनुपालय । शिवश्च तेऽध्वा भवतु मा सन्तु परिपन्थिनः ।।४४

पक्षिण ऊचुः

अनुज्ञातः स गच्छेति जगाम वसुधाधिपः । पद्भ्यामनुचिता गन्तुमन्वगच्छत तं प्रिया ।।४५
तं सभार्यं नृपश्रेष्ठं निर्यान्तं ससुतं पुरात् । दृष्ट्वा प्रचुक्रुशुः पौरा राजश्चैवानुयायिनः ।।४६

विश्वामित्र बोले—हे नृपवर ! यद्यपि तीन देह के अतिरिक्त तुम्हारे पास और सम्पत्ति नहीं है किन्तु तो भी मुझको यज्ञ की दक्षिणा देनी ही पड़ेगी, विशेषकर ब्राह्मण के निकट प्रतिज्ञा की हुई वस्तु न देने से समस्त ही नष्ट होता है ।३८। हे राजन् ! राजसूय यज्ञ में जिससे ब्राह्मण संतुष्ट हो वही राजसूय यज्ञ की दक्षिणा है ।३९। और तुम्हीं ने तो यह प्रतिज्ञा की है कि, "अंगीकार करके दान, आततायी (शत्रु) के संग युद्ध और आर्त्त पुरुष की सम्यक् प्रकार से रक्षा करनी चाहिये ।४०

हरिश्चन्द्र ने कहा—हे भगवन् ! हे विप्रर्षे ! साधुता अवलम्बन करके प्रसन्न हों इस समय और कुछ नहीं है, किन्तु कालक्रम से अर्थात् कुछ दिन बीतने पर आपको दूँगा ।४१।

विश्वामित्र बोले—हे मनुजाधिप ! मैं कितने समय तक प्रतीक्षा करूँ ? शीघ्र कह । नहीं तो मेरी शापाग्नि में दग्ध होगा ।४२

हरिश्चन्द्र बोले—हे विप्रर्षे ! अब और कुछ नहीं है इस कारण आज्ञा दीजिये, एक महीने के बीच में ही आपकी दक्षिणा का धन दे दूँगा ।४३

विश्वामित्र बोले—हे नृपश्रेष्ठ ! जाओ ! जाओ ! स्वधर्म पालन करो ! तुम्हारा मंगल हो और तुम्हारे विघ्न दूर हों ।४४

पक्षी बोले—हे मुनिवर जैमिने ! तदनन्तर वह राजर्षिप्रवर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र मुनिवर विश्वामित्र के द्वारा जाने में अनुमोदित होकर चले गये और उन पैरों-पैरों जाने वाले के पीछे रानी शैब्या उनके पीछे-पीछे गई ।४५। इधर नगरवासी प्रजा-पुत्र-कलत्र के सहित राजा को नगर से बाहर होता देखकर

हा नाथ किं जहास्यस्मान्नित्यार्त्तिपरिपीडितान् । त्वं धर्मतत्परो राजन्पौरानुग्रहकृत्तथा ।।४७
नयास्मानपि राजर्षे यदि धर्ममवेक्षसे । मुहूर्त्तं तिष्ठ राजेन्द्र भवतो मुखपङ्कजम् ।।४८
पिबामो नेत्रभ्रमरैः कदा द्रक्ष्यामहे पुनः । यस्य प्रयातस्य पुरो यान्ति पृष्ठे च पार्थिवाः ।।४९
तस्यानुयाति भार्येयं गृहीत्वा बालकं सुतम् । यस्य भृत्याः प्रयातस्य यान्त्यग्रे कुञ्जरस्थिताः ।।५०
स एष पद्भ्यां राजेन्द्रो हरिश्चन्द्रोऽद्य गच्छति । हा राजन्सुकुमारं ते सुभ्रु सुत्वचमुन्नसम् ।।५१
पथि पांसुपरिक्लिष्टं मुखं कीदृग्भविष्यति । तिष्ठ तिष्ठ नृपश्रेष्ठ स्वधर्ममनुपालय ।।५२
आनृशंस्यं परो धर्मः क्षत्रियाणां विशेषतः । किं दारैः किं सुतैर्नाथ धनैर्धान्यैरथापि वा ।।५३
सर्वमेतत्परित्यज्य च्छायाभूता वयं तव । हा नाथ हा महाराज हा स्वामिन्किं जहासि नः ।।५४
यत्र त्वं तत्र हि वयं तत्सुखं यत्र वै भवान् । नगरं तद्भवान्यत्र स स्वर्गो यत्र नो नृपः ।।५५
इति पौरवचः श्रुत्वा राजा शोकपरिप्लुतः । अतिष्ठत्स तदा मार्गे तेषामेवानुकम्पया ।।५६
विश्वामित्रोऽपि तं दृष्ट्वा पौरवाक्याकुलीकृतम् । रोषामर्षाविवृत्ताक्षः समागम्य वचोऽब्रवीत् ।।५७
धिक्त्वां दुष्टसमाचारमनृतं जिह्मभाषिणम् । मम राज्यं च दत्त्वा यः पुनः प्राक्रष्टुमिच्छसि ।।५८
इत्युक्तः परुषं तेन गच्छामीति सवेपथुः । ब्रुवन्नेवं ययौ शीघ्रमाकर्षन्दयितां करे ।।५९

उच्च स्वर से रोदन करते-करते उनके पीछे चली ।४६। "हे महाराज ! आप धर्म में तत्पर और सदा प्रजापालन में अनुग्रह करने वाले हैं तो सदा अनेक उपद्रवों से पीड़ित इस प्रजा को किस कारण छोड़ते हो ।४७। हे राजर्षे ! यदि धर्म की ओर देखते हो तो हमको भी संग ले चलिये । हे राजेन्द्र ! कुछ काल ठहरिये हम एक बार आपके मुख कमल को ।४८। भ्रमर के समान पान करें, फिर आपका दर्शन कब होगा हाय ! जिनके गमनकाल में पृथ्वी के सब राजा आगे-पीछे चलते थे ।४९। उन्हीं राजाहरिश्चन्द्र की भार्या एक बालक सन्तान को लेकर उनका ही अनुगमन करती है, जिनके गमनकाल में हाथी के मस्तक पर चढ़कर समस्त भृत्य आगे-आगे दौड़ते थे ।५०। आज वही यह राजेन्द्र हरिश्चन्द्र स्वयं पैदल गमन करते हैं ।५१। हा राजन् ! शोभायमान दोनों भौएँ सुन्दर नासिका और शोभायमान त्वचा इत्यादि से शोभित आपका यह मुख मार्ग में धूरि से धूसरित होगा, तब क्या ही शोचनीय अवस्था धारण करेगा । अतएव हे महाराज ! मत जाओ , मत जाओ ! अपना धर्म पालन करो ।५२। विशेष कर अनृशंसता (दया) ही क्षत्रियों का प्रधान कर्म है, क्या स्त्री क्या पुत्र क्या धन अथवा क्या धान्य हमको किसी की आवश्यकता नहीं है ।५३। हम सभी त्यागकर आपके छायास्वरूप होंगे । हा नाथ ! हा महाराज ! हा प्रभो ! हमको मत छोड़िये ।५४। आप जहाँ जायँगें हम भी वहीं जायँगे आपको जिस स्थान में सुख है, हमारा भी वहीं वैभव है आप जिस स्थान में रहेंगे वही हमारा नगर है हमारे राजा जहाँ रहेंगे वही हमारा स्वर्ग है" ।५५। महाराज हरिश्चन्द्र प्रजा के इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त शोक में डूब गये और उनकी दया देखकर कुछ काल मार्ग में खड़े रहे ।५६। उसी समय मुनिवर विश्वामित्र जी राजा को पुरवासियों के वचनों से आकुल होता देखकर एक साथ आये और रोषामर्ष से दोनों नेत्र विघूर्णित करके कहने लगे ।५७। रे अदृढ़प्रतिज्ञ ! मिथ्यावादिन् ! दुष्ट ! यह समस्त राजत्व मुझको देकर अब फिर ग्रहण करने की इच्छा करता है, तुझको धिक्कार है ।५८। राजा हरिश्चन्द्र इस प्रकार गाधितनय के परुष वचन सुनकर "जाता हूँ जाता हूँ" कहते काँपते हुए देह से चलने लगे और वेगसहित शीघ्र दयिता शैब्या देवी का हाथ खींचा ।५९। कोमल अंगवाली शैब्या देवी

कर्षतस्तां ततो भार्यां सुकुमारीं श्रमातुराम् । सहसा दण्डकाष्ठेन ताडयामास कौशिकः ॥६०
तां तथा ताडितां दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रो महीपतिः । गच्छामीत्याह दुःखार्तो नान्यत्किञ्चिदुदाहरत् ॥६१
अथ विश्वे तदा देवाः पञ्च प्राहुः कृपालवः । विश्वामित्रः सुपापोऽयं लोकान्कान्समवाप्स्यति ॥६२
येनायं यज्वनां श्रेष्ठः स्वराज्यादवरोपितः । कस्य वा श्रद्धया पूतं सुतं सोमं महाध्वरे ॥
पीत्वा वयं प्रयास्यामो मुदं मन्त्रपुरःसरम् ॥६३

पक्षिण ऊचुः

इति तेषां वचः श्रुत्वा कौशिकोऽतिरुषान्वितः । शशाप तान्मनुष्यत्वं सर्वे यूयमवाप्स्यथ ॥६४
प्रसादितश्च तैः प्राह पुनरेव महामुनिः । मानुषत्वेऽपि भवतां भवित्री नैव सन्ततिः ॥६५
न दारसंग्रहश्चैव भविता न च मत्सरः । कामक्रोधविनिर्मुक्ता भविष्यथ सुराः पुनः ॥६६
ततोऽवतेरुरंशैः स्वैर्देवास्ते कुरुवेश्मनि । द्रौपदीगर्भसम्भूताः पञ्च वै पाण्डुनन्दनाः ॥६७
एतस्मात्कारणात्पञ्च पाण्डवेया महारथाः । न दारसंग्रहं प्राप्ताः शापात्तस्य महामुने ॥६८
एत्तते सर्वमाख्यातं पाण्डवेयकथाश्रयम् । प्रश्नं चतुष्टयं गीतं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥६९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे द्रौपदेयोत्पत्तिकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७।

अत्यन्त श्रमातुर हो रही थी, गमन कर सकने के कारण राजा हरिश्चंद्र शीघ्र-शीघ्र चलने के लिए हाथ पकड़ कर उसको खींचते थे किन्तु तो भी विश्वामित्र मुनि दण्डे से रानी की पीठ में आघात करने लगे ।६०। महीपति हरिश्चन्द्र ने देवी को इस प्रकार ताड़ित होता देखकर अत्यन्त दुःखी हो अन्य कोई उत्तर नहीं दिया, केवलमात्र यही कहा कि भगवन् ! जाता हूँ ।६१। यह कार्य देखकर पंचजन लोकपाल विश्वेदेवा देवताओं ने अत्यन्त दया के वश होकर कहा "इस पापात्मा विश्वामित्र ने यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ नरपति हरिश्चन्द्र को राज्य से भ्रष्ट किया, इसको कौन सा लोक प्राप्त होगा ? अथवा हम किसके यज्ञ में श्रद्धापूत मंत्र संस्कृत पवित्र सोमपान करके आनन्दित होंगे" ।६२-६३

पक्षी बोले—पाँचों विश्वेदेवाओं के यह वचन सुनकर मुनिवर कौशिक ने अत्यन्त क्रोधित हो "रे पापात्माओ ! तुम सब मनुष्य होगे" यह शाप दिया ।६४। तब उन्होंने इनकी प्रार्थना की । अनन्तर विश्वामित्र ने विश्वदेवाओं के द्वारा प्रसन्न होकर फिर कहा—"हे देवताओ ! यद्यपि तुम मनुष्य देह धारण करोगे, किन्तु तो भी तुम स्त्रीग्रहण और सन्तान उत्पन्न नहीं करोगे । तुम मत्सरी नहीं होगे और कामक्रोधादि से मुक्त रहोगे" ।६५-६६। तदनन्तर वह विश्वेदेवा द्रौपदी के गर्भ द्वारा उत्पन्न होकर पाँच पाण्डुनन्दनरूप में अपने-अपने अंश सहित कुरुवंश में उत्पन्न हुए ।६७। हे महामुने ! इन महर्षि विश्वामित्र के शाप के कारण ही पाँच महारथ पाण्डु के पुत्रों का विवाह नहीं हुआ ।६८। हे जैमिने ! पाण्डवों की कथा का आश्रय करके इन चारों प्रश्नों का उत्तर यथावत् तुम्हारे निकट वर्णन किया अब और क्या सुनने की इच्छा है ? सो कहो ।६९

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में द्रौपदेयोत्पत्तिकथन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अथाष्टमोऽध्यायः (८)

हरिश्चन्द्रोपाख्यानम्

जैमिनिरुवाच

भवद्भिरिदमाख्यातं यथाप्रश्नमनुक्रमात् । महत्कौतूहलं मेऽस्ति हरिश्चन्द्रकथां प्रति ।१
अहो महात्मना तेन प्राप्तं कृच्छ्रमनुत्तमम् । कच्चित्सुखमनुप्राप्तं तादृगेव द्विजोत्तमाः ।।२

पक्षिण ऊचुः

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा स राजा प्रययौ शनैः । शैव्ययानुगतो दुःखी भार्यया बालपुत्रया ।।३
स गत्वा वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम् । नैषा मनुष्यभोग्येति शूलपाणेः परिग्रहः ।।४
जगाम पद्भ्यां दुःखार्त्तः सह पत्न्यानुकूलया । पुरीं प्रविश्य ददर्श विश्वामित्रमुपस्थितम् ।।५
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत् । प्राह चैवाञ्जलिं कृत्वा हरिश्चन्द्रो महामुनिम् ।।६
इमे प्राणाः सुतश्चायमियं पत्नी मुने मम । येन ते कृत्यमस्त्याशु तद्गृहाणार्घ्यमुत्तमम् ।।७
यद्वान्यत्कार्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ।।८

विश्वामित्र उवाच

पूर्णः स मासो राजर्षे दीयतां मम दक्षिणा । राजसूयनिमित्तं हि स्मर्यते स्ववचो यदि ।।९

अध्याय ८

हरिश्चन्द्रोपाख्यान

जैमिनि ने कहा—हे द्विजोत्तम ! मैंने जिस प्रकार प्रश्न क्रमानुसार किये थे, आपने क्रमानुसार उन सब प्रश्नों का यथावत् उत्तर दिया है, अब हरिश्चन्द्र की कथा में मुझको अत्यन्त कौतूहल हुआ है ।१। अहो ! उन महात्मा ने क्या ही कष्ट पाया था, हे द्विजोत्तमो ! क्या उन्होंने वैसा सुख भी पाया था ? ।२

पक्षी बोले—राजा हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र के वचन सुनने से अत्यन्त दुःखी होकर धीरे-धीरे गमन किया और बालक पुत्र को लेकर रानी शैब्या उनके संग चली ।३। वह पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र मनोहर वाराणसीपुरी में गये क्योंकि यह नगरी मनुष्यभोग्या अर्थात् मनुष्यों के भोग की नहीं है, कारण कि, वह शूलपाणि महादेव जी के द्वारा विरचित हुई है ।४। वह दुःखित चित्त से इस प्रकार चिन्ता करते अनुकूल पत्नी के सहित पैरों से ही गये और वाराणसी में प्रवेश करने के समय देखा कि, मुनिवर विश्वामित्र सन्मुख खड़े हैं ।५। नरपति हरिश्चन्द्र ने महामुनि को आया हुआ देख हाथ जोड़कर विनीत भाव से कहा ।६। हे प्रभो ! मेरा यह प्राण, यह पुत्र और यह पत्नीमात्र विद्यमान हैं, इनमें जिसकी आपको रुचि हो, आज्ञा कीजिये, वही आपके अर्घ्यस्वरूप में कल्पित हो ।७। और इस समय मैं क्या करूँ ? यह भी अनुमति दीजिये ।८

विश्वामित्र बोले—हे राजर्षे ! क्या राजसूय नैमित्तिक अपना वचन स्मरण है ? एक महीना पूरा हो गया है, अब मेरी दक्षिणा दो ।९

हरिश्चन्द्र उवाच

ब्रह्मन्नद्यैव सम्पूर्णो मासोऽम्लानतपोधन । तिष्ठत्येतद्दिनार्धं यत्तत्प्रतीक्षस्व मा चिरम् ॥१०

विश्वामित्र उवाच

एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः । शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रदास्यसि ॥११

पक्षिण ऊचुः

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो राजा चाचिन्तयत्तदा । कथमस्मै प्रदास्यामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥१२
कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थः साम्प्रतं मम । प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे नाहं यायामधः कथम् ॥१३
किमु प्राणान्विमुञ्चामि कां दिशयाम्यकिञ्चनः । यदि नाशं गमिष्यामि अप्रदाय प्रतिश्रुतम् ॥१४
ब्रह्मस्वहृत्कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः । अथवा प्रेष्यतां यास्ये वरमेवात्मविक्रयः ॥१५

पक्षिण ऊचुः

राजानं व्याकुलं दीनं चिन्तयानमधोमुखम् । प्रत्युवाच तदा पत्नी वाष्पगद्‌गदया गिरा ॥१६
त्यज चिन्तां महाराज स्वसत्यमनुपालय । श्मशानवद्वर्जनीयो नरः सत्यबहिष्कृतः ॥१७
नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य तु । यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यपरिपालनम् ॥१८
अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः । भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम् ॥१९

हरिश्चन्द्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हे तपोधन ! आज ही महीना पूरा होगा, अभी आधा दिन जो शेष है, आप उसी की प्रतीक्षा कीजिये, फिर अधिक प्रतीक्षा करनी नहीं पड़ेगी ।१०

विश्वामित्र बोले—हे महाराज ! यही हो, मैं फिर आता हूँ, यदि आज मुझको दक्षिणा नहीं दोगे तो निःसन्देह शाप दूँगा ।११

पक्षियों ने कहा—विप्रोत्तम विश्वामित्र जी यह कहकर चले गये, तब राजा चिन्ता करने लगे कि, "इनको पूर्व कही हुई दक्षिणा किस प्रकार से दूँगा ।१२। मेरे समृद्धिशाली बन्धुवर्ग कहाँ हैं ? और कहाँ मेरी अर्थसम्पत्ति अर्थात् धन है ! प्रतिग्रह से युक्त हुआ मैं किस प्रकार अधोगामी नहीं होऊँगा ।१३। कुछ भी तो पास नहीं है, किस दिशा में जाऊँ ! क्या प्राणत्याग करूँ ? यदि अंगीकार की हुई वस्तु बिना दिये प्राण त्याग करूँ ।१४। तो ब्रह्मअंश हरण करने के पाप में लिप्त होकर अत्यन्त नीचाधम कृमिरूप में जन्म ग्रहण करूँगा, या आत्मा को बेंचकर संन्यासी होऊँगा" ।१५।

पक्षी बोले—राजा को इस प्रकार दुःखित व्याकुल और नीचे को मुख किये चिन्ता करता हुआ देख पत्नी शैब्याने नेत्रों में आँसू भर कर गद्‌गद वचन से कहा ।१६। 'हे महाराज ! चिन्ता का त्याग कीजिये ! अपना अंगीकार किया हुआ वचन पालन कीजिये । असत्य का प्रतिपालन करने वाला पुरुष श्मशान के समान सम्यक् प्रकार से त्यागने योग्य है ।१७। हे पुरुषव्याघ्र ! पण्डितजन कहते हैं, अपने सत्य का पालन करने में जैसा धर्म होता है वैसा अन्य किसी में नहीं होता ।१८। जिसका वचन असत्य होता है, उसके अग्निहोत्रादि यज्ञ वेदादि का पढ़ना और दानादि सभी कार्य विफल होते हैं ।१९। धर्मशास्त्र में पण्डितों ने

सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम् । तारणायानृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ॥२०
सप्ताश्वमेधानाहृत्य राजसूयं च पार्थिव । कृतिर्नाम च्युतः स्वर्गादसत्यवचनात्सकृत् ॥२१
राजञ्जातमपत्यं मे इत्युक्त्वा प्ररुरोद ह । बाष्पाम्बुप्लुतनेत्रां तामुवाचेदं महीपतिः ॥२२

हरिश्चंद्र उवाच

विमुञ्च भद्रे सन्तापमयं तिष्ठति बालकः । उच्यतां वक्तुकामासि यद्वा त्वं गजगामिनि ॥२३

पत्न्युवाच

राजञ्जातमपत्यं मे सतां पुत्रफलाः स्त्रियः । स मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम् ॥२४

पक्षिण ऊचुः

एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः । प्रतिलभ्यं स संज्ञां च विललापातिदुःखितः ॥२५
महद्दुःखमिदं भद्रे यत्त्वमेवं ब्रवीषि माम् । किं तव स्मितसंल्लापा मम पापस्य विस्मृताः ॥२६
हा हा कथं त्वया शक्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते । दुर्वाच्यमेतद्वचनं कर्तुं शक्नोम्यहं कथम् ॥२७
इत्युक्त्वा स नरश्रेष्ठो धिग्धिगित्यसकृद्ब्रुवन्। निपपात महीपृष्ठे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ॥२८
शयान भुवि तं दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रं महीपतिम् । उवाचेदं सकरुणं राजपत्नी सुदुःखिता ॥२९

पत्न्युवाच

हा महाराज कस्येदमपध्यानमुपस्थितम् । यत्त्वं निपतितो भूमौ रांकवास्तरणोचितः ॥३०

कहा है कि, सत्य वचन जिस प्रकार तारने के लिये सदा समर्थ होता है, मिथ्या वचन भी उसी प्रकार नीचे गिराने का एकमात्र प्रधान कारण है ।२०। कृति राजा सात अश्वमेध करके तथा एक राजसूय यज्ञ करके एक बार असत्य भाषण करने से स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ ।२१। हे राजन् । मेरे सन्तान हुई है" यह कहकर रोने लगी । तब महीपति बाष्प से आकुल नेत्र हुई रानी से कहने लगे ।२२

हरिश्चन्द्र ने कहा—"हे भद्रे ! संताप को त्याग दो, यह तुम्हारी शिशुसन्तान वर्तमान है, हे गजगामिनि ! जो कहने की इच्छा हो वह कहो ।२३

राजपत्नी ने कहा—"हे राजन् । मेरे पुत्र संतान हो गई है, संतान के लिये ही साधु पुरुषों को पत्नी की आवश्यकता होती है, अतएव अब मुझे बेचकर ब्राह्मण को दक्षिणा दो" ।२४

पक्षी बोले—पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र पत्नी का यह वचन सुनकर मोह में आ मूर्च्छित हो गये और फिर वह चेतना लाभ करके अत्यन्त दुःखितचित्त से इस प्रकार विलाप करने लगे ।२५। हे भद्रे ! तुम जो कहती हो, यह बात अत्यन्त कष्टदायक है, यह पापात्मा क्या तुम्हारा मुस्कराकर बोलना भूल गया है ? ।२६। हे शुचिस्मिते ! नहीं तो तुम्हारे मुख से ऐसे दुर्वचन क्यों निकलते ! अथवा मैं किस प्रकार ऐसे कार्य के करने में समर्थ होता, जो ऐसे वचन कहता ।२७। नरश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र इस प्रकार कहकर निरन्तर "हा धिक् हा धिक्" करते हुए पृथ्वी में गिर गये और तत्काल मूर्च्छा को प्राप्त हुए ।२८। महीपति हरिश्चन्द्र को पृथ्वी में शयन किये देखकर राजपत्नी शैब्या अत्यन्त दुःखित हुई और करुणस्वर से कहने लगी ।२९

पत्नी बोली—कि, हाय महाराज ! क्या ही अचिन्तनीय अवस्था उपस्थित हुई है जो हरिण के

येन कोटचप्रशो वित्तं विप्राणामपवर्जितम् । स एष पृथिवीनाथो भूमौ स्वपिति मे पतिः ।।३१
हा कष्टं किं तवानेन कृतं देव महीक्षिता । यदिन्द्रोपेन्द्रतुल्योऽयं नीतः पापामिमां दशाम् ।।३२
इत्युक्त्वा सापि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपात ह । भर्तृदुःखमहाभारेणासह्येन निपीडिता ।।३३
तौ तथा पतितौ भूमावनाथौ पितरौ शिशुः । दृष्ट्वात्यन्तक्षुधाविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः ।।३४
तात तात ददस्वान्नमम्बाम्ब भोजनं दद । क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रं शुष्यते तथा ।।३५

पक्षिण ऊचुः

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः । कालकल्प इव क्रुद्धो धनं संमार्गितुं तदा ।।
दृष्ट्वा तु तं हरिश्चन्द्रः पतितो भुवि मूर्च्छितः ।।३६
स वारिणा समभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत् । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र तां ददस्वेष्टदक्षिणाम् ।।३७
ऋणं धारयतो दुःखमहन्यहनि वर्द्धते । आप्यायमानः स तदा हिमशीतेन वारिणा ।।३८
अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च । पुनर्मोहं समापेदे स च क्रोधं ययौ मुनिः ।।३९
स समाश्वास्य राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः । दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धर्ममवेक्षसे ।।४०
सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी । सत्यं चोक्तः परा धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ।।४१
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् । अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ।।४२

रोम की कोमल शय्या पर शयन करते थे, वही आज धरातल में पड़े हैं ।३०। जिन्होंने अनन्त कोटि गोधन ब्राह्मणों को सहर्ष दान किया है वही मेरे स्वामी पृथ्वीनाथ हरिश्चंद्र मिट्टी के ऊपर शयन कर रहे हैं ।३१। अहो ! क्या कष्ट है, हा दैव ! इन्होंने तेरा क्या अपराध किया है, जो इन उपेन्द्रतुल्य राजा को इस प्रकार पापियों के समान दुर्दशाग्रस्त किया ।३२। हे जैमिने ! वह सुश्रोणि राजमहिषी शैब्या इस प्रकार अनेक विलाप करती हुई स्वामी के असह्य दुःख भार से पीड़ित होकर अचेतन अवस्था में पृथ्वी पर गिर गई ।३३। इधर बालक राजपुत्र माता-पिता को इस अवस्था में पृथ्वी पर पड़ा हुआ देख भूँख से अत्यन्त आतुर व दुःखित होकर कहने लगा ।३४। तात ! तात ! मुझको भोजन दो । माता ! माता ! मुझे भोजन दे, मुझको बहुत ही भूख लगी है, मेरी जीभ का अग्रभाग सूखा जाता है ।३५

पक्षी बोले—हे जैमिने ! इस अवसर पर धन लेने को काल के समान क्रोधित हुए महातपा विश्वामित्र जी हठात् आ पहुँचे और राजा हरिश्चन्द्र को मूर्च्छित अवस्था से पृथ्वी में पड़ा हुआ देख ।३६। जल के छींटे देकर राजा से कहने लगे हे राजेन्द्र ! उठकर दक्षिणा दो ।३७। क्योंकि ऋण धारण करने से दुःख दिन-दिन बढ़ता ही है । तब राजा हरिश्चन्द्र ने हिम के समान शीतल जल से सिञ्चित होकर ।३८। चैतन्य लाभ किया और सामने विश्वामित्र को देखते ही फिर मूर्च्छित हो गये । तब द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रजी अत्यन्त क्रोधित होकर ।३९। राजा को समझाते हुए कहने लगे हे राजन् ! यदि तुम धर्म की ओर देखते हो, तो मेरी दक्षिणा दे दो ।४०। देखो, सूर्य केवल सत्य की ही सहायता से ताप देते हैं, पृथ्वी एकमात्र सत्य में ही प्रतिष्ठित है, सत्य ही एकमात्र धर्म कहा गया है और स्वर्ग भी एकमात्र सत्य में ही प्रतिष्ठित रहता है, देखो ।४१। हजार अश्वमेध यज्ञ का फल और केवल सत्य यदि तराजू की दण्डी में रखा जाय, तो हजार अश्वमेध के फल की अपेक्षा सत्य ही अधिक होता है ।४२। अथवा ऐसे अनाय पापमति,

अथवा किं ममैतेन साम्ना प्रोक्तेन कारणम् । अनाय पापसङ्कल्पे क्रूरे चानृतवादिनि ॥४३
त्वयि राज्ञि प्रभवति सद्भावः श्रूयतामयम् । अद्य मे दक्षिणां राजन्न दास्यति भवान्यदि ॥४४
अस्ताचलं प्रयातेऽर्के शप्स्यामि त्वां ततो ध्रुवम् । इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः ॥४५
कान्दिग्भूतोऽधनो निःस्वो नृशंसधनिनार्दितः । भार्यास्य भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम ॥४६
मा शापानलनिर्दग्धः पञ्चत्वमुपयास्यसि । स तया चोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः ॥४७
प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं तव निर्घृणः । नृशंसैरपि यत्कर्त्तुं न शक्यं तत्करोम्यहम् ॥४८
यदि मे शक्यते वाणी वक्तुमीदृक्सुदुर्वचः । एवमुक्त्वा ततो भार्यां गत्वा नगरमातुरः ॥
बाष्पापिहितकण्ठाक्षस्ततो वचनमब्रवीत् ॥४९

राजोवाच

भो भो नागरिकाः सर्वे श्रृणुध्वं वचनं ममः । किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः ॥५०
राक्षसो वातिकठिनस्ततः पापतरोऽपि वा । विक्रेतुं दयितां प्राप्तो यो न प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥५१
यदि वः कस्यचित्कार्यं दास्या प्राणेष्टया मम । सब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्सन्धारयाम्यहम् ॥५२

पक्षिण ऊचुः

अथ वृद्धो द्विजः कश्चिदागत्याह नराधिपम् । समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः ॥५३
अस्ति मे वित्तमस्तोकं सुकुमारी च मे प्रिया । गृहकर्म न शक्नोति कर्त्तुमस्मात्प्रयच्छ मे ॥५४

क्रूर स्वभाव और मिथ्यावादी इस राजा से इस प्रकार सामवाद प्रयोग करने की मुझको क्या आवश्यकता है ।४३। हे राजन् ! मैं सरल भाव से कहता हूँ, सुनो, यदि इस समय तुम मुझे दक्षिणा नहीं दोगे ।४४। तो सूर्य देव के अस्ताचल में पहुँचते ही अर्थात् संध्या होते ही मैं निःसन्देह शाप दूँगा । विप्रवर विश्वामित्र जी यह कहकर चले गये तब राजा भी ब्रह्मशाप के भय से अत्यन्त घबराने लगे ।४५। इधर हम अत्यन्त निर्धन और नीच दशा में पड़े हुये हैं, उधर धनी पुरुष बड़े कठोर हैं क्या करें ! क्या करने से भला होगा ? और किस ओर जायँ ! इस बात में कुछ स्थिर नहीं कर सकते । इसी समय में उनकी पत्नी ने फिर कहा हे महाराज ! मैंने जो कहा है, वही कीजिये ।४६। उपाय रहते शापाग्नि में दग्ध होकर मृत्यु को प्राप्त मत होओ ! तब राजा हरिश्चन्द्र ने पत्नी शैब्या के द्वारा बार-बार इस भाँति अनुरोध को प्राप्त होकर ।४७। कहा—हे भद्रे ! मैं घृणाहीन होकर तुम्हें बेचूँगा । अत्यन्त निष्ठुर कार्य, जिसके करने की सामर्थ्य नहीं है। वही करूँगा ।४८। अच्छा देखो ऐसे कठिन वचन कह सकूँ या नहीं, नरपति भार्या से इस प्रकार कह अत्यन्त व्याकुल होकर नगर में गये और आँसुओं से कंठ रोककर यह वचन कहने लगे ।४९। हे नरगवासियों ! सब मेरी बात सुनो—आप क्या पूछते हैं ? तुम कौन हो ? मैं नृशंस हूँ मनुष्य नहीं ।५०। मैं राक्षस वा उसकी अपेक्षा भी अतिकठिन और पापात्मा हूँ, क्योंकि प्राणप्रिया पत्नी को बेचने के लिए आकर भी मेरा प्राण बाहर नहीं निकला ।५१। मेरे प्राणों से भी प्यारी दासी में यदि आपका प्रयोजन हो, तो जब तक संध्या न हो अर्थात् मेरे प्राण रहते-रहते शीघ्र कहो ।५२

पक्षी बोले—अनन्तर किसी बूढ़े ब्राह्मण ने आकर राजा से कहा, मैं धन देकर दासी मोल लूँगा अतएव मुझको दो ।५३। मेरे अनेक प्रकार की धनसम्पत्ति है और मेरी प्रिया अत्यन्त कोमल अंगवाली है

कर्मण्यतावयोरूपशीलानां तव योषितः । अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम् ॥५५
एवमुक्तस्य विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः । व्यदीर्य्यत मनो दुःखान्न चैनं किञ्चिदब्रवीत् ॥५६
ततः स विप्रो नृपतेर्वल्कलान्ते दृढं धनम् । बद्ध्वा केशेष्वथादाय नृपपत्नीमकर्षयत् ॥५७
रुदोद रोहितास्योऽपि दृष्ट्वा कृष्टां तु मातरम् । हस्तेन वस्त्रमाकर्षन्काकपक्षधरः शिशुः ॥५८
मुञ्चार्य मुञ्च तावन्मां यावत्पश्याम्यहं शिशुम् । दुर्लभं दर्शनं तात पुनरस्य भविष्यति ॥५९
पश्यैहि वत्स मामेवं मातरं दास्यतां गताम् । मां मा स्प्राक्षी राजपुत्र अस्पृश्याहं तवाधुना ॥६०
ततः स बालः सहसा दृष्ट्वा कृष्टां तु मातरम् । समभ्यधावदम्बेति रुदन्नस्राविलेक्षणः ॥६१
तमागतं द्विजः क्रोधाद्बालमस्याहनत्पदा । वदंस्तथापि सोऽम्बेति नैवामुञ्चत मातरम् ॥६२

राजपत्न्युवाच

प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमं च बालकम् । क्रीतापि नाहं भवतो विनैनं कार्यसाधिका ॥६३
इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादसुमुखो भव । मां संयोजय बालेन वत्सेनेव पयस्विनीम् ॥६४

ब्राह्मण उवाच

गृह्यतां वित्तमेतत्ते दीयतां बालको मम । स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम् ॥
शतं सहस्रं लक्षं च कोटिमूल्यं तथापरैः ॥६५

घर के कार्य करने में असमर्थ है, इस कारण यह मुझको ही दे दो ।५४। तुम पत्नी के कर्मदक्षता (चतुरता) अवस्था, रूप और स्वाभव के अनुरूप यह धन लेकर इस स्त्री को मुझे दो ।५५। ब्राह्मण के इस प्रकार कहने पर अत्यन्त दुःख के कारण राजा हरिश्चन्द्र का हृदय विदीर्ण होने लगा और उसको कुछ उत्तर नहीं दिया ।४६। अनन्तर वह ब्राह्मण राजा के वल्कल वस्त्र में वह धन दृढ़रीति से बांध रानी के केश पकड़कर खींचने लगा ।५७। काकपक्षधारी बालक रोहिताश्व माता को आकृष्ट होता देख हाथ से उसके वस्त्र का अंचल खींचता हुआ रोने लगा ।५८। राजपत्नी बोली——हे आर्य ! एक बार मुझे छोड़ दो ! मैं एक बार इस बालक पुत्र का मुख देख लूँ । हे तात ! फिर मैं इसको नहीं देख सकूँगी ।५९। हे वत्स ! आओ देखो मैं तुम्हारी माता दासी हुई हूँ । हे राजपुत्र ! अब मुझको स्पर्श मत करना, अब मैं तुम्हारे स्पर्श करने योग्य नहीं रही ।६०। अनन्तर बालक सहसा माता को आकृष्ट होता देखकर "मा ! मा !" शब्द से रोता हुआ आँखों में आँसू भरकर दौड़ने लगा ।६१। तब बूढ़े ब्राह्मण ने अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसहित बालक को लात मारा, किन्तु बालक तो भी "मा ! मा !" कहकर दौड़ने लगा, जननी को किसी प्रकार भी नहीं छोड़ा ।६२

राजपत्नी बोली—हे नाथ ! अनुग्रह कीजिये ! इस बालक को भी क्रय करो अर्थात् मोल लो क्योंकि मेरे मोल लेने पर भी इस बालक के विना मैं किसी प्रकार आपका कार्य नहीं कर सकूँगी ।६३। अतएव इस हतभागिनी के ऊपर यही अनुग्रह कीजिए कि, वत्स के संग पयस्विनी गायके समान इस बालक के संग मुझको संयोजित कीजिये ।६४

ब्राह्मण बोला—यह धन ग्रहण करो बालक को मुझे दो, धर्मशास्त्रवेत्ता पण्डितों ने स्त्री और पुरुष दोनों का ही मूल्य शत, सहस्र, लक्ष वा करोड़ मुद्रा निरूपित किया है ।६५

पक्षिण ऊचुः

तथैव तस्य तद्वित्तं बद्धोत्तरपटे ततः । प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबन्धयत् ॥६६
नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्यापुत्रौ स पार्थिवः । विललाप सुदुःखार्तो निःश्वस्योष्णं पुनः पुनः ॥६७
यां न वायुर्न चादित्यो नेन्दुर्न च पृथग्जनः । दृष्टवन्तः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता ॥६८
सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकराङ्गुलिः । सम्प्राप्तो विक्रयं बालो धिङ्मामस्तु सुदुर्मतिम् ॥६९
हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्यस्य दुर्नयैः । दैवाधीनां दशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक् ॥७०

पक्षिण ऊचुः

एवं विलपतो राज्ञः स विप्रोऽन्तरधीयत । वृक्षगेहादिभिस्तुङ्गैस्तावादाय त्वरान्वितः ॥७१
विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो नृपं वित्तमयाचत । तस्मै समर्पयामास हरिश्चन्द्रोऽपि तद्धनम् ॥७२
तद्वित्तं स्तोकमालोक्य दारविक्रयसम्भवम् । शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥७३
क्षत्रबन्धो ममेमां त्वं सदृशीं यज्ञदक्षिणाम् । मन्यसे यदि तत्क्षिप्रं पश्य त्वं मे बलं परम् ॥७४
तपसोऽत्र सुतप्तस्य ब्राह्मण्यस्यामलस्य च । मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च ॥७५

राजोवाच

अन्यां दास्यामि भगवन्कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् । साम्प्रतं नास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ॥७६

पक्षी बोले—तदनन्तर उस बूढ़े ब्राह्मण ने नरपति के दुपट्टे में वह धन भी पूर्ववत् बाँधकर बालक और राजमहिषी को एकत्र बांध लिया ।६६। तब महीपति हरिश्चन्द्र भार्या और पुत्र को ब्राह्मण के संग जाता हुआ देखकर कातरतासहित बार-बार दीर्घोष्ण श्वास छोड़ते हुए अत्यन्त विलाप करने लगे ।६७। कि, हाय ! जिसको वायु, सूर्य, चन्द्र वा अन्य पुरुष ने पहले कभी नहीं देखा है, आज मेरी उसी पत्नी को दासी भाव अवलम्बन करना पड़ा ।६८। हाय ! सूर्यवंश में जिसका जन्म है, जिसकें हाथ की सब अंगुलियाँ अत्यन्त सुकुमार हैं, उस शिशुबालक को भी आज बेचना पड़ा, हाय ! मैं दुर्मति हूँ, मुझको धिक्कार है ।६९। हा प्रिये ! हा शिशो ! हे वत्स ! मेरे ही अन्याय आचरण के कारण तुमको यह दैवदुर्दशा भोगनी पड़ी है, हाय ! तो भी मेरी मृत्यु नहीं हुई, मुझको धिक्कार है ।७०

पक्षी बोले—इस प्रकार राजा विलाप करते रहे और ब्राह्मण भी शीघ्रतासहित राजपुत्र तथा राजमहिषी को लेकर अत्यन्त ऊँचे वृक्ष और महलों के अन्तर में चला गया ।७१। उसी समय मुनिवर विश्वामित्र ने भी सहसा आकर राजा से धन माँगा तब राजा हरिश्चन्द्र ने भी वह सब धन उनको समर्पण किया ।७२। विश्वामित्र मुनि राजा के स्त्री-पुत्र बिकने का धन बहुत थोड़ा देख, अत्यन्त क्रोधित हो शोकाभिभूत राजा से कहने लगे ।७३। रे क्षत्रियाधम ! इस सामान्य धन को यदि मेरे यज्ञ की उपयुक्त दक्षिणा विचारता है तो अभी मेरी महातपस्या का बल देख ।७४। निर्मल ब्रह्मतेज, उग्र प्रभाव, शुद्ध अध्ययन इन सबका बल देख ।७५

राजा बोले—राजा ने अत्यन्त विनीत भाव से कहा—हे भगवन् ! कुछ काल अपेक्षा कीजिये शेष दक्षिणा दूँगा, इस समय और कुछ नहीं है, यह देखो पत्नी पुत्र तक को बेच दिया है ।७६

विश्वामित्र उवाच

चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप । एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया ।।७७

पक्षिण ऊचुः

तमेव मुक्त्वा राजेन्द्रं निष्ठुरं निर्गुणं वचः । तदादाय धनं तूर्णं कुपितः कौशिको ययौ ।।७८
विश्वामित्रे गते राजा भयशोकादिमध्यगः । स्वविक्रयं विनिश्चित्य प्रोवाचोच्चैरधोमुखः ।।७९
वित्तक्रीतेन यो ह्यर्थी मया प्रेष्येण मानव । स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्तपति भास्करः ।।८०
अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चण्डालरूपधृक् । दुर्गन्धो विकृतो रूक्षः श्मश्रुलो दन्तुरो घृणी ।।८१
कृष्णो लम्बोदरः पिङ्गरूक्षाक्षः परुषाक्षरः । गृहीतपक्षिपुञ्जश्च शवमाल्यैरलंकृतः ।।८२
कपालहस्तो दीर्घास्यो भैरवोऽतिवदन्मुहुः । श्वगणाभिवृतो घोरो यष्टिहस्तो निराकृतिः ।।८३

चण्डाल उवाच

अहमर्थी त्वया शीघ्रं कथयस्वात्मवेतनम् । स्तोकेन बहुना वापि येन वै लभ्यते भवान् ।।८४

पक्षिण ऊचुः

तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टिं सुनिष्ठुरम् । वदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः ।।८५

चण्डाल उवाच

चण्डालोऽहमिह ख्यातः प्रवीरेति पुरोत्तमे । विख्यातो वध्यवधको मृतकम्बलहारकः ।।८६

विश्वामित्र बोले—हे नराधिप ! यह जो केवल दिन का चौथा भाग शेष है मैं इसी की प्रतीक्षा करुँगा फिर तुम कोई उत्तर नहीं करना ।७७

पक्षी बोले—मुनिवर कौशिक उन राजा से क्रोधपूर्ण घृणाहीन और निष्ठुर वचन कह उस धन को लेकर चले गये ।७८। विश्वामित्र के चले जाने पर नरपति हरिश्चन्द्र भय और शोकसागर में मग्न हो, सब प्रकार निश्चय कर नीचे को मुख किये उच्च स्वर से कहने लगे ।७९। कि, "यदि कोई पुरुष धनप्रदानपूर्वक मुझको मोल लेकर सेवक बनाने की इच्छा करे वह सूर्यदेव के अस्त होने से पहले ही मुझसे कहे' ।८०। अनन्तर स्वयं धर्म चाण्डाल का रूप धारण करके शीघ्र आये । उसके गात्र से दुर्गन्ध आती थी उसकी मूर्ति रूप मुख दाढ़ी मूछों से युक्त और बड़ा स्वभाव अत्यन्त भयंकर समस्त दांत ऊँचे और उसका रूप अत्यन्त घृणाकर था ।८१। वह कृष्णवर्ण लम्बोदर पिंगल, रुक्षलोचन और कर्कशभाषी था । उसके हाथ में कितने ही पक्षी गले में मृतकों की माला ।८२। एक हाथ में नरकपाल, दूसरे हाथ में लाठी लिये, शरीर अत्यन्त कृश और वह कितने ही कुत्तों से परिवेष्टित होकर निरन्तर अतिशय जल्पना प्रयोग करता था ।८३

चाण्डाल ने कहा—मैं तुमको मोल लूँगा । थोड़े या बहुत किस मूल्य में तुमको प्राप्त करूँ, शीघ्र कहो ।८४

पक्षी बोले—कि अतिपरुषभाषी, क्रूरदृष्टि और कर्कशस्वभाव चाण्डाल को ऐसी अवस्था से आया देखकर राजा ने कहा तुम कौन हो ।८५। चाण्डाल बोला मैं चाण्डाल हूँ और इस श्रेष्ठ नगरी में मेरा वास है, मेरा नाम प्रवीर है मैं प्रसिद्ध वध्यवधिक अर्थात् वध करने योग्य पुरुष का वध करने वाला हूँ और मरे हुए पुरुष का कम्बल भी हरण करता हूँ ।८६

हरिश्चन्द्र उवाच

नाहं चण्डालदासत्वमिच्छेयं सुविगर्हितम् । वरं शापाग्निना दग्धो न चण्डालवशं गतः ॥८७

पक्षिण ऊचुः

तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः । कोपामर्षविवृत्ताक्षः प्राह चेदं नराधिपम् ॥८८

विश्वामित्र उवाच

चण्डालोऽयमनल्पं ते दातुं वित्तमुपस्थितः । कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा ॥८९

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक । कथं चण्डालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामुकः ॥९०

विश्वामित्र उवाच

यदि चण्डालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम । न प्रदास्यसि कालेन शप्स्यामि त्वामसंशयम् ॥९१

पक्षिण ऊचुः

हरिश्चन्द्रस्ततो राजा चिन्तावस्थितजीवितः । प्रसीदेति वदन्पादावृषेर्जग्राह विह्वलः ॥९२
दासोस्म्यार्त्तोऽस्मि भीतोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः । कुरु प्रसादं विप्रर्षे कष्टश्चण्डालसङ्करः ॥९३
भवेयं वित्तशेषेण सर्वकर्मकरो वशः । तवैव मुनिशार्दूलं प्रेष्यश्चित्तानुवर्त्तकः ॥९४

हरिश्चन्द्र ने कहा—चाण्डाल का दासत्व स्वीकार करना अत्यन्त निन्दा की बात है, अतएव मैं इसकी इच्छा नहीं करता । यद्यपि शापानल में दग्ध ही हूँ, किन्तु तो भी चाण्डाल के वशीभूत नहीं होऊँ।८७

पक्षी बोले—राजा इस प्रकार कहते ही थे, उसी समय तपोनिधि विश्वामित्र जी ने सहसा पहुँचकर कोप अमर्ष द्वारा लाल नेत्र करके राजा से कहा ।८८

विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! यह चाण्डाल तुमको बहुत धन देने के लिए उपस्थित है, तो फिर किस कारण मेरे यज्ञ की दक्षिणा नहीं देते हो ? ।८९

हरिश्चन्द्र बोले—हे भगवन् कौशिक ! मैं अपनी आत्मा को सूर्यवंशोत्पन्न जानता हूँ, अतएव धन के लोभ से किस प्रकार चाण्डाल के वशीभूत होऊँ।९०

विश्वामित्र ने कहा—यदि तुम मुझको अपना शरीर बेचकर इस चाण्डाल का धन यथा समय में नहीं दोगे, तो मैं तुमको निःसन्देह शाप दूँगा ।९१

पक्षी बोले—तदनन्तर महीपति हरिश्चन्द्र ने चिन्तामात्र से जीवित हो "भगवन् प्रसन्न हों" कहकर व्याकुल मन से ऋषि वर के दोनों चरण पकड़ लिये और कहा ।९२। मैं आपका दास हूँ मैं अत्यन्त भीत और व्याकुल हुआ हूँ और विशेषकर मैं आपका ही भक्त हूँ, इस कारण हे विप्रर्षे ! अनुग्रह कीजिये, चाण्डाल के वशीभूत होना अत्यन्त कष्ट की बात है ।९३। हे प्रभो ! मेरा धन शेष हो गया है । अतएव मैं आपका ही कर्म कर दास होऊँ, हे मुनिशार्दूल ! आप जो कहेंगे, वही करूँगा और सदा तुम्हारे ही चित्त का अनुवर्ती होकर रहूँगा ।९४

विश्वामित्र उवाच

यदि प्रेष्यो मम भवांश्चण्डालाय ततो मया । दासभावमनुप्राप्तो दत्तो वित्तार्बुदेन वै ।।९५

हरिश्चन्द्र उवाच

यद्यसौ शक्यते विप्रः कौशिकः परितोषितुम् । ततो गृहाणमामद्य दासत्वं ते करोम्यहम् ।।९६

चण्डाल उवाच

शतयोजनविस्तीर्णा नानाग्रामैरलंकृताम् । भूमिं रक्षामयीं कृत्वा दास्येऽहं कौशिकं प्रति ।।९७

पक्षिण ऊचुः

एवमुक्ते तदा तेन श्वपाको हृष्टमानसः । विश्वामित्राय तद् द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम् ।।९८
दण्डप्रहारसम्भ्रान्तमतीव व्याकुलेन्द्रियम् । इष्टबन्धुवियोगार्तमनयन्निजपक्वणम् ।।९९
हरिश्चन्द्रस्ततो राजा वसंश्चण्डालपक्वणे प्रातर्मध्याह्नसमये सायं चैतदगायत ।।१००
बालां दीनमुखीं दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः । मां स्मरत्यसुखाविष्टा मोचयिष्यति नौ नृपः ।।१०१
उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तमतोऽधिकम् । न सा मां मृगशावाक्षी वात्त पापतरं श्रुतम् ।।१०२
राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः । प्राप्ता चण्डालता चेयमहो दुःखपरम्परा ।।१०३
एवं स निवसन्नित्यं सस्मार दयितं सुतम् । भार्यां चात्मसमाविष्टां हृतसर्वस्व आतुरः ।।१०४

विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! यदि तुम मेरे ही वशीभूत होते हो तो मैंने एक अर्बुद मुद्रा में तुमको इस चाण्डाल के हाथ बेचा, तुम इसके ही दास हो जाओ ।९५

हरिश्चन्द्र ने कहा—यदि यह ब्राह्मण विश्वामित्र जी संतुष्ट हो सकते हैं, तो मुझे ग्रहण करो, मैं तुम्हारा दास बनकर सेवा करूँगा ।९६

चाण्डाल बोला—सौ योजन विस्तारवाली अनेक ग्रामों से शोभित पृथ्वी को रक्षामयी करके मैं विश्वामित्र जी को देता हूँ ।९७

पक्षी बोले—तब राजा ने मुख से "जो आज्ञा" यह वचन निकलते ही चाण्डाल रूपी धर्म प्रसन्नचित्त से विश्वामित्र मुनि को वह धन देकर नरपति को बाँध अपने नगर में ले गया ।९८। राजा हरिश्चन्द्र एक तो पत्नीपुत्रादि बंधु-वियोग से अत्यन्त कातर हो गये थे, इस पर भी फिर चाण्डाल के दण्डे मारने से अत्यन्त सम्भ्रान्त और व्याकुल हो गये ।९९। तदनन्तर हरिश्चन्द्र चाण्डाल के घर वास करते हुए प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल इत्यादि सब समय में ही इस प्रकार गान करते कि, ।१००। "दीनमुखी बाला दीनमुख बालक का मुख देखकर दुःखित चित्त से इस प्रकार चिन्ता करती होगी कि राजा धन उपार्जनपूर्वक ब्राह्मण को इससे अधिक धन दे हम दोनों को छुड़ावेंगे" किन्तु हाय ! वह मृगशावाक्षी यह नहीं जानती है कि मैं चाण्डाल के दासत्वरूप पापदशा में निपतित हुआ हूँ ।१०१-१०२। राज्यनाश सुहृद्त्याग, भार्या और पुत्र का बिकना और अन्त में इस चाण्डालपने की प्राप्ति, हाय ! दुःख के ऊपर दुःख उपस्थित होता है ।१०३। जिनका सर्वस्व हरण हो गया वह राजा इस प्रकार चाण्डाल के घर वास करते हुए प्रतिदिन दुःखितचित्त से प्रियतम पुत्र और मन में वसी हुई भार्या को स्मरण करते ।१०४। फिर कुछ दिन बीतने पर उस चाण्डाल

कस्यचित्त्वथ कालस्य मृतचैलापहारकः । हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः ॥१०५
चण्डालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारिणा । शवागमनमन्विच्छन्निह तिष्ठन्दिवानिशम् ॥१०६
इदं राज्ञेऽपि देयं च षड्भागं तु शवं प्रति । त्रयस्तु मम भागाः स्युर्द्वौ भागौ तव वेतनम् ॥१०७
इति प्रतिसमादिष्टो जगाम शवमन्दिरम् । दिशं तु दक्षिणां यत्र वाराणस्यां स्थितं तदा ॥१०८
श्मशानां घोरसन्नादं शिवाशतसमाकुलम् । शवमौलिसमाकीर्णं दुर्गन्धबहुधूमकम् ॥१०९
पिशाचभूतवेतालडाकिनीयक्षसङ्कुलम् । महागणमहाभूतरवकोलाहलायुतम् ॥११०
गृध्रगोमायुसंकीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम् । अस्थिसङ्घातसङ्कीर्णं महादुर्गन्धसङ्कुलम् ॥१११
नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम् । हा पुत्र मित्र हा बन्धो भ्रातर्वत्स प्रियाद्य मे ॥११२
हा पते भगिनि मातहा मातुल पितामह । मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बान्धव ॥११३
इत्येवं वदतां यत्र ध्वनिः संश्रूयते महान् । यत्र नेत्रैरनिमिषैः शवाभयमिवाविशन् ॥११४
निमीलितैश्च नयनैर्बन्धुचिन्तापथे स्थितः । ज्वलन्मांसवसामेदश्छमच्छमितसङ्कुलम् ॥११५
अर्द्धदग्धाः शवाः श्यामा विकसद्दन्तपंक्तयः । हसंत्येवाग्निमध्यस्था का यस्येयं दशा त्विति ॥११६
अग्नेश्चटचटाशब्दो वयसामस्थिपंक्तिषु । बान्धवाक्रन्दशब्दश्च पुल्कसेषु प्रहर्षजः ॥११७

के वशवर्ती राजा हरिश्चन्द्र श्मशान में स्थित मृतक के वस्त्र ग्रहण करने वाले हुए ।१०५। और शववस्त्रापहारी चाण्डाल के द्वारा इस प्रकार आज्ञा को प्राप्त हुए कि "तुम दिन रात इस स्थान में वास करके कहाँ कौन मुर्दा आता है, इसकी खोज करो ।१०६। प्रत्येक शव (मुरदे) में जो प्राप्त हो, उसका छठा भाग राजा को दे दो, अवशिष्ट पाँच भाग में तीन भाग मेरे निमित्त और दो भाग तुम अपने वेतन में रक्खो" ।१०७। तब राजा हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल की इस प्रकार आज्ञा पाकर वाराणसी की दक्षिण दिशा में स्थित श्मशान में प्रवेश किया ।१०८। उसकी चारों दिशा घोर शब्द से प्रतिध्वनित थीं। सैकड़ों गीदड़ियों से परिपूर्ण, मृतकों के मस्तकों से व्याप्त तथा दुर्गन्धमय और बहुत धुएँ से समाच्छन्न था ।१०९। पिशाच, भूत, वेताल, डाकिनी, यक्ष, गृध्र, गोमायु इत्यादि से भरा हुआ, तथा उनके शब्दों से नादित था और उसमें कुत्ते जहाँ तहाँ घूम रहे थे। वह अस्थियों से परिपूर्ण और महादुर्गन्धमय था ।११०-१११। मृतपुरुषवाले सम्बन्धियों के आर्त्त-नाद से परिपूर्ण होने के कारण अत्यन्त कोलाहल युक्त था। हा पुत्र ! हा मित्र ! हा बन्धो ! हा भ्राता ! हा वत्स ! हा प्रिय ! ।११२। हा स्वामिन् ! हा बहिन ! हा माता ! हा मामा ! हा पितामह ! हा मातामह ! हा पिता ! हा पौत्र ! हा बान्धव ! आज कहाँ गये, एक बार आओ ।११३। इस प्रकार और भी अनेक भाँति से विलाप करते हुए पुरुषों का आर्तनाद उसके चारों ओर से सुनाई पड़ता था और कहीं-कहीं मृतक अनिमेष नेत्रों से अर्थात् विना ही पलक मारे देख रहे थे, जिनसे भय लगता था ।११४। कोई आँख खोले बन्धुओं की चिन्ता कर रहा था, मांस, मज्जा और मेद जलने के कारण छन-छन शब्द से उसकी चारों दिशा संकुल हो रही थी ।११५। शव ने अग्नि में पड़ने के कारण अधजली होकर श्यामवर्ण धारण किया है और उसके दाँतों की पंक्ति बाहर हो गई है, देखने से विदित होता है कि, "उस देह की ऐसी दशा ?" यह विचार कर मानो उसका हास्य करती है ।११६। अस्थिपंक्तियों के ऊपर बैठे हुए काकों के नाना प्रकार से शब्द होते थे, मृत पुरुषों के लिये बांधवजन आर्त्तनाद कर रहे थे। अग्नि के चटचटा शब्द और चाण्डालों की आनन्दसूचक ध्वनि से वह परिपूर्ण हो रहा था ।११७। कहीं भूत, वेताल, पिशाच

गायतां भूतवेतालपिशाचगणरक्षसाम् । श्रूयते सुमहान्घोरः कल्पान्त इव निःस्वनः ।।११८
महामहिषकारीषगोशकृद्राशिसङ्कुलम् । तदुत्थभस्मकूटैश्च वृतं सास्थिभिरुन्नतैः ।।११९
नानोपहारस्रग्दीपकाकविक्षेपसङ्कुलम् । अनेकशब्दबहुलं श्मशानं नरकायते ।।१२०
सवह्निगर्भैरशिवैः शिवारुतैर्निनादितं भीषणरावगह्वरम् ।
भयं भयस्याप्युपसञ्जनैर्भृशं श्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ।।१२१
स राजा तत्र सम्प्राप्तो दुःखितः शोचनोद्यतः । हा भृत्या मन्त्रिणो विप्राः क्व तद्राज्यं विधे गतम् ।।१२२
हा शैब्ये पुत्र हा बाल मां त्यक्त्वा मन्दभाग्यकम् । विश्वामित्रस्य दोषेण गताः कुत्रापि ते मम ।।१२३
इत्येवं चिन्तयंस्तत्र चण्डालोक्तं पुनः पुनः । मलिनो रूक्षसर्वाङ्गः केशवान्गन्धवान्ध्वजी ।।१२४
लगुडी कालकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः । अस्मिञ्शव इदं मूल्यं प्राप्तं प्राप्स्यामि चाप्युत ।।१२५
इदं मम इदं राज्ञे मुख्यचण्डालके त्विदम् । इति धावन्दिशो राजा जीवन्योन्यन्तरं गतः ।।१२६
जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः । चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ।।१२७
नानामेदोवसामज्जलिप्तपाण्यङ्गुलिः श्वसन् । नानाशवौदनकृताहारतृप्तिपरायणः ।।१२८
तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमण्डनः । न रात्रौ न दिवा शेते हाहेति प्रवदन्मुहुः ।।१२९

राक्षसों के गाने-नाचने का शब्द सुनने से वह स्थान भयंकर प्रलयकाल के समान विदित होता था ।११८। कहीं कहीं राखों के ढेर काले-काले भैंसाओं के गोबर के ढेर तथा गायों के गोबर के ढ़ेर दिखाई देते थे और उन राखों की अस्थियों पर उड़-उड़कर गिरना पहाड़ की सुन्दरता दिखाता था ।११९। किसी स्थान में काकबलि को उपहार दी हुई माल्य और दीपमाला पड़ी हुई थी, कहीं उल्कामुख शृगाल अमंगलजनक शब्द से चारों दिशा प्रतिध्वनित कर रहे थे, जिससे वह स्थान नरक दीख रहा था ।१२०। किसी स्थान में गह्वरस्थ शृगालों का भयंकर शब्द हो रहा था ! अनेक मनुष्यों की अनेक प्रकार क्रंदनध्वनि से भाँति-भाँति की भयंकर प्रतिध्वनि से अत्यन्त भयानक उस नरक के समान श्मशान में बोध होता है कि, स्वयं भय को भी अत्यन्त भीत होना पड़ता था ।१२१। राजा हरिश्चन्द्र उस दारुण श्मशान में पहुँचकर चिन्ता करने लगे कि, "हा विधाता ! वह भृत्यगण, वह मंत्रीगण वह ब्राह्मणगण और वह राज्य कहाँ गया ? ।१२२। हा शैब्ये ! हा वत्स ! तुम इस भाग्यहीन को छोड़कर कहाँ चले गये ? हाय ! एकमात्र विश्वामित्र जी के रोष से मेरा सर्वस्व चला गया" ।१२३। नृपवर हरिश्चन्द्र उस श्मशान में इस प्रकार अनेक भाँति से चिन्ता करते-करते चाण्डाल के वचन की भी बार-बार चिन्ता करते थे, एक तो मलिन वेष, रुक्ष देह, इस पर भी फिर सर्वाङ्ग में केश एवं दुर्गन्ध और ध्वजा ।१२४। तथा लाठी लेकर इधर उधर घूमना, अतएव मानो वह उस समय स्वयं यमस्वरूप हो रहे थे और मन में विचारते थे कि, इस मृतक का इतना मूल्य हुआ, इतना मिला और इतना शेष है ।१२५। सुतरां 'यह मेरा, यह राजा का और वह मुख्य चाण्डाल का' जब वह इस प्रकार चिन्ता करते-करते इधर-उधर भ्रमण करते, तब बोध होता था कि, उनको जीवित दशा में ही प्रेतयोनि उपस्थित हुई है ।१२६। जीर्ण वस्त्र में ग्रन्थि देकर ही उन्होंने कन्था पहन रक्खी थी, मुख, बाहु, उदर और दोनों चरणों में चिता की भस्म लेपन की थी ।१२७। हाथ की सब अंगुलियों में नाना प्रकार मेद, वसा और मज्जा लगी रहती थी, अनेक मृतकों के पिण्ड से बचे हुए भात का भोजन करके तृप्त होते थे ।१२८। मृतक के शरीर की माला से ही मस्तक शोभित करके बार-बार हा हा शब्द उच्चारण करते और क्या दिन, क्या रात्रि, किसी समय भी वह नहीं सोते थे ।१२९। उन्होंने इस

एवं द्वादश मासास्तु नीताः शतसमोपमाः । स कदाचिन्नृपश्रेष्ठः श्रान्तो बन्धुवियोगवान् ॥१३०
निद्राभिभूतो रूक्षाङ्गो निश्चेष्टः सुप्त एव च । तत्रापि शयनीये स दृष्टवानद्भुतं महत् ॥१३१
श्मशानाभ्यासयोगेन दैवस्य बलवत्तया । अन्यदेहेने दत्त्वा तु गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥१३२
तदा द्वादशवर्षाणि दुःखदानात्तु निष्कृतिः । आत्मानं स ददर्शार्थे पुल्कसीगर्भसम्भवम् ॥१३३
तत्रस्थश्चाप्यसौ राजा सोऽचिन्तयदिदं तदा । इतो निष्क्रान्तमात्रो हि दानधर्मं करोम्यहम् ॥१३४
अनन्तरं स जातस्तु तदा पुल्कसबालकः । श्मशानमृतसंस्कारकरणेषु सदोद्यतः ॥१३५
प्राप्ते तु सप्तमे वर्षे श्मशानेऽथ मृतो द्विजः । आनीतो बन्धुभिर्दृष्टस्तेन तत्राधनो गुणी ॥१३६
मूल्यार्थिना तु तेनापि परिभूतास्तु ब्राह्मणाः । ऊचुस्ते ब्राह्मणास्तत्र विश्वामित्रस्य चेष्टितम् ॥१३७
पापिष्ठमशुभं कर्म कुरुत्वं पापकारक । हरिश्चन्द्रः पुरा राजा विश्वामित्रेण पुल्कसः ॥१३८
कृतः पुण्यविनाशेन ब्राह्मणस्वापनाशनात् । यदा न क्षमते तेषां तैः स शप्तो रुषा तदा ॥१३९
गच्छ त्वं नरकं घोरमधुनैव नराधम । इत्युक्तमात्रे वचने स्वप्नस्थः स नृपस्तदा ॥१४०
अपश्यद्यमदूतान्वै पाशहस्तान्भयावहान् । तैः संगृहीतमात्मानं नीयमानं तदा बलात् ॥१४१
पश्यति स्म भृशं खिन्नो हा मातः पितरद्य मे । एवं वादी स नरके तैलद्रोण्यां निपातितः ॥१४२

प्रकार उस श्मशान में वास करके सौ वर्ष के समान बारह महीने बिताये फिर किसी दिन नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र बन्धुवियोग से श्रान्त हुए।१३०। रुक्ष देह, चेष्टारहित हो शयन करके निद्राभिभूत हुए थे, उसी समय उन्होंने एक महा अद्भुत बात स्वप्न में देखी।१३१। श्मशान में वास करने का अभ्यास होने के कारण अथवा दैव की बलवत्ता के कारण उन्होंने देखा कि, "अन्य देह धारणपूर्वक गुरु को दक्षिणा देकर ।१३२। बारह वर्ष दुःख भोगने के पीछे तब मेराछुटकारा होगा फिर उन्होंने देखा कि, मैं स्वयं मानो पुक्कसी (डोमन्नी) के गर्भ में वास करता हूँ।१३३। उस डोमिनी के गर्भ में वास करने के समय वह चिन्ता करने लगे कि, इस डोमनी के गर्भ से निकलते ही मैं दान धर्म का आचरण करूँगा"।१३४। इतने ही में क्या देखा कि, मैं उस गर्भ से उत्पन्न होकर उसी जाति का कर्म अर्थात् श्मशान में मृतकसंस्कार करने को उद्यत रहता हूँ।१३५। जब वह चाण्डाल के बालक वेष में सात वर्ष की अवस्था के हुए, तब किसी गुणवान् अनाथ ब्राह्मण के मृत देह को उसके बन्धुवर्ग श्मशान में लाये।१३६। तब वह निर्धन ब्राह्मण दान करने का मूल्य देने में असमर्थ होकर उनसे अत्यन्त तिरस्कृत हुए कहने लगे कि, हाय ! विश्वामित्र का क्या अशुभ पापमय कार्य है। रे पापकारक ! तू इस प्रकार के अशुभ कार्य ही करता रहता है, तू पूर्व जन्म में राजा हरिश्चन्द्र था, विश्वामित्र ने तुझे चाण्डाल किया है।१३७-१३८। ब्रह्मस्व नाशा से पुण्य विनाश होने के कारण ही विश्वामित्र के द्वारा चाण्डालरूप में जन्म ग्रहण किया है। जब वह ब्राह्मण मूल्य देकर शव के दाह करने में समर्थ नहीं हुए, तब अत्यन्त क्रोध से राजा को शाप दिया।१३९। कि रे नराधम ! तू इसी समय घोर नरक में जा। ब्राह्मणों के यह वचन कहते ही उस स्वप्नदर्शी राजा ने।१४०। देखा कि, अत्यन्त भयंकर यमदूत हाथ में फांसी लिए आ रहे हैं, और फिर बलपूर्वक मेरी आत्मा को बांधकर ले चले हैं।१४१। तब वह अत्यन्त खेद से 'हा माता ! हा पिता !' आज मेरी यह दशा हुई, इस भाँति अनेक प्रकार से विलाप करने लगे, उसी समय यमदूतों ने उनको नरक की तैलद्रोणी में डाल दिया।१४२। फिर तीक्ष्णधारवाले

क्रकचैः पाट्यमानस्तु क्षुरधाराभिरप्यधः । अन्धे तमसि दुःखार्त्तः पूयशोणितभोजनः ।।१४३
सप्तवर्षं मृतात्मानं पुल्कसत्वं ददर्श ह । दिनं दिनं तु नरके दह्यते पच्यतेऽन्यतः ।।१४४
खिद्यते क्षोभ्यतेऽन्यत्र मार्यते पाट्यतेऽन्यतः । क्षार्यते दीप्यतेऽन्यत्र शीतवाताहतोऽन्यतः ।।१४५
एकं दिनं वर्षशतप्रमाणं नरकेऽभवत् । तथा वर्षशतं तत्र श्रावितं नरके भटैः ।।१४६
ततो निपातितो भूमौ विष्ठाशी श्वा व्यजायत । वान्ताशी शीतदग्धश्च मासमात्रे मृतोऽपि सः ।।१४७
अथापश्यत्खरं देहं हस्तिनं वानरं पशुम् । छागं बिडालं कङ्कं च गामविं पक्षिणं कृमिम् ।।१४८
मत्स्यं कूर्मं वराहं च श्वाविधं कुक्कुटं शुकम् । शारिकां स्थावरांश्चैव सर्पमान्यांश्च देहिनः ।।१४९
दिवसे-दिवसे जन्म प्राणिनः प्राणिनस्सदा । अपश्यद्दुःखसन्तप्तो दिनं वर्षशतं तथा ।।१५०
एवं वर्षशतं पूर्णं गतं तत्र कुयोनिषु । अपश्यच्च कदाचित्स राजा तत्स्वकुलोद्भवम् ।।१५१
तत्र स्थितस्य तस्यापि राज्यं द्यूतेन हारितम् । भार्या हृता च पुत्रश्च स चैकाकी वनं गतः ।।१५२
तत्रापश्यत्स सिंहं वै व्यादितास्यं भयावहम् । बिभक्षयिषुमायान्तं शरभेण समन्वितम् ।।१५३
पुनश्च भक्षितः सोऽपि भार्यां शोचितुमुद्यतः । हा शैब्ये क्व गतास्यद्य मामिहापास्य दुःखितम् ।।१५४
अपश्यत्पुनरेवापि भार्यां स्वां हतपुत्रकाम् । त्रायस्व त्वं हरिश्चन्द्र किं द्यूतेन तव प्रभो ।।१५५

आरों से चीरे जाकर अन्धतम नरक में गिराया और दुःखी हुए को पीव और रुधिर का भोजन कराया ।१४३। इस प्रकार सात वर्ष तक मृत उस आत्मा को चाण्डालत्व में देखने लगे कि, दिन-दिन नरक में कहीं दग्ध होता हूँ, कहीं पच्य अर्थात् कोल्हू पेला जाता हूँ ।१४४। कभी खिन्न और कभी क्षुब्ध होता हूँ, कभी मारा जाता, कभी पाटा जाता, कभी खार में डाला जाता, कभी बाला जाता और कभी शीत तथा वायु से आहत होता हूँ ।१४५। वहाँ एक-एक दिन उनके पक्ष में मानो सौ वर्ष के समान बीतने लगा । इस प्रकार दुःख भोगते-भोगते नरक की रक्षा करने वालों के मुख से सुना कि, उनके सौ वर्ष उत्तीर्ण हो गये हैं ।१४६। तब यमदूतों ने उनको पृथ्वी में गिरा दिया और उन्होंने विष्टा भोजी कुत्ते के रूप में जन्म लिया, फिर विष्ठा और वमन भोजन करते हुए अत्यन्त शीत से व्याकुल होकर एक महीने में प्राणत्याग किया ।१४७। फिर देखा कि, मैंने गधे की योनि में जन्म लिया है, इसके पीछे क्रमशः हाथी, बन्दर, छाग, बिलाव, काक, गौ, मेष, पक्षी कृमि ।१४८। मछली, कछुए, सुअर, मृग, मुरगे, तोते, मैना, वृक्षादि और अजगर सर्प इत्यादि नाना प्रकार के प्राणियों में ।१४९। दिन-दिन जन्म लेता हूँ, इस प्रकार क्लेश भोगते वह एक दिन को सौ वर्ष के समान अनुभव करने लगे ।१५०। इस भाँति नाना प्रकार की कुयोनियों में जन्म ग्रहण करके दुःख भोगते-भोगते पूरे सौ वर्ष बीत गये । फिर देखा कि, मानो किसी समय वह पुनर्वार अपने कुल में जन्म लेकर राजा हुए हैं ।१५१। वह वहाँ वास करते हुए किसी समय जुआ खेलने में राज्य, स्त्री और पुत्र को हारकर अकेले वन में गये हैं ।१५२। वहाँ देखा कि, एक भयंकर सिंह शरभ के सहित मुख फैलाये उनको भक्षण करने के लिए आ रहा है ।१५३। फिर उसके द्वारा भक्षित होकर "हा शैब्ये ! इस दुःखित मनुष्य को छोड़कर तुम कहाँ जाती हो ?" इत्यादि प्रकार से शोक करते-करते ज्योंही उद्यत हुए ।१५४। उसी समय देखा, मानो रानी शैब्या पुत्र के सहित हा महाराज हरिश्चन्द्र ! हमारी रक्षा करो । हे प्रभो ! आपका जुआ खेलने से क्या प्रयोजन है ।१५५। देखो, तुम्हारी भार्या शैब्या अपने पुत्र के सहित कैसी शोचनीय दशा

पुत्रस्ते शोच्यतां प्राप्तो भार्यया शैब्यया सह । स नापश्यत्पुनरपि धावमानः पुनः पुनः ।।१५६
अथापश्यत्पुनरपि स्वर्गस्थः स नराधिपः । नीयते मुक्तकेशी सा दीना विवसना बलात् ।।१५७
हाहा वाक्यं प्रमुञ्चन्ती त्रायस्वेत्यसकृत्स्वना । अथापश्यत्पुनस्तत्र धर्मराजस्य शासनात् ।।१५८
आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्था आगच्छेह नराधिप । विश्वामित्रेण विज्ञप्तो यमो राजंस्तवार्थतः ।।१५९
इत्युक्त्वा सर्पपाशैस्तु नीयते बलवद्भिभुः । श्राद्धदेवेन कथितं विश्वामित्रस्य चेष्टितम् ।।१६०
तत्रापि तस्य विकृतिर्नाधर्मोत्था व्यवर्द्धत । एताः सर्वा दशास्तस्य याः स्वप्ने सम्प्रदर्शिताः ।।१६१
सर्वास्तास्तेन सम्भुक्ता यावद्वर्षाणि द्वादश । अतीते द्वादशे वर्षे नीयमानो भटैर्बलात् ।।१६२
यमं सोऽपश्यदाकारादुवाच च नराधिपम् । विश्वामित्रस्य कोपोऽयं दुर्विनार्यो महात्मनः ।।१६३
पुत्रस्य ते मृत्युमपि प्रदास्यति स कौशिकः । गच्छ त्वं मानुषं लोकं दुःखशेषं च भुंक्ष्व वै ।।
गतस्य तत्र राजेन्द्र श्रेयस्तव भविष्यति ।।१६४
व्यतीते द्वादशे वर्षे दुःखस्यान्ते नराधिपः । अन्तरिक्षाच्च पतितो यमदूतैः प्रणोदितः ।।१६५
पतितो यमलोकाच्च विबुद्धो भयसंभ्रमात् । अहो कष्टमिति ध्यात्वा क्षते क्षारावसेचनम् ।।१६६
स्वप्ने दुःखं महद्दृष्टं यस्यान्तो नोपलभ्यते । स्वप्ने दृष्टं मया यत्तु किन्तु मे द्वादशीः समाः ।।१६७

को प्राप्त हुई है । इत्यादि प्रकार से विलाप करती है, तब वह मानो बार-बार इधर-उधर को दौड़े, किन्तु फिर उसको नहीं देखा ।१५६। राजा हरिश्चन्द्र ने फिर देखा कि, वह स्वर्ग में वास करते हैं वहाँ वास करते-करते उन्होंने देखा कि, मानो दीन, वस्त्रहीन और खुले केश रानी शैब्या किसी पुरुष के द्वारा बलपूर्वक हरी जाकर ।१५७। "हा महाराज ! रक्षा करो, हा महाराज ! रक्षा करो" कहकर निरन्तर चिल्लाती है । उन्होंने फिर देखा कि, मानो यमदूत यमराज के शासन में ।१५८। आकाशमार्ग में स्थित हुए 'हे राजन् ! यमराज को आपके निमित्त विश्वामित्र जी ने सूचना दी है, अतएव आप इस स्थान में आइये' यह कहकर महाशब्द करते हैं ।१५९। उन्होंने फिर देखा कि, यह बात कहकर मानो यम के अनुचर मुझे नागपाश में दृढ़रीति से बांधकर ले चले हैं, और यमराज यह विश्वामित्र का चरित्र-कीर्तन करते हैं ।१६०। यद्यपि महाराज हरिश्चन्द्र इस भाँति नाना प्रकार की यंत्रणा भोगते थे, किन्तु तो भी उनके मन में कोई अधर्मजनित विकार उपस्थित नहीं हुआ । इस भाँति अनेक प्रकार की दशा जो जो उनको स्वप्न में दिखाई दी थीं ।१६१। जो इस बारह वर्ष के समय तक निरन्तर वहीं उन्होंने भोग की थीं । बारह वर्ष बीतने पर जब वह यमदूतों के द्वारा बलपूर्वक लाये गये ।१६२। तब उन्होंने यमराज का दर्शन किया, यमराज ने उनसे कहा—हे महाराज ! यह महात्मा विश्वामित्रजी के दुर्निवार्य कोप का फल है ।१६३। अधिक क्या वह कौशिक मुनि आपके पुत्र की भी मृत्यु संघटित करावेंगे । अतएव आप मनुष्यलोक में जाकर शेष दुःख भोग कीजिये । हे राजन् ! वहाँ जाने से तुम्हारा कल्याण होगा ।१६४। वहाँ बारह वर्ष बीतने पर दुःख का अन्त होगा । यमराज के इस प्रकार कहने पर यमदूतों ने उनको आकाश से गिरा दिया ।१६५। वह यमलोक से गिरते ही भय और भ्रमवश हठात् जाग गये और मन में चिन्ता करने लगे कि, हाय ! घाव में नमक लगने के समान यह और क्या हुआ ? ।१६६। स्वप्न में जिस प्रकार महादुःख देखे हैं, उनकी तो सीमा नहीं हैं, मैंने जो स्वप्न में देखा, तो क्या बारह वर्ष बीत गये हैं ? ।१६७। यह कह भ्रमवश

गतेत्यपृच्छत्तत्रस्थान्पुल्कसांस्तु स संभ्रमात् । नेत्यूचुः केचित्तत्रस्था एवमेवापरेऽब्रुवन् ।।१६८
श्रुत्वा दुःखी तदा राजा देवाञ्शरणमीयिवान् । स्वस्ति कुर्वन्तु मे देवाः शैब्यायाा बालकस्य च ।।१६९
नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे । परावराय शुद्धाय पुराणायाव्ययाय च ।।१७०
नमो बृहस्पते तुभ्यं नमस्ते वासवाय च । एवमुक्त्वा स राजा तु युक्तः पुल्कसकर्मणि ।।१७१
शवानां मूल्यकरणे पुनर्नष्टस्मृतिर्यथा । मलिनो जटिलः कृष्णो लगुडी विह्वलो नृपः ।।१७२
नैव पुत्रो न भार्या तु तस्य वै स्मृतिगोचरे । नष्टोत्साहो राज्यनाशाच्छ्मशाने निवसंस्तदा ।।१७३
अथाजगाम स्वसुतं मृतमादाय लापिनी । भार्या तस्य नरेन्द्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम् ।।१७४
हा वत्स हा पुत्र शिशो इत्थं वै वदती मुहुः । कृशा विवर्णा विमनाः पांसुध्वस्तशिरोरुहा ।।१७५

राजपत्न्युवाच

हा राजन्नद्य बालं त्वं पश्यसीमं महीतले । रममाणं पुरा दृष्टं दष्ट पुष्टाहिना मृतम् ।।१७६
तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः । जगाम त्वरितोऽत्रेति भविता मृतकम्बलः ।।१७७
स तां रोरूयतीं भार्यां नाभ्यजानात्तु पार्थिवः । चिरप्रवाससन्तप्तां पुनर्जातामिवाबलाम् ।।१७८
सापि तं चारुकेशान्तं पुरा दृष्ट्वा जटालकम् । नाभ्याजानन्नृपसुता शुष्कवृक्षोपमं नृपम् ।।१७९

निकट के चाण्डालों से पूछा । उनमें किसी ने कहा, "नहीं तुम्हारे बारह वर्ष नहीं बीते हैं" किसी ने कहा "बीत सकते हैं" ।१६८। तब राजा हरिश्चन्द्र उनके यह वचन सुन अत्यन्त दुःखितचित्त से देवताओं की शरण हुए और कहने लगे कि, हे देवताओ ! आप मेरी शैब्या और बालक का मंगल कीजिये ।१६९। सर्वप्रधान धर्म को नमस्कार है । विधातास्वरूप कृष्ण को नमस्कार है जो सबसे श्रेष्ठ पवित्र और अव्यय हैं, उन पुराण पुरुष को नमस्कार है ।१७०। हे बृहस्पते ! तुमको नमस्कार है । हे वासव ! तुमको नमस्कार । इस प्रकार कहकर राजा हरिश्चन्द्र फिर चाण्डाल के कार्यरूप ।१७१। शवमूल्य निर्धारण में निरत हुए और फिर उसी प्रकार नष्टस्मृति, मलिनवेषी, जटाधारी, कृष्णवर्ण, लकुटधारी और विह्वल हो गये ।१७२। तब भार्या वा पुत्र कोई भी उनको स्मृतिगोचर न हुआ, क्योंकि वह उस समय राज्य नष्ट होने के कारण उत्साहहीन हो श्मशान में वास करते थे ।१७३। इसी अवसर में उन नरेन्द्र की भार्या अपने पुत्र को जो कि सर्प के डसने से मर गया था जलाने के लिये उसी श्मशान में रोती हुई ले आई ।१७४। वह स्त्री जो कि अत्यन्त कृश वदन, महादुःखी विमना और जिसके शिर में धूरि भर रही थी, बार-बार हा वत्स ! हा पुत्र ! हा शिशो ! कहकर रुदन करती थी ।१७५

राजपत्नी बोली—हे राजन् ! एक बार देखो, आप पृथ्वी के चन्द्रमा के समान जिस बालक को पहले खिलाते हुए देखते थे, हाय ! आज आपके उसी बालक ने सर्प डसने से प्राणत्याग किया है ।१७६। राजा हरिश्चन्द्र रानी की यह विलापध्वनि सुनकर "जान पड़ता है, इसी स्थान में मृतक वस्त्र मिलेगा" यह विचारकर शीघ्रतासहित वहाँ गये ।१७७। बहुत समय के प्रवास से सन्तप्त हुई मानो फिर ही प्रगट हुई के समान उस रोती हुई अबला भार्या को नहीं पहिचान सके ।१७८। नृपसुता शैब्या ने भी राजा को पहले मनोहर केशयुक्त देखा था, इस कारण जटिल और सूखे वृक्ष के समान उन राजा को पहचानने में समर्थ

सोऽपि कृष्णपटे बालं दृष्ट्वाशीविषपीडितम् । नरेन्द्रलक्षणोपेतं चिन्तामाप नरेश्वरः ।।१८०
तस्यास्यं चन्द्रबिंबाभं सुभ्रु रम्यं समुन्नसम् । नीलाः केशाः कुञ्चिताश्च समा दीर्घास्तरङ्गिताः ।।१८१
राजीवनेत्रयुगुलो बिम्बोष्ठपुटसंवृतः । चतुर्दंष्ट्रचतुःकिष्कुर्दीर्घास्यो दीर्घबाहुकः ।।१८२
चतुर्लेखः करो मत्स्ययवयुक्चैकपर्वतः । शिरालुपादो गम्भीरः सूक्ष्मत्वक् त्रिवलीधरः ।।१८३
अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येष कुले शिशुः । जातो नीतः कृतान्तेन कामप्याशां दुरात्मना ।।१८४
एवं दृष्ट्वा हि तं बालं मातुरुत्सङ्गशायिनम् । स्मृतिमभ्यागतो बालो रोहिताश्वोऽब्जलोचनः ।।१८५
सोप्येतामेव मे वत्सो वयोऽवस्थामुपागतः । नीतो यदि न घोरेण कृतान्तेनात्मनो वशम् ।।१८६

राजपत्न्युवाच

हा वत्स कस्य पापस्य अपध्यानादिदं महत् । दुःखमापतितं घोरं यस्यान्तो नोपलभ्यते ।।१८७
हा नाथ राजन्भवता मामनाश्वास्य दुःखिताम् । क्वापि सन्तिष्ठता स्थाने विश्रब्धं स्थीयते कथम् ।।१८८
राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः । हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधे न कृतं त्वया ।।१८९
इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्वस्थानतश्च्युतः । प्रत्यभिज्ञाय दयितां पुत्रं च निधनं गतम् ।।१९०
कैषा नाम गृहे युक्ता मम योषिद्वरा भवेत् । बालश्च स मृतः कः स्यादिति राजा विचारयन् ।।१९१
कष्टं शैब्येयमेषा हि स बालोऽयमितीरयन् । रुरोद दुःखसन्तप्तो मूर्च्छामाभिजगाम च ।।१९२

नहीं हुई ।१७९। तब राजा हरिश्चन्द्र सर्प के विष से पीड़ित बालक को काले वस्त्र में लिपटा हुआ राजलक्षणयुक्त देखकर चिन्ता करने लगे ।१८०। जिसका मुख चन्द्रमा के समान, सुन्दर भौं, ऊँची नासिका, नीले घूंघर वाले बाल, समान और दीर्घ तरंगेंवाले ।१८१। कमलवत् दोनों ओष्ठ, चार डाढ़े, शोभायमान दीर्घमुख और बड़ी भुजा ।१८२। हाथ में मत्स्य, यवयुक्त और पर्वत की रेखा है, गले के पीछे की नाड़ी और चरण गंभीर, पतली त्वचा और उदर कंठ में त्रिवली रेखा दीख पड़ती है ।१८३। हा ! इस बालक ने किस राजकुल में जन्म ग्रहण किया है, दुरात्मा काल ने इसकी कैसी दशा कर दी है ।१८४। अनन्तर माता की गोदी में सोये हुए उस बालक को भली-भाँति देखने से फिर उस पद्मलोचन रोहिताश्व को स्मरण किया ।१८५। तब वह सोचने लगे कि, "यदि दुरात्मा काल ने अपने वशीभूत न किया हो तो मेरा वह रोहिताश्व भी इतने ही दिनों का हुआ होगा और यही वयोवस्था प्राप्त हुई होगी ।१८६। इधर राजपत्नी बोली—हा वत्स ! किस पाप की अनिष्ठ चिन्ता के कारण यह असीम घोर महादुःख उपस्थित हुआ ।१८७। हा नाथ ! हा राजन् ! इस दुःखिनी को आश्रय न देकर निष्ठुर चित्त से कहाँ किस प्रकार वास करते हो ।१८८। एक तो राज्यनाश इस पर भी बंधुवियोग और फिर भार्या तथा पुत्र का बिकना, हा विधाता ! तुमने राजर्षि हरिश्चन्द्र का क्या सर्वनाश नहीं किया ।१८९। राजा उसका यह वचन सुन, स्त्री और मृतक पुत्र को पहिचान स्वस्थान से निपतित हुए ।१९०। यह किसकी स्त्री है ? क्या यह मेरी भार्या है ? और यह मृत बालक कौन है ? इस प्रकार राजा विचारने लगे और व्याकुल हुए ।१९१। "हाय ! क्या कष्ट है ? यही वह शैब्या और यही तो वह बालक है" इस प्रकार कहते-कहते अत्यन्त दुःख से सन्तप्त हो रुदन करने लगे और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ।१९२। रानी शैब्या भी

सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम् । मूर्च्छिता निपपातार्ता निश्चेष्टा धरणीतले ।।१९३
चेतः सम्प्राप्य राजेन्द्रो राजपत्नी च तौ समम् । विलेपतुः सुसन्तप्तौ शोकभारातिपीडितौ ।।१९४

राजोवाच

हा वत्स सुकुमारं ते स्वक्षिभ्रूनासिकालकम् । पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्यते ।।१९५
तात तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम् । उपगुह्य वदिष्ये कं वत्स वत्सेति सौहृदात् ।।१९६
कस्य जानुप्रणीतेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना । ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेष्यति ।।१९७
अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतो मनोहृदयनन्दनः । मया कुपित्रा हा वत्स विक्रीतो येन वस्तुवत् ।।१९८
हृत्वा राज्यमशेषं मे सबान्धवधनं महत् । दैवाहिना नृशंसेन दष्टो मे तनयस्ततः ।।१९९
अहं दैवाहिदष्टस्य पुत्रस्याननपङ्कजम् । निरीक्षन्नपि घोरेण विषेणान्धीकृतोऽधुना ।।२००
एवमुक्त्वा तमादाय बालकं वाष्पगद्गदः । परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्च्छया निपपात ह ।।२०१

राजपत्न्युवाच

अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते । विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः ।।२०२
तथास्य नासिका तुङ्गा अग्रतोऽधोमुखं गता । दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्तेर्महात्मनः ।।२०३
श्मशानमागतः कस्मादद्यैष स नरेश्वरः । अपहाय पुत्रशोकं सापश्यत्पतितं पतिम् ।।२०४

इस प्रकार अवस्थान्तर प्राप्त राजा को पहचानकर मूर्च्छित हुई एवं आर्त्त और निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर गई।१९३। फिर कुछ समय के पीछे राजा हरिश्चन्द्र और रानी शैब्या दोनों चैतन्य होकर शोकभार से पीड़ित हो अत्यन्त विलाप करने लगे।१९४

राजा बोले—हे वत्स ! तुम्हारे वह सुन्दर नेत्र, दोनों भौं, नासिका और अलकों से शोभायमान सुकुमार वदन को इस प्रकार मलिन देखकर मेरा हृदय क्यों विदीर्ण नहीं होता ? ।१९५। हा ! मधुर स्वर से "तात ! तात !" कहता हुआ मेरे निकट अब कौन आवेगा ? और अब मैं किसको स्नेहसहित गोदी में लेकर "वत्स ! वत्स !" कहता हुआ पुकारूँगा? ।१९६। अब किसकी जानु में लगी हुई धूरि से मेरा दुपट्टा और अंग मैला होगा ? ।१९७। हाय ! तुम मेरे अंग प्रत्यंग से उत्पन्न तथा मन और हृदय के आनन्दजनक होकर भी इस कुपिता ने तुमको सामान्य वस्तु के समान बेचा था।१९८। हाय ! दैवरूपी दुष्ट सर्प ने मेरा महत् राज्य, साधन और धन समस्त ही हरण करके अन्त में तुम सरीखे पुत्र को भी डसा।१९९। हाय ! दैवरूपी सर्प के डसे इस पुत्र का मुखकमल देखते-देखते मैं भी अब भयंकर विष से अंधा हुआ हूँ।२००। राजा ने वाष्पगद्गद स्वर से इस प्रकार कहा, उस बालक को ग्रहण कर गोदी में ले लिया और तत्काल मूर्च्छा से चेष्टाहीन हो पृथ्वी पर गिर गये।२०१

राजपत्नी बोली—स्वर के द्वारा जाना जाता है कि यही वह पुरुषसिंह विद्वज्जनों के मन-खिलाने को चन्द्रमा राजा हरिश्चन्द्र हैं इसमें सन्देह नहीं।२०२। उनके ही समान इनकी भी नासिका ऊँची और अग्रभाग में अधोमुख हुई है उन प्रसिद्धकीर्ति वाले महात्मा के समान इनके दाँतों की पंक्ति के मुकुल (कली) की सदृश है।२०३। किन्तु वह राजा हरिश्चन्द्र आज श्मशान में क्यों उपस्थित है, यह कह रानी शैब्या पुत्रशोक को त्याग

प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्राधिपीडिता । वीक्षन्ती सा ततोऽपश्यद्भर्तृदण्डं जुगुप्सितम् ॥२०५
श्वपाकार्हं मनो मोहं जगामायतलोचना । प्राप्य चेतश्च शनकैः सगद्गदमभाषत ॥२०६
धिक्त्वां दैवात्यकरुणं निर्मर्यादं जुगुप्सितम् । येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ॥२०७
राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम् । प्रापयित्वापि नो मुक्तश्चण्डालोऽयं कृतो नृपः ॥२०८
हा राजञ्जातसन्तापामित्थं मां धरणीतलात् । उत्थाप्य नाद्य पर्यङ्कमारोहेति किमुच्यते ॥२०९
नाद्य पश्यामि ते च्छत्रं शृङ्गारमथवा पुनः । चामरं व्यजनं चापि कोऽयं विधिविपर्ययः ॥२१०
यस्याग्रे व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतां गताः । स्वोत्तरीयैरकुर्वन्त नीरजस्कं महीतलम् ॥२११
सोऽयं कपालसंलग्नघटीघटनिरन्तरे । मृतनिर्माल्यसूत्रान्तर्गूढकेशे सुदारुणे ॥२१२
वसानिष्यन्दसंशुष्कमहीपुटकमण्डिते । भस्माङ्गारार्द्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ॥२१३
गृध्रगोमायुनादार्त्तनष्टक्षुद्रविहङ्गमे । चिताधूमायितरुचा नीलीकृतदिगन्तरे ॥२१४
कुणपास्वादनमुदा संप्रहृष्टनिशाचरे । चरत्यमेध्ये राजेन्द्रः श्मशाने दुःखपीडितः ॥२१५
एवमुक्त्वा समाश्लिष्य कण्ठं राज्ञो नृपात्मजा । कष्टशोकशताधारा विललापार्त्तया गिरा ॥२१६

मूर्च्छित अवस्था में पड़े हुए पति को देखने लगी ।२०४। उस दुबले अंगवाली दीनवदन आश्चर्ययुक्त हुई राजमहिषी शैब्या ने स्वामी और पुत्रजनित मन की पीडा से पीडित हो इधर-उधर देखते-देखते स्वामी का वह निन्दनीय चाण्डाल-दण्ड देखा ।२०५। "मैं चाण्डाल की पत्नी हुई" कहकर वह दीर्घ नेत्रवाली रानी मोह को प्राप्त हुई फिर धीरे-धीरे चैतन्यता लाभ करके गदगद स्वर से कहने लगी ।२०६। रे नृशंस! मर्यादाहीन ! निन्दितदैव ! तुझको धिक्कार है तुमने इन देवता के समान अमरपति को चाण्डालपना दिया है ।२०७। राज्यनाश, सुहृत्त्याग, भार्या और पुत्र को बिकवा कर भी शान्त नहीं हुआ, अब चाण्डालपने को प्राप्त कराया है ।२०८। हा राजन् ! इस प्रकार सन्ताप में पड़ी हुई मुझको पृथ्वी से उठाकर आज 'पलँग पर बैठो' क्यों नहीं कहते ? ।२०९। हाय ! आज आपका वह छत्र वा शृंगार क्यों नहीं दिखाई देता ? आज आपका वह चामर कहाँ है ? वह पंखा कहाँ है ? हाय ! दैव की क्या ही विपरीतता है ।२१०। पहले जिनके गमनकाल में राजा लोग भृत्य के समान अपने दुपट्टे से पृथ्वी की धूरि हटाते थे, वही यह राजा हरिश्चन्द्र आज असह्य दुःख से पीड़ित हो ऐसे भयंकर अपवित्र श्मशान में अकेले विचरण करते हैं ।२११। जहाँ मृतकों के कपालों से मिले हुये घट और छोटे घड़ों से चारों दिशा परिपूर्ण हुई हैं, मृतकों के निर्माल्य सूत्र के भीतर बहुत से केश पड़े रहने से जो अत्यन्त दारुण हुआ है ।२१२। मृतकों के देह से टपकती हुई वसा और बहुत सारे सूखे काष्ठ से जिसकी चारों दिशा व्याप्त हैं, भस्म, अंगार, अर्द्धदग्ध अस्थि और मज्जा इन सबके होने से जो अत्यन्त भयंकर हुआ है ।२१३। छोटे-छोटे पक्षी, गृध्र और गोमायु के शब्द को सुन जिस स्थान से भागते हैं । चिता के उठते हुए धुएँ से जिसकी दिशा-विदिशा नीली हो गई हैं ।२१४। और निशाचरगण मांस के भक्षण करने से आनन्दित होकर जिसमें इधर-उधर भ्रमण करते हैं, उसी स्थान में वह राजेन्द्र हरिश्चन्द्र दुःख से पीड़ित हो अकेले विचरते हैं ।२१५। नृपसुता शैब्या इस प्रकार कह, राजा के कंठ से लिपट कष्ट और सैकड़ों शोक का आधारस्वरूप हो आर्त्त वचनों से विलाप करने लगी ।२१६

राजपत्न्युवाच

राजन्स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान् । तत्कथ्यतां महाभाग मनो वै मुह्यते मम ।।२१७
यद्येतदेवं धर्मज्ञ नास्ति धर्मे सहायता । तथैव विप्रदेवादिपूजने पालने भुवः ।।२१८
नास्ति धर्मः कुतः सत्यमार्जवं चानृशंसता । यत्र त्वं धर्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः ।।२१९
इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदम् । कथयामास तन्वंग्या यथा प्राप्ता श्वपाकता ।।२२०
रुदित्वा सापि सुचिरं निःश्वस्योष्णं च दुःखिता । स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथा वृत्तं न्यवेदयत् ।।२२१
श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले । मृतस्य पुत्रस्य तदा जिह्वया लेलिहन्मुखम् ।।२२२

राजोवाच

यमस्य भिक्षां याचावः कृपणौ पुत्रगर्द्धिनौ । तस्माच्छीघ्रं व्रजावोऽद्य पुत्रो यत्र प्रियो गतः ।।२२३
प्रिये न रोचये दीर्घं कालं क्लेशमुपासितुम् । नात्मा यत्तश्च तन्वङ्गि पश्य मे मन्दभाग्यताम् ।।२२४
चण्डालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि । चाण्डालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि ।।२२५
नरके च पतिष्यामि कीटकः कृमिभोजनः । वैतरण्यां महापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिले ।।२२६
असिपत्रवने प्राप्य छेदं प्राप्स्यामि दारुणम् । तापं प्राप्स्यामि वा प्राप्य महारौरवरौरवौ ।।२२७
मग्नस्य दुःखजलधौ पारः प्राणवियोजनम् । एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ।।२२८

राजपत्नी ने कहा—हे राजन् ! जो देखती हूँ, यह क्या स्वप्न है या सत्य ? आपको जो ज्ञात हो सो कहिये । हे महाभाग ! मैं तो मोह से विचारशक्ति हीन हुई हूँ ।२१७। हे धर्मज्ञ ! यदि यह सत्य हो, तब धर्म की तो सहायता नहीं, तथा देवता और ब्राह्मण के पूजन से भी फल नहीं अथवा पृथ्वी का पालन करने से ही क्या फल है ।२१८। अतएव धर्म नहीं, सत्य नहीं, सरलता नहीं और सहृदयता की तो बात ही नहीं है, क्योंकि केवलमात्र धर्म ही आपका परम बल है, किन्तु तो भी अपने राज्य से च्युत हुए ।२१९। राजनन्दिनी शैब्या के यह वचन सुनकर राजा ने उष्ण श्वास छोड़ अपने चाण्डालपने के प्राप्त होने का यथावत् वृत्तान्त गद्‌गद स्वर से कहा ।२२०। तब रानी शैब्या ने भी उनका वृत्तान्त सुनकर दुःखितचित्त से बहुत देर तक रोदन किया और लम्बी श्वास लेकर जिस प्रकार रोहिताश्व की मृत्यु हुई थी, वह सब वृत्तान्त उनसे आनुपूर्विक निवेदन किया ।२२१। राजा हरिश्चन्द्र रानी शैब्या के यह वचन सुनकर पृथ्वी पर गिर गये और मरे हुए पुत्र का मुख जीभ से चाटने लगे ।२२२

राजा बोले—हम दोनों कृपण पुत्र के लोभी यम से भिक्षा माँगें, अब शीघ्र जहाँ प्रिय पुत्र गया है, वहाँ चलें ।२२३। हे प्रिये ! अब बहुत काल तक क्लेश सहने की इच्छा नहीं करता, किन्तु हे तन्वङ्गी ! देखो, मैं ऐसा मन्दभाग्य हूँ कि, मेरी आत्मा भी मेरे अधीन नहीं है ।२२४। यदि बिना चाण्डाल की आज्ञा के अग्नि में प्रवेश करूँ, तो फिर दूसरे जन्म में भी चाण्डाल का दास होना पड़ेगा ।२२५। अथवा कृमि खाने वाला कीड़ा होकर नरक में गिरना होगा वा वैतरणी में, या पीव, वसा, रक्त और नसों की चिकनाई से युक्त नरक में यंत्रणा भोगनी पड़ेगी ।२२६। अथवा असिपत्र वन में जाकर दारुण छेदन करने की यंत्रणा भोग करूँगा । या महारौरव वा रौरव नरक में दुःसह ताप को प्राप्त होऊँगा ।२२७। जो दुःख रूपी समुद्र में डूबता हो, केवलमात्र प्राणत्याग ही उसकी पार भूमि है । देखो मेरा जो एक बालक वंश को बढ़ाने वाला

मम दैवाम्बुवेगेन मग्नः सोऽपि बलीयसा । कथं प्राणान्विमुञ्चामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः ॥२२९
अथवा नार्तिना क्लिष्टो नरः पापमवेक्षते । तिर्यक्त्वेनास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा ॥२३०
वैतरण्यां कुतस्तादृग्यादृशं पुत्रविप्लवे । सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने ॥२३१
निपतिष्यामि तन्वङ्गि क्षन्तव्यं कुकृतं मम । अनुज्ञाता च गच्छ त्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते ॥२३२
मम वाक्यं च तन्वङ्गि निबोधादृतमानसा । यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः ॥२३३
परत्र सङ्गमो भूयात्पुत्रेण सह च त्वया । इहलोके कुतस्त्वेतद्भविष्यति ममेङ्गितम् ॥२३४
त्वया सह मम श्रेयो गमनं पुत्रमार्गणे । यन्मया हसता किञ्चिद्रहस्ये वा शुचिस्मिते ॥२३५
अश्लीलमुक्तं तत्सर्वं क्षन्तव्यं मम याचतः । राजपत्नीति गर्वेण नावज्ञेयः स ते द्विजः ॥
सर्वयत्नेन ते तोष्यः स्वामी दैवतवच्छुभे ॥२३६

राजपत्न्युवाच

अहमप्यत्र राजर्षे दीप्यमाने हुताशने । दुःखभारासहाद्यैव सह यास्यामि वै त्वया ॥२३७
सह स्वर्गं च नरकं सहैवावां हि भुंक्ष्वहे । श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते ॥२३८

पक्षिण ऊचुः

ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम् । भार्यया सहितश्चासौ बद्धाञ्जलिपुटस्तदा ॥२३९
चिन्तयन्परमात्मानमीशं नारायणं हरिम् । हृत्कोटरगुहासीनं वासुदेवं सुरेश्वरम् ॥

था।२२८। वह भी बलवान् दैवरूपी जल में डूब गया। इधर असीम दुर्गति भोग है, पराधीन होने के कारण प्राण भी कैसे त्यागूँ ? ।२२९। अथवा आर्त्तपुरुष को पाप के प्रति क्या देखना है ? पुत्रवियोग में जिस प्रकार असह्य दुःख है, तिर्यग्योनि में, असिपत्र वन में ।२३०। वा वैतरणी में भी वैसा दुःख नहीं है, अतएव मैं पुत्रदेह के संग जलती हुई अग्नि में।२३१। गिरूँगा। हे तन्वङ्गी ! मैंने तुम्हारे निकट जो अन्याय आचरण किया है, वह सब क्षमा करो। हे शुचिस्मिते ! तुम मेरी आज्ञा से उसी ब्राह्मण के घर चली जाओ।२३२। हे तन्वङ्गी ! मैं जो कहता हूँ, सो आदरयुक्त मन से सुनो—यदि मैंने दान किया है, वा होम किया अथवा यदि गुरुजन को संतुष्ट किया है।२३३। तो पुत्र और तेरे संग पुनर्जन्म में मिलूँगा, अब इस लोक में मेरे इस अभिप्राय के सिद्ध होने की संभावना नहीं है।२३४। अथवा मेरे संग तुझको भी पुत्र के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। हे शुचिस्मिते ! मैंने हास्य के निमित्त निर्जन में भी ।२३५। कुछ अश्लील कहा हो, प्रार्थना करता हूँ, वह सब क्षमा करना। तुम राजपत्नी होने के गर्व से उस ब्राह्मण का निरादर नहीं करना। हे शुभे ! स्वामी वा देवता के समान उसको अति यत्न से संतुष्ट रखना।२३६

राजपत्नी ने कहा—हे राजर्षे ! मैं भी अब यह दुःखभार नहीं सह सकती। इस कारण अब इस जलती हुई अग्नि में ही आपके संग चलूँगी।२३७। वहाँ हम आप और पुत्र तीनों एक ही स्थान में रहकर स्वर्ग वा नरक भोगेंगे रानी के यह वचन सुनकर राजा बोले—हे पतिव्रते ! अच्छा यही करना।२३८

पक्षी बोले—हे जैमिने ! फिर राजा हरिश्चन्द्र ने चिता बनाकर, अपने पुत्र को उसके ऊपर रख भार्या के सहित हाथ जोड़ ज्योंही।२३९। परमात्मा, ईश, वासुदेव, सुरेश्वर, परब्रह्म, कृष्णवर्ण, पीताम्बरधारी,

अनादिनिधनं ब्रह्म कृष्णं पीताम्बरं शुभम् ॥२४०
तस्य चिन्तयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः । धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥२४१
आगत्य सर्वे प्रोचुस्ते भो भो राजञ्शृणु प्रभो । अयं पितामहः साक्षाद्धर्मश्च भगवान्स्वयम् ॥२४२
साध्याश्च विश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणाः । नागाः सिद्धाः सगन्धर्वा रुद्राश्चैव तथाश्विनौ ॥२४३
एते चान्ये च बहवो विश्वामित्रस्तथैव च । विश्वत्रयेण यो मित्रं कर्त्तुं वै नाशकत्पुरा ॥२४४
विश्वामित्रस्तु ते मैत्रीमिष्टं चाहर्तुमिच्छति । आरुरोह ततः प्राप्तो धर्मः शक्रोऽथ गाधिजः ॥२४५

धर्म उवाच

मा राजन्साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः । तितिक्षादमसत्याद्यैः स्वगुणैः परितोषितः ॥२४६

इन्द्र उवाच

हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम् । त्वया सभार्यापुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः ॥२४७
आरोह त्रिदिवं राजन्भार्यापुत्रसमन्वितः । सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥२४८

पक्षिण ऊचुः

ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् । इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगतः प्रभुः ॥२४९
पुष्पवर्षं च सुमहद्देवदुन्दुभिनिःस्वनम् । ततस्ततो वर्तमाने समाजे देवसङ्कुले ॥२५०
समुत्तस्थौ ततः पुत्रो राज्ञस्तस्य महात्मनः । सुकुमारतनुः सुस्थः प्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥२५१

शुभप्रद, हृत्कोटरगुहावासी, अनादिनिधन, नारायण, हरि की चिन्ता की ।२४०। चिन्ता करते ही उसी समय इन्द्रादि देवता धर्म को आगे करके शीघ्रतासहित उस स्थान में आये ।२४१। वह सब आकर कहने लगे—हे राजन् ! सुनो ! यह साक्षात् ब्रह्मा यह साक्षात् भगवान् धर्म ।२४२। और साध्यगण, विश्वदेवा, मरुद्गण, सब लोकपाल, नागगण, सिद्धगण, गंधर्वों के सहित रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार ।२४३। और अन्यान्य सब देवता, सभी अपने अपने वाहनसहित आये हैं और जो तीनों विश्व के संग मित्रता नहीं कर सकते वह विश्वामित्र भी स्वयं उपस्थित हैं ।२४४। सबही आपके संग मित्रता और इष्टता करने आये हैं तदनन्तर धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र यह तीनों जन उठकर राजा के निकट आये ।२४५

धर्म ने कहा—हे राजन् ! ऐसे साहसिक कार्य से निवृत्त हो, मैं धर्म हूँ, तितिक्षा, दम और सत्य इत्यादि अपने गुणों से आपने मुझको संतुष्ट किया है, मैं स्वयं आपके निकट आया हूँ ।२४६

इन्द्र बोले—हे महाभाग ! हरिश्चन्द्र ! मैं इन्द्र हूँ, और आपके निकट आया हूँ, आपने भार्या और पुत्र के सहित सनातन सब लोकों को जीता है ।२४७। अतएव जो दूसरे मनुष्यको दुर्लभ है, उसे अपने कर्म से जीते हुए स्वर्ग में भार्या और पुत्र के सहित आरोहण करो ।२४८

पक्षी बोले—फिर चिता स्थान में जाकर प्रभु इन्द्र ने अपमृत्युविनाशक अमृत की वर्षा की ।२४९। तब देवताओं ने वर्त्तमान सभा में फूल बरसाये और देव दुन्दुभी बजने लगी ।२५०। अनन्तर उन महात्मा राजा का सुकुमार अंगवाला पुत्र रोहिताश्व भी स्वस्थ और प्रसन्नेन्द्रिय मन होकर उठ बैठा ।२५१। फिर

ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं क्षणात् । सभार्यः सुश्रिया युक्तो दिव्यमाल्याम्बरान्वितः ॥२५२
स्वस्थः सम्पूर्णहृदयो मुदा परमया युतः । बभूव तत्क्षणादिन्द्रो भूयश्चैनमभाषत ॥२५३
सभार्यस्त्वं सपुत्रश्च प्राप्स्यसे सद्गतिं पराम् । समारोह महाभाग निजानां कर्मणां फलैः ॥२५४

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन वै । अगत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्येऽहं सुरालयम् ॥२५५

धर्म उवाच

तवैनं भाविनं क्लेशमवगम्यात्ममायया । आत्मा श्वपाकतां नीतो दर्शितं तच्च चापलम् ॥२५६

इन्द्र उवाच

प्रार्थ्यते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि । तदारोह हरिश्चन्द्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम् ॥२५७

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चैतन्निबोध मे । प्रसादसुमुखं यत्त्वां ब्रवीमि प्रश्रयान्वितः ॥२५८
मच्छोकमग्नमनसः कोसलानगरे जनाः । तिष्ठन्ति तानपोह्याद्य कथं यास्याम्यहं दिवम् ॥२५९
ब्रह्महत्या गुरोर्घातो गोवधः स्त्रीवधस्तथा । तुल्यमेभिर्महापापं भक्तत्यागेऽप्युदाहृतम् ॥२६०
भजन्तं भक्तमत्याज्यमदुष्टं त्यजतः सुखम् । नेह नामुत्र पश्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज ॥२६१

राजा हरिश्चन्द्र क्षणकाल पुत्र को आलिङ्गन कर दिव्य वस्त्र और माल्य धारण किये भार्या के सहित शोभा पाने लगे ।२५२। और भली भाँति स्वस्थ होकर अत्यन्त आनन्दित हुए, तब सुरपति इन्द्र ने उनसे कहा ।२५३। हे महाभाग ! आप भार्या और पुत्र के सहित परम सद्गति प्राप्त करेंगे, अतएव अपने कर्मफल से स्वर्ग में निवास करो ।२५४

हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज ! मैं प्रभु चाण्डाल की अनुमति से बिना छुटकारा पाये स्वर्ग में नहीं जाऊँगा ।२५५

धर्म ने कहा——हे राजन् ! मैंने आपका इस प्रकार भावी क्लेश समझकर अपनी माया से चाण्डाल का रूप धारणपूर्वक ऐसा चाण्डालपना दिखाया था ।२५६

इन्द्र बोले—पृथ्वी के सम्पूर्ण मनुष्य जिस परम स्थान में जाने के लिये सदा प्रार्थना करते हैं, हे हरिश्चन्द्र ! पुण्य करने वाले मनुष्यादिकों के उसी स्थान में जाओ ।२५७

हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज ! आपको नमस्कार है, मैं नम्रतापूर्वक प्रसन्न हुए आपसे जो कहता हूँ, सो सुनिये ।२५८। कोशल नगर के सम्पूर्ण मनुष्य मेरे शोक में मग्नमन होकर वहाँ वास करते हैं, मैं उनको छोड़कर किस प्रकार स्वर्ग में जाऊँ ? ।२५९। ब्रह्महत्या, गुरुहत्या, गोहत्या, वा स्त्रीहत्या करने से जो पाप होता है, भक्त का त्याग करने से भी वही पाप होता है ।२६०। जो मेरे भक्त हैं और सदा मेरा भजन करते हैं, उनको छोड़ने से इस लोक वा परलोक में क्या सुख है ? अतएव हे शक्र ! आप स्वर्ग को जाइये ।२६१।

यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर । ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह ।।२६२

इन्द्र उवाच

बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै पृथक् । कथं गतभोग्यं त्वं भूय स्वर्गमवाप्स्यसि ।।२६३

हरिश्चन्द्र उवाच

शक्र भुङ्क्ते नृपो राज्यं प्रभावेण कुटुम्बिनाम् । यजते च महायज्ञैः कर्म पौर्त्तं करोति च ।।२६४
तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम् । उपकर्त्तॄन्न सन्त्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया ।।२६५
तस्माद्यन्मम देवेश किञ्चिदस्ति सुचेष्टितम् । दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः ।।२६६
बहुकालोपभोग्यं हि फलं यन्मम कर्मणः । तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः ।।२६७

पक्षिण ऊचुः

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः । प्रचन्नचेता धर्मश्च विश्वामित्रश्च गाधिजः ।।२६८
गत्वाशु नगरं सर्वे चातुर्वर्ण्यसमायुतम् । हरिश्चन्द्रस्य निकटे प्रोवाच बिबुधाधिपः ।।२६९
आगच्छन्तु जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम् । धर्मप्रसादात्सम्प्राप्तं सर्वैर्युष्माभिरेव तु ।।२७०
विमानकोटिसम्बद्धं स्वर्गलोकान्महीतलम् । गत्वायोध्याजनं प्राह दिवमारुह्यतामिति ।।२७१
तदेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीत्या तस्य च भूपतेः । आनीय रोहिताश्वं च विश्वामित्रो महातपाः ।।२७२
अयोध्याख्ये पुरे रम्ये सोऽभ्यषिंचन्नृपात्मजम् । देवैश्च मुनिभिः सिद्धैरभिषिच्य नराधिपः ।।२७३

हे देवताओं के ईश्वर ! यदि वह भी मेरे संग स्वर्ग में जायँ तो मैं भी स्वर्ग में जा सकता हूँ, नहीं तो उनके संग नरक में ही रहूँगा ।२६२

इन्द्र ने कहा—हे राजन् ! उन्होंने अनेक प्रकार के पृथक्-पृथक् पाप-पुण्य किये हैं, तो फिर उनके संग आप किस प्रकार स्वर्ग में जा सकते हैं ।२६३

हरिश्चन्द्र बोले—हे शक्र ! राजा कुटिम्बियों के प्रभाव से ही राज भोगता है, तथा महा यज्ञसाधन और वापी कूपादि निर्माण करता है ।२६४। मैंने जो कुछ धर्मकार्य का अनुष्ठान किया है, वह सब उन लोगों के प्रभाव से । अत एव सामान्य स्वर्ग के लालच से उन उपकारियों को नहीं छोड़ सकता ।२६५। इस कारण हे देवेश ! मैंने जो कुछ पुण्य किया है और जो कुछ जप वा दान किया है, वह सब उनके सहित समान हो ।२६६। जो मेरे कर्म का फल बहुत समय तक भोगने योग्य हो, आपके प्रसाद से वह उनके संग एक ही दिन में भोग करूँ ।२६७

पक्षी बोले—हे जैमिने ! ऐसा ही होगा' यह कहकर तीनों भुवन के ईश्वर इन्द्र, प्रसन्नचित्त धर्म तथा गाधितनय विश्मामित्र जी सबने उस नगर में जाकर चारों वर्ण के लोगों को हरिश्चन्द्र के सहित एकत्र कराकर इन्द्र ने कहा ।२६८-२६९। हे मनुष्यो ! आओ तुम सबने जो धर्म के प्रसाद से दुर्लभ स्वर्गलोक प्राप्त किया है, वहाँ चलो ।२७०। उस समय स्वर्ग से करोड़ों विमान भूलोक में आये और अयोध्यावासियों से बोले कि, स्वर्ग चलने के निमित्त शीघ्र ही विमानों पर बैठो ।२७१। फिर गाधितनय महातपा विश्वामित्र जी ने राजा को प्रसन्न करने के लिये देवराज इन्द्र का वचन सुन, रोहिताश्व को लाये ।२७२। मनोहर अयोध्यानगरी में राजपुत्र को अभिषिक्त किया, तब अयोध्यावासी हृष्ट पुष्ट बंधुगण सबने ही सिद्ध मुनि

राज्ञा सह तदा सर्वे हृष्टपुष्टसुहृज्जनाः । सपुत्रभृत्यदारास्ते दिवमारुरुहुर्जनाः ।।२७४
पदे पदे विमानात्ते विमानमगमन्नराः । तदा सम्भूतहर्षोऽसौ हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः ।।२७५
सम्प्राप्य भूतिमतुलां विमानैः स महीपतिः । आसांचक्रे पुराकारे वप्रप्राकारसंवृते ।।२७६
ततस्तस्यर्द्धिमालोक्य श्लोकं तत्रोशना जगौ । दैत्याचार्यो महाभागः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।।२७७

शुक्र उवाच

हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति । यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्या नैरन्तर्येण मानवः ।।२७८
तेन वेदाः पुराणानि सर्वे मन्त्राः सुसंग्रहाः । घुष्टाः स्युः पुष्करे तीर्थे प्रयागे सिन्धुसागरे ।।२७९
देवागारे कुरुक्षेत्रे वाराणस्यां विशेषतः । विषुवद्ग्रहणे चैव यत्फलं जपतो लभेत् ।।२८०
तत्फलं द्विगुणं चैव संयतात्मा शृणोति यः । श्रुत्वा तु पूजयेद्भक्त्या पुराणज्ञं द्विजोत्तमम् ।।२८१
गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च तथैवान्नेन जैमिने । येनैवं यत्कृतं पुण्यं तच्छक्यं न मयोदितुम् ।।२८२
अहो तितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलं महत् । यदा गतो हरिश्चन्द्रः पुरी चेन्द्रत्वमाप्तवान् ।।२८३

पक्षिण ऊचुः

एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रविचेष्टितम् । यः शृणोति सुदुःखार्त्तः स सुखं महदाप्नुयात् ।।२८४
स्वर्गार्थी प्राप्नुयात्स्वर्गं पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् । भार्यार्थी प्राप्नुयाद्भार्यां राजार्थी राज्यमाप्नुयात् ।।२८५

और देवताओं के सहित राजा को अभिषिक्त कर, भार्या, पुत्र और सेवकों को लेकर हो राजा हरिश्चन्द्र के सहित स्वर्ग में गमन किया ।२७३-२७४। उस समय वह पग-पग में एक विमान से दूसरे विमान पर जाते थे उस काल राजा हरिश्चन्द्र जी अत्यन्त प्रसन्न हुए ।२७५। और विमान में चढ़ने की अतुल विभूति को प्राप्त और वलयाकार परकोटे से युक्त हो स्थिति करने लगे ।२७६। तब सम्पूर्ण शास्त्रों का तत्त्व जानने वाले दैत्यों के आचार्य महाभाग शुक्राचार्य ने राजा का ऐसा ऐश्वर्य देखकर यह श्लोक गाया ।२७७

शुक्र बोले—जगत् में हरिश्चन्द्र के समान दूसरा राजा न हुआ और न आगे होगा। जो तितिक्षा और दान के फल से अपने नगरवासियों सहित स्वर्ग में गये । जो मनुष्य इन राजा हरिश्चन्द्र की कथा को भक्तिसहित सुनेगा ।२७८। वह वेद पुराण और सब मंत्रों के फल को प्राप्त होगा जो पुष्कर, प्रयाग, सिन्धुसागर, देवालय, कुरुक्षेत्र और काशी में इस कथा का पाठ करेगा उसको विशेष फल होगा विषुवती (विखौती) और ग्रहण में जो जप करने का फल होता है ।२७९-२८०। उससे दूना फल जितेन्द्रिय होकर इसके सुनने से होता है । और यह कथा सुनकर पुराण जानने वाले ब्राह्मणश्रेष्ठ को सन्तुष्ट करें ।२८१। हे जैमिने ! उसको गौ, भूमिं, सुवर्ण, वस्त्र और अन्न दे जो इससे पुण्य होता है उसे मैं नहीं कह सकता ।२८२। अहो ! तितिक्षा और दान का बड़ा फल है, जिसके प्रभाव से हरिश्चन्द्र इन्द्रत्व को प्राप्त हो नगरवासियों सहित स्वर्ग में गये ।२८३

पक्षी बोले—हे मुने ! इस प्रकार यह आपके निकट हरिश्चन्द्र का सब वृत्तान्त वर्णन किया, इसके सुनने से दुःखार्त्त मनुष्य को महासुख प्राप्त होता है ।२८४। स्वर्ग की इच्छा करने वाले को स्वर्ग, पुत्र की अभिलाषा करने वाले को पुत्र, भार्या की कामना करने वालो को भार्या और राज्य की आकांक्षा करने

अतः परं कथाशेषः श्रूयतां मुनिसत्तम । विपाको राजसूयस्य पृथिवीक्षयकारणम् ।।
तद्विपाकनिमित्तं च युद्धमाडिबकं महत् ।।२८६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे हरिचन्द्रोपाख्यानं नामाष्टमोऽध्यायः ।८।

अथ नवमोऽध्यायः

आडिबकयुंद्धकथनम्

पक्षिण ऊचुः

राज्यच्युते हरिश्चन्द्रे गते च त्रिदशालयम् । निश्चक्राम महातेजा जलवासात्पुरोहितः ।।१
वसिष्ठो द्वादशाब्दान्ते गङ्गापर्युषितो मुनिः । शुश्राव च समस्तं तु विश्वामित्रविचेष्टितम् ।।२
हरिश्चन्द्रस्य नाशं च राज्ञश्चोदारकर्मणः । चाण्डालसम्प्रयोगं च भार्यातनयविक्रयम् ।।३
स श्रुत्वा सुमहाभागः प्रीतिमानवनीपतौ । चकार कोपं तेजस्वी विश्वामित्रमृषिं प्रति ।।४

वसिष्ठ उवाच

मम पुत्रशतं तेन विश्वामित्रेण घातितम् । तत्रापि नाभवत्क्रोधस्तादृशो यादृशोऽद्य मे ।।५
श्रुत्वा नराधिपमिमं स्वराज्यादवरोपितम् । महात्मानं महाभागं देवब्राह्मणपूजकम् ।।६
यस्मात्स सत्यवाक्छान्तः शत्रावपि विमत्सरः । अनागाश्चैव धर्मात्मा अप्रमत्तो मदाश्रयः ।।७

वाले मनुष्य को राज्य मिलता है ।२८५। हे मुनिसत्तम ! अब पृथ्वीक्षय का कारण राजसूय यज्ञ का विपाक और उस विपाक के कारण महत् आडिबक युद्धस्वरूप शेष कथा का वर्णन करते हैं सुनो ।२८६

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में हरिश्चन्द्रोपाख्यान नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

अध्याय ९

आडिबक युद्ध-कथन

पक्षी बोले—हे जैमिने ! जब राजा हरिश्चन्द्र राज्य से छूटकर त्रिदशालय (स्वर्ग) में चले गये, तब उनके पुरोहित महातेजस्वी वसिष्ठ जी जल से निकले ।१। मुनि ने बारह वर्ष के बाद जलवास से निकल कर विश्वामित्र जी का सब वृत्तान्त सुना ।२। उदार कर्म राजा हरिश्चन्द्र जिस प्रकार राज्य नष्ट हो जाने पर चाण्डालपने को प्राप्त हुए और जैसे उनके स्त्री पुत्र बिके ।३। उन महाभाग तेजस्वी वशिष्ठ जी ने यह सब सुनकर विश्वामित्र ऋषि पर बड़ा क्रोध किया कारण कि, यह राजा से अत्यन्त प्रसन्न थे ।४

वशिष्ठ जी बोले—इस समय महात्मा महाभाग देवता और ब्राह्मणों की पूजा करनेवाले राजा को स्वराज्य से च्युत हुआ सुनकर मुझको जितना क्रोध उत्पन्न हुआ है, उतना क्रोध उसी विश्वामित्र के हाथ से अपने सौ पुत्र के मरने पर भी उत्पन्न नहीं हुआ था ।५-६। जबकि मेरे आश्रित सत्यवादी, शत्रु के प्रति भी मत्सरताहीन अर्थात् शत्रु से भी शत्रुता न रखनेवाले, निरपराधी, धर्मात्मा और अप्रमत्त राजा को ।७।

सपत्नीभृत्यपुत्रस्तु प्रापितोऽन्त्यां दशां नृपः । स राज्याच्च्यावितोऽनेन बहुशश्च खिलीकृतः ॥८
तस्माद्दुरात्मा ब्रह्मद्विड्यज्विनामवरोपकः । मच्छापोपहतो मूढः स बकत्वमवाप्स्यति ॥९

पक्षिण ऊचुः

श्रुत्वा शापं महातेजा विश्वामित्रोऽपि कौशिकः । त्वमप्याडिर्भवस्वेति प्रतिशापमयच्छत ॥१०
अन्योन्यशापात्तौ प्राप्तौ तिर्यक्त्वं परमद्युती । वसिष्ठः स महातेजा विश्वामित्रश्च कौशिकः ॥११
अन्यजातिसमायोगं गतावप्यमितौजसौ । युयुधातेऽतिसंरब्धौ महाबलपराक्रमौ ॥१२
योजनानां सहस्रे द्वे प्रमाणेनाडिरुच्छ्रितः । षण्णवत्यधिकं ब्रह्मन् सहस्रत्रितयं बकः ॥१३
तौ तु पक्षप्रहाराभ्यामन्योन्यस्योरुविक्रमौ । प्रहरन्तौ भयं तीव्रं प्रजानां चक्रतुस्तदा ॥१४
विधूय पक्षाणि बको रक्तोद्वृत्ताक्षिराहनत् । आडिं सोऽप्युन्नतग्रीवो बकं पद्भ्यामताडयत् ॥१५
तयोः पक्षानिलापास्ताः प्रपेतुर्गिरयो भुवि । गिरिप्रपाताभिहता चकम्पे च वसुन्धरा ॥१६
क्ष्मा कम्पमाना जलधीनुद्वृत्ताम्बूंश्चकार च । ननाम चैकपार्श्वेन पातालगमनोन्मुखी ॥१७
केचिद्गिरिनिपातेन केचिदम्भोधिवारिणा । केचिन्महीसञ्चलनात्प्रययुः प्राणिनः क्षयम् ॥१८
इति सर्वं परित्रस्तं हाहाभूतमचेतनम् । जगदासीत्सुसम्भ्रान्तं पर्यस्तक्षितिमण्डलम् ॥१९
हा वत्स हा कान्त शिशो प्रयाह्येषोऽस्मि संस्थितः । हा प्रिये कान्त शैलोऽयं पतत्याशु पलायताम् ॥२०

पत्नी, पुत्र और सेवकों सहित अंत दशा में प्राप्त कराया है, निज राज्य से भ्रष्ट करके अनेक प्रकार से दुःखी किया है ।८। इस कारण वह दुरात्मा ब्रह्मद्वेषी मूढ़, यज्ञ करनेवालों के यज्ञ का नाशक विश्वामित्र मेरे शाप से हत होकर तिर्यग्योनि अर्थात् बगुले के देह को प्राप्त हो ।९

पक्षी बोले—इधर कुशिकवंशोत्पन्न महातेजस्वी विश्वामित्र जी ने भी इस शाप का वृत्तान्त सुनकर वसिष्ठ जी को प्रतिशाप दिया "तू भी आडि हो" ।१०। महातेजा वसिष्ठ और कौशिक विश्वामित्र जी, दोनों ही अत्यन्त तेजस्वी थे, अत-एव एक दूसरे के शाप से परस्पर पक्षी की योनि को प्राप्त हुए ।११। वह अमिततेजस्वी महाबलबान् पराक्रमशाली दोनों अन्य जाति को प्राप्त होकर भी अत्यन्त क्रोधसहित युद्ध करने लगे ।१२। हे ब्रह्मन् ! आडि पक्षी दो हजार योजन ऊँचा और बगुला तीन हजार छियानबें योजन ऊँचा उड़ा ।१३। उन उरुविक्रम पराक्रमशाली दोनों पक्षियों के आपस में पक्षप्रहार करने से प्रजा में अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ ।१४। बगुले ने फैलाये हुए लाल-लाल नेत्रों से समस्त पखों को कंपायमान करके आडि पक्षी को आहत किया, तब उसी समय आडि ने भी गर्दन ऊँची करके बगुले को पैर से ताड़ित किया ।१५। उनके पंखों की पवन से आहत होकर अनेक पर्वत भूमि में गिरने लगे और उन पर्वतों के गिरने से अभिहत होकर पृथ्वी काँपने लगी ।१६। और भूमि के काँपने से समुद्र का जल उछलने लगा तथा काँपती हुई पृथ्वी प्रायः पाताल जाने की इच्छा करके एक पार्श्व में झुक गई ।१७। तब पृथ्वी के सब प्राणी, कोई पर्वत के गिरने से, कोई समुद्र के जल से और कोई भूमि के काँपने से नाश को प्राप्त होने लगे ।१८। इस प्रकार सब जगत् अत्यन्त त्रसित हो, हाहाकार करने लगा, मूर्च्छित और संभ्रान्त हो गया, तब पृथ्वीमण्डल की विपरीतता उपस्थित होने पर ।१९। पृथ्वी के समस्त पुरुष अत्यन्त व्याकुलचित्त से "हा वत्स ! हा कान्त ! हा शिशो ! भागो, यह देखो, मैं कैसी अवस्था में हूँ । हा प्रिये ! हा कान्त ! यह देखो पर्वत गिरते

इत्याकुलीकृते लोके संत्रासविमुखे तदा । सुरैः परिवृतः सर्वैराजगाम पितामहः ।।२१
प्रत्युवाच च विश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ । युद्धं वां विरमत्वेतल्लोकाः स्वास्थ्यं व्रजन्तु च ।।२२
शृण्वन्तावपि तौ वाक्यं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । कोपामर्षसमाविष्टौ युयुधाते न तस्थतुः ।।२३
ततः पितामहो देवस्तं दृष्ट्वा लोकसंक्षयम् । तयोश्च हितमन्विच्छंस्तिर्यग्भावमपानुदत् ।।२४
ततस्तौ पूर्वदेहस्थौ प्राह देवः प्रजापतिः । व्युदस्ते तामसे भावे वसिष्ठः कौशिकर्षभौ ।।२५
जहि वत्स वसिष्ठ त्वं त्वं च कौशिकसत्तम । तामसं भावमाश्रित्य ईदृग्युद्धं चिकीर्षितम् ।।२६
राजसूयविपाकोऽयं हरिश्चन्द्रस्य भूपते । युवयोर्विग्रहश्चायं पृथिवीक्षयकारकः ।।२७
न चापि कौशिकश्रेष्ठस्तस्य राज्ञोऽपराध्यत । स्वर्गप्राप्तिकरो ब्रह्मन्नपकारपदे स्थितः ।।२८
तपोविघ्नस्य कर्त्तारौ कामक्रोधवशं गतौ । परित्यजत भद्रं वो ब्राह्मं हि प्रचुरं बलम् ।।२९
एवमुक्तौ ततस्तेन लज्जितौ तावुभावपि । क्षमयामासतुः प्रीत्या परिष्वज्य परस्परम् ।।३०
ततः सुरैर्वन्द्यमानो ब्रह्मा लोकं निजं ययौ । वसिष्ठोऽप्यात्मनः स्थानं कौशिकोऽपि स्वमाश्रमम्।।३१
एतदाडिबकं युद्धं हरिश्चन्द्रकथां तथा । कथयिष्यन्ति ये मर्त्याः सम्यक्श्रोष्यन्ति चैव ये ।।३२
तेषां पापापनोदं तु श्रुतं ह्येव करिष्यति । न चैव विघ्नकार्याणि भविष्यन्ति कदाचन ।।३३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे आडिबकयुद्धकथनं नाम नवमोऽध्यायः ।९।

हैं शीघ्र भागो" ।२०। अत्यन्त भीत चित्त से वह इस प्रकार कहने लगे और परस्पर एक दूसरे से विमुख अर्थात् अलग-अलग हो गये, तब स्वयं पितामह ब्रह्मा सब देवताओं से युक्त होकर उस स्थान में आये ।२१। और अत्यन्त क्रोधित हुए दोनों पक्षियों से बोले कि—"तुम्हारा युद्ध निवृत्त हो और पृथ्वी के सब प्राणी स्वस्थ होवें" ।२२। दोनों पक्षी अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी का यह वचन सुनकर भी कोप और अमर्ष के वश हो अत्यन्त युद्ध करने लगे, किसी प्रकार से स्थिर न हुए ।२३। तब पितामह ब्रह्माजी ने इस प्रकार प्रजा का क्षय देखकर, उसके हितसाधन की इच्छा से दोनों का ही पक्षिभाव हरण कर लिया ।२४। उन दोनों ऋषियों को पहले देह की प्राप्ति होने से उनका तामस भाव दूर हुआ तब दिव्य शक्तिमान् ब्रह्मा जी ने वसिष्ठ और कौशिक ऋषि से कहा ।२५। हे वत्स वसिष्ठ ! हे सत्तम कौशिक ! तुम तामसभाव अवलम्बन करके जो ऐसा युद्ध करते थे, उसको त्याग दो ।२६। तुम पृथ्वी को क्षय करने वाला जो युद्ध करते थे, वह राजा हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ करने का विपाक (फल) है ।२७। इन कौशिकश्रेष्ठ विश्वामित्र जी ने राजा का कोई अपराध नहीं किया है, प्रत्युत हे ब्रह्मन् ! उपकार के पद में स्थित होकर उनको स्वर्ग प्राप्त कराया है ।२८। तुम काम और क्रोध के वशीभूत होकर तपस्या में विघ्नकारक हुए हो, अत एव इन दोनों को त्याग दो । तुम्हारा मंगल हो । ब्रह्मबल की अपेक्षा अन्य बल नहीं है ।२९। तब प्रजापति ब्रह्मा जी का इस प्रकार वचन सुनकर वह दोनों बहुत लज्जित हुए और प्रेम में पूर्ण हो परस्पर आलिङ्गन कर क्षमा प्रार्थना की ।३०। इसके पीछे लोकपितामह ब्रह्मा जी देवताओं से पूजित होकर ब्रह्मलोक में चले गये और वसिष्ठ तथा विश्वामित्र इन दोनों ने भी अपने-अपने स्थान को प्रस्थान किया ।३१। जो मनुष्य यह आडिबकयुद्ध और हरिश्चन्द्र कथा कहेगा, वा भलीभाँति सुनेगा ।३२। उसके सब पाप दूर हो जायेंगे और जो इसको सुनकर कार्य करेगा, उसके कार्य में कभी विघ्न नहीं होगा ।३३

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में आडिबक युद्ध कथन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अथ दशमोऽध्यायः (१०)

पितापुत्रसंवादे मृत्युदशावर्णनम्

जैमिनिरुवाच

संशयं द्विजशार्दूलाः प्रब्रूत मम पृच्छतः । आविर्भावतिरोभावौ भूतानां यत्र संस्थितौ ॥१
कथं सञ्जायते जन्तुः कथं वा स विवर्धते । कथं वोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडितः ॥२
निष्क्रान्तिमुदरात्प्राप्य कथं वा वृद्धिमृच्छति । उत्क्रान्तिकाले च कथं चिद्भावेन वियुज्यते ॥३
कृत्स्नो मृतस्तथाश्नाति उभे सुकृतदुष्कृते । कथं ते च तथा तस्य फलं सम्पादयन्त्युत ॥४
कथं न जीर्यते तत्र पिण्डीकृत इवाशये । स्त्रीकोष्ठे यत्र जीर्यन्ते भुक्तानि सुगुरूण्यपि ॥५
भक्ष्याणि तत्र नो जन्तुर्जीर्यते कथमल्पकः । कथं भोक्ता स सर्वस्य कर्मणः सुकृतस्य वै ॥६
एतन्मे ब्रूत सकलं सन्देहोक्तिविवर्जितम् । तदेतत्परमं गुह्यं यत्र मुह्यन्ति जन्तवः ॥७

पक्षिण ऊचुः

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयास्मासु निवेशितः । दुर्भाव्यः सर्वभूतानां भावाभावसमाश्रितः ॥८
तं शृणुष्व महाभाग यथा प्राह पितुः पुरा । पुत्रः परमधर्मात्मा सुमतिर्नाम नामतः ॥९
ब्राह्मणो भार्गवः कश्चित्सुतमाह महामतिः । कृतोपनयनं शान्तं सुमतिं जडरूपिणम् ॥१०

अध्याय १०

पितापुत्रसंवाद में मृत्युदशावर्णन

जैमिनि ने कहा—हे द्विजशार्दूलगण ! प्राणियों की, जिसमें जन्म और मृत्यु संघटित होती है, उस विषय में मुझे सन्देह है अत एव पूछता हूँ, आप कहिये ।१। प्राणी किस प्रकार से उत्पन्न होता है ? कैसे बढ़ता है ? और किस भाँति देह में पीड़ा सहकर उदर में वास करता है ? २। उदर से बाहर निकलकर कैसे बढ़ता है, मृत्युकाल में किस प्रकार उसका चैतन्य वियुक्त होता है ।३। प्राणी कालकवल में कवलित होकर किस प्रकार पुण्य और पाप का फल भोगता है तथा पाप-पुण्य किस प्रकार से अपना-अपना फल सम्पादन करते हैं ? ।४। और जब अनेक गुरुपाक भोजन की वस्तु जठराशय में जीर्ण होती हैं, तो सामान्य पिण्डीकृत जीव स्त्री के जठर में किस लिये जीर्ण नहीं होता ? ।५। जिस जठराग्नि में भोजन की हुई सब वस्तु जीर्ण होती हैं अर्थात् पच जाती हैं, वहाँ यह छोटा सा जीव कैसे नष्ट नहीं होता ? और किस प्रकार सब सुकृत कर्मों को भोगता है ? ।६। हे द्विजगण ! जिससे मेरा संदेह दूर हो, उसी प्रकार यह सब विषय वर्णन कीजिये, क्योंकि यह अत्यन्त गुप्त विषय है, प्राणी इसी में मोहित होते हैं ।७

पक्षी बोले—हे मुनिसत्तम ! आपने प्राणियों के भाव अभाव से युक्त यह प्रश्न किया है, यह बड़ा गूढ़ अतुलप्रश्नभार हमारे ऊपर डाला है ।८। जो हो हे महाभाग ! पूर्व काल में सुमति नामक परम धर्मात्मा पुत्र ने अपने पिता से जिस प्रकार कहा था, वही कहते हैं, सुनो ९। किसी समय भार्गववंशीय महामतिनामक किसी ब्राह्मण ने अपने शान्त जनेउ किये हुए जड़रूपी पुत्र सुमति से कहा ।१०। हे वत्स

वेदानधीष्व सुमते यथानुक्रममादितः । गुरुशुश्रूषणे व्यग्रो भैक्षान्नकृतभोजनः ।।११
ततो गार्हस्थ्यमास्थाय चेष्ट्वा यज्ञाननुत्तमान् । इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेथा वनं ततः ।।१२
वनस्थश्च ततो वत्स परिव्राड्निष्परिग्रहः । एवमाप्स्यसि तद्ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचसि ।।१३

पक्षिण ऊचुः

इत्येवमुक्तो बहुशो जडत्वान्नाह किञ्चन । पितापि तं सुबहुशः प्राह प्रीत्या पुनः पुनः ।।१४
इति पित्रा सुतस्नेहात्प्रलोभि मधुराक्षरम् । स चोद्यमानो बहुशः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ।।१५
तातैतद्बहुशोऽभ्यस्तं यत्त्वयाद्योपदिश्यते । तथैवान्यानि शास्त्राणि शिल्पानि विविधानि च ।।१६
जन्मनामयुतं साग्रं मम स्मृतिपथं गतम् । उत्पन्नज्ञानबोधस्य वेदैः किं मे प्रयोजनम् ।।
निर्वेदाः परितोषाश्च क्षयवृद्ध्युदये रतः ।।१७
शत्रुमित्रकलत्राणां वियोगाः सङ्गमास्तथा । मातरो विविधा दृष्टाः पितरो विविधास्तथा ।।१८
अनुभूतानि सौख्यानि दुःखानि च सहस्रशः । बान्धवा बहवः प्राप्ताः पितरश्च पृथग्विधाः ।।१९
विण्मूत्रपिच्छिले स्त्रीणां तथा कोष्ठे मयोषितम् । पीडाश्च सुभृशं प्राप्ता रोगाणां च सहस्रशः ।।२०
गर्भदुःखान्यनेकानि बालत्वे यौवने तथा । वृद्धतायां तथाप्तानि तानि सर्वाणि संस्मरे ।।२१
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां चापि योनिषु । पुनश्च पशुकीटानां मृगाणामथ पक्षिणाम् ।।२२
तथैव राजभृत्यानां राज्ञां चाहवशालिनाम् । समुत्पन्नोऽस्मि गेहेषु तथैव तव वेश्मनि ।।२३

सुमते ! गुरु की सेवा में रत होकर भिक्षा के अन्न द्वारा जीवनधारणपूर्वक क्रमानुसार पहले सब वेद पढ़ ।११। फिर गृहस्थधर्म अवलम्बन कर यज्ञानुष्ठानपूर्वक अभिलषित पुत्र उत्पन्न कर और फिर वन में चला जा ।१२। हे वत्स ! वन में वास करने पर निष्परिग्रह संन्यासी होने से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करेगा, जिसके प्राप्त करने से फिर सोच करना नहीं पड़ेगा ।१३

पक्षी बोले—इस प्रकार पिता ने सुमति से बहुत कुछ कहा, किन्तु उसने जड़ता के कारण कोई उत्तर नहीं दिया तो भी पिता स्नेह के वश हो उससे बार-बार कहने लगे ।१४। जब पुत्र से स्नेहवश पिता ने ऐसे प्रलोभी मधुर वचनों से बार-बार कहा, तब सुमति कुछ हँसकर पिता से बोला ।१५। हे तात ! आप मुझको इस समय जिस विषय का उपदेश देते हैं, मैंने अनेक बार इस कारण अभ्यास किया है और अन्यान्य नानाशास्त्र और बहुत प्रकार से शिल्पशास्त्र का भी मैंने अभ्यास किया है ।१६। कुछ अधिक दशहजार वर्ष की बात मुझको स्मरण है, मैंने अनेक बार दुःख पाया है और अनेक बार संतुष्ट हूँ और अनेक बार क्षय वृद्धि के उदय में रत हुआ हूँ, जब ज्ञान प्राप्त है, तो वेद से क्या प्रयोजन है ।१७। मेरा अनेक बार शत्रु, मित्र और कलत्र के सहित मिलाप तथा वियोग हुआ है, अनेक माता और अनेक पिता देखे हैं ।१८। हजारों सुख, दुःख अनुभव किये हैं, अनेक बान्धव पाये हैं और पिता भी अनेक प्रकार देखे हैं ।१९। मल मूत्र से भरे स्त्री के जठर में मैंने अनेक बार वास किया है, सहस्र-सहस्र रोगों की दारुण यंत्रणा भोगी है ।२०। गर्भयंत्रणा वा बाल्य यौवन और वृद्ध अवस्था में जितनी बार जैसा दुःख भोगा है, वह सब मुझको स्मरण है ।२१। मैंने कितनी ही बार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, कीट, मृग और पक्षी की योनि में जन्म ग्रहण किया है ।२२। जिस प्रकार आपके घर उत्पन्न हुआ हूँ ऐसे ही अनेक अनेक बार राजसेवक और अनेकानेक योधाओं के घर

भृत्यतां दासतां चैव गतोऽस्मि बहुशो नृणाम् । स्वामित्वमीश्वरत्वं च दरिद्रत्वं तथा गतः ॥२४
हतं मया हतश्चान्यैर्हतं मे घातितं तथा । दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥२५
पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेन च । तुष्टोऽसकृत्तथा दैन्यमश्रुधौताननो गतः ॥२६
एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमता तात सङ्कटे । ज्ञानमेतन्मया प्राप्तं मोक्षसम्प्राप्तिकारकम् ॥२७
विज्ञाते यत्र सर्वोऽयमृग्यजुः सामसंज्ञितः । क्रियाकलापो विगुणो न सम्यक्प्रतिभाति मे ॥२८
तस्मादुत्पन्नबोधस्य वेदैः किं मे प्रयोजनम् । गुरुविज्ञानतृप्तस्य निरीहस्य सदात्मनः ॥२९
षट्प्रकारक्रियादुःखसुखहर्षरसैश्च यत् । गुणैश्च वर्जितं ब्रह्म तत्प्राप्स्यामि परं पदम् ॥३०
रसहर्षभयोद्वेगक्रोधामर्षजवागुरा । विज्ञाता नृमृगग्राहिसंघपाशशताकुला ॥३१
तस्माद्यास्याम्यहं तात त्यक्त्वेमां दुःखसन्ततिम् । त्रयीधर्ममधर्माढ्यं किं पापफलसन्निभम् ॥३२

पक्षिण ऊचुः

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हर्षविस्मयगद्गदम् । पिता प्राह महाभागः स्वसुतं हृष्टमानसः ॥३३

पितोवाच

किमेतद्वदसे वत्स कुतस्ते ज्ञानसम्भवः । केन ते जडता पूर्वमिदानीं च प्रबुद्धता ॥३४
किन्नु शापविकारोऽयं मुनिदेवकृतस्तव । यत्ते ज्ञानं तिरोभूतमाविर्भावमुपागतम् ॥३५

जन्म लिया है ।२३। मैं अनेक बार अनेक मनुष्यों का भृत्य और दास हुआ हूँ, अनेक बार स्वामित्व, प्रधानत्व और दरिद्रता भोगी है ।२४। मैंने अनेक बार अनेक मनुष्यों को मारा है तथा अनेक बार कितने ही मनुष्यों ने मुझको और मैंने उनको मारा है, मैंने अनेक बार दान किया है और अनेक बार मैंने औरों से लिया है ।२५। पिता, माता, सुहृत्, भ्राता और स्त्री इत्यादि से मैं कितनी ही बार सन्तुष्ट हुआ हूँ और अनेक बार दीन दशा को प्राप्त होकर आँसुओं के जल से मुख धोया है ।२६। हे तात ! मैंने इस प्रकार संकटमय संसारचक्र में निरन्तर भ्रमण करते-करते मोक्ष देने वाला ज्ञान प्राप्त किया है ।२७। इस प्रकार ज्ञान लाभ करने से ऋक्, यजुः और साम नामक समस्त क्रियाकलाप मुझको विगुण और असम्यक् विदित होती है ।२८। अत एव जब मुझको ज्ञान प्राप्त हो गया है और गुरुविज्ञान में तृप्त होकर चेष्टारहित और सदात्मा हुआ हूँ, तो फिर मेरा वेदज्ञान से क्या प्रयोजन है ।२९। इसलिए छः प्रकार की क्रिया, सुख, दुख हर्ष, रस और गुणहीन ब्राह्म परमपद को मैं: निःसन्देह प्राप्त होऊँ।३०। और रस, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध, अमर्ष और बुढ़ापे के द्वारा सदा नितान्त आकुल तथा मृग श्वान के पकड़ने वाले सैकड़ों बंधन में व्याप्त ।३१। इस कारण हे पिता ! मैं इस दुःखरूप प्रवाह को छोड़कर जाऊँगा । त्रयीविद्या का धर्म अधर्म सा दीखता है, इसको त्यागकर निःसन्देह ब्राह्मपद प्राप्त करूँगा ।३२

पक्षी बोले—पुत्र का यह वचन सुन महाभाग पिता ने प्रसन्नचित्त और हर्षविस्मययुक्त गद्गद वाणी के द्वारा अपने पुत्र से फिर कहा ।३३

पिता बोले—हे वत्स ! तुम यह क्या कहते हो ! कहाँ से तुमको ऐसा ज्ञान मिला पहले तुम जड़स्वभाव थे, अब कहाँ से ऐसी ज्ञान बुद्धि उत्पन्न हुई ? ।३४। तुम्हारा छिपा हुआ ज्ञान जो सहसा प्रगट हुआ, यह क्या किसी मुनि अथवा देवता के शाप का विकार था ? ।३५

पुत्र उवाच

शृणु तात यथावृत्तं ममेदं सुखदुःखदम् । यश्चाहमासमन्यस्मिञ्जन्मन्यस्मत्परं तु यत् ॥३६
अहमासं पुरा विप्रो न्यस्तात्मा परमात्मनि । आत्मविद्याविचारेषु परां निष्ठामुपागतः ॥३७
सततं योगयुक्तस्य सतताभ्याससङ्गमात् । सत्संयोगात्स्वस्वभावाद्विचारविधिशोधनात् ॥३८
तस्मिन्नेव परा प्रीतिर्ममासीद्युंजतः सदा । आचार्यतां च सम्प्राप्तः शिष्यसन्देहहृत्तमः ॥३९
ततः कालेन महता ऐकान्तिकमुपागतः । अज्ञानाकृष्टसद्भावो विपन्नश्च प्रमादतः ॥४०
उत्क्रान्तिकालादारभ्य स्मृतिलोपो न मेऽभवत् । यावदब्दं गतं चैव जन्मनां स्मृतिमागतम् ॥४१
पूर्वाभ्यासेन तेनैव सोऽहं तात जितेन्द्रियः । यतिष्यामि तथा कर्त्तुं न भविष्ये यथा पुनः ॥४२
ज्ञानदानफलं ह्येतद्यज्जातिस्मरणं मम । न ह्येतत्प्राप्यते तात त्रयीधर्माश्रितैर्नरैः ॥४३
सोऽहं पूर्वाश्रमादेव निष्ठाधर्ममुपाश्रितः । एकान्तित्वमुपागम्य यतिष्याम्यात्ममोक्षणे ॥४४
तद् ब्रूहि त्वं महाभाग यत्ते सांशयिकं हृदि । एतावतापि ते प्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥४५

पक्षिण ऊचुः

पिता प्राह ततः पुत्रं श्रद्दधत्तस्य तद्वचः । भवता यद्वयं पृष्टाः संसारग्रहणाश्रयम् ॥४६

पुत्र उवाच

शृणु तात यथा तत्त्वमनुभूतं मयाऽसकृत् । संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥४७

पुत्र ने कहा—हे तात ! मेरा यह सुखदुःखप्रदायक पहला वृत्तान्त तथा मैं अन्य जन्म में जो था और जो हुआ था, वह सब कहता हूँ, सुनो ।३६। मैं पूर्व जन्म में एक ब्राह्मण था, तब मैंने परमात्मा में निरन्तर आत्मा को लीन करके आत्मविद्या में परमनिष्ठालाभ की थी ।३७। सदा योगयुक्त रहने से साधुता अभ्यास, सत्संयोग, सत्स्वभाव, विचार, विधिशोधन अर्थात् विधियों का उद्धार ।३८। और निरन्तर परमात्मा में युक्त रहने से उस जन्म में मैं अत्यन्त प्रसन्न था और शिष्यों का सन्देह निवारण करने वाला होकर आचार्य की पदवी को प्राप्त हुआ था ।३९। कुछ काल बीतने पर मैं ऐकान्तिक हो गया । फिर अज्ञान से आकृष्ट स्वभाव हो प्रमाद के कारण यद्यपि व्याकुल हो गया ।४०। किन्तु तो भी उस मृत्युकाल तक मेरी स्मृति लोप नहीं हुई, अत एव जन्म के समय से जितने वर्ष बीते हैं, वह सब मुझको स्मरण हैं ।४१। इस कारण हे तात ! मैं पूर्वाभ्यास के बल से जितेन्द्रिय होकर फिर वैसा ही यत्न करूँगा ।४२। जिससे मैं इस ज्ञान और दान का फलस्वरूप जातिस्मरण हुआ हूँ, अर्थात् सब जन्मों का वृत्तान्त मुझे स्मरण है । हे पिता! त्रयीधर्म का आश्रय करने वाले मनुष्य इस प्रकार जातिस्मरण नहीं हो सकते ।४३। मैं पूर्वजन्मार्जित निष्ठा धर्म के आश्रय से ऐकान्तिकत्व लाभ करके आत्ममोक्ष में यत्नवान् होऊँ ।४४। अत एव हे महाभाग ! आपके हृदय में जो कुछ संशय है वह कहिये, मैं एकमात्र उपाय से ही उस विषय में आपकी प्रीति उत्पन्न कराकर उऋण होऊँ ।४५

पक्षी बोले—अनन्तर उसके पिता ने उसका यह वचन सुन श्रद्धायुक्त हो, जीवों के जन्ममृत्यु विषय में आपने मुझसे जिस प्रकार पूँछा है, उन्होंने भी पुत्र से उसी प्रकार पूँछा था ।४६

पुत्र ने कहा—हे तात ! मैंने बार-बार जो अनुभव किया है, वह यथातत्त्व कहता हूँ सुनो, यह जो

सोऽहं वदामि ते सर्वं तवैवानुज्ञया पितः । उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति ॥४८
ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः । भिनत्ति मर्मस्थानानि दीप्यमानो निरिन्धनः ॥४९
उदानो नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्त्तते । भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥५०
ततो येनाम्बुदानानि कृतान्यन्नरसास्तथा । दत्ताः स तस्य आह्लादमापदि प्रतिपद्यते ॥५१
अन्नानि येन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा । सोऽपि तृप्तिमवाप्नोति विनाप्यन्नेन वै तदा ॥५२
येनानृतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च । आस्तिकः श्रद्दधानश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥५३
देवब्राह्मणपूजायां ये रता नोऽनसूयवः । शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः ॥५४
यो न कामान्न संरम्भान्न द्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत् । यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥५५
अवारिदायिनो दाहं क्षुधां चानन्नदायिनः । प्राप्नुवन्ति नराः काले तस्मिन्मृत्यावुपस्थिते ॥५६
शीतं जयन्ति धनदास्तापं चन्दनदायिनः । प्राणघ्नीं वेदनां कष्टां ये चानुद्वेगकारिणः ॥५७
मोहाज्ञानप्रदातारः प्राप्नुवन्ति महद्भयम् । वेदनाभिरुदग्राभिः प्रपीडचन्तेऽधमा नराः ॥५८
कूटसाक्षी मृषावादी यश्चासदनुशास्ति वै । ते मोहमृत्यवः सर्वे तथान्ये वेदनिन्दकाः ॥५९
विभीषणाः पूतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः । आगच्छन्ति दुरात्मानो यमस्य पुरुषास्तदा ॥६०

संसारचक्र है, इसकी जरा भी कहीं स्थिति नहीं है ।४७। हे पिता ! मैं आपकी आज्ञा से वह सब वृत्तान्त कहता हूँ और कोई भी मृत्युकाल की सम्पूर्ण घटनाओं का वर्णन करने में समर्थ नहीं होगा ।४८। देह में स्थित हुआ पित्त कुपित होकर ईंधन के बिना भी तीव्र वायु के संचालन से दीप्यमान होता है और सब मर्मस्थान का भेदन करता है ।४९। और उदान नामक शरीरस्थ वायु उसके ऊपर वर्तमान होकर जलीय समस्त भक्ष्य वस्तु की अधोगति निरोध करती है इसलिए उस समय प्राणी के आत्मा का वियोग होता है ।५०। जिसने जल वा अन्न, रस दान किया है, वही उस मृत्युरूप आपत्काल में प्रसन्न होते हैं ।५१। जिन्होंने श्रद्धासहित पवित्र मन से अन्नदान किया है, वह बिना अन्न भी उस समय तृप्तिलाभ करते हैं ।५२। जो पुरुष कभी मिथ्या नहीं बोलते, किसी की प्रीति में भेद नहीं कराते, आस्तिक और श्रद्धावान् हैं, उन्हीं की सुख से मृत्यु होती है ।५३। जो देवता और ब्राह्मण की पूजा में रत हैं, जो असूयाहीन शुद्धचित्त, सुभाषी अर्थात् श्रेष्ठ बोलने वाले और लज्जावान् हैं, वही सुखपूर्वक प्राणत्याग करते हैं ।५४। जो काम, क्रोध अथवा द्वेष के वश होकर कभी धर्म को नहीं छोड़ते जो कहते हैं, वही करते हैं और सौम्यमूर्ति हैं वही सुख से प्राणत्याग करते हैं ।५५। और जिन्होंने कभी प्यास से आर्त्त हुए मनुष्य को जल और भूख से दुःखी हुए को अन्न नहीं दिया, वह उस मृत्यु काल के उपस्थित होने पर दाह और क्षुधा को प्राप्त होते हैं ।५६। जो काष्ठदान करते हैं, उनको मृत्यु काल में शीत नहीं सताता, जो चंदनदान करते हैं वह ताप नहीं पाते और जो सदा प्राणियों को भयभीत करते हैं, उन्हीं को मृत्युकाल में कष्टदायक प्राणघ्नी वेदना भोगनी पड़ती है ।५७। जो अधम मनुष्य मनुष्यों को मोह और अज्ञान की शिक्षा देते हैं, वही प्राणत्याग के समय अत्यन्त भय पाते हैं और महादुःख से पीड़ित होते हैं ।५८। जो झूँठी गवाही देते, मिथ्यावादी, वेदनिन्दक और बुरा शासन करते हैं, उनकी अज्ञान से मृत्यु होती है ।५९। और उनके मृत्युकाल में पूतिगंधमय कूट मुद्गर हाथ में लिये अत्यन्त भयंकर दुरात्मा यमदूत आते हैं ।६०। ज्योंही यमदूतगण नेत्रों के सामने आते हैं, उसी

प्राप्तेषु दृक्पथं तेषु जायते तस्य वेपथुः । क्रन्दत्यविरतं सोऽथ भ्रातृमातृसुतानथ ॥६१
सास्य वागस्फुटा तात एकवर्णा विभाव्यते । दृष्टिश्च भ्राम्यते त्रासाच्छ्वासाच्छुष्यत्यथाननम् ॥६२
ऊर्ध्वश्वासान्वितः सोऽथ दृष्टिभङ्गसमन्वितः । ततः स वेदनाविष्टस्तच्छरीरं विमुञ्चति ॥६३
वाय्वग्रसारी तद्रूपं देहमन्यत्प्रपद्यते । तत्कर्मजं यातनार्थं न मातृपितृसम्भवम् ॥
तत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानैः प्राग्भवं यथा ॥६४
ततो दूतो यमस्याशु पाशैर्बध्नाति दारुणैः । दण्डप्रहारसम्भ्रान्तं कर्षते दक्षिणां दिशम् ॥६५
कुशकण्टकवल्मीकशङ्कुपाषाणकर्कशे । तथा प्रदीप्तज्वलने क्वचिच्छ्वभ्रशतोत्कटे ॥६६
प्रदीप्तादित्यतप्तेन दह्यमानेन दंशुभिः । कृष्यते यमदूतैश्च शिवासन्नादभीषणैः ॥६७
विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणः शिवाशतैः । प्रयाति दारुणे मार्गे पापकर्मायमक्षयम् ॥६८
छत्रोपानत्प्रदातारो ये च वस्त्रप्रदा नराः । ते यान्ति मनुजा मार्गं तं सुखेन तथान्नदाः ॥६९
विमानैः सोज्ज्वलैर्यान्ति भूमिदानप्रदा नराः । एवं क्लेशाननुभवन्नवशः पापपीडितः ॥
नीयते द्वादशाहेन धर्मराजपुरं नरः ॥७०
कलेवरे दह्यमाने महान्तं दाहमृच्छति । ताड्यमाने तथैवार्तिं छिद्यमाने च दारुणाम् ॥७१
क्लिद्यमाने चिरतरं जन्तुर्दुःखमवाप्नुते । स्वेन कर्मविपाकेन देहान्तरगतोऽपि सन् ॥७२
तत्र यद्बान्धवास्तोयं प्रयच्छन्ति तिलैः सह । यच्च पिण्डं प्रयच्छन्ति नीयमानस्तदश्नुते ॥७३

समय वह काँपते हुए शरीर से भाई माता और पुत्र को पुकार कर निरन्तर रोते हैं ।६१। उस समय उनका वचन ठीक समझ में नहीं आता, एकवर्णमय होता है, दृष्टि घूमने लगती है और त्रास तथा श्वास के कारण मुख सूख जाता है। अनन्तर वह ऊर्ध्वश्वास लेते हुए दृष्टिभंगयुक्त हो वेदना से ग्रसित होते हैं और वह शरीर छोड़ देते हैं ।६२-६३। फिर वायु के आगे होकर कर्मजनित यंत्रणा अर्थात् नरक की यातना भोगने के लिये बिना माता पिता के उत्पन्न अन्य देह धारण करते हैं और वह देह पूर्व के सामन वयस, अवस्था और संस्थान से संयुक्त होता है ।६४। अनन्तर यमदूत उनको दारुण पाश में बाँधकर दण्ड के प्रहार से संभ्रान्त करते हुए दक्षिण दिशा खींचते हैं ।६५। कुश, काँटे, वल्मीक, शंकु (कील) और पत्थरों से कर्कश, कहीं जलती हुई अग्नि से व्याप्त, सैकड़ों गढ़े पड़े हुए हैं ।६६। कहीं सूर्य की महा उष्ण किरणों से जलते हुए और कहीं सैकड़ों गीदड़ी शब्द करती हैं कहीं यमदूत खींच रहे हैं ।६७। वे घोर यातना पूर्वक उस प्राणी को खींचते हैं और सैकड़ों गीदड़ उसको खाते हैं, इस प्रकार के दारुण मार्ग से पापी पुरुष यमलोक को जाते हैं ।६८। जिन मनुष्यों ने छत्र, जूता, वस्त्र वा अन्न का दान किया है, वह सहज में ही सुखपूर्वक उस मार्ग में जा सकते हैं ।६९। जिन मनुष्यों ने भूमि का दान किया है, वह उज्ज्वल विमानों में बैठकर जाते हैं । पापपीड़ित अर्थात् पापात्मा मनुष्य इस प्रकार क्लेशानुभव से विवश होकर बारहवें दिन धर्मराज के नगर में पहुँचते हैं ।७०। जब शरीर जलता है, तब वह महादाह भोगते हैं और देह के ताड़ित वा छेदित होने से दारुण वेदना भोगते हैं।७१। यह देह जब जल में गीला होता है, तब देहान्तर अवलम्बन करने पर भी अपने कर्म के फल से सदा दुःख का अनुभव करना पड़ता है ।७२। बांधवगण उसके उद्देश्य में जो तिलसहित जल वा पिण्ड देते हैं, उस समय वही उसके निकट पहुँचता है और वह उसी को भोजन करता है ।७३।
बांधवों को तेल लगाना

तैलाभ्यङ्गो बान्धवानामङ्गसंवाहनं च यत् । तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स्वबान्धवाः ।।७४
भूमौ स्वपद्भिर्नात्यन्तं क्लेशमाप्नोति बान्धवैः । दानं ददद्भिश्च तथा जन्तुराप्याय्यते मृतः ।।७५
नीयमानः स्वकं गेहं द्वादशाहं स पश्यति । उपभुङ्क्ते तथा दत्तं तोयपिण्डादिकं भुवि ।।७६
द्वादशाहात्परं घोरमावासं भीषणाकृतिम् । याम्यं पश्यत्यथो जन्तुः कृष्यमाणः पुरं ततः ।।७७
गतमात्रोऽतिरक्ताक्षं भिन्नाञ्जनचयप्रभम् । मृत्युकालान्तकादीनां मध्ये पश्यति वै यमम् ।।७८
दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीदारुणाकृतिम् । विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृतं व्याधिशतैः प्रभुम् ।।७९
दण्डासक्तं महाबाहुं पाशहस्तं सुभैरवम् । तन्निर्दिष्टां ततो याति गतिं जन्तुः शुभाशुभाम् ।।८०
रौरवे कूटसाक्षी तु याति यश्चानृती नरः । ब्रह्मघ्नो हत्यया दष्टो गोघ्नश्च पितृघातकः ।।८१
क्षेत्रदारापहारी च सीमानिक्षेपहारकः । गुरुपत्न्याभिगामी च कन्यागामी तथैव च ।।८२
तस्य स्वरूपं गदतो रौरवस्य निशामय । योजनानां सहस्रे द्वे रौरवो हि प्रमाणतः ।।
जानुमात्रप्रमाणश्च ततः श्वभ्रः सुदुस्तरः ।।८३
तत्राङ्गारचयोपेतं कृतं च धरणीसमम् । जाज्वल्यमानस्तीव्रेण तापिताङ्गारभूमिना ।।८४
तन्मध्ये पापकर्माणं विमुञ्चन्ति यमानुगाः । स दह्यमानस्तीव्रेण वह्निना तत्र धावति ।।८५
पदे पदे च पादोऽस्य शीर्यते जीर्यते पुनः । अहोरात्रेणोद्धरणं पादन्यासं च गच्छति ।।८६

उबटन मलना वर्जित है, कारण कि, उस मृतक के भोजन को यही वस्तु प्राप्त होती है।७४। और बांधवों के भूमि में शयन करने से उसका क्लेश दूर होता है और दान करने से वह जीव प्रसन्न होता हैं।७५। वह बारहवें दिन फिर अपने घर पहुँचता है और उसके उद्देश्य में जो जल तथा पिण्डादि दिया जाता है, वह उसी को खाता है।७६। बारह दिन बीतंने पर फिर यमदूतों के द्वारा आकर्षित हो अत्यन्त बृहत् भीषणाकार लोहमय यमपुर देखता है।७७। वहाँ जाकर मृत्यु, काल, अन्तकाद्रि पार्षदों से युक्त रक्तलोचन और अंजनपुंज के समान कृष्णवर्ण यमराज को देखता है।७८। वह डाढ़ और भ्रुकुटीभंग अतीव कराल वदन तथा विरूप भीणषाकार और वक्राकृति सैकड़ों व्याधि के द्वारा चारों ओर से घिरे हुए हैं।७९। वह महाबाहु यम दण्ड और पाश धारण करते हैं, इससे उनका आकार बड़ा भयंकर है, प्राणी उन्हीं यमराज की निर्दिष्ट की हुई अच्छी-बुरी गति को प्राप्त होते हैं।८०। जो मनुष्य मिथ्यावादी हैं और मिथ्यासाक्षी देते हैं वह रौरव नामक नरक में गिरते हैं, ब्राह्मण की हत्या करने वाले, गौ की हत्या करने वाले, पिता का घात करने वाले।८१। खेत, स्त्री, सीमा, धरोहर के हरने वाले, गुरु की स्त्री तथा कन्या से भोग करने वाले उसी रौरव नरक में जाते हैं।८२। हे तात ! उस रौरव नरक का स्वरूप कहता हूँ, सुनिये—वह रौरव नरक दो हजार योजनपरिमित लम्बा चौड़ा है, और उसमें जांघ के बराबर गहरा गर्त (गढ़ा) है।८३। उस गर्त्त में मृत्तिका के समान अंगारे और उन तीव्र अंगारों से तप्त होकर वह सदा जलता रहता है।८४। यमदूत पापात्मा मनुष्यों को उसमें डाल देते हैं और वह उस तीव्र अग्नि में दह्यमान होकर इधर-उधर दौड़ते हैं।८५। इस प्रकार उसके पैर पग-पग पर अग्नि से फटते और नष्ट होते हैं कि दिन-रात में एक बार पैर रखने और पैर उठाने में समर्थ होता है।८६। इस भाँति चरण रखता हुआ सहस्रयोजन उत्तीर्ण होने पर

एवं सहस्रमुत्तीर्णो योजनानां विमुच्यते । ततोऽन्यत्पापशुद्ध्यर्थं तादृङ्निरयमृच्छति ।।८७
ततः सर्वेषु निस्तीर्ण पापी तिर्यक्त्वमश्नुते । कृमिकीटपतङ्गेषु श्वापदे मशकादिषु ।।८८
गत्वा गजद्रु माद्येषु गोष्वश्वेषु तथैव च । अन्यासु चैव पापासु दुःखदासु च योनिषु ।।८९
मानुष्यं प्राप्य कुब्जो वा कुत्सितो वामनोऽपि वा । चण्डालपुल्कसाद्यासु नरो योनिषु जायते ।।९०
अवशिष्टेन पापेन पुण्येन च समन्वितः । ततश्चारोहणीं जातिं शूद्रवैश्यनृपादिकाम् ।।९१
विप्रदेवेन्द्रतां चापि कदाचिदवरोहणीम् । एवं तु पापकर्माणो नरकेषु पतन्त्यधः ।।९२
यथा पुण्यकृतो यान्ति तन्मे निगदतः शृणु । ते यमेन विनिर्दिष्टां यान्ति पुण्यां गतिं नराः ।।९३
प्रगीतगन्धर्वगणैः प्रनृत्ताप्सरसां गणैः । हारनूपुरमाधुर्यशोभितान्युत्तमानि च ।।९४
प्रयान्त्याशु विमानानि नाना दिव्यस्रगुज्ज्वलाः । तस्माच्च प्रच्युता राज्ञामन्येषां च महात्मनाम् ।।९५
जायन्ते च कुले तत्र सद्वृत्तपरिपालकाः । भोगान्सम्प्राप्नुवन्त्यग्र्यांस्ततो यान्त्यूर्ध्वमन्यथा ।।९६
अवरोहणीं च सम्प्राप्य पूर्ववद्यान्ति मानवाः । एतत्ते सर्वमाख्यातं यथा जन्तुर्विपद्यते ।।
अतः शृणुष्व विप्रर्षे यथा गर्भं प्रपद्यते ।।९७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे मृत्युदशावर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।१०।

वहाँ से छुटकारा पाता है और पापशुद्धि के लिये उसी के समान दूसरे नरक में जाता है ।८७। पापी मनुष्य इस प्रकार सब नरकों से उत्तीर्ण होकर तिर्यक् योनि को प्राप्त होता है । फिर क्रमानुसार कृमि, कीट, पतंग, श्वापद (हिंसकजन्तु), मच्छर ।८८। गौ, घोड़ा, हाथी और वृक्ष लतादि अनेक प्रकार की कष्टदायक पापयोनियों में जन्मग्रहणपूर्वक ।८९। मनुष्य जन्म को प्राप्त हो कुबड़ा, कुत्सित और बौना आदि रूप से चाण्डाल और पुल्कस इत्यादि निन्दनीय योनियों में जन्म लेता है ।९०। फिर शेषपुण्य से मनुष्य योनि को प्राप्त होकर (यदि पुण्यसंचय करे तो) आरोहिणी गति पाकर क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय ।९१। ब्राह्मण और देवेन्द्र तक हो सकता है (और यदि फिर अधर्माचरण करे तो पुनर्वार) अवरोहिणी गति को प्राप्त हो क्रमानुसार उन सब नरकों में गिरता है ।९२। अब पुण्यवान् मनुष्य जिस प्रकार जाते हैं वह कहता हूँ, सुनो—पुण्यवान् मनुष्य भी यम की निर्दिष्ट की हुई पुण्यमयी गति को प्राप्त होते हैं ।९३। जिस मसय वह गमन करते हैं, तब उनके चारों ओर गंधर्व गाते हुए जाते हैं, अप्सरा नाचती हैं तथा हार नूपुर और माधुर्य इत्यादि से शोभित अति उत्तम ।९४। विमान उनके निकट आते हैं और वह शीघ्र ही नाना प्रकार के दिव्य माल्यधारण से उज्ज्वल हो उनमें बैठकर जाते हैं, फिर पुण्य शेष होने पर वह विमान से गिरकर अन्य महात्मा ।९५। तथा राजकुल में जन्म ले सद्वृत्ति के पालन करने वाले मनुष्य होते हैं और अनेक प्रकार के भोगों को भोगकर क्रमशः ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते हैं ।९६। और यदि अवरोहिणी दशा में प्राप्त हो, तो पहले कहे के अनुसार समस्त भोग करते हैं, हे तात ! प्राणिगण जिस प्रकार से मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वह आपसे सब वर्णन किया। हे विप्रर्षे ! अब जिस प्रकार से गर्भधारण होता है, वह सुनो।९७

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में पितापुत्रसंवाद में मृत्युदशावर्णन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त ।१०।

अथैकादशोऽध्यायः (११)

गर्भस्थितिवर्णनम्

पुत्र उवाच

निषेकं मानवस्त्रीणां बीजं प्रोक्तं रजस्यथ । विमुक्तमात्रो नरकात्स्वर्गाद्वापि प्रपद्यते ॥१
तेनाभिभूतं तत्स्थैर्यं याति बीजद्वयं पितः । कललत्वं बुद्बुदत्वं ततः पेशित्वमेव च ॥२
पेश्यास्तथा यथा बीजादङ्कुरादिसमुद्भवः । अङ्गानां च तथोत्पत्तिः पञ्चानामनुभागशः ॥३
उपाङ्गान्यंगुलीनेत्रनासास्यश्रवणानि च । प्ररोहं यान्ति चाङ्गेभ्यस्तद्वत्तेभ्यो नखादिकम् ॥४
त्वचि रोमाणि जायन्ते केशाश्चैव ततः परम् । समं समृद्धिमायाति तेनैवोद्भवकोशकः ॥५
नारिकेलफलं यद्वत्स कोशं वृद्धिमृच्छति । तद्वत्प्रयात्यसौ वृद्धिं स कोशोऽधोमुखः स्थितः ॥६
तले तु जानुपार्श्वाभ्यां करौ न्यस्य स वर्द्धते । अंगुष्ठौ चोपरि न्यस्तौ जान्वोरग्रे तथांगुली ॥७
जानुपृष्ठे तथा नेत्रे जानुमध्ये च नासिका । स्फिचौ पार्ष्णिद्वयस्थौ च बाहु जङ्घे बहिःस्थिते ॥८
एवं वृद्धिं क्रमाद्याति जन्तुः स्त्रीगर्भसंस्थितः । अन्यसत्त्वोदरे जन्तोर्यथा रूपं तथा स्थितिः ॥९

अध्याय ११

गर्भस्थिति का वर्णन

पुत्र ने कहा—हे तात ! निषेककाल में स्त्री के रज में मनुष्य का जो वीर्य प्राप्त होता है, स्वर्ग या नरक से छूटते ही मनुष्य उसको अवलम्बन करता है ।१। और उसके द्वारा अभिभूत होकर वह दोनों बीज स्थैर्यभाव को प्राप्त होते हैं, अर्थात् स्थिर हो जाते हैं, फिर कुछ गाढ़े बुलबुले लंबे गोल-गोल और अंडाकर भाव को प्राप्त होते हैं ।२। उस लंबे गोल-गोल अंडाकार में जो सूक्ष्म बीज रहता है, उसको अंकुर कहते हैं और अंकुर से विभाग के क्रमानुसार पांचो अंग की उत्पत्ति होती है ।३। फिर समस्त उपाङ्ग अर्थात् अंगुली, नेत्र, नासिका, मुख और कान इत्यादि की उत्पत्ति होती है और इस उपाङ्ग से जो अंकुर उत्पन्न होता है, उससे नखादि की उत्पत्ति होती है ।४। फिर चर्म के ऊपर रोमावली और केश उत्पन्न होते हैं इस प्रकार उसके सब अंग और उद्भवकोश दोनों ही समान् भाव से बढ़ते हैं ।५। अर्थात् नारियल का फल जिस प्रकार कोष के सहित बढ़ता रहता है, ऐसे ही वह प्राणी भी गर्भकोष के सहित नीचे को मस्तक किये वृद्धि को प्राप्त होता है ।६। प्राणी जिस समय गर्भकोष में नीचे को मुख किये वास करता है, तो जानु और पार्श्व के सहित दोनों हाथ निम्नभाग में विन्यस्त रहते हैं, दोनों अंगूठे जानु के ऊपर रहते है और अन्यान्य समस्त अंगुली जानुके अग्रभाग में फैली रहती है ।७। वहाँ दोनों नेत्र जानु के पृष्ठ में और नासिका दोनों जानु के मध्यभाग में संलग्न रहती हैं, उस समय दोनों स्फिक (कूले) पार्ष्णिके ऊपर और बाहु तथा जंघा बहिर्भाग में स्थित रहती हैं ।८। प्राणी गर्भवास में स्थित होकर इस प्रकार क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होता है और अन्यान्य प्राणियों में जिसकी जैसी आकृति है, वह उसी प्रकार वहाँ वास करता है ।९।

काठिन्यमग्निनायाति भुक्तपीतेन जीवति । पुण्यापुण्याश्रयमयी स्थितिर्जन्तोस्तथोदरे ॥१०
नाडी चाप्यायनी नाम नाभ्यां तस्य निबध्यते । स्त्रीणां तथान्त्रशुषिरे सा निबद्धोपजायते ॥११
क्रामन्ति भुक्तपीतानि स्त्रीणां गर्भोदरे यथा । तैराप्यायितदेहोऽसौ जन्तुर्वृद्धिमुपैति वै ॥१२
स्मृतिं तत्र प्रयान्त्यस्य बह्व्यः संसारभूमयः । ततो निर्वेदमायाति पीड्यमान इतस्ततः ॥१३
पुनर्नैवं करिष्यामि मुक्तमात्र इहोदरात् । तथा तथा यतिष्यामि गर्भं नाप्स्याम्यहं यथा ॥१४
इति चिन्तयते स्मृत्वा जन्मदुःखशतानि वै । यानि पूर्वानुभूतानि दैवभूतानि यानि वै ॥१५
ततः कालक्रमाज्जन्तुः परिवर्तत्यधोमुखः । नवमे दशमे वापि मासि सञ्जायते ततः ॥१६
निष्क्राम्यमाणो वातेन प्राजापत्येन पीड्यते । निष्क्राम्यते च विलपन्हृदि दुःखनिपीडितः ॥१७
निष्क्रान्तश्चोदरान्मूर्च्छामसह्यां प्रतिपद्यते । प्राप्नोति चेतनां चासौ वायुस्पर्शसमन्वितः ॥१८
ततस्तं वैष्णवीमाया समास्कन्दति मोहिनी । तया विमोहितात्मासौ ज्ञानभ्रंशमवाप्नुते ॥१९
भ्रष्टज्ञानो बालभावं ततो जन्तुः प्रपद्यते । ततः कौमारकावस्थां यौवनं वृद्धतामपि ॥२०
पुनश्च मरणं तद्वज्जन्म चाप्नोति मानवः । ततः संसारचक्रेऽस्मिन्भ्राम्यते घटियन्त्रवत् ॥२१
कदाचित्स्वर्गमाप्नोति कदाचिन्निरयं नरः । निरयं चैव स्वर्गं च कदाचिच्च मृतोऽश्नुते ॥२२
कदाचिदत्रैव पुनर्जातः स्वं कर्म सोऽश्नुते । कदाचिद्भुक्तकर्मा च मृतः स्वल्पेन गच्छति ॥२३

उदरस्थ अग्नि के द्वारा क्रमशः कठिन होता है और भोजन किये वा पिये हुए पदार्थ से उसका जीवन धारण होता है, गर्भवास भी पुण्य और पाप की अधिकता के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार का है ।१०। जो हो, उसकी नाभि में जो आप्यायनी नामक नाडी निबद्ध रहती है, वह स्त्री की आंत में संलग्न है ।११। उस छिद्रद्वारा स्त्री के खाये पिये सब पदार्थ वहाँ पहुँचते रहते हैं और उनके द्वारा देह तृप्त होकर वह जीव बढ़ता रहता है ।१२। तब अनेक प्रकार संसारभूमि उसको स्मरण होती है और चारों ओर से पीड़ित होकर वह अत्यन्त दुःख को प्राप्त होता है ।१३। दैवजनित पूर्वानुभूत शत-शत जन्म के सब दुःखों को स्मरण कर उस समय वह इस प्रकार चिन्ता करता है कि, "मैं उदर से निकलते ही फिर ऐसे कार्य कभी नहीं करूँगा, अब की, बार इस विषय में यत्नवान् रहूँगा, जिससे पुनर्वार गर्भवास का दुःख भोगना न पड़े" ।१४-१५। अनन्तर वह अधोमुख प्राणी कालक्रम से नवें वा दशवें महीने में जब परिवर्तित होता है, तब उसका जन्म होता है ।१६। उस काल वह प्राजापत्य वायु से अत्यन्त पीड़ित होकर निकलता है और हृदय के अत्यन्त दुःख से पीड़ित होकर विलाप करता हुआ बाहर आता है ।१७। इस प्रकार उदर से निकलते ही उसको असह्य मूर्च्छा होती है और फिर वायु के स्पर्श से चेतना भी हो जाती है ।१८। अनन्तर मोहिनी वैष्णवी माया उसको लिपट जाती है और उस माया से विमोहितात्मा होने पर उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है ।१९। इस प्रकार ज्ञान नष्ट होने पर वह प्राणी क्रमानुसार बाल्य, कौमार, यौवन और वृद्धावस्था इत्यादि नाना दशा भोगता है ।२०। और फिर प्राण त्याग करके पुनर्वार उसी रूप में जन्म लेता है । सुतरां घटीयंत्र के समान इस संसार चक्र में निरंतर घूमता रहता है ।२१। वह कभी स्वर्ग में, कभी नरक में और कभी दोनों स्थानों में गमन करता रहता है ।२२। और कभी इस स्थान में ही फिर जन्म ग्रहण करके अपने सब कर्मफल को भोगता है, कभी सब कर्मों का फल भोगकर थोड़े ही काल में प्राणत्याग

कदाचिदल्पैश्च ततो जायतेऽत्र शुभाशुभैः । स्वर्लोके नरके वापि भुक्तिप्रायो द्विजोत्तम ।।२४
नरकेषु महद्दुःखमेतद्यत्स्वर्गवासिनः । दृश्यन्ते तात मोदन्ते पात्यमानाश्च नारकाः ।।२५
स्वर्गेऽपि दुःखमतुलं यदारोहणकालतः । प्रभृत्यहं पतिष्यामीत्येतन्मनसि वर्तते ।।२६
नरकांश्चैव सम्प्रेक्ष्य महद्दुःखमवाप्यते । एतां गतिमहं गन्तेत्यहर्निशमनिर्वृतः ।।२७
गर्भवासे महद्दुःखं जायमानस्य योनितः । जातस्य बालभावे च वृद्धत्वे दुःखमेव च ।।२८
कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धं यौवनं चातिदुःसहम् । दुःखप्राया वृद्धता च मरणे दुःखमुत्तमम् ।।२९
कृष्यमाणश्च याम्यैश्च नरकेषु च पात्यतः । पुनश्च गर्भो जन्माथ मरणं नरकस्तथा ।।३०
एवं संसारचक्रेऽस्मिञ्जन्तवो घटियन्त्रवत् । भ्राम्यन्ते प्राकृतैर्बन्धैर्बद्ध्वा वध्यन्ति चासकृत् ।।३१
नास्ति तात सुखं किञ्चिदत्र दुःखशताकुले । तस्मान्मोक्षाय यतता कथं सेव्या मया त्रयी ।।३२
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे गर्भस्थितिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

(१२)

महारौरवादिनरकाख्यानवर्णनम्

पितोवाच

साधु वत्स त्वया ख्यातं संसारगहनं परम् । ज्ञानप्रदानसम्भूतं समाश्रित्य महाफलम् ।।१

करता है ।२३। हे द्विजसत्तम ! कभी केवल सामान्य शुभाशुभ द्वारा अति अल्पकाल स्वर्ग वा नरक भोगता है ।२४। स्वर्ग वासियों को सुख में अनेक प्रकार से आमोद करता देखकर नरक में पड़े पातकियों के मन में अत्यन्त दुःख उपस्थित होता है ।२५। किन्तु यहाँ स्वर्ग में भी दुःख की सीमा नहीं है, क्योंकि स्वर्ग में रहने के समय तक नित्य मन में यह दुःख उपस्थित रहता है कि, "पुण्य क्षय होने पर हमको भी इसी प्रकार गिरना होगा ।२६। हे तात ! उन नरक वासियों को देखकर अत्यन्त दुःखी होते हैं और हम भी ऐसी ही गति को प्राप्त होंगे।" यह विचार कर उनको रात दिन अत्यन्त दुःखी होना पड़ता है । एक तो गर्भवास ही अत्यन्त दुःखमय है उसमें भी फिर योनि के छिद्र द्वारा जन्मग्रहण करना अत्यन्त ही दुःखमय है, यदि जन्म हुआ तो बाल्यावस्था और वृद्ध अवस्था दोनों दुःखमय हैं ।२७-२८। और काम ईर्ष्या और क्रोध इत्यादि यौवन काल तो अत्यन्तही दुःखमय है और इसके ऊपर वृद्धावस्था तो दुःख की खानिस्वरूप है और मरने में अत्यन्त कठिन दुःख है ही ।२९। तदनन्तर यमदूतगण जब उनको खींचकर नरक में डालते हैं, तब फिर दुःख की सीमा नहीं रहती। इस पर भी फिर गर्भवास, जन्मग्रहण, मरण और नरक में वास होता है ।३०। इस प्रकार इस संसार चक्र में सब प्राणी प्राकृत बन्धन में बँधकर घटीयंत्र के समान सदा भ्रमण करते हैं बार-बार बन्धन का दुःख भोगते हैं ।३१। सुतरां हे तात ! सैकडों दुःखों से भरे हुए इस संसार में सुख का लेश मात्र भी नहीं है, इसलिए मैं जब मुक्ति-लाभ के निमित्त यत्न करता हूँ तो फिर त्रयीविद्याधर्म की सेवा क्यों करूँ। मैं तो अपराविद्या प्राप्त करूँगा ।३२।

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में मृत्युदशा वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।११।

अध्याय १२

महारौरव नरक का वर्णन

पिता ने कहा—हे साधु वत्स ! तुमने ज्ञान देने के निमित्त महाफल देनेवाला परम संसारगहन का

तत्र ते नरकाः सर्वे यथा वै रौरवस्तथा । वर्णितास्तान्समाचक्ष्व विस्तरेण महामते ।।२

पुत्र उवाच

रौरवस्ते समाख्यातः प्रथमं नरको मया । महारौरवसंज्ञं तु शृणुष्व नरकं पितः ।।३
अगम्यागमने ये च अभक्ष्यभक्षणे रताः । मित्रद्रोहकराश्चैव स्वामिविश्रम्भघातकाः ।।४
परदाररताश्चैव स्वदारपरिवर्जिनः । मार्गभङ्गकरा ये च तडागारामभेदकाः ।।५
एतेऽन्ये च दुराचारा दह्यन्ते तत्र किङ्करैः । योजनानां सहस्राणि सप्त पञ्च समन्ततः ।।
तत्र ताम्रमयी भूमिरधस्तस्या हुताशनः ।।६
तत्तापतप्ता सा सर्वा प्रोद्यद्विद्युत्समप्रभा । विभात्यतिमहारौद्रा दर्शनस्पर्शनादिषु ।।७
तस्यां बद्धः कराभ्यां च पद्भ्यां चैव यमानुगैः । मुच्यते पापकृन्मध्ये लुण्ठचमानःस गच्छति ।।८
काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्वृश्चिकैर्मशकैस्तथा । भक्ष्यमाणस्तथा गृध्रैर्द्रुतं मार्गे विकृष्यते ।।९
दह्यमानः पितर्मातर्भ्रातस्तातेति चाकुलः । वदत्यसकृदुद्विग्नो च शान्तिमधिगच्छति ।।१०
एवं तस्मान्नरैर्मोक्षो ह्यतिक्रान्तैरवाप्यते । वर्षायुतायुतैः पापं यैः कृतं दुष्टबुद्धिभिः ।।११
तथान्यस्तु तमो नाम सोऽतिशीतःस्वभावतः । महारौरववद्दीर्घस्तथातितमसावृतः ।।१२
गोवधश्च कृतो येन भ्रातॄणां घात एव च । अबन्नबालघाती च नीयते शीतसङ्करे ।।१३
शीतार्त्तास्तत्र धावन्ति नरास्तमसि दारुणे । परस्परं समासाद्य परिरभ्याश्रयन्ति च ।।१४

विषय भलीभाँति वर्णन किया ।१। और रौरव तथा अन्यान्य नरकों का जो विषय वर्णन किया है, हे महामते ! अब वही विस्तारसहित वर्णन करो ।२

पुत्र बोला—हे पिता ! मैंने पहले आपसे रौरव नरक का वर्णन किया ही है, अब महारौरव नामक नरक का विषय वर्णन करता हूँ, सुनिये ।३। न जाने योग्य मार्ग में जाने वाले अभक्ष्यभक्षण करनेवाले, मित्रद्रोही, स्वामी के विश्वास का नाश करने वाले ।४। पराई स्त्री में गमन करने वाले, अपनी स्त्री का त्याग करने वाले, मार्ग, तडाग और उपवनों के तोड़ने वाले ।५। ऐसे ऐसे पापियों को यमदूत वहाँ ले जाकर जलाते हैं, प्रमाण उसका बारह हजार योजन चारों ओर है, उसकी पृथ्वी ताम्रमयी है, जिसके नीचे अग्नि की खानि है ।६। यह ताम्रमयी भूमि अनल के ताप से तप्त हो बिजली की प्रभा के समान समस्त दिशाविदिशा को प्रकाशमान करती है, उसका देखना अथवा स्पर्श करना अत्यन्त भयंकर है ।७। यमदूत पापियों के हांथ-पैर बांधकर उसमें छोड़देते हैं और पापी उसमें पड़े हुए लोटते हैं और उसके भीतर जाते हैं ।८। मार्ग में वह काक, बगुले, भेडिये, उल्लू, बिच्छू, मच्छर और गृध्र इत्यादि के द्वारा भक्षित होकर आकर्षित होते हैं ।९। फिर दाह की यंत्रणा से पीड़ित होकर व्याकुल चित्त से "माता ! पिता ! भ्राता" इत्यादि शब्द करते हैं और अत्यन्त उद्विग्न होकर शान्तिलाभ नहीं कर सकते हैं ।१०। जो दुष्टबुद्धि मनुष्य सदा पाप करते हैं, वह इस प्रकार सहस्र-सहस्र वर्ष में उसको अतिक्रमण कर वहाँ से छुटकारा पाते हैं ।११। इसके पीछे घोर अंधकार से ढका हुआ तम नामक एक नरक है, वह महारौरव नरक के समान दीर्घ और स्वभाव से ही अत्यन्त शीतमय है ।१२। उसमें गोवध करने वाले, भाई के मारने वाले और बालकों का घात करने वाले मनुष्य इस शीत संकट में डाले जाते है ।१३। जो इस नरक में गिरते हैं वह उस दारुण अंधकार में शीत से आर्त्त होकर इधर-उधर दौड़ते हैं और अन्यान्य नारकियों के शरीर से लिपट परस्पर का आश्रय करके वास करते हैं ।१४। शीत की पीड़ा से अत्यन्त

दन्तास्तेषां च भज्यन्ते शीतार्त्तिपरिकम्पिताः । क्षुत्तृष्णा प्रबला तत्र तथैवान्येऽप्युपद्रवाः ॥१५
हिमखण्डवहो वायुर्भिनत्त्यस्थीनि दारुणः । मज्जासृग्गलितं तस्मादश्नुवन्ति क्षुधान्विताः ॥१६
लेलिह्यमाना भ्राम्यन्ते परस्परसमागमे । एवं तत्रापि सुमहान्क्लेशस्तमसि मानवैः ॥१७
प्राप्यते ब्राह्मणश्रेष्ठ यावद्दुष्कृतसंक्षयः । निकृन्तन इति ख्यातस्ततोऽन्यो नरकोत्तमः ॥१८
तस्मिन्कुलालचक्राणि भ्राम्यन्त्यविरतं पितः । अदृष्टं दृष्टवद्ब्रूयादश्रुतं श्रुतमेव च ॥१९
एकाक्षरं गुरुं यस्तु दुराचारो न मन्यते । न भृणोति गुरोर्वाक्यं शास्त्रवाक्यं तथैव च ॥२०
एते पापा दुराचारास्तत्र तैर्यमपूरुषैः । तेष्वारोप्य निकृत्यन्ते कालसूत्रेण मानवाः ॥२१
यमानुगांगुलिस्थेन आपादतलमस्तकम् । न चैषां जीवितभ्रंशो जायते द्विजसत्तम ॥२२
छिन्नानि तेषां शतशः खण्डान्यैक्यं व्रजन्ति च । एवं वर्षसहस्राणि छिद्यन्ते पापकर्मिणः ॥२३
तावद्यावदशेषं वै तत्पापं हि क्षयं गतम् । अप्रतिष्ठं च नरकं भृणुष्व गदतो मम ॥२४
यत्रस्थैर्न्नारकैर्दुःखमसह्यमनुभूयते । स्वधर्मरतविप्राणां विघ्नं यस्तु समाचरेत् ॥२५
स बद्धैर्दारुणैः पाशैर्नीयते चक्रसङ्करैः । तान्येव तत्र चक्राणि घटीयन्त्राणि चान्यतः ॥२६
दुःखस्य हेतुभूतानि पापकर्मकृतां नृणाम् । चक्रेष्वारोपिताः केचिद् भ्राम्यन्ते तत्र मानवाः ॥२७
यावद्वर्षसहस्राणि न तेषां स्थितिरन्तरा । घटीयन्त्रेषु चैवान्यो बद्धस्तोये यथा घटी ॥२८
भ्राम्यन्ते मानवा रक्तमुद्गिरन्तः पुनः पुनः । अन्त्रैर्मुखे विनिष्क्रान्तैर्नेत्रैरग्रावलम्बिभिः ॥२९

काँपने के कारण उनके दांत टूटते हैं और भूख-प्यास तथा अन्यान्य नानाप्रकार के समस्त उपद्रव अत्यन्त प्रबल होते हैं ।१५। हिम के खंड-वहन करने वाली दारुण वायु उनकी अस्थि भंग कर डालती है और उनसे जो मज्जा तथा रुधिर गिरता है वह अत्यन्त भूख से आतुर होकर उसी को भोजन करते हैं ।१६। और आपस में मिलकर एक दूसरे का शरीर चाटते हैं और इधर-उधर भ्रमण करते हैं, इस प्रकार से वहाँ मनुष्यों को बड़ा क्लेश होता है ।१७। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जब तक सम्यक् प्रकार पापों का क्षय नहीं होता, मनुष्य तब तक उस तम नामक नरक में इस प्रकार महा क्लेश भोगते रहते हैं, इसके पीछे निकृन्तन नाम से विख्यात एक प्रधान नरक है ।१८। जो सदा कुम्हार के चाक के समान घूमा करता है और उस चक्र में पापियों को कालसूत्र से काटता रहता है जो न देखे हुए को देखे हुए और न सुने हुए को सुने हुए के समान कहता है ।१९। जो दुराचारी एकाक्षर देनेवाले गुरु को ईश्वररूप नहीं मानता, गुरु वा शास्त्र का वचन नहीं सुनता ।२०। वह पापात्मा दुराचारी मनुष्य उस चक्र के ऊपर आरोपित होकर यमदूतों के हाथों में स्थित कालसूत्र द्वारा पैरों से मस्तकपर्यन्त काटे जाते हैं, किन्तु हे द्विजसत्तम ! इस पर भी उनका जीवन नष्ट नहीं होता ।२१-२२। शत-शत खण्ड होकर भी एकत्र संयुक्त होते हैं, अर्थात् फिर ज्यों के त्यों हो जाते हैं, इस प्रकार पापी मनुष्य सहस्र वर्ष तक काटे जाते रहते है ।२३। जब तक पापात्माओं के उन पापों का क्षय नहीं होता । अब मुझसे अप्रतिष्ठ नामक नरक का विषय सुनो ।२४। जहाँ स्थित होकर नरकवासी असह्य क्लेश अनुभव करते हैं, जो अपने धर्म में तत्पर ब्राह्मणों का विघ्न करता है ।२५। उनको दारुण पाश में बांधकर चक्रसंकर नरक में ले जाते हैं वह चक्र और घटीयंत्र ।२६। पाप करने वाले मनुष्यों के दुःख के हेतुस्वरूप होते हैं, कोई-कोई प्राणी उसी चक्र के ऊपर आरोपित होकर घुमाये जाते हैं ।२७। प्रायः हजार वर्ष उनको उसमें अवस्थान करना पड़ता है, कोई कोई पापात्मा छोटे घड़े के समान बंधकर ।२८। उसी घटी यन्त्र के द्वारा घूमते हैं और बार-बार रक्त को वमन करते हैं, उन प्राणियों की आंतें वहाँ मुख से निकल आती हैं रक्तधारा बहती है और

दुःखानि ते प्राप्नुवन्ति यान्यसह्यानि जन्तुभिः । असिपत्रवनं नाम नरकं शृणु चापरम् ।।३०
योजनानां सहस्रं यो ज्वलदग्न्यास्तृतावनिः । ब्रह्मचारिव्रतानां च तपसां विघ्नमाचरेत् ।।३१
असिपत्रवनं यान्ति ये सदोद्वेगकारिणः । तप्ताः सूर्यकरैश्चण्डैर्यत्रातीव सुदारुणैः ।।३२
प्रपतन्ति सदा तत्र प्राणिनो नरकौकसः । तन्मध्ये च वनं रम्यं स्निग्धपत्रं विभाव्यते ।।३३
पत्राणि तत्र खड्गानां फलानि द्विजसत्तम । श्वानश्च तत्र सबलाः स्वनन्त्युतशोभितः ।।३४
महावक्त्रा महादंष्ट्रा व्याघ्रा इव भयानकाः । ततस्तद्वनमालोक्य शिशिरच्छायमग्रतः ।।३५
प्रयान्ति प्राणिनस्तत्र तृट्तापपरिपीडिताः । हा मातर्हा तात इति क्रन्दन्तोऽतीव दुःखिताः ।।३६
दह्यमानांघ्रियुगला धरणीस्थेन वह्निना । तेषां गतानां तत्रासिपत्रपाती समीरणः ।।३७
प्रवाति तेन पात्यन्ते तेषां खड्गास्तथोपरि । ततः पतन्ति ते भूमौ ज्वलत्पावकसञ्चये ।।३८
लेलिह्यमाने चातीव व्याप्ताशेषमहीतले । सारमेयास्ततः शीघ्रं शातयन्ति शरीरतः ।।३९
तेषामङ्गानि रुदतां त्वचश्चातीव भीषणाः । असिपत्रवनं तात मयैतत्कीर्तितं तव ।।४०
अतः परं भीमतरं तप्तकुम्भं निबोध मे । समन्ततस्तप्तकुम्भा वह्निज्वालासमावृताः ।।४१
ज्वलदग्निचयोत्तप्तास्तैलायश्चूर्णपूरिताः । तेषु दुष्कृतकर्माणो याम्यैः क्षिप्तास्त्वधोमुखाः ।।४२
दूषयेद्धर्मशास्त्राणि ये चान्ये तीर्थदूषकाः । भुक्तभोगां तु यो नारीमिष्यमाणां प्रियां शुभाम् ।।४३
अदृष्टामपि दोषेण त्यजते मूढचेतनः । ते समानीय पच्यन्ते लोहकुम्भेषु शीघ्रतः ।।४४

नेत्र निकल आते हैं ।२९। वहाँ वह प्राणियों से अत्यन्त पीड़ित होकर असह्य दुःख अनुभव करतेहैं । इसके पीछे असिपत्रनामक अन्य दारुण नरक का विषय वर्णन करता हूँ सुनिये ।३०। यह नरक जलती हुई अग्नि से पृथ्वी को सहस्र योजन आक्रमण करके स्थित हैं जो ब्रह्मचारी के व्रत और तप में विघ्न करते हैं ।३१। वह उद्वेगकारी उस असिपत्र वन में जाते है, नरकवासी प्राणी भयंकर प्रचण्ड सूर्य की किरणों से तपकर ।३२। इस नरक में गिरते हैं । उसमें एक अति मनोहर वन है देखने से उसके सब पत्ते अत्यन्त चिकने बोध प्रतीत होते हैं ।३३। किन्तु हे द्विजसत्तम ! उसके सब पत्ते खड्गफलकमय हैं, वहाँ बड़े-बड़े बली कुत्ते भौंकते रहते हैं ।३४। व्याघ्र के समान उनके बड़े मुख, तीव्र डाढ़ों वाले और बड़े भयंकर हैं उस वन की ठंडी छाया देखकर ।३५। भूख-प्यास से कातर हुए प्राणी उसमें प्रवेश करते हैं और अत्यन्त दुःखित चित्त से "हा माता ! हा पिता ! " कहकर रोते हैं।३६। पृथ्वी की अग्नि से उनके पैर जल जाते हैं, वहाँ जाने पर असिपत्र पाती समीरण।३७। प्रवाहित होता है और उनके द्वारा उनके ऊपर वह सब खड्ग गिरते हैं, तब वह जलती हुई अग्नि में गिरते हैं।३८। और जीभ चाटते हुए भूमि में गिरते हैं, तदनन्तर वहाँ अतिभयंकर कुत्ते उन रोते हुओं के शरीर के सब अंग छिन्न-भिन्न करते हैं, हे तात ! यह असिपत्रवन नामक नरक का विषय आपसे कहा।३९-४०। इसके बाद इससे भी भयंकर तप्तकुम्भ नामक नरक का विषय वर्णन करता हूँ, सुनिये। इस नरक के चारों ओर अग्नि की शिखा उठती रहती है।४१। जलती हुई अग्नि से तप्त तैल और लौहचूर्णपरिपूर्ण तप्तकुम्भ वर्तमान है, यम के दूत पापी मनुष्यों को अधोमुख करके उसमें डालते हैं।४२। जो धर्मशास्त्र और तीर्थों को दूषित करते हैं, जो भुक्तभोगा इष्टप्रिया शुभा स्त्री को।४३। मूर्खता से बिना दोष देखे त्याग करते हैं, वह इस लोहकुम्भ नरक में डाले जाते हैं ।४४। उसी समय उनके देह फट

क्वाथ्यन्ते विस्फुटद्गात्रा ज्वलन्मज्जाजलाविलाः। स्फुटत्कपालनेत्रास्थिच्छिद्यमाना विभीषणैः॥४५
गृध्रैरुत्पाट्य मुच्यन्ते पुनस्तेष्वेव वेगितैः। पुनः सिमसिमायन्ते तैलेनैक्यं व्रजन्ति च॥४६
द्रवीभूतैः शिरोगात्रस्नायुमांसत्वगस्थिभिः। ततो याम्यैर्भटैराशु दर्वीघट्टनघट्टिताः॥४७
कृतावर्ते महातैले मथ्यन्ते पापकर्मिणः। एष ते विस्तरेणोक्तस्तप्तकुम्भो मया पितः॥४८
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे महारौरवादिनरकाख्यानकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः।१२।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः (23)

पितापुत्रसंवादवणर्नम्

पुत्र उवाच

अहं वैश्यकुले जातो जन्मन्यस्मात्तु सप्तमे। समतीते गवां रोधं निपाने कृतवान्पुरा॥१
विपाकात्कर्मणस्तस्य नरकं भृशदारुणम्। सम्प्राप्तोऽग्निशिखापूर्णमयोमुखखगाकुलम्॥२
यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवाहोद्भूतकर्दमम्। विकृष्यमाणदुष्कर्मितन्निपातरवाकुलम्॥३
पात्यमानस्य मे तत्र साग्रं वर्षशतं गतम्। महातापार्त्तितप्तस्य तृष्णादाहान्वितस्य च॥४
तत्राह्लादकरः सद्यः पवनः सुखशीतलः। करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थे वै समागमः॥५

जाते हैं और मज्जा जल सब उनका जल जाता है, इस प्रकार वे पकाये जाते है, उनके कपाल नेत्र और समस्त अस्थियाँ फूट जाती हैं और भयंकरता से छिन्न-भिन्न किये जाते हैं।४५। और भयंकर वेगवान् सब गृध्र उनको वहाँ से उठाकर फिर उसमें डालते हैं और वह चुरते हुए तैल में ऐक्यता को प्राप्त होते है।४६। मस्तक, गात्र, स्नायु, मांस, त्वक् और अस्थि के सहित द्रवीभूत होकर तैल के संग मिल जाते हैं फिर यमदूतगण उन पापात्माओं को दर्वीद्वारा कूटकर।४७। महा तैल के गर्त में डालकर मथते हैं हे पिता! आपसे वह तप्तकुंभ इत्यादि नरकों का विषय विस्तार सहित मैंने वर्णन किया।४८

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में महारौरव आख्यान नामक बारहवाँ अध्याय़ समाप्त।१२।

अध्याय १३

पिता-पुत्र के संवाद का वर्णन

पुत्र ने कहा—हे तात! इस जन्म से सात जन्म पहले मैनें वैश्यकुल में जन्म ग्रहण किया था, तब निपान (पौसेरे) में गायों की गति रोध की थी अर्थात् उनको जल नहीं पीने दिया था।१। उसी कर्म के फल से मैं भयंकर दारुण नरक में गिरा था, वह अग्निशिखामय और लोहे के मुखवाले पक्षियों से भरा था।२। यंत्रनिपीडित पापियों के शरीर से निकले रुधिरप्रवाह की वहाँ कीच रहती है और वह मारे जाते हुए दुष्कर्मियों के उस नरक में पड़ने से उत्पन्न हुए आर्त्तनादद्वारा व्याप्त था।३। मैंने वहाँ महाताप की पीड़ा से उत्तप्त प्यास से दुखी होकर कुछ अधिक एक सौ वर्ष काटे थे।४। अकस्मात् एक दिन करम्भवालुकावाले घड़ेके कुम्भ-मध्य से प्रसन्न करनेवाली सुखशीतल पवन चलने लगी।५। उस पवन

अकस्मादेव भोस्तात नररत्नं समागतम् । तत्सम्पर्कादशेषाणां नाभवद्यातना नृणाम् ॥
मम चापि यथा स्वर्गे स्वर्गिणां निवृत्तिः परा ॥६
किमेतदिति चाह्लादविस्तारस्तिमितेक्षणैः । दृष्टमस्माभिरासन्नं नररत्नमनुत्तमम् ॥७
याम्यश्च पुरुषो घोरो दण्डहस्तोल्लसत्प्रभः । पुरतो दर्शयन्मार्गमित एहीति च ब्रुवन् ॥८
ततस्ते जन्तवः सर्वे मत्वा तद्दर्शनात्सुखम् । ऊचुः प्राञ्जलयो भूपं क्षणमात्रं स्थितो भव ॥९
त्वद्गात्रसङ्गी पवनो ह्यस्माकं सुखकारकः । ततोऽसौ नरकाभ्याशे उपविष्टः कृपान्वितः ॥१०
पुरुषः स तदा दृष्ट्वा यातनाशतसङ्कुलम् । नरकं प्राह तं याम्यं किङ्करं कृपयान्वितः ॥११

पुरुष उवाच

भो याम्य पुरुषाचक्ष्व किं मया दुष्कृतं कृतम् । येनेदं यातनाभीमं प्राप्तोऽस्मि नरकं परम् ॥१२
विपश्चिदिति विख्यातो जनकानामहं कुले । जातो विदेहविषये सम्यङ्मनुजपालकः ॥१३
चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मस्थं कृत्वा संरक्षितं मया । धर्मतो धर्मकल्पेन मनुनात्र यथा पुरा ॥१४
यज्ञैर्मयेष्टं बहुभिर्धर्मतः पालिता मही । नोत्सृष्टश्चैव सङ्ग्रामो नातिथिर्विमुखो गतः ॥१५
पितृदेवर्षिभृत्याश्च न चापचरिता मया । महातापार्तितप्तस्य तृष्णादाहार्दितस्य च ॥१६
सर्वस्य जीवभूतस्य कृतं त्राणं सदा मया । कृता स्पृहा च न मया परस्त्रीविभवादिषु ॥१७
पर्वकालेषु पितरस्तिथिकालेषु देवताः । पुरुषं स्वयमायान्ति निपानमिव धेनवः ॥१८

के स्पर्श से मेरी और अन्यान्य नरकवासी प्राणियों की यंत्रणा जाती रही, तब सभी स्वर्गस्थ स्वर्गवासियों के समान परमानन्द अनुभव करने लगे ।६। फिर जब हमने "यह क्या है" इस प्रकार कह प्रसन्नता से उत्पन्न आश्चर्य और स्थिर नेत्रों से इधर-उधर देखा, वैसे ही निकटवर्त्ती एक अनुत्तम मनुष्यरत्न हमको दिखाई दिया ।७। और यह भी देखा कि, एक भयंकर वज्रतुल्य दण्ड हाथ में लिये यमदूत "इधर आओ" कहकर मार्ग दिखाता है ।८। तब वह सब प्राणी उसके दर्शन का सुख मान हाथ जोड़कर बोले आप यहीं क्षणमात्र को ठहरिये ।९। तुम्हारे गात्र का संगी पवन हमको सुखकारक है, तब वह कृपा करके नरक के समीप स्थित हुए ।१०। अनन्तर उस पुरुष ने सैकड़ों दुःखों से पूर्ण नरक देखकर कृपाभरे चित्त से यमदूतों से कहा ।११

पुरुष बोला—हे यमपुरुषों ! शीघ्र कहो, मैंने ऐसा क्या पाप किया है ? जिस पापसे मैं इस अत्यन्त भयंकर यातनामय नरक में आया हूँ ।१२। क्योंकि मैं पितृकुल में विपश्चित अर्थात् पंडित कहकर विख्यात था, इसी कारण विदेह राज्य में उत्कृष्ट प्रजापालक हुआ था ।१३। मैंने धर्मपूर्वक चारों वर्णों की रक्षा की है और मनु के समान सब धर्मपूर्वक किया ।१४। मैंने अनेक यज्ञों का अनुष्ठान किया है और धर्मानुसार पृथ्वीपालन की है, मैंने कभी संग्राम परित्याग नहीं किया और मेरे निकट से कभी अतिथि विमुख नहीं हुआ ।१५। मैंने पितृ, देवता, ऋषि वा सेवकों को भी दुखी नहीं किया, महाताप से तप्त और तृष्णादाह से व्याकुल ।१६। सब प्राणियों की मैंने सदा रक्षा की है, परायेधन वा पराई स्त्री में मेरी स्पृहा नहीं थी।१७। गायें जिस प्रकार निपान अर्थात् पौसेरे में आती हैं, इसी प्रकार पर्वकाल में मेरे निकट पितृगण

यतस्ते विमुखा यान्ति निःस्वस्य गृहमेधिनः । तस्मादिष्टश्च पूर्तश्च धर्मौ द्वावपि नश्यतः ॥१९
पितृनिश्वासविध्वस्तं सप्तजन्मार्जितं धनम् । त्रिजन्मप्रभवं दैवो निश्वासो हन्त्यसंशयम् ॥२०
तस्माद्दैवे च पित्र्ये च नित्यमेव हितोऽभवम् । सोऽहं कथमिमं प्राप्तो नरकं भृशदारुणम्॥२१

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः ।१३।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः (१४)

स्वकर्मभुक्तिवर्णनम्

पुत्र उवाच

इति पृष्टस्तदा तेन शृण्वतां नो महात्मना । उवाच पुरुषो याम्यो घोरोऽपि प्रश्रितं वचः ॥१

यमकिङ्कर उवाच

महाराज यथात्थ त्वं तथैतन्नात्र संशयः । किन्तु स्वल्पं कृतं पापं भवता स्मारयामि तत् ॥२
वैदर्भी तव या पत्नी पीवरी नाम नामतः । ऋतुमत्या ऋतुर्वन्ध्यस्त्वया तस्या कृतः पुरा ॥३
सुशोभनायां कैकेय्यामासक्तेन ततो भवान् । ऋतुव्यतिक्रमात्प्राप्तो नरकं घोरमीदृशम् ॥४
होमकाले यथा वह्निराज्यपातमवेक्षते । ऋतौ प्रजापतिस्तद्वद्बीजपातमवेक्षते ॥५

और तिथिकाल में देवता गण आते थे ।१८। देवता अथवा पितृ जिस गृहस्थ के निकट से विमुख हो जाते हैं, उसके यज्ञ वा पूर्त्त दोनों धर्मों का नाश होता है ।१९। पितरों के निराश होने से सात जन्म का पुण्य नष्ट होता है और देवता के निराश होने से तीन जन्म का संचित पुण्य नष्ट होता है इसमें सन्देह नहीं ।२०। इसी कारण मैं देवता और पितरों के कार्य में सदा तत्पर था, तो फिर किस निमित्त इस अत्यन्त दारुण नरक में प्राप्त हुआ हूँ ।२१

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में पितापुत्र संवाद के अन्तर्गत तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।१३।

अध्याय १४

स्वकर्मभुक्ति का वर्णन

पुत्र ने कहा—हे तात ! मैं उस समय सुनने लगा कि, उस महात्मा के इस प्रकार पूँछने पर यमपुरुष ने अत्यन्त भयंकर होने पर भी नम्र वचन से उत्तर दिया ।१

यमदूत बोला—हे महाराज ! आप जो कहते है, वह सत्य है, इसमें संशय नहीं किन्तु हे महाशय ! आपने अति सामान्य पाप किया है, वह आपको स्मरण कराता हूँ ।२। विदर्भदेशोत्पन्न पीवरी नामक जो आपकी एक पत्नी थी, पूर्व में उसके ऋतुमती होने पर आपने उसकी ऋतु को विफल किया था ।३। क्योंकि आप उस समय केकयदेश की उत्पन्न हुई सुशोभना के प्रति अत्यन्त आसक्तचित्त थे, अत एव ऋतु का व्यतिक्रम होने से आप इस घोर नरक में प्राप्त हुए हैं ।४। अग्नि जिस प्रकार होमकाल में आहुति की आकांक्षा करता है, इसी प्रकार प्रजापति ऋतुकाल में उस बीजपात की अभिलाषा करते रहते हैं ।५। जो

यस्तमुल्लंघ्य धर्मात्मा कामेष्वासक्तिमान्भवेत् । स तु पित्र्यादृणात्पापमवाप्य नरकं पतेत् ।।६
एतावदेव ते पापं नान्यत्किञ्चन विद्यते । तदेह्यागच्छ पुण्यानामुपभोगाय पार्थिव ।।
एतच्छ्रुत्वा तु राजर्षिः कृपया जनकोऽब्रवीत् ।।७

राजोवाच

यास्यामि देवानुचर यत्र त्वं मां नयिष्यसि । किञ्चित्पृच्छामि तन्मे त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ।।८
वज्रतुण्डास्त्वमी काकाः पुंसां नयनहारिणः । पुनः पुनश्च नेत्राणि तद्वदेषां भवन्ति हि ।।९
किं कर्म कृतन्तश्च कथयैतज्जुगुप्सितम् । हरन्त्येषां तथा जिह्वां जायमानां पुनर्नवाम् ।।१०
करपत्रेण पाटयन्ते कस्मादेतेऽतिदुःखिताः । करम्भवालुकास्थाश्च तथैते क्वाथतैलगाः ।।११
अयोमुखैः खगैश्चैव कृष्यते किंविधा वद । विश्लिष्टदेहबन्धार्तिमहारावविराविणः ।।१२
अयश्चंचूनिपातेन सर्वाङ्गक्षतविक्षताः । किमेते निःस्वनन्तोऽपि तुद्यन्तेऽहर्निशं नराः ।।१३
एताश्चान्याश्च दृश्यन्ते यातनाः पापकर्मिणाम् । येन कर्मविपाकेन तन्ममोद्देशतो वद ।।१४

यमकिङ्कर उवाच

यन्मां पृच्छसि भूपाल पापकर्मफलोदयम् । तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि संक्षेपेण यथातथम् ।।१५
पुण्यापुण्ये हि पुरुषः पर्यायेण समश्नुते । भुञ्जतश्च क्षयं याति पापं पुण्यमथापि वा ।।१६

धर्मात्मा पुरुष इसको उल्लंघन करके अन्य के प्रति कामासक्तचित्त होते हैं उनको पितरों के ऋण से पापरूपी कीचड़ में लिप्त होकर नरक में गिरना पड़ता है ।६। हे महाराज ! आपने केवल यही पाप किया है, इसके अतिरिक्त आपका और कोई पाप नहीं है । अत एव हे पार्थिव ! आओ, समस्त पुण्य का फल भोगने के लिये चलो यह सुनकर वह राजर्षि कृपापूर्वक बोले ।७

राजा ने कहा—हे देवानुचर ! तुम जहाँ ले जाओगे मैं वहीं जाऊँगा किन्तु मैं जो कुछ पूँछता हूँ, इसका ठीक ठीक उत्तर दो ।८। हे यमकिंकर ! यह वज्रतुण्ड कौवे इन पुरुषों के नेत्र हरण करते हैं, किन्तु उनके नेत्र फिर बार-बार उत्पन्न होते हैं ।९। इन्होंने किस निन्दित कार्य का अनुष्ठान किया है, देखो—इनकी जीभ हरी जाकर भी फिर नवीन उत्पन्न होती है ।१०। यह किसलिये करपत्र की मार खाकर अत्यन्त दुःख भोगते हैं ? और तपते वालू तथा खौलते हुए तेल में भुन रहे हैं ?।११। किसलिये लौहमुख पक्षियों के आकर्षण करने पर देहबंधन छिन्न होने की पीड़ा से पीड़ित होकर शब्द से चिल्लाते हैं ? ।१२। और पक्षियों के लोहमय तुण्डाघात से सर्वाङ्ग क्षत-विक्षत होकर दारुण यंत्रणा भोगते हैं, इन मनुष्यों ने कैसे पाप का आचरण किया है, जो रात दिन ऐसी यंत्रणा भोगते हैं ? ।१३। और भी देखता हूँ कि, पापात्मागण ऐसी तथा अन्य प्रकार की नाना यंत्रणा भोगते हैं, हे यमकिंकर ! यह दुःख किस कर्म के फल से उपस्थित हुए हैं ? वह आद्योपान्त मुझसे वर्णन करो ।१४

यमकिंकर ने कहा—हे भूपाल ! पापकर्म के फलोदय के विषय में जो आपने पूँछा, वह संक्षेप से आपके निकट यथावत् वर्णन करता हूँ ।१५। पुरुष क्रमानुसार पुण्य-पाप भोगते हैं और भोगने से ही पुण्य वा पाप

न तु भोगादृते पुण्यं पापं वा कर्म मानवः । परित्यजति भोगाच्च पुण्यापुण्ये निबोध मे ॥१७
दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात्क्लेशं भयाद्भयम् । मृतेभ्यः प्रमृता यान्ति दरिद्राः पापकर्मिणः ॥१८
गतिं नानाविधां यान्ति जन्तवः कर्मबन्धनात् । उत्सवादुत्सवं यान्ति स्वर्गात्स्वर्गं सुखात्सुखम् ॥१९
श्रद्दधानाश्च दान्ताश्च धनदाः शुभकारिणः । व्याघ्रकुञ्जरदुर्गाणि सर्पचौरभयानि तु ॥२०
हताः पापेन गच्छन्ति पापिनः किमतः परम् । सुगन्धिमाल्यसद्वस्त्रसाधुयानासनाशनाः ॥२१
स्तूयमानाः सदायान्ति पुण्यैः पुण्याटवीष्वपि । अनेकशतसाहस्रजन्मसञ्चयसञ्चितम् ॥२२
पुण्यापुण्यं नृणां तद्वत्सुखदुःखांकुरोद्भवम् । यथा बीजं हि भूपाल पयांसि समवेक्षते ॥२३
पुण्यापुण्ये तथा कालदेशान्यकर्मकारकम् । स्वल्पं पापं कृतं पुंसां देशकालोपपादितम् ॥२४
पादन्यासकृतं दुःखं कण्टकोत्थं प्रयच्छति । तत्प्रभूततरं स्थूलशङ्कुकीलकसम्भवम् ॥२५
दुःखं यच्छति तद्वच्च शिरोरोगादिदुःसहम् । अपथ्याशनशीतोष्णश्रमतापादिकारकम् ॥२६
तथान्योन्यमपेक्षन्ते पापानि फलसङ्गमे । एवं महान्ति पापानि दीर्घारोगादिकाः क्रियाः ॥२७
तद्वच्छस्त्राग्निकृच्छ्रार्तिबन्धनादिफलाय वै । स्वल्पं पुण्यं शुभं गन्धं हेलया सम्प्रयच्छति ॥२८
स्पर्शं वाप्यथवा शब्दं रसं रूपमथापि वा । चिराद्गुरुतरं तद्वन्महान्तमपि कालजम् ॥२९

का क्षय होता है ।१६। भोगे बिना पुण्य या पाप कोई कर्म भी मनुष्य के शुद्धि विधान में समर्थ नहीं होता और भोग होने से वह शीघ्र ही क्षय हो जाता है, हे राजन् ! सुनो पुण्य-पाप भोगा जाने पर ही मनुष्य को छुटकारा मिलता है ।१७। उन में जो पापात्मा हैं वही दरिद्री होते हैं और दुर्भिक्ष पर दुर्भिक्ष, क्लेश से क्लेश, भय से भय और मृत्यु पर मृत्यु प्राप्त करते हैं ।१८। कर्मबंधन से प्राणी नाना प्रकार की गति भोगते हैं, उत्सव से उत्सव, स्वर्ग से स्वर्ग और सुख पर सुख पाते हैं ।१९। जो कि, श्रद्धावान, शान्तचित्त, धनदाता और सुखकारी हैं । और पापी पुरुष व्याल और कुंजरादि के द्वारा दुर्गम तथा सर्प और चोर इत्यादि के भय से युक्त स्थान में ।२०। पाप से हत हुए गमन करते हैं । इसके अतिरिक्त उनकी और दूसरी क्या गति हो सकती है । और सुगंधित माला, अच्छे वस्त्र, यान और भोजन को ।२१। अपने पुण्यों के बल से महात्मा प्राप्त करते हैं वे स्तुति को प्राप्त हुए सदा पवित्र स्थानों में आते हैं अनेक सैकड़ों हजार जन्मों में संचय किये हुए ।२२। जो पुण्य-पाप प्राणी इकट्ठा करते हैं, हे भूपाल ! वही उनके सुख-दुःख के अंकुररूप में उत्पन्न होता है, समस्त बीज जिस प्रकार जल की अपेक्षा करते हैं ।२३। पुण्य-पाप भी इसी प्रकार काल, देश और पात्र की अपेक्षा करते हैं, यदि पुरुष ने देश काल में स्वल्पमात्र पाप भी किया हो तो ।२४। चरण रखने मात्र से कंटकजनित सामान्य दुःख ही अनुभव करता है, और बहुत पापों का आचरण करने से उसको शूल और कीलकादि से उत्पन्न।२५। शिरोरोगादि दारुण दुःसह दुःख भोगना पड़ता है, जैसे अपथ्य अन्न, शीत, उष्ण, श्रम, ताप आदि का करने वाला है।२६। वैसे ही फलोत्पत्ति के समय में सब पाप परस्पर की अपेक्षा करते हैं, इसी प्रकार महापाप का आचरण करने से भी दीर्घ रोगादि विकार होते हैं ।२७। शस्त्र या अग्निकी महापीड़ा अथवा बंधनादि समस्त फल भोगने पड़ते हैं और खेल के निमित्त अत्यन्त थोड़े पुण्य का भी अनुष्ठान करने पर सुन्दर गंध।२८। सुखमय स्पर्श, मधुर शब्द, मिष्टरस और सुन्दर रूप अल्पकाल भोगने में समर्थ होता है और भारी पुण्य का अनुष्ठान करने पर कालक्रम से इन

एवं च सुखदुःखानि पुण्यात्पुण्योद्भवानि वै । भुञ्जानोऽनेकसंसारसम्भवानीह तिष्ठति ॥३०
जातिदेशावरुद्धानि ज्ञानाज्ञानफलानि च । तिष्ठन्ति तत्र पृक्तानि लिङ्गमात्रेण चात्मनि ॥३१
कर्मणा मनसा वाचा न कदाचित्क्वचिन्नरः । अकुर्वन्पापकं कर्म पुण्यं वाप्यवतिष्ठते ॥३२
यद्यत्प्राप्नोति पुरुषः सुखं दुःखमथापि वा । प्रभूतमथवा स्वल्पं विक्रियाकारिचेतसः ॥३३
तावता तस्य पुण्यं वा पापं वाप्यथ चेतरत् ॥३४
उपभोगात्क्षयं याति भुज्यमानमिवाशनम् । एवमेते महापापं यातनाभिरहर्निशम् ॥३५
क्षपयन्ति नरा घोरं नरकान्तविवर्तिनः । तथैव राजन्पुण्यानि स्वर्गलोकेऽमरैः सह ॥३६
गन्धर्वसिद्धाप्सरसां गीताद्यैरुपभुञ्जते । देवत्वे मानुषत्वे च तिर्यक्त्वे च शुभाशुभम् ॥३७
पुण्यपापोद्भवं भुङ्क्ते सुखदुःखोपलक्षणम् । यत्त्वं पृच्छसि मां राजन्यातनाः पापकर्मिणाम् ॥३८
केन केनेति पापेन तत्ते वक्ष्याम्यशेषतः । दुष्टेन चक्षुषा दृष्टाः परदारा नराधमैः ॥३९
मानसेन च दुष्टेन परद्रव्यं च सस्पृहैः । वज्रतुण्डाः खगास्तेषां हरन्त्येते विलोचने ॥४०
पुनः पुनश्च सम्भूतिरक्ष्णोरेषां भवत्यथ । यावतोऽक्षिनिमेषांस्तु पापमेभिर्नरैः कृतम् ॥४१
तावद्वर्षसहस्राणि नेत्रार्तिं प्राप्नुवन्त्युत । असच्छास्त्रोपदेशास्तु यैर्दत्ता यैश्च मन्त्रिताः ॥४२
सम्यग्दृष्टेर्विनाशाय रिपूणामपि मानवैः । यैः शास्त्रमन्यथा प्रोक्तं यैरसद्वागुदाहृता ॥४३
वेददेवद्विजातीनां गुरोर्निन्दा च यैः कृता । हरन्ति तेषां जिह्वाश्च जायमानाः पुनः पुनः ॥४४

सब की अपेक्षा अधिक फल लाभ होता है ।२९।इस प्रकार पाप पुण्य से उत्पन्न हुए सुख-दुःख भोगता हुआ संसार में पड़ता है ।३०। जाति और देशादि द्वारा अवरुद्धज्ञान और अज्ञान का समस्त फल आत्मा में चिह्नरूप से स्थिति करता है ।३१। कर्म, मन, वचन से कभी कोई पाप वा पुण्य कर्म किये बिना फल नहीं पाता है ।३२। पुरुष यह जो कुछ सुख अथवा दुःख पाता है, थोड़ा या बहुत यह सब चित्त का विकार है ।३३। वह उतना ही पाप पुण्य का फल पाता है ।३४। जैसे भोजन कियाहुआ अन्न उपभोग से ही क्षय होता है, इसी प्रकार रात दिन पाप भोगे बिना नहीं मिटता है ।३५। हे राजन् ! इसी प्रकार ही इस नरक के भीतर रहकर मनुष्य यातना से घोर महापाप का क्षय करते हैं और स्वर्गवासी मनुष्य भी इसी प्रकार देवताओं के संग मिलकर पुण्य भोगते हैं ।३६। सिद्ध, गंधर्व और अप्सराओं के गीतादि द्वारा सब पुण्य भोगते हैं देवता मनुष्य वा पक्षियोनि प्राप्त करके भी शुभ अशुभ ।३७। पुण्य, पापजनित सुख दुःखमय शुभाशुभ भोगते हैं । हे राजन् ! आपने जो पूँछा कि, पापात्मा किस किस पाप के करने से ऐसी यातना भोगते हैं ।३८। अब मैं इसी का पूरा वर्णन करता हूँ, जिस पाप से जो होता है जिन नराधमों ने दुष्ट नेत्रों से पराई स्त्री को देखा है ।३९। दुष्ट मन और स्पृहावाले नेत्रों से पराये द्रव्य को देखा है, यहाँ वज्रतुण्डवाले पक्षी उनके ही दोनों नेत्र हरण करते हैं ।४०। और बार-बार वही नेत्र फिर उत्पन्न होते हैं । इन नरों ने जितने पलक लगने में इन सब पापों का आचरण किया है ।४१। हे राजन् ! उतने ही हजार वर्ष यह इस प्रकार की नेत्रपीड़ा अनुभव करेंगे । जिन्होंने शत्रु की भी ज्ञानदृष्टि विनाश करने के लिये अन्यायरीति से शास्त्रोपदेश, या खोटी परामर्श दी है, जिन्होंने सब शास्त्रों की विपरीत व्याख्या की है, जिन्होंने मिथ्या बातें कही हैं ।४२-४३। जिन्होंने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनों की निन्दा की है,

तावतो वत्सरानेते वज्रतुण्डाः सुदारुणाः । मित्रभेदं तथा पित्रा पुत्रस्य स्वजनस्य च ॥४५
यज्वोपाध्याययोर्मात्रा सुतस्य सहचारिणः । भार्यापत्योश्च ये केचिद्भेदं चक्रुर्नराधमाः ॥४६
त इमे पश्य पाट्यन्ते करपत्रेण पार्थिव । परोपतापका ये च ये चाह्लादनिषेधकाः ॥४७
तालवृन्तानिलस्थानचन्दनोशीरहारिणः । प्राणान्तिकं ददुस्तापदुष्टानां च येऽधमाः ॥४८
करम्भवालुकासंस्थास्त इमे पापभागिनः । भुङ्क्ते श्राद्धं तु योऽन्यस्य नरोऽन्येन निमन्त्रितः ॥४९
दैवे वाप्यथवा पैत्र्ये स द्विधा कृष्यते खगैः । मर्माणि यस्तु साधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति ॥५०
तमिमे तुदमानास्तु खगास्तिष्ठन्त्यवारिताः । यः करोति च पैशुन्यमन्यवागन्यथामतिः ॥५१
पाट्यते हि द्विधा जिह्वा तस्येत्थं निशितैः क्षुरैः । मातापित्रोर्गुरूणां च येऽवज्ञां चक्रुरुद्धताः ॥५२
त इमे पूयविण्मूत्रगर्त्ते मज्जन्त्यधोमुखाः । देवतातिथिभूतेषु भृत्येष्वभ्यागतेषु च ॥५३
अभुक्तवत्सु येऽश्नन्ति तद्वत्पित्रग्निपक्षिषु । दुष्टास्ते पूयनिर्यासभुजः सूचीमुखास्तु ते ॥५४
जायन्ते गिरिवर्ष्माणः पश्यैते यादृशा नराः । एकपंक्त्या तु ये विप्रमथवेतरवर्णजम् ॥५५
विषमं भोजयन्तीह विड्भुजस्त इमे यथा । एकसार्थप्रयातं ये निःस्वमर्थार्थिनं नरम् ॥५६
अपास्य स्वान्नश्नन्ति त इमे श्लेष्मभोजिनः । गोब्राह्मणाग्नयः स्पृष्टा यैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर ॥५७
तेषामेतेऽग्निकुण्डेषु प्रज्वलत्स्वाहिताः कराः । सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैस्तु कामतः ॥५८

यह वज्रतुण्डवाले दारुण पक्षी उनकी ही बार-बार उत्पन्न हुई जीभ को छेदन करते हैं इन्होंने जितनी बार ऐसा पाप किया है यह वज्रतुण्ड समस्त पक्षी उनको उतने ही वर्ष ऐसी यंत्रणा देते हैं, जिन्होंने मित्रभेद पितापुत्रभेद वा स्वजनभेद किया है ।४४-४५। वा यज्ञकर्त्ता और उपाध्याय में माता तथा पुत्र में पति और पत्नी में जो नराधम भेद कराते हैं ।४६। हे राजन् ! देखो वही इस करपत्र की मार खाते हैं । जो दूसरे को क्रोध उत्पन्न कराते हैं, जो दूसरेकी प्रसन्नता नष्ट करते हैं ।४७। जो ताड़का पंखा चन्दन और खस हरण करते हैं और जो अधम साधुओं को प्राणान्तिक ताप देते हैं ।४८। वही पापभागी अधम इस तपे हुए रेत में गिरकर पाप का फल भोगते हैं । जो मनुष्य दूसरे के श्राद्ध में न्यौते जाकर दूसरे का भोजन करते हैं ।४९। अर्थात् दैव वा पितृकार्य में एक का निमंत्रण स्वीकार करके अन्य का श्राद्ध भोजन करते हैं, उन्हीं को यह पक्षी खींचकर खण्ड-खण्ड़ देह करते हैं, जो मनुष्य असद्वचनों से साधुओं का मर्मछेदन करते हैं ।५०। तो निर्भय हुए पक्षिगण उनको ही व्यथित करते हैं जो वचन मन से असत्य बात बनाकर किसी की चुगली करते हैं ।५१। उनकी जीभ इस तेज छुरी से दो खण्ड की जाती है । जो मत्त होकर माता पिता और गुरुजनों का निरादर करते हैं ।५२। वही इस पीव, विष्ठा और मूत्र से भरे कुण्ड में नीचे को मुख करके डाले जाते हैं, देवता, अतिथि, सेवक, अभ्यागत ।५३। पितृगण, अग्नि और पक्षियो के भूँखा रहते जो दुष्ट लोग भोजन करते हैं, वही सूचीमुख होकर पीव और गोंद का भोजन करते हैं ।५४। और उनका देह पर्वताकार होता है, जो ब्राह्मण वा अन्य जाति को एक पंक्ति में बैठाकर ।५५। विषमभोजन अर्थात् परस्पर को असमान भाव से भोजन कराते हैं, वह इनकी विष्ठा का भोजन करते हैं । जो व्यापार के लिये एकत्र जाते हुए अपने संगी धनहीन याचक को ।५६। छोड़कर अपने आप अन्न भोजन करते हैं, यह वही यहाँ इस प्रकार कफ का भोजन करते हैं । हे नरेश्वर ! ज़िन्होंने उच्छिष्ट अवस्था में गौ, ब्राह्मण वा अग्नि को स्पर्श किया है ।५७। उनके वह हाथ अग्निकुण्ड में गिरकर जलते हैं जिन्होंने उच्छिष्ट अवस्था में

तेषां याम्यैर्नरैर्नेत्रे न्यस्तो वह्निः समिध्यते। गावोऽग्निर्जननी विप्रो ज्येष्ठ भ्राता पिता स्वसा ।।५९
जामयो गुरवो वृद्धा यैः स्पृष्टास्तु पदा नृभिः । बद्धांघ्रयस्ते निगडैर्लोहैरग्निप्रतापितैः ।।६०
अङ्गाररराशिमध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजानुदाहिनः । पायसं कृसरं छागं दैवान्नानि च यानि वै ।।६१
भुक्तानि यैरसंस्कृत्य तेषां नेत्राणि पापिनाम् । निपातितानां भूपृष्ठे उद्धृत्ताक्षिनिरीक्षताम् ।।६२
सन्दंशैः पश्य कृष्यन्ते नरैर्याम्यैर्मुखात्ततः । गुरुदेवद्विजातीनां वेदानां च नराधमैः ।।६३
निन्दा निशामिता यैश्च पापानामभिनन्दताम् । तेषामयोमयान्कीलानग्निवर्णान्पुनः पुनः ।।६४
कर्णेषु पूरयन्त्येते याम्या विलपतामपि । यैः प्रपादेवविप्रौकोदेवालयसभाः शुभाः ।।६५
भङ्क्त्वा विध्वंसमानीताः क्रोधलोभानुवर्त्तिभिः । तेषामेतैः शितैः शस्त्रैर्मुहुर्विलपतां त्वचः ।।६६
पृथक् कुर्वन्ति वै याम्याः शरीरादतिदारुणाः । गोब्राह्मणार्कमार्गास्तु येऽवमेहन्ति मानवाः ।।६७
तेषामेतानि कृष्यन्ते गुदेनांत्राणि वायसैः । दत्त्वा कन्यां य एकस्मै द्वितीयाय प्रयच्छति ।।६८
स त्वेवं नैकधा छिन्नः क्षारनद्यां प्रवाह्यते । स्व पोषणपरो यस्तु परित्यजति मानवः ।।६९
पुत्रभृत्यकलत्रादिबन्धुवर्गमकिञ्चनम् । दुर्भिक्षे सम्भ्रमे वापि सोऽप्येवं यमकिङ्करैः ।।७०
उत्कृत्य दत्तानि मुखे स्वमांसान्यश्नुते क्षुधा । शरणागतान्यस्त्यजति लोभादुत्कोचजीविकः ।।७१
सोऽप्येवं यन्त्रपीडाभिः पीडयते यमकिङ्करैः । सुकृतं ये प्रयच्छन्ति यावज्जन्मकृतं नराः ।।७२

अपनी इच्छा से सूर्य, चन्द्र, तथा तारों को देखा है ।५८। यह यमदूत उन्हीं के नेत्र पर अग्नि को रखते हैं, जिन्होंने गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण, बड़े भाई, पिता, बहन ।५९। कुलबहन, गुरु अथवा बूढ़े ब्राह्मण को पैर से स्पर्श किया हो, उनके ही पैर अग्नि से तपी हुई लोहे की बेडियों में बाँधे गये हैं ।६०। और जंघातक अंगारों के ढेर में खड़े हुए हैं, जिन पापात्माओं ने खीर, कृशर (खिचड़ी) छाग और जिस किसी देवान्न को ।६१। बिना संस्कार किये भोजन किया है, उन्हीं पापात्माओं के नेत्र इस पृथ्वी में उखाड़कर डाले गये यह दीखायी पड़ रहे हैं ।६२। और दंशनकारी यमदूतों के मुख में आकर्षित होते हैं । जो नराधम गुरु, देवता ब्राह्मण और वेदकी ।६३। निन्दा सुनकर पुष्टि करते हैं, यमपुरुष अग्निवर्षक लोहे की कीली बार-बार ।६४। विलाप करते हुए उन पापात्माओं के कान में प्रवेश कराते हैं जिन्होंने देवता, ब्राह्मण का घर अथवा सभा को ।६५। क्रोध वा लोभ के वशीभूत हो तोड़कर विध्वंस कियाहै, उन विलाप करने वाले पापात्माओं की त्वचा (चर्म) पैने शस्त्रों से ।६६। अत्यन्त दारुण शरीरवाले यमदूत देह से पृथक् करते हैं । जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण और सूर्य के मार्ग में मलमूत्र त्याग करते हैं ।६७। उन पापात्माओं की सब आंते कौवे गुह्यद्वार से खींचते है । जो पुरुष एक बार किसी मनुष्य को कन्यादान करके वही कन्या फिर किसी दूसरे मनुष्य को देते हैं ।६८। उनको इस प्रकार खण्ड खण्ड करके क्षार (खारी) नदी में बहा दिया जाता है । जो मनुष्य औरों को छोड़कर अपना ही पोषण करते हैं ।६९। दुर्भिक्ष वा किसी प्रकार के संभ्रम में जो अंकिचन पुत्र, सेवक, कलत्रादि और बंधुवर्ग को त्याग देते हैं, यमदूत ।७०। उनका मांस काट काटकर उन्हीं के मुख में डालते हैं, और भूख के मारे वह उसे ही इस प्रकार भोजन करते हैं। जो लोभ के वशीभूत हो वृत्ति पानेवाले वा शरणागत मनुष्यों को त्यागते हैं ।७१। यमदूत उनको ही ऐसी यंत्रपीडा से पीड़ित करते हैं। जो मनुष्य संपूर्ण जन्मों का किया हुआ पुण्य किसी के हाथ बेचते हैं अर्थात् मूल्य लेकर अपने

ते पिष्यन्ते शिलापेषैर्यथैते पापकर्मिणः । न्यासापहारिणो बद्धाः सर्वगात्रेषु बन्धनैः ॥७३
कृमिवृश्चिककाकोलैर्भुज्यन्तेऽहर्निशं नराः । क्षुत्क्षामास्तृट्पतज्जिह्वातालवो वेदनातुराः ॥७४
दिवामैथुनिनः पापाः परदारभुजश्च ये । तथैव कण्टकैस्तीक्ष्णैरायसैः पश्य शाल्मलिम् ॥७५
आरोपिता विभिन्नाङ्गाः प्रभूतासृक्स्रवाविलाः । मूषायामपि पश्यैतान्ध्मायमानान्यमानुगैः ॥७६
पुरुषैः पुरुषव्याघ्र परदारावमर्शिनः । उपाध्यायमधः कृत्वा स्तब्धो योऽध्ययनं नरः ॥७७
गृह्णाति शिल्पमथवा सोऽप्येवं शिरसा शिलाम् । बिभ्रत्क्लेशमवाप्नोति जनमार्गेऽतिपीडितः ॥७८
क्षुत्क्षामोऽहर्निशं भारपीडाव्यथितमस्तकः । मूत्रश्लेष्मपुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि वारिणि ॥७९
त इमे श्लेष्मविण्मूत्रदुर्गन्धं नरकं गताः । परस्परं च मांसानि भक्षयन्ति क्षुधान्विताः ॥८०
भुक्तं नातिथ्यविधिना पूर्वमेभिः परस्परम् । अपविद्धास्तु यैर्वेदा वह्नयश्चाहिताग्निभिः ॥८१
त इमे शैलशृङ्गाग्रात्पात्यन्तेऽधः पुनः पुनः । पुनर्भूपतयो जीर्णा यावज्जीवन्ति ये नराः ॥८२
इमे कृमित्वमापन्ना भक्ष्यन्तेऽत्र पिपीलिकैः । नीचप्रतिग्रहादानाद्याजनान्नित्यसेवनात् ॥८३
पाषाणमध्यकीटत्वं नरः सततमश्नुते । पश्यतो भृत्यवर्गस्य मित्रस्याप्यतिथेस्तथा ॥८४
एको मिष्टान्नभुग्भुङ्क्ते ज्वलदङ्गारसञ्चयम् । वृकैर्भयङ्करैः पृष्ठं नित्यमस्योपभुज्यते ॥८५

अनुष्ठान फल बेच डालते हैं ।७२। वह इन पापात्माओं के समान पत्थर के कोल्हू में पीसे जाते हैं । जो किसी की धरोहर हरण करते हैं उनका सब शरीर बंधन में बँधता है ।७३। और उनको कृमि, बिच्छू, कौवे तथा उल्लू रातदिन भक्षण करते हैं और भूख प्यास से जिनकी जिह्वा और तालू सूख गया है ।७४। जिन पापात्माओं ने दिन में स्त्रीगमन वा पराई स्त्री से भोग किया है, यह देखो, वह लौहमय तीक्ष्ण कांटो से युक्त शाल्मलिवृक्ष में ।७५। आरोपित हो रहे हैं उनके अंग भंग हो रहे हैं । और बहुत सारा रुधिर टपकने से व्याकुल हो रहे हैं, यह देखो वह धौंकनी में रखकर धौंकाये जाते हैं ।७६। हे पुरुषव्याघ्र ! यह देखिये ! जिन्होंने पराई स्त्री से भोग किया है, उनकी यह दशा होती है । जो मनुष्य उपाध्याय को नीचे बैठाकर घमंड से अध्ययन ।७७। वा शिल्पग्रहण करते हैं वह पुरुष इसी प्रकार मस्तक पर शिला का बोझ रखकर जनमार्ग में महाक्लेश भोगते हैं ।७८। और बोझ की पीड़ा से व्यथितमस्तक हो अर्थात् मस्तक में वेदना अनुभव कर भूख-प्यास से दिन-रात पीड़ित होते हैं । जिन्होंने जल में मल-मूत्र वा खर पतवार डाली है ।७९। वही इस कफ-विष्ठा-मूत्र और दुर्गन्धिपूर्ण नरक में गये हैं । और जो भूख से कातर होकर परस्पर का मांस भोजन करते हैं ।८०। इन्होंने पूर्वकाल में परस्पर आतिथ्यविधान से भोजन नहीं किया । जिन आहिताग्नि पुरुषों ने वेद और अग्नि का अपमान किया है ।८१। वही इस पर्वत के शिखर से बार-बार नीचे गिराये जाते हैं जिन्होंने दूसरी बार व्याही हुई स्त्री के पति होकर समस्त जीवन बिताया है ।८२। वह कृमिरूप में परिणत होकर चींटियों के द्वारा भक्षित होते हैं । जिसने नीच पुरुष का दान ग्रहण, यजन वा नित्यसेवा की है।८३। वही पत्थर के भीतर का कीड़ा होता है। जो अतिथि, भृत्य और भाइयों के देखते उनका निरादर कर ।८४। अकेला मिष्ठान्न भोजन करता है, उसको जलते हुए अंगारे भोजन करने पड़ते है और उनकी पीठ के मांस को नित्य भयंकर भेड़िये खाते हैं।८५। महाराज! जिससे कि, इसने

पृष्ठमांसं नृपैतेन यतो लोकस्य भक्षितम् । अन्धोऽथ बधिरो मूको भ्राम्यतेऽत्र क्षुधातुरः ॥८६
अकृतज्ञोऽधमः पुंसामुपकारिषु वर्त्तते । अयं कृतघ्नो मित्राणामपकारी सुदुर्मतिः ॥८७
तप्तकुम्भे निपतितो विलपन्याति शोषणम् । करम्भवालुकां तस्मात्ततो यन्त्रावपीडनम् ॥८८
असिपत्रवनं तस्मात्करपत्रेण पाटनम् । कालसूत्रे तथा च्छेदमनेकाश्चैव यातनाः ॥८९
प्राप्य निष्कृतिमेतस्मान्न वेद्मि कथमेष्यति । श्राद्धे सङ्गतिनो विप्राः समुपेत्य परस्परम् ॥९०
दुष्टाहिनिःसृतं फेनं सर्वाङ्गेभ्यः पिबन्ति वै । सुवर्णस्तेयी विप्रघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ॥९१
अधश्चोर्ध्वं च दीप्ताग्नौ दह्यमानाःसमन्ततः ॥९२
तिष्ठन्त्यब्दसहस्राणि सुबहूनि ततः पुनः । जायन्ते मानवाः कुष्ठक्षयरोगादिचिह्निताः ॥९३
मृताः पुनश्च नरकं पुनर्जाताश्च तादृशम् । व्याधिमृच्छन्ति कल्पान्तपरिमाणं नराधिप ॥९४
गोघ्नो न्यूनतरं याति नरकेऽथ त्रिजन्मनि । तथोपपातकानां स सर्वेषामिति निश्चयः ॥९५
नरकप्रच्युता यान्ति यैर्यैर्विहितपातकैः । प्रयान्ति योनिजातानि तन्मे निगदतः शृणु ॥९६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे स्वकृतकर्मभुक्तिकथनं नाम चर्तुदशोऽध्यायः ।१४।

लोकों के पृष्ठमांस को भक्षण किया था, अर्थात् पीछे में बुराई की थी, वह यहाँ अंधे, बहरे, गूंगे होकर क्षुधा से भ्रमण कर रहे हैं ।८६। इस नराधम ने उपकार करने वाले के प्रति कृतज्ञता प्रकट नहीं की यह दुर्मति कृतघ्न और मित्रों का अपकारी है ।८७। इसी कारण तप्तकुंज में गिराया गया है और बड़ा विलाप करता है, इसके बाद फिर पीसाजायगा, तदनन्तर तप्तवालू यंत्र में पीड़ा भोगकर ।८८। असिपत्रनरक में तलवार की मार खायेगा और फिर कालसूत्र नामक नरक में छेदन किया जायगा । इस भाँति नाना प्रकार की यातना भोगकर ।८९। यह किस प्रकार इससे छुटकारा पावेंगे, वह मैं नहीं जानता । इन दुष्ट ब्राह्मणों ने परस्पर संघटित होकर श्राद्धभोजन किया था ।९०। इस कारण यह दुष्ट सर्पों के सर्वाङ्ग से निकलते हुए फेन का भोजन करते हैं । हे राजन् ! इस पुरुष ने सुवर्ण चुंरायाहै, इस पुरुष ने ब्रह्महत्या की है और इस पुरुष ने मद्य पीया है, इसने गुरु की स्त्री को हरण किया है ।९१। इस कारण यह चारों ओर से जलती हुई अग्नि में जलाये जाते हैं ।९२। और फिर यह वहाँ हजारों वर्ष तक रहते हैं, इसके पीछे कुष्ठ और क्षयरोगादि से चिह्नित मनुष्य देह धारण कर ।९३। प्राणपरित्यागपूर्वक फिर नरक में गिरते है और बार-बार इसी प्रकार जन्मग्रहण करते हुए कल्पान्तपर्यन्त व्याधि भोगा करते है ।९४। गोहत्या वा अन्यान्य उपपातक करने से सब को ही क्रमानुसार तीन जन्म निम्नतर नरक भोगना पड़ता है तथा अन्य उपपातकों में भी ऐसा ही होता है यह निश्चय है ।९५। हे महाराज ! नरक में पड़कर पापी मनुष्य जिस जिस पाप से जिस-जिस योनि में जन्म ग्रहण करते हैं, वह कहता हूँ सुनिये ।९६

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में स्वकृतभुक्ति नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।१४।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

(१५)

नरकस्थोद्धारवर्णनम्

यमकिङ्कर उवाच

पतितात्प्रतिगृह्याथ खरयोनिं व्रजेद्द्विजः । नरकात्प्रतिमुक्तस्तु कृमिः पतितयाजकः ॥१
उपाध्यायव्यलीकं तु कृत्वा श्वा भवति द्विजः । तज्जायां मनसा वाचा तद्द्रव्यं वापि कामयेत् ॥२
गर्दभो जायते जन्तुः पित्राश्चाप्यवमानकः । मातापितरावाक्रुश्य सारिका सम्प्रजायते ॥३
भ्रातुः पत्न्यवमन्ता च कपोतत्वं प्रपद्यते । तावेव पीडयित्वा तु कच्छपत्वं प्रपद्यते ॥४
भर्तृपिण्डमुपाश्नन्यस्तदिष्टं न निषेवते । सोऽपि मोहसमापन्नो जायते वानरो मृतः ॥५
न्यासापहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमिः । असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवति राक्षसः ॥६
विश्वासहन्ता च नरो मीनयोनौ प्रजायते । धान्यं यवांस्तिलान्माषान्कुलत्थान्सर्षपांश्चणान् ॥७
कलायान्कलमान्मुद्गान्गोधूमानतसीस्तथा । सस्यान्यन्यानि वा हृत्वा मोहाज्जन्तुरचेतनः ॥८
सञ्जायते महावक्त्रो मूषिको बभ्रुसन्निभः । परदाराभिमर्शात्तु वृको घोरोऽभिजायते ॥९
श्वा सृगालो बको गृध्रो व्यालः कङ्कस्तथा क्रमात् । भ्रातृभार्यां च दुर्बुद्धिर्यो धर्षयति पापकृत् ॥१०
पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति स चापि नरकाच्च्युतः । सखिभार्या गुरोर्भार्यां राजभार्यां च पापकृत् ॥११

अध्याय १५

नरक उद्धार का वर्णन

यमदूत ने कहा—पतित पुरुष से अर्थ ग्रहण करने पर ब्राह्मण गधे की योनि में जन्म ग्रहण करता है और पतित पुरुष को यज्ञ कराने पर नरक से छूटकर कृमिरूप में जन्म ग्रहण करता है ।१। उपाध्याय के निकट छल प्रकट करने से वा उसकी भार्या अथवा किसी वस्तु की मन में अभिलाषा करने से कुत्ता होकर जन्म ग्रहण करना पड़ता है ।२। माता-पिता का अपमान करने से गधा होता है और माता-पिता को गाली देने से मैना होता है ।३। जो पुरुष भाई की पत्नी का अपमान करता है, वह कबूतर होता है और उसको पीड़ित करने से कछुए के रूप में जन्म लेता है ।४। जो पुरुष स्वामी का पिण्ड भोजन करके इष्ट की चेष्टा नहीं करता वह मोहाच्छन्न होकर मरने के बाद वानरयोनि में जन्म ग्रहण करता है ।५। जो पुरुष किसी की धरोहर हरण करता है । वह नरक के दुःख से छूटकर कृमि होता है । और असूया करने वाला पुरुष नरक के अन्त में राक्षसयोनि को प्राप्त होता है ।६। विश्वासघातक मनुष्य मछली की योनि में जन्म ग्रहण करता है जो धान्य, यव, तिल, उरद, कुलथी, सरसों, चने ।७। कैता, मूंजी, मूंग, गेहूँ, तीसी वा अन्यान्य धान्य हरण करता है, वह मोहद्वारा अचेतन हो ।८। नेवले के समान दीर्घ मुख चूहा होकर जन्म ग्रहण करता है, पराई स्त्री से रमण करने वाला भयंकर भेड़िया होता है ।९। और फिर क्रमानुसार कुत्ता, गीदड़ बगला, गृध्र, सर्प तथा कौवे की योनि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है और जो पापात्मा दुर्बुद्धि भाई की स्त्री से भोग करता है ।१०। वह नरक के अन्त में कोयल होता है । जो पापात्मा मित्रपत्नी, वा

प्रधर्षयित्वा कामात्मा सूकरो जायते नरः । यज्ञदानविवाहानां विघ्नकर्त्ता भवेत्कृमिः ॥१२
पुनर्दाता तु कन्यायाः कृमिरेवोपजायते । देवतापितृविप्राणामदत्त्वा योऽन्नमश्नुते ॥१३
प्रमुक्तो नरकात्सोऽपि वायसः सम्प्रजायते । ज्येष्ठं पितृसमं वापि भ्रातरं योऽवमन्यते ॥१४
नरकात्सोऽपि विभ्रष्टः क्रौञ्चयोनौ प्रजायते । शूद्रश्च ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥१५
तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तः कीटको भवेत् । सूकरः कृमिको मद्गुश्चण्डालश्च प्रजायते ॥१६
अकृतज्ञोऽधमः पुंसां विमुक्तो नरकान्नरः । कृतघ्नः कृमिकः कीटः पतङ्गो वृश्चिकस्तथा ॥१७
मत्स्यस्तु वायसः कूर्मः पुल्कसो जायते ततः । अशस्त्रं पुरुषं हत्वा नरः सञ्जायते खरः ॥
कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च बालहन्ता च जायते ॥१८
भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः । तत्राप्यस्ति विशेषो वै भोजनस्य शृणुष्व तत् ॥१९
हृत्वा दुग्धं तु मार्जारो जायते नरकाच्च्युतः । तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नं हृत्वा तु मूषकः ॥२०
घृतं हृत्वा तु नकुलः काको मद्गुरजाषिम् । मत्स्यमांसापहृत्काकः श्येनो मेषामिषापहृत् ॥२१
चिरीवाकस्त्वपहृते लवणे दध्नि वा कृमिः । चोरयित्वा पयश्चापि बलाका सम्प्रजायते ॥२२
यस्तु चोरयते तैलं तैलपायी स जायते । मधु हृत्वा नरो दंशोऽपूपं हृत्वा पिपीलिका ॥२३
चोरयित्वा हविष्यान्नं जायते गृहगोधिका । आसवं चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुयात् ॥२४

राजपत्नी से ।११। रमण करते हैं, वह कामात्मा मनुष्य सूकर रूप में जन्म पाते हैं, यज्ञ, दान वा विवाह में विघ्न करने से कृमि होना पड़ता है ।१२। और जो मनुष्य दी हुई कन्या फिर किसी दूसरे को देता है, वह भी कृमिरूप में जन्म ग्रहण करता है, जो मनुष्य देवता, पितर वा ब्राह्मण को बिना दिये अन्न भोजन करता है ।१३। वह मनुष्य नरक की यंत्रणा भोगकर कौवा होता है । जो मनुष्य पिता के समान बड़े भाई का अपमान करता है ।१४। वह नरक भोगने के बाद क्रौञ्च योनि में जन्म लेता है, शूद्र ब्राह्मणी में गमन करने से कृमियोनि में उत्पन्न होता है ।१५। और उसके गर्भ से पुत्र उत्पन्न करने पर काष्ठ के भीतर का कीट सूकर, कृमि, मलका कीड़ा, वा चाण्डालयोनि में जन्म ग्रहण करता है ।१६। और जो पुरुषों में अधम अकृतज्ञ तथा कृतघ्न, है वह नरक से छूटकर कृम कीट पतंग, बिच्छू ।१७। मत्स्य, काक, कूर्म वा डोमयोनि में जन्म ग्रहण करता है । शास्त्रविहीन किसी पुरुष को मारने से गधे की योनि में जन्म होता है, स्त्री का वध करने वाला वा बालक का वध करने वाला पुरुष कृमि होता है ।१८। भोजन चुराने से मक्खी होना पड़ता है, भोजन के विषय में जो विशेष है वह कहता हूँ, सुनिये ।१९। अन्न-हरण करने से नरक भोगने के बाद बिल्ली होना पड़ता है, तिल और दाना मिला हुआ अन्न हरण करने से चूहा होता है ।२०। घृत का हरण करनेवाला नेवला और छागमांस हरण करने वाला पुरुष कौवा, तथा मृगमांस का हरण करने वाला गिद्धयोनि में जन्म ग्रहण करता है ।२१। लवण का चुराने वाला पुरुष जलकाक और दधि का चुराने वाला पुरुष कृमि होता है, और दूध हरण करने से बगले की योनि में जन्म लेना पड़ता है ।२२। जो पुरुष तेल चुराता है वह तेली होता है, मधु का चुराने वाला डंस और पूए का चुराने वाला मनुष्य चींटी होता है ।२३। हविष्यान्न चुराने से गृहगोधक अर्थात् गोह होता है और आसव चुराने से तीतर पक्षी होता

अयो हृत्वा तु पापात्मा वायसः सम्प्रजायते । पात्रे कांस्येऽपि हारीतः कपोतौ रौप्यभाजने ।।२५
हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते । कौशेयं चोरयित्वा तु चक्रवाकत्वमृच्छति ।।२६
कोशकारश्च कौशेय हृते वस्त्रेऽभिजायते । दुकूले शार्ङ्गकः पापो हृते चैवांशुके शुकः ।।२७
ऋक्षश्चैवाविकं हृत्वा वस्त्रं क्षौमं च जायते । कार्पासिके हृते क्रौञ्चो वह्नेर्हर्ता बकः खरः ।।२८
मयूरो वर्णकान्हृत्वा पत्रशाकं च जायते । जीवञ्जीवकतां याति रक्तवस्त्रापहृन्नरः ।।२९
छुच्छुन्दरी शुभान्गन्धान्वासो हृत्वा शशो भवेत् । खञ्जः पलालहरणे काष्ठहृद् घुणकीटकः ।।३०
पुष्पापहृद्दरिद्रस्तु पङ्गुर्यानापहृन्नरः । शाकहर्त्ता च हारीतस्तोयहर्त्ता च चातकः ।।३१
भूमिहृन्नरकान्गत्वा रौरवादीन्सुदारुणान् । तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्सारतरुतां क्रमात् ।।३२
प्राप्य क्षीणाल्पपापास्तु नरो भवति वै ततः । वृषस्य वृषणौ छित्त्वा षंढत्वं प्राप्नुयान्नरः ।।३३
परिहृत्य तथा भूयो जन्मनामेकविंशतिः । कृमिः कीटः पतङ्गो वा पक्षी तोयचरो मृगः ।।३४
गोत्वं च प्राप्य चाण्डालपुल्कसादिजुगुप्सितम् । पंग्वन्धो बधिरः कुष्ठी यक्ष्मणा च प्रपीडितः ।।३५
मुखरोगाक्षिरोगैश्च गुदरोगैश्च बाध्यते । अपस्मारी च भवति शूद्रत्वं च स गच्छति ।।३६
एष एव क्रमो दृष्टो गोसुवर्णादिहारिणाम् । विद्यापहारिणां चैव निष्क्रयभ्रंशिनां गुरोः ।।३७

है ।२४। जो मनुष्य लोहा चुराता है, वह पापात्मा कौवा होता है, कांसी का पात्र चुराने वाला हारीत पक्षी और चांदी का पात्र चुराने से कबूतर होता है ।२५। सुवर्ण के पात्र चुराने से कृमि होता है और रेशम चुराने से चकवे की योनि में उत्पन्न होना पड़ता है ।२६। कौशेय वस्त्र हरण करने से कोशकार अर्थात् चांदी सोने का सिक्का बनाने वाला होता है और जो पापी दुपट्टा चुराता है वह शार्ङ्ग, अंशुक का चुराने वाला तोता ।२७। ऊनी और अलसी के वस्त्र चुराने वाला ऋक्ष, कपास चुराने वाला क्रौंच और अग्नि का चुराने वाला बगला वा गधा होता है ।२८। जो पुरुष वर्णक (पीसे हुए सुगंधित द्रव्य चोवा चंदन अर्गजादि) वा शाकपत्र अर्थात् शोभाञ्जन चुराता है, वह मोर होता है और लाल वस्त्र चुराने वाले मनुष्य को चकवा चकवी की योनि प्राप्त होती है ।२९। सुन्दर गंधद्रव्य का चुरानेवाला छुछुन्दरी होता है, वस्त्र चुराने वाला खरगोश होता है, पलाल हरने से गंजा और काष्ठ चुराने वाला मनुष्य घुनकीट होता है ।३०। पुष्प हरण करने से दरिद्री होता है, यान हरण करने से मनुष्य लँगड़ा होकर जन्म लेता है, जो शाक चुराता है वह हारीत पक्षी होता है और जल का चुरानेवाला मनुष्य चातक पक्षी होता है ।३१। जो पुरुष भूमि हरण करता है वह दारुण रौरवादि सब नरकों में गमन करके फिर क्रमानुसार तृण, गुल्म, लता, वल्ली और त्वक्सार तरुरूप में जन्म ग्रहण करता है ।३२। इस प्रकार यथाक्रम पापों का क्षय होने पर मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करता है, बैल को बधिया करने से मनुष्य नपुंसक होता है ।३३। और फिर इक्कीस जन्म तक कृमि, कीट, पतंग जलचर, पक्षी, मृग ।३४। तथा गोयोनि में उत्पन्न होता है, इसके पीछे चाण्डाल और डोम आदि नीच योनि में जन्म लेता है, फिर लँगड़ा, अंधा बहरा, कोढ़ी तथा यक्ष्मारोग से पीड़ित होता है ।३५। और मुखरोग, नेत्ररोग, तथा गुह्यरोग से पीड़ित होकर फिर मिरगी के रोग से आक्रान्त हो शूद्रयोनि में उत्पन्न होता है ।३६। जिसने गौ, सुवर्ण आदि की चोरी की है, उसको भी क्रमानुसार यही दशा भोगनी पड़ती है और जो विद्या-हरण वा गुरु का धन मारता है ।३७। उसको भी

जायामन्यस्य पारक्यां पुरुषः प्रतिपादयेत् । प्राप्नोति षंढतां मूढो यातनाभ्यः परिच्युतः ॥३८
यः करोति नरो होममसमिद्धे हुताशने । सोऽजीर्णघनदुःखार्तो मन्दाग्निरभिजायते ॥३९
परनिन्दाकृतघ्नत्वं परमर्मोपघट्टनम् । नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम् ॥४०
परस्वहरणाशा च देवतानां च कुत्सनम् । निकृत्या वञ्चना नृणां कार्पण्यं च नृणां बधः ॥४१
यानि च प्रतिषिद्धानि तद्वृत्तिं च प्रशंसताम् । उपलक्षणानि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु ॥४२
दयाभूतेषु सद्वादः परलोकं प्रतिक्रिया । सत्या भूतहिता चोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥४६
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधुसङ्गमः । सत्क्रियाभ्यसनं मैत्री चैतद्बुध्येत पण्डितः ॥४४
अन्यानि चैव सद्धर्मक्रियाभूतानि यानि च । स्वर्गच्युतानां लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम् ॥४५
एतदुद्देशतो राजन्भवतः कथितं मया । स्वकर्मफलभोक्तॄणां पुण्यानां पापिनां तथा ॥४६
तदेह्यन्यत्र गच्छामो दृष्टं सर्वं त्वयाधुना । त्वया च दृष्टो नरकस्तदेह्यन्यत्र गम्यताम् ॥४७

पुत्र उवाच

ततस्तमग्रतः कृत्वा स राजा गन्तुमुद्यतः । ततश्च सर्वैरुत्क्रुष्टं यातनास्थायिभिर्नृभिः ॥४८
प्रसादं कुरु भूपेति तिष्ठ तावन्मुहूर्त्तकम् । त्वदङ्गसङ्गी पवनो मनो ह्लादयते हि नः ॥४९
परितापं च गात्रेषु पीडां बाधां च कृत्स्नशः । अपहन्ति नरव्याघ्र कृपां कुरु महीपते ॥५०

इसी प्रकार उग्ररूपी होकर दुःख भोगना पड़ता है, जो पुरुष दूसरे की भार्या लाकर दूसरे को देता है, वह मूढ़ पुरुष अनेक प्रकार की यंत्रणा भोगकर अन्त में नपुंसक होता है ।३८। जो ज्वालारहित अग्नि में होम करता है, वह अजीर्ण रोग से अत्यन्त पीड़ित होकर मंदाग्नियुक्त होता है ।३९। पराई निन्दा कृतघ्नता, परमर्मछेदन, निष्ठुरता, निर्लज्जता, पराई स्त्री का सवेन ।४०। पराये धन का हरण, अपवित्रता, देवता की निन्दा, धोखा देकर मनुष्यों को ठगना, कृपणता, मनुष्यों की हिंसा ।४१। और भी दूसरे सब निषिद्ध कर्मों का अनुष्ठान और उन-उन विषयों में सदा प्रवृत्ति, यह देखने से ही जानना चाहिये कि, इस पापात्मा ने नरक की सब यंत्रणा भोगने के बाद ही जन्म ग्रहण किया है ।४२। और सब प्राणियों में दया, अच्छा सम्वाद देना, परलोक के लिये सत्क्रिया, सत्यता, मनुष्य के हित के निमित्त बोलना, वेद का प्रमाण देखना ।४३। गुरु, देव, ऋषि और सिद्धर्षियों की पूजा, साधुसंगम, सत्कर्म का अभ्यास, मित्रता, यह पण्डितों को जानना चाहिए ।४४। और अन्यान्य सत्कार्य तथा उत्तम धर्मविषयक जो कुछ निर्दिष्ट हुआ है यह सब लक्षण मनुष्य में दिखाई दें तो पण्डितों को निश्चय करना चाहिये कि, इन निष्पाप, पुरुषों ने स्वर्ग से भ्रष्ट होकर जन्म ग्रहण किया है ।४५। हे राजन् ! अपने कर्मफल भोगने वाले पुण्यवान् और पापियों का समस्त विषय उद्देश्यानुसार मैंने आपसे वर्णन किया ।४६। आपने समस्त ही देखा है और आपको भी नरक का दर्शन हुआ, अत एव आओ अन्यत्र चलें ।४७

पुत्र ने कहा—तदनन्तर वह राजा यमदूत को आगे करके जैसे ही जाने को उद्यत हुए वैसे ही नरक की यंत्रणा भोगने वाले सब मनुष्यों ने उच्च स्वर से क्रन्दन करके कहा ।४८। "हे भूप ! प्रसन्न होओ और मुहूर्त्तकाल ठहरो, तुम्हारे अंग के संसर्गी वायु से हमारा मन अत्यन्त आह्लादित होता है ।४९। हे नरव्याघ्र ! इस वायु ने हमारे समस्त शरीर का परिताप और पीड़ा की बाधा हरण की है, अत एव हे

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तं याम्यं पुरुषं ततः । पप्रच्छ कथमेतेषामाह्लादो मयि तिष्ठति ।।५१
किं मया कर्म तत्पुण्यं मर्त्यलोके महत्कृतम् । आह्लाददायिनी व्युष्टिर्यस्येयं तदुदीरय ।।५२

याम्य उवाच

पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेन ते तनुः । पुष्टिमभ्यागता यस्मात्तद्गतं च मनोयतः ।।५३
ततस्त्वद्गात्रसंसर्गी पवनो ह्लाददायकः । पापकर्मकृतो राजन्यातना न प्रबाधते ।।५४
अश्वमेधादयो यज्ञास्त्वयेष्टा विधिवद्यतः । ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्या यंत्रशस्त्राग्निवायसाः ।।५५
पीडनच्छेददाहादिमहादुःखस्य हेतवः । मृदुत्वमागता राजंस्तेजसोपहतास्तव ।।५६

राजोवाच

न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत्सुखं प्राप्यते नरैः । यदार्त्तजन्तुनिर्वाणदानोत्थमिति मे मतिः ।।५७
यदि मत्सन्निधावेतान्यातना न प्रबाधते । ततो भद्रमुखाऽत्राहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः ।।५८

यमपुरुष उवाच

एहि राजेन्द्र गच्छामि निजपुण्यसमार्जितान् । भुंक्ष्व भोगांस्तु भुज्यन्तु यातनाः पापकर्मिणः ।।५९

राजोवाच

तस्मान्न तावद्यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः । मत्सन्निधानात्सुखिनो भवन्ति नरकौकसः ।।६०
धिक्तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम् । यो नार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ।।६१

महीपते ! हम पर दया करो" ।५०। अनन्तर राजा ने उन सब का यह वचन सुनकर यमदूत से पूँछा—हे यमदूत ! मेरे खड़े होने से इनको इतना आह्लाद क्यों होता है ? ।५१। मैंने मृत्युलोक में ऐसे किस पुण्य कर्म का अनुष्ठान किया है, जो इनके प्रति इस प्रकार आनन्ददायिनी व्युष्टि (फल) होती है ? वह कहो।५२

यमदूत बोला—हे महाराज ! आपने प्रथम देवता, पितर, अतिथि और संन्यासी इत्यादि के भोजन से बचा हुआ अन्न भक्षण करके अपना शरीर पाला था और हरघड़ी आपका मन इन्हीं बातों में लगा रहता था ।५३। हे राजन् ! इसी कारण आपके शरीरसंसर्गी आह्लाददायक इस वायु से पापात्माओं की समस्त यातना नष्ट होती हैं ।५४। और आपने अश्वमेध इत्यादि सब यज्ञों का यथाविधि अनुष्ठान किया है । इस कारण पीड़न, छेदन और दाहादि संपूर्ण महादुःखों के हेतु यमसंबंधीय यंत्र, शस्त्र, अग्नि और कौवों ने तुम्हारे दर्शन और तेज से हत होकर इस प्रकार कोमलता का अवलम्बन किया है ।५५-५६

राजा ने कहा—मेरी ऐसी बुद्धि है कि, दुःखी मनुष्य की रक्षा करने से जैसे सुख मिलता है, स्वर्ग वा ब्रह्मलोक में भी वैसा सुख उत्पन्न नहीं होता ।५७। यदि मेरे खड़े होने से इनकी समस्त यंत्रणा नष्ट होती हैं तो हे भद्रमुख ! स्थाणु के समान अचल होकर मैं इस स्थान में ही वास करूँगा ।५८

यमदूत बोला—आओ, चलो ! अपने पुण्य से इकट्ठा किया हुआ समस्त भोग भोगो यह पापात्माओं के दुःख भोगने का स्थान है ।५९

राजा ने कहा—जब तक यह अत्यन्त दुःखी रहेंगे, तब तक मैं नहीं जाऊँगा, क्योंकि यह सब

यज्ञदानतपांसीह परत्र च न भूतये । भवन्ति तस्य यस्यार्तपरित्राणे न मानसम् ॥६२
नरस्य यस्य कठिनं मनो बालातुरादिषु । वृद्धेषु च न तं मन्ये मानुषं राक्षसो हि सः ॥६३
एषां मत्सन्निकर्षात्तु यद्यग्निपरितापजम् । तथोग्रगन्धजं वापि दुःखं नरकसम्भवम् ॥६४
क्षुत्पिपासोद्भवं दुःखं यच्च मूर्च्छाप्रदं महत् । विनाशमेति तद्भद्र मन्ये स्वर्गसुखात्परम् ॥६५
प्राप्स्यन्ते ते यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि । किं वाप्राप्तं मया न स्यात्तस्मात्त्वं वद मा चिरम् ॥६६

याम्य उवाच

एष धर्मश्च शक्रश्च त्वां नेतुं समुपागतौ । अवश्यमस्माद्गन्तव्यं तस्मात्पार्थिव गम्यताम् ॥६७

धर्म उवाच

नयामि त्वामहं स्वर्गं त्वया सम्यगुपासितः । विमानमेतदारुह्य मा विलंबस्व गम्यताम् ॥६८

राजोवाच

नरके मानवा धर्म पीडचमानाः सहस्रशः । त्राहीत्यमी च क्रन्दन्ति मामतो न व्रजाम्यहम् ॥६९

इन्द्र उवाच

कर्मणा नरकप्राप्तिरेषां पापिष्ठकर्मणाम् । स्वर्गस्त्वयापि गन्तव्यो नृप पुण्येन कर्मणा ॥७०

नरकवासी मेरे रहने से सुखी होते हैं ।६०। शत्रु भी यदि दुःख से आतुर होकर शरणार्थी हो तो जो पुरुष उस पर अनुग्रह नहीं करता, उसके जीवन को धिक्कार है ।६१। आर्त पुरुष की रक्षा करने में जिसका चित्त नहीं है, उसका यज्ञ, दान वा तपस्या कुछ भी इस काल अथवा परकाल के सुख के निमित्त नहीं है ।६२। बालक, आतुर वा बूढ़े इत्यादि के प्रति जिसका चित्त कठिन है, अर्थात् जो इनके ऊपर दया नहीं करता, मेरे विचार से वह मनुष्य नहीं वरन राक्षस है ।६३। यद्यपि इनके समीप रहने से मुझको नरक की अग्नि के ताप से उत्पन्न तीव्र गंध का दुःख होगा ।६४। भूख प्यास से प्रगट मूर्च्छा का देने वाला महादुःख भोगना पड़ेगा, किन्तु तो भी इनकी रक्षा करना अपना धर्म विचार कर इस महादुःख को भी स्वर्ग के सुख की अपेक्षा अधिक सुख समझूँगा ।६५। यदि केवल मेरे दुःख पाने से इस प्रकार अनेक दुःखी पुरुषों को सुख प्राप्त होगा तो मुझे क्या नहीं मिलेगा ? अत एव हे यमदूत ! तुम विलम्ब मत करो, शीघ्र जाओ ।६६

यमदूत बोला—हे राजन् ! यह धर्म और इन्द्र हैं, आपको लेकर जाने के लिए आये हैं, आपको अवश्य ही जाना पड़ेगा, अत एव आइए ।६७

धर्म ने कहा—हे राजन् ! आपने सम्यक् प्रकार से मेरी उपासना की है, इसी कारण आपको स्वर्ग में ले जाऊँगा, अब आप विलम्ब न करें, शीघ्र इस विमान में बैठकर चलें ।६८

राजा बोले—हे धर्म ! सहस्रों मनुष्य नरक में पड़े कष्ट संयुक्त रुदन करते हैं और "हमारी रक्षा करो" ऐसा मुझसे कहते हैं, इस कारण मैं इस स्थान को छोड़कर नहीं जाऊँगा ।६९

इन्द्र ने कहा—अपने-अपने कर्म के फल से इन पापियों को नरक की यंत्रणा भोगनी पड़ती है, सुतरां अपने पुण्य कर्म के फल से आपको भी स्वर्ग में जाना उचित है ।७०

राजोवाच

यदि जानासि धर्म त्वं त्वं वा देव शतक्रतो । मम यावत्प्रमाणं तु शुभं तद्वक्तुमर्हथः ॥७१

धर्म उवाच

अब्बिन्दवो यथाम्भोधौ यथा वा दिवितारकाः । यथा वा वर्षतो धारा गंगायां सिकता यथा ॥७२
असंख्येया महाराजन्नानायोनिषु जन्तवः । तथा तवापि पुण्यस्य संख्या नैवोपपद्यते ॥७३
अनुकम्पामिमामद्य नारकेष्विह कुर्वता । तदेव शतसाहस्रसंख्यानीतं त्वया नृप ॥७४
तद्गच्छ त्वं नृपश्रेष्ठ तद्भोक्तुममरालयम् । एते तु नरके पापं क्षपयन्तु स्वकर्मजम् ॥७५

राजोवाच

कथं स्पृहां करिष्यन्ति मत्सम्पर्काय मानवाः । यदि मत्सन्निधावेषामुत्कर्षो नोपपद्यते ॥७६
तस्माद्यत्सुकृतं किञ्चिन्ममास्ति त्रिदशाधिप । मुच्यन्तां तेन नरकात्पापिनको यातनागताः ॥७७

इन्द्र उवाच

एवमूर्ध्वतरं स्थानं त्वया प्राप्तं महीपते । एतांस्तु नरकात्पश्य विमुक्तान्पापकर्मिणः ॥७८

पुत्र उवाच

ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः । विमानं चाधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः ॥७९
अहं चान्ये च ये तत्र यातनाभ्यः परिच्युताः । स्वकर्मफलनिर्दिष्टं ततो योन्यन्तरं गताः ॥८०

राजा बोले—हे धर्म ! हे शचीपति इन्द्र ! मैंने कितना पुण्य संचय किया है, यदि आप जानते हो तो बताइये ।७१

धर्म ने कहा—हे राजन् ! समुद्र में जितनी जल की बूंदें, आकाश में जितने तारे , वर्षा में जितनी जलधारा और गंगा में जितनी बालू है, आपका पुण्य भी उतना ही है ।७२। हे महाराज जिस प्रकार जल बिन्दु आदि की संख्या नहीं की जाती उसी प्रकार आपका पुण्य भी संख्यातिरिक्त है ।७३। और फिर हे नृप ! अब इन नारकियों के ऊपर दया प्रकट करने से आपका वह पुण्य भी शत सहस्र गुण बढ़ गया ।७४। अतः हे नृपश्रेष्ठ ! उस पुण्यफल को भोगने के लिये अमरलोक में चलिये और ये पापात्मा भी नरक में वास करके अपने कर्मों से उत्पन्न हुए समस्त पापों का क्षय करें ।७५

राजा ने कहा—मेरे समीप वास करने से यदि इनका कल्याण नहीं होता तो मनुष्य मेरी संगति की इच्छा क्यों करते ।७६। इस कारण हे त्रिदशाधिप ! मेरा जो कुछ पुण्य है, यह यातना भोगने वाले पापात्मा उस के द्वारा ही नरक से छूटें ।७७

इन्द्र ने कहा—हे महीपते ! इससे आपकी और भी ऊंचे स्थान में गति हुई, यह देखो ! पापी लोग नरक से छूट गये ।७८

पुत्र ने कहा—अनन्तर उन राजा के ऊपर फूलों की वर्षा होने लगी और शचीपति इन्द्र उनको विमान में बैठाकर स्वर्गलोक में ले गये ।७९। और इधर मैंने व अन्यान्य नारकियों ने यातना से छूट कर अपने-अपने कर्मफलानुसार भिन्न-भिन्न योनि में जन्म ग्रहण किया ।८०। हे द्विजसत्तम ! इन नरकों का

एवमेते समाख्याता नरका द्विजसत्तम । येन येन च पापेन यां यां योनिमुपैति वै ।।८१
तत्तत्सर्वं समाख्यातं यथा दृष्टं मया पुरा । पुरानुभवजं ज्ञानमवाप्य कथितं तव ।।
अतः परं महाभाग किमन्यत्कथयामि ते ।।८२

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे नरकस्योद्धारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।१५।

अथ षोडशोऽध्यायः

दत्तात्रेयमाहात्म्यवर्णनम्

पितोवाच

कथितं मे त्वया वत्स संसारस्य व्यवस्थितम् । स्वरूपमपि देहस्य घटीयन्त्रवदव्ययम् ।।१
तदेव मे तदखिलं ममावगतमीदृशम् । किं मया वद कर्त्तव्यमेवमस्मिन्व्यवस्थिते ।।२

पुत्र उवाच

यदि मद्वचनं तात श्रद्दधास्यविशङ्कितः । तत्परित्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थमना भव ।।३
तमनुष्ठाय विधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् । आत्मन्यात्मानमाधाय निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।।४
एकान्तशीलो वश्यात्मा भव भिक्षुरतन्द्रितः । तत्र योगपरो भूत्वा बाह्यस्पर्शविवर्जितः ।।५
ततः प्राप्स्यसि तं योगं दुःखसंयोगभेषजम् । मुक्तिहेतुमनौपम्यमनाख्येयमसंज्ञितम् ।।६

सब वृत्तान्त आपके निकट यथार्थ रीति से वर्णन किया, जिस-जिस पाप से जिस-जिस योनि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है ।८१। जो मैंने पहले देखा है, वह सब ही आपके निकट वर्णन किया, आपसे जो कुछ कहा यह सभी मैंने पूर्व में अनुभव किया है, अतः यह मिथ्या नहीं है, हे महाभाग ! अब अनुमति दीजिये, क्या वर्णन करूँ ।८२

श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में नरक उद्धार नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१५।

अध्याय १६

दत्तात्रेय माहात्म्य का वर्णन

पिता ने कहा—हे वत्स ! घटीयंत्र के समान व्यवस्थित अतिशय त्याग ने योग्य संसार का अव्ययस्वरूप तुमने मुझसे वर्णन किया ।१। मुझको भी ज्ञान हुआ कि "समस्त इसी प्रकार है" जब कि, संसार की ऐसी व्यवस्था है तो कहता हूँ, देखो ! मुझको क्या करना चाहिए ? ।२

पुत्र बोला—हे तात ! यदि निःशंक चित्त से मेरे वचन में श्रद्धा करो तो गृहस्थाश्रम छोड़कर वानप्रस्थाश्रम का अवलम्बन कीजिये ।३। विधानानुसार वानप्रस्थ आश्रम का अनुष्ठानपूर्वक अग्निपरिग्रहत्याग, आत्मा में आत्मा को संयोग कर निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होओ ।४। और एकान्तशील हो आत्मा को वशीभूत एवं आलस्यहीन कर भिक्षुक होओ । इस प्रकार योगपरवश हो जब बाह्य स्पर्शरहित होंगे ।५। तब मुक्तिके कारण स्वरूप, उपमाविहीन, वचन से अतीत निःसंग और दुःखसंयोग के

तत्संयोगान्न ते योगो भूयो भूतैर्भविष्यति ।

पितोवाच

वत्स योगं ममाचक्ष्व मुक्तिहेतुमतः परम् ॥७
येन भूतैः पुनर्भूतो नैदृग्दुःखमवाप्नुयाम् । यत्रासक्तिपरस्यात्मा मम संसारबन्धनैः ॥८
नेति योगमयोगोऽपि तं योगमधुना वद । संसारादित्यतापार्त्तिविप्लुष्यद्देहिमालसम् ॥९
ब्रह्मज्ञानांबुशीतेन सिञ्च मां वाक्यवारिणा । अविद्याकृच्छ्रसर्पेण दष्टं तद्विषपीडितम् ॥१०
स्ववाक्यामृतदानेन मां जीवय पुनर्मृतम् । पुत्रदारगृहक्षेत्रममत्वनिगडार्दितम् ॥११
मां मोचयेष्टसद्भावविज्ञानोद्घाटनैश्चिरम् ।

पुत्र उवाच

शृणु तात यथा योगो दत्तात्रेयेण धीमता ॥१२
अलर्काय पुरा प्रोक्तः सम्यक्पृष्टेन विस्तरात् ।

पितोवाच

दत्तात्रेयः सुतः कस्य कथं वा योगमुक्तवान् ॥१३
कश्चालर्को महाभागो यो योगं परिपृष्टवान् ।

पुत्र उवाच

कौशिको ब्राह्मणः कश्चित्प्रतिष्ठानेऽभवत्पुरे ॥१४

औषधिस्वरूप इस योग को प्राप्त होंगे ।६। इस योग का संयोग होने से आपका फिर पंचभूत के संग मेल नहीं रहेगा ।

पिता ने कहा—हे वत्स ! अब मुक्ति के कारणस्वरूप उस योग का विषय वर्णन करो ।७। जिस योग का अवलम्बन करने से भौतिक पदार्थों के संग एक होकर पुनर्वार जन्मग्रहणपूर्वक मुझको फिर ऐसा दुःख पाना न पड़े यद्यपि आत्मा निर्लिप्त है किन्तु मेरी संसारबंधन में अत्यन्त आसक्ति है ।८। अत एव उसको लाभ करके आत्मा भी फिर युक्त न हो, सुतरां मुझसे योग कहो । हे वत्स ! मेरा देह और मन संसाररूपी सूर्य के तापकी पीड़ा से तप रहा है ।९। तुम ब्रह्मज्ञानमय सुशीतलाम्बुमिश्रित वचनरूपी जल के द्वारा उसको परिषिक्त अर्थात् ठंडा करो अविद्यारूपी कालसर्प ने मुझको काटा है, मैं उसके विष की पीड़ा से अत्यन्त पीड़ित होकर मृतप्राय हुआ हूँ ।१०। तुम अपने वचनरूपी अमृतको पिलाकर मुझको फिर जीवित करो । हे वत्स ! मैं पुत्र, स्त्री, गृह, खेत ममतारूपी बेड़ियों से दृढ बँधा हुआ हूँ ।११। तुम सद्भावसंयुक्त विज्ञान उत्पन्न करके शीघ्र मुझको छुड़ाओ ।

पुत्र ने कहा—हे तात ! पूर्व में बुद्धिमान् दत्तात्रेय जी ने अलर्क के सम्यक् प्रकार पूँछने पर उनसे विस्तारपूर्वक जो योग कहा था, मैं वही कहता हूँ सुनो ।

पिता ने कहा—हे वत्स ! दत्तात्रेय जी किसके पुत्र थे और उन्होंने किस प्रकार योग कहा था ? ।१२-१३। और जिन्होंने योग पूँछा था, वह महाभाग अलर्क कौन थे ।

पुत्र ने कहा—पहले प्रतिष्ठान नगर में कुशिकवंशोत्पन्न ब्राह्मण वास करता था ।१४। वह पूर्व जन्म

सोऽन्यजन्मकृतैः पापैः कुष्ठरोगातुरोऽभवत् । तं तथा व्याधितं भार्या पतिं देवमिवार्चयत् ।।१५
पादाभ्यङ्गाङ्गसंवाहस्नानाच्छादनभोजनैः । श्लेष्ममूत्रपुरीषासृक्प्रवाहक्षालनेन च ।।१६
रहस्येवोपचारेण प्रियसम्भाषणेन च । सततं पूज्यमानोऽपि तयातीव विनीतया ।।१७
अतितीव्रप्रकोपत्वान्निर्भत्सयति दारुणः । तथापि प्रणता साध्वी तममन्यत दैवतम् ।।१८
तं तथाप्यतिबीभत्सं सर्वश्रेष्ठममन्यत । अचंक्रमणशीलोऽपि स कदाचिद्द्विजोत्तमः ।।१९
प्राह भार्यां नयस्वेति त्वं मां तस्या निवेशनम् । या सा वेश्या मया दृष्टा राजमार्गे गृहे सता ।।२०
तां मे प्रापय धर्मज्ञे सैव मे हृदि वर्त्तते । दृष्टा सूर्योदये बाला रात्रिश्चेयमुपागता ।।२१
दर्शनानन्तरं सा मे हृदयान्नापसर्पति । यदि सा चारुसर्वाङ्गी पीनश्रोणिपयोधरा ।।२२
नोपगूहति तन्वङ्गी तन्मां द्रक्ष्यति वै मृतम् । वामः कामो मनुष्याणां बहुभिः प्राप्य चेतसः ।।२३
ममाशक्तिश्च गमने सङ्कुलं प्रतिभाति मे । तत्तदा वचनं श्रुत्वा भर्त्तुः कामातुरस्य सा ।।२४
तत्पत्नी व्याकुला जाता महाभागा पतिव्रता । गाढं परिकरं बद्ध्वा शुल्कमादाय चाधिकम् ।।२५
स्कन्धे भर्त्तारमारोप्य जगाम मृदुगामिनी । निशि मेघावृते व्योम्नि चलद्विद्युच्च दृश्यते ।।२६
राजमार्गे प्रियं भर्त्तुश्चिकीर्षन्ती द्विजाङ्गना । पथि शूले तदा प्रोतमचोरं चोरशङ्कया ।।२७
माण्डव्यमतिदुःखार्तमन्धकारे च स द्विजः । पत्नीस्कन्धसमारूढश्चालयामास कौशिकः ।।२८

के किये पाप द्वारा कुष्ठ रोग से आतुर हुआ। स्वामी के कुष्ठरोग से आक्रान्त होने पर भी उसकी भार्या देवता के समान उसकी पूजा करती ।१५। चरणों में तेल मलती, अंग दबाती, स्नान कराती, आच्छादन करती, भोजन कराती और कफ, मूत्र, मल तथा रक्त का प्रवाह धोती ।१६। निर्जन में उपकार और प्रियसंभाषणादि द्वारा विनीतभाव से सदा उसकी पूजा करती ।१७। किन्तु ब्राह्मण अत्यन्त कोपस्वभाव और निष्ठुर होने के कारण विनीत पत्नी से निरंतर पूजित होकर भी उसको सदा घुड़कता, तथापि वह प्रणत भार्या उसको देवता जानती ।१८। वह उस बीभत्सरूपी ब्राह्मण को सबसे श्रेष्ठ मानती ब्राह्मण में चलने की शक्ति नहीं थी तो भी एक समय ।१९। पत्नी को आज्ञा दी कि, मैंने जो उस वेश्या को देखा है, जो राजमार्ग के पार्श्ववर्त्ती घर में वास करती है ।२०। तू मुझे उसी वेश्या के घर ले चल, हे धर्म की जाननेवाली ! वही मेरे हृदय में वर्त्तमान रहती है, मैंने प्रातःकाल में उस बाला को देखा है और अब रात्रि हो गई है ।२१। तथापि जबसे देखा है, तबसे वह मेरे हृदय से अलग नहीं होती, यदि वह पुष्टश्रोणिभागवाली, पुष्टपयोधरवाली ।२२। तन्वङ्गी सर्वाङ्गसुन्दरी बालिका मुझको आलिंगन नहीं करेगी तो निःसन्देह मेरा मरण देखोगी, क्योंकि एक तो कामदेव मनुष्य के प्रतिकूल है ।२३। उस पर भी अनेक मनुष्य उसके प्रार्थी हैं, फिर मुझमें चलने की शक्ति नहीं इस, कारण मुझे विषम संकट बोध होता है, उस समय कामातुर स्वामी के इस प्रकार वचन सुनकर ।२४। सत्कुलोत्पन्न महाभागा पतिव्रता व्याकुल हुई—पत्नी ने दृढ़रूप से कमर बांध बहुत धन ग्रहण किया ।२५। और स्वामी को कंधे पर चढ़ाकर धीरे धीरे गमन करने लगी । एक तो रात्रि ही अंधेरी थी, फिर आकाश में मेघ आच्छादित थे, किन्तु वह स्वामी के प्रियकार्य की अभिलाषा करनेवाली द्विजाङ्गना चंचल बिजली का प्रकाश देखकर राजमार्ग में गमन करने लगी और उसी मार्ग में एक शूली गड़ रही थी जिस पर चोर न होकर भी चोरी के अपराध से ।२६-२७। मांडव्य मुनि चढ़े हुए अत्यन्त दुःख भोगते थे, मार्ग में अंधकार होने से हठात् उस पत्नी के कंधे पर चढे हुए कौशिक ब्राह्मण के अंगस्पर्श से उनका चरण विचलित हुआ ।२८। पैर के विचलित होने से

वामाङ्गेनाथ संक्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह । येनाहमेवमत्यर्थं दुःखितश्चालितो वृथा ॥२९
इत्थं कष्टमनुप्राप्तः स पापात्मा नराधमः । सूर्योदयेऽवशः प्राणैर्वियोक्ष्यति न संशयः ॥३०
भास्करालोकनादेव स विनाशमवाप्स्यति । तस्य भार्या ततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम् ॥३१
प्रोवाच व्यथिता सूर्यो नैवोदयमुपेष्यति । ततः सूर्योदयाभावादभवत्सन्तता निशा ॥३२
बह्वन्यहः प्रमाणानि ततो देवा भयं ययुः । निःस्वाध्यायवषट्कारं स्वधास्वाहाविवर्जितम् ॥३३
कथं नु खल्विदं सर्वं न गच्छेत्संक्षयं जगत् । अहोरात्रव्यवस्थाया विना मासर्तुसंक्षयः ॥३४
तत्संक्षयान्न त्वयने ज्ञायेते दक्षिणोत्तरे ॥३५
विना चायनविज्ञानं कालः संवत्सरः कुतः । पतिव्रताया वचनान्नोद्गच्छति दिवाकरः ॥३६
सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकाः क्रियाः । अग्नेर्विहरणं चैव क्रत्वभावश्च लक्ष्यते ॥३७
न कालेन विना चेष्टिर्न च यज्ञादिकाः क्रियाः । नश्यन्ति सर्वभूतानि तमोभूते चराचरे ॥३८
नैवाप्यायनमस्माकं विना होमेन जायते । वयमाप्यायिता मर्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितैः ॥३९
वृष्ट्यादिनानुगृह्णीमो मर्त्यान्सस्याभिवृद्धये । निष्पादितास्वौषधीषु मर्त्या यज्ञैर्यजन्ति नः ॥४०
एवं वयं प्रयच्छामः कामान्यज्ञादिपूजिताः । अधो हि वर्षाम वयं मर्त्याश्चोर्ध्वं प्रवर्षिणः ॥४१
तोयवर्षेण हि वयं हविर्वर्षेण मानवाः । येऽस्माकं न प्रयच्छन्ति नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥४२

मांडव्य मुनि ने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा कि, 'जिस पुरुष ने पैर विचलित करके मुझे वृथा ।२९। यंत्रणा दी है सूर्योदय होते ही वह पापात्मा नराधम असह्य यंत्रणा भोगने से अवश होकर निःसंदेह प्राण त्याग करेगा ।३०। सूर्य के देखते ही निःसन्देह उसका प्राण त्याग होगा' तब उसकी पत्नी ने उनका यह दारुण शाप सुन ।३१। अत्यन्त व्यथित होकर कहा "सूर्य अब उदित ही नहीं होंगे" अनन्तर पतिपरायणा ब्राह्मण की स्त्री के उसी वचनानुसार सूर्यदेव के उदित न होने से सदा रात्रि ही रही । इस प्रकार बहुत रात्रियों के बीतने पर देवताओं को अत्यन्त भय प्राप्त हुआ ।३२। तब वह विचारने लगे कि, "जब स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा और स्वाहा लोप होगा तब" किस प्रकार से इस संपूर्ण जगत् की रक्षा होगी ? ।३३। अहोरात्र की व्यवस्था के बिना मास और ऋतु का विभाग नहीं होगा, मास और ऋतु का विभाग न होने से उत्तरायण और दक्षिणायन का ज्ञान नहीं होगा ।३४-३५। अयनज्ञान न होने से किस प्रकार संवत्सर की स्थिरता होगी ? और संवत्सर का ज्ञान न होने से अन्यान्य कालका ज्ञान किस प्रकार से होगा ? पतिव्रता के वचनानुसार सूर्य अब उदित नहीं होते ।३६। सूर्योदय नहीं होने से स्नानदानादि कार्य भी बन्द हुए, अब अग्निचयन अर्थात् हवन भी नहीं होता और समस्त यज्ञों का भी अभाव दीखता है ।३७। कालके बिना इष्टि नहीं होती यज्ञदानादि क्रिया नहीं होती चराचर, अंधकार से व्याप्त होने के कारण सब प्राणी नष्ट होते हैं ।३८। होम के बिना हमारी तृप्ति का भी दूसरा उपाय नहीं है, मनुष्यगण यथोचित हमको यज्ञभाग में तृप्त करते हैं ।३९। हम भी शस्यादि (अन्नादि) की सिद्धि के लिये जल वर्षाकर उन पर अनुग्रह करते हैं, समस्त औषधी उत्पन्न होने से ही मनुष्य उनके द्वारा हमारे उद्देश्य से यज्ञ करते हैं ।४०। हम भी यज्ञादिद्वारा पूजित होकर उनकी अभिलाषानुसार समस्त विषय संपादन करते हैं, हम नीचे की ओर वृष्टिधारा वर्षण करते हैं और मनुष्य ऊपर की घृतधार बरसाते है ।४१। हम जल वर्षा कर और मनुष्य हवि देकर प्रसन्न करते हैं, जो नित्य नैमित्तिकी क्रियाएँ हमको नहीं देते ।४२।

क्रतुभागं दुरात्मानः स्वयं वाश्नन्ति लोलुपाः । विनाशाय वयं तेषां तोयसूर्याग्निमारुताः ।।४३
क्षितिं च संदूषयामः पापानामपकारिणाम् । दुष्टतोयादिदोषेण तेषां दुष्कृतकर्मणाम् ।।४४
उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते मरणाय सुदारुणाः । ये त्वस्मान्प्रीणयित्वा तु भुञ्जते शेषमात्मना ।।४५
तेषां पुण्यतमाँल्लोकान्वितरामो महात्मनाम् । तन्नास्ति सर्वमेतद्धि न चोपायव्यवस्थितम् ।।४६
कथं नु दिनसङ्गः स्यादन्योन्यमवदन्सुराः । तेषामेव समेतानां यज्ञव्युच्छित्तिशङ्किनाम् ।।४७
देवानां वचनं श्रुत्वा प्राह देवः प्रजापतिः । तेजः परं तेजसैव तपसा च तपस्तथा ।।४८
प्रशाम्यत्यमरास्तस्माच्छृणुध्वं वचनं मम । पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः ।।४९
तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्यानां भवतां यथा । तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम् ।।५०
प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया

पुत्र उवाच

तैः सा प्रसादिता गत्वा प्राहेष्टं व्रियतामिति ।।५१
अयाचन्त दिनं देवा भवत्विति यथा पुरा

अनसूयोवाच

पतिव्रताया माहात्म्यं न हीयेत कथं त्विति ।।५२
सम्मान्य तां तथा साध्वीं तथा प्रेष्याम्यहं सुरा । यथा पुनरहोरात्रसंस्थानमुपजायते ।।५३
यथा च तस्याः स पतिर्न शापान्नाशमेष्यति

अर्थात् जो दुरात्मा नित्य नैमित्तिक समस्त क्रियाएँ हमारे उद्देशय से अर्पण नहीं करते और लोभी होकर यज्ञभाग को स्वयं भोजन करते हैं, हम उनका नाश करने के लिये जल, अग्नि, सूर्य, वायु ।४३। और पृथ्वी को दूषित करते हैं और दुष्टजलादि भोग करने से उन अपकारी पापात्माओं के ।४४। विनाशसूचक दारुण रोग प्रवर्त्तित होते हैं और जो मनुष्य हमको तृप्त करके शेषमात्र स्वयं भोजन करते हैं ।४५। हम उन महात्माओं को समस्त पुण्यमय स्थान देते हैं, इस समय तो उनका कुछ भी उपस्थित नहीं है, न कोई उपाय विदित है ।४६। किन्तु किस प्रकार से दग्ध सृष्टि का स्थापन हो और किस प्रकार से दिन की सृष्टि हो देवता आपस में इस प्रकार कहने लगे । यज्ञविनाश की शंका करने वाले सब ।४७। देवताओं के इस प्रकार वचन सुनकर देवताओं में श्रेष्ठ प्रजापति ब्रह्माजी ने कहा ।४८। हे अमरगण ! देखो, तेज से परम तेज और तप से तप का विनाश होता है, अत एव मेरा वचन सुनो, देखो—पतिव्रता के माहात्म्य से सूर्य उदय नहीं होता है, सूर्य के उदय न होने से तुम्हारी और मनुष्यों की अत्यन्त हानि होती है, इस कारण तुम यदि सूर्योदय होने की अभिलाषा करते हो तो एक मात्र पतिव्रता तपस्विनी अत्रिमुनि की पत्नी अनसूया को ।४९-५०। सूर्य के उदय की कामना से प्रसन्न करो ।

पुत्र ने कहा—अनन्तर जब देवताओं ने जाकर उनको प्रसन्न किया, तब वह इनके द्वारा प्रसन्न होकर बोली "तुम अभिलषित विषय की प्रार्थना करो" ।५१। देवताओं ने यह प्रार्थना की कि, "पहले के समान दिन हो अर्थात् सूर्य निकले' ।

अनसूया ने कहा—पतिव्रता की महिमा कभी हीन होने वाली नहीं है ।५२। हे देवताओं में श्रेष्ठ ! उस पतिव्रता का वैसा सन्मान करके भेजूँगी, जिस प्रकार फिर दिनरात की स्थिति हो जाय ।५३। और जिस प्रकार से उसका वह पति शाप के कारण नाश को प्राप्त न हो सो करूँगी ।

पुत्र उवाच

एवमुक्त्वा सुरांस्तस्या गत्वा सा मन्दिरं शुभा ॥५४
उवाच कुशलं पृष्टा धर्मं भर्तुस्तथात्मनः । कच्चिन्नंदसि कल्याणि स्वभर्तुः सुखदायिनी ॥५५
कच्चिच्चाखिलदेवेभ्यो मन्यसे ह्यधिकं पतिम् । भर्तुः शुश्रूषणादेव मया प्राप्तं महत्फलम् ॥५६
सर्वकामफलावाप्तिः पत्युः शुश्रूषणात्स्त्रियाः । पञ्चर्णानि मनुष्येण साध्वि देयानि सर्वदा ॥५७
तथात्मवर्णधर्मेण कर्तव्यो धनसञ्चयः । प्राप्तश्चार्थस्तथा पात्रे विनियोज्यो विधानतः ॥५८
सत्यार्जवतपोदानदयायुक्तो भवेत्सदा । क्रिया च शास्त्रनिर्दिष्टा रागद्वेषविवर्जिता ॥५९
कर्त्तव्याहरहः श्रद्धा पुरस्कारेण शक्तितः । स्वजातिविहितानेवं लोकान्प्राप्नोति मानवः ॥६०
क्लेशेन महता साध्वि प्राजापत्यादिकान्क्रमात् । स्त्रियश्चैवं समस्तस्य नरैर्दुःखार्जितस्य वै ॥६१
पुण्यस्यार्द्धापहारिण्यः पतिशुश्रूषयैव हि । नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम् ॥६२
भर्तुः शुश्रूषयैवैता लोकानिष्टाञ्जयन्ति हि । तस्मात्साध्वि महाभागे पतिशुश्रूषणं प्रति ॥
त्वया मतिः सदा कार्या यतो भर्त्ता परा गतिः ॥६३

यद्देवेभ्यो यच्च पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियां च ।
तस्यार्द्धं वै केवलानन्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ॥६४

पुत्र उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिपूज्य तदादरात् । प्रत्युवाचात्रिपत्नीं तामनसूयामिदं वचः ॥६५

पुत्र ने कहा—अनसूया इस प्रकार देवताओं से कह उसके मन्दिर को गई ।५४। और उसकी तथा उसके स्वामी की धर्मविषयक कुशल पूछी कि, हे कल्याणी ! हे भर्ता की सुख देनेवाली ! तुम स्वामी का मुख देखने से आह्लादित तो होती हो ।५५। और सब देवताओं की अपेक्षा स्वामी को श्रेष्ठ तो जानती हो मैं केवलमात्र भर्त्ता की शुश्रूषासे ही महाफल को प्राप्त हूँ ।५६। स्त्री की सब कामना पति की शूश्रूषा से ही सफल होती है, हे साध्वि ! मनुष्य को पाँच ऋण सर्वदा देने योग्य हैं । अपने वर्ण के धर्मानुसार धनसंचय करें और वह संचित धन विधानानुसार उपयुक्त पात्र में दान करें ।५७-५८। और सदा सत्य, सरलता, तप, दान और दयापरायण हों, तथा प्रतिदिन श्रद्धासहित राग और द्वेषरहित ।५९। यथाशक्ति समस्त शास्त्रोक्त क्रिया का अनुष्ठान करें, पुरुष इस प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार स्वजातिविहित समस्त लोकों को प्राप्त होते हैं ।६०। और महाक्लेश से क्रमशः प्राजापत्यादि पवित्र धाम में जाने को समर्थ होते हैं, किन्तु स्त्रियाँ केवल पति की सेवा से ही मनुष्य के दुःखोपार्जित इस सब पुण्य में से अर्धांश को प्राप्त होती हैं, स्त्रियों के पक्ष में यज्ञ श्राद्ध अथवा उपवास का कोई पृथक् विधान नहीं है ।६१-६२। वह केवलमात्र स्वामी की शुश्रूषा से ही समस्त अभिलषित लोकों में जाने को समर्थ हैं, इस कारण हे साध्वि, हे महाभागे ! तुम स्वामी की शुश्रूषा में सदा यत्नवती होओ । क्योंकि स्वामी ही स्त्री की परम गति है ।६३। देखो—पुरुष, देवता, पितर अथवा अतिथिगणों के प्रति सत्क्रियानुसार जो पूजादि प्रदान करते हैं, अनन्यमन की स्त्री केवलमात्र स्वामी की शुश्रूषा से ही उसका अर्धांश भोग करती है ।६४

पुत्र बोला—अत्रिपत्नी अनसूया के यह वचन सुन द्विजरमणी ने आदरसहित उसकी पूजा करके कहा ।६५। हे स्वभावशुभदायिनी ! अब मैं धन्य और अनुगृहीत हुई, देवताओं ने भी आज मेरे ऊपर

धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि देवस्याप्यवलोकतः । यन्मे प्रकृतिकल्याणि श्रद्धां वर्धयसे पुनः ॥६६
जानाम्येतन्न नारीणां कच्चित्पतिसमागतिः । तत्प्रीतिश्चोपकाराय इह लोके परत्र च ॥६७
पतिप्रसादादिह च प्रेत्य चैव यशस्विनी । नारी सुखमवाप्नोति नार्या भर्त्ता हि दैवतम् ॥६८
सा त्वं ब्रूहि महाभागे प्राप्ताया मम मन्दिरम् । आर्यायाः किं नु कर्त्तव्यं मयार्येणाप वा शुभे ॥६९

अनसूयोवाच

एते देवाः सहेन्द्रेण मामुपागम्य दुःखिताः । त्वद्वाक्यापास्तसत्कर्मदिननक्तनिरूपणाः ॥७०
याचन्तेऽहर्निशासंस्थां यथावदविखण्डिताम् । अहं तदर्थमायाता शृणु चैतद्वचो मम ॥७१
दिनाभावात्समस्तानामभावो यागकर्मणाम् । तदभावात्सुराः पुष्टिं नोपयान्ति तपस्विनि ॥७२
अह्नश्चैव समुच्छेदादुच्छेदः सर्वकर्मणाम् । तदुच्छेदादनावृष्ट्या जगदुच्छेदमेष्यति ॥७३
तत्त्वमिच्छसि धैर्येण जगदुद्धर्त्तुमापदः । प्रसीद साध्वि लोकानां पूर्ववद्वर्त्ततां रविः ॥७४

ब्राह्मण्युवाच

माण्डव्येन महाभागे शप्तो भर्त्ता ममेश्वरः । सूर्योदये विनाशं त्वं प्राप्स्यसीत्यतिमन्युना ॥७५

अनसूयोवाच

यदि ते रोचते भद्रे ततस्तद्वचनादहम् । करोमि पूर्ववद्देहं भर्त्तारं वचनात्तव ॥७६

दृष्टिपात की, क्योंकि तुमने आज फिर मेरी स्वामी के प्रति श्रद्धा बढ़ा दी ।६६। मैंने जाना कि, स्त्री की पति के समान और दूसरी गति नहीं है, उनके प्रसन्न होने से इस लोक और परलोक में उपकार होता है ।६७। हे यशस्विनी ! पति के प्रसाद से ही स्त्रियाँ इस लोक और परलोक में सुख भोगती हैं, क्योंकि भर्त्ता ही एकमात्र स्त्रियों का देवता है ।६८। हे महाभागे ! हे शुभे ! मानिनी ने जब आप ही मेरे स्थान में आगमन किया है, तब मुझको वा मेरे स्वामी को क्या करना चाहिये ? इस विषय में अनुमति दो ।६९

अनसूया ने कहा—हे साध्वि ! तुम्हारे वचनानुसार ही दिन रात्रि का भेद मिट जाने से समस्त सत्क्रिया नष्ट हो गई हैं, इस कारण यह देवता अत्यन्त दुःखी होकर देवराज इन्द्र के सहित मेरे निकट आये ।७०। पूर्व के समान अखण्डित दिन रात के होने की प्रार्थना करते हैं, मैं इसलिये तुम्हारे पास आई हूँ मेरा वचन सुनो ।७१। हे तपस्विनी ! दिन के अभाव में समस्त योगकर्म का अभाव हुआ है और यज्ञ के न होने से देवताओं की पुष्टि नहीं होती ।७२। दिन के न होने से सब कर्म नष्ट हो गये हैं और कर्मों के नष्ट होने से अनावृष्टि हो गई है जिससे कि, सब जगत् नष्ट होना चाहता है ।७३। ऐसी आपदा से जगत् को रक्षित करने की यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हे साध्वि ! लोगों पर प्रसन्न होओ, और सूर्यदेव भी पहले के समान उदित हों ।७४

ब्राह्मणी ने कहा—हे महाभागे ! मांडव्य मुनि ने अत्यन्त क्रोधित होकर मेरे भर्त्ता को इस प्रकार शाप दिया है कि, "सूर्य उदय होते ही तेरा पति मर जायगा" ।७५

अनसूया बोली—हे कल्याणी ! यदि तुम्हारी अभिलाषा हो तो मैं तुम्हारे स्वामी की देह पूर्ववत्

मयापि सर्वथा स्त्रीणां माहात्म्यं वरवर्णिनी । पतिव्रतानामाराध्यमिति सम्मानयामि ते ।।७७

पुत्र उवाच

तथेत्युक्ते तथा सूर्यमाजुहाव तपस्विनी । अनसूयार्घ्यमुद्यम्य दशार्धरात्रे तदा निशि ।।७८
ततो विवस्वान्भगवान्फुल्लपद्मारुणाकृतिः । शैलाधिराजमुदयमारुरोहोरुमण्डलः ।।७९
समनन्तरमेवास्या भर्त्ता प्राणैर्व्ययुज्यत । पपात च महीपृष्ठे पतन्तं जगृहे च सा ।।८०

अनसूयोवाच

न विषादस्त्वया भद्रे कर्तव्यः पश्य मे बलम् । पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किं चिरेण मे ।।८१
तथा भर्तृसमं नान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित् । रूपतः शीलतो बुद्ध्या वाङ्माधुर्यादिभूषणैः ।।८२
तेन सत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा । प्राप्तोऽनुजीवितं भार्यासहायः शरदां शतम् ।।८३
यथा भर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतम् । तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः ।।८४
कर्मणा मनसा वाचा भर्तुराराधनं प्रति । यथा ममोद्यमो नित्यं तथायं जीवताद्द्विजः ।।८५

पुत्र उवाच

ततो विप्रः समुत्तस्थौ व्याधिमुक्तः पुनर्युवा । स्वाभाभिर्भासयन्वेश्म वृन्दारक इवाजरः ।।८६
ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिर्देववाद्यानि सस्वनुः । लेभिरे च मुदं देवा अनसूयामथाब्रुवन् ।।८७

करूँगी ।७६। हे वरवर्णिनी ! पतिव्रता स्त्री की महिमा सम्यक् प्रकार मुझको आराधनीय है अत एव मैं तुम्हारा सन्मान करूँगी ।७७

पुत्र ने कहा—ब्राह्मणी के "तथास्तु" कहने पर तपस्विनी अनसूया ने अर्घ्य उद्यत करके जब सूर्यदेव का आवाहान किया, तब दश दिन क्रमागत रात्रि थी, अर्थात् उस समयतक दश रात्रियों का प्रमाण बीत गया था ।७८। अनन्तर प्रफुल्ल कमल के समान लालवर्ण उरुमण्डल भगवान् विवस्वान् ने जैसे ही उदयाचल में आरोहण किया ।७९। इसी बीच में उसके भर्ता ब्राह्मण का प्राण नष्ट हुआ और वह जैसे ही पृथ्वी में गिरा, द्विजरमणी ने उसी समय उसको पकड़ लिया ।८०

अनसूया बोली—हे भद्रे ! तुम विषाद मत करो, मैंने केवल मात्र पति की सेवा से जो तपोबल प्राप्त किया है, वह तुम्हें अभी दिखा दूँगी ।८१। रूप, शील, बुद्धि, वाक्य और मधुरता इत्यादि सद्गुणों के द्वारा कभी किसी पुरुष को यदि स्वामी के समान नहीं जानती हूँ ।८२। तो उसी सत्य के बल से यह ब्राह्मण व्याधिमुक्त और युवा हो, फिर जीवन प्राप्त कर पत्नी के सहित सौ वर्ष जीवित रहे ।८३। मैं यदि अन्य देवता को स्वामी के समान नहीं जानती हूँ, तो इसी सत्य से यह ब्राह्मण रोग रहित होकर फिर जीवित हो ।८४। और काय, मन, वचन से स्वामी की आराधना में यदि नित्य मेरा उद्यम है तो यह द्विजवर जीवित हो ।८५

पुत्र ने कहा—अनन्तर वह ब्राह्मण व्याधि से छूटकर युवा कलेवर हो अजर-अमर के समान देह की प्रभा से घर को प्रकाशमान करता हुआ उठ खड़ा हुआ ।८६। और पुष्पवृष्टि तथा देवताओं के बाजों की ध्वनि होने लगी, फिर देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अनसूया से कहा ।८७

देवा ऊचुः

वरं वृणीष्व कल्याणि देवकार्यं महत्कृतम् । आदित्योदयसद्भावाद्वरं वरय सुव्रते ॥८८
त्वया यस्मात्ततो देवा वरदास्ते तपस्विनि ॥

अनसूयोवाच

यदि देवाः प्रसन्ना मे पितामहपुरोगमाः ॥८९
वरदा वरयोग्या च यद्यहं भवतां मता । तद्यान्तु मम पुत्रत्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥९०
योगं च प्राप्नुयां भर्तृसहिता क्लेशमुक्तये ॥

पुत्र उवाच

एवमस्त्विति देवास्तां ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥९१
उक्त्वा जग्मुर्यथान्यायमनुमान्य तपस्विनीम् । ततः काले बहुतिथे द्वितीयो ब्रह्मणः सुतः ॥९२
स्वभार्यां भगवानत्रिरनसूयामपश्यत । ऋतुस्नातां सुचार्वङ्गीं लोभनीयतमाकृतिम् ॥९३
सकामो मनसा भेजे स मुनिस्तामनिन्दिताम् । तस्याभिपश्यतस्तां तु विकारो योऽभ्यजायत ॥९४
तमपोवाहपवनस्तिर्यगूर्ध्वं च वेगवान् । ब्रह्मरूपं च शुक्लाभं पतमानं समन्ततः ॥९५
सोमरूपं रजोरूपं दिशस्तं जगृहुर्दश । स सोमो मानसो जज्ञे तस्यामत्रेः प्रजापतेः ॥९६
पुत्रः समस्ततत्त्वानामायुराधार एव च । तुष्टेन विष्णुना जज्ञे दत्तात्रेयो महात्मना ।९७

देवता बोले—हे कल्याणी ! तुमने देवताओं का बड़ा कार्य संपादन किया है अत एव वर ग्रहण करो । हे सुव्रते ! सूर्य उदय के कारण तुम वर मांगो ।८८। हे तपस्विनी ! देवता तुमको वर देने के लिए उद्यत हुए हैं ।

अनसूया बोली—हे पितामह इत्यादि देवताओं ! आप यदि मेरे प्रति प्रसन्न होकर वर देने के अभिलाषी हुए हैं और मुझको वर देने के योग्य विचारा है, तो यह वर दो जिससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर मेरे पुत्र रूप में जन्म ग्रहण करें ।८९-९०। और मैं स्वामी के सहित क्लेशमुक्ति के निमित्त योग को प्राप्त होऊँ ।

पुत्र नें कहा—तब ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादिदेवता "तथास्तु" कहकर ।९१। उस तपस्विनी का यथाविधि सन्मान करके चले गये । फिर कुछ काल बीतने पर ब्रह्मा जी के दूसरे पुत्र ।९२। भगवान् अत्रि ने एक दिन सर्वांगसुन्दरी मनोहर मूर्त्ति अपनी पत्नी को ऋतु से निवृत्त होकर स्नान किये देख ।९३। काम के वशीभूत हो मन में उस अनिन्दिता की भजन की । उसके संग मन में संभोग करने से मुनिवर का जो तेज स्खलित हुआ था ।९४। वेगवान् पवन ने उस तेज को वहन करके ऊर्ध्व में और तिर्यक् भाव में प्रवाहित किया, ब्रह्मतेजसम्पन्न शुक्ल कान्ति रजोगुणस्वरूप उस तेज ने गिरने के समय चन्द्ररूप से दशों दिशाओं का आश्रय किया, समस्त प्राणियों के जीवनाधार उन्हीं सोम अर्थात् ब्रह्मरूपी चन्द्र ने प्रजापति अत्रि के मानस पुत्र रूप में अनसूया से जन्म ग्रहण किया था ।९५-९६। यह सब तत्वों की आयु और आधार है महात्मा विष्णु ने भी अत्यंन्त संतुष्ट होकर अपना अंशप्रदानपूर्वक सत्त्वगुणावलम्बी द्विजोत्तम

स्वशरीरात्समुत्पन्नः सत्त्वोद्रिक्तो द्विजोत्तमः । दत्तात्रेय इति ख्यातः सोऽनसूयास्तनं पपौ ॥९८
विष्णुरेवावतीर्णोऽसौ द्वितीयोऽत्रेः सुतोऽभवत् । सप्ताहात्प्रच्युतो मातुरुदरात्कुपितो यतः ॥९९
हैहयेन्द्रमुपावृत्तमपराध्यन्तमुद्धतम् । दृष्ट्वात्रौ कुपितः सद्यो दग्धुकामः सहैहयम् ॥१००
गर्भवासमहायासदुःखामर्षसमन्वितः । दुर्वासास्तमसा युक्तो रुद्रांशः सोऽभ्यजायत ॥१०१
इति पुत्रत्रयं तस्या जज्ञे ब्रह्मेशवैष्णवम् । सोमो ब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोऽभ्यजायत ॥१०२
दुर्वासाः शङ्करो जज्ञे वरदानाद्दिवौकसाम् । सोमः स्वरश्मिभिः शीतैर्वीरुदौषधिमानवान् ॥१०३
आप्याययन्सदा स्वर्गे वर्त्तते स प्रजापतिः । दत्तात्रेयः प्रजाः पाति दुष्टदैत्यनिबर्हणात् ॥१०४
शिष्टानुग्रहकृद्योगी ज्ञेयश्चांशः स वैष्णवः । निर्दहत्यवमन्तारं दुर्वासा भगवानजः ॥१०५
रौद्रभावं समाश्रित्य दृङ्मनोवाग्भिरुद्धतः । सोमत्वं भगवानत्रिः पुनश्चक्रे प्रजापतिः ॥१०६
दत्तात्रेयोऽपि विषयान्योगस्थो ददृशे हरिः । दुर्वासाः पितरं त्यक्त्वा मातरं चोत्तमं व्रतम् ॥१०७
उन्मत्ताख्यं समाश्रित्य परिबभ्राम मेदिनीम् । मुनिपुत्रवृतो योगी दत्तात्रेयोऽप्यसङ्गिताम् ॥१०८
अभीप्समानः सरसि निममज्ज चिरं विभुः । तथापि तं महात्मानमतीव प्रियदर्शनम् ॥१०९
तत्यजुर्न कुमारास्ते सरसस्तीरसंश्रयाः । दिव्ये वर्षशते पूर्णे यदा तेन त्यजन्ति तम् ॥११०
तत्प्रीत्या सरसस्तीरं सर्वे मुनिकुमारकाः । ततो दिव्याम्बरधरां सुरूपां सुनितम्बिनीम् ॥१११

दत्तात्रेय के नाम से जन्म ग्रहण किया है, विष्णु ने दत्तात्रेय के नाम से प्रसिद्ध होकर अनसूया का स्तन पिया था।९७-९८। यही अत्रि के दूसरे विष्णुरूप पुत्र हैं, जो क्रोध के कारण माता के उदर से सात दिन में ही जन्मे थे।९९। उन्मार्गगामी हैहयाधिपति के उद्धत स्वभाव से अत्रिमुनि का अपमान रूप अपराध करने से, वह यह देख कुपित हो हैहय को दग्ध करने के निमित्त।१००। गर्भवासरूप महाक्लेश और दुःख से अमर्षयुक्त हो तमोगुणप्रधान रुद्र के अंश से श्रीदुर्वासा जी का जन्म हुआ।१०१। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इन तीनों ने अनसूया के पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया, ब्रह्मा ने चन्द्र रूप में, विष्णु ने दत्तात्रेय रूप में।१०२। और महादेव ने दुर्वासा रूप में देवताओं के वरदान से जन्म ग्रहण किया था। वह प्रजापति सोम अर्थात् चंद्रमा अपनी शीतल किरणों के द्वारा लता, औषधि और मनुष्यों को।१०३। तृप्त करके स्वर्गधाम में सदा वर्त्तमान रहते हैं और विष्णु के अंश से उत्पन्न दत्तात्रेय जी दुष्टदैत्यों का विनाश।१०४। और साधु वैष्णवों के प्रति अनुग्रह प्रकट करते हुए प्रजापालन में तत्पर हुए और भगवान् अज दुर्वासा।१०५। रुद्रसंबंधी शरीर अवलम्बन करके नेत्र, मन और वचन द्वारा उद्धत हो अपमान करने वाले दुष्टों का विनाश करने लगे, इसके बाद भगवान् अत्रि ने चन्द्रमा को सोमत्व का पद देकर प्रजापति किया।१०६। विष्णु के अंश से उत्पन्न दत्तात्रेय जी योग अवलम्ब में विषयभोग और दुर्वासा मातापिता को छोड़कर उत्तम व्रत।१०७। अवलम्बन करके उन्मत्तभाव से पृथ्वी में विचरण करने लगे। जो कि, दत्तात्रेय परमयोगी थे, इस कारण मुनिपुत्रगण सदा ही इनको घेरे रहते।१०८। वह उनके छोड़ने की अभिलाषा से सरोवर में बहुत दिनों तक निमग्न रहते तथापि वह अत्यन्त प्रियदर्शन और महात्मा थे।१०९। इस कारण मुनिकुमारों ने उनको नहीं छोड़ा और उसी सरोवर के तट पर वास करने लगे इस प्रकार दिव्य शतवर्ष बीत जाने पर भी खड़े रहे।११०। जब उनके प्रति प्रीति से सब मुनिकुमारों ने उनको नहीं छोड़ा तब दिव्य वस्त्र धारण किये स्वरूपवान् नितम्बिनी।१११। कल्याणी एक स्त्री को

नारीमादाय कल्याणीमुत्ततार जलान्मुनिः। स्त्रीसन्निकर्षिणं ह्येते परित्यक्ष्यन्ति मामिति ।।११२
मुनिपुत्रास्ततो योगे स्थास्यामीति विचिन्तयन्। तथापि ते मुनिसुता न त्यजन्ति यदा मुनिम् ।।११३
ततः सह तया नार्या मद्यपानमथाकरोत् । सुरापानरतं तेन सभार्यं तत्यजुस्ततः ।।११४
गीतवाद्यादिवनिताभोगसंसर्गदूषितम् । मन्यमाना महात्मानं तया सह बहिष्क्रियम् ।।११५
नावाप दोषं योगीशो वारुणीं स पिबन्नपि । अन्तावसायिवेश्मान्तर्मातरिश्वा स्पृशन्निव ।।११६
सुरां पिबन्सपत्नीकस्तपस्तेपे स योगवित्। योगीश्वरश्चिंत्यमानो योगिभिर्मुक्तिकांक्षिभिः ।।११७
कस्यचित्त्वथ कालस्य कार्त्तवीर्योऽर्जुनो बली। कृतवीर्ये दिवं याते मन्त्रिभिः सपुरोहितैः ।।११८
पौरैश्चात्माभिषेकार्थं समाहूतोऽब्रवीदिदम्। नाहं राज्यं करिष्यामि मन्त्रिणो नरकोत्तरम् ।।११९
यदर्थं गृह्यते शुल्कं तदनिष्पादयन्वृथा । पण्यानां द्वादशं भागं भूपालाय वणिग्जनः ।।१२०
दत्त्वात्मरक्षिभिर्मार्गे रक्षितो याति दस्युतः । गोपाश्च घृततक्रादेः षड्भागं च कृषीवलाः ।।१२१
दत्त्वान्यद्भूभुजेर्दद्युर्यदि भागं ततोऽधिकम् । पण्यादीनामशेषाणां वणिजो गृह्णतस्ततः ।।१२२
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदनां चैव साधनम् । आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ।।१२३
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमर्थिभ्यः पूर्त्तमित्यभिधीयते ।।१२४
इष्टापूर्त्तविनाशाय तद्राज्ञश्चोरकर्मिणः । यदन्यैः पाल्यते लोकस्तद्वृत्त्यन्तरसंश्रितः ।।१२५

संग लेकर मुनिवर दत्तात्रेय जी जल से अवतीर्ण हुए फिर विचारा कि मैं स्त्री के निकट स्थिति करता हूँ, ऐसा समझ कर यह मुझको छोड़ देंगे।११२। और मैं भी निःसंग होने पर योगपरायण हो अकेला रहूँगा, किन्तु तो भी जब मुनिकुमारों ने इनको नहीं छोड़ा।११३। तब वह उस कामिनी के संग मद्यपान करने लगे और विचारा कि—"भार्या के सहित मद्यपान में रत जानकर छोड़ देंगे"।११४। किन्तु तोभी उन मुनिकुमारों ने गीत वाद्यादि रमणीसंभोग और उनके संसर्ग से दूषित विक्रियायुक्त मुनि को महात्मा जानकर नहीं छोड़ा।११५। वह योगीश्वर दत्तात्रेय वारुणी पान करके भी चाण्डाल के घर में स्थित वायु के समान दूषित नहीं हुए।११६। जो हो वह योगवित् योगीश्वर दत्तात्रेय जी पत्नी के सहित सुरापान में रत हुए तपस्या करने लगे। इस पर भी यह मुमुक्षु योगिजनों के चिन्तनीयं हुए थे।११७। बलवान् कार्त्तवीर्य के स्वर्ग जाने के बाद कुछ काल बीतने पर पुरवासी, मंत्री और पुरोहितों ने एकत्रित होकर उसके पुत्र अर्जुन को स्वीय राज्य में अभिषिक्त करने के लिये बुलाया, उसने उनके द्वारा बुलाये जाकर यह कहा—हे मंत्रिगण ! मैं राज्य नहीं करूँगा, क्योंकि राज्य का परिणाम नरकभोग है।११८-११९। देखो, इसीलिये कर ग्रहण किया जाता है जिसका लेना बड़ा दुर्घट है, वैश्यगण व्यापारी वस्तु का बारहवां भाग राजा को।१२०। देकर रक्षकों के द्वारा चोरों के भय से रक्षित होकर जाते आते है, गोपालक घृत तक्रादि (माठादि) का छठा भाग और किसान भी सब धान्यों का छठा भाग।१२१। राजा को देकर यदि यह दूसरे को दें तो इनसे सब व्यापारी वस्तुओं का अधिक भाग लेना चाहिये।१२२। अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदों का साधन, अतिथि सत्कार, वैश्वदेव यह इष्ट कहाता है।१२३। बावली, कुए, सरोवर, देवताओं के स्थान बनवाना और अतिथियों को दान देना, पूर्त्त कहाता है।१२४। चौरकर्मा अर्थात् अधिक कर लेने वाले राजा को इष्टापूर्त्त का नाशक कहा जाता है, जो अन्य वृत्ति को प्राप्त कर दूसरों से प्रजा पालन कराता

गृह्णतो बलिषड्भागं नृपतेर्नरको ध्रुवम् । निरूपितमिदं राज्ञः पूर्वे रक्षणवेतनम् ।।१२६
अरक्षंश्चोरतश्चोरस्तद्धनं नृपतेर्भवेत् । तस्माद्यदि तपस्तप्त्वा प्राप्तो योगित्वमीप्सितम् ।।१२७
भुवः पालनसामर्थ्ययुक्त एको महीपतिः । पृथिव्यामस्त्रभृन्नाद्याप्यहमेवर्द्धिसंयुतः ।।१२८
ततो भविष्ये नात्मानं करिष्ये पापभागिनम् । तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा मन्त्रिमध्यस्थितोऽब्रवीत् ।।१२९
गर्गो नाम महाबुद्धिर्मुनिर्भूपवयोतिगः । भक्त्या तु कृपयाविष्टस्तं तोषयितुमर्हति ।।१३०
यद्येवं कर्त्तुकामस्त्वं राज्यं सम्यक्प्रशासितुम् । ततः शृणुष्व मे वाक्यं कुरुष्व च नृपात्मज ।।१३१
दत्तात्रेयं महात्मानं सह्यद्रोणीकृताश्रमम् । तमाराधय भूपाल पाति यो भुवनत्रयम् ।।१३२
योगयुक्तं महात्मानं सर्वत्र समदर्शिनम् । विष्णोरंशं जगद्धातुरवतीर्णं धरातले ।।१३३
यमाराध्य सहस्राक्षः प्राप्तवान्पदमात्मनः । हृतं दुरात्मभिर्दैत्यैर्जघान च दितेः सुतान् ।।१३४

अर्जुन उवाच

कथमाराधितो देवैर्दत्तात्रेयः प्रतापवान् । कथं वापहृतं दैत्यैरिन्द्रत्वं प्राप वासवः ।।१३५

गर्ग उवाच

दैत्यानां देवतानां च युद्धमासीत्सुदारुणम् । दैत्यानामीश्वरे जम्भे देवानां च शचीपतौ ।।१३६

है ।१२५। और छठा भाग लेता है, वह राजा निःसन्देह नरक को जाता है, पूर्वकाल में पण्डितों ने प्रजा की रक्षा करने के लिये ही राजा का वेतनस्वरूप छठा भाग निरूपण किया है ।१२६। राजा उसको ग्रहण करके यदि रीति के अनुसार प्रजा की रक्षा न करे तो चोरी करना हुआ, और इस कारण वह चोरी के पाप में पापी होता है, अत एव यदि तपस्या करके योगित्व लाभ कर सकूँ ।१२७। और पृथ्वी में शस्त्रधारी मान्य तथा पृथ्वी का पालन करने में सामर्थ्ययुक्त होकर एक मात्र नरपति हो सकूँ तभी मैं इस प्रकार ऋद्धिमान् होकर राज्य करूँगा ।१२८। नहीं तो वृथा आत्मा को पापभागी करने की इच्छा नहीं करता इस प्रकार अर्जुन का निश्चय जान मंत्रियों के बीच में बैठे हुए ।१२९। बुद्धिमान् बड़ी आयु वाले मुनियों में श्रेष्ठ गर्ग नामक एक मुनि भक्ति और कृपापूर्वक राजा को प्रसन्न करते हुए कहने लगे ।१३०। हे राजकुमार ! जो आपको सम्यक् प्रकार राज्यशासन करने की इच्छा हो तो जो मैं कहता हूँ, वह सुनो और उसे करो ।१३१। अर्थात् सहस्रादि पर्वत पर आश्रम बनाकर स्थित तीनों भुवन के पालन करने वाले महात्मा दत्तात्रेय जी की आरधना करो ।१३२। जो परमयोगी, महाभाग और सर्वत्र समदर्शी हैं, जो जगत् की रक्षा करने के लिये विष्णु के अंश से जन्म ग्रहण करके पृथ्वीतल में अवतीर्ण हुए हैं ।१३३। और जिनकी आराधना करके सहस्रनयन इन्द्र दैत्यों को मारकर दैत्यों से हरण किये अपने पद को प्राप्त हुए हैं ।१३४

अर्जुन ने कहा—किस प्रकार देवताओं ने प्रतापी दत्तात्रेय जी की आराधना की थी और इन्द्र भी किस प्रकार से दैत्यों से हारे हुए अपने पद को प्राप्त हुए थे ।१३५

गर्ग जी बोले—किसी समय देवता और असुरों का भयंकर युद्ध हुआ, तब जम्भ दैत्यों का अधिपति और शचीपति इन्द्र देवताओं के अधिनायक हुए थे ।१३६। इस प्रकार युद्ध करने में दिव्य संवत्सर बीत

तेषां तु युध्यमानानां दिव्यः सम्वत्सरो गतः। ततो देवाः पराभूता दैत्याविजयिनोऽभवन् ॥१३७
विप्रचित्तिमुखैर्देवा दानवैस्ते पराजिताः। पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहा द्विषज्जये ॥१३८
बृहस्पतिमुपागम्य दैत्यसैन्यवधेप्सवः। अमन्त्रयन्त सहिता वालखिल्यैः सहर्षिभिः ॥१३९

बृहस्पतिरुवाच

दत्तात्रेयं महाभागमत्रेः पुत्रं तपोधनम्। विकृताचरणं भक्त्या सन्तोषयितुमर्हथ ॥१४०
स वो दैत्यविनाशाय वरदो दास्यते वरम्। ततो हनिष्यथ सुराःसहितान्दैत्यदानवान् ॥१४१

गर्ग उवाच

हन्तुं शक्ता न सन्देहो दत्तात्रेयप्रसादतः। इत्युक्तास्ते तदा जग्मुर्दत्तात्रेयाश्रमं सुराः ॥१४२
ददृशुश्च महात्मानं क्षान्तं लक्ष्म्या समन्वितम्। उद्गीयमानं गन्धर्वैः सुरापानरतं मुनिम् ॥१४३
ते तस्य गत्वा प्रणतिं चक्रुः सर्वार्थसाधनीम्। भक्त्यान्तं तस्योपजह्रुश्च मद्यपस्य सुरादिकम् ॥१४४
तिष्ठन्तमनुतिष्ठन्ति यान्तं यान्ति दिवौकसः। आराधयामासुरधः स्थितास्तिष्ठन्तमासने ॥१४५
स प्राह देवान्प्रणतान्दत्तात्रेयः किमिष्यते। मत्तो भवद्भिर्येनेयं शुश्रूषा क्रियते मम ॥१४६

देवा ऊचुः

दानवैर्मुनिशार्दूल जम्भाद्यैर्भूर्भुवादिकम्। हृतं त्रैलोक्यमाक्रम्य क्रतुभागाश्च कृत्स्नशः ॥१४७

गया तदनन्तर युद्ध में देवताओं की हार और दैत्यों की जीत हुई।१३७। अनन्तर देवतागण विप्रचित्ति इत्यादि प्रधान-प्रधान दानवों से हारकर इधर-उधर भागने लगे और शत्रुओं के जीतने में निरुत्साह हो।१३८। दैत्यसेना के वध करने की इच्छा से बृहस्पति के निकट जाकर वालखिल्य ऋषियों के सहित मंत्रणा (परामर्श) करने लगे।१३९

बृहस्पति जी बोले—हे देवताओं! तुम भक्तिसहित तपोधन महात्मा विकृताचारी अर्थात् जिनका आचरण अच्छा नहीं है, अत्रिपुत्र दत्तात्रेय को संतुष्ट करने की चेष्टा करो।१४०। वह वरद संतुष्ट होकर दैत्यों का नाश करने के निमित्त तुमको वर देंगे, तब तुम मिलकर दैत्य और दानवों को मार सकोगे।१४१

गर्ग जी बोले—देवता बृहस्पति जी के दत्तात्रेय के प्रसाद से तुम अवश्य दैत्यों को मार सकोगे, इस प्रकार कहने पर दत्तात्रेय जी के आश्रम में गये।१४२। और देखा कि वह महात्मा लक्ष्मी जी के सहित युक्त होकर सुरापान में रत हो रहे हैं और गंधर्वगण उनके निकट गान करते हैं।१४३। देवता उनके निकट जाकर प्रणामपूर्वक सब अर्थ सिद्ध करने वाली स्तुति करने लगे और उनको भक्ष्य भोज्य तथा माल्यादि लाने लगे।१४४। उनके बैठने पर ये भी बैठते और गमन करने पर ये भी गमन करते, इस प्रकार देवताओं ने उनके आसन के निम्न भाग में बैठकर मुनि की आराधना की थी।१४५। अनन्तर दत्तात्रेय जी ने प्रणत देवताओं से कहा तुम मेरे निकट क्या प्रार्थना करते हो, जिससे इस प्रकार मेरी सेवा कर रहे हो।१४६

देवता बोले—हे मुनिशार्दूल! जम्भ इत्यादि दानवों ने हमको आक्रमण करके भूर्भुवादि तीनों लोक

तद्वधे कुरु बुद्धिं त्वं परित्राणाय नोऽनघ । त्वत्प्रसादादभीप्सामः पुनः प्राप्तुं त्रिविष्टपम् ॥१४८

दत्तात्रेय उवाच

मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टो न चैवाहं जितेन्द्रियः । कथमिच्छथ मत्तोऽपि देवाः शत्रुपराभवम् ॥१४९

देवा ऊचुः

अनघस्त्वं जगन्नाथ न लेपस्तव विद्यते । विद्याक्षालनशुद्धान्तर्निविष्टज्ञानदीधिते ॥१५०

दत्तात्रेय उवाच

सत्यमेतत्सुरा विद्या ममास्ति समदर्शिनः । अस्यास्तु योषितः सङ्गादहमुच्छिष्टतां गतः ॥१५१
स्त्रीसम्भोगोऽतिदुःखाय सातत्येनोपसेवितः । एवमुक्तास्ततो देवाः पुनर्वचनमब्रुवन् ॥१५२

देवा ऊचुः

अनघेयं मुनिश्रेष्ठ जगन्माता न दुष्यति । या सा विद्या तव विभो सर्वज्ञस्य हृदि स्थिता ॥१५३
यथांशुमाला सूर्यस्य द्विज चण्डालसङ्गिनी । न दुष्यति जगन्नाथ तथेयं वरवर्णिनी ॥१५४

गर्ग उवाच

एवमुक्तस्ततो देवैर्दत्तात्रेयोऽब्रवीदिदम् । प्रहस्य त्रिदशान्सर्वान्यद्येतद्भवतां मतम् ॥१५५
तदाहूयासुरान्सर्वान्युद्धाय सुरसत्तमाः । इहानयत मद्दृष्टिगोचरं मा विलम्ब्यताम् ॥१५६

और सब यज्ञभाग हरण किया है ।१४७। हे पापरहित ! आप उनके विनाश करने में मन लगाकर हमारी रक्षा कीजिये । आपके प्रसाद से हम फिर स्वर्ग को प्राप्त करें, यही हमारी अभिलाषा है ।१४८

दत्तात्रेय जी बोले—मैं मद्यपान में आसक्त, अजितेन्द्रिय और निरन्तर अपवित्र हूँ, हे देवताओं ! फिर तुम किस प्रकार से मेरे द्वारा शत्रुओं के जीतने की इच्छा करते हो ।१४९

देवता बोले—हे जगन्नाथ ! आपने विद्याप्रक्षालित पवित्र अन्तःकरण में ज्ञानरूपी किरणों का सन्निवेश किया है अत एव आप निष्पाप और किसी विषय में लिप्त नहीं हैं ।१५०

दत्तात्रेय जी बोले—हे देवताओं ! यथार्थ ही मुझमें विद्या है और मैं समदर्शी हूँ, किन्तु इस स्त्री के संसर्ग से अपवित्र हो गया हूँ ।१५१। क्योंकि उससे सेवित होकर स्त्रीसंसर्ग करने से यह अत्यन्त दोष की खानि स्वरूप है देवता इस प्रकार सुनकर फिर कहने लगे ।१५२

देवता बोले—हे अनघ ! हे मुनिश्रेष्ठ ! हे जगन्नाथ ! यह दूषित नहीं होती । हे विभो ! जो विद्या तुम सर्वज्ञ के हृदय में स्थित है ।१५३। हे जगन्नाथ ! जिस प्रकार सूर्य की किरणें ब्राह्मण और चाण्डालादि के संसर्ग से पवित्र वा दूषित नहीं होती इसी प्रकार यह जगन्माता भी आपके संसर्ग से दूषित नहीं है ।१५४

गर्ग जी बोले—मुनिवर दत्तात्रेय जी ने देवताओं का इस प्रकार वचन सुनकर कुछे हँसते हुए उनसे कहा हे त्रिदशगण ! यदि तुम्हारा मन ऐसा ही है ।१५५। तो हे सुरसत्तम ! तुम सब असुरों को युद्ध के निमित्त बुलाकर इस स्थान में मेरे दृष्टिगोचर करो, विलम्ब मत करो ।१५६। क्योंकि मेरी

मद्दृष्टिपातहुतभुक्प्रक्षीणबलतेजसः । येन नाशमशेषास्ते प्रयान्ति मम दर्शनात् ।।१५७

गर्ग उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवैर्दैत्या महाबलाः । आहवाय समाहूता जग्मुर्देवगणाश्रमम् ।।१५८
ते हन्यमाना दैतेयैर्देवाः सर्वे भयातुराः । दत्तात्रेयाश्रमं जग्मुः समस्ताः शरणार्थिनः ।।१५९
तमेव विविशुर्दैत्याः कालयन्तो दिवौकसः । ददृशुस्तं महात्मानं दत्तात्रेयं मदालसम् ।।१६०
वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगतः शुभाम् । भार्यां चास्य सुचार्वङ्गीं लक्ष्मीमिन्दुनिभाननाम् ।।१६१
नीलोत्पलाभनयनां पीनश्रोणिपयोधराम् । सुदतीं मधुराभाषां सर्वयोषिद्गुणैर्युताम् ।।१६२
दृष्ट्वाग्रतस्तदा दैत्याः साभिलाषमनोभवाः । न शेकुरुद्धता दैत्या मनसा वोढुमातुराः ।।१६३
त्यक्त्वा देवान्स्त्रियं तां तु हर्तुकामा हतौजसः । प्रेरितास्तेन पापेन ह्यासक्तास्ते ततोऽब्रुवन् ।।१६४
स्त्रीरत्नमेतत्त्रैलोक्यसारं चेद्विदितं भवेत् । कृतकृत्यास्ततः सर्वे इति नो भावितं मनः ।।१६५
तस्मात्सर्वे समुत्क्षिप्य शिबिकायां सुरार्दनाः । आरोप्य स्वमधिष्ठानं नयाम इति निश्चिताः ।।१६६

गर्ग उवाच

सानुरागास्ततस्ते तु मुनेरन्तिकमागमन् । तस्य तां योषितं साध्वीं समुत्क्षिप्य स्मरातुराः ।।१६७
शिबिकायां समारोप्य सहिता दैत्यदानवाः । शिरःसुशिबिकां कृत्वा स्वस्थानाभिमुखा ययुः ।।१६८

दृष्टिपातरूप अग्नि द्वारा उनका बल और तेज क्षीण होगा और वह सब मेरे दर्शन से तत्काल मृत्यु को प्राप्त होंगे ।१५७

गर्ग जी बोले—उनके इस प्रकार वचन सुनकर देवताओं ने युद्ध के निमित्त असुरों को बुलाया, महाबलवान् असुरों ने भी युद्ध में, कोप में भर देवताओं पर आक्रमण किया ।१५८। अनन्तर सब देवता दानवों की मार से चित्त में भय उत्पन्न हुआ, फलस्वरूप सभी शरण की इच्छा कर दत्तात्रेय जी के आश्रम में गये ।१५९। दैत्यों ने भी उनका विनाश करने के लिए उसी आश्रम में जाकर मद से आलसी महात्मा दत्तात्रेय जी को देखा और उनके वामपार्श्व में बैठी हुई सम्पूर्ण जगत् की इष्टदायिनी-शुभकारिणी चन्द्रमुखी उनकी पत्नी लक्ष्मी को देखा ।१६०-१६१। दैत्य उस नीले कमल के समान नेत्रवाली पीन श्रोणि पीन-स्तनवाली मधुरभाषिणी और स्त्री के सब गुणों से युक्त ललना को ।१६२। सन्मुख देखकर दैत्यगण उसके लेने में अत्यन्त अभिलाषी हुए और उद्धत काम की पीड़ा से आतुर हो मन में धैर्य धारण न कर सके ।१६३। और देवताओं को छोड़कर उस कामिनी के हरण करने में अभिलाषी हुए, वह इस पाप से मुग्ध और हतवीर्य होकर इस प्रकार कहने लगे ।१६४। कि, यह स्त्रीरत्न ही तीनों लोकों का सार है, हम यदि इस ललनारत्न को ग्रहण कर सके तभी कृतकार्य हों और हमारा चित्त भी भावनारहित हो।१६५। अतएव हे दानवगण ! हम इस स्त्री को पालकी में चढ़ाकर अपने घर ले जायेंगे, इस विषय में निश्चिन्त हो जाओ।१६६

गर्ग जी बोले—तदनन्तर उन सानुराग दैत्यों ने आपस में इस प्रकार परामर्श कर कामबाण से पीड़ित हो साध्वी दत्तात्रेयपत्नी को उठाकर ।१६७। पालकी में चढाया और दैत्य तथा दानव एकत्र हो, मस्तकपर पालकी रख अपने स्थान की ओर चले ।१६८

दत्तात्रेयस्तथा देवान्विहस्येदमथाब्रवीत् । दिष्ट्यां च हन्त दैत्यानामेषा लक्ष्मीः शिरोगता ॥
सप्तस्थानान्यतिक्रम्य लयमन्यमुपेष्यति ॥१६९

देवा ऊचुः

कथयस्व जगन्नाथ केषु स्थानेष्ववस्थिता । पुरुषस्य फलं किं वा प्रयच्छत्यथ नश्यति ॥१७०

दत्तात्रेय उवाच

नृणां पादस्थिता लक्ष्मीर्निलयं सम्प्रयच्छति । सक्थ्नोश्च संस्थिता वस्त्रं रत्नं नानाविधं वसु ॥१७१
कलत्रदा गुह्यसंस्था क्रोडस्थापत्यदायिनी । मनोरथान्पूरयति पुरुषाणां हृदि स्थिता ॥१७२
लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतां श्रेष्ठा कण्ठस्था कण्ठभूषणम् । अभीष्टबन्धुदारैश्च तथाश्लेषं प्रवासिभिः ॥१७३
मृष्टान्नं वाक्यलावण्यमाज्ञामवितथां तथा । मुखस्थिता कवित्वं च यच्छत्युदधिसम्भवा ॥१७४
शिरोगता सन्त्यजति ततोऽन्यं याति चाश्रयम् । सेयं शिरोगता दैत्यान्परित्यजति साम्प्रतम् ॥१७५
प्रगृह्यास्त्राणि वध्यन्तां तस्मादेते सुरारयः । न भेतव्यं भृशं त्वेते मया निस्तेजसः कृताः ॥१७६
परदारावमर्शाच्च दग्धपुण्या हतौजसः । तस्मादेतेऽभिहन्यन्तां भवद्भिरविशंकितैः ॥१७७

गर्ग उवाच

ततस्ते विविधैरस्त्रैर्वध्यमानाः सुरारयः । शिरःसु लक्ष्म्याप्याक्रान्ता विनेशुरिति नः श्रुतम् ॥१७८

तब मुनिवर दत्तात्रेय ने कुछ हँसकर देवताओं से कहा—हे देवताओं ! तुम्हारा भाग्य लौट आया है, यह देखो, लक्ष्मी सप्त स्थान में अतिक्रम करके दानवों के मस्तक पर चढ़ी है, अत एव यह उनको छोड़कर अंन्य के निकट जायगी ।१६९

देवता बोले—हे जगन्नाथ ! यह वर्णन कीजिये किस-किस स्थान पर लक्ष्मी जी के जाने से मनुष्यों का भला और किस-किस स्थान पर जाने से बुरा फल होता है ।१७०

दत्तात्रेय जी ने कहा—लक्ष्मी मनुष्य के पैर में रहने से गृहप्रदान करती है, सक्थिनी अस्थि में स्थित होने से वस्त्र और नाना प्रकार के रत्न देती है ।१७१। गुह्यस्थान में लक्ष्मी के वास करने से स्त्री मिलती है और गोदी में रहने से पुत्र प्राप्त होता है तथा हृदय में स्थित होने से पुरुष के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं ।१७२। सर्वप्रधान लक्ष्मी देवी के कंठस्थान में स्थित होने से लक्ष्मीवान् को कंठभूषण प्राप्त होता है और प्रवासी प्रियतम बंधु और स्त्री के सहित समागम होता है ।१७३। समुद्रतनया लक्ष्मी यदि मुख में स्थित हो तो सुन्दर वाक्य, लावण्य, आज्ञा सफल और कवित्वलाभ होता है ।१७४। और मस्तक में स्थित होने पर उसको छोड़कर अन्य का आश्रय ग्रहण करती है, वही यह लक्ष्मी दानवों के मस्तक पर पहुँची है, अब इनका परित्याग करेगी ।१७५। अत एव तुम अस्त्र-शस्त्र ग्रहण कर निर्भयचित्त से उनका विनाश करो । मेरे दृष्टिपात से वह निस्तेज हो गये हैं ।१७६। क्योंकि पराई स्त्री के संग बलात्कार करने से पुण्य दग्ध और पराक्रम नष्ट हो जाता है । इस कारण तुम निःशक होकर इनका नाश करो ।१७७

गर्ग जी बोले—तदनन्तर देवता पैने अस्त्र शस्त्रों से असुरों को मारने लगे । हे राजनन्दन ! मस्तक में लक्ष्मी को स्थापित करके असुर इस प्रकार मरे थे, ऐसा सुना है ।१७८। फिर लक्ष्मी देवी उनके मस्तक से

लक्ष्मीश्चोत्पत्य सम्प्राप्ता दत्तात्रेयं महामुनिम्। स्तूयमाना सुरैः सेन्द्रैर्दैत्यनाशान्मुदान्वितैः ॥१७९
प्रणिपत्य ततो देवा दत्तात्रेयं महामुनिम् । जय कृष्ण जगन्नाथ दैत्यान्तक हरप्रभो ॥१८०
नारायणाच्युतानन्त वासुदेवाक्षयाजर । त्वत्प्रसादात्सुखं लक्ष्मी राज्यं सम्पज्जनार्दन ॥१८१
शार्ङ्गधन्वंश्चक्रपाणे भक्तानां नित्यवत्सल । इति स्तुत्वा नाकपृष्ठं यथापूर्वं गताः सुराः ॥१८२
तथा त्वमपि राजेन्द्र यदिच्छसि यथेप्सितम् । प्राप्तमैश्वर्यमतुलं तूर्णमाराधयस्व तम् ॥१८३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

दत्तात्रेयोपाख्यानवर्णनम्

पुत्र उवाच

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा कार्त्तवीर्यो नरेश्वरः । दत्तात्रेयाश्रमं गत्वा तं भक्त्या समपूजयत् ॥१
पादसंवाहनाद्येन अर्घ्यार्घाहरणेन च । स्रक्चंदनादिगन्धाम्बुफलाद्यानयनेन च ॥२
तथान्नसाधनैस्तस्य उच्छिष्टापोहनेन च । परितुष्टो मुनिर्भूपं तमुवाच तथैव सः ॥३
यथैवोक्ताः पुरा देवा मद्यभोज्यादिकुत्सनम् । स्त्री चेयं मम पार्श्वस्थेत्येतद्भोगानुकुत्सितः ॥४

कूदकर महामुनि दत्तात्रेय जी के निकट आ गई, और दैत्यों के नाश से प्रसन्न हो इन्द्र के सहित सब देवता उनकी स्तुति करने लगे ।१७९। फिर महामुनि दत्तात्रेय जी को प्रणाम कर हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! हे दैत्यांतक ! हे हर ! हे प्रभो ! आपकी जय हो ।१८०। हे नारायण ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! हे अक्षय ! हे अजर ! हे जनार्दन ! आपके प्रसाद से सुख लक्ष्मी राज्य सम्पत्ति को हमने प्राप्त किया ।१८१। हे शार्ङ्गधन्वन् ! हे चक्रपाणि ! आप नित्य भक्तों पर कृपा करते हैं, इसी प्रकार स्तुति कर देवता लोग जहाँ से आये थे, वहीं को चले गये ।१८२। अत एव हे राजेन्द्र ! तुम यदि मनोभिलषित अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करने की इच्छा करते हो तो शीघ्र ही उन मुनिवर दत्तात्रेय जी की आराधना करो ।१८३

श्रीमार्कण्डेय पुराण में दत्तात्रेय महत्व वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।१६।

अध्याय १७

दत्तात्रेयोपाख्यान का वर्णन

पुत्र बोला—नरपति कार्त्तवीर्य ने गर्गऋषि के इस प्रकार वचन सुनकर दत्तात्रेय मुनि के आश्रम में जाकर भक्तिसहित उनकी पूजा की ।१। चरणसंवाहन (पैरों का दाबना) इत्यादि करके अर्घ्य, फूल, माला सुगंधि, जल, फल और चन्दनादि उनके लिये लाने लगे ।२। ऐसे ही अन्नादि भी लाते थे और उनका उच्छिष्ट स्वयं खाते थे । इस कारण मुनि ने संतुष्ट होकर उनसे इस प्रकार कहा ।३। जिस प्रकार पहले देवताओं से मद्यपान इत्यादि अपने निन्दित कर्म कहे थे, फिर बोले, देखो—यह स्त्री जो मेरे निकट

सदैवाहं न मामेवमुपरोद्धुं त्वमर्हसि । अशक्तमुपकाराय शक्तमाराधयस्व भोः ।।५

पुत्र उवाच

तेनैवमुक्तो मुनिना स्मृत्वा गर्गवचश्च तत् ।।६
प्रत्युवाच प्रणम्यैनं कार्त्तवीर्यस्ततोऽर्जुनः ।।

अर्जुन उवाच

देवस्त्वं हि पुराणो यः स्वां मायां समुपाश्रितः ।।७
अनघस्त्वं तथैवेयं देवी सर्वभ्रवारणिः । इत्युक्तः प्रीतिमान्देवो भूयस्तं प्रत्युवाच ह ।।८
कार्त्तवीर्यं महावीर्यं वशीकृतमहीतलम् । वरं वृणीष्व गुह्यं मे त्वया नाम यदीरितम् ।।९
तेन तुष्टिः परा जाता त्वय्यद्य मम पार्थिव । ये च मां पूजयिष्यन्ति गन्धमाल्यादिभिर्नराः ।।१०
मांसमद्योपहारैश्च मृष्टान्नैश्चात्मसम्मतैः । लक्ष्म्या समेतं गीतैश्च ब्राह्मणानां तथार्च्चनैः ।।११
वाद्यैर्मनोरमैर्वीणा वेणुशंखादिभिस्तथा । तेषामहं परां पुष्टिं पुत्रदारधनादिकीम् ।।१२
प्रदास्याम्यवधूतश्च हनिष्याम्यवमन्यताम् । स त्वं वरय भद्रं मे वरं यं मनसेच्छसि ।।१३
प्रसादसुमुखस्तेऽहं गुह्यनामप्रकीर्त्तनात् ।।

स्थित है, इससे मैं निन्दित रमण किया करता हूँ ।४। हे राजन् ! मैं इस प्रकार के समस्त निन्दनीय कार्यों में व्याप्त रहता हूँ, अत एव मेरे समान उपकार करने में असमर्थ पुरुष की सेवा करने से क्या होगा ? जो पुरुष समर्थ हो, उसकी आराधना करो ।५

पुत्र ने कहा—मुनि के इस प्रकार कहने पर गर्गमुनि के वह वचन स्मरण करके ।६। कार्त्तवीर्यार्जुन दत्तात्रेय जी को प्रणाम पूर्वक कहने लगे ।

अर्जुन ने कहा—हे देव ! आपने मुझको ऐसा मोहित क्यों किया है, आप अपनी माया के संग हुए हैं, अर्थात् मुझ अज्ञानी को अपनी माया से किसलिये भुलावा देते हो ।७। अत एव आप पापरहित हैं, यह देवी सब संसार की अरणि[1] स्वरूप है, इस कारण यह भी निष्पाप है, राजा के इस प्रकार कहने पर मुनिवर अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर बोले ।८। हे पृथ्वीमण्डल को वशीभूत करने वाले महावीर्यवान् कार्त्तवीर्यार्जुन ! वर माँगो, तुमने जो मेरे गुप्तनाम उच्चारण किये हैं ।९। इससे मुझको अत्यन्त संतोष उत्पन्न हुआ है, हे राजन् ! जो मनुष्य मेरा गंधमाल्यादि से पूजन करते हैं ।१०। जो मद्यमांसरूप उपहार और घृतयुक्त मिष्ठान देकर लक्ष्मीसहित ब्राह्मण की पूजा के संग संगीत ।११। तथा वीणा, वेणु और शंख इत्यादि मनोहर बाजे बजाते हैं, मैं पुत्र स्त्री से धनादि प्रदान करके उनको परमसंतुष्ट करता हूँ ।१२। और जो अवधूत कहकर तिरस्कार करते हैं उनको मारता हूँ जो तुम्हारे मन में इच्छा हो, वह वर मांगो, तुम्हारा कल्याण हो ।१३। तुमने जो मेरे गुप्त नामकीर्त्तन किये हैं, इस कारण मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ ।

---

१. अरणि—घर्षण द्वारा अग्नि जलाने का काष्ठ या सूर्य ।

कार्त्तवीर्य उवाच

यदि देव प्रसन्नस्त्वं तत्प्रयच्छर्द्धिमुत्तमाम् ॥१४
यथा प्रजां पालयेयं न चाधर्ममवाप्नुयाम् । परानुस्मरणं ज्ञानमप्रतिद्वंद्वतां रणे ॥१५
सहस्रमाप्तुमिच्छामि बाहूनां लघुतागुणम् । असंगा गतयः सन्तु शैलाकाशाम्बुभूमिषु ॥१६
पातालेषु च सर्वेषु वधश्चाप्यधिकान्नरात् । तथामार्गप्रवृत्तस्य सन्तु सन्मार्गदेशिकाः ॥१७
सन्तु मेऽतिथयः श्लाघ्या वित्तं वान्यत्तथाक्षयम् । अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे ममानुस्मरणेन च ॥१८
त्वयि भक्तिश्च देवास्तु नित्यमव्यभिचारिणी ॥

दत्तात्रेय उवाच

य एते कीर्त्तिताः सर्वे तान्वत्स समवाप्स्यसि ॥१९
मत्प्रसादात्प्रभविता चक्रवर्तित्वमैश्वरम् ॥

पुत्र उवाच

प्रणिपत्य ततस्तस्मै दत्तात्रेयाय सोऽर्जुनः ॥२०
आनीय प्रकृतीः सम्यगभिषेकमगृह्णत । आगताश्चापि गन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ॥२१
ऋषयश्च वसिष्ठाद्या मेर्वाद्याः पर्वतास्तथा । गंगाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रा रत्नसम्भवाः ॥२२
प्लक्षाद्याश्च तथा वृक्षा देवा वै वासवादयः । वासुकिप्रमुखा नागा अभिषेकार्थमागताः ॥२३
तार्क्ष्याद्याः पक्षिणश्चैव पौरा जानपदास्तथा । सम्भाराः सम्भृताः सर्वे दत्तात्रेयप्रसादतः ॥२४

कार्त्तवीर्य ने कहा—हे देव ! यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो मुझको ऐसी उत्तम ऋद्धि प्रदान कीजिये ।१४। जिससे सहज में ही सब प्रजा का पालन कर सकूँ और पापभागी न हूँ और शत्रुओं के अनुसरण में ज्ञान की प्राप्ति हो तथा समर में कोई सन्मुख न ठहर सके ।१५। लघुतागुणयुक्त सहस्रबाहु हो जाने की इच्छा करता हूँ । जल, आकाश, भूमि, पर्वत और पाताल इत्यादि सब स्थानों में ही असंगति और श्रेष्ठ मनुष्य के हाथ में मृत्यु यह सब लाभ करने की अभिलाषा करता हूँ । हे देव ! मैं अमार्ग प्रवृत्त मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाने वाला हूँ ।१६-१७। अक्षय धन दान करने से श्लाघनीय अतिथिलाभ करूँ, राज्य में मेरा नाम उच्चारण करने से अनष्टद्रव्यता हो अर्थात् कोई धनहीन न रहे । और आपके चरणकमलों में मेरी भक्ति सदा अचल होकर वर्तमान रहे ।१८

दत्तात्रेय जी बोले—हे वत्स ! तुमने जो जो कहा, वह सब होगा ।१९। और मेरे प्रसाद से तुम चक्रवर्ती राजा होगे ।

पुत्र बोला—तब उन कार्त्तवीर्यार्जुन ने मुनिवर दत्तात्रेय जी को प्रणाम करके ।२०। समस्त प्रजा को बुलाकर सम्यक् प्रकार से अभिषेक ग्रहण किया, उस समय समस्त गंधर्व, अप्सरागण ।२१। वसिष्ठ आदि ऋषिगण, सुमेरु इत्यादि पर्वत, गंगा इत्यादि सब नदियाँ, जलयुक्त सब समुद्र ।२२। प्लक्ष इत्यादि सब वृक्ष, इन्द्रादि सब देवता, वासुकी इत्यादि नाग ।२३। गरुडादि पक्षी, तथा नगर और पुरवासी समस्त लोक मुनिवर दत्तात्रेय जी के प्रसाद से सब सामग्री सजा कर अभिषेक के लिये आये ।२४। और

अथ संज्वाल्य तैर्वह्निं देवैर्ब्रह्मादिभिः सह । नारायणेनाभिषिक्तो दत्तात्रेयस्वरूपिणा ॥२५
समुद्रैश्च नदीभिश्च ऋषिभिश्चाभिषेचितः । आघोषयामास तदा स्थितो राज्ये स हैहयः ॥२६
दत्तात्रेयात्परामृद्धिवाप्यातिबलान्वितः । अद्यप्रभृति यः शस्त्रं मामृतेऽन्यो ग्रहीष्यति ॥२७
हन्तव्यः स मया दस्युः परहिंसारतोऽपि वा । इत्याज्ञप्तेन तद्राज्ये कश्चिदायुधभृन्नरः ॥२८
तमृते पुरुषव्याघ्रं बभूवोरुपराक्रमम् । स एव ग्रामपालोऽभूत्पशुपालः स एव च ॥२९
क्षेत्रपालः स एवासीद् द्वितीयो न च रक्षिता । तपस्विनां पालयिता सार्थपालश्च सोऽभवत् ॥३०
दस्युव्यालाग्निशस्त्रारिभयेष्वब्धौ निमज्जताम् । अन्यासु चैव मग्नानामापत्सु परवीरहा ॥३१
स एव संस्मृतः सद्यः समुद्धर्त्ताभवन्नृणाम् । अनष्टद्रव्यता चासीत्तस्मिञ्छासति पार्थिवे ॥३२
तेनेष्टं बहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । तपश्च तप्तुं सुमहत्संग्रामे वातिचेष्टितम् ॥३३
तस्यर्द्धिमहिमानं च दृष्ट्वा प्राहांगिरा मुनिः । न नूनं कार्त्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ॥३४
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा संग्रामे चातिचेष्टितैः । दत्तात्रेयाद्दिने यस्मिन्सम्प्राप्तार्द्धिनरेश्वरः ॥३५
तस्मिन्तस्मिन्दिने यागं दत्तात्रेयस्य सोऽकरोत् । तथैव च प्रजाः सर्वास्तस्मिन्नहनि भूपते ॥३६
तस्यर्द्धिं परमां दृष्ट्वा यागं चक्रुः समाधिना । इत्येतत्तस्य माहात्म्यं दत्तात्रेयस्य धीमतः ॥३७
विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्य महात्मनः । प्रादुर्भावः पुराणेषु कथ्यते शार्ङ्गधन्वनः ॥३८

ब्रह्मादि देवताओं ने अग्नि प्रज्ज्वलित की, फिर दत्तात्रेय स्वरूपी नारायण ने अभिषेक किया ।२५। अनन्तर समुद्र, नदी और ऋषियों ने अभिषेक किया और "हैहय राज्य में स्थित हुए" यह घोषणा सर्वत्र हो गई ।२६। मुनिवर दत्तात्रेय के प्रसाद से अतुल ऐश्वर्य को प्राप्त हो महाबल हैहय ने राज्य में अवस्थान करके आज्ञा दी कि, जो अबसे मेरे अतिरिक्त अस्त्र ग्रहण करेगा ।२७। वह परहिंसारत वा दस्यु मेरे हाथ से मारा जायगा । राजा के इस प्रकार आज्ञा करने पर उनके राज्य में उनके अतिरिक्त और कोई आयुधधारी मनुष्य वर्त्तमान नहीं रहा ।२८। सब भूमि के एक राजा कार्त्तवीर्यार्जुन ही मनुष्यव्याघ्र और पराक्रमी हुए, तब वही ग्रामपालक, वही पशुपालक ।२९। और वही क्षेत्ररक्षक थे, दूसरा नहीं । ब्राह्मणरक्षक, तपस्विरक्षक और वही अर्थपालक हुए ।३०। वह परवीरघातक राजा ही केवल मात्र चोर, सर्प, अग्नि, शस्त्र, शत्रु और भयंकर समुद्र वा अन्यान्य आपदा में निमग्न मनुष्यों की रक्षा करने वाले हुए ।३१। एक मात्र उनका नाम उच्चारण करके ही मनुष्यगण सब आपदाओं से उत्तीर्ण होने लगे, उन राजा ने जब राज्य शासन किया, तब राज्य में किसी का द्रव्य नष्ट नहीं हुआ ।३२। उन्होंने नाना प्रकार के यज्ञ यजन करके दक्षिणासहित समाप्त किये और महत् तपस्याचारी तथा संग्राम में बड़ी चेष्टावाले हुए ।३३। तब इनकी अत्यन्त समृद्धि और मान को देखकर अंगिरा मुनि ने कहा—"अन्य कोई राजा इनके समान नहीं हुआ ।३४। और न यज्ञ, दान, तपस्या व संग्राम चेष्टा किसी विषय में कार्त्तवीर्य के समान नहीं होगा, इसमें संदेह नहीं ।" वह राजा जिस दिन दत्तात्रेय के निकट से अतुल ऐश्वर्य को प्राप्त हुए हैं ।३५। उन्होंने उसी दिन दत्तात्रेय का याग किया था और उनकी सब प्रजा ने भी भूपति की परम ऋद्धि देखकर सावधान चित्त से उसी दिन याग किया था, यही उन बुद्धिमान् दत्तात्रेय जी का माहात्म्य है ।३६-३७। उन चराचर गुरु, अन्तहीन, शार्ङ्गधन्वा, शंख, चक्र, गदाधारी अप्रमेय अनन्तदेव दत्तात्रेय रूपी

अनंतस्याप्रमेयस्य शङ्खचक्रगदाभृतः । एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयति मानवः ॥३९
स सुखी स च संसारात्समुत्तीर्णोऽचिराद्भवेत् । सदैव वैष्णवानां च भक्त्याहं सुलभोऽस्मि भोः ॥४०
पत्रपुष्पफलेनाहं पूजितो मोक्षदोऽस्मि वै । इत्येवं यस्य वै वाचस्तं कथं नाश्रयेज्जनः ॥४१
अधर्मस्य विनाशाय धर्माधारार्थमेव च । अनादिनिधनो देवः करोति स्थितिपालनम् ॥४२
तथैवं जन्म चाख्यातमालर्कं कथयामि ते । यथा च योगः कथितो दत्तात्रेयेण तस्य वै ॥
पितृभक्तस्य राजर्षेरलकस्य महात्मनः ॥४३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयोपाख्यानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।१७।

अथाष्टादशोऽध्यायः

(20)

मदालसोपाख्यानवर्णनम्

पुत्र उवाच

प्रागबभूव महावीर्यः शत्रुजिन्नाम पार्थिवः । तुतोष यस्य यज्ञेषु सोमावाप्त्या पुरन्दरः ॥१
तस्यात्मजो महावीर्यो बभूवारिविदारणः । नाम्ना ऋतध्वजः ख्यातः सर्वलक्षणसंयुतः ॥२
बुद्धिविक्रमलावण्यैर्गुरुशुक्राश्विनां समः । स समानवयोबुद्धिसत्त्वविक्रमचेष्टितैः ॥३
नृपपुत्रो नृपसुतैर्नित्यमास्ते समावृतः । कदाचिच्छास्त्रसद्भावविवेककृतनिश्चयः ॥४

विष्णु की उत्पत्ति सब पुराणों में नाना प्रकार से कही गई है, जो मनुष्य नारायण के इस परमरूप की चिन्ता करते हैं ।३८-३९। वही सुखी होते हैं और तत्काल संसारबंधन से छूट जाते हैं जो सदा कहते हैं कि, हे वैष्णवगण ! मैं भक्तिद्वारा सदा ही तुमको सुलभ हूँ । पुत्र, पुष्प, फलोंद्वारा पूजित हुआ भी मैं मुक्ति देता हूँ,, ऐसी जिनकी प्रतिज्ञा है, फिर मनुष्य उनका आश्रय क्यों न करे ।४०-४१। वह अनादिनिधनदेव ही धर्माचरण के करने और अधर्म विनाश के निमित्त स्थिति और पालनादि करते हैं ।४२। हे पिता ! अब अलर्क नामक ब्राह्मण का वृत्तान्त आप से कहता हूँ कि, जिनसे दत्तात्रेय जी ने योगमार्ग का वर्णन किया है वह महात्मा अलर्कमहाराज जगत् में प्रसिद्ध राजर्षि और अपने पिता के भक्त थे ।४३

श्रीमार्कण्डेयपुराण में दत्तात्रेयोपाख्यान वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।१७।

अध्याय १८

मदालसोपाख्यान का वर्णन

पुत्र ने कहा—हे पिता ! पूर्वकाल में शत्रुजित् नामक महावीर्यवान् एक राजा थे, उनके यज्ञ में सोमपान करके शचीपति इन्द्र अत्यन्त संतुष्ट हुए थे ।१। उन राजा के महावीर्यवान् और अत्यन्त पराक्रमी, अरिमर्दन सर्वलक्षणों से युक्त ऋतध्वज नाम से विख्यात एक पुत्र हुआ ।२। वह बुद्धि में बृहस्पति के समान, विक्रम में इन्द्र के समान और लावण्य में अश्विनीकुमार के समान थे । राजपुत्र जिन राजनन्दनों के साथ मिलकर रहते, वह भी वयस्, बुद्धि, सत्त्व, विक्रम और चेष्टा में राजपुत्र से किसी प्रकार कम नहीं थे, वह कभी शास्त्र पढ़ने से उत्पन्न विवेक विषय में व्रतनिश्चय होकर अवस्थान

कदाचित्काव्यसंलापगीतनाटकसम्भवैः । तथैवाक्षविनोदैश्च शस्त्रास्त्रविनयेषु च ॥५
योग्यो नियुद्धनागाश्वस्यन्दनाभ्यासतत्परः । रेमे नृपेन्द्रपुत्रोऽसौ नरेन्द्रतनयैर्वृतैः ॥६
यथैव हि दिवा तद्वद्रात्रावपि मुदा युतः । तेषां तु क्रीडतां तत्र द्विजभूपविशां सुताः ॥७
समानवयसः प्रीत्या रन्तुमायान्त्यनेकशः । कस्यचित्त्वथ कालस्य नागलोकान्महीतलम् ॥८
कुमारावागतौ नागौ पुत्रावश्वतरस्य तु । ब्रह्मरूपप्रतिच्छन्नौ तरुणौ प्रियदर्शनौ ॥९
तौ तैर्नृपसुतैः सार्द्धं तथैवान्यैर्द्विजात्मजैः । विनोदैर्विविधैस्तत्र तस्थतुः प्रीतिसंयुतौ ॥१०
सर्वे च ते नृपसुतास्ते च ब्रह्मविशां सुताः । नागराजात्मजौ तौ च स्नानसंवाहनादिकाम् ॥११
वस्त्रगन्धान्नसंयुक्तां चक्रुर्भोगभुजिक्रियाम् । अहन्यहन्यनुप्राप्ते तौ च नागकुमारकौ ॥१२
आजग्मतुर्मुदा युक्तौ प्रीत्या सूनोर्महीपतेः । स च ताभ्यां नृपसुतः परं निर्वाणमाप्तवान् ॥१३
विनोदैर्विविधैर्हास्यसंलापादिभिरेव च । विना ताभ्यां न बुभुजे न सस्नौ न पपौ मधु ॥१४
न रेमे च न जग्राह शास्त्राण्यात्मगुणर्द्धये । रसातले च तौ रात्रिं विना तेन महात्मना ॥१५
निःश्वासपरमौ नीत्वा जग्मतुस्तं दिने दिने । मर्त्यलोके परा प्रीतिर्भवतो केन पुत्रकौ ॥१६
सहेति च प्रलपितौ तावुभौ नागदारकौ । दृष्टयोरत्र पाताले बहूनि दिवसानि मे ॥१७
दिवारजन्यामेवोभौ पश्यामि प्रियदर्शनौ ॥

करते ।३-४। कभी काव्य की चर्चा में गीत, श्रवण में और नाटकसंभव गीतादि में मन लगाकर प्रसन्न रहते, कभी अक्षविनोद अर्थात् पाश खेलने में, कभी अस्त्रशस्त्र में, कभी विनय में ।५। कभी योग्य पुरुषों के संग मल्लयुद्ध विषय में और कभी हाथी घोड़े तथा रथादि के अभ्यास में तत्पर होकर राजपुत्रों के संग खेलते ।६। जिस प्रकार दिन आनन्द से बीतता था, वैसे ही रात भी सुख से बीत जाती थी, जिस स्थान पर वह क्रीड़ा किया करते थे, वहाँ सैकड़ों ब्राह्मण के पुत्र, सैकड़ों राजाओं और वैश्यों के बालक ।७। समान आयुमान् प्रीतिपूर्वक आ आकर खेला करते थे। इस प्रकार कुछ काल बीतने पर नागलोक से महीतल में ।८। नागराज अश्वतरके दो पुत्र ब्राह्मण का रूप धारण करके आये, यह दोनों ही तरुण और प्रियदर्शन थे ।९। यह उन राजनन्दन और ब्राह्मण पुत्रों के संग नाना प्रकार के विनोद करते हुए प्रीतिपूर्वक वास करने लगे ।१०। वह राजपुत्र, ब्राह्मणपुत्र और वैश्यपुत्र तथा वह दोनों नागकुमार सब ही एकत्र होकर स्नान, यानारोहण ।११। वस्त्र पहनना, गंधानुलेपन और भोगानुसार भोजन करने लगे। इस प्रकार राजपुत्र की प्रीति से आह्लादयुक्त हो वह दोनों नागराज के पुत्र नित्य आने-जाने लगे और राजपुत्र भी उनसे परम प्रसन्न हुए ।१२-१३। अर्थात् उनके नाना प्रकार आमोद-प्रमोद और हास्य संलापादि द्वारा अत्यन्त सुखी हुए थे, यही क्या उनके बिना भोजन, स्नान और मधुपान नहीं करते ।१४। तथा क्रीड़ा और आत्मगुण वृद्धि के निमित्त शस्त्र भी ग्रहण नहीं करते, दोनों नागनन्दन भी उन महात्मा राजपुत्र के बिना रात्रि में ।१५। दीर्घ श्वास लेते हुए रसातल में बिता कर दिन में उनके निकट आते। इस प्रकार कुछ काल बीतने पर नागराज अश्वतर ने एक दिन दोनों पुत्रों से पूछा—हे प्रियदर्शन पुत्रो ! तुम मृत्युलोक में ऐसे प्रीतिमान् क्यों हुए हो। बहुत दिन हुए दिन के समय में तुमको इस पाताल में नहीं देखता ।१६-१७। रात्रि होने पर ही देखता हूँ, इसका क्या कारण है ?

जड उवाच

इति पित्रा स्वयं पृष्टौ प्रणिपत्य कृताञ्जली ।।१८
प्रत्यूचतुर्महाभागावुरगाधिपतेः सुतौ ।।

पुत्रावूचतुः

पुत्रः शत्रुजितस्तात नाम्नाख्यात ऋतध्वजः ।।१९
रूपवानार्जवोपेतः शूरो मानी प्रियम्वदः । अनावृतकथो वाग्मी विद्वान्मैत्रो गुणाकरः ।।२०
मान्यमानयिता धीमान्ह्रीमान्विनयभूषणः । तस्योपचारसंप्रीतिसम्भोगापहृतं मनः ।।२१
नागलोकेऽन्यलोके वा रतिं विन्दते पितः । तद्वियोगेन नौ तात निशा पातालशीतला ।।२२
परितापाय तत्संगश्चाह्लादाय रविर्दिवा ।।

पितोवाच

पुत्रः पुण्यवतो धन्यः स यस्यैवं भवद्विधैः ।।२३
परोक्षस्यापि गुणिभिः क्रियते गुणकीर्तनम् । सन्ति शास्त्रविदोऽशीलाः सन्ति मूर्खाः सुशीलिनः ।।२४
शास्त्रशीले समं मन्ये यस्मिन्धन्यतरं तु तम् । यस्य मित्रगुणान्मित्राण्यमित्राश्च पराक्रमम् ।।२५
कथयन्ति सदा सत्सु पुत्रवांस्तेन वै पिता । तस्योपकारिणः कच्चिद् भवद् भ्यामभिवाञ्छितम् ।।२६
किञ्चिन्निष्पादितं वत्सौ परितोषाय चेतसः । स धन्यो जीवितं तस्य तस्य जन्मसु जन्मनः ।।२७

जड ने कहा—स्वयं पिता के इस प्रकार पूछने पर वह दोनों पुत्र महाभाग उरगाधिपति से प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे ।१८

पुत्रों ने कहा—हे तात ! मर्त्यलोक में शत्रुजित् नामक राजा के एक पुत्र हैं और उनका नाम ऋतुध्वज विख्यात है ।१९। वह रूपवान, सरलचित्त, शूर, मानी, प्रियवादी, प्रसिद्ध यशवान्, वाग्मी, विद्वान्, मित्रतायुक्त और गुणों के आकर (खान) स्वरूप हैं ।२०। वह मान करने योग्य पुरुषों का मान करते हैं, वह बुद्धिमान, लज्जावान और विनय से विभूषित हैं, उनके इन उपचार और प्रीतिसम्भोग द्वारा हमारा मन अत्यन्त खिंचकर ।२१। नागलोक, भूलोक वा अन्य किसी स्थान में प्रसन्नता को प्राप्त नहीं होता । हे पिता ! उनसे वियोग होने पर पाताल की शीतल निशाभी हमको ।२२। तापकी देने वाली होती है और उनके संग मिलकर रहने से रवितापान्वित दिन भी हमको आह्लादजनक होता है ।

पिता ने कहा—वह पुण्य शील पुत्र धन्य है, क्योंकि तुम सरीखे गुणवान् पुरुष भी ।२३। बाद में जिनके गुण कीर्त्तन करते हैं और अनेक शास्त्र जाननेवाले पंडित भी कुस्वभावसंपन्न होते हैं और अनेक मूर्ख भी सुशील होते हैं।२४। किन्तु मैं विचारता हूँ कि, शास्त्रज्ञ और सुशील वह राजपुत्र ही अत्यन्त धन्य हैं, क्योंकि मित्रद्वारा जिसका मित्रतागुण प्रकाशित होता है और शत्रुद्वारा जिसका पराक्रम प्रगट होता है।२५। अनके संतान होने पर भी उसके द्वारा ही पिता पुत्रवान् कहा जाता है। जो हो, उस उपकारी के निमित्त तुमने कुछ विचारा भी है।२६। हे वत्स ! उस मित्र का चित्त संतुष्ट करने के लिए कुछ कार्य तुमने किया है ? देखो—इस संसार में वही धन्य है, और उसी अच्छे जन्म वाले का जन्म लेना सफल है।२७।

यस्यार्थिनो न विमुखा मित्रार्थे न च दुर्बलः । मद्गृहे यत्सुवर्णादि रत्नं वाहनमासनम् ॥२८
यद्वान्यत्प्रीतये तस्य तद्देयमविशंकया । धिक्तस्य जीवितं पुंसो मित्राणामपकारिणः ॥२९
प्रतिरूपमकुर्वन्यो जीवामीत्यवगच्छति । उपकारं सुहृद्वर्गेष्वपकारं च शत्रुषु ॥३०
नृमेघो वर्षति प्राज्ञास्तस्येच्छन्ति सदोन्नतिम् ॥

पुत्रावूचतुः

किं तस्य कृतकृत्यस्य कर्तुं शक्येत केनचित् ॥३१
यस्य सर्वार्थिने गेहे सर्वकामैः सदार्चिताः । यानि रत्नानि तद्गेहे पाताले तानि नः कुतः ॥३२
वाहनासनयानानि भूषणान्यम्बराणि च । विज्ञानं यच्च तत्रास्ति तदन्यत्र न विद्यते ॥३३
प्राज्ञानामप्यसौ तात सर्वसन्देहहृत्तमः । एकं तस्यास्ति कर्त्तव्यमसाध्यं तच्च नो मतम् ॥३४
हिरण्यगर्भगोविन्दशर्वादीनां वरादृते ॥

पितोवाच

तथापि श्रोतुमिच्छामि तस्य यत्कार्यमुत्तमम् ॥३५
असाध्यमथवा साध्यं किं चासाध्यं विपश्चिताम् । देवत्वममरेशत्वं तत्पूज्यत्वं च मानवाः ॥३६
प्रयान्ति वाञ्छितं चान्यद्दृढं ये व्यवसायिनः । नाविज्ञातं न चागम्य नाप्राप्यं दिवि चेह वा ॥३७
उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेन्द्रियात्मनाम् । योजनानां सहस्राणि याति गच्छन्पिपीलिकः ॥३८

जो अर्थियों को विमुख नहीं करता और मित्र के निमित्त दुर्बल नहीं है अतएव मेरे घर में सुवर्ण, रत्न, वाहन, आसन इत्यादि ।२८। जो कुछ है, तुम उनको प्रसन्न करने के लिये अशंकित चित्त से वह दे सकते हो, क्योंकि मित्रों का अपकार करने वाले के जीवन को धिक्कार है ।२९। जो पुरुष उपकारी मित्र का प्रति उपकार न करके जीवन धारण करने की इच्छा करते हैं, उनके जीवन को धिक्कार है और जो पुरुष रूपी मेघ बंधुवर्ग का उपकार और शत्रुवर्ग का ।३०। अपकाररूप जल की वर्षा करते हैं, देवता सदा ही उनकी उन्नतिसाधन करने की इच्छा करते हैं, पुत्र ने कहा हे पिता ! मैं उन कृतकृत्य का क्या उपकार कर सकता हूँ ।३१। जिनके निकट याचकजन अभिलषित पदार्थद्वारा सदा अर्चित होते हैं, उनका उपकार करने की मेरी भी सामर्थ्य नहीं है, उनके घर जो रत्न हैं, पाताल में वह सब कहाँ है ।३२। उनके यहाँ के वाहन, आसन, यान, भूषण, वस्त्र हमारे यहाँ नहीं है, उनके निकट जैसा विज्ञान हैं, अन्य कहीं भी वह नहीं है ।३३। हे तात ! वह पण्डितों का भी संदेहहरण करने वाले हैं, जो हो, केवल उनका एक कार्य है किन्तु हमारे लिए वह साध्य नहीं है ।३४। हिरण्यगर्भ गोविन्द और शिवादि के अतिरिक्त वह दूसरे के असाध्य है, अर्थात् दूसरा कोई उस कार्य को नहीं कर सकता ।

पिता बोले—तथापि उनका वह जो उत्तम कार्य है, उसके सुनने की इच्छा करता हूँ ।३५। चाहे वह साध्य असाध्य कैसा भी है, जो मनुष्य दृढतर उद्योगी होते हैं, वह देवत्व वा इन्द्रत्व अथवा उनके पूज्यभाव को प्राप्त होने में समर्थ होते हैं ।३६। दृढव्यवसायी पुरुष ही मनोवाञ्छित को प्राप्त होते हैं, कोई वस्तु स्वर्ग में भी अविज्ञात, अगम्य और अप्राप्त नहीं है ।३७। जो मन, इन्द्रिय और आत्मा को वश में करके अधिक उद्योगी होते हैं, वह मनोरथ को प्राप्त होते हैं, देखो—छोटी चींटी अधिक उद्योगी होने से

अगच्छन्वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति । क्व भूतलं क्व च ध्रौव्यं स्थानं यत्प्राप्तवान्ध्रुवः ॥३९
उत्तानपादनृपतेः पुत्रः सद्भूमिगोचरः । तत्कथ्यतां महाभागौ कार्यवान्येन पुत्रकौ ॥४०
स भूपालसुतः साधुर्येनानृण्यं लभेत वाम् ॥

पुत्रावूचतुः

तेनाख्यातमिदं तात पूर्ववृत्तं महात्मना ॥४१
कौमारके यथा तस्य वृत्तं सद्वृत्तशालिनः । तस्य शत्रुजितं तात पूर्वं कश्चिद्द्विजोत्तमः ॥४२
गालवोऽभ्यागमद्धीमान्गृहीत्वा तुरगोत्तमम् । प्रत्युवाच च राजानं समुपेत्याश्रमं मम ॥४३
कोऽपि दैत्याधमो राजन्विध्वंसयति पापकृत् । तत्तद्रूपं समास्थाय सिंहेभवनचारिणाम् ॥४४
अन्येषां चातिकायानामहर्निशमकारणात् । समाधिध्यानयुक्तस्य मौनव्रतरतस्य च ॥४५
तथा करोति विघ्नानि यथा नेच्छामि पार्थिव । दग्धुं कोपाग्निना सद्यः समर्थास्तं वयं न तु ॥४६
दुःखार्जितस्य तपसो व्ययमिच्छामि पार्थिव । एकदा तु मया राजन्नतिनिर्विण्णचेतसा ॥४७
तत्क्लेशितेन निःश्वासो निरीक्ष्याम्बरमुज्झितः । ततोऽम्बरतलात्सद्यः पतितोऽयं तुरंगमः ॥४८
वाक्चाशरीरिणी प्राह नरनाथ शृणुष्व तत् । अश्रान्तः सकलं भूमेर्वलयं तुरगोत्तमः ॥४९
समर्थः क्रान्तुमर्केण तवायं प्रतिपादितः । पातालाम्बरतोयेषु नास्य प्रतिहता गतिः ॥५०

गमन करते-करते हजार योजन जा सकती हैं ।३८। किन्तु पक्षिराज गरुड उद्योगहीन होने से एक पग भी जाने में समर्थ नहीं होते, क्योंकि अनुद्योगी मनुष्य को गम्य वा अगम्य कुछ नहीं है, देखो— उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव ।३९। पृथ्वी में अवस्थान करके जिस अन्य दुर्लभ स्थान को प्राप्त हुए हैं, वह ध्रौव स्थान कहाँ ? और पृथ्वी कहाँ अतएव हे पुत्रो ! वह साधु महाभाग राजपुत्र जिससे कार्यवान् हो, वह कहो ।४०। और तुम भी जिसके द्वारा मित्रता ऋण से मुक्त हो सको। पुत्रों ने कहा—हे तात ! उन महात्मा ने पूर्ववृत्तान्त इस प्रकार से कहा है ।४१। उन सद्वृत्तशाली महात्मा राजपुत्र की कौमार अवस्था में जिस प्रकार हुआ था, वह सुनो ! एक शत्रुजित् नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण है ।४२। एक दिन गालव नामक बुद्धिमान् द्विजश्रेष्ठ ने सुन्दर घोड़ा ग्रहण करके मेरे आश्रम में आकर राजा से कहा था ।४३। हे राजन् ! कोई पापकारी दैत्यों में अधम मेरे आश्रम में आकर सब ही ध्वंस करता है वह रात-दिन, सिंह-हाथी और अन्यान्य अल्पकाय वनचारी जन्तु का रूप धारण करके इस प्रकार विघ्न करता है कि, मेरे समाधिध्यानयुक्त वा मौनव्रत अवलम्बन करने पर भी मेरा मन विचलित होता है । हे राजन् ! आप ही उसे कोपाग्नि में दग्ध करने को समर्थ हैं, इस विषय में मैं असमर्थ हूँ ।४४-४६। क्योंकि समर्थ होकर भी मैं ऐसे अनुचित कार्य में बहुत दिनों की दुःखोपार्जित तपस्या व्यय करने की इच्छा नहीं करता । जो हो, हे राजन् ! मैंने एक दिन उसके द्वारा अतिदुःखित चित्त से ।४७। क्लेशित होकर आकाश में दीर्घ श्वास छोड़ा, तब उसी समय आकाश से यह घोड़ा गिरा ।४८। और जो आकाशवाणी हुई वह कहता हूँ, हे नरनाथ ! सुनो "हे द्विजश्रेष्ठ ! तुमको जो अश्व मिला है, यह सूर्य के समान विना थके समस्त पृथ्वीवलय गमन करने में समर्थ हैं । पाताल, आकाश,जल में इसकी गति नहीं रुकती ।४९-५०। समस्त दिशा तथा पर्वतों में भी विना

समस्तदिक्षु व्रजतो न संगः पर्वतेषु च । यतो भूवलयं सर्वमश्रान्तोऽयं चरिष्यति ।।५१
ततः कुवलयो नाम्ना ख्यातिं लोकेषु यास्यति । क्लिश्नात्यहर्निशं पापो यश्च त्वां दानवाधमः ।।५२
तमप्येनं समारुह्य द्विजश्रेष्ठ हनिष्यति । शत्रुजिन्नाम भूपालस्तस्य पुत्र ऋतध्वजः ।।५३
प्राप्यैतदश्वरत्नं च ख्यातिमेतेन यास्यति । सोऽहं त्वामनुसम्प्राप्तस्तपसो विघ्नकारिणम् ।।५४
तं निवारय भूपाल भागभाङ्नृपतिर्यतः । तदेतदश्वरत्नं ते मया भूप निवेदितम् ।।५५
पुत्रमाज्ञापय तथा यथा धर्मो न लुप्यते । स तस्य वचनाद्राजा तं वै पुत्रमृतध्वजम् ।।५६
तदश्वरत्नमारोप्य कृतकौतुकमङ्गलम् । अप्रैषयत धर्मात्मा गालवेन समं तदा ।।५७
स्वमाश्रमपदं सोऽपि तमादाय ययौ मुनिः ।।५८

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे मदालसोपाख्याने
कुवलयाश्वीयेऽष्टादशोऽध्यायः समाप्तम् ।१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः (२१)

कुवलयाश्वीयवर्णनम्

पितोवाच

गालवेन समं गत्वा नृपपुत्रेण तेन यत् । कृतं तत्कथ्यतां पुत्रौ विचित्रायुधयोधिना ।।१

रोक टोक के चल सकता है जो कि, यह अश्व बिना थके समस्त पृथ्वीवलय में जीने को समर्थ है । इस कारण यह सब लोकों में 'कुवलय' नाम से विख्यात होगा और जो पापी दानवाधम तुमको रात-दिन क्लेश देता है ।५१-५२। हे द्विजश्रेष्ठ ! शत्रुजित् नामक राजा का पुत्र ऋतध्वज इस अश्वरत्नपर चढ़कर उसका वध करेंगे ।५३। और इस अश्वरत्नद्वारा ख्यातिलाभ करेंगे, इसीलिये मैं आपके निकट आया हूँ, आप भी तपस्या के विघ्न करने वाले को ।५४। निवारण कीजिये हे भूपाल ! मेरे दिये इस अश्वरत्न को ग्रहण करके ।५५। पुत्र को इस प्रकार आज्ञा दीजिये कि, जिससे धर्मलोप न हो । तब धर्मात्मा राजा शत्रुजित् ने ब्राह्मण का यह वचन सुन, ऋतध्वज पुत्र को ।५६। कौतुक और मंगलाचार इत्यादि कराकर, उस अश्वरत्न पर चढ़ाकर मुनिवर गालव के संग भेजा ।५७। और मुनि ने भी उनको संग लेकर अपने आश्रम की ओर प्रस्थान किया ।५८

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मदालसोपाख्यान नामक अठ्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।१८।

अध्याय १९

कुवलयाश्व का वर्णन

पिता बोले—मुनिवर गालव के संग जाकर राजकुमार ने जो किया था, वह कहो । हे पुत्रो ! तुम्हारी कथा अत्यन्त विचित्र है ।१

पुत्रावूचतुः

स गालवाश्रमे रम्ये तिष्ठन्भूपालनन्दनः । सर्वविघ्नोपशमनं चकार ब्रह्मवादिनाम् ॥२
वीरः कुवलयाश्वं तं वसन्तं गालवाश्रमे । मदावलेपोपहतो नाजानाद्दानवाधमः ॥३
ततस्तं गालवं विप्रं संध्योपासनतत्परम् । सौकरं रूपमास्थाय प्रधर्षयितुमागमत् ॥४
मुनिशिष्यैरथोत्क्रुष्टे शीघ्रमारुह्य तं हयम् । अन्वधावद्वराहं तं नृपपुत्रः शरासनी ॥५
आजघान च बाणेन चन्द्रार्धाकारवर्चसा । आकृष्य बलवच्चापं चारुचित्रोपशोभितम् ॥६
नाराचाभिहतः शीघ्रमात्मत्राणपरो मृगः । गिरिपादपसम्बाधां सोऽत्यक्रामन्महाटवीम् ॥७
तमन्वधावद्वेगेन तुरगोऽसौ मनोजवः । चोदितो राजपुत्रेण पितुरादेशकारिणा ॥८
अतिक्रम्याथ वेगेन योजनानि सहस्रशः । धरण्यां विवृते गर्ते निपपात लघुक्रमः ॥९
तस्यानन्तरमेवाथ स चाश्वी नृपतेः सुतः । निपपात महागर्ते तिमिरौघसमावृते ॥१०
ततो नादृश्यत मृगः स तस्मिन्राजसूनुना । प्रकाशं च स पातालमपश्यत्तत्र चार्चिषा ॥११
ततोऽपश्यत्स सौवर्णं प्रासादशतसंकुलम् । पुरन्दरपुरप्रख्यं पुरं प्राकारशोभितम् ॥१२
तत्प्रविश्य च नापश्यत्तत्र कञ्चिन्नरं पुरे । भ्रमता च ततो दृष्टा तत्र योषित्त्वरान्विता ॥१३
सा पृष्टा तेन तन्वङ्गी प्रस्थिता क्वेति कस्य वा । नोवाच किञ्चित्प्रासादमारुरोह च भामिनी ॥१४
सोऽप्यश्वमेकतो बद्ध्वा तामेवानुससार वै । विस्मयोत्फुल्लनयनो निःशंको नृपतेः सुतः ॥१५

पुत्रों ने कहा—भूपालनंदन ऋतध्वज ने गालवमुनि के मनोहर आश्रम में वास करके ब्रह्मवादियों के समस्त विघ्न दूर किये थे।२। वीर कुवलयाश्व जो गालवमुनि के आश्रम में वास करते हैं, मद के गर्व से वह दानवाधम यह बात नहीं जान सका।३। इसी कारण वह सूकरमूर्त्ति धारण करके संध्योपासन में तत्पर हुए ब्राह्मण गालवजी को घर्षण करने लगा।४। तब मुनि के शिष्य ऊँचे स्वर से चीत्कार करने लगे। राजपुत्र भी उसी समय शरासनधारणपूर्वक उस अश्व पर शीघ्रतासहित चढ़ वराह को लक्ष्य करके दौड़े।५। और मनोहर चित्रता से शोभित धनुष बलपूर्वक खींचकर अर्द्धचन्द्रबाण से उसको ताडन किया।६। तब वह दैत्य उनके बाण से आहत हो आत्मरक्षा करनेमें तत्पर होकर पर्वत और महावन में भ्रमण करने लगा।७। और पिता की आज्ञा पालन करने वाले राजपुत्र के द्वारा प्रेरित होकर वह मन के समान वेगवान् अश्व भी वेगसहित उसके पीछे-पीछे गया।८। फिर वह लघुक्रम दानव वेगसहित सहस्र योजन अतिक्रम करके पृथ्वी के गर्भ में स्थित एक बड़े गड्ढे में गिरा।९। इसके पीछे वह अश्वारोही राजपुत्र भी वैसे ही उस अन्धकार से व्याप्त मार्ग में गिरे। किन्तु उस समय वह सूकर राजपुत्र को दिखाई नहीं दिया अनन्तर वह जब प्रकाशित पाताल में घुसे, तब भी उस दैत्य को नहीं देखा।१०-११। उस समय सुवर्णमय सैकड़ों महलों से व्याप्त परकोटे से शोभित अमरावती के समान एक पुरी उनको दिखाई दी।१२। उन्होंने उस पुरी में प्रवेश करके एक मनुष्य को भी नहीं देखा फिर इधर-उधर भ्रमण करते-करते शीघ्रतायुक्त वहाँ एक रमणी को देखा।१३। राजपुत्र ने उस कृशाङ्गी से पूछा "तुम किसके द्वारा प्रेरित होकर किसके निकट जाती हो ?" उस भामिनी ने उनके इस प्रकार पूछने पर कुछ उत्तर नहीं दिया वरन् वेगसहित महल पर चढ़ गई। राजपुत्र ने भी वैसे ही अश्व को एक स्थान में बांध विस्मयोत्फुल्लनेत्र हो निःशंक चित्त से उस कामिनी का अनुसरण किया अर्थात् वह

ततोऽपश्यत्सुविस्तीर्णे पर्यंके सर्वकाञ्चने । निषण्णां कन्यकामेकां कामयुक्तां रतिं यथा ।।१६
विस्पष्टेन्दुमुखीं सुभ्रूं पीनश्रोणीपयोधराम् । बिम्बाधरौष्ठीं तन्वङ्गीं नीलोत्पलविलोचनाम् ।।१७
रक्ततुङ्गनखां श्यामां मृदुताम्रकरांघ्रिकाम् । करभोरुं सुदशनां नीलसूक्ष्मस्थिरालकाम् ।।१८
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीमनङ्गाङ्गलतामिव । सोऽमन्यत्पार्थिवसुतस्तां रसातलदेवताम् ।।१९
सा च दृष्ट्वैव तं बाला नीलकुञ्चितमूर्धजम् । पीनोरःस्कन्धबाहुं तममंस्त मदनं शुभा ।।२०
उत्तस्थौ च शुभाचारा चित्तक्षोभमवाप सा । लज्जाविस्मयदैन्यानां सद्यस्तन्वी वशं गता ।।२१
कोऽयं देवोऽथ यक्षो नु गन्धर्वो वोरगोऽपि वा । विद्याधरो वा सम्प्राप्तः कृतपुण्या पतिर्नरः ।।२२
एवं विचिन्त्य बहुधा निःश्वस्य च महीतले । उपविश्य तदा भेजे सा मूर्च्छामदिरेक्षणा ।।२३
सोऽपि कामशराघातमवाप्य नृपतेः सुतः । तां समाश्वासयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ।।२४
सा च स्त्री या तदा दृष्टा पूर्वं तेन महात्मना । तालवृन्तमुपादाय पर्यवीजयदाकुला ।।२५
समाश्वस्ता तदा पृष्टा तेन सा मोहकारणम् । किञ्चिल्लज्जान्विता बाला तस्यै सख्यै न्यवेदयत् ।।२६
सा चास्मै कथयामास नृपपुत्राय विस्तरात् । मोहस्य कारणं सर्वं तद्दर्शनसमुद्भवम् ।।२७

भी उसका वृत्तान्त पूछने के लिये उसी कोठी पर चढ़ गये ।१४-१५। उन्होंने उस स्थान में प्रवेश करके देखा कि, सकामा रति के समान साक्षात् चन्द्रमुखी पीनश्रोणी और मनोहर कुचों वाली एक रमणी सुवर्ण के बने बड़े पर्यंक के ऊपर पौढ़ रही है, उसके बिम्बाफल के समान ओष्ठ, कृशाङ्गी और नीले कमल के समान दोनों नेत्र हैं ।१६-१७। उसके नख रक्तवर्ण और कुछ ऊँचे, नवीनवय श्यामा[1] शरीर कोमल, हाथ और पैर के तलुवे रक्तवर्ण, दोनों ऊरू हाथी के सूंड के समान, दाँत सुन्दर नीलवर्ण अलकें स्थिर और सूक्ष्म थीं ।१८। राजपुत्र ने अनंगलता के समान उस सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनी को देखकर उसको रसातल की देवता जाना ।१९। शुभमयी रमणी ने भी नीलवर्ण और घूँघरवाले केशों से विराजित चौड़ी छातीवाले पुष्ट स्कन्ध और पीन बाहु राजनन्द को देखकर मन में विचारा कि, यही रतिपति कामदेव हैं ।२०। तब वह कृशाङ्गी महाभाग्यवती चित्त में क्षोभ को प्राप्त हो सहसा उठी और उसी समय लज्जा, विनय तथा दीनता के वश हो गई ।२१। और विचारने लगी कि, "यह कौन हैं ? क्या यह देवता हैं ? या यक्ष हैं ? या गंधर्व हैं अथवा यह उरग विद्याधर हैं या कोई पुण्यवान् मनुष्य इस स्थान में आया है ?"।२२। वह मदिरेक्षणा लाल नेत्रोंवाली वहाँ इस भाँति नानाप्रकार की चिन्ता करके दीर्घ निःश्वास परित्यागपूर्वक बैठते ही तत्काल मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिर पड़ी ।२३। तब राजपुत्र भी उसी समय कामबाण के आघात से व्यथित हृदय हो "भय नहीं, भय नहीं" कहकर उसको समझाने लगे ।२४। और जो स्त्री उन महात्मा राजपुत्र को प्रथम दिखाई दी थी, वह ललना अत्यन्त व्याकुल होकर तालका पंखा ले उनको हवा करने लगी ।२५। अनन्तर राजपुत्र ने उसको समझा बुझाकर मूर्च्छा का कारण पूँछा, किन्तु उस लज्जावती कामिनी ने उनसे कुछ न कहकर अपनी सखी से सब वृत्तान्त निवेदन किया ।२६। तब उस भामिनी ने भी उनके पूछने पर उनके दर्शन से हुई मूर्च्छा का कारण और रमणी का समस्त वृत्तान्त

---

१. शीतकाल में जिसका देह सुखोष्ण और ग्रीष्मकाल में सुख शीतल होता है, तपे हुए सुवर्ण के समान जिसका वर्ण है, उस स्त्री को "श्यामा" कहते हैं ।

यथा तया समाख्यातं तद्वृत्तान्तं च भामिनी

सख्युवाच

विश्वावसुरिति ख्यातो दिवि गन्धर्वराट्प्रभो ॥२८
तस्येयमात्मजा सुभ्रूर्नाम्नाख्याता मदालसा । वज्रकेतोः सुतश्चोग्रो दानवोऽरिविदारणः ॥२९
पातालकेतुर्विख्यातः पातालान्तरसंश्रयः । तेनेयमुद्यानगता कृत्वा मायां तमोमयीम् ॥३०
अपहृत्य समानीता बालेयं दुष्टबुद्धिना । आगामिन्यां त्रयोदश्यामुद्वक्ष्यति किलासुरः ॥३१
स तु नार्हति चार्वङ्गीं शूद्रो वेदश्रुतिं यथा । अतीते च दिने बालां चात्मव्यापादनोद्यताम् ॥३२
सुरभिः प्राह नायं त्वां प्राप्स्यते दानवाधमः । मर्त्यलोकमनुप्राप्तं य एनं भेत्स्यते शरैः ॥३३
स ते भर्ता महाभागे ह्यचिरेण भविष्यति । अहं त्वस्याः सखी नाम्ना कुण्डलेति मनस्विनी ॥३४
सुता विन्ध्यवतः पत्नी वीरपुष्करमालिनः । हते भर्त्तरि शुंभेन तीर्थात्तीर्थमनुव्रता ॥३५
चरामि दिव्यया गत्या परलोकार्थमुद्यता । पातालकेतुर्दुष्टात्मा वाराहं वपुरास्थितः ॥३६
केनापि विद्धो बाणेन मुनीनां त्राणकारणे । तथाहं तत्त्वतोऽन्विष्य त्वरिताहमिहागता ॥३७
सत्यमेव स केनापि ताडितो दौष्ट्यमाचरन् । इयं च मूर्च्छामगमद्येन तत्कारणं शृणु ॥३८
त्वयि प्रीतिमती बाला दर्शनादेव मानद । देवपुत्रोपमे चारुवाक्यरूपादिशालिनि ॥३९

विस्तार सहित राजपुत्र के निकट वर्णन किया ।२७। उसने जो वृत्तान्त यथातथ्य कहा, वह सुनो ।

सखी ने कहा—हे प्रभो ! स्वर्ग में विश्वावसु नामक जो प्रसिद्ध गंधर्वराज है ।२८। यह सुभ्रू उन्हीं की कन्या है, मदालसा इसका नाम है, एक दिन यह उद्यान में क्रीड़ा कर रही थी, इसी अवसर में वज्रकेतु दानव का पुत्र पातालवासी उग्रमूर्ति शत्रुविदारण पातालकेतु नामक विख्यात दुरात्मा दानव ने तमोमयी माया फैलाकर ।२९-३०। इस असहाय बाला को हरण किया है । अब आनेवाली त्रयोदशी में वह दुष्टबुद्धि असुर इससे विवाह करेगा ।३१। किन्तु शूद्र जिस प्रकार वेदश्रुति का अधिकारी नहीं है इसी प्रकार वह भी इस सुन्दरी का योग्य पात्र नहीं है । जो हो, कल जिस समय यह आत्मघात करने को उद्यत हुई ।३२। उसी समय सुरभि ने कहा कि "यह अधम दानव तुमको प्राप्त नहीं कर सकेगा" इस मृत्युलोक में आकर जो पुरुष इसका बाणों से छेदन करेगा ।३३। वही पुरुष तत्काल तुम्हारा भर्त्ता होगा, मैं इसकी सखी हूँ और मेरा नाम कुण्डला है ।३४। मैं विन्ध्यवान् की मनस्विनी कन्या और वीर पुष्करमाली की पत्नी हूँ, मेरे स्वामी शुंभ के हाथ से मारे गये हैं, उनके पर लोक के लिये उद्यत हो मै दिव्य गति से तीर्थ-तीर्थ में विचरण करती हूँ, दुष्टात्मा पातालकेतु ने आज सूकररूप धारण किया था ।३५-३६। मुनियों की रक्षा करने के लिये किसी पुरुष ने बाण से उसको विद्ध किया है, यह सत्य है या नहीं मैं इसी बात की खोज में शीघ्र आई थी ।३७। यहाँ आकर देखा कि, उस दानवाधम को सत्य ही किसी पुरुष ने ताडन किया है और यह जो मूर्च्छित हुई थी, अब इसका भी कारण सुनिये ।३८। हे मानद ! आपका दर्शन करते ही यह बाला आपके प्रति अत्यन्त प्रीतिमती हुई है क्योंकि आप देखने में देवपुत्र के समान और मनोहर वाक्य इत्यादि अनेक प्रकार गुणशाली हैं।३९। किन्तु जिस मनुष्य ने इस दानव को विद्ध किया है उस पुरुष के

भार्या चान्यस्य विहिता येन विद्धः स दानवः । एतस्मात्कारणान्मोहं महान्तमियमागता ॥४०
यावज्जीवं च तन्वङ्गी दुःखमेवोपभोक्ष्यति । त्वय्यस्या हृदयं रागि भर्त्ता चान्यो भविष्यति ॥४१
यावज्जीवमतो दुःखं सुरभ्या नान्यथा वचः । अहं त्वस्याः प्रभो प्रीत्या दुःखिताऽत्र समागता ॥४२
यतो विशेषो नैवास्ति स्वसखीनिजदेहयोः । यद्येषाभिमतं वीर पतिमाप्नोति शोभना ॥४३
ततस्त्वहं तपः कुर्यां निर्व्यलीकेन चेतसा । त्वं तु को वा किमर्थं वा सम्प्राप्तोऽत्र महामते ॥४४
देवो दैत्यो नु गन्धर्वः पन्नगः किन्नरोऽपि वा । न ह्यत्र मानुषगतिर्न चेदृङ्मानुषी गतिः ॥४५
तत्त्वाख्याहि कोऽसि त्वं यथैवावितथं मया ॥

कुवलयाश्व उवाच

यन्मां पृच्छसि धर्मज्ञे कस्त्वं किं वा समागतः ॥४६
तच्छृणुष्वामलप्रज्ञे कथयाम्यादितस्तव । राज्ञः शत्रुजितः पुत्रः पित्रा सम्प्रेषितः शुभे ॥४७
मुनिरक्षणमुद्दिश्य गालवाश्रममागतः । कुर्वतो मम रक्षां च मुनीनां धर्मचारिणाम् ॥४८
विघ्नार्थमागतः कोऽपि शौकरं वपुरास्थितः । मया स विद्धो बाणेन चन्द्रार्द्धाकारवर्चसा ।४९
अपक्रान्तोऽतिवेगेन तमस्म्यनुगतो हयी । पपात सहसा गर्त्ते सक्रोधोऽश्वश्च मामकः ॥५०
सोऽहमश्वं समारूढस्तमस्येकः परिभ्रमन् । प्रकाशमासादितवान्दृष्टा च भवती मया ॥५१

अतिरिक्त यह दूसरे की भार्या नहीं हो सकती, इसी कारण यह अत्यन्त मोह को प्राप्त हुई थी ।४०। क्योंकि इसको जीवन पर्यन्त दुःख ही भोगना पड़ेगा, देखो इसका मन आपके प्रति अनुरक्त है, किन्तु अन्य पुरुष इसके भर्त्ता होंगे ।४१। कारण कि, सुरभि का वचन कभी मिथ्या नहीं होगा इसको यावज्जीवन दुःख ही भोगना पड़ेगा हे प्रभो ! स्नेह के वश हो दुःखित चित्त से मैं इसके निकट आई हूँ ।४२। क्योंकि सखी के देह में और अपनी देह में कोई विशेषता नहीं है अर्थात् मैं अपने देह को इसके देह से पृथक् नहीं समझती हूँ, यह शोभना यदि अपनी इच्छानुसार वीर पति को प्राप्त हो ।४३। तो मैं स्वस्थ चित्त से तपस्या करूँ । हे महामते ! आप कौन हैं ? और किसलिए यहाँ आये हैं ? ।४४। क्या आप देवता हैं, अथवा दैत्य, गंधर्व, पन्नग अथवा उरग हैं ? क्योंकि मनुष्य यहाँ नहीं आ सकता और मनुष्य का देह भी ऐसा नहीं होता ।४५। अतएव मैने जिस प्रकार आपसे अपना सत्य वृत्तान्त कहा है, इसी प्रकार आप भी मुझसे अपना सब सत्य वृत्तान्त कहिये ।

कुवलयाश्व ने कहा—हे धर्म जानने वाली ! "तुम कौन हो और किस कारण इस स्थान में आये हो ?" कहकर जो तुमने पूंछा है ।४६। मैं वह सब क्रम से कहता हूँ, हे निर्मलबुद्धिमती ! सुनो, मैं राजा शत्रुजित् का पुत्र हूँ, हे शुभे ! मैं पिता के द्वारा प्रेरित होकर ।४७। मुनियों की रक्षा करने के लिये गालवमुनि के आश्रम में आया था और वहाँ मैं धर्मचारी मुनियों की रक्षा करता था ।४८। उसी समय में कोई सूकरमूर्त्ति धारण करके उनके कार्य में विघ्न करने को आया । जब मैंने उसको अर्द्धचन्द्र बाण से विद्ध किया ।४९। तब वह अत्यन्त वेग से दौड़ने लगा और मैं भी घोड़ेपर चढ़ा हुआ उसके पीछे-पीछे दौडा । अनन्तर उसके एक गड्ढे में गिरने पर मैं घोड़े के सहित उसमें गिरा । फिर मैं घोड़े पर चढ़ा हुआ अकेला भ्रमण करते-करते जब प्रकाश स्थान में आकर उपस्थित हुआ, तब मैंने तुम्हें देखा ।५०-५१। तुमसे

पृष्टा च न च मे किञ्चिद्भवत्या दत्तमुत्तरम् । त्वां चैवानुप्रविष्टोऽहमिमं प्रासादामुत्तमम् ।।५२
इत्येतत्कथितं सत्यं न देवोऽहं न दानवः । न पन्नगो न गन्धर्वः किन्नरो वा शुचिस्मिते ।।५३
समस्ताः पूज्यपक्षा वै देवाद्या मम कुण्डले । मनुष्योऽस्मि विशङ्का ते न कर्त्तव्यात्र कर्हिचित् ।।५४

पुत्रावूचतुः

ततः प्रहृष्टा सा कन्या सखीवदनमुत्तमम् । लज्जाजडं वीक्षमाणा किञ्चिन्नोवाच भामिनी ।।५५
तत्सखी पुनरप्येनां प्रहृष्टा प्रत्युवाच ह । यथावत्कथितं तेन सुरभ्या वचनानुगम् ।।५६

कुण्डलोवाच

वीर सत्यमसन्दिग्धं भवताभिहितं वचः । नान्यत्र हृदयं ह्यस्य दृष्ट्वा स्थैर्यं प्रयास्यति ।।५७
चन्द्रमेवाधिका कान्तिः समुपैति रविं प्रभा । भूतिर्धन्यं धृतिर्धीरं क्षान्तिरभ्येति चोत्तमम् ।।५८
त्वयैव विद्धो सन्दिग्धं स पापो दानवाधमः । सुरभिः सा गवां माता कथं मिथ्या वदिष्यति ।।५९
तद्धन्येयं सभाग्या च त्वत्सम्बन्धमवेत्य वै । कुरुष्व वीर यत्कार्यं विधिनैव समाहितम् ।।६०

पुत्रावूचतुः

परवानहमित्याह राजपुत्रः सदा पितुः । सा च तं चिन्तयामास तुम्बरुं तत्कुले गुरुम् ।।६१

पूछने पर जब तुमने कुछ उत्तर नहीं दिया तब मैं तुम्हारा अनुसरण करके इस सुन्दर महल में उपस्थित हुआ ।५२। यह मैंने तुमसे सब सत्य ही कहा है । हे शुचिस्मिते ! देवता, दानव, पन्नग, गंधर्व अथवा किन्नर, मैं इनमें कोई नहीं हूँ ।५३। मैं मनुष्य हूँ, हे कुण्डले ! देवता इत्यादि सबही मेरे पूज्य हैं, मेरे मनुष्य होने में तुम किसी प्रकार की शंका मत करो ।५४

पुत्रों ने कहा—हे पिता ! तब वह भामिनी कन्या मदालसा अत्यन्त आह्लादित होकर लज्जा से मौन हो केवल सखी का सुन्दर वदन देखने लगी, कुछ कहा नहीं ।५५। तब सखी ने अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर मदालसा से कहा—हे सखि ! सुरभि का वचन करने में तत्पर इन्होंने यथार्थ ही कहा है, फिर राजपुत्र से कहा ।५६

कुण्डला बोली—हे वीर ! आपने जो कहा यह सब सत्य और निःसन्देह है, नहीं तो आपको देखकर इसका हृदय आप में इतनी स्थिरता को प्राप्त क्यों होता ।५७। क्योंकि अधिक कान्ति चन्द्रमा को ही प्राप्त होती है, प्रभा सूर्य को ही प्राप्त होती है, ऐश्वर्य धन्य पुरुष को ही प्राप्त होता है और धृति धीर पुरुष को और क्षान्ति उत्तम को ही प्राप्त होती है ।५८। अत एव आपने जो इस पापी दानवाधम को विद्ध किया है, इस विषय में संशय नहीं है, गोमाता सुरभि कभी मिथ्या नहीं कहेगी ।५९। अतएव आपके संग संबंध लाभ करके यह सखी धन्य और भाग्यवती हुई, इसलिए हे वीर ! विधि के अनुसार जो कर्त्तव्य है, आप उसका अनुष्ठान कीजिये ।६०

नागपुत्रों ने कहा—हे पिता राजपुत्र ! बोले कि मैं पराधीन हूँ मैं उन पिता की आज्ञा के बिना किस प्रकार इस बाला से विवाह कर सकता हूँ ?

स चापितत्क्षणात्प्राप्तो निगृहीतसमित्कुशः । मदालसायाः सम्प्रीत्या कुण्डलागौरवेण च ॥६२
प्रज्वाल्य पावकं हुत्वा मन्त्रवित्कृतमङ्गलाम् । वैवाहिके विधौ कन्यां प्रतिपाद्य यथागतम् ॥६३
जगाम तपसे धीमान्स्वमाश्रमपदं ततः । सा चाह तां सखी बालां कृतार्थास्मि वरानने ॥६४
संयुक्ताममुना दृष्ट्वा त्वामहं रूपशालिनीम् । तपस्तप्स्येऽहमतुलं निर्व्यलीकेन चेतसा ॥६५
तीर्थाम्बुधौतपापा च भवित्री नेदृशी यथा । तं चाह राजपुत्रं सा प्रश्रयोपनतं वचः ॥६६
गन्तुकामा निजसखी स्नेह विक्लवभाषिणी

कुण्डलोवाच

पुम्भिरप्यमितप्रज्ञे नोपदेशो भवद्विधे ॥६७
दातव्यः किमुत स्त्रीभिरतो नोपदिशामि ते । किं त्वस्यास्तनुमध्यायाः स्नेहाकृष्टेन चेतसा ॥६८
त्वया विश्रम्भिता चास्मि स्मारयाम्यरिसूदन । भर्त्तव्या रक्षितव्या च भार्या हि पतिना सदा ॥६९
धर्मार्थकामसंसिद्ध्यै भार्या भर्त्तुः सहायिनी । या च भार्या च भर्ता च परस्परमनुव्रतौ ॥७०
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि सङ्गतम् । कथं भार्यामृते धर्ममर्थं वा पुरुषः प्रभो ॥७१
प्राप्नोति काममर्थं वा तस्या त्रितयमाहितम् । तथैव भर्त्तारमृते भार्या धर्मादिसाधने ॥७२
न समर्था त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यं समुपाश्रिताः । देवतापितृभृत्यानामतिथीनां च पूजनम् ॥७३

आप ऐसा न कहें यह देवकन्या है, इससे विवाह कीजिये तब राजपुत्र के तथास्तु कहने पर उनके संग विवाह में संगत हो उस कन्या मदालसा ने अपने कुलगुरु तुम्बुरु को मन में स्मरण किया ।६१। चिन्ता करते ही वह मंत्रवित् तुम्बुरु भी उसी समय समिध और कुश ग्रहण करके वहाँ उपस्थित हुए, फिर मदालसा की प्रीति और कुण्डला के गौरवसहित आये ।६२। और घृत की आहुति देकर अग्नि को प्रज्वलित किया । मंगल के साज सजाये वैवाहिक विधानानुसार मदालसा को मिला कर वहाँ से अपने स्थान को गये ।६३। अर्थात् वह बुद्धिमान् अपने आश्रम में तप करने के निमित्त चले गये तब सखी कुण्डला ने मदालसा से कहा : हे वरानने ! मैं अब कृतार्थ हुई ।६४। रूपशालिनी तुमको इनके संग देखकर मैं प्रसन्न हुई अब मैं निर्विकल्प मन से तप करूँगी ।६५। अब जिससे फिर मुझको इस प्रकार न होना पड़े वैसा करने को तीर्थ के जल से स्नान कर पापरहित हो जाऊँगी, फिर वह राजपुत्र से नम्रताद्वारा कहने लगी ।६६। अभिलषित स्थान में जाने के लिये अपनी सखी के स्नेह से व्याकुल हो बोली ।

कुण्डला बोली—हे अपरिमितबुद्धिशालिन् ! प्राज्ञ पुरुष भी आपके समान पुरुष को उपदेश देने में समर्थ नहीं होते।६७। मैं स्त्री हूँ मेरी तो बात ही क्या है? अत एव आपको उपदेश नहीं देती किन्तु इस सखी के स्नेह से मेरा मन अत्यन्त खिंच गया है और आपके द्वारा विश्वासित होने के कारण हे अरिसूदन ! आपको किञ्चित् स्मरण कराती हूँ कि, पति को भार्या की सदा रक्षा और पालन करना चाहिये।६८-६९। भार्या भर्त्ता की सहायिनी होने पर सम्यक् प्रकार धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि का निमित्त होती है। भार्या और भर्त्ता दोनों ही जब परस्पर में वशीभूत होते हैं।७०। तभी धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की संगति होती है धर्मादि त्रिवर्ग भार्या में समाहित होने के कारण पुरुष जिस प्रकार भार्या के बिना कभी धर्म, अर्थ।७१। वा काम लाभ करने में समर्थ नहीं होता इसी प्रकार भार्या भी स्वामी के बिना धर्मादिसाधन में ।७२। समर्थ नहीं होती क्योंकि धर्म, अर्थ और काम दोनों को सम्यक् प्रकार से आश्रय करके स्थित है। देखो हे

न पुम्भिः शक्यते कर्त्तुमृते भार्यां नृपात्मज । प्राप्तोऽपि चार्थो मनुजैरानीतोऽपि निजं गृहम् ।।७४
क्षयमेति विना भार्यां कुभार्यासंग्रहेऽपि वा । कामस्तु तस्य नैवास्ति प्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते ।।७५
दम्पत्योः सहधर्मेण त्रयीधर्ममवाप्नुयात् । पुत्राणां योनिरन्या वै नान्यतो भार्यया विना ।।
पितॄन्पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरतिथीनपि ।।७६
पूजाभिरमरांस्तद्वत्साध्वीं भार्यां नरोऽवति । स्त्रियाश्चापि विना भर्ता धर्मकामार्थसन्ततिः ।।७७
नैव तस्मात्त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यमधिगच्छति । एतन्मयोक्तं युवयोर्गमिष्यामि यथेप्सितम् ।।७८
वर्ध त्वमनया सार्द्धं धनपुत्रसुखायुषा

पुत्रावूचतुः

इत्युक्त्वा सम्परिष्वज्य स्वसखीं तं नमस्य च ।।७९
जगाम दिव्यया गत्या यथाभिप्रेतमात्मनः । सोऽपि शत्रुजितः पुत्रस्तामारोप्य तुरङ्गमम् ।।८०
निर्गन्तुकामः पातालाद्विज्ञातो दनुसम्भवैः । ततस्तैःसहसोत्कुष्टं ह्रियते ह्रियते त्विति ।।८१
कन्यारत्नं यदानीतं दिवः पातालकेतुना । ततः परिघनिस्त्रिंशगदाशूलशरायुधम् ।।८२
दानवानां बलं प्राप्तं सह पातालकेतुना । तिष्ठ तिष्ठेति जल्पन्तस्ते तदा दानवोत्तमाः ।।८३
शरवर्षैस्तथा शूलैर्ववर्षुर्नृपनन्दनम् । स तु शत्रुजितः पुत्रस्ततस्तान्प्रतिवीर्यवान् ।।८४
चिच्छेद शरजालेन प्रहसन्निव लीलया । क्षणेन पातालतलमसिशक्त्यृष्टिसायकैः ।।८५

राजनन्दन ! देवता, पितृ, भृत्य और अतिथियों का पूजन ।७३। न होने से यह धर्माचरण करने में समर्थ नहीं होता । पुरुष के अनायास लब्ध अर्थ भी अपने घर लाने पर ।७४। स्त्री के न होने अथवा कुभार्या के संसर्ग से वह सम्पूर्ण ही क्षय को प्राप्त होता है । भार्या के न होने में जो काम नहीं रहता, यह तो प्रत्यक्ष ही प्रतीत होता है ।७५। अधिक क्या स्त्री और पुरुष दोनों ही यदि समान धर्म अवलम्बन करें तो त्रयीधर्मलाभ करने में समर्थ होते हैं । मनुष्यगण यदि साध्वी पत्नी को प्राप्त हों तो पुत्रोत्पादन से पितरों को, अन्नादि साधन से अतिथि को ।७६। और पूजादि द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने में समर्थ होते हैं, स्वामी के बिना स्त्री कभी धर्म, अर्थ और काम का सम्यक् प्रकार विस्तार नहीं होता ।७७। क्योंकि यह त्रिवर्ग दोनों के भाव में ही आश्रित है । जो हो, आप दोनों के निकट मेरा केवल यही निवेदन है कि, अब अनुमति दीजिये मैं यथाभिलषित स्थान में चली जाऊँ ।७८। आशार्वाद करती हूँ कि, आप इसके संग रहकर धन पुत्र सुख और आयु द्वारा वर्द्धित हों ।

नागराज के पुत्रों ने कहा—कुण्डला इस प्रकार कह अपनी सखी को आलिंगन और राजपुत्र को नमस्कार करके ।७९। दिव्यगति से अपने अभिलषित स्थान को चली गई । उस शत्रुजित् के पुत्र ऋतध्वज ने भी उस समय मदालसा को उस घोड़े पर चढ़ाकर ।८०। पाताल से निकलने की जैसे ही इच्छा की वैसे ही दानवों ने जान लिया "पातालकेतु स्वर्ग से जिस कन्यारत्न को लाया था उसको ही कोई हरण करता है" यह कहकर दानव चीत्कार करने लगे । तदनन्तर दानवसैन्य ने पातालकेतु के संग होकर परिघ, खड्ग, गदा, शूल और बाण इत्यादि ।८१-८२। समस्त दानवों की सेना ने पातालकेतु के साथ आयुध ग्रहण किये और वह ठहरो-ठहरो कहते-कहते ।८३। राजनन्दन के ऊपर शर और शूल इत्यादि अस्त्रों की वर्षा करने लगे तब अत्यन्त बलशाली शत्रुजित् के पुत्र ने ।८४। हँसते-हँसते लीलापूर्वक ही उनके समस्त अस्त्र अपने बाणों से काट डाले तब ऋतध्वज के बाणों से छिन्न-भिन्न असि, शक्ति,

छिन्नैः संछन्नमत्यर्थमृतध्वजशरोत्करैः । ततोऽस्त्रं त्वाष्ट्रमादाय चिक्षेप प्रति दानवान् ॥८६
तेन ते दानवाः सर्वे सह पातालकेतुना । ज्वालामालातितीव्रेण स्फुटदस्थिचयास्तदा ॥८७
निर्दग्धाः कापिलं तेजः समासाद्येव सागराः । ततः स राजपुत्रोऽश्वी निहत्यासुरसत्तमान् ॥८८
स्त्रीरत्नेन समं तेन समागच्छत्पितुः पुरम् । प्रणिपत्य च तत्सर्वं स तु पित्रे न्यवेदयत् ॥८९
पातालगमनं चैव कुण्डलायाश्च दर्शनम् । तद्वन्मदालसाप्राप्तिं दानवैश्चापि संगरम् ॥९०
वधश्च तेषामस्त्रेण पुनरागमनं तथा । इति श्रुत्वा पिता तस्य चरितं चारुचेतसः ॥९१
प्रीतिमानभवच्चैनं परिष्वज्याह चात्मजम् । सत्पुत्रेण त्वया पुत्र तारितोऽहं महात्मना ॥९२
भयेभ्यो मुनयस्त्राता येन सद्धर्मचारिणा । मत्पूर्वैः ख्यातिमानीतं मया विस्तारितं पुनः ॥९३
पराक्रमवता वीर त्वया तद्बहुलीकृतम् । यदुपात्तं यशः पित्रा धनं वीर्यमथापि वा ॥९४
तन्न ह्रापयते यस्तु स नरो मध्यमः स्मृतः । तद्वीर्यादधिकं यस्तु पुनरन्यत्स्वशक्तितः ॥९५
निष्पादयति तं प्राज्ञा वदन्ति नरमुत्तमम् । यः पित्रा समुपात्तानि धनवीर्ययशांसि वै ॥९६
न्यूनतां नयति प्राज्ञास्तमाहुः पुरुषाधमम् । तन्मया ब्राह्मणत्राणं कृतमासीद्यथा त्वया ॥९७
पातालगमनं यच्च यच्चासुरविनाशनम् । एतदभ्यधिकं वत्स तेन त्वं पुरुषोत्तमः ॥९८
तद्धन्योऽस्यथवा न त्वमहमेव गुणाधिकः । त्वां पुत्रमीदृशं प्राप्य श्लाघ्यं पुण्यवतामपि ॥९९
न सत्पुत्रकृतां प्रीतिमन्यः प्राप्नोति मानवः । पुत्रेण नातिशयितो यः प्रज्ञादानविक्रमैः ॥१००

ऋष्टि और बाणों से क्षणकाल में ही पाताल तक ।८५। परिपूर्ण हो गया और ऋतध्वज ने बड़े बाण छोड़े और छिन्न-भिन्न कर दिये, फिर राजपुत्र ने त्वाष्ट्र अस्त्र ग्रहण करके दानवों पर चलाया ।८६। तब उस ज्वालामालायुक्त भयंकर अस्त्र ने पाताल केतु के सहित दानवों की अस्थियों को तोड़ डाला ।८७। और वह क्षणकाल में ही कपिलमुनि के तेज से सगर के पुत्रों के समान भस्म हो गये । तदनन्तर वह राजपुत्र असुरकुल निहत करके उस स्त्रीरत्न के सहित घोड़ेपर चढ़कर पिता के नगर में आये और पिता को प्रणाम करके सब वृत्तान्त कहा ।८८-८९। पातालगमन, कुण्डला का दर्शन, मदालसाप्राप्ति, दानवों के संग युद्ध ।९०। अस्त्रद्वारा उनका निधन और पुनरागमन इत्यादि समस्त वृत्तान्त पिता से निवेदन किया । तब वह चारुचेता पुत्र का चरित्र इस प्रकार सुनकर ।९१। अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्र को आलिंगन करके कहने लगे हे वत्स ! तुझ सत्पुत्र ने मुझको तार दिया ।९२। जिसके द्वारा धर्मशील मुनिगण भय से रक्षित हुए हैं मैं भी उसी महात्मा सत्पात्र द्वारा तारित हुआ । हे वत्स ! मेरे पूर्व पुरुषगण जिसके द्वारा ख्यात हुए थे और मैंने जिसको विस्तारित किया था ।९३। हे वीर ! पराक्रमशील तुम्हारे द्वारा वह यश और भी बहुत हुआ ! देखो यश, बल वा धन पिता के द्वारा जो उपार्जित होता है ।९४। जो उसको नष्ट नहीं करता है अर्थात् रक्षित करता है, वह पुरुष मध्यम है और जो व्यक्ति उसकी अपेक्षा अधिक वीर्यशाली होकर अपनी शक्ति से उसको अधिक करता है ।९५। पंडितगण उसको उत्तम पुरुष कहकर कीर्त्तन करते हैं और जो व्यक्ति पितृ उपार्जित यश, बल वा धन को ।९६। नष्ट करता है उस पुरुष को अधम पुरुष कहकर पंडितगण कीर्त्तन करते हैं । जो हो हे वत्स ! मैंने पूर्व में तुम्हारे समान केवलमात्र ब्राह्मणों की रक्षा की थी ।९७। तुमने पातालगमन असुरविनाशन और ब्राह्मणों की रक्षा करने से मेरी अपेक्षा अधिक कार्य किया है अत एव तुम उत्तम पुरुष हो ।९८। हे बालक ! तुम धन्य हो और ऐसे गुणाधिक तुम सरीखे पुत्र को लाभ करके मैं पुण्यवानों में श्लाघनीय हुआ हूँ ।९९। हे वत्स ! जो पुरुष पुत्र द्वारा प्रज्ञा-दान या

धिक्तस्य जन्म यः पित्रा लोके विज्ञायते नरः । यत्पुत्राख्यातिमभ्येति तस्य जन्म सुजन्मनः ।।१०१
आत्मज्ञानी यतो धन्यो मध्यः पितृपितामहैः । मातृपक्षेण मात्रा च ख्याति याति नराधमः ।।१०२
तत्पुत्रधनवीर्यैस्त्वं विवर्धस्व सुखेन च । गन्धर्वतनया चेयं मा वियुज्यतु वै त्वया ।।१०३
इति पित्रा बहुविधं प्रियमुक्त्वा पुनः पुनः । परिष्वज्य स्वमावासं सभार्यः स विसर्जितः ।।१०४
स तया भार्यया सार्धं रेमे तत्र पितुः पुरे । अन्येषु च तथोद्यानवनपर्वतसानुषु ।।१०५
श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ प्रणिपत्य च सा शुभा । प्रातः प्रातस्ततस्तेन प्रणिपत्य सुमध्यमा ।।१०६
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे कुवलयाश्वीये एकोनविंशोऽध्यायः ।१९।

अथ विंशोऽध्यायः

कुवलयाश्ववर्णनम्

पुत्रावूचतुः

ततः काले बहुतिथे गते राजा पुनः सुतम् । प्राह गच्छाशु विप्राणां त्राणाय चर मेदिनीम् ।।१
अश्वमेतं समारुह्य प्रातः प्रातर्दिने दिने । आबाधा द्विजमुख्यानामन्वेष्टव्या सदैव हि ।।२
दुर्वृत्ताः सन्ति शतशो दानवाः पापबुद्धयः । तेभ्यो न स्याद्यथा बाधा मुनीनां त्वं तथा कुरु ।।३
स तथोक्तस्तदा पित्रा तथा चक्रे नृपात्मजः । परिक्रम्य महीं कृत्स्नां ववन्दे चरणौ पितुः ।।४

पराक्रम में अधिक नहीं होता, मेरा विचार है कि, वह पुरुष पुत्रजनित प्रीतिलाभ नहीं कर सकता ।१००। जो पुरुष पिता द्वारा लोक में विख्यात होता है, उसके जन्म को धिक्कार है किन्तु जो पुरुष पुत्र द्वारा ख्याति लाभ करता है, उसी सुजन्माका जन्म सार्थक है ।१०१। जो मनुष्य निज नाम से विख्यात होता है वही धन्य है और जो पुरुष मातृपक्ष द्वारा विख्यात होता है, वह नराधम है ।१०२। जो हो हे वत्स ! तुम धन, बल और सुख द्वारा वर्द्धित होओ और इस गंधर्वतनया का तुमसे वियोग न हो ।१०३। राजपुत्र पिता के द्वारा इस प्रकार सुनकर और आलिंगितहोकर भार्या के सहित अपने वास स्थान को चले गये ।१०४। और उस पत्नी मदालसा के संग पिता के भवन और अन्यान्य उद्यान वन और पर्वतसानु सब में क्रीडा करने लगे ।१०५। और वह शुभमयी सुमध्यमा मदालसा भी प्रतिदिन प्रातःकाल में सास और श्वशुरके दोनों चरणों की वन्दना करके उनकेसंग प्रसन्न रहने लगी ।१०६

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मदालसाख्यान नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।१९।

अध्याय २०

कुवलयाश्व-वर्णन

नागपुत्र बोले—अनन्तर कुछ काल बीतने पर राजा शत्रुजित् ने पुत्र ऋतध्वज से फिर कहा : हे वत्स ! तुम ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिये शीघ्र जाओ और पृथ्वी में विचरण करो ।१। प्रतिदिन प्रातःकाल में इस अश्व पर चढ़कर ब्राह्मण श्रेष्ठगणों की बाधारहित रक्षा करो ।२। पापात्मा और दुर्वृत्त सैकड़ों दानव हैं वे दानव जिससे मुनियों को बाधा न कर सकें तुम वैसा ही आचरण करो ।३। राजनन्दन इस प्रकार पिता की आज्ञा पाकर वही करने लगे, वह प्रतिदिन पूर्वाह्ण समय में पृथ्वीपर्यटन करके पिता

अहन्यहनि सम्प्राप्ते पूर्वाह्णे नृपनन्दनः । ततश्च शेषं दिवसं तया रेमे सुमध्यया ॥५
एकदा तु चरन्सोऽथ ददर्श यमुनातटे । पातालकेतोरनुजं तालकेतुं कृताश्रमम् ॥६
मायावी दानवः सोऽथ मुनिरूपं समाश्रितः । स प्राह राजपुत्रं तं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥७
राजपुत्र ब्रवीमि त्वां तत्कुरुष्व यदीच्छसि । न च ते प्रार्थनाभङ्गः कार्यः सत्यप्रतिश्रव ॥८
यक्ष्ये यज्ञेन धर्माय कर्त्तव्याश्च मयेष्टयः । चिन्तये तत्र कर्त्तव्या नास्ति मे दक्षिणा यतः ॥९
ततः प्रयच्छ मे वीर दक्षिणार्थे स्वभूषणम् । यदेतत्कण्ठलग्नं ते रक्ष चेमं ममाश्रमम् ॥१०
यावदन्तर्जले देवं वरुणं यादसां पतिम् । वैदिकैर्वारुणैर्मन्त्रैः प्रजानां पुष्टिहेतुकैः ॥११
अभिष्टूय त्वरायुक्तः समभ्येमीति वादिनम् । तं प्रणम्य ततः प्रादात्स तस्मै कण्ठभूषणम् ॥१२
प्राह चैनं भवान्यातु निर्व्यलीकेन चेतसा । स्थास्यामि तावदत्रैव तवाश्रमसमीपतः ॥१३
तवादेशान्महाभाग यावदागमनं तव । न तेऽत्र कश्चिदाबाधां करिष्यति मयि स्थिते ॥१४
विश्रब्धस्त्वं मुनिश्रेष्ठ कुरुष्व च मनोगतम् । एतदुक्तस्ततस्तेन स ममज्ज नदीजले ॥१५
अरक्षत्सोऽपि तस्यैव मायाविहितमाश्रमम् । गत्वा जलाशयात्तस्मात्तालकेतुश्च तत्पुरम् ॥१६
मदालसायाः प्रत्यक्षमन्येषां चैतदुक्तवान् । वीरः कुवलयाश्वोऽसौ ममाश्रमसमीपतः ॥१७
केनापि दुष्टदैत्येन कुर्वन्रक्षां तपस्विनाम् । युध्यमानो यथाशक्ति निघ्नन्ब्रह्मद्विषो युधि ॥१८
मायामाश्रित्य पापेन भिन्नः शूलेन वक्षसि । म्रियमाणेन तेनेदं दत्तं मे कण्ठभूषणम् ॥१९

के चरण युगल की वन्दना करते और शेष समय में सुमध्यमा के संग क्रीडा करते ।४-५। उन्होंने इस प्रकार का विचरण करते-करते एक समय देखा कि, पातालकेतु दानव का अनुज (भाई) तालकेतु यमुनातट पर आश्रम करके अवस्थान करता है ।६। इस मायावी दानव ने मुनिरूप अवलम्बन किया था, वह पहला वैर स्मरण करके राजपुत्र से कहने लगा ।७। कि, हे राजपुत्र ! जो कहता हूँ यदि इच्छा हो तो वह करो । हे सत्यप्रतिज्ञ ! आपने कभी किसी की प्रार्थना भंग नहीं की है ।८। हे राजतनय ! मैं यज्ञ करूँगा और अभिलषित इष्टि (यज्ञाङ्गविशेष) तथा अग्निचयन करूँगा, किन्तु मुझमें दक्षिणा देने की सामर्थ्य नहीं है ।९। अत एव हे वीर ! सुवर्णप्रदान के लिये अपना अंगभूषण कंठका यह अलंकार (गहना) मुझे दो और मेरे आश्रम की रक्षा करो ।१०। प्रजा के पुष्टिकारक वैदिक वारुणमंत्र से यादः पति वरुणदेव का जल में स्तव करके जब तक मैं न लौटूं आप तब तक मेरे आश्रम की रक्षा कीजिये ।११। मैं शीघ्र ही आता हूँ। उन कहते हुए मुनि को प्रणाम करके उन्होंने अपने कंठ का भूषण प्रदान किया।१२। और कहा, हे माहाभाग ! विश्वस्त हृदय से जाइये मैं तब तक इसी आश्रम के समीप रहूँगा।१३। जब तक आप लौटकर नहीं आवेंगे, तब तक मैं आपकी आज्ञानुसार यहाँ रहूँगा, मेरे रहने से कोई आपको बाधा नहीं करेगा।१४। हे मुनिश्रेष्ठ ! आप निःशंक होकर गमन करके अभिलषित विषय सम्पादन कीजिये, वह मायामुनि तालकेतु राजनन्दन से इस प्रकार सुनकर नदी के जल में निमग्न हुआ।१५। राजनन्दन उसके मायारचित आश्रम की रक्षा करने लगे अनन्तर तालकेतु उस जलाशय से निकल राजा शत्रुजित् के नगर में आया।१६। मदालसा और अन्यान्यलोकों के सामने यह बात कहने लगा कि, वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रम के समीप।१७। तपस्वियों की रक्षा करते थे, उन्होंने किसी दुष्ट दानव के सहित यथाशक्ति युद्ध किया और ब्रह्मद्वेष्टा असुर पर प्रहार किया।१८। परन्तु वह उस पापात्मा दानव के मायारूपी शूल से वक्षःस्थल में विदारित हुए हैं, उन्होंने उसके द्वारा मृतक होते समय मुझको यह कण्ठभूषण दे दिया है।१९। और वन में शूद्रतापसों के द्वारा

प्रापितश्चाग्निसंयोगं तरुवेश्मसु तापसैः । कृतार्तहेषाशब्दो वै त्रस्तः साश्रुविलोचनः ॥२०
नीतः सोऽश्वश्च तेनैव दानवेन दुरात्मना । एतन्मया नृशंसेन दृष्टं दुष्कृतकारिणा ॥२१
यदत्रानन्तरं कृत्यं कुरुष्वोत्तरकालिकम् । हृदयाश्वासनं चैतद्गृह्यतां कण्ठभूषणम् ॥२२
नास्माकं हि सुवर्णेन कृत्यमस्ति तपस्विनाम् । इत्युक्त्वोत्सृज्य तद्भूमौ स जगाम यथागतम् ॥२३
निपपात जनः सोऽथ शोकार्त्तो मूर्च्छयातुरः । क्षणेन चेतनां प्राप्य सर्वास्ता नृपयोषितः ॥२४
राजपत्न्यश्च राजा च विलेपुरतिदुःखिताः । मदालसा तु तद्दृष्ट्वा तदीयं कण्ठभूषणम् ॥२५
तत्याज सुप्रियान्प्राणाञ्छ्रुत्वा विनिहतं प्रियम् । ततः पुरे महाक्रन्दः पौराणां भवनेष्वभूत् ॥२६
यथैव तस्य नृपतेः स्वगृहे समवर्तत । राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम् ॥२७
प्रत्युवाच जनं सर्वं विमृश्य स्वस्थमानसः । न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा ॥२८
सर्वेषामेव सञ्चिन्त्य सम्बन्धानामनित्यताम् । किं नु शोचामि तनयं किं नु शोचाम्यहं स्नुषाम् ॥२९
विमृश्य कृतकृत्यत्वान्मन्ये शोच्यावुभावपि । मच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद्द्विजरक्षणतत्परः ॥३०
प्राप्तो मेऽद्य सुतो मृत्युं कथं शोच्यः स धीमताम् । अवश्यं याति यद्देहं तद्द्विजानां कृते यदि ॥३१
मम पुत्रेण सन्त्यक्तं नन्वभ्युदयकारि तत् । इयं च सत्कुलोत्पन्ना भर्त्तर्येवमनुव्रता ॥३२
कथं तु शोच्या नारीणां भर्तुरन्यन्न दैवतम् । अस्माकं बान्धवानां च तथान्येषां दयावताम् ॥३३

अग्निसंयोग को प्राप्त हुए हैं और वह नेत्रों में आँसू भरे दुःख से हींसता हुआ ।२०। घोड़ा उस दुरात्मा दानव ने ग्रहण कर लिया। उस पापात्मा नृशंस के द्वारा यह समस्त ही घटना देखी गयी है।२१। अब जो कर्त्तव्य हो आप वह समस्त उत्तरकालिक विधि सम्पादन कीजिये और यह हृदयाश्वासदायक उनका कंठभूषण ग्रहण कीजिये। मैं तपस्वी हूँ मेरा सुवर्ण से क्या प्रयोजन है? इस प्रकार कहकर तालकेतु कुवलयाश्व का कंठभूषण स्थापन कर जहाँ से आया था वहीं को चला गया।२२-२३। अब वहाँ के मनुष्यगण शोक से पीड़ित और मूर्च्छित होकर गिर पड़े, फिर चेतना लाभ करके राजा राजमहिषी।२४। और अन्यान्य सब राजस्त्रियाँ अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगीं मदालसा ने उनका कंठभूषण देख ।२५। और स्वामी की मरणवार्ता सुन अत्यन्त कातर होकर शीघ्र ही प्रिय प्राण परित्याग किया तब राजा के भवन में जिस प्रकार क्रन्दनध्वनि हुई उसी प्रकार पुरवासी प्रजा के प्रत्येक भवन में रुदन का महाशब्द होने लगा अनन्तर राजा शत्रुजित् पुत्रवधू मदालसा को भर्त्ता के वियोग से प्राणरहित देख ।२६-२७। विचारसहित मन को सावधान कर समीपवर्ती मनुष्यों से कहने लगे तुम कहो और हमको रोना नहीं चाहिये ।२८। मैं देखता हूँ कि, समस्त प्राणियों के सम्बन्ध की अनित्यता है क्या मै पुत्र का शोच करूँ वा पुत्र-वधू को शोचूँ।२९। दोनों कृतकृत्य होने के कारण अशोचनीय है, क्योंकि जिस मेरे पुत्र ने मेरी शुश्रूषा और मेरे ही वचनानुसार ब्राह्मणों की रक्षा में तत्पर होकर।३०। जब प्राणत्याग किया है तब उसपुत्र के लिये शोक करना बुद्धिमान् को उचित नहीं है। जो देह अवश्य ही जायगा मेरे पुत्र ने उस देह को ब्राह्मणों के निमित्त।३१। त्याग किया है तब वह शोचनीय नही है वरन् कल्याणकारी है और इस सत्कुलोत्पन्न ललना ने जब स्वामी का अनुगमन किया है।३२। तब फिर वह भी शोचनीय किस प्रकार हो सकती है? क्योंकि स्वामी के अतिरिक्त स्त्री का अन्य देवता नहीं है। यह स्वामी के वियोग होने पर यदि जीवित रहती

शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्रा वियोगिनी । या तु भर्तुर्वधं श्रुत्वा तत्क्षणादेव भामिनी ॥३४
भर्तारमनुयातेयं न शोच्याऽतो विपश्चिताम् । ताः शोच्या या वियोगिन्यः सह भर्त्रा कुलाङ्गनाः॥३५
कष्टभ्रान्त्या न गच्छन्ति कष्टदाः स्युः कुलात्मनोः । भर्तुर्वियोगस्त्वनया नानुभूतः कृतज्ञया ॥३६
दातारं सर्वसौख्यानामिह चामुत्र चोभयोः । लोकयोः का हि भर्त्तारं नारी मन्येत मानुषम् ॥३७
न स शोच्यो न चैवेह नायं तज्जननी न च । त्यजता ब्राह्मणार्थाय प्राणान्सर्वे स्म तारिताः ॥३८
विप्राणां मम धर्मस्य गतः स तु महामतिः । आनृण्यमर्द्धभुक्तस्य त्यागाद्देहस्य मे सुतः ॥३९
मातुः सतीत्वं मद्वंशवैमल्यं शौर्यमात्मनः । सङ्ग्रामे सन्त्यजन्प्राणान्सोऽविन्ददि्द्वजरक्षणात् ॥४०
ततः कुवलयाश्वस्य माता भर्तुरनन्तरम् । श्रुत्वा पुत्रवधं तावृक्प्राह हृष्टा तु तं पतिम् ॥४१
न मे मात्रा न मे स्वस्रा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेदृशी । श्रुत्वा मुनिपरित्राणे हतं पुत्रं यथा मया ॥४२
शोचतां ब्राह्मणानां ये निःस्वनेनातिदुःखिताः । म्रियन्ते व्याधिना क्लिष्टास्तेषां माता वृथा प्रजा॥४३
सङ्ग्रामे युध्यमाना ये भीता गोद्विजरक्षणे । क्षुण्णाः शस्त्रैर्विपद्यन्ते त एव भुवि मानवाः ॥४४
अर्थिनां मित्रवर्गस्य विद्विषां च पराङ्गमुखः । यो न याति पिता तेन पुत्री माता च वीरसूः ॥४५
गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्यं भजते तदा । यदारिविजयी वा स्यात्सङ्ग्रामे वा हतः सुतः ॥४६

तो मेरी बांधवगणों की और अन्यान्य दयावान् मनुष्यों की शोचनीय दशा होती । इसने जब स्वामी की मरणवार्त्ता सुनकर तत्काल प्राणत्याग किया है ।३३-३४। तब यह पंडितगणों को अशोचनीय है जो रमणी स्वामी के मरने पर भी जीवन धारण करतीहैं वही शोक के योग्य हैं ।३५। और जो स्वामी के सहित गमन करती हैं वह तो कभी शोचनीय नहीं है और जो कष्ट जानकर गमन नहीं करतीं वह अपने कुल को कष्ट देती हैं इसने कृतज्ञा होने से भर्त्ता के वियोग का अनुभव नहीं किया ।३६। इस लोक और परलोक दोनों लोक के समस्त सुखदाता स्वामी को कौन स्त्री मनुष्य समझती है ? ।३७। हमारा पुत्र या पुत्रवधू या मैं किंवा उसकी माता हम कोई शोक के उपयुक्त नहीं हैं, क्योकि ब्राह्मणों के निमित्त प्राणपरित्यागकारी उस पुत्र के द्वारा हम सब का ही उद्धार हुआ है । मेरा महामति पुत्र अर्द्धमुक्त देह का परित्याग करने के कारण ब्राह्मण से, मुझसे और धर्म से उऋण हुआ है ।३८-३९। ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त संग्राम में प्राणत्याग करने से माता का सतीत्व वंश निर्मलता और निजशूरता इन सब का कुछ भी उसके द्वारा त्याग नहीं हुआ ।४०। कुवलयाश्व की माता पुत्र की मरणवार्त्ता स्वामी के सुनने के बाद सुनकर स्वामी को देख प्रसन्न चित्त से उनके सामने कहने लगी ।४१। हे राजन् ! मुनि की रक्षा करते-करते संतान निहत हुई हैं यह सुनकर जिस प्रकार सुखी हुई हूँ माता वा बहन किसी के द्वारा मैं इस प्रकार सुखी नहीं हो सकती ।४२। जो शोचनीय बान्धवगणों के लिये अति दुख से श्वास लेते हुए व्याधि से क्लिष्ट होकर जीवन-विसर्जन करते हैं, उसकी माता वृथा संतान-जननी है ।४३। जो गौ वा ब्राह्मणों की रक्षा में संग्राम में निर्भय चित्त से युद्ध कर शस्त्र के द्वारा विपन्न होता है, पृथ्वी में उसको ही मनुष्य कहा जाता है ।४४। अर्थी मित्र और शत्रुगण जिससे पराङ्मुख नहीं होते उसी के द्वारा पिता पुत्रवान् कहाकर विख्यात होता है ।४५। पुत्र जब संग्राम में मृतक होता अथवा शत्रु को जीतकर लौटता है तभी स्त्री के गर्भक्लेश की सफलता होती है ।४६

पुत्रावूचतुः

ततः स राजा संस्कारं पुत्रपत्नीमलंभयत् । निर्गम्य च बहिः स्नातो ददौ पुत्राय चोदकम् ॥४७
तालकेतुश्च निर्गम्य तथैव यमुनाजलात् । राजपुत्रमुवाचेदं प्रणयान्मधुरं वचः ॥४८
गच्छ भूपालपुत्र त्वं कृतार्थोऽहं कृतस्त्वया । वाञ्छितं तु कृतं कार्यं त्वय्यत्रा विचले स्थिते ॥४९
वारुणं यज्ञकार्यं च जलेशस्य महात्मनः । तन्मया साधितं सर्वं यन्ममासीदभीप्सितम् ॥५०
प्रणिपत्य स तं प्रागाद्राजपुत्रः पुरं पितुः । समारुह्य तमेवाश्वं सुपर्णानिलविक्रमम् ॥५१

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे कुवलयाश्वीये विंशोऽध्यायः ।२०।

अथैकविंशोऽध्यायः

(22)

पातालप्रवेशवर्णनम्

पुत्रावूचतुः

स राजपुत्रः सम्प्राप्य वेगादात्मपुरं ततः । पित्रोर्ववन्दिषुः पादौ दिदृक्षुश्च मदालसाम् ॥१
स ददर्श तदुद्विग्नमप्रहृष्टमुखं पुरम् । पुनश्च विस्मिताकारं प्रहृष्टवदनं पुनः ॥२
अन्यमुत्फुल्लनयनं दिष्ट्या दिष्टयेति वादिनम् । परिष्वजन्तमन्योन्यमतिकौतूहलान्वितम् ॥३
स राजपुत्रो मित्रं तु उत्फुल्लनयनं शुभम् । आलिलिङ्ग तदा काले सौहृदेन परेण च ॥४

नागपुत्रों ने कहा—अनन्तर राजा शत्रुजित् ने पुत्रवधू का संस्कार किया और नगर के बाहर स्नान करके पुत्र के उद्देश्य से उदकाञ्जलि दी ।४७। इधर दानवाधम तालकेतु उसी प्रकार यमुना जल से निकल प्रणामपूर्वक मधुरवचनद्वारा राजपुत्र से कहने लगा ।४८। हे भूपालपुत्र ! मैं आपके द्वारा कृतार्थ हुआ आपने इस स्थान में अविचलित भाव से स्थित रहकर मेरा वाञ्छित कार्य किया है ।४९। इस कारण महात्मा जलपति वरुण का यज्ञकार्य जो मेरा अभिलषित था, वह मेरी माया से सिद्ध हुआ है, अत एव हे राजपुत्र ! अब आप जाइये ।५०। तब राजपुत्र मुनि को प्रणाम करके गरुड और वायु के समान विक्रमशाली उस घोड़े पर चढ़कर पिता के नगर में चले गये ।५१

इस प्रकार मदालसाख्यान वर्णन में बीसवां अध्याय समाप्त ।२०।

अध्याय २१

पाताल प्रवेश का वर्णन

नागपुत्र कहा—राजपुत्र ऋतध्वज ने पिता-माता के चरणों की वन्दना और मदालसा के देखने की इच्छा से शीघ्र नगर में पहुँच कर देखा ।१। कि, पुरवासी मनुष्यगण अत्यन्त उद्विग्न हैं और फिर प्रसन्नमुख हो कर उस समय विस्मित और प्रहृष्टवदन हुए ।२। और उत्फुल्लनेत्रों से "भाग्य-भाग्य कहने लगे" और परमस्नेह तथा कौतूहल से परस्पर को आलिंगन करने लगे ।३। और उस राजपुत्र ने खिले नेत्रवाले अपने उत्तम मित्र को परमप्रेम से उस समय हृदय से लगाया ।४। तब पुरवासी उनको देखकर धन्य भाग्य

ततः पौरास्तदालोक्य दिष्ट्या दिष्ट्येति वादिनः । चिरञ्जीवोरुकल्याण हतास्ते परिपन्थिनः ।।५
पित्रोः प्रह्लादय मनस्तथास्माकमकण्टकः । इत्येवंवादिभिः पौरैः पुरः पृष्ठे च संवृतः ।।६
तत्क्षणप्रभवानन्दः प्रविवेश पितुर्गृहम् । पिता च तं परिष्वज्य माता चान्ये च बान्धवाः ।।७
चिरञ्जीवोरुकल्याण ददौ चास्मै तदाशिषः । प्रणिपत्य ततः सोऽथ किमेतदिति विस्मितः ।।८
पप्रच्छ पितरं चाथ सोऽस्मै सर्वं तदुक्तवान् । स भार्यां तां मृतां श्रुत्वा हृदयेष्टां मदालसाम् ।।९
पितरौ च पुरा दृष्ट्वा लज्जाशोकविमध्यगः । चिन्तयामास सा बाला मां श्रुत्वा निधनं गतम् ।।१०
तत्याज जीवितं साध्वी धिङ्मां निष्ठुरमानसम् ।।११
मत्कृते निधनं प्राप्तां यज्जीवाम्यतिनिर्घृणः । पुनः स चिंतयामास परिसंस्तम्य मानसम् ।।१२
मोहोद्गममपास्यैवं निःश्वस्योच्छ्वस्य चातुरः । मृतेति सा मन्निमित्तं त्यजामि यदि जीवितम् ।।१३
किं मयोपकृतं तस्याः श्लाघ्यमेतत्तु योषिताम् । यदि रोदिमि वा दीनं हा प्रियेति वदन्मुहुः ।।१४
तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नो वयं हि पुरुषाः किल । अथ शोकजडो दीनोऽसृजा हीनो बलान्वितः ।।१५
विपक्षस्य भविष्यामि ततः परिभवास्पदम् । मयारिशातनात्कार्यं राज्ञः शुश्रूषणं पितुः ।।१६
जीवितं तस्य चायत्तं संत्याज्यं तत्कथं मया । किं त्वत्र मेऽन्यत्कर्त्तव्यं त्यागो भोगस्य योषितः ।।१७
स चापि नोपकाराय तन्वंग्याः किं तु सर्वथा । मयानृशंस्यं कर्त्तव्यं नापकार्युपकारि वा ।।१८

धन्य भाग्य ऐसा कहने लगे हे । बड़े कल्याणवाले ! दीर्घजीवी होओ, तुम्हारे समस्त शत्रु विनष्ट हों ।५। और माता-पिता तथा हमारे चित्त को परम आह्लादित करो इस प्रकार कहते-कहते उनके आगे पीछे एकत्र हुए ।६। उन्होंने उनसे परिवेष्टित और तत्काल आनन्द से आनन्दित होकर पिता के मन्दिर में प्रवेश किया तब पिता-माता और अन्यान्य बन्धुगण ।७। उनको आलिंगन करके चिरंजीवी होओ यह कल्याणमय आशीर्वाद देने लगे । इसके बाद राजपुत्र ने उनको प्रणाम करके हे तात ! यह क्या ? इस प्रकार विस्मित चित्त से पूँछा ।८। तब उन्होंने राजपुत्र से सब वृत्तान्त ज्यों का त्यों कह दिया । राजपुत्र उस प्राणप्रिय भार्या मदालसा की मृत्युवार्त्ता सुनकर पिता-माता को सन्मुख देख लज्जा और शोकसागर में निमग्न हो चिन्ता करने लगे कि हा ! जब उस साध्वी बाला ने मेरी मरणवार्त्ता सुनकर ।९-१०। प्राण परित्याग किया है तब इस निष्ठुरमन वाले मुझको धिक्कार है, हा ! मैं नृशंस और अनार्य हूँ जो उस मृगलोचना के बिना जीता हूँ।११। मेरे निमित्त जिसने प्राण त्याग किया है, उस मृगलोचना के बिना यदि मैं जीवित रहूँ तो निःसन्देह अत्यन्त निर्दयी हूँ फिर वह चिन्ताकर मन को रोक।१२। अत्यन्त कातर हो लम्बे-लम्बे श्वास लेते हुए मोह को रोककर फिर चिन्ता करने लगे, उस कामिनी ने मेरे लिये प्राण-त्याग किया है मैं भी यदि उसके निमित्त प्राण-त्याग करूँ।१३। तो मैंने उसका क्या उपकार किया है किन्तु यह स्त्रियों को ही श्लाघनीय है यदि हा प्रिये ! हा प्रिये ! कहकर रोदन करूँ।१४। वह भी प्रशंसनीय नहीं है क्योंकि हम पुरुष हैं और मैं बलवान् होकर भी शोकाकुल और दीन होकर यदि रक्तहीन हो जाऊँ तो ।१५। शत्रु तिरस्कार करेंगे, क्योंकि वैरियों का नाश और पिता की सेवा करना मेरा एकमात्र कार्य है।१६। कारण कि, मेरा जीवन इसी के अधीन है अत एव यह जीवन परित्याग करना कभी उचित नहीं है किन्तु मैं विचार करता हूँ कि, अन्य स्त्रीगमन का भी मेरा त्याग है।१७। यद्यपि इससे भी उस तन्वङ्गी का कोई उपकार नहीं हो सकता तो भी मेरा यही कर्त्तव्य है। इससे उसका उपकार हों अथवा अपकार

या मदर्थेऽत्यजत्प्राणांस्तदर्थेऽल्पमिदं मम ॥

पुत्रावूचतुः

इति कृत्वा मतिं सोऽथ निष्पाद्यौदकदानिकम् ॥१९

क्रियाश्चानन्तरं कृत्वा प्रत्युवाच ऋतध्वजः । यदि सा मम तन्वङ्गी न स्याद्भार्या मदालसा ॥२०

अस्मिञ्जन्मनि नान्या मे भवित्री सहचारिणी । तामृते मृगशावाक्षीं गन्धर्वतनयामहम् ॥२१

न भोक्ष्ये योषितं काञ्चिदिति सत्यं मयोदितम् । स धर्मचारिणीं पत्नीं तां मुक्त्वा गजगामिनीम् ॥२२

काञ्चिन्नान्यां करिष्यामि तेन सत्यं मयोदितम् । एवं सर्वान्परित्यज्य स्त्रीभोगांस्तात सर्वदा ॥२३

क्रीडन्नास्ते समं तुल्यैर्वयस्यैः शीलसम्पदा । एतत्तस्य परं कार्यं तात तत्केन साध्यते ॥२४

कर्त्तुमत्यन्तदुष्प्राप्यमीश्वरैः किमुतेतरैः ॥

जड उवाच

इति वाक्यं तयोः श्रुत्वा विमर्शमगमत्पिता ॥२५

विमृश्य चाह तौ पुत्रौ नागराट्प्रहसन्निव । यद्यशक्यमिति श्रुत्वा न करिष्यन्ति मानवाः ॥२६

कर्मण्युद्यममुद्योगहान्या हानिस्ततः परम् । आरभेत नरः कर्म स्वपौरुषमहापयन् ॥२७

निष्पत्तिः कर्मणां दैवे पौरुषे च व्यवस्थिता । तस्मादहं तथा यत्नं करिष्ये पुत्रकार्यतः ॥२८

तपश्चर्यां समास्थाय यथैतत्साध्यतेऽचिरात् ॥

हो मैं इस प्रकार नृशंसता का आचरण करूँगा ।१८। जिसने मेरे निमित्त प्राण तक त्याग कर दिया है उसके लिये तो यह सामान्य कार्य है ।

नागपुत्र बोले—ऋतध्वज ने इस प्रकार निश्चय कर जलदान आदि करके ।१९। और तदनन्तर समस्त कर्त्तव्य क्रिया सम्पादन करके कहा-जब वह मेरी भार्या तन्वङ्गी मदालसा नहीं है ।२०। तो इस जन्म में दूसरी कोई स्त्री मेरी सहचारिणी नहीं हो सकेगी मैं सत्य कहता हूँ कि, उस मृगशावाक्षी गन्धर्वतनया के अतिरिक्त मैं ।२१। दूसरी स्त्री से संभोग नहीं करूँगा यह मेरा सत्य वचन है मैं उस सद्धर्मचारिणी गजगामिनी पत्नी को परित्याग कर ।२२। अन्य किसी स्त्री को अंगीकार नहीं करूँगा, यह भी यथार्थ कहता हूँ ।

नागपुत्र बोले—हे तात ! वह उस मदालसा के अतिरिक्त अन्य सब स्त्री संभोग त्याग कर ।२३। स्वभाव और सम्पदा द्वारा अपनी समान अवस्था वालों के सहित सदा क्रीड़ा करते रहते हैं । हे पिता ! उनके पक्ष में यही एकमात्र प्रधान कर्त्तव्य कार्य है । हे तात ! इसमें किसी की सामर्थ्य नहीं है ।२४। यह ईश्वर को भी अत्यन्त दुष्प्राप्य है । दूसरे मनुष्य की तो फिर बात ही क्या है ।

जड़ ने कहा—उनके इस प्रकार वचन सुनकर पिता नागराज अश्वतर अत्यन्त विचार में पड़ गये । और विचारपूर्वक हँसते-हँसते दोनों पुत्रों से कहने लगे, सामर्थ्य से बाहर होने के कारण मनुष्यगण जो कर्म का उद्योग नहीं करते ।२५-२६। उस उद्योगहानि से ही उनकी अत्यन्त हानि होती है, अपना पौरुष नष्ट न करके मनुष्य कार्य आरम्भ करते हैं ।२७। क्योंकि दैव वा पौरुष में ही कर्म की निष्पत्ति स्थित है अत एव हे दोनों पुत्रों ! मैं ऐसा करूँगा, जिससे कार्य बने ।२८। मैं तपस्या का आचरण कर ऐसा यत्न करूँगा, जिससे यह शीघ्र सिद्ध हो ।

पुत्र उवाच

एवमुक्त्वा स नागेन्द्रः प्लक्षावतरणं गिरेः ॥२९
तीर्थं हिमवतो गत्वा तपस्तेपे सुदुश्चरम् । तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिस्तत्र देवीं सरस्वतीम् ॥३०
तन्मना नियताहारो भूत्वा त्रिषवणाप्लुतः ॥

अश्वतर उवाच

जगद्धात्रीमहं देवीमारिराधयिषुः शुभाम् ॥३१
स्तोष्ये प्रणम्य शिरसा ब्रह्मयोनिं सरस्वतीम् । सदसद्देवि यत्किंचिन्मोक्षबन्धार्थवत्पदम् ॥३२
तत्सर्वं त्वय्यसंयोगं योगवद्देवि संस्थितम् । त्वमक्षरं परं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३३
अक्षरं परमं ब्रह्म जगच्चैतत्क्षरात्मकम् । दारुण्यवस्थितो वह्निर्भौमाश्च परमाणवः ॥३४
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः । ओंकाराक्षरसंस्थानं यत्ते देवि स्थिरास्थिरम् ॥३५
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद्देवि नास्ति च । त्रयो लोकास्त्रयो देवास्त्रैविद्यं पावकत्रयम् ॥३६
त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा । त्रयो गुणास्त्रयः शब्दास्त्रयो दोषास्तथाश्रमाः ॥३७
त्रयः कालास्तथावस्थाः पितरोऽहर्निशादयः । एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति ॥३८
विभिन्नदर्शिनामाद्या ब्रह्मणो हि सनातना । सोमसंस्था हविः संस्थाः पाकसंस्थाश्च सप्त याः ॥३९
तास्त्वदुच्चारणाद्देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः । अनिर्देश्यं तथा चान्यदर्द्धमात्राश्रितं परम् ॥४०

पुत्र ने कहा—यह बात कहकर वह नागराज अश्वतर हिमालय पर्वत के प्लक्षावतरण नामक तीर्थ में जाकर ।२९। दुश्चर तपस्या करने लगे । इसके उपरान्त वह उसी में मन लगाये परिमित भोजन कर तीनों काल में स्नान करके वचन द्वारा सरस्वती का स्तवन करने लगे ।३०

अश्वतर बोले—मैं शुभमयी जगज्जननी देवी के आराधना की इच्छा करके ।३१। उन ब्रह्म का स्थान सरस्वती को मस्तक द्वारा प्रणामपूर्वक स्तुति करता हूँ, हे देवी ! मोक्षयुक्त वा अर्थयुक्त सत् असत् स्वरूप जो सब पद हैं।३२। वह समस्त ही तुममें असंयुक्त होकर भी संयुक्त के समान सम्यक् प्रकार अवस्थित रहते हैं । हे देवि ! तुम परम अक्षर हो और तुम में ही सब प्रतिष्ठित हैं ।३३। किन्तु समस्त अक्षर परमाणु के समान तुम में ही स्थित हैं। अक्षरस्वरूप परमब्रह्म और क्षरात्मक यह विश्वभी तुम में ही अवस्थित है। अनल और भौम के समस्त परमाणु जिस प्रकार काष्ठ में अवस्थान करते हैं।३४। इसी प्रकार परब्रह्म और अशेष जगत् तुम में ही विद्यमान है। हे देवि ! ओंकार अक्षर संस्थान और स्थिरास्थिर ।३५। अर्थात् सदसत् सम्पूर्ण पदार्थ तुममें ही वर्त्तमान रहते हैं । हे माता ! तीन लोक, तीन वेद तीन विद्या, तीन अग्नि ।३६। तीन ज्योति, तीन वर्ग, तीन धर्मादि, तीन गुण, तीन शब्द, तीन दोष, तीनों आश्रम।३७। तीन काल, तीन अवस्था एवं पितृ और दिन-रात इत्यादि यावतीय वस्तु जो तीन मात्रा का स्वरूप हैं।३८। पृथक्पृथक् सम्प्रदाययुक्त पुरुषों के लिये सोमसंस्था और हविःसंस्था पाकसंस्थारूप से आद्य और सनातन सप्तविध व्याहृति वेद में निरूपित हुई हैं।३९। ब्रह्मवादिगण एकमात्र तुम्हारे ही कीर्त्तन में वह सम्पूर्ण समाहित करते हैं। हे माता ! उल्लिखितरूप के अतिरिक्त आपका और एक जो अनिर्दश्य परमरूप

अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम् । तवैव च परं रूपं यन्न शक्यं मयेरितुम् ।।४१
न चास्येन न वा जिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते । इन्द्रोऽपि वसवो ब्रह्मा चन्द्रार्कौ ज्योतिरेव च ।।४२
विश्वासं विश्वरूपं विश्वेशं परमेश्वरम् । सांख्यवेदान्तवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम् ।।४३
अनादिमध्यनिधनं सदसन्नः सदेव तु । एकं त्वनेकमप्येकं भवभेदसमाश्रितम् ।।४४
अनाख्यं षड्गुणाख्यं च षट्काख्यं त्रिगुणाश्रयम् । नानाशक्तिमतामेकं शक्तिवैभाविकं परम् ।।४५
सुखासुखमहत्सौख्यं रूपं तव विभाव्यते । एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं जगत् ।।४६
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ।।

येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये ये वा स्थूला ये च सूक्ष्माच्च सूक्ष्माः ।।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा तेषां सत्यं त्वत्त एवोपलब्धिः ।।४७
यच्चामूर्तं यच्च मूर्तं समस्तं यद्वा भूतेष्वेकमेकं च किञ्चित् ।
यद्दिव्येऽस्ति क्ष्मातले खेऽन्यतो वा तत्सम्बन्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च ।।४८

जड उवाच

एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती । प्रत्युवाच महात्मानं नागमश्वतरं ततः ।।४९

है, जिसको अर्द्धमात्रा कहते हैं। वह भी इसी प्रकार अविकारी अक्षय और अशेष हैं। हे माता ! मेरी ऐसी शक्ति नहीं है कि, जिसके द्वारा आपके इस परमरूप का निर्देश करने में समर्थ हूँ ।४०-४१। क्योंकि वदन, जिह्वा, तालु और ओष्ठादिद्वारा उसका उच्चारण नहीं होता । इन्द्र, वसुगण, ब्रह्मा, चन्द्र, सूर्य अथवा अन्यान्य ज्योतिर्मय पदार्थ समस्त उसका स्वरूप है ।४२। वही विश्व का आवास विश्व का स्वरूप, विश्व का ईश्वर, और परमेश्वर है । सांख्य वेदान्त और तर्कशास्त्र में जो कथित हुआ है कि वेद की अनेक शाखाओं से जो स्थिरीकृत हुआ है ।४३। जिसका आदि मध्य और अन्त नहीं है, जो सत् और असत् है संसार के भेद समाश्रय में जो एक-अनेक और नाना प्रकार है ।४४। जिसकी आख्या नहीं है एवं गुणषट्क और वर्ग' समस्त ही जिसकी आख्या हैं, जो त्रिगुणावलम्बी हैं, जो नाना प्रकार शक्तिमान् मनुष्यों की शक्ति का परमविभवसंपन्न ।४५। और जो सुख असुख तथा महासुखरूप है । हे माता ! तुममें ही वह सब लक्षित होता है । हे देवि ! इसी प्रकार सकल और निष्कल समस्त जगत् ही तुम्हारे द्वारा व्याप्त हुआ है ।४६। और जो अद्वैतावस्थित एवं ब्रह्म है वह भी तुम्हारे द्वारा व्याप्त हुआ है, जो अर्थ नित्य और जो अनित्य है जो स्थूल और जो सूक्ष्म है और जो पृथ्वी अंतरिक्ष में या अन्यत्र विद्यमान है । हे देवि ! तुमसे ही उन सब पदार्थों की प्राप्ति होती है ।४७। हे माता ! जो वस्तु मूर्तियुक्त वा अमूर्त्त है जो सब प्राणियों में कुछ-कुछ विद्यमान है, जो स्वर्ग में, पृथ्वीतल में, अन्तरिक्ष में वा अन्यान्य स्थान में वर्त्तमान है । हे देवि ! तुम्हारे स्वर और व्यञ्जन द्वारा ही उन सब पदार्थों का ज्ञान होता है ।४८

जड ने कहा—विष्णुजिह्वासरस्वती ने नागराज के द्वारा स्तुति किये जाने पर महात्मा अश्वतर नाग से इस प्रकार कहा ।४९

सरस्वत्युवाच

वरं ते कम्बलभ्रातः प्रयच्छाम्युरगाधिप । तदुच्यतां प्रदास्यामि यत्ते मनसि वर्त्तते ॥५०

अश्वतर उवाच

साहाय्यं देवि देहि त्वं पूर्वं कम्बलमेव च । समस्तस्वरसम्बद्धमुभयोः सम्प्रयच्छ च ॥५१

सरस्वत्युवाच

सप्त स्वरा ग्रामरागाः सप्त पन्नगसत्तम । गीतकानि च सप्तैव तावत्यश्चापि मूर्च्छनाः ॥५२
तानाश्चैकोनपञ्चाशत्तथा ग्रामत्रयं च यत् । एतत्सर्वं भवान्वेत्ता कम्बलश्चैव तेऽनघ ॥५३
ज्ञास्यते मत्प्रसादेन भुजगेन्द्र परं तथा । चतुर्विधं परं तालं त्रिप्रकारं लयत्रयम् ॥५४
गतित्रयं तथा तालं मया दत्तं चतुर्विधम् । एतद्भवान्मत्प्रसादात्पन्नगेन्द्रापरं च यत् ॥५५
आस्यान्तर्गतमायत्तं स्वरव्यञ्जनयोश्च यत् । तदशेषं मया दत्तं भवतः कम्बलस्य च ॥५६
यथा नान्यस्य भूलोके पाताले वापि पन्नग । प्रणेतारौ भवन्तौ च सर्वस्याद्य भविष्यतः ॥५७
पाताले देवलोके च भूर्लोके चैव पन्नगौ ॥

जड उवाच

इत्युक्त्वा सा तदा देवी सर्वजिह्वा सरस्वती ॥५८
जगामादर्शनं सद्यो नागस्य कमलेक्षणा । तयोश्च तद्यथावृत्तं भ्रात्रोः सर्वमजायत ॥५९

सरस्वती बोली—हे कम्बलभ्राता उरगाधिप ! मैं तुमको वर दूँगी अत एव तुम्हारे मन में जो इच्छा हो कहो, वही दूँगी ।५०

अश्वतर ने कहा—हे माता ! मेरे पूर्व सहायक कम्बल और मुझे इन दोनों को ही समस्त स्वर का सम्बन्ध अर्थात् श्रुति ग्राम और मूर्च्छनादि समस्त ही प्रदान कीजिये ।५१

सरस्वती ने कहा—हे पन्नगसत्तम ! तुम और कम्बल दोनों ही आज से मेरे प्रसाद द्वारा उत्तम गायक होगे और सप्त स्वर ग्राम के सात राग, सात गीत, समस्त मूर्च्छना ।५२। (४९) प्रकार की ताल और तीन प्रकार के ग्राम हे अनघ ! तुम यह समस्त ही कम्बल के सहित गान कर सकोगे ।५३। हे पन्नगाधिप ! और भी चार प्रकार के पद, तीन प्रकार की ताल, त्रिविध लय मेरे प्रसाद से जानोगे, ।५४। तीन प्रकार की गति और चार प्रकार की वाद्य ताल तुमको प्रदान करती हूँ । तुमको मेरे प्रसाद से यह और इसके अतिरिक्त समस्त भली प्रकार विदित होगा ।५५। और इन सब के अन्तर्गत एवं आयत्त स्वर और व्यंजन, सम्मित जो कुछ वर्त्तमान है, वह समस्त विषय तुमको और कम्बल को प्रदान किया ।५६। अधिक क्या हे सर्पराज ! स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में तुम दोनों ही समस्त विषय के प्रणेता होगे और इससे तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं रहेगा ।

जड़ ने कहा—विष्णु की जिह्वास्वरूपिणी सरस्वती ।५७-५८। कमलनयना यह कहकर तत्काल अन्तर्धान हो गई फिर पन्नगराज उनको नहीं देख सके । उनके वरप्रसाद से दोनों भाई पूर्वकथित सम्पूर्ण

विज्ञानमुभयोरग्र्यं पदतालस्वरादिकम् । ततः कैलासशैलेन्द्रशिखरस्थितमीश्वरम् ।।६०
गीतकैः सप्तभिर्नागौ तंत्रीलयसमन्वितैः । आरिराधयिषू देवमनङ्गाङ्गहरं हरम् ।।६१
प्रचक्रतुः परं यत्नमुभौ संहतवाक्कलौ । प्रातर्निशायां मध्याह्ने संध्ययोश्चापि तत्परौ ।।६२
ततः कालेन महता स्तूयमानो वृषध्वजः । तुतोष गीतकैस्तौ च प्राह संगृह्यतां वरः ।।६३
ततः प्रणम्याश्वतरं कम्बलेन समं तदा । विज्ञापयन्महादेवं शितिकण्ठमुमापतिम् ।।६४
यदि नौ भगवन्प्रीतो देवदेव त्रिलोचन । ततो यथाभिलषितं वरमेनं प्रयच्छ नौ ।।६५
मृता कुवलयाश्वस्य पत्नी देव मदालसा । तेनैव वयसा सद्यो दुहितृत्वं प्रयातु मे ।।६६
जातिस्मरा यथापूर्वं तद्वत्क्षान्तिसमन्विता । योगिनी योगमाता च जायतां वचनात्तव ।।६७

ईश्वर उवाच

यथोक्तं पन्नगश्रेष्ठ सर्वमेतद्भविष्यति । मत्प्रसादादसन्दिग्धं शृणु चेदं भुजङ्गम ।।६८
श्राद्धावसाने प्राश्नीथा मध्यमं पिण्डमात्मना । कामं चेमामनुध्यायन्कुरु त्वं पितृपूजनम् ।।६९
तत्क्षणादेव सा सुभ्रूर्भवतो मध्यमात्फणात् । समुत्पत्स्यति कल्याणी तथारूपा यथा मृता ।।७०
स्वयमेवोपभुञ्जस्व ततः सर्वं भविष्यति । उत्पत्स्यते ततः सा तु सत्यं वै मध्यमात्फणात् ।।७१
एतच्छ्रुत्वा ततस्तौ तु प्रणिपत्य महेश्वरम् । रसातलमनुप्राप्तौ परितोषसमन्वितौ ।।७२

विषय के ज्ञाता हुए ।५९। पद, ताल और स्वरादि विषय में उनकी अद्वितीय व्युत्पत्ति उत्पन्न हुई तब कैलास शिखर में स्थित ईश्वर ।६०। पापनाशी काम का अंग हरने वाले शंकर की तन्त्रीलय सहित सप्तस्वर से गान कर आराधना करने लगे ।६१। एवं वाक्य और इन्द्रियसमूह संयमनपूर्वक महेश्वर की उपासना करने की इच्छा से प्रभात, मध्याह्न, सायंकाल और रात्रि में तत्परतासहित यत्न करने लगे ।६२। भूतपति महादेव जी ने बहुत दिनों के बाद संगीत द्वारा परम प्रसन्न होकर उन दोनों से कहा तुम वर माँगो ।६३। तब कम्बल के सहित अश्वतर ने प्रणाम पूर्वक शितिकंठ उमानाथ महेश्वर से कहा ।६४। आप देवदेव त्रिनयन और सर्वशक्तिमान् हैं यदि हमारे प्रति प्रसन्न हुए तो हमारा अभिलषित यह वर प्रदान कीजिये ।६५। कुवलयाश्व की स्त्री मदालसा ने जीवन-विसर्जन किया है । उसने जिस अवस्था में प्राण-त्याग किया है उसी अवस्था में मेरी कन्या होकर जन्मग्रहण करे ।६६। पहले उसमें जिस प्रकार क्षान्ति विद्यमान थी उसी प्रकार क्षान्ति हो और जातिस्मरा पूर्ववत् योगिनी और योगजननी होकर मेरे घर जन्मग्रहण करे ।६७

महादेव जी ने कहा—हे पन्नग श्रेष्ठ ! तुमने जो कहा मेरे प्रसाद से वह सब होगा इसमें संदेह नहीं अब सुनो हे फणिश्रेष्ठ ! ।६८। जब श्राद्ध का समय प्राप्त हो तब पवित्र और सावधान मन होकर तुम स्वयं मध्यम पिण्ड भोजन करो और मेरा ध्यान कर पितरों का यजन करो ।६९। मध्यपिण्ड भोजन करने से मंगलदायिनी मदालसा ने जिस अवस्था में प्राणत्याग किया है तुम्हारे मध्यम फण से उसी अवस्था में उत्पन्न होगी ।७०। तुम इस प्रकार कामना करके पितृतर्पण का अनुष्ठान करो तो तत्काल श्वास छोड़ने के समय में तुम्हारे मध्यम फण से वह सुभ्रु जिस अवस्था में मरी है उसी अवस्था में उत्पन्न होगी ।७१। दोनों भाई यह वचन सुनकर महेश्वर को प्रणाम करके प्रसन्न चित्त से फिर रसातल में उपस्थित

तथा च कृतवाञ्छ्राद्धं स नागः कम्बलानुजः । पिण्डं च मध्यमं तद्वद्यथावदुपभुक्तवान् ॥७३
उपभुक्ते ततः पिण्डे तस्य सा तनुमध्यमा । जज्ञे निःश्वसतः सद्यस्तद्रूपा मध्यमात्फणात् ॥७४
न चापि कथयामास कस्यचित्स भुजङ्गमः । अन्तर्गृहे तां सुदतीं स्त्रीभिर्गुप्तामधारयत् ॥७५
तौ चानुदिनमागत्य पुत्रौ नागपतेः सुखम् । ऋतुध्वजेन सहितौ चिक्रीडातेऽमराविव ॥७६
एकदा तु स तौ प्राह स नागोऽश्वतरो मुदा । तन्मया पूर्वमुक्तं तु क्रियते किं नु तत्तथा ॥७७
स राजपुत्रो युवयोरुपकारी ममान्तिकम् । किं नु नानीयते वत्सावुपकाराय मानदः ॥७८
एवमुक्तौ पुनस्तेन पुत्रौ स्नेहवता तु तौ । गत्वा तस्य पुरं सख्यू रेमाते तेन धीमता ॥७९
ततः कुवलयाश्वं तं कृत्वा किञ्चित्कथान्तरम् । अब्रूतां प्रणिपातेन स्वगृहागमनं प्रति ॥८०
तावाह नृपपुत्रोऽसौ नन्विदं भवतोर्गृहम् । धनवाहनवस्त्रादि यन्मदीयं तदेव वाम् ॥८१
यस्य वां वाञ्छितं दातुं धनं रत्नमथापि वा । तद्दीयतां द्विजसुतौ यदि वां प्रणयो मयि ॥८२
एतावताहं दैवेन वञ्चितोऽस्मि दुरात्मना । यद्भवद्भ्यां मम त्वं नो मदीये क्रियतां गृहे ॥८३
यदि वां मे प्रियं कार्यमनुग्राह्योऽस्मि वा यदि । तद्धने मम गेहे च ममत्वमनुकल्प्यताम् ॥८४
युवयोर्यन्मदीयं तन्मामकं युवयोः स्वयम् । एतत्सर्वं विजानीथ सखा प्राणो बहिश्चरः ॥८५
पुनर्नैवं विभिन्नार्थं वक्तव्यं द्विजसत्तमौ । मत्प्रसादपरौ प्रीत्या शापितौ हृदयेन मे ॥८६

हुए।७२। इसके उपरान्त अश्वतर ने उसी प्रकार श्राद्ध और उसी प्रकार यथा नियम से मध्यम पिण्ड भोजन किया।७३। अन्त में अपने अभिलषित विषय का ध्यान करते-करते श्वास छोड़ते ही तत्काल उनके मध्यम फण से कृशाङ्गी मदालसा उसी रूप में उत्पन्न हुई।७४। अश्वतर ने यह वार्ता किसी के निकट प्रकट न करके अपने घर में उस सुदती को स्त्रियों के सहित गुप्तभाव से रखा।७५। इधर उनके दोनों पुत्र मूर्तिमान दोनों सुरकुमारों के समान नित्य आनन्दपूर्वक आकर ऋतध्वज के संग क्रीड़ा करने लगे। एक दिन पन्नगपति ने पुलकित होकर उन दोनों से कहा मैंने पहले तुमसे जो कहा है, तुम उसको क्यों नहीं करते हो।७६-७८। स्नेहवान् पिता के इस प्रकार कहने पर दोनों पुत्र महामति ऋतध्वज के नगर में जाकर उनके संग क्रीडा करने में प्रवृत्त हुए।७९। तदनन्तर बातों ही बातों के प्रसंग में प्रणयप्रदर्शनपूर्वक कुवलयाश्व को अपने घर लेजाने का अनुरोध किया।८०। राजकुमार ने उनसे कहा मेरा यह घर और धन, यान, वसन इत्यादि जो कुछ विद्यमान है सब तुम्हारा ही है।८१। यदि मेरे प्रति तुम्हारी प्रीति का संचार हुआ है तो मुझको धन वा रत्न जो अर्पण करने की इच्छा की है वह दो।८२। तुम जब मेरे घर को अपने घर के समान नहीं समझते तो मैं दुरात्मा दैव के द्वारा ही वंचित हुआ हूँ।८३। मेरा प्रिय अनुष्ठान करना यदि तुमको कर्त्तव्य हो और यदि मुझको अनुग्रह का पात्र विचारते हो तो मेरे घर और मेरे धन में ममत्व स्थापन करो अर्थात् अपना ही समझो।८४। जो तुम्हारा है, वह मेरा और मेरा जो कुछ है वह समस्त तुम्हारा है, वह मेरा और मेरा जो कुछ है वह समस्त तुम्हारा ही है मैंने जो कहा इसको ही यथार्थ जानो वस्तुतः तुम मेरे बाहर रहने वाले प्राणस्वरूप हो।८५। अत एव हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! इस प्रकार भिन्न अर्थवाले वचन नहीं कहना, मैं अन्तर के सहित तुमको शपथ देता हूँ तुम प्रणयप्रदर्शन पूर्वक मुझ पर

ततःस्नेहार्द्रवदनौ तावुभौ नागनन्दनौ । ऊचतुर्नृपतेः पुत्रं किञ्चित्प्रणयकोपितम् ।।८७
ऋतुध्वज न संदेहो यथैवाह भवानिदम् । तथैव चास्मन्मनसि नात्र चिन्त्यमतोऽन्यथा ।।८८
किं त्वावयोः समं पित्रा प्रोक्तमेतन्महात्मना । द्रष्टुं कुवलयाश्वं तमिच्छामीति पुनः पुनः ।।८९
तत कुवलयाश्वोऽथ समुत्थाय वरासनात् । यथाह तातेति वदन्प्रणाममकरोद्भुवि ।।९०

कुवलयाश्व उवाच

धन्योऽहमतिपुण्योऽहं कोऽन्योऽस्ति सदृशोमया । यत्तातो मामभिद्रष्टुं करोति प्रवणं मनः ।।९१
तदुत्तिष्ठत गच्छाम ताताज्ञां क्षणमप्यहम् । नातिक्रान्तुमिहेच्छामि पद्भ्यां तस्य शपाम्यहम् ।।९२

जड उवाच

एवमुक्त्वा ययौ सोऽथ सह ताभ्यां नृपात्मजः । प्राप्तश्च गौतमीं पुण्यां निर्गम्य नगराद्बहिः ।।९३
तन्मध्येन ययुस्ते वै नागेन्द्रनृपनन्दनाः । मेने च राजपुत्रोऽसौ पारे तस्यास्तयोर्गृहम् ।।९४
ततश्चाकृष्य पातालं ताभ्यां नीतो नृपात्मजः । पाताले ददृशे चोभौ स पन्नगकुमारकौ ।।९५
फणामणिकृतोद्द्योतौ व्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ । विलोक्य तौ सुरूपाङ्गौ विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।।९६
विहस्य चाब्रवीत्प्रेम्णा साधु भो द्विजसत्तमौ । कथयामासतुस्तौ तु पितरं पन्नगेश्वरम् ।।९७
शान्तमश्वतरं नागं माननीयं दिवौकसाम् । रमणीयं ततोऽपश्यत्पातालं स नृपात्मजः ।।९८

प्रसन्न होओ ।८६। तब दोनों पन्नगपुत्रों ने स्नेहार्द्रमुख होकर कुछ प्रीति का कोप दिखाकर राजपुत्र से कहा ।८७। हे राजपुत्र ! तुमने जो कहा हम भी सदा यही विचारते हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, अत एव किसी भाँति अन्यथा नहीं समझना ।८८। किन्तु हमारे पिता ने स्वयं यह बार-बार कहा है कि, कुवलयाश्व को देखने की मेरी इच्छा है ।८९। तब कुवलयाश्व ने वरासन से उठ "स्वयं पिता ने यह बात कही है" इसी प्रकार कह भूमि पर स्थित होकर प्रणाग किया ।९०

कुवलयाश्व ने कहा—मैं ही धन्य और मैं ही पुण्यवान हूँ मेरे समान कोई भी दिखाई नहीं देता क्योंकि मुझको देखने के लिये पिता स्वयं उत्सुक हुए हैं।९१। अत एव उठो अभी चलें, मुहूर्त्तमात्र को भी उनकी आज्ञा उल्लंघन करने की हमारी इच्छा नहीं है। उनके चरण स्पर्श पूर्वक इस विषय में मैं शपथ करता हूँ ।९२

जड़ ने कहा—ऋतध्वज ने इस प्रकार कहकर उनके संग गमन किया, फिर नगर से निकल पवित्र जलवली गोमती पार उपस्थित हुए ।९३। उसके मध्य में होकर वह तीनों लोग गमन करने लगे राजकुमार ने समझा कि, गोमती नदी के पार ही दोनों सखाओं का घर है ।९४। तदनन्तर उन्होंने राजकुमार को खींचकर पाताल में ले जाकर पहुँचा दिया राजकुमार ने पाताल में जाकर देखा कि, इन दोनों पन्नगपुत्रों ने छद्मवेष छोड़कर अपना वेष धारण किया है ।९५। फणों में स्थित मणि की सहायता से उनका हृदय प्रकाशित और स्वस्तिक चिह्न प्रकाशित हो उठा है उनका स्वरूप देख राजकुमार ने विस्मयविकसित नेत्रों से ।९६। हँसकर प्रणयपूर्वक साधुवाद दिया । तदनन्तर देवताओं के भी माननीय शान्तचरित्र पितृदेव अश्वतर के सन्मुख राजकुमार के आने की वार्त्ता कही । राजकुमार ऋतध्वज ने देखा कि, वह पातालनगर अत्यन्त मनोहर है ।९७-९८। बालक, युवा, वृद्ध सब जातीय सर्प शोभायमान हैं

कुमारैस्तरुणैर्वृद्धैरुरगैरुपशोभितम् । तथैव नागकन्याभिः क्रीडन्तीभिरितस्ततः ।।९९
चारुकुण्डलहाराभिस्ताराभिर्गगनं यथा । गीतशब्दैस्तथान्यत्र वीणावेणुस्वरानुगैः ।।१००
मृदङ्गपणवातोद्यहारि वेश्मशताकुलम् । वीक्षमाणः स पातालं ययौ शत्रुजितः सुतः ।।१०१
सह ताभ्यामभीष्टाभ्यां पन्नगाभ्यामरन्दिमः । ततः प्रविश्य ते सर्वे नागराजनिवेशनम् ।।१०२
ददृशुस्तं महात्मानमुरगाधिपतिं स्थितम् । दिव्यमाल्याम्बरधरं मणिकुण्डलभूषणम् ।।१०३
स्वच्छमुक्ताफललताहारिहारोपशोभितम् । केयूरिणं महाभागमासने सर्वकाञ्चने ।।१०४
मणिविद्रुमवैडूर्यजालांतरितरूपके । स ताभ्यां दर्शितस्तस्य तातोऽस्माकमसाविति ।।१०५
वीरः कुवलयाश्वोऽयं पित्रे चासौ निवेदितः । ततो ननाम चरणौ नागेन्द्रस्य ऋतध्वजः ।।१०६
समुत्थाप्य बलाद्गाढं स नागः परिषस्वजे । मूर्ध्नि चैवमुपाघ्राय चिरं जीवेत्युवाच ह ।।१०७
निहतामित्रवर्गश्च पित्रो शुश्रूषणं कुरु । वत्स धन्यस्य कथ्यन्ते परोक्षस्यापि ते गुणाः ।।१०८
भवतो मम पुत्राभ्यामाभ्यां ये मे निवेदिताः । तदेतैरेव वर्द्धेथा मनोवाक्कायचेष्टितैः ।।१०९
जीवितं गुणिनः श्लाघ्यं जीवन्नपि मृतोऽगुणी । गुणवान्निर्वृतिं पित्रोः शत्रूणां हृदये ज्वरम् ।।११०
करोत्यात्महितं कुर्वन्विश्वासं च महाजने । देवताः पितरो विप्रा मित्रार्थिविभवादयः ।।१११

नागनन्दिनी की उनके चारों ओर क्रीडा करती हुई विचरण करती हैं ।९९। उनके हार और कुण्डल अतीव मनोहर और उनकी समीपता से तारों की माला से विभूषित आकाशमण्डल के समान पाताल नगर की शोभा सम्पादित हुई है । इसके किसी-किसी स्थान में संगीत ध्वनि होती है उसके संग-संग वेणु और वीणा समूह शब्दायमान होते हैं ।१००। मृदंग पणव और आतोद्य (वाद्यविशेष के) शब्द से वह प्रतिध्वनित है उसमें सैकड़ों मनोरम गृह विराजमान हैं राजनन्दन पाताल को देखते-देखते उन प्रियतम समान अवस्था वाले दोनों सखाओं के संग गमन करने लगे तदनन्तर सब ने पन्नग के स्थान में प्रविष्ट होकर ।१०१-१०२। देखा कि, वह महात्मा वहाँ उपस्थित हैं उनका बिछौना दिव्यवस्त्र का है । गले में दिव्यमाला और कानों में मणिमय कुण्डल विराजमान हैं ।१०३। स्वच्छ मुक्ताफल लतामय मनोरम हार के रहने से उनकी शोभा असीम हो रही है । उनके हाथ में केयूर और वह सुवर्ण के आसन पर विराजमान हैं ।१०४। मणि मूँगे और वैदूर्य में खचित होने के कारण उनका प्रकृतरूप तिरोहित हुआ है तदनन्तर उन्होंने राजपुत्र को दिखाया कि, यही हमारे पिता हैं ।१०५। अनन्तर पिता के निकट भी राजपुत्र का परिचय देकर कहा कि, "यही वह वीर कुवलयाश्व हैं" तब ऋतध्वज ने पन्नगपति के चरणों में प्रणाम किया ।१०६। पन्नगराज ने भी उनको बलपूर्वक उठाकर आलिंगन और शिर सूँघकर कहा तुम चिरंजीवी होओ ।१०७। और शत्रुकुल संहार करके पिता-माता की शुश्रूषा करो । हे वत्स ! तुम धन्य हो क्योंकि मेरे पुत्र भी तुम्हारे अलौकिक गुणों का विषय ।१०८। कीर्त्तन करते हैं इससे भी तुम्हारा मन, वाक्य, शरीर और चेष्टा सर्वांश में वृद्धि को प्राप्त होगी ।१०९। जो पुरुष गुणवान् हैं उनका प्राणधारण ही श्लाघा का विषय है, जो पुरुष निर्गुण है वह जीवित अवस्था में मृतक के समान है । जो पुरुष गुणवान् हैं वह पिता-माता की शान्ति करते, शत्रुकुल को ताप देते ।११०। और महाजनों का विश्वास उत्पादन करके अपना मंगल साधन करते हैं, देवता, पितृ बन्धु, विप्र एवं मित्र, अर्थी और विभवादि ।१११। तथा बन्धुजन गुणवान् के दीर्घजीवन की कामना करते

बान्धवाश्च तथेच्छन्ति जीवितं गुणिनश्चिरम् । परवादनिवृत्तानां दुर्गतेषु दयावताम् ॥११२
गुणिनां सफलं जन्म संश्रितानां विपद्गतैः ॥

पुत्र उवाच

एवमुक्त्वा स तं वीरं पुत्राविदमथाब्रवीत् ॥११३
पूजां कुवलयाश्वस्य कर्त्तुकामो भुजङ्गमः । स्नानादिकक्रमं कृत्वा सर्वमेव यथाक्रमम् ॥११४
मधुपानादिसम्भोगमाहारं च यथेप्सितम् । ततः कुवलयाश्वेन हृदयोत्सवभूतया ॥११५
कथया स्वल्पकं कालं स्थास्यामो हृष्टचेतसः । अनुमेने च तं मौनी वचः शत्रुजितः सुतः ॥११६
तथा चकार च पतिः पन्नगानामुदारधी ॥११७

समेत्यतैरात्मज भूपनन्दनैर्महोरगाणामधिपः स सत्यवाक् ।
मुदो युतोऽन्नानि मधूनि चात्मवान्यथोपजोषं बुभुजे स भोगभाक् ॥११८

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे कुवलयाश्वीये पातालप्रवेशो नामैकविंशोऽध्यायः ।२१।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

(24)

पातालनिर्गमवर्णनम्

पुत्र उवाच

कृताहारं महात्मानमधिपं पवनाशिनाम् । उपासाञ्चक्रिरे पुत्रौ भूपालतनयस्तथा ॥१
कथाभिरनुरूपाभिः प्रहृष्टात्मा भुजङ्गमः । प्रीतिं सञ्जनयामास पुत्रसख्युरुवाच ह ॥२

हैं । गुणवान् व्यक्ति दूसरों की बुराई से निवृत्त दुःखियों के प्रति दया दिखाते हैं ।११२। और दुःखी पुरुष को आश्रय प्रदान करते हैं, इसलिए उनका ही जन्म सफल है ।

पुत्र ने कहा—वह राजपुत्र से यह कहकर उनकी अर्चना करने में उत्कण्ठित हुए और दोनों पुत्रों से कहा हम सब इकट्ठे हो क्रमानुसार स्नानादि क्रिया कर ।११३-११४। अपनी इच्छानुसार मधुपान इत्यादि उपभोग और भक्षण करके कुवलयाश्व के सहित उत्सव करते हुए ।११५। प्रसन्न मन से कुछ काल निवास करेंगे । ऋतध्वज ने इस पर कोई बात नहीं कही और मौनभाव से उसी बात का अनुमोदन किया ।११६। तब उदारमति पन्नगराज ने तदनुरूप कार्य का अनुष्ठान किया ।११७। वह भोगभागी आत्मवान् सत्यभाषी पन्नगराज अश्वतरपुत्र राजकुमार के साथ प्रसन्नचित्त से अन्न और मधु सम्यक् प्रकार से भोग करने लगे ।११८

श्रीमार्कण्डेयपुराण के मदालसाख्यान में पातालप्रवेश वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।२१।

अध्याय २२

पातालनिर्गम वर्णन

पुत्र ने कहा—अनन्तर पन्नगपति महात्मा अश्वतर के आहार करने पर उनके दोनों पुत्र और राजकुमार उनकी उपासना में प्रवृत्त हुए । तब महात्मा भुजङ्गाधिपति ने अनुरूप वचनप्रयोगपूर्वक

तव भद्र सुखं ब्रूहि गेहमभ्यागतस्य यत् । कर्तव्यमुत्सृजाशङ्कां पितरीव सुते मयि ॥३
हिरण्यं वा सुवर्णं वा वस्त्रं वाहनमासनम् । यद्वाभिमतमत्यर्थं दुर्लभं तच्छृणुष्व माम् ॥४

कुवलयाश्व उवाच

भवत्प्रसादाद्भगवन्सुवर्णादि गृहे मम । पितुरस्ति ममाद्यापि न किञ्चित्कार्यमीदृशैः ॥५
ताते वर्षसहस्रायुः शासतीमां वसुन्धराम् । तथैव त्वयि पातालं न मे याच्ञोन्मुखं मनः ॥६
ते सुभाग्याः सुपुण्याश्च येषां पितरि जीवति । तृणं कोटिसमं वित्तं तारुण्यं वित्तकोटिषु ॥७
मित्राणि तुल्यशिष्टानि तद्वद्देहमनामयम् । जने वा ध्रियते वित्तं यौवनं किं तु नास्ति मे ॥८
असत्यर्थे नृणां याच्ञाप्रवणं जायते मनः । सत्यशेषे कथं याच्ञां मम जिह्वा करिष्यति ॥९
यैर्न चिन्त्यं धनं किञ्चिन्मम गेहेऽस्ति नास्ति वा । पितृबाहुतरुच्छायां संश्रिताः सुखिनो हि ते ॥१०
ये तु बाल्यात्प्रभृत्येव विना पित्रा कुटुम्बिनः । ते सुखास्वादविभ्रंशान्मन्ये धात्रैव वञ्चिताः ॥११
तद्वयं तत्प्रसादेन धनरत्नादिसञ्चयम् । पितृभक्ताः प्रयच्छामः कामतो नित्यमर्थिनाम् ॥१२
तत्सर्वमिह सम्प्राप्तं यदंघ्रियुगलं तव । मच्चूडामणिना घृष्टं यच्चाङ्गस्पर्शमाप्तवान् ॥१३

पुत्र उवाच

इत्येवं प्रश्रितं वाक्यमुक्तः पन्नगसत्तमः । प्राह राजसुतं प्रीत्या पुत्रयोरुपकारिणम् ॥१४

राजकुमार को प्रसन्न करके कहा हे भद्र ! ।१-२। तुम मेरे घर आये हो पुत्र जिस प्रकार शंका छोड़कर पिता से बातें करता है उसी प्रकार तुम बातें करो, कहो तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ? ।३। वह तुमभी मेरे निकट स्वच्छन्द प्रकाश करो क्या सुवर्ण क्या चांदी क्या वसन क्या वाहन अथवा अन्य जिस किसी वस्तु की अभिलाषा हो वह अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी मुझसे माँगो।४

कुवलयाश्व ने कहा—हे भगवन् ! आपके प्रसाद से मेरे पिता के घर सुवर्णादि समस्त वस्तु ही विद्यमान है अभी तक मुझको ऐसी वस्तु का कोई प्रयोजन नहीं हुआ।५। मेरे पिता जब सहस्र वर्ष हुए इस पृथ्वी का शासन करते थे और आप भी पातालपुर में वास करते थे कभी मेरा मन प्रार्थना करने में अग्रेसर नहीं हुआ।६। क्योंकि जिन पुरुषों के पिता जीवित हैं वही पुरुष धन्य हैं इसी कारण जो यौवनकाल में करोड़-करोड़ चित्त को भी सामान्य तृण के समान समझते हैं वही परम पुण्यवान् और वही स्वर्गीय महापुरुष है।७। विचार करके देखो मेरे मित्रगण अनुरूप शिष्टाचारसम्पन्न हैं मेरा शरीर भी रोगरहित है, यौवन भी है क्या नहीं है।८। मेरे पिता विलक्षण धनसम्पत्ति के अधिकारी हैं और जिनके अर्थ नहीं है उनका ही अन्तःकरण याचना में लगता है किंतु मेरे यहाँ धन का अभाव नहीं है। इसलिए मेरी रसना याचना करने में उद्यत क्यों हो।९। मेरे घर धन है वा नहीं जिनको चिन्ता करनी नहीं पड़ती और जो कोई पितारूपी वृक्ष की भुजलता की छाया में रहते हैं वही यथार्थ में सुखी हैं।१०। किन्तु जो कोई बाल्यकाल से पितृहीन होकर परिवार के भरण-पोषण में नियुक्त होते हैं मेरे विचार में विधाता ने उन सब पुरुषों को सुख स्वाद से भ्रष्ट करके वंचित किया है।११। मैं आपके अनुग्रह से पिता के दिये हुए असंख्य धनरत्नादि अपनी इच्छानुसार प्रतिदिन अर्थियों को देता हूँ ।१२। विशेषकर जब अपनी चूड़ामणि द्वारा आपके चरण कमलों का स्पर्श किया है और आपका अंगसंगलाभ किया है तब यहाँ वह मुझको समस्त ही लाभ हुए इसमें सन्देह नहीं।१३

पुत्र ने कहा—पन्नगराज इस प्रकार विनययुक्त वचन सुनकर प्रसन्नता सहित अपने दोनों पुत्र के

यदि रत्नसुवर्णादि मत्तो वाप्तुं न ते मनः । यदन्यन्मनसः प्रीत्यै ब्रूहि तत्ते ददाम्यहम् ॥१५

कुवलयाश्व उवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्रार्थितस्य गृहे मम । सर्वमस्ति विशेषेण सम्प्राप्तं तव दर्शनात् ॥१६
कृतकृत्योऽस्मि चैतेन सफलं जीवितं मम । यदङ्गसंश्लेषमितस्तव देवस्य मानुषः ॥१७
ममोत्तमाङ्गे त्वत्पादरजसा यदिहास्पदम् । कृतं तेनैव न प्राप्तं किं मया पन्नगेश्वर ॥१८
यदि त्ववश्यं दातव्यो वरो मे मनसेप्सितः । तत्पुण्यकर्मसंस्कारो हृदयान्मा व्यपैतु मे ॥१९
सुवर्णमणिरत्नादि वाहनं गृहमासनम् । स्त्रियोऽन्नपानं पुत्राश्च चारुमाल्यानुलेपनम् ॥२०
एते च विविधा भोगा गीतवाद्यादिकं च यत् । सर्वमेतन्मम मतं फलं पुण्यवनस्पतेः ॥२१
तस्मान्नरेण तन्मूलसेके यत्नः कृतात्मना । कर्त्तव्यः पुण्यसक्तानां न किञ्चिद्भुवि दुर्लभम् ॥२२

अश्वतर उवाच

एवं भविष्यति प्राज्ञ तव धर्माश्रिता मतिः । सत्यं चैतत्फलं सर्वं धर्मस्योक्तं यथा त्वया ॥२३
तथाप्यवश्यं मद्गेहमागतेन त्वयाधुना । ग्राह्यं यन्मानुषे लोके दुष्प्रापं भवतो मतम् ॥२४

पुत्र उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स तदा नृपनन्दनः । मुखावलोकनं चक्रे पन्नगेश्वरपुत्रयोः ॥२५

हितकारी उन राजपुत्र से कहने लगे ।१४। यदि मुझसे सुवर्णरत्नादि लेने की तुम्हारी इच्छा न हो तो और कुछ जिससे तुम्हारा आन्तरिक प्रीति का संचार हो वह कहो मैं तुमको वहीं दूँगा ।१५

कुवलयाश्व ने कहा—हे भगवन् ! आपके प्रसाद से मेरे घर में प्रार्थनीय समस्त ही वस्तु विद्यामान हैं और विशेष करके इस समय आपका दर्शन करने से वह भली भाँति समस्त वस्तु मुझको प्राप्त हो गई ।१६। आप देवता हैं मैं मनुष्य होकर भी जो आपके अंगसंग को प्राप्त हुआ इससे मैं अपने को कृतार्थ मानता हूँ और इससे मेरा जीवन धारण करना भी सफल हो गया । हे पन्नगेश्वर ! आपकी चरण रेणु ने जो मेरे मस्तक के स्थान का अधिकार किया है । इससे मुझको कौन सी वस्तु नहीं मिली ।१७-१८। तो भी मुझको यदि आप अभिलषित वर देना कर्त्तव्य समझते हैं तो यही वर दीजिये कि, मेरे अन्तर से पुण्य कर्म का संस्कार किसी समय में दूर न हो ।१९। मेरे विचारमें सुवर्ण, मणि, रत्नादि वाहन, गृह, आसन, स्त्री, अन्न, पान, पुत्र मनोहर माल्य और अनुलेपन ।२०। एवं गीत वाद्य इत्यादि अन्यान्य सब अभिलषित वस्तु यह सब ही पुण्य रूप वनस्पति का फल है ।२१। अत एव कृतचित्त हो उसकी जड़ के सेचन करने का यत्न करना सब मनुष्यों का कर्त्तव्य है जो मनुष्य पुण्यासक्त हैं पृथ्वी में उनके निकट कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ।२२

अश्वतर ने कहा—हे प्राज्ञ ! यही होगा तुम्हारा मन सदा ही धर्मपथ-अवलम्बन करके रहेगा तुमने जो जो कहा सब ही सत्य है वरन् यही धर्म का एकमात्र फल है ।२३। तथापि जब तुम मेरे घर आये हो तो नर लोकों में जो तुमको दुष्प्राप्य हो वह तुम को अवश्य ही ग्रहण करना चाहिए।२४

पुत्र ने कहा—राजपुत्र ने पन्नगपति का यह वचन सुनकर उनके पुत्रों के मुख की ओर देखा।२५।

ततस्तौ प्रणिपत्योभौ राजपुत्रस्य यन्मतम् । तत्पितुः सकलं वीरौ कथयामासतुः स्फुटम् ॥२६
तातास्य पत्नी दयिता श्रुत्वेमं विनिपातितम् । अत्यजद्दयिता प्राणान्विप्रलब्धा दुरात्मना ॥२७
केनापि कृतवैरेण दानवेन कुबुद्धिना । गन्धर्वराजस्य सुता नाम्नाख्याता मदालसा ॥२८
कृतज्ञोऽयं ततस्तात प्रतिज्ञां कृतवानिमाम् । नान्या भार्या भवित्री मे वर्जयित्वा मदालसाम् ॥२९
द्रष्टुं तां चारुसर्वांगीमयं वीरो ऋतध्वजः । तात वाञ्छति यद्येतत्क्रियते तत्कृतं भवेत् ॥३०

अश्वतर उवाच

भूतैर्वियोगिनो योगस्तादृशैरेव तादृशः । कथमेतद्विना स्वप्नं मायां वा शंबरोदिताम् ॥३१

पुत्र उवाच

प्रणिपत्य भुजङ्गेशं पुत्रः शत्रुजितस्ततः । प्रत्युवाच महात्मानं प्रेमलज्जासमन्वितः ॥३२
मायामयीमप्यधुना मम तातो मदालसाम् । यदि दर्शयते मन्ये परं कृतमनुग्रहम् ॥३३

अश्वतर उवाच

तस्मात्पश्येह वत्स त्वं मायां चेद्द्रष्टुमिच्छसि । अनुग्राह्यो भवान्गेहे बालोऽप्यभ्यागतो गुरुः ॥३४

पुत्र उवाच

आनयामास नागेन्द्रो गृहे गुप्तां मदालसाम् । दर्शयामास च तदा राजपुत्राय तां शुभाम् ॥३५
तेषां संमोहनार्थाय जजल्प च ततः स्फुटम् । सेयं न वेति ते भार्या राजपुत्र मदालसा ॥३६

तब उन दोनों ने प्रणामपूर्वक राजकुमारी की जो कुछ इच्छा थी वह सब स्पष्ट रूप से पिता के निकट निवेदन किया ।२६। दोनों पुत्र बोले इनकी प्रियतमा पत्नी ने, किसी दुरात्मा दानव से छली जाकर इनका मृत्यु संवाद सुन परम प्रियतम जीवन विसर्जन किया है ।२७। कुबुद्धि दैत्य ने वैर करके ही ऐसा आचरण किया था इनकी प्रणयिनी का नाम मदालसा था, वह गन्धर्वपति की कन्या थी ।२८। हे पिता ! मदालसा के प्राण परित्याग करने पर इन्होंने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने की इच्छा से यह प्रतिज्ञा की है मदालसा के अतिरिक्त और किसी स्त्री को पत्नी रूप में ग्रहण नहीं करूँगा ।२९। यह महावीर ऋतध्वज उस सर्वांगसुदरी को देखने के लिये उत्सुक हैं। हे तात ! यदि ऐसा कर सकें तो इनका यथार्थ उपकार हो ।३०

अश्वतर ने कहा—एकबार पंचभूत सहितों के वियोग होने पर फिर पूर्ववत् संयोग होना स्वप्न या शम्बर की रची आसुरी माया के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार सम्भव नहीं है ।३१

पुत्र ने कहा—तब शत्रुजित्नन्दन ऋतध्वज ने महातमा भुजंगपति को प्रणाम करके प्रेम और लज्जा सहित कहा ।३२। हे तात ! आप यदि इस समय उस मदालसा को माया करके भी दिखा सकें तो मैं जानूंगा कि आपने मेरे प्रति परम अनुग्रह किया ।३३

अश्वतर ने कहा—हे वत्स ! यदि माया देखने की इच्छा हो तो देखिये क्योंकि तुम इस प्रकार अनुग्रह के पात्र हो यद्यपि बालक होकर भी मेरे घर आये हो तथापि अतिथि होने से गुरु के समान माननीय हो ।३४

पुत्र ने कहा—पन्नगराज ने यह कहकर उस घर में छिपी हुई मदालसा को उस स्थान में बुलाया और राजकुमार को दिखाया।३५। तथा सबको मोहित करने के लिये कुछ वृथा अव्यक्त मंत्र उच्चारणपूर्वक

जड उवाच

स दृष्ट्वा तां तदा तन्वीं तत्क्षणाद्विगतत्रपः । प्रियेति तामभिमुखं ययौ वाचमुदीरयन् ॥३७
निवारयामास च तं नागः सोऽश्वतरस्त्वरन् ॥

अश्वतर उवाच

मायेयं पुत्र मा स्प्राक्षीः प्रागेव कथितं तव ॥३८
अन्तर्द्धानमुपैत्याशु माया संस्पर्शनादिभिः । ततः पपात मेदिन्यां स तु मूर्च्छापरिप्लुतः ॥३९
हा प्रियेति वदन्सोऽथ चिन्तयामास भामिनीम् । मोहो ममायं नो वेति नालं प्रत्ययवानहम् ॥४०
अहो ममेत्यहं चेति बलं प्रत्यययोर्महत् । येनाहं पातनोऽरीणां विना शस्त्रं निपातितः ॥४१
ममेति दर्शितानेन मिथ्यामायेति विस्फुटम् । वाय्वम्बुतेजसां भूमेराकाशस्य च चेष्टया ॥४२

पुत्र उवाच

ततः कुवलयाश्वं स समाश्वास्य भुजङ्गमः । कथयामास तत्सर्वं मृतसञ्जीवनादिकम् ॥४३
ततः प्रहृष्टः प्रतिलभ्य कान्तां प्रणम्य नागं निजमाजगाम ।
संस्तूयमानः स्वपुरं तमश्वमारुह्य सञ्चिन्तितमभ्युपेतम् ॥४४
शृणुयाद्भक्तिपूर्वं यो नैरन्तर्येण मानवः । वेदघोषफलं तेन प्राप्तं वै भुवि दुर्लभम् ॥४५
सम्प्राप्नोति सुखं नित्यं सर्वकामसमन्वितः । लोके च दुर्लभं तस्य नास्ति किञ्चिन्न विद्यते ॥४६
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्याने पुनर्मदालसां प्राप्य
पातालान्निर्गमो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।२२।

राजकुमार को मदालसा दिखाकर कहा हे वत्स ! तुम्हारी पत्नी मदालसा यही तो नहीं है तुम देखो ।३६

जड़ ने कहा—राजकुमार मदालसा को देखते ही लज्जा छोड़ तत्काल प्रिये ! यह वचन कहते-कहते उसके सन्मुख हुए ।३७। अश्वतर ने यह देख शीघ्र उनको निषेध करके कहा ।

अश्वतर ने कहा—हे पुत्र ! यह माया है, इसको स्पर्श न करना मैंने पहले ही कहा है ।३८। स्पर्शादि करते ही माया तत्काल अन्तर्धान हो जाती है यह वचन सुनते ही ऋतध्वज मूर्च्छित हो पृथ्वी में गिर गये ।३९। और हे प्रिये ! कहकर उसकी चिन्ता करने लगे क्या मुझको मोह हो गया है या कुछ और है, विश्वास नहीं होता ।४०। यह मेरी ही है, यह मुझे बलपूर्वक विश्वास होता है, जिसने मुझे अरियों का निपातन करने वाले को बिना शस्त्र के निपातन किया है ।४१। मुझे इन्होंने प्रत्यक्ष मिथ्या माया दिखाई है अथवा वायु, जल, तेज आकाश की यह चेष्टा है ।४२

पुत्र ने कहा—अनन्तर भुजगंपति अश्वतर ने राजकुमार कुवलयाश्व को समझा बुझाकर जिसप्रकार से मृत मदालसा को फिर जीवित किया था वह सब ही कहा ।४३। तब कुवलयाश्व अपनी प्रणयिनी को पाने से अत्यन्त आनन्दित हुए और अपने अश्वरत्न को स्मरण किया । स्मरण करते ही वह अश्व उस स्थान में आकर उपस्थित हुआ तब राजकुमार ने पन्नगपति को प्रणाम कर स्त्रीसहित घोड़े की पीठ पर चढ़ अपने शोभायमान पुर को प्रस्थान किया ।४४। जो मनुष्य निरन्तर भक्तिपूर्वक इस कथा को सुनते हैं वह वेदपाठ के फल को अवश्य प्राप्त होते हैं जो पृथ्वी में बड़ा दुर्लभ है ।४५। उसको सब काम की प्राप्ति और नित्य सुख मिलता है और उस पुरुष को लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ।४६

श्रीमार्कण्डेय पुराण में पातालनिर्गम नामक बाइसवाँ अध्याय समाप्त ।२२।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

(२५+२६)

प्रवृतिमार्गानुशासनवर्णनम्

पुत्र उवाच

आगम्य स्वपुरं सोऽथ पित्रोः सवमशेषतः । कथयामास तन्वङ्गी यथा प्राप्ता पुनर्मृता ॥१
ननाम सापि चरणौ श्वश्रूश्वशुरयोः शुभा । स्वजनं च यथापूर्वं वन्दनाश्लेषणादिभिः ॥२
पूजयामास तन्वङ्गी यथा न्यायं यथा वयः । ततो महोत्सवो जज्ञे पौराणां तत्र वै पुरे ॥३
ऋतध्वजश्च सुचिरं तया रेमे सुमध्यया । निर्झरेषु च शैलानां निम्नगापुलिनेषु च ॥४
काननेषु च रम्येषु वनेषूपवनेषु च । पुण्यक्षयं वाञ्छमाना सापि कामोपभोगतः ॥५
सह तेनातिकान्तासु रेमे रम्यासु भूमिषु । ततः कालेन महता शत्रुजित्स नराधिपः ॥६
सम्यक् प्रशास्य वसुधां कालधर्ममुपेयिवान् । ततः पौरा महात्मानं पुत्रं तस्य ऋतध्वजम् ॥७
अभ्यषिञ्चन्त राजानमुदाराचारचेष्टितम् । सम्यक्पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥८
मदालसायाः संजज्ञे पुत्रः प्रथमजस्ततः । तस्य चक्रे पिता नाम विक्रान्त इति धीमतः ॥९
तुतुषुस्तेन वै भृत्या जहास च मदालसा । सा वै मदालसा पुत्रं बालमुत्तानशायिनम् ॥१०
उल्लापनच्छलेनाह रुदमानमविस्वरम् । शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं च ते कल्पनयाधुनैव ॥११

अध्याय २३

प्रवृत्तिमार्गानुशासन नामक वर्णन

पुत्र ने कहा—ऋतध्वज ने अपने पुर में पहुँचकर परलोकगत मदालसा को जिस प्रकार फिर पाया था वह समस्त पिता-माता के निकट आनूपूर्विक वर्णन किया ।१। कल्याणी कृशांगी मदालसाने भी सास और श्वसुर के चरणों में प्रणाम करके ।२। अवस्था और गुरुत्वानुसार स्वजनों की यथायोग्य वन्दना और आलिंगनादि करके पूजा की । तदनन्तर पुरी में पुरवासियों का महोत्सव प्रवृत्त हुआ ।३। इस ओर राजकुमार ऋतध्वज ने सुमध्यमा मदालसा के संग गिरिनिर्झर नदीपुलिन ।४। और मनोहर वन उपवन में बहुत काल तक विहार किया । मदालसा भी कामोपभोगद्वारा पुण्य क्षय की वासना से ।५। मनोहर कान्ति ऋतध्वज के संग अनेक प्रकार के मनोहर स्थानों में विहार करने लगी । इस प्रकार बहुत दिन बीतने पर नरपति शत्रुजित् ।६। विधानानुसार पृथ्वी का शासन कर कालधर्म के वशीभूत हुए तब पुरवासियों ने उनके पुत्र ।७। उदाराचारचेष्टित महात्मा ऋतध्वज को राज्य पद में प्रतिष्ठित किया। कुमार भी अपने पुत्र के समान सम्यक् प्रकार से प्रजापालन करने लगे ।८। इसी समय में मदालसा के गर्भ से प्रथम पुत्र ने जन्मग्रहण किया। पिता ने उस मतिमान् पुत्र का नाम "विक्रान्त" रखा ।९। पुत्रसन्तान होने से भृत्यगण अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए और मदालसा हँसने लगी । उस पुत्र के पैर फैला कर सोने में तथा ।१०। अस्फुटस्वर से क्रन्दन करने में प्रवृत्त होने पर मदालसा उससे समझाने के बहाने उससे कहने लगी हे वत्स ! तुम शुद्ध और नामहीन हो अब कल्पनामात्र की सहायता से ही तुम्हारा नामकरण हुआ है ।११।

पञ्चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः ।
न वा भवान्रोदिति वै स्वजन्मा शुद्धोयमासाद्य महीसमूहम् ॥१२
विकल्प्यमानो विविधैर्गुणार्थैर्गुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु ।
भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः ॥१३
अन्नाम्बुपानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः ।
त्वं कञ्चुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिन्स्तस्मिन्स्वदेहे मूढतां मा व्रजेथाः ॥१४
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मनादिमूढैः कञ्चुकस्ते पिनद्धः ।
तातेति किंचित्तनयेति किञ्चिदम्बेति किञ्चिद्दयितेति किञ्चित् ॥१५
ममेति किञ्चिन्न ममेति किञ्चिद्भौतं संघं बहुधा मा लपेथाः ।
दुःखानि दुःखोपगमाय भोगान्सुखाय जानाति विमूढचेताः ॥१६
तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि जानाति विद्वानविमूढचेताः ।
हासोऽस्थिसंदर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलं यत्कलुषं वसायाः ॥१७
कुचादिपीनं पिशितं घनं तत्स्थानं रतेः किं नरको न योषित् ।
यानं क्षितौ यानगतश्च देहो देहेऽपि चान्यः पुरुषोनिविष्टः ॥१८
ममत्वमुर्व्यां न तथा यथा स्वे देहेऽतिमात्रं च विमूढतैषा ॥१९
त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज । उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत्त्यज ॥२०

तुम इस देह को पंचभूतात्मक जानना अत एव यह देह जिस प्रकार तुम्हारा नहीं है तुम इसी प्रकार इसके भी नहीं हो इसलिए तुम किस कारण रुदन करते हो ? वा तुम क्रन्दन नहीं करते यह शब्द इन राजकुमार को आश्रय करके स्वयं ही आविर्भूत होता है ।१२। नाना प्रकार भौतिक गुण और अगुण सब तुम्हारी इन्द्रियों में विकल्पित हुए हैं । अतीव दुर्लभ भूतसमूह जिस प्रकार भूत की सहायता से अन्न और जलदानादि द्वारा वर्द्धित होते हैं ।१३। इस जलादि के समान तुम्हारी उस प्रकार वृद्धि वा क्षय कुछ नहीं है । तुम्हारा यह देह आच्छादन मात्र है । यह भी शीर्ण हो जायगा इसलिये तुम मोह में अभिभूत नहीं होना ।१४। शुभाशुभ कर्म से ही अपने शरीर में यह आच्छादन हुआ जानो क्या पिता क्या पुत्र क्या माता क्या स्त्री क्या आत्मीय ।१५। क्या अपना कोई कुछ नहीं है तुम इनका बहुत मान नहीं करना । जो पुरुष मूढचित्त हैं वही दुःख को दुःखोपशम का हेतु और भोगों को सुख का कारण समझते हैं ।१६। जो पुरु अविद्या से अन्धे हैं वही मोहाच्छन्न चित्त हैं, वह उस दुःख को ही सुख जानते हैं स्त्री के हँसने में अस्थि दिखाई देती है उसके नेत्रों में वसा की कलुषता दिखाई देती है।१७। उसके पीनोन्नत स्तनादि भी घन मांसपिण्डमात्र हैं उसका रतिस्थान भी वैसा ही है। इसलिए रमणी क्या साक्षात् नरकस्वरूप नहीं है ? भूमि में यान, यान में देह और उसी देह में अन्य पुरुष निविष्ट रहता है।१८। जैसी अपने देह में ममता है ऐसी तो पृथ्वी में भी नहीं मानता यही मूढ़ता है कारण कि, देह पृथ्वी का सूक्ष्म अंश मात्र है।१९। धर्म-अधर्म, सत्य-अनृत का त्याग न करो इन दोनों के त्याग करने के उपरान्त जिससे त्याग किया जायगा उसे त्याग करो।२०।

वर्धमानं सुतं सा तु राजपत्नी दिने दिने । तमुल्लापादिना बोधमनयन्निर्मलात्मकम् ॥२१
यथा यथा बलं लेभे यथा लेभे मतिं पितः । तथा तथात्मबोधं च सोऽवापन्मातृभाषितैः ॥२२
इत्थं तया स तनयो जन्मप्रभृति बोधितः । चकार न मतिं प्राज्ञो गार्हस्थ्यं प्रति निर्ममः ॥२३
द्वितीयोऽस्याः सुतो जज्ञे तस्य नामाकरोत्पिता । सुबाहुरयमित्युक्ते सा जहास मदालसा ॥२४
तमप्येवं यथापूर्वं बालमुल्लापवादिनी । प्राह बाल्यात्स च प्राप तथा बोधं महामतिः ॥२५
तृतीयं तनयं जातं तं राजा शत्रुमर्दनम् । यदाह तेन सा सुभ्रूर्जहासातिचिरं पुनः ॥२६
तथैव सोऽपि तन्वंग्या बालत्वादेव बोधितः । क्रियाश्चकार निष्कामा न किञ्चित्फलकारणम् ॥२७
चतुर्थस्य सुतस्याथ किकीर्षुर्नाम भूपतिः । ददर्श तां शुभाचारामीषद्धासां मदालसाम् ॥२८
तामाह राजा हसन्तीं किञ्चित्कौतूहलान्वितः । क्रियमाणेऽसकृन्नाम्नि कथ्यतां हास्यकारणम् ॥२९
विक्रान्तश्च सुबाहुश्च यथान्यः शत्रुमर्दनः । शोभनानीति नामानि तानि मन्ये कृतानि वै ॥३०
योग्यानि क्षत्रबन्धूनां शौर्याटोपयुतानि च । असन्त्येतानि वै भद्रे यदि ते मनसि स्थितम् ॥३१
तदस्य क्रियतां नाम चतुर्थस्य सुतस्य मे ॥

मदालसोवाच

मयाज्ञा भवतः कार्या महाराज यथात्थ माम् ॥३२

इस प्रकार पुत्र दिन-दिन जिस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होने लगा राजमहिषी मदालसा भी उसी प्रकार खिलाने के बहाने उस निर्मलात्मा पुत्र को आत्मबोध ।२१। देने में प्रवृत्त हुई । पुत्र क्रम-क्रम से जिस प्रकार पिता के समीप बल और वृद्धि को प्राप्त हुआ माता के उपदेश से भी उसी प्रकार आत्मज्ञान लाभ करने लगा ।२२। जननी के समीप जन्म से आत्मज्ञान विषय में उपदेश को प्राप्त होकर ज्ञानोदय और ममता दूर होने से कुमार गार्हस्थ्य धर्म में एकबार ही स्पृहारहित हो गये ।२३। कुछ समय बाद मदालसा के गर्भ से दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, पिता ने इस पुत्र का नाम "सुबाहु" रखा । इस समय भी मदालसा हँसी ।२४। वह उस पुत्र को भी बाल्यावस्था से पूर्वोक्तनियमानुसार आत्मबोधप्रदान करने लगी । इस कारण दूसरे पुत्र का मन भी वैसा ही ज्ञानलाभ करके विरक्त हो गया ।२५। इसके उपरान्त तीसरे पुत्र के उत्पन्न होने पर नरपति ने उसका नाम "शत्रुमर्दन" रखा । पुत्र का नाम सुनकर सुभ्रू मदालसा बहुत समय तक हँसती रही ।२६। कृशाङ्गी मदालसा इस पुत्र को भी बाल्यकाल से पूर्ववत् आत्मज्ञान प्रदान करने लगी, तब यह कुमार भी निष्काम और क्रियाहीन हो गया ।२७। अन्त में चौथे पुत्र के उत्पन्न होने पर राजा ने उसके नामकरण में उत्सुक हो मदालसा की ओर देखा, मदालसा कुछ हँसी ।२८। तब राजा ने यह देख कौतूहल के वश होकर कहा पुत्र उत्पन्न होने के बाद मेरे नामकरण में समुद्यत होते ही तुम हँसती हो इसका क्या कारण है ? ।२९। मैंने पुत्रों का जो विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन नाम रखा है मेरे विचार से यह नाम सब प्रकार युक्तिसंगत हैं ।३०। क्योंकि क्षत्रियों का शौर्य और दर्पसंयुक्त नाम रखना उपयुक्त है, जो हो ! हे भद्रे ! यदि यह तीनों नाम तुम्हारे विचार में उत्तम न हों ।३१। तो तुम स्वयं चौथे पुत्र का नामकरण करो ।

मदालसा ने कहा—हे राजन् ! आपकी आज्ञा प्रतिपालन करना मेरा सर्वथा कर्त्तव्य है ।३२। अत

तथा नाम करिष्यामि चतुर्थस्य सुतस्य ते । अलर्क इति धर्मज्ञः ख्यातिं लोके गमिष्यति ।।३३
कनीयानेष ते पुत्रो मतिमांश्च भविष्यति ।।

पुत्र उवाच

तच्छ्रुत्वा नाम पुत्रस्य कृतं मात्रा महीपतिः ।।३४
अलर्क इत्यसम्बद्धं प्रहस्येदमथाब्रवीत् । भवत्या यदिदं नाम मत्पुत्रस्य कृतं शुभे ।।३५
किमीदृशमसम्बद्धमर्थः कोऽस्य मदालसे ।।

मदालसोवाच

कल्पनेयं महाराज कृता सा व्यावहारिकी ।।३६
त्वत्कृतानां तथा नाम्नां शृणु भूप निरर्थताम् । वदन्ति पुरुषाः प्राज्ञा व्यापिनं पुरुषं सतः ।।३७
क्रान्तिश्च गतिरुद्दिष्टा देशाद्देशान्तरं तु या । सर्वगो न प्रयातीह व्यापी देहेश्वरो यतः ।।३८
ततो विक्रान्तसंज्ञेयं मता मम निरर्थिका । सुबाहुरिति या संज्ञा कृतान्यस्य सुतस्य ते ।।३९
निरर्था साप्यमूर्त्तस्य पुरुषस्य महीपते । पुत्रस्य यत्कृतं नाम तृतीयस्यारिमर्दनः ।।४०
मन्ये तच्चाप्यसम्बद्धं शृणु वाप्यत्र कारणम् । एक एव शरीरेषु सर्वेषु पुरुषो यदा ।४१
तदास्य राजन्कः शत्रुः को वा मित्रमिहेष्यते । भूतैर्भूतानि मर्द्यन्ते अमूर्त्तो मर्द्यते कथम् ।।४२
क्रोधादीनां पृथग्भावात्कल्पनेयं निरर्थिका । यदि संव्यवहारार्थमसन्नाम प्रकल्प्यते ।।४३

एव आप जिस प्रकार कहते हैं, उसके अनुसार मैं ही चौथे पुत्र का नामकरण करूँगी यह धर्मज्ञ पुत्र 'अलर्क' नाम से विख्यात होगा ।३३। आपका यह कनिष्ठ पुत्र महाबुद्धिमान् होगा ।

पुत्र बोला—माता ने पुत्र का 'अलर्क' यह नामकरण किया यह असंबद्ध नाम सुनकर ।३४। महीपति ने हँसते-हँसते कहा हे कल्याणी ! तुमने मेरे पुत्र का जो नामकरण किया ।३५। यह अत्यन्त असंबद्ध है । हे मदालसे ! इसका क्या अर्थ है !

मदालसा बोली—हे महाराज ! नामकरण लोकाचार और कल्पना मात्र है ।३६। हे भूप ! "नाम रखना होगा" यह समझकर एक नाम रख लिया । आपने जो सब नाम रखा हैं, उनका भी किसी प्रकार अर्थ नहीं है । सुनिये—जो पुरुष पण्डित हैं, वह आत्मा को सर्वव्यापी कहते हैं ।३७। एक देश से अन्य देश की गति को ही क्रान्ति कहते हैं आत्मा सर्वगत सर्वव्यापी और देह का ईश्वर है । इसलिए उसकी गति संभव नहीं है ।३८। इस कारण मेरे विचार में विक्रान्त नाम का कोई अर्थ नहीं है । हे महीपते ! आत्मा सब प्रकार मूर्त्तिहीन है । अत एव आपने जो दूसरे पुत्र का सुबाहु नामकरण किया है ।३९। उसका भी किसी प्रकार अर्थ न हो सकता है। तीसरे पुत्र का जो अरिमर्दन नाम रखा है।४०। मेरे विचार में वह भी निरर्थक है। उसका कारण सुनिये। एक मात्र आत्मा समस्त शरीरों में विराजमान रहता है।४१। इसलिए उसका शत्रु वा मित्र कौन सम्भावना कर सकता है भूत के द्वारा ही भूतगण मर्दित होते हैं जो मूर्त्तिहीन है उसका फिर मर्दन किस प्रकार संभव हो सकता है।४२। क्रोध इत्यादि का पृथग्भाव होने से यह कल्पना भी निरर्थक है अर्थात् आत्मा सब प्रकार दोषरहित है वह किस शत्रु का मर्दन करेगा ? यदि लोकाचार के कारण ही इस प्रकार अर्थहीन नाम की कल्पना की

नाम्नि कस्मादलर्काख्ये नैरर्थ्यं भवतो मतम् । एवमुक्तस्तया साधु महिष्या स महीपतिः ॥४४
तथेत्याह महाबुद्धिर्दयितां तथ्यवादिनीम् । तं चापि सा सुतं सुभ्रूर्यथा पूर्वसुतांस्तथा ॥४५
प्राहावबोधजननं तामुवाच स पार्थिवः । करोषि किमिदं मूढे ममाभावाय सन्ततेः ॥४६
दुष्टावबोधदानेन यथा पूर्वसुतेषु मे । यदि ते मत्प्रियं कार्यमनुग्राह्यं वचो मम ॥४७
तदेनं तनयं मार्गे प्रवृत्ते सन्नियोजय । कर्ममार्गः समुच्छेदं नैव देवि गमिष्यति ॥४८
पितृपिण्डनिवृत्तिश्च नैव साध्वि भविष्यति । पितरो देवलोकस्थास्तथा तिर्यक्त्वमागताः ॥४९
तद्वन्मनुष्यतां याता भूतवर्गेषु ये स्थिताः । सपुण्यानसपुण्यांश्च क्षुत्क्षामांस्तृट्परिप्लुतान् ॥५०
पिण्डोदकप्रदानेन नरः कर्मण्यवस्थितः । सदाप्याययते सुभ्रूस्तद्वद्देवातिथीनपि ॥५१
देवैर्मनुष्यैः पितृभिः प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैः । वयोभिः कृमिभिः कीटैर्नर एवोपजीव्यते ॥५२
तस्मात्तन्वङ्गि मे पुत्रं यत्कार्यं क्षत्रयोनिभिः । ऐहिकामुष्मिकायालं तत्कर्म प्रतिपादय ॥५३
तेनैवमुक्ता सा साध्वी वरनारी मदालसा । अलर्कं नाम तनयं प्रोवाचोल्लापवादिनी ॥५४
पुत्र वर्द्धस्व मे भर्त्तुर्मनो नन्दय कर्मभिः । ऐहिकामुष्मिकफलं तत्सम्यक्परिपालय ॥
मित्राणामुपकाराय दुर्हृदां नाशनाय च ॥५५

धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रुरेकश्चिरं पालयितासि पुत्र ।
तत्पालनादिन्द्रसमोपभोग्यं धर्मं फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम् ॥५६

जाती है ।४३। तो मैंने जो "अलर्क" नाम रखा है, वह किस प्रकार आपके मत से अर्थहीन हो सकता है ? महिषी के इस प्रकार साधुवाक्य उच्चारण करने पर महाबुद्धि महीपति ने ।४४। सत्यभाषिणी दयिता से कहा तुमने जो कहा सब सत्य है । अनन्तर सुभ्रू मदालसा चौथे पुत्र को भी पहले तीनों के समान ।४५। आत्मज्ञान की शिक्षा देने में उद्यत हुई तब महीपति ने कहा हे मूढ़ ! यह क्या करती है मेरी सन्तान का अभाव करती है ।४६। इस प्रकार दूषणीय आत्मज्ञान देकर पहले पुत्रों का जिस प्रकार अमंगल विधान किया है इस पुत्र को भी क्या वैसा ही करेगी ? मेरा प्रिय अनुष्ठान करना यदि तुम कर्त्तव्य समझती हो और मेरा वचन प्रतिपालन करना यदि उचित समझती हो ।४७। तो इस पुत्र को प्रवृत्ति मार्ग में नियोजित करो। हे देवि ! पुत्र को कर्ममार्ग में प्रवृत्त करने से कर्ममार्ग नष्ट होगा।४८। हे साध्वी ! तो पिण्ड के लुप्त होने की भी सम्भावना नहीं है पितृगण शुभाशुभकर्मवश सुरलोक में वास तिर्यग्योनि सम्भोग।४९। नरत्वप्राप्ति और दूसरी योनियों में संक्रमण पूर्वक भूख-प्यास से अत्यन्त कातर और क्षीण होने पर।५०। मनुष्य कर्ममार्ग में अवस्थित होकर पिण्डोदक समर्पण कर सदा उनका और उन्हीं के अनुसार देवता और अतिथिगणों का सम्यक् प्रीतिविधान करते हैं। वरन् क्या देवता, क्या मनुष्य, क्या पितृगण, क्या प्रेत, क्या भूत, क्या गुह्यक, क्या पक्षी, क्या कृमि, कीट सबही मनुष्य को आश्रय करके जीवका निर्वाह करते हैं।५१-५२। अत एव हे तन्वङ्गी ! क्षत्रियों का जो कर्त्तव्य है और जो ऐहिक पारलौकिक फललाभार्थ उचित है मेरे इस पुत्र को वैसी ही शिक्षा दो।५३। वरनारी मदालसा ने पति का यह वचन सुनकर "अलर्क" नामक पुत्र से खिलाने के बहाने कहा।५४। हे पुत्र ! वर्द्धित होओ मित्रों के उपकारार्थ और शत्रुकुल विनाशार्थ कर्मानुष्ठान द्वारा मेरे पति का अन्तर आनन्दित करो।५५। हे पुत्र ! तुम धन्य हो क्योंकि तुम निःशत्रु होकर बहुतकाल पर्यन्त वसुमती (पृथ्वी) का पालन करो तुम्हारे पालन-गुण से

धरामरान्पर्वसु तर्पयेथाः समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः ।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथा मनः परस्त्रीषु निवर्तयेथाः ॥५७
सदा मुरारिं हृदि चिन्तयेथास्तद्ध्यानतोन्तः षडरीञ्जयेथाः ।
मायां प्रबोधेन निवारयेथा ह्यनित्यतामेव विचिन्तयेथाः ॥५८
अर्थागमाय क्षितिपाञ्जयेथा यशोर्ज्जनायार्थमपि व्ययेथाः ।
परापवादश्रवणाद्बिभीथा विपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथाः ॥५९
यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमन्नैर्द्विजान्प्रीणय संश्रितांश्च ।
स्त्रियश्च कामैरतुलैश्चिराय युद्धैश्चारींस्तोषयितासि वीर ॥६०
बालो मनो नन्दय बान्धवानां गुरोस्तथाज्ञाकरणैः कुमारः ।
स्त्रीणां युवा सत्कुलभूषणानां वृद्धो वने वत्स वनेचराणाम् ॥६१
राज्यं कुर्वन्सुहृदो नन्दयेथाः साधून्रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः ।
दुष्टान्निघ्नन्वैरिणश्चाजिमध्ये गोविप्रार्थे वत्स मृत्युं भजेथाः ॥६२

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे प्रवृत्तिमार्गानुशासनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।२३।

सम्पूर्ण लोकों को सुखसंचार होगा तो परम धर्मसंचय के कारण अमरत्वलाभ कर सकोगे ।५६। तुम प्रति पर्वके दिन ब्राह्मणों का तृप्तिविधान करो, बन्धुवर्ग की अभिलाषा पूर्ण करो, हृदय में पराये हित के साधन की इच्छा करो और पराई स्त्री में मन नहीं लगाओ ।५७। सदा मुरारि को हृदय में ध्यान करो और उनके ध्यान से अन्तःकरण के कामादि छः शत्रुओं को जीतो ज्ञान से माया का निवारण करो जगत् की अनित्यता को विचार करते रहो ।५८। अर्थ के प्राप्त होने में पांच वस्तुओं को जय करना और यश प्राप्ति के निमित्त व्यय करो पराई निन्दा सुनने से डरो जनों का विपत्ति के सागर से उद्धार करो ।५९। अनेक प्रकार के यज्ञानुष्ठान द्वारा देवताओं का एवं निरन्तर दान देने से ब्राह्मण और आश्रित जनों को प्रसन्न करो । हे वीर ! नाना प्रकार के अनुपमभोग द्वारा स्त्रीगण और संग्राम द्वारा शत्रुओं का सन्तोष साधन करोगे ।६०। तुम बालपन में बान्धवों का, कौमार में आज्ञापालन द्वारा पिता-माता का, यौवन में सत्कुलभूषण नारीका और बुढापे में वनवासी होकर वनचरों की प्रीति साधन करोगे ।६१। हे वत्स ! तुम राज्यपद में प्रतिष्ठित होकर सुहृद्गणों का आनन्द-सम्पादन करोगे तथा साधुओं की रक्षा करके यज्ञानुष्ठान एवं गौ और ब्राह्मणों की रक्षा विधानार्थ समर में दुष्ट और शत्रुओं का विनाश करके परलोक में प्रस्थान करोगे ।६२

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराण में प्रवृत्तिमार्गानुशासन नामक तेइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।२३।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः (२६)

मदालसोपाख्यानवर्णनम्

पुत्र उवाच

एवमुल्लाप्यमानस्तु स तु मात्रा दिने दिने । ववृधे वयसा बालो बुद्धया चालर्कसंज्ञितः ।।१
स कौमारकमासाद्य ऋतध्वजसुतस्तदा । कृतोपनयनः प्राज्ञः प्रणिपत्याह मातरम् ।।२
मया यदम्ब कर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकाय वै । सुखाय वद तत्सर्वं प्रश्रयावनतस्य मे ।।३
ममार्थं चैव धमार्थं प्रजानां चैव यद्धितम् । श्रेयसे यच्च तत्सर्वं प्रजारञ्जनमादितः ।।४

मदालसोवाच

वत्स राज्याभिषिक्तेन प्रजारञ्जनमादितः । कर्त्तव्यमविरोधेन स्वधर्मश्च महीभृताम् ।।५
व्यसनानि परित्यज्य सत्यमूलहराणि वै । आत्मा रिपुभ्यः संरक्षो बहिर्मन्त्रविनिर्गमात् ।।६
दुष्टादुष्टांश्च जानीयादमात्यानरिदोषतः । अष्टधा नाशमाप्नोति स्ववक्रात्स्यन्दनाद्यथा ।।७
तथा राजाप्यसन्दिग्धं बहिर्मन्त्रविनिर्गमात् । चरैश्चरास्तथा शत्रोरन्वेष्टव्याः प्रयत्नतः ।।८
विश्वासो न तु कर्तव्यो राज्ञा मित्राप्तबन्धुषु । कार्ययोगादमित्रेषु विश्वसीत नराधिपः ।।९

अध्याय २४

मदालसोपाख्यान-वर्णन

पुत्र ने कहा—जननी मदालसा इस प्रकार खिलाने के निमित्त जब नित्य उपदेश देनेमें उद्यत हुई तब बालक अलर्क बुद्धि और अवस्थासहित बढ़ने लगा।१। क्रमानुसार कौमार अवस्था प्राप्त होने पर महाबुद्धि ऋतध्वजनन्दन अलर्क ने यज्ञोपवीत को प्राप्त हो माता से प्रणाम करके कहा।२। हे अम्ब ! मैं विनय पूर्वक पूँछता हूँ, ऐहिक और पारलौकिक दोनों सुख के निमित्त मुझको जिस प्रकार कार्यानुष्ठान करना उचित है वह तुम सब विस्तारसहित कहो।३। मेरा, धर्म, अर्थ और प्रजा का जिस प्रकार हित हो और प्रजापालन से मुक्ति की प्राप्ति हो, वह तुम सब यथायोग्य वर्णन करो।४

मदालसा बोली—हे वत्स ! राज्य पद में अभिषिक्त होकर अपने धर्म के अनुसार प्रजारञ्जन करना ही नरपति का प्रथम कर्त्तव्य है।५। सत्य के मूलविनाशक व्यसनों को त्यागकरके जिससे किया हुआ मंत्र बाहर निकलकर शत्रुगण तिरस्कार न कर सके इस प्रकार के अनुष्ठान में प्रवृत्त होकर शत्रुओं से अपनी रक्षा परम कर्त्तव्य है।६। शत्रु के योग से अमात्यों की दुष्टता अदुष्टता जाने वक्र चक्रवाले रथ से गिरने से जैसे आठ प्रकार से आघात होता है।६। उसी प्रकार राजा मन्त्रणा के बाहर निकल जाने पर निःसन्देह क्षय को प्राप्त होता है। अथवा शत्रुओं के दोष से अमात्यवर्ग दूषित हुए हैं अर्थात् शत्रुओं ने धनादि द्वारा अमात्यवर्ग को दूषित किया है वा नहीं यत्नपूर्वक दूतों के द्वारा राजा को यह अवश्य जानना चाहिए।८। क्या मित्र क्या आप्त क्या बन्धु किसीका विश्वास करना राजा को उचित नहीं है किन्तु समयान्तर में शत्रु का भी विश्वास करना

स्थानवृद्धिक्षयज्ञेन षाड्गुण्यविदितात्मना । भवितव्यं नरेन्द्रेण न कामवशवर्तिना ॥१०
प्रागात्ममन्त्रिणश्चैव ततो भृत्या महीभृता । ज्ञेयाश्चानन्तरं पौरा विरुध्येत ततोऽरिभिः ॥११
यस्त्वेतानविजित्यैव वैरिणो विजिगीषते । सो जितात्माजितामात्यः शत्रुवर्गेण बाध्यते ॥१२
तस्मात्कामादयः पूर्वं जेयाः पुत्र महीभृता । तज्जये हि जयो राज्ञो राजा नश्यति तैर्जितः ॥१३
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदो मानस्तथैव च । हर्षश्च शत्रवो ह्येते नाशाय कुमहीभृताम् ॥१४
कामप्रसक्तमात्मानं स्मृत्वा पाण्डु निपातितम् । निवर्त्तयेत्तथा क्रोधादनुह्लादं हतात्मजम् ॥१५
हतमैलं तथा लोभान्मदाद्वेनं द्विजैर्हतम् । मानादनायुषः पुत्रं हतं हर्षात्पुरञ्जयम् ॥१६
एभिर्जितैर्जितं सर्वं मरुत्तेन महात्मना । स्मृत्वा विवर्जयेदेतान्षड्दोषांश्च महीपतिः ॥१७
काककोकिलभृङ्गाणां बकव्यालशिखण्डिनाम् । हंसकुक्कुटलोहानां शिक्षेत चरितं नृपः ॥१८
कौशिकस्य क्रियां कुर्याद्विपक्षे मनुजेश्वरः । चेष्टां पिपीलिकानां च काले भूपः प्रदर्शयेत् ॥१९

चाहिये ।९। नरपति को काम के वशीभूत न होकर स्थानवृद्धि और क्षय जानना उचित है और वह सन्धि विग्रहादि छः गुणों में गुणवान् हो ।१०। प्रथम तो आपको, फिर अमात्यगण को, फिर भृत्यगण और फिर प्रजा को वशीभूत करके अन्त में शत्रुओं से विरोध करे ।११। जो प्रथम आत्मा इत्यादि को बिना जीते शत्रु को पराजय करने की इच्छा करता है वह अजितात्मा राजा अमात्यों से विजित होकर शत्रुओं के वशीभूत होता है ।१२। हे पुत्र ! इसी कारण प्रथम कामादि शत्रुओं को जीतना चाहिये उनको जीतने से अवश्य ही जय प्राप्त होती है किन्तु कामादि के द्वारा परास्त होने पर राजा नाश को प्राप्त हो जाता है ।१३। काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष यही शत्रु और यही राजा के विनाश के कारण हैं ।१४। पांडुराजा काम के वश होकर ही नष्ट हुये हैं, अनुह्लाद को क्रोध के वश होकर ही पुत्रधन से वंचित होना पड़ा है ।१५। लोभ के वश होकर ही ऐल विनाश को प्राप्त हुए हैं, मद के कारण ही वेन राजा को ब्राह्मणों के द्वारा निहत होना पड़ा है, अनायुषका पुत्र अभिमान के कारण ही निपतित हुआ है और पुरञ्जय को हर्ष के वश होकर ही मरना पड़ा है ।१६। किन्तु महात्मा राजा मरुत्त ने इन समस्त शत्रुओं को पराजित करके अखिल संसारको जीता था नरपति इन सब को स्मरण करके समस्त दोषों को परित्याग करे ।१७। काक, कोकिल, भ्रमर, मृग, व्याल, मयूर, हंस, कुक्कुट और लौह नरपति इनके निकट से चरित-शिक्षा ग्रहण करे ।१८। [1]राजा शत्रु के प्रति उलूक जिस प्रकार कोई आडम्बर न करके शत्रुओं को नष्ट करता है, शत्रु के प्रति ऐसा ही व्यवहार करना राजा का कर्त्तव्य है, पिपीलिका के समान यथाकाल में संचयी हो।१९।

---

१. इनका तात्पर्य यही है कि, काक के समान आलस्यरहित और सावधान हो, कोकिल के समान संचयशील हो, मृग के समान सहसा शत्रु के वशीभूत न हो, सर्प जिस प्रकार स्वल्प मात्र विष से बड़े जीव का प्राण ध्वंस करता है इसी प्रकार अल्प बल की सहायता से अधिक बलवान् शत्रु के मारने की चेष्टा करें, मयूर के समान अपनी सम्पत्ति विस्तृत करे, हंस के गुणग्राही हो, कुक्कुट अर्थात् मुरगे के समान यथा समय में उठें और स्त्रियों की विपद् से रक्षा करें एवं लोहे के समान कठिन और बहु कर्मसम्पादक होना चाहिये।

ज्ञेयाग्निविस्फुलिङ्गानां बीजचेष्टा च शाल्मलेः । चन्द्रसूर्यस्वरूपं च नीत्यर्थे पृथिवीक्षिता ॥२०
बन्धकीपद्मशरभशूलिकागुर्विणीस्तनात् । एवं साम्ना च भेदेन प्रदानेन च पार्थिव ॥२१
दण्डेन च प्रकुर्वीत नीत्यर्थं पृथिवीक्षिता । प्रज्ञा नृपेण वा देया तथा चण्डालयोषितः ॥२२
शक्रार्कयमसोमानां तद्वद्वायोर्महीपतिः । रूपाणि पञ्च कुर्वीत महीपालनकर्मणि ॥२३
यथेन्द्रश्चतुरो मासान्वार्योघेणैव भूतलम् । आप्याययेत्तथा लोकान्परिचारैर्महीपतिः ॥२४
मासानष्टौ यथा सूर्यस्तोयं हरति रश्मिभिः । सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेन तथा शुल्कादिना नृपः ॥२५
यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति । तथा प्रिया प्रिये राजा दुष्टादुष्टे समो भवेत् ॥२६
पूर्णेन्दुमालोक्य यथा प्रीतिमाञ्जायते नरः । एवं यत्र प्रजाः सर्वा निर्वृतास्तच्छशिव्रतम् ॥२७
मारुतः सर्वभूतेषु निगूढश्चरते यथा । एवं चरेन्नृपश्चारैः पौरामात्यारिबन्धुषु ॥२८
न लोभार्थैर्न कामार्थैर्नार्थार्थैर्यस्य मानसम् । पदार्थैः कृष्यते धर्मात्स राजा स्वर्गमृच्छति ॥२९

अग्नि की चिनगारी और शाल्मलीबीज के समान व्यापनशील होना राजा को उचित है। वह चन्द्र- सूर्य के समान राजनीति प्रयोगपूर्वक पृथ्वी को देखें अर्थात् चन्द्र और सूर्य जिस प्रकार सब के गृह में किरण -विस्तार करते हैं एवं कभी तीक्ष्ण और कभी मृदु होते हैं इसी प्रकार राजनीति प्रयोग करके उदयशील होना राजा को उचित है।२०। व्यभिचारिणी पद्म शरभ शूलिका गुर्विणीस्तन गोपाङ्गना नरपति इन सब के निकट से राजा शिक्षा ग्रहण करे अर्थात् बन्ध की व्यभिचारिणी जिस प्रकार पर पुरुष चित्त को आनन्द देती है राजा को भी इस प्रकार प्रजा का चित्त प्रसन्न करना चाहिये। वह पद्म के सदृश सब पुरुषों का चित्त हरण करें उनको शरभ अष्टापदजीव के समान विक्रम प्रकाश करना चाहिये, शूलिका के समान शत्रु को एक बार में ही ध्वंस करें। गर्भिणी के स्तन जिस प्रकार होने वाली सन्तान का प्रतिपालन करने के लिये दुग्ध संग्रह कर रखते हैं राजा भी इसी प्रकार भविष्यत् के लिये संचयशील होने का यत्न करें और गोपाङ्गना जिस प्रकार एक मात्र दूध से नानाप्रकार द्रव्य प्रस्तुत करती है राजा को भी इसी प्रकार कल्पनापटु होना चाहिये।२१। नीतिपूर्वक दण्ड से पृथ्वी को देखे अर्थात् नीतिपूर्वक दण्ड से अर्थसंग्रह करे और चाण्डाल स्त्री से बुद्धि सीखे कि, वह किसी व्यवहार से मुख नहीं मोड़ती।२२। पृथ्वी पालन करना हो तो इन्द्र, सूर्य, यम, चन्द्र और वायु इन पाँचों देवता के अनुरूप आचरण करना चाहिये।२३। अर्थात् जिसप्रकार इन्द्र चार मास वर्षण द्वारा पृथ्वीवासियों को तृप्त करते हैं, राजा भी इसी प्रकार अर्थादि दान से सबको प्रसन्न करे।२४। सूर्य जिस प्रकार किरणों के द्वारा आठ मास जल सोखते हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म उपाय से करादि ग्रहण करना महीपति का कर्त्तव्य है।२५। काल प्राप्त होने पर यम जिस प्रकार क्या प्रिय क्या द्वेषी सबको ही निगृही करते हैं, इसी प्रकार राजा भी क्या प्रिय क्या अप्रिय क्या दुष्ट सर्वत्र समदर्शी हों।२६। पूर्ण चन्द्रमा के देखने से जिस प्रकार समस्त मनुष्य प्रसन्न होते हैं, जिसके शासन में प्रजा भी उसी प्रकार सुख अनुभव करें उस राजा का आचरण ही यथार्थ चन्द्रमा के अनुरूप है।२७। वायु जिस प्रकार गुप्तभाव से सर्वभूतों में विचरण करता है राजा भी इसी प्रकार चार द्वारा नगरवासी अमात्य और बांधव इत्यादि के चरित्रादि का खोज करे।२८। काम, लोभ वा अर्थ अन्य किसी कारण से जिसका मन आकृष्ट नहीं होता, वही राजा स्वर्ग को जाता है।२९। जो मूढ कुमार्ग में पड़े हुए हैं अपने धर्म से

उत्पथग्राहिणो मूढान्स्वधर्माच्चलितान्नरान् । यः करोति निजे धर्मे स राजा स्वर्गमृच्छति ॥३०
वर्णधर्मा न सीदन्ति यस्य राष्ट्रे तथाश्रमाः । राज्ञस्तस्य सुखं तात परत्रेह च शाश्वतम् ॥३१
एतद्राज्ञः परं कृत्यं तथैतद्वृद्धिकारणम् । स्वधर्मे स्थापनं नृणां चाल्यते न कुबुद्धिभिः ॥३२
पालनेनैव भूतानां कृतकृत्यो महीपतिः । सम्यक्पालयिता भागं धर्मस्याप्नोति वै यतः ॥३३
एवमाचरते राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणम् । स सुखी विहरत्येष शक्रस्यैति सलोकताम् ॥३४

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्याने चतुर्विंशोऽध्यायः।२४।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

(२८)

मदालसानुशासनवर्णनम्

पुत्र उवाच

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा सोऽलर्को मातरं पुनः । पप्रच्छ वर्णधर्मांश्च धर्मान्ये चाश्रमेषु च ॥१

अलर्क उवाच

कथितोऽयं महाभागे राज्यतन्त्राश्रितस्त्वया । मम धर्मोहमिच्छामि श्रोतुं वर्णाश्रमात्मकम् ॥२

मदालसोवाच

दानमध्ययनं यज्ञो ब्राह्मणस्य त्रिधोदितः । धर्मो नान्यश्चतुर्थोऽस्ति धर्मस्तस्यापदं विना ॥३

चलायमान हो गये हैं, जो उनको अपने धर्म पर लाता है वह राजा स्वर्ग को प्राप्त करता है।३०। हे वत्स! जिस राजा के राज्य में वर्णधर्म वा आश्रमधर्म किसी प्रकार से नष्ट नहीं होते वह क्या इस लोक क्या परलोक दोनों लोकों में निरन्तर सुख भोगता है।३१। बुद्धिमान् पुरुषों की परामर्श से सदा कार्यकरना और सबको स्व स्वधर्म स्थापन करना ही राजा का एकमात्र कार्य है, और यही उसकी सिद्धि लाभ का कारण है।३२। राजा प्रजा का सम्यक् प्रकार पालन करने पर जिस प्रकार कृतकृत्य होता है, उसी प्रकार उसको धर्म का अंश भी प्राप्त होता है।३३। जो राजा चारों वर्ण की रक्षा के लिये इस प्रकार नियम में स्थित रहता है वह इस लोक में परमसुख से बिहार कर अन्त में इन्द्र का सालोक्य प्राप्त करता है।३४

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मदालसोपाख्यान वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।२४।

अध्याय २५

मदालसानुशासन नामक वर्णन

पुत्र ने कहा—अलर्क जननी के इस प्रकार वचन सुनकर फिर वर्ण धर्म और आश्रमधर्म का विषय पूँछने लगा।१

अलर्क ने कहा—हे महाभागे! तुमने राजधर्म का तो वर्णन किया किन्तु अब मैं वर्ण धर्म और आश्रम धर्म सुनने की इच्छा करता हूँ।२

मदालसा बोली—हे वत्स! दान, अध्ययन और यज्ञ यह तीन ब्राह्मण के धर्म हैं इनके अतिरिक्त

याजनाध्यापने शुद्धस्तथा पुत्र प्रतिग्रहः । एतत्सम्यक्समाख्यातं त्रितयं चास्य जीविका ॥४
दानमध्ययनं यज्ञाः क्षत्रियस्याप्ययं त्रिधा । धर्मः प्रोक्तः क्षिते रक्षा शस्त्रा जीवश्च जीविका ॥५
दानमध्ययनं यज्ञो वैश्यस्यापि त्रिधैव सः । वाणिज्यं पाशुपाल्यं च कृषिश्चैवास्य जीविका ॥६
दानं यज्ञोऽथ शुश्रूषा द्विजातीनां त्रिधा मया । व्याख्यातः शूद्रधर्मोऽपि जीविका कारुकर्मजा ॥७
तद्वद्द्विजातिशुश्रूषा पोषणं क्रयविक्रयैः । वर्णधर्मास्त्विमे प्रोक्ताः श्रूयतामाश्रमाश्रयाः ॥८
स्ववर्णधर्मात्संसिद्धिं नरः प्राप्नोति न च्युतः । प्रयाति नरकं प्रेत्य प्रतिषिद्धनिषेवणात् ॥९
यावत्तु नोपनयनं क्रियते वै द्विजन्मनः । कामचेष्टोक्तिभक्षस्तु तावद्भवति पुत्रक ॥१०
कृतोपनयनः सम्यग्ब्रह्मचारी गुरोर्गृहे । वसेत तत्र धर्मोऽस्य कथ्यते तन्निबोध मे ॥११
स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नानं भिक्षाटनं तथा । गुरोर्निवेद्य तच्चाद्यमनुज्ञातेन सर्वदा ॥१२
गुरोः कर्मणि सोद्योगः सम्यक्प्रीत्युपपादकः । तेनाहूतः पठेच्चैव तत्परो नान्य मानसः ॥१३
एकं द्वौ सकलान्वापि वेदान्प्राप्य गुरोर्मुखात् । अनुज्ञातो वरां दत्त्वा दक्षिणां गुरवे ततः ॥१४
गार्हस्थ्याश्रमकामस्तु गृहस्थाश्रममावसेत् । वानप्रस्थाश्रमं वापि चतुर्थं वेच्छयात्मनः ॥१५
तथैव वा गुरोर्गेहे द्विजो निष्ठामवाप्नुयात् । गुरोरभावे तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुतं विना ॥१६
शुश्रूषुर्निरभीमानो ब्रह्मचर्याश्रमं वसेत् । उपावृत्तस्ततस्तस्माद्गृहस्थाश्रमकाम्यया ॥१७

चौथा धर्म और कुछ नहीं है अन्य धर्म उसके पक्ष में आपत्ति में हैं।३। विशुद्धभाव से याजन (यज्ञ कराना) अध्यापन और पवित्र भाव से प्रतिग्रह यह तीन ही ब्राह्मणजाति के जीविकार्थ व्यवसाय जाने।४। दान, अध्ययन और यज्ञ करना यह तीन क्षत्रियों के धर्म हैं एवं पृथ्वी की रक्षा और शस्त्र चलाना यह दो कर्म उनकी जीविका हैं।५। वैश्य के भी धर्म तीन हैं—दान, अध्ययन और यज्ञ और पशुपालन, वाणिज्य एवं कृषि यह तीन उनकी जीविका हैं।६। दान, यज्ञ उपरोक्त तीनों वर्णों की सेवा यह तीन शूद्रजाति के धर्म हैं एवं कारुकार्य।७। विप्रसेवा, पशुपोषण और क्रय-विक्रय ही उनकी जीविका है यह मैंने सब वर्णों का धर्म कहा अब आश्रमधर्म सुनो।८। स्व स्ववर्णधर्म का पालन करने से ही सब प्रकार सिद्धिलाभ करते हैं और वर्णधर्म के विरुद्ध आचरण करने से ही नरक में जाते हैं।९। हे पुत्र ! जब तक द्विजातिगण का उपनयन संस्कार (जनेऊ) सम्पन्न न हो तब तक वह अपनी इच्छानुसार व्यवहार आलाप और आहारादि कर सकते हैं।१०। उपनयन होने पर ब्रह्मचारी रूप से गुरु के घर वास कर उस समय इस स्थान में जिस प्रकार धर्माचरण करे वह कहती हूँ सुनो।११। स्वाध्याय, अग्निशुश्रूषा, स्नान, भिक्षार्थ भ्रमण प्रथम निवेदन करके फिर उनकी आज्ञानुसार आप भोजन करे।१२। गुरु के कार्यसाधन में उद्योग, उनका सन्तोष उत्पादन और गुरु के द्वारा बुलाये जाने पर उनके कार्य में तत्परता और अनन्यचित्तता के सहित अध्ययन उस ब्रह्मचारी को करना चाहिये।१३। गुरुदेव के मुख से एक, दो अथवा समस्त वेद पढ़ उनके चरणों की वन्दना कर आज्ञाग्रहण पूर्वक दक्षिणा समर्पण करें।१४। फिर गार्हस्थ्य धर्म की इच्छा हो तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये अथवा अपनी अभिलाषा के अनुसार वानप्रस्थाश्रम वा चतुर्थाश्रम अवलम्बन करे।१५। या नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर गुरु के घर ही वास कर सकता है यदि गुरु न हों तो उनके पुत्र के निकट और पुत्र के अभाव में उनके शिष्य के निकट।१६। सेवापरायण और अभिमानरहित होकर ब्रह्मचर्याश्रम में वास करना चाहिये पिर गृहस्थाश्रम की इच्छा से गुरु के घर से लौटकर।१७।

ततोऽसमानर्षिकुलां तुल्यां भार्यामरोगिणीम्। उद्वहेन्न्यायतोऽव्यङ्गां गृहस्थाश्रमकारणात् ॥१८
स्वकर्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवातिथींस्तथा। सम्यक्सम्प्रीणयेद्भक्त्या पोषयेच्चाश्रितांस्तथा ॥१९
भृत्यात्मजाञ्जामयोऽथ दीनार्थिपतितानपि। यथाशक्त्यान्नदानेन वयांसि पशवस्तथा ॥२०
एष धर्मो गृहस्थस्य ऋतावभिगमस्तथा। पञ्चयज्ञविधानं तु यथाशक्ति न हापयेत् ॥२१
पितृदेवातिथिज्ञातिभुक्तशेषं स्वयं नरः। भुञ्जीत च समं भृत्यैर्यथाविभवमात्मनः ॥२२
एष तूद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थस्याश्रमो मया। वानप्रस्थस्य धर्मं ते कथयाम्यवधार्यताम् ॥२३
अपत्यसन्ततिं दृष्ट्वा प्राज्ञो देहस्य चानतिम्। वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदात्मनः शुद्धिकारणात् ॥२४
तत्रारण्योपभोगश्च तपोभिश्चात्मकर्षणम्। भूमौ शय्या ब्रह्मचर्यं पितृदेवातिथिक्रियाः ॥२५
होमस्त्रिषवणं स्नानं जटावल्कलधारणम्। मौनादिकरणं चैव वन्यस्नेहनिषेवणम् ॥२६
इत्येष पापशुद्ध्यर्थमात्मनश्चोपकारकः। वानप्रस्थाश्रमस्तस्माद्भिक्षोस्तु चरमोऽपरः ॥२७
चतुर्थस्य स्वरूपं तु श्रूयतामाश्रमस्य मत्। यच्च धर्मोऽस्य धर्मज्ञैः प्रोक्तस्तात महात्मभिः ॥२८
सर्वसङ्गपरित्यागो ब्रह्मचर्यमकोपता। जितेन्द्रियत्वमावासे नैकस्मिन्वसतिश्चिरम् ॥२९
अनारम्भस्तथाहारे भिक्षान्नं चैककालिकम्। आत्मज्ञानावबोधश्च तथा चात्मावलोकनम् ॥३०
चतुर्थे त्वाश्रमे धर्मो मयायं ते निवेदितः। सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणां च मे शृणु ॥३१

गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने पर अपने अनुरूप कन्या से विवाह करें। कन्या का रोगरहित असमान कुलगोत्र सम्पन्न और विकलाङ्ग से रहित होना आवश्यक है।१८। स्वीय कर्मद्वारा न्यायानुसार अर्थ उपार्जित करके भक्तिसहित यथाविधि पितर, देवता और अतिथिगण की तृप्तिविधान और आश्रितजनों का पोषण करे।१९। भृत्य, पुत्र, दीन, अन्ध, पतित और पशु-पक्षियों को अपनी शक्ति के अनुसार अन्नदान द्वारा पालन करना चाहिये।२०। ऋतुकाल में स्त्रीगमन और शक्ति के अनुसार पञ्च यज्ञ का अनुष्ठान कर यही गृहस्थ का एकमात्र धर्म है।२१। विभव के अनुसार सादर पितृगण, देवतागण, अतिथिगण और ज्ञातिगण को अर्पण करके स्वयं भृत्यगणसहित अवशिष्ट भोजन करे।२२। मैंने यह संक्षेप से गृहस्थाश्रम धर्म कहा अब वानप्रस्थ धर्म वर्णन करती हूँ एकाग्रचित्त से सुनो।२३। बुद्धिमान् पुरुष सन्तान सन्तति की पूर्णता अपने देह की अवनति देखकर आत्मशुद्धि के लिये वानप्रस्थ में गमन करे।२४। वहाँ वन के फल मूलादि भक्षण कर तपस्या चरण द्वारा आत्मा का उत्कर्ष संपादन कर भूतल में शयन ब्रह्मचर्यानुष्ठान पितृदेव और अतिथि की परिचर्या।२५। होम तीनों सन्ध्याओं में स्नान, जटावल्कल धारण, निरन्तर योगाभ्यास और वन्यस्नेहों का सेवन करें।२६। इस प्रकार पापशुद्धि के निमित्त और आत्मा का उपकार करने के लिये वानप्रस्थाश्रम आश्रय करना चाहिये। इस आश्रम के पीछे भिक्षुनामक चरम आश्रम है।२७। हे पुत्र ! महात्मा धर्मज्ञ पुरुषों ने इस चौथे आश्रम का स्वरूप जिस प्रकार कहा है वह कहती हूँ सुनो।२८। सर्व संगपरित्याग, ब्रह्मचर्य, रोषशून्यता, इन्द्रियदमन एक स्थान में बहुत दिनों तक वास नहीं करना।२९। कर्म विसर्जन, भिक्षालय अन्न का एक बार मात्र भोजन, आत्मज्ञान के बोध की इच्छा और आत्मदर्शन यह समस्त ही चतुर्थाश्रम का कर्त्तव्य है।३०। चतुर्थाश्रम में जिस प्रकार धर्मानुष्ठान करना होता है वह तुमसे कहा अब अन्यान्य वर्ण और आश्रमों का साधारणतः जो कर्त्तव्य है वह सुनो।३१। सत्य, शौच, अहिंसा

सत्यं शौचमहिंसा च अनसूया तथा क्षमा । आनृशंस्यमकार्पण्यं सन्तोषश्चाष्टमो गुणः ।।३२
एते संक्षेपतः प्रोक्ता धर्मवर्णाश्रमेषु च । एतेषु नित्यधर्मेषु नित्यं तिष्ठेत्समन्ततः ।।३३
स याति ब्रह्मलोकं हि यावदिन्द्राश्चतुर्दश । यश्चोल्लंघ्य स्वकं धर्मं स्ववर्णाश्रमसंज्ञितम् ।।३४
नरोऽन्यथा प्रवर्त्तेत स दण्डचो भूभृतो भवेत् । ये च स्वधर्मसन्त्यागात्पापं कुर्वन्ति मानवाः ।।३५
उपेक्षतस्तान्नृपतेरिष्टापूर्तं प्रयात्यधः । तस्माद्राज्ञा प्रयत्नेन सर्वे वर्णाः स्वधर्मतः ।।३६
प्रवर्ततेऽन्यथा दण्डयाः स्थाप्याश्चैव स्वकर्मसु ।।३७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसानुशासनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।२५।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

मदालसोपाख्यानवर्णनम्

अलर्क उवाच

यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुवर्त्तता । बन्धश्च स्यादकरणे क्रियायां यस्य चोच्छ्रितिः ।।१
उपकाराय यन्नृणां यच्च वर्ज्यं गृहे सताम् । यथा च क्रियते तन्मे यथा यत्पृच्छतो वद ।।२

मदालसोवाच

वत्स गार्हस्थ्यमास्थाय नरः सर्वमिदं जगत् । पुष्णाति तेन लोकांश्च स जयत्यभिवाञ्छितान् ।।३

अनसूया, क्षमा, आनृशंस्य, अकृपणता और सन्तोष यह आठ गुण सब वर्णाश्रम का साधारण धर्म कहा गया है ।३२। मैंने यह तुम्हारे निकट सम्पूर्ण वर्णाश्रमधर्म संक्षेप से वर्णन किया सबको ही अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपालन करना चाहिये ।३३। जो पुरुष सदा स्वधर्म में स्थिति करता है जब तक चौदह इन्द्र का पतन नहीं होता तब तक वह ब्रह्मलोक में वास करता है । जो मनुष्य स्वीय वर्णाश्रमसंज्ञित स्वधर्म उल्लंघनपूर्वक ।३४। धर्मान्तर में प्रवृत्त होता है वह मनुष्य राजा के द्वारा दण्डनीय होता है, जो व्यक्ति स्वधर्मविसर्जनपूर्वक पापानुष्ठान करता है ।३५। उसको दण्ड न करके उपेक्षा करने से नरपति का इष्टा-पूर्त विनाश को प्राप्त होता है इसी कारण नरपति विशेष यत्नसहित वर्णमात्र को ही निज-निज धर्म में स्थापित करे।३६। और इसके विरुद्धाचरण में प्रवृत्त होने पर उनको दंड देकर स्वकर्म में स्थापित करे।३७।

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मदालसानुशासन वर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।२५।

अध्याय २६

मदालसोपाख्यान का वर्णन

अलर्क ने कहा—जो गृहस्थाश्रमी पुरुष का कर्त्तव्य है जिसका अनुष्ठान न करने से बंधन और करने से मोक्ष लाभ होता है ।१। जो मनुष्यों के उपकार का हेतु तथा जो वर्जनीय और कर्त्तव्य है मैं वह समस्त विषय पूँछता हूँ विस्तारसहित वर्णन करो ।२

मदालसा बोली—वे वत्स ! मनुष्य गृहस्थाश्रम अवलम्बन करके इन अखिल जीवों का पोषण

पितरो मुनयो देवा भूतानि मनुजास्तथा । कृमिकीटपतङ्गाश्च वयांसि पशवोऽसुराः ॥४
गृहस्थमुपजीवन्ति ततस्तृप्तिं प्रयान्ति च । मुखं चास्य निरीक्षन्ते अपि नो दास्यतीति वै ॥५
सर्वस्याधारभूतेयं वत्स धेनुस्त्रयीमयी । यस्यां प्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्च या मता ॥६
ऋक्पृष्ठासौ यजुर्मध्या सामवक्त्रशिरोधरा । इष्टापूर्तविषाणं च साधु सूक्ततनूरुहा ॥७
शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता । आजीव्यमाना जगतां साऽक्षया नापचीयते ॥८
स्वाहाकारो स्वधाकारो वषट्कारश्च पुत्रक । हन्तकारस्तथैवान्यस्तस्याः स्तनचतुष्टयम् ॥९
स्वाहाकारं स्तनं देवाः पितरश्च स्वधामयम् । मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेतराः ॥१०
हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततं स्तनम् । एवमाप्याययत्येषा देवादीनखिलांस्त्रयी ॥११
एतद्वत्सचतुष्कं तु नरस्तनचतुष्टये । न नियुञ्ज्याद्यथाकालं तेन स्युस्ते विमानिताः ॥१२
देवादीनखिलान्येषु सन्तर्पयति मानवः । तेषामुच्छेदकर्त्ता यः पुरुषोऽत्यन्तपापकृत् ॥१३
स तमस्यन्धतामिस्रे तामिस्रे च निमज्जति । यस्त्वेतां मानवो धेनुं स्वैर्वत्सैरमरादिभिः ॥१४
प्रापयत्युचिते काले स स्वर्गायोपपद्यते । तस्मात्पुत्र मनुष्येण देवर्षिपितृमानवाः ॥१५
भूतानि चानुदिवसं पोष्याणि स्वतनुर्यथा । तस्मात्स्नातः शुचिर्भूत्वा देवर्षिपितृतर्पणम् ॥१६

करता है और उसी पुण्य के प्रभाव से समस्त वांछित लोक लाभ करता है । पितृगण, ऋषिगण, देवगण, भूतगण, नरगण, कृमि, कीट, पतंगगण, पक्षिगण, पशुगण, और असुरगण ।४। यह समस्त ही गृहस्थाश्रमी का अवलम्बन करके जीवन यात्रा निर्वाह करते हैं और उनके ही साथ इनकी तृप्ति का विधान होता है "गृहस्थ हम को अन्न देगा या नहीं" यह चिन्ता करके गृही के मुख की ओर देखते हैं ।५। हे वत्स ! गृहस्थ ही वेदमयी धेनुरूप में सबका आधारभूत होकर रहता है अखिल ब्रह्माण्ड इस धेनुमें ही प्रतिष्ठित और यह धेनु ही ब्रह्माण्ड का कारण है ।६। ऋग्वेद इस धेनु की पीठ, यजुर्वेद मध्य, सामवेद मुख और ग्रीवा इष्टापूर्त्त, उसका सींग साधुसूक्त रोम ।७। शान्ति और पुष्टि कर्म उसका मलमूत्र एवं वर्ण और आश्रम ही इस धेनु की प्रतिष्ठा है इस धेनु का क्षय नहीं है । इसलिए समस्त विश्व को अवलम्बन पूर्वक जीवन धारण करने पर भी उसका क्षय होने की आशंका नहीं है ।८। हे पुत्र ! स्वाहा, स्वधाकार, वषट्कार और हन्त यह इस धेनु के चार स्तन हैं ।९। इन चार स्तनों में देवगण स्वाहाकार, पितृगण स्वधाकार, ऋषिगण वषट्कार ।१०। और मनुष्यगण सदा हन्तकार स्तनपान करते हैं । हे पुत्र ! इस प्रकार से यह त्रयीमयी धेनु ही सबकी तृप्ति सम्पादन करती है ।११। इन चारों स्तनों को यह चार जाति पान करती हैं, जो यथा समय में नियुक्त न किये जांय तो यह धेनु अवमानित होती है ।१२। जिनसे मनुष्य सब देवतादि को संतुष्ट करते हैं, उस त्रयी की नष्टता साधन करने से महापापी होता है ।१३। अन्धतामिस्र और तामिस्रनामक दोनों प्रकार के नरकों में निमग्न होता है । अमर इत्यादि इस धेनु के वत्स हैं । जो व्यक्ति यथा समय में उन वत्सों को ।१४। उपरोक्त स्तनपान कराता है सुरपुर में उसकी गति होती है । हे पुत्र ! इसीलिए नित्य स्वीय देह के अनुसार सुरगण, मुनिगण, पितृगण, नरगण ।१५। और भूतगणों का पोषण करना सबको उचित है । इसी कारण स्नानपूर्वक पवित्र होकर सावधान मन से सुरगण, पितृगण,

प्रजापतेस्तथैवाद्भिः काले कुर्यात्समाहितः । सुमनोगन्धधूपैश्च देवानभ्यर्च्य मानवः ॥१७
ततोऽग्रस्तर्पणं कुर्याद्दद्याच्च बलिमित्यथ । ब्रह्मणे गृहमध्ये तु विश्वेदेवेभ्य एव च ॥१८
धन्वन्तरिं समुद्दिश्य प्रागुदीच्यां बलिं क्षिपेत् । प्राच्यां शक्राय याम्यायां यमाय बलिमाहरेत् ॥१९
प्रतीच्यां वरुणायाथ सोमायोत्तरतो बलिम् । दद्याद्धात्रे विधात्रे च बलिं द्वारे गृहस्य च ॥२०
अर्यम्णेऽथ बहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्च समन्ततः । नक्तं चरेभ्यो भूतेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत् ॥२१
पितॄणां निर्वपेच्चैव दक्षिणाभिमुखः स्थितः । गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः ॥२२
ततस्तोयमुपादाय तेषामाचमनाय वै । स्थानेषु निक्षिपेत्प्राज्ञस्तास्ता उद्दिश्य देवताः ॥२३
एवं गृहबलिं कृत्वा गृहे गृहमतिः शुचिः । आप्यायनाय भूतानां कुर्यादुत्सर्गमादरात् ॥२४
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि । वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातरुदाहृतम् ॥२५
आचम्य च ततः कुर्यात्प्राज्ञो द्वारावलोकनम् । मुहूर्तस्याष्टमं भागमुदीक्ष्यो ह्यतिथिर्भवेत् ॥२६
अतिथिं तत्र सम्प्राप्तमनाद्येनोदकेन च । सम्पूजयेद्यथाशक्तिं गन्धपुष्पादिभिस्तथा ॥२७
न मित्रमतिथिं कुर्यान्नैकग्रामनिवासिनम् । अज्ञातकुलनामानं तत्कालसमुपस्थितम् ॥२८
बुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिञ्चनम् । ब्राह्मणं प्राहुरतिथिं स पूज्यः शक्तितो बुधैः ॥२९
न पृच्छेद्गोत्रचरणं स्वाध्यायं चापि पण्डितः । शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम् ॥३०

मुनिगण।१६। और प्रजापति, जलदानसहित इनका तर्पण करना चाहिये। चन्दन और गन्ध धूपादि द्वारा देवताओं की पूजा करके।१७। फिर अग्नितर्पणपूर्वक बलि दे। ब्रह्मा को विश्वदेव को।१८। और धन्वन्तरि को गृहमध्य में पूर्व और उत्तर दिशा में उद्देश्य करके बलिप्रदान करें। इन्द्र को पूर्व दिशा में, यम को दक्षिण दिशा में।१९। वरुण को पश्चिम दिशा में और सोम को उत्तर दिशा में बलिप्रदान करना चाहिये। घर के द्वारदेश में धाता और विधाता के उद्देश्य से बलि देवे।२०। अर्यमा को घर के बहिर्भाग में सब ओर से बलि प्रदान करे। तदनन्तर निशाचर और भूत के उद्देश्य से आकाशमार्ग में बलि आहरण करे।२१। पितरों को बलि देने के लिये दक्षिणाभिमुख होकर बैठे। अनन्तर गृही तत्पर और एकाग्रचित्त हो।२२। आचमन के लिये जल ग्रहण कर तत्तत् स्थान में उस-उस देवता के उद्देश्य से जलदान करे।२३। गृहस्वामी इस प्रकार से गृहबलि प्रदान करके पवित्र भाव से भूतसमूह की तृप्ति के निमित्त सादर उत्सर्ग विधि समाहित करे।२४। कुत्ता श्वपच और पक्षी इनके लिये पृथ्वी में बलिप्रदान करे इसको ही वैश्वदेवबलि कहते हैं। सायंकाल और प्रातःकाल में यह बलिप्रदान करना चाहिये।२५। बुद्धिमान् गृही इस प्रकार वैश्वदेवबलिप्रदान पूर्वक आचमन करके द्वारावलोकन करे। मूहूर्त के अष्टम भागतक अतिथि की प्रतीक्षा करे।२६। अतिथि के आने पर अपनी शक्ति के अनुसार जल अन्नादि और गन्ध पुष्पादि द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिये।२७। मित्र अथवा एक ग्रामवासी मनुष्य को अतिथि नहीं कहना, जिस पुरुष का कुल नाम ज्ञात न हो जो तत्काल आया हुआ हो।२८। वास्तविक आहार की अभिलाषा से जिसका आगमन हो जो थका हुआ याचक और जिसके पास कुछ नहीं हो पण्डितगण ऐसे ब्राह्मण को ही अतिथि कहते हैं। शक्ति के अनुसार ऐसे ही अतिथि की पूजा करनी चाहिये।२९। बुद्धिमान् गृही अतिथि का गोत्र वेद, शाखा अथवा स्वाध्याय का विषय कुछ भी नहीं पूछे। अतिथि सुन्दर वा कुरूप किसी प्रकार का क्यों न

अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते । तस्मिन्स्तृप्ते नृयज्ञोत्थादृणान्मुच्येद्गृहाश्रमी ।।३१
तस्यादत्त्वा तु यो भुङ्क्ते स्वयं किल्बिषभुङ् नरः । स पापं केवलं भुङ्क्ते पुरीषं चान्यजन्मनि ।।३२
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ।।३३
अप्यम्बुशाकदानेन यच्चाप्यश्नाति स स्वयम् । पूजयेत नरः शक्त्या तेनैवातिथिमादरात् ।।३४
कुर्याच्चाहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च । पितृ नुद्दिश्य विप्रांश्च भोजयेद्विप्रमेव वा ।।३५
अन्नस्याग्रं तदुद्धृत्य ब्राह्मणायोपपादयेत् । भिक्षां च याचितां दद्यात्परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ।।३६
ग्रासप्रमाणा भिक्षा स्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम् । अग्रं चतुर्गुणं प्राहुर्हन्तकारं द्विजोत्तमाः ।।३७
भोजनं हन्तकारं वा अग्रं भिक्षामथापि वा । अदत्त्वा तु न भोक्तव्यं यथाविभवमात्मनः ।।३८
पूजयित्वातिथीनिष्टाञ्ज्ञातीन्बन्धूंस्तथार्थिनः । विकलान्बालवृद्धांश्च भोजयेच्चातुरांस्तथा ।।३९
वाञ्छते क्षुत्परीतात्मा यच्चान्योऽन्नमकिञ्चनः । कुटुम्बिना भोजनीयः स्वसमं विभवे सति ।।४०
श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति । सीदता यत्कृतं तेन तत्पापं स समश्नुते ।।४१
सायं चैष विधिः कार्यः पूर्वोक्तं तत्र चातिथिम् । पूजयेच्च यथाशक्तिशयनासनभोजनैः ।।४२
एवमुद्वहतस्तात गार्हस्थ्यं भारमास्थितम् । स्कन्धे विधाता देवाश्च पितरश्च महर्षयः ।।४३

हो उसको मूर्त्तिमान् प्रजापतिस्वरूप विचारना चाहिये ।३०। नित्य अवस्थान न करने के कारण ही ऐसे अभ्यागत को अतिथि कहा जाता है । अतिथि की तृप्तिसाधन होने पर ही गृही नृयज्ञ (अतिथियज्ञ) के ऋण से मुक्ति लाभ करता है ।३१। जो पुरुष अतिथि को बिना दिये स्वयं भोजन करता है वह किल्बिषभोजी (पापभोक्ता है) केवल पापभोगी होता है तथा दूसरे जन्म में वह विष्ठा भोजन करता है ।३२। अतिथि जिसके घर से निराश होकर लौटता है वह उसका पुण्य लेकर अपना पाप उसे दे जाता है ।३३। अतिथि को जल या शाक एवं जो स्वयं भोजन करे वह समर्पण करके शक्ति के अनुसार सादर उसकी पूजा करे ।।३४। नित्य जल और अन्नादि द्वारा श्राद्ध और पितरों के उद्देश्य से एक या बहुत से ब्राह्मणों को भोजन करावे२।३५। अन्न का अग्रभाग तोडकर ब्राह्मण को अर्पण करना चाहिये। परिव्राजक और ब्रह्मचारी के माँगने पर उसको भिक्षा दे।३६। एक ग्रास को भिक्षा ग्रासचतुष्टय को अग्र और अग्रचतुष्टय को हन्तकार कहा जाता है।३७। अपने विभव के अनुसार हन्तकार वा अग्र अथवा भिक्षा बिना दिये कभी स्वयं भोजन न करे।३८। अतिथिसत्कार के बाद अभीष्ट ज्ञाति, बन्धु, याचक, विकल, बालक, वृद्ध और आतुर इनको भोजन कराना चाहिये।३९। अन्य किसी अकिंचन पुरुष के क्षुधार्त होकर प्रार्थना करने पर उसको भी आहार दें। सम्पत्ति होने पर समर्थ पुरुष को भोजन करना चाहिये।४०। जो ज्ञाति श्रीमान् के विद्यमान् होने पर दुःखी होती है जो पुरुष अवसन्नावस्था में जिस पाप का अनुष्ठान करता है श्रीमान् ज्ञाति को भी उस पाप के अंशका भागी होना पड़ता है।४१। संध्या काल में भी इसी विधि का अनुष्ठान करे । अतिथि के सूर्यास्तकाल में आने पर शक्ति के अनुसार शयन, आसन और भोजन द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिये।४२। हे तात ! इस प्रकार अपने कन्धे पर रखा हुआ गार्हस्थ्य भार वहन करने से विधाता से देवता, पितर, महर्षि।४३। अतिथि, बान्धव एवं पशु-पक्षी और सूक्ष्म कीट सब ही अत्यन्त

श्वेयोभिर्वर्षिणः सर्वे भवन्त्यतिथिबान्धवाः । पशुपक्षिमृगास्तृप्ता ये चान्ये सूक्ष्मकीटकाः ॥४४
गाथाश्चात्र महाभाग स्वयमत्रिरगायत । ताः शृणुष्व महाभाग गृहस्थाश्रमसंस्थिताः ॥४५
देवान्पितृंश्चातिथींश्च तद्वत्सम्पूज्य बान्धवान् । जामयश्च गुरूंश्चैव गृहस्थे विभवे सति ॥४६
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि । वैश्वदेवं हि नामैतत्कुर्यात्सायं तथा दिने ॥४७
मांसमन्नं तथा शाकं गृहे यच्चोपसाधितम् । न च तत्स्वयमश्नीयाद्विधिवद्यन्न निर्वपेत् ॥४८

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्याने षड्विंशतितमोऽध्यायः ।२६।

अथ सप्तविंशोऽध्याय (30)

गार्हस्थ्यवर्णनम्

मदालसोवाच

नित्यं नैमित्तिकं चैव नित्यनैमित्तिकं तथा । गृहस्थस्य त्रिधा कर्म तन्निशामय पुत्रक ॥१
पञ्चयज्ञाश्रितं नित्यं यदेतत्कथितं तव । नैमित्तिकं तथा चान्यत्पुत्रजन्मक्रियादिकम् ॥२
नित्यनैमित्तिकं ज्ञेयं पर्वश्राद्धादि पण्डितैः । तत्र नैमित्तिकं वक्ष्ये श्राद्धमाभ्युदयं तव ॥३
पुत्रजन्मनि यत्कार्यं जातकर्म समं नरैः । विवाहादौ च कर्त्तव्यं सर्वं सम्यक्क्रमोदितम् ॥४
पितरश्चात्र सम्पूज्याः ख्याता नान्दीमुखास्तु ये । पिण्डाश्च दधिसम्मिश्रान्दद्याद्यवसमन्वितान् ॥५

प्रसन्न होकर उसका कल्याण करते हैं ।४४। हे महाभाग ! महाभाग अत्रि इसके उपलक्ष्य में स्वयं जो गाथा गान कर गये हैं तुम वह गृहस्थाश्रम संज्ञित गाथा सुनो।४५। यदि सम्पत्ति हो तो गृही पुरुष देव, पितर, अतिथि बन्धु, ज्ञाति और गुरु की पूजा करके।४६। श्वगण श्वपच और पक्षियों के उद्देश्य से भूतल में अन्नदान प्रदान करे। वैश्वदेव नामक यह बलिकर्म पूर्वाह्ण में और सायंकाल में करना चाहिये।४७। मांस, अन्न, शाक अथवा घर में जो कुछ वस्तु विद्यमान हो वह नियम को पूरा किये बिना स्वयं भोजन न करे।४८

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मदालसोपाख्यान वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।२६।

अध्याय २७

गार्हस्थ्य कथन का वर्णन

मदालसा बोली—हे पुत्र ! गृहस्थ के कर्त्तव्य कर्म तीन प्रकार के हैं नित्य, नैमित्तिक और नित्य नैमित्तिक । इन तीनों का विषय कहती हूँ सुनो ।१। मैंने जिस पंचयज्ञाश्रित कर्म का विषय वर्णन किया उसको ही नित्य कहते हैं इसके अतिरिक्त पुत्र जन्मक्रिया को नैमित्तिक ।२। और पर्वश्राद्धादि को पंडितगण नित्यनैमित्तिक कर्म कहते हैं। उनमें प्रथम तुम्हारे निकट नैमित्तिक कर्म का विषय वर्णन करती हूँ ।३। पुत्र जन्म के समय मनुष्य जिस प्रकार जातकर्म करते हैं विवाहादि में भी क्रमानुसार समानरूप से वैसे ही करें ।४। विवाहादि कार्य में नान्दीमुखनामक प्रसिद्ध पितरों की सम्यक् प्रकार से पूजा करे उसी समय यजमान सावधान हो पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठकर पितरों के उद्देश्य से यव और दधिमिश्रित

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा यजमानः समाहितः। वैश्वदेवविहीनं तत्केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥६
युग्माश्चात्र द्विजाः कार्यास्ते पूज्याश्च प्रदक्षिणम्। एतं नैमित्तिकं वृद्धौ तथान्यच्चौर्ध्वदैहिकम् ॥७
मृताहनि तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं शृणुष्व तत्। दैवहीनं तथैकार्घ्यं तथैवैकपवित्रकम् ॥८
आवाहनं न कर्त्तव्यमग्नौकरणवर्जितम्। प्रेतस्य पिण्डमेकं च दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ॥९
तिलोदकं चापसव्यं तन्नामस्मरणान्वितम्। अक्षय्यममुकस्येति स्थाने विप्रविसर्जने ॥१०
अभिरम्यतामिति ब्रूयाद्ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह। प्रतिमासं भवेदेतत्कार्यमावत्सरान्नरैः ॥११
अथ सम्वत्सरे पूर्णे यदा वा क्रियते नरैः। सपिण्डीकरणं कार्यं तस्यापि विधिरुच्यते ॥१२
तच्चापि दैवरहितमेकार्घ्यैकपवित्रकम्। नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम् ॥१३
अपसव्यं च तत्रापि भोजयेदयुजो द्विजान्। विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासं क्रियाधिकः ॥१४
तं कथ्यमानमेकाग्रो वदन्त्या मे निशामय। तिलगन्धोदकैर्युक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ॥१५
कुर्यात्पितृणां त्रितयमेकं प्रेतस्य पुत्रक। पात्रत्रये प्रेतपात्रमर्घ्यं चैव प्रसेचयेत् ॥१६
ये समाना इति जपन्पूर्ववच्छेषमाचरेत्। स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम् ॥१७
सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते। प्रतिसम्वत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः ॥१८

पिण्डसमर्पण करे। कोई-कोई कहते हैं इसमें वैश्वदेव बलि के देने की आवश्यकता नहीं है।५-६। इसमें दो ब्राह्मणों की कल्पनापूर्वक प्रदशिणा करके अर्चना करें यही वृद्धिश्राद्ध में नैमित्तिक कहा गया है इसके अतिरिक्त मृत्यु के दिन।७। जो एकोद्दिष्टनामक औध्र्वदैहिक नैमित्तिक कार्य सम्पादित होता है वह सुनो—इसमें किसी प्रकार का देवकर्म करना नहीं होता।८। तथा आवाहन अथवा अग्नौकरण भी नहीं है एकमात्र कुशप्रयोग की ही विधि प्रतिपादित है। उच्छिष्ट के निकट प्रेत के उद्देश्य से एकमात्र पिण्डप्रदान करे।९। और उसका नाम स्मरण करके अपसव्य हो तिलसहित जल प्रोक्षण करना चाहिये। उस समय इस प्रकार कहे कि, "अमुक के उद्देश्य से यह तिलसहित जलप्रदान करता हूँ। यह अक्षय हो और वह इस तिलोदकद्वारा परमप्रीति अनुभव और प्रदर्शन करें"।१०। तब ब्राह्मण कहे कि "हमने प्रसन्नता अनुभव की" संवत्सर पर्यन्त प्रतिमास में ही इसी प्रकार अनुष्ठान करे।११। फिर संवत्सर काल पूरा होने पर या जिस समय उसके करने की विधि है उसी समय सपिण्डीकरण करना चाहिये। सपिण्डीकरण की भी विधि कहती हूँ सुनो।१२। यह सपिण्डीकरण भी दैवकार्यविहीन अग्नौकरणहीन और आवाहनहीन हैं, एकमात्र अर्घ्य और कुशप्रदान की ही इसमें विधि प्रतिपादित है।१३। दक्षिण दिशा में प्रतिकूल दिशा में जलसहित पिण्डादि पूर्वोक्त विधान से अर्पण करके अयुग्म एक, तीन, पाँच आदि ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये पर्वश्राद्धादि ही नित्यनैमित्तिक कहा गया है उसमें विशेष यही है कि, प्रतिमास में अतिरिक्त कार्य करे।१४। वह भी कहती हूँ एकाग्रचित्त होकर सुनो—हे वत्स ! सतिल गन्धोदकयुक्त चार पात्र स्थापन करे।१५। उनमें तीन पितरों के उद्देश्य और अपर एक की प्रेत के उद्देश्य से कल्पना करनी चाहिये। पितरों के उद्देश्य से स्थापित तीनों पात्र में प्रेतपात्र और अर्घ्यप्रसेक करना चाहिये।१६। फिर "ये समाना" इत्यादि मंत्र जपता हुआ पूर्व कथित प्रकार से अवशिष्ट कार्य सम्पादन करे स्त्रियों के उद्देश्य में भी इसी प्रकार एकोद्दिष्ट की विधि है।१७। किन्तु पुत्र के न होने से उसका सपिण्डीकरण नहीं होता। प्रतिसंवत्सर

मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिदोहितम् । पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदकाः ॥१९
मातुः सपिण्डा ये च स्युर्येऽन्ये मातुः सहोदकाः । कुर्युरेवं विधिं सम्यगपुत्रस्य सुतासुताः ॥२०
कुर्युर्मातामहायैवं पुत्रिकास्तनयास्तथा । द्व्यामुष्यायणसंज्ञास्तु मातामहपितामहान् ॥२१
पूजयेयुर्यथान्यायं श्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि । सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम् ॥२२
तदभावे च नृपतिः कारयेत्स्वकुटुम्बिना । ताज्जतीयैर्नरैः सम्यग्दाहाद्याः सकलाः क्रियाः ॥२३
सर्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः । एतास्ते कथिता वत्स नित्या नैमित्तिकाः क्रियाः ॥२४
क्रियां श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकीं शृणु । दर्शस्तत्र निमित्तं वै कालश्चन्द्रक्षयात्मकः ॥
नित्यतां नियतः कालस्तस्य संसूचयत्यथ ॥२५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासने गार्हस्थ्यकथने नैमित्तिकादि श्राद्धकल्पो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।२७।

अथाष्टविंशोऽध्यायः

(३१)

श्राद्धकल्पवर्णनम्

मदालसोवाच

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः । सुत लेपभुजो याति प्रलुप्तपितृपिण्डकः ॥१

में स्त्री के उद्देश्य से इसी भाँति नियमानुसार एकोद्दिष्ट करे ।१८। पुरुष के समान स्त्री के भी मृत्यु दिन में सामर्थ्य के अनुसार एकोद्दिष्ट करना चाहिये पुत्र के होने में सपिण्ड के अभाव में सहोदर ।१९। और जो माता का सपिण्ड है अथवा समानोदक और जो माता का दौहित्र (दोहता) है वह इस प्रकार कार्यानुष्ठान करे ।२०। मातामह के उद्देश्य से कन्या का पुत्र इस प्रकार कार्य करे इसको ही "द्व्यामुष्यायण" कहते हैं । नैमित्तिक श्राद्ध द्वारा मातामह और पितामह ।२१। कि विधानानुसार पूजा करे सबके अभाव में स्त्रियाँ अपने-अपने पति का कार्य करें किन्तु इसमें किसी प्रकार से किसी मंत्र का प्रयोग नहीं करना चाहिये ।२२। यदि स्त्री भी न हो तो राजा मृत पुरुष के आत्मीयगणों के द्वारा और सजातीय पुरुषों के द्वारा उसका दाहादि सम्पूर्ण कर्म सम्पादन करे ।२३। क्योंकि राजा सब वर्णों का बांधव है । हे वत्स ! यह मैंने तुमसे नित्य और नैमित्तिक विषय वर्णन किया ।२४। अब श्राद्धाश्रित अन्य प्रकार नित्य नैमित्तिक क्रिया का विषय सुनो—चन्द्रमा का क्षयात्मक काल ही दर्श अर्थात् अमावस्या कहा गया है, वह दर्श ही इस विषय का निमित्तस्वरूप और सदा उसकी नित्यता सूचित करता है, इस कारण ही इसको नित्यनैमित्तिकी क्रिया कहते हैं ।२५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मदालसोपाख्यान में गार्हस्थ्य अनुशासन वर्णन नामक सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ।२७।

अध्याय २८

श्राद्धकल्प का वर्णन

मदालसा बोली—हे वत्स ! सपिण्डीकरण में और पितृपिण्ड में पिता के प्रपितामह का अधिकार

तेषामन्यश्चतुर्थो यः पुत्र लेपभुजान्नभुक् । सोऽपि सम्बन्धतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते ।।२
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । पिण्डसम्बन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः ।।३
लेपसम्बन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात् । प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः ।।४
इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः सम्बन्धः साप्तपौरुषः । यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा ।।५
ततोऽन्ये पूर्वजाः स्वर्गे ये चान्ये नरकौकसः । ये च तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः ।।६
तान्सर्वान्यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन्यथाविधि । समाप्याययते वत्स येन येन शृणुष्व तत् ।।७
अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि । तेन तृप्तिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागताः ।।८
यदम्बुस्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक । तेन ये तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते ।।९
यास्तु गात्राम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले । ताभिराप्यायनं तेषां ये देवत्वं कुले गताः ।।१०
उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु याश्चान्नकणिका भुवि । ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः ।।११
ये वा दग्धाः कुले बालाः क्रियायोग्या ह्यसंस्कृताः । विपन्नास्तेऽन्नविकिरसंमार्जनजलाशिनः ।।१२
भुक्त्वा चाचामतां यच्च जलं यच्चांघ्रिशोधने । ब्राह्मणानां तथैवान्ये तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै ।।१३
पिशाचत्वमनुप्राप्ताः कृमिकीटत्वमेव ये । एवं यो यजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम् ।।१४
कश्चिज्जलान्नविक्षेपः शुचिरुच्छिष्ट एव वा । तेन तेन कुले तत्र तत्तद्योन्यन्तरं गताः ।।१५
प्रयान्त्याप्यायनं वत्स सम्यक्छ्राद्धक्रियावताम् । अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः ।।१६

नहीं है वह लेपभोजियों (लेपभागी जनों) में गिनने योग्य है।१। जो उनमें चतुर्थस्थानीय और पुत्र का लेप अन्नभोजी हैं वह संबंधहीन है। वह उपभोगमात्रको प्राप्त होता है।२। पिता, पितामह और प्रपितामह यह तीन लोग पिण्डसंबन्धी हैं।३। पितामह के पितामह सेतीन पुरुष लेपसम्बन्धी हैं उनमें यजमान सप्तम हैं।४। मुनियों ने इस प्रकार से सात पुरुष का सम्बन्ध स्थिर किया है। यजमान से ऊपर के पुरुष अनुलेप-सम्बन्धी हैं।५। स्वर्गवासी पूर्व पुरुषगण और नरक वासी अपरापर सब पुरुष और जो तिर्यग्योनिगत और भूतादि में स्थित हुए हैं। यजमान जिस-जिस प्रकार विधानानुसार श्राद्ध करके उनकी तृप्ति साधन करें हे वत्स ! उसका वर्णन करती हूँ सुनो।७। मनुष्य पृथ्वीतल में अन्न बखेरते हैं उससे पिशाचयोनिप्राप्त पुरुषों की तृप्ति होती है।८। हे पुत्र ! स्नान के वस्त्र से निचोड़ा जो जल पृथ्वी में गिरता है उससे वृक्षयोनि प्राप्त पुरुषों की तृप्ति होती है।९। वंश में जिन्होंने देवत्व लाभ किया है, गात्र से जो जल की बूंदे पृथ्वी में गिरती हैं उनसे वह तृप्त होते हैं।१०। पिण्ड उठाने के समय जो अन्न पृथ्वी में गिरता है तिर्यग्योनिगत पूर्व पुरुषगण उससे तृप्त होते हैं।११। जिन पुरुषों ने क्रिया के योग्य होकर भी असंस्कृत अवस्था और बाल्यवयस में दग्ध होकर जीवन परित्याग किया है। विकीर्ण अन्न और बुहारे जल को भोजन करने से वह तृप्त होते हैं।१२। ब्राह्मण भोजन करने के बाद आचमन के समय में जो जल फेंक देते हैं और उनके चरण धोने के समय जो जल पृथ्वी में गिरता है, अन्यान्य सब उसको ही पान करके तृप्त होते हैं।१३। हे वत्स ! जो पिशाचत्व को प्राप्त हुए हैं तथा जो कृमि कीटपने को प्राप्त हुए हैं जो यजमान उन ब्राह्मणों के निमित्त।१४। पवित्र वा अपवित्र जल छोड़ता है, उस जल से वे योन्यन्तर को प्राप्त हुए।१५। अच्छी प्रकार श्राद्ध करने से सम्यक् प्रकार तृप्त होते हैं। जो मनुष्य अन्याय के द्वारा उपार्जित किये धन से श्राद्ध

तृप्यन्ते तेन चाण्डालपुल्कसाद्यासु योनिषु । एवमाप्यायनं वत्स बहूनामपि बान्धवैः ।।१७
श्राद्धं कुर्वद्‌भिरन्नाम्बुशाकैरपि हि जायते । तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि ।।१८
कुर्वीत कुर्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति । तस्य कालानहं वक्ष्ये नित्यनैमित्तिकात्मकान् ।।१९
विधिना येन च नरैः क्रियते तन्निबोध मे । कार्यं श्राद्धममावास्यां मासि मास्युडुपक्षये ।।२०
तथाष्टकास्वप्यवश्यमिष्टकालान्निबोध मे । विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौ सूर्येन्दुग्रहणेऽयने ।।२१
विषुवद्रविसंक्रान्तिव्यतीपातेषु पुत्रक । श्राद्धार्हद्रव्यसम्पत्तौ तथा दुःस्वप्नदर्शने ।।२२
जन्मर्क्षग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया । विशिष्टः श्रोत्रियो योगी वेदविज्ज्येष्ठसामगः ।।२३
त्रिणाचिकेतः श्रुतवान्विहितव्रतकारकः । त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः षडंगवित् ।।२४
दौहित्र ऋत्विक् जामाता स्वस्रीयः श्वशुरस्तथा । पञ्चाग्निकर्मनिष्ठश्च तपोनिष्ठोऽथ मातुलः ।।२५
मातापितृपराश्चैव शिष्यसम्बन्धिबान्धवाः । एते द्विजोत्तमाः श्राद्धे समस्ताः केतनक्षमाः ।।२६
अवकीर्णी तथा रोगी न्यूनाङ्गस्त्वधिकाङ्गकः । पौनर्भवस्तथा काणः कुण्डो गोलोऽथ पुत्रक ।।२७
मित्रघ्नक्कुनखी कुष्ठी श्यावदन्तो निराकृतिः । अभिशस्तस्तथा स्तेयः पिशुनः सोमविक्रयी ।।२८
कन्यादूषयिता वैद्यो गुरुपित्रोस्त्तथोज्झकः । भृतकाध्यापको मित्रं परदुष्टापतिस्तथा ।।२९

करता है।१६। चाण्डाल और पुल्कसादियोनिगत पितर उसके द्वारा तृप्त होते हैं। हे वत्स ! इस प्रकार से बान्धवगण श्राद्धानुष्ठान पूर्वक जो जलबिन्दु और अन्नप्रदान करते हैं, उससे उनके अनेक पितृपुरुषों की तृप्ति होती है इस प्रकार भक्तिमान् होकर शाकद्वारा भी यथाविधि श्राद्ध करना चाहिये।१७-१८। श्राद्ध का अनुष्ठान करने से उसके वंश में हुए किसी को भी अवसन्न होना नहीं पड़ता। हे वत्स ! अब मैं श्राद्ध का नित्य नैमित्तिक काल वर्णन करती हूँ।१९। और जिस विधि के अनुसार श्राद्ध का अनुष्ठान करना चाहिये वह भी कहती हूँ सुनो—प्रति महीने जब चन्द्रमा का क्षय होता है, उसी अमावस्या में विधानानुसार श्राद्ध करना उचित है।२०। इसके अतिरिक्त पौषमासादि की कृष्णाष्टमी में भी श्राद्ध करना अवश्य कर्त्तव्य है। अब श्राद्ध का अच्छा अच्छा काल कहती हूँ श्रवण करो—यदि श्रेष्ठ ब्राह्मण प्राप्त होजाय तो सूर्य और चन्द्र के ग्रहण काल में अयन में।२१। विषुव समय (विषवती) में, रविसंक्रमण में व्यतीपात में श्राद्धोपयुक्त वस्तु प्राप्त होने पर दुःस्वप्न देखने में।२२। जन्मनक्षत्र में और ग्रहपीड़ा संघटित होने पर इच्छापूर्वक श्राद्ध का अनुष्ठान करे जो पुरुष श्रेष्ठ भावसम्पन्न श्रोत्रिय योगी वेदज्ञ ज्येष्ठ साम गाने वाले।२३। नचिकेताप्रणीत तीन उपनिषद् के उपासक त्रिमधु त्रिसुपर्ण और षडङ्गवेत्ता हैं।२४। जो पुरुष दौहित्र, ऋत्विक्, जामाता भगिनीपुत्र और श्वशुर हैं जो पुरुष पंचाग्निकर्मनिष्ठ और तपःपरायण हैं जो पुरुष मातुल (मामा)।२५। जो माता-पिता का भक्त है जो शिष्यसम्बन्धी और बान्धव है ऐसा उत्तम ब्राह्मण ही श्राद्ध का उपयुक्त पात्र है।२६। अवकीर्णी (ब्रह्मचर्यादिरहित) रोगी, स्थूलाङ्ग हीनाङ्ग दो विवाहिता के गर्भ से उत्पन्न एकचक्षु कुण्ड (जीवितभर्तृका गर्भजात जारजपुत्र), गोलक (पति के मरने पर और से उत्पन्न कुपुत्र)।२७। बन्धुद्रोही, कुनखी क्लीब, काले दांतवाला निराकृति (हीनाकृति) पिता के द्वारा शापित क्रूर सोमविक्रयी (शराब बेचनेवाला)।२८। कन्यादूषयिता, वेदव्यवसायी गुरु वा पितृत्यागी भृतकाध्यापक (वेतनग्रहणपूर्वक अध्यापनकारी) अमित्र पर पूर्वापति

वेदोज्झश्चाग्निसंत्यागी वृषलापत्यदूषितः । यथान्ये च विकर्मस्था वर्ज्याः पैत्र्येषु वै द्विजाः ॥३०
निमन्त्रयेत पूर्वेद्युः पूर्वोक्तान्द्विजसत्तमान् । दैवे नियोगे पित्र्ये च तांस्तथैवोपकल्पयेत् ॥३१
तैश्च संयमिभिर्भाव्यं यश्च श्राद्धं करिष्यति । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽनुगच्छति ॥३२
पितरस्तु तयोर्मासं तस्मिन्रेतसि शेरते । गत्वा च योषितं श्राद्धे यो भुङ्क्ते यस्तु गच्छति ॥३३
रेतोमूत्रकृताहारास्तं मासं पितरस्तयोः । तस्मात्तु प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम् ॥३४
अप्राप्तौ तद्दिने चापि वर्ज्या योषित्प्रसङ्गिनः । भिक्षार्थमागतान्वापि काले संयमिनो यतीन् ॥३५
भोजयेत्प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः । यथैव शुक्लपक्षाद्वै पितॄणामसितः प्रियः ॥३६
तथापराह्णः पूर्वाह्णात्पितॄणामतिरिच्यते । सम्पूज्य स्वागतेनैतानभ्युपेतान्गृहे द्विजान् ॥३७
पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् । पितॄणामयुजः कामं युग्मान्दैवे द्विजोत्तमान् ॥३८
एकैकं वा पितॄणां च देवानां च स्वशक्तितः । तथा मातामहानां च तुल्यं वा वैश्वदैविकम् ॥३९
पृथक्तयोस्तथा चान्ये केचिदिच्छन्ति मानवाः । प्राङ्मुखान्दैवसङ्कल्पान्पित्र्यान्कुर्यादुदङ्मुखान्॥४०
तथा मातामहानां च विधिरुक्तो मनीषिभिः । विष्टरार्थे कुशान्दत्त्वा सम्पूज्यार्घ्यादिना ततः ॥४१
पवित्रकाणि दत्त्वा वै तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च । कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां मन्त्रतो द्विजः ॥४२

(जो नारी पहले दूसरे की स्त्री थी उसका स्वामी) ।२९। देवत्यागी, अग्नित्यागी, शूद्रीपति (बारह वर्ष की अनूढ़ा ऋतुमयी स्त्री का पति) दूषित और अपरापर गर्हित कर्म के अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण को पितृकर्म में परित्याग करे ।३०। श्राद्ध के पहले दिन पूर्वकथित ब्राह्मण को निमंत्रण करना चाहिये क्या देवकार्य क्या पितृकार्य दोनों कार्यों में ही उसको ऐसा करना चाहिये ।३१। जो श्राद्ध का अनुष्ठान करे उसको समयपूर्वक रहना चाहिये जो पुरुष श्राद्ध कर और श्राद्ध भक्षण करके मैथुन करता है ।३२। उसके पिता एक महीने तक उस शुक्र में शयन करते हैं जो पुरुष नारी संग करके श्राद्ध में आहार वा गमन करता है ।३३। उन दोनों के पितृपुरुष एक मास तक शुक्र और मूत्रपान करके स्थिति करते हैं। इस कारण ही बुद्धिमान पुरुष प्रथम पूर्वदिन में निमन्त्रण करे ।३४। कार्य के दिन ब्राह्मण के न मिलने पर भी नारीसंगी को कभी ब्राह्मणपद में नियुक्त न करे। यथासमय में भिक्षार्थ अभ्यागत संयमी यती को ।३५। प्रणामादि द्वारा प्रसन्न करके संयत चित्त से भोजन करावे। शुक्ल पक्ष की अपेक्षा कृष्णपक्ष जिस प्रकार पितरों को प्रिय है ।३६। इसी प्रकार पूर्वाह्ण की अपेक्षा अपराह्ण ही उनके अधिक सन्तोष का कारण है घर आये हुए ब्राह्मण से स्वागत पूँछ भलीभाँति उसकी अर्चना करके ।३७। कुश हाथ में लिये उसको आसन पर बैठाले पितृकार्य में अयुग्म और देवकार्य में युग्म ब्राह्मण को ही वरण करना चाहिये ।३८। अथवा अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रतिकर्म में एक ब्राह्मण को वरण करे। मातामह के पक्ष में भी इसी प्रकार विधि अथवा वैश्वदेवविधि निर्दिष्ट है ।३९। कोई-कोई मनुष्य पृथक् प्रकार से व्यवस्था की इच्छा करते हैं पूर्वमुख होकर देवकार्य एवं उत्तरमुखहोकर पितृकार्य ।४०। और मातामह का कार्य समापन करे। मनीषिगणों ने इसी प्रकार विधि निरूपित की है। इसी समय में आसन के लिये कुश प्रदान करे और अर्घ्यादि से पूजा करे ।४१। फिर पवित्रकादि अर्पणपूर्वक अभ्यागत ब्राह्मण की आज्ञा ले मंत्रपाठसहित देवताओं को आवाहन करना चाहिये ।४२

यवांभोभिस्ततश्चार्घ्यं दत्त्वा वै वैश्वदैविकम् । गन्धमाल्यादिधूपं च दत्त्वा सम्यक्सदीपकम् ॥४३
अपसव्यं पितॄणां च सर्वमेवोपकल्पयेत् । दर्भांश्च द्विगुणान्दत्त्वा तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च ॥४४
मन्त्रपूर्वं पितॄणां च कुर्यादावाहनं बुधः । अपसव्यं तथैवार्घ्यं यवार्थे च तथा तिलैः ॥४५
निष्पादयेन्महाभाग पितॄणां प्रीणने रतः । अग्नौकार्यमनुज्ञातः कुरुष्वेति ततो द्विजैः ॥४६
जुहुयाद्व्यञ्जनक्षारवर्जमन्नं यथाविधि । अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति प्रथमाहुतिः ॥४७
सोमाय वै पितृमते स्वाहेत्यन्या तथा भवेत् । यमाय प्रेतपतये स्वाहेति तृतीयाहुतिः ॥४८
हुतावशिष्टं दद्याच्च भाजनेषु द्विजन्मनाम् । भाजनालम्भनं कृत्वा दत्त्वा चान्नं यथाविधि ॥४९
यथासुखं जुषध्वं भोरिति वाच्यमनिष्ठुरम् । भुञ्जीरञ्श्च ततस्तेऽपि तच्चित्ता मौनिनः सुखम् ॥५०
यद्यदिष्टतमं तेषां तत्तदन्नमसत्वरम् । अक्रुध्यंश्च नरो दद्यात्स्तवेन प्रलोभयेत् ॥५१
रक्षोघ्नांश्च जपेन्मन्त्रांस्तिलैश्च विकिरेन्महीम् । सिद्धार्थकैश्च रक्षार्थं श्राद्धं हि प्रचुरच्छलम् ॥५२
पृष्टैस्तृप्तैश्च तृप्ताः स्थः तृप्ताः स्म इति वादिभिः । अनुज्ञातो नरस्त्वन्नं विकिरेद् भुवि सर्वतः ॥५३
तद्वदाचमनार्थाय दद्यादम्भः सकृत्सकृत् । अनुज्ञां च ततः प्राप्य यतवाक्कायमानसः ॥५४
सतिलेन ततोऽन्नेन पिण्डान्सर्वेण पुत्रक । पितॄनुद्दिश्य दर्भेषु दद्यादुच्छिष्ट सन्निधौ ॥५५

यवसंयुक्त जलद्वारा विश्वदेव के उद्देश्य से अर्घ्यप्रदानपूर्वक गन्ध, माल्य, धूप, दीप ।४३। और जलदान करके दक्षिण दिशा में पितरों का समस्त कर्म सम्पादन करे तदनन्तर द्विगुणदर्भप्रदानपूर्वक उसकी आज्ञा ले मन्त्रोच्चारण सहित पितरों का आवाहन करना चाहिये। हे महाभाग ! इसी समय पितरों के प्रीतिविधान में निरत होकर अपसव्य हो दक्षिण दिशा में यवार्थ तिलयुक्त अर्घ्यप्रदान करे। इसके बाद ब्राह्मणों की अग्निकार्य करो इस प्रकार आज्ञा पाकर अग्नि में विधानानुसार व्यञ्जन और क्षाररहित अन्न की आहुति देनी चाहिये "अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा" अर्थात् जो कव्य वहन करते हैं उसी अग्नि को प्रसन्न करने के लिये मैं यह अन्न प्रदान करता हूँ यह वचन उच्चारण करके प्रथम आहुति दे।४४-४७। फिर "सोमाय वै पितृमते स्वाहा" इस प्रकारवचन उच्चारणसहित दूसरी आहुति देनी चाहिए इसके बाद "यमाय प्रेतपतये स्वाहा" यह वचन उच्चारण करके तीसरी आहुति दे।४८। होम के अन्त में जो अवशिष्ट रहे वह ब्राह्मणों के पात्र में प्रदान करे उसी समय आप यथासुख से "यह अन्न भोजन कीजिये" मधुर वचन से यह बात कहे तब ब्राह्मण मौनभाव से तद्गत चित्त हो यथा सुखसहित वह भोजन करें।४९-५०। जो अन्न उनको प्रिय हो क्रोधपरित्यागपूर्वक धीरे-धीरे उनको सम्भवानुसार प्रलोभित करके वही प्रदान करना चाहिये।५१। रक्षोघ्नमंत्र जप करके समस्त भूमि में तिल बखेरे। रक्षा के निमित्त सरसों भी बखेरना चाहिये क्योंकि श्राद्ध स्वतः ही अनेक छिद्रपूर्ण है।५२। अनन्तर आप पुष्टि तृप्तिजनक अन्न भोजन करके "तृप्त हुए" यह वचन उच्चारण करने पर ब्राह्मण भी "तृप्ताः स्मः" अर्थात् "तृप्त हुए" इस प्रकार कहें तब उनकी आज्ञा ग्रहण कर भूमितल में सर्वत्र अन्न बखेरना चाहिए।५३। और आचमनार्थ विधानानुसार एक-एकबार जल प्रदान करे फिर आज्ञा ग्रहण कर संयत वाक्य, संयत मन और संयताकार हो तिलसहित अन्न से पिण्ड बनाकर दक्षिण दिशा में पितरों के उद्देश्य से कुशाओं के ऊपर उच्छिष्ट के निकट अर्पण करे।५४-५५। उस समय सावधान हो पितरों के उद्देश्य से भक्तिपूर्वक

पितृतीर्थेन तोयं च दद्यात्तेभ्यः समाहितः । पितॄन्सञ्चिन्त्य तद्भक्त्या यजमानो नृपात्मजः ॥५६
तद्वन्मातामहानां च दद्यात्पिण्डान्यथाविधि । गन्धमाल्यादिसंयुक्तान्दद्यादाचमनं ततः ॥५७
दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्या सुस्वधास्त्विवति तान्वदेत् । तैश्च तुष्टैस्तथेत्युक्त्वा वाचयेद्वैश्वदैविकान् ॥५८
प्रीयन्तामिति भद्रं वो विश्वेदेवा इतीरयेत् । तथेति चोक्ते तैर्विप्रैः प्रार्थनीयास्तदाशिषः ॥५९
विसर्जयेत्प्रियाण्युक्त्वा प्रणिपत्य च भक्तितः । आद्वारमनुगच्छेच्च आगच्छेच्चानुमोदितः ॥६०
ततो नित्यक्रियां कुर्याद्भोजयेच्च तथातिथीन् । नित्यक्रियां पितृणां च केचिदिच्छन्ति सत्तमाः ॥६१
न पितॄणां तथैवान्ये शेषं पूर्ववदाचरेत् । पृथक्पाकेन चेत्यन्ये केचित्पूर्वं च पूर्ववत् ॥६२
ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः । एवं कुर्वीत धर्मज्ञः श्राद्धं पित्र्यं समाहितः ॥६३
यथा वा द्विजमुख्यानां परितोषोऽभिजायते । त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुतुपस्तिलाः ॥६४
वर्ज्यानि चाहुर्विप्रैश्च कोपोऽध्वगमनं त्वरा । राजतं च तथा पात्रं शस्तं श्राद्धेषु पुत्रक ॥६५
रजतस्य तथा कार्यं दर्शनं दानमेव वा । राजते हि स्वधा दुग्धा पितृभिः श्रूयते मही ॥६६
तस्मात्पितॄणां रजतमभीष्टं प्रीतिवर्धनम् ॥६७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने श्राद्धकल्पो नामाष्टविंशोऽध्यायः समाप्तः ।२८।

पितृतीर्थ योग में उनको जलदान करे ।५६। यह मातामह के उद्देश्य से भी इसी विधानानुसार पिण्ड समर्पण करके गन्धमाल्यादि समन्वित आचमन प्रदान करे ।५७। अनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर उनसे सुस्वधास्तु इत्यादि मंत्र पाठ करावे जब वह प्रसन्न होकर उस मन्त्र को पाठ करें तो उसके द्वारा "हे विश्वदेव ! ।५८। आप संतुष्ट हो आपका श्रेयसाधन अर्थात् कल्याण हो" इत्यादि वैश्वदैविक मंत्रपाठ कर चुके तब उनके समीप आशीर्वाद प्रार्थना करनी चाहिये ।५९। अनन्तर प्रिय वचन कह सबको भक्तिसहित प्रणाम कर बिदा दे । बिदा के समय द्वारदेश पर्यन्त उनका अनुगमन करना चाहिये, उनके अनुमोदन करने पर लौट आवे ।६०। अन्त में नित्य क्रिया करके अतिथिगणों को भोजन दे कोई-कोई पुरुष पितरों के नित्य क्रिया करने की इच्छा करते हैं ।६१। कोई-कोई इसके विरुद्ध मत प्रकाश करते हैं, परन्तु अवशिष्ट कर्म पूर्ववत् समापन करें । किसी-किसी के मत से पृथक् पाक पूर्वक पितृकार्य करने की आवश्यकता नहीं होती और किसी के मत से पृथक् पाक करना चाहिये ।६२। फिर वह अन्न भृत्यगण के सहित भोजन करे । हे धर्मज्ञ ! इस प्रकार से अथवा जिसके द्वारा ब्राह्मणों का सन्तोष हो, उसी प्रकार सावधान हो पितरों के उद्देश्य से श्राद्ध का अनुष्ठान करना चाहिए । दौहित्र कुतुप[1] और तिल श्राद्ध में यह तीन पवित्र हों ।६३-६४। और कोप मार्ग में भ्रमण एवं त्वरा यह तीन वर्जित हैं ब्राह्मणश्रेष्ठों ने इस प्रकार निरूपण किया है । हे पुत्र ! श्राद्ध में रजत (चाँदी) पात्र श्रेष्ठ हैं ।६५। रौप्य दान वा रौप्य दर्शन करना अवश्य उचित है । इस प्रकार सुना है कि, पितरों ने रौप्य पात्र में वसुमती से स्वधारूपी दूध दोहन किया था ।६६। इसी कारण रौप्य पितरों का अभीष्ट और प्रीतिवर्धक है ।६७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में श्राद्धकल्प वर्णन नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ।२८।

---

१. कुतुप दिन के पंचदश भाग का अष्टमांश ।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

(३२)

श्राद्धकल्प-वर्णनम्

मदालसोवाच

अतः परं शृणुष्वेमं पुत्र भक्त्या यदाहृतम् । पितृणां प्रीतये यद्वद्वर्ज्यं वा प्रीतिकारकम् ॥१
मासं तृप्तिः पितृणां च हविष्यान्नेन जायते । मासद्वयं मत्स्यमांसैस्तृप्तिं यान्ति पितामहाः ॥२
त्रीन्मासान्हारिणं मांसं विज्ञेयं पितृतृप्तये । पुष्णाति चतुरो मासाञ्छशस्य पिशितं पितॄन् ॥३
शाकुनं पञ्च वै मासान्षण्मासान्सूकरामिषम् । छागलं सप्त वै मासानैणेयं चाष्टमासिकीम् ॥४
करोति तृप्तिं नव वै रुरोर्मांसं न संशयः । गवयस्यामिषं तृप्तिं करोति दशमासिकीम् ॥५
तथैकादशमासांस्तु औरभ्रं पितृतृप्तिदम् । सम्वत्सरं तथा गव्यं पयः पायसमेव वा ॥६
वार्ध्रीणसामिषं लोहं कालशाकं तथा मधु । दौहित्रामिषमन्यच्च दत्तमात्मकुलोद्भवैः ॥७
अनन्तां वै प्रयच्छन्ति तृप्तिं गौरीसुतस्तथा । पितृणां नात्र सन्देहो गयाश्राद्धं च पुत्रक ॥८
राजश्यामाकश्यामाकौ तद्वच्चैव प्रशातिका । नीवाराः पौष्कराश्चैव वन्यानि पितृतृप्तये ॥९
यवव्रीहिसगोधूमतिलमुद्‌गाः ससर्षपाः । प्रियङ्गवः कोद्रवाश्च निष्पावाश्चातिशोभनाः ॥१०

अध्याय २९

श्राद्धकल्प का वर्णन

मदालसा बोली—हे पुत्र ! अनन्तर पितरों के प्रीति संपादन करने के लिये भक्तिपूर्वक जो-जो आहरण करना चाहिये एवं जो वर्जित है और जिससे प्रसन्न होते हैं वह कहती हूँ सुनो ।१। हविष्यान्न से वह एक महीने तृप्त रहते हैं । मत्स्य, मांस द्वारा पितामहगण दो महीने तक तृप्त रहते हैं ।२। हरिण का मांस उनको तीन महीने तृप्त रखता है, खरगोश के मांस से चार महीने उनका पोषण होता है ।३। पक्षी के मांस द्वारा पाँच महीने, सूकर के मांस से छः महीने, वार्ध्रीण के[1] मांस से सात महीने, ऐण मृग के मांस से आठ महीने ।४। रुरु मृग के मांस से नौ महीने और गवय के मांस से दश महीने तक पितृगण तृप्तिलाभ करते हैं इसमें संशय नहीं ।५। औरभ्रमांस ग्यारह महीने तक पितरों को तृप्तिप्रद है, गव्य दुग्ध और खीर द्वारा सम्वत्सर तक उनको तृप्तिलाभ होता है ।६। गंडारमांस (लोह) कालशाक, मधु, दौहित्र का दिया आमिष वा निजवंशोद्भव अन्य जिस किसी पुरुष का दिया हुआ मांस ।७। एवं गौरीसुत और गया श्राद्ध, हे पुत्र ! इन सब के द्वारा वह अनन्त तृप्तिलाभ करते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।८। साँवा, राजश्यामाक, पसाई के चावल, नीवार और पौष्कर, यह तीनों धान्य पितरों को परम प्रसन्नतादायक हैं ।९। इनके अतिरिक्त यव, व्रीहि, गेंहू, तिल, मूंग, सरसों, प्रियंगु, कोविदार और निष्पाव, यह सब भी उनके अत्यन्त

---

१. ''त्रिः पिवन्ति कृतं क्लीवं श्वेतं वृद्धमजापतिम् । वार्ध्रीणसं तु तं प्राहुर्मुनयो यज्ञकर्मणि'' । अर्थात् जो श्वेत वर्ण, नपुंसक क्रिया और वृद्ध जिस बकरे के जलपान समय में दोनों कान और नासिका जल में डूबती हैं, उसको ''वार्ध्रीणस'' कहते हैं । मुनियों के मत से यह श्राद्धादि में अति प्रशस्त है ।

वर्ज्या मर्कटकाः श्राद्धे राजमाषास्तथाणवः । विप्रूषिका मसूराश्च श्राद्धकर्मणि गर्हिताः ॥११
लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुः पिण्डमूलकम् । करम्भं यानि चान्यानि हीनानि रसवर्णतः ॥१२
गान्धारिकमलाबूनि लवणान्यूषराणि च । आरक्ता ये च निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च ॥१३
वर्जयेत्तानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते । यच्चाप्युत्कोचतः प्राप्तं पतिताद्यदुपार्जितम् ॥१४
अन्यायकन्याशुल्कोत्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम् । दुर्गन्धि फेनिलं चाम्बु तथैवाल्पतरोदकम् ॥१५
न लभेद्यत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चाप्युपाहृतम् । यन्न सर्वापचोत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम् ॥१६
तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव पितृकर्मणि । मार्गमाविकमौष्ट्रं च सर्वमेकशफं च यत् ॥१७
माहिषं चामरं चैव धेन्वा गोश्चाप्यनिर्दशम् । पित्रर्थं मे प्रयच्छस्वेत्युक्त्वा यच्चाप्युपाहृतम् ॥१८
वर्जनीयं सदा सद्भिस्तत्पयश्राद्धकर्मणि । वर्ज्या जन्तुमती रूक्षा क्षितिः प्लुष्टा तथाग्निना ॥१९
अनिष्टा दुष्टशब्दोग्रा दुर्गन्धा श्राद्धकर्मणि । कुलापमानकाः श्राद्धे व्यायुज्य कुलहिंसकाः ॥२०
कुलाधमो ब्रह्महा च तथा वै रोगिणोऽन्त्यजाः । नग्नाः पातकिनश्चैव घ्नन्ति दृष्ट्या पितृक्रियाम् ॥२१
अपुमानपविद्धश्च कुक्कुटो ग्रामसूकरः । श्वा चैव हन्ति श्राद्धानि यातुधानाश्च दर्शनात् ॥२२
तस्मात्सुसंवृतो दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् । एवं रक्षा भवेच्छ्राद्धे कृता तातोभयोरपि ॥२३
शावसूतकिसंस्पृष्टं दीर्घरोगिभिरेव च । पतितैर्मलिनैश्चैव पुष्णाति न पितामहान् ॥२४

तृप्तिजनक हैं ।१०। और मकई, राजमाष (लोबिया) विप्रूषी और मसूर श्राद्धकर्म में यह सब द्रव्य गर्हित कहे गये हैं, अत एव इन सब को श्राद्ध कर्म में त्याग दे ।११। लहसुन, गाजर, प्याज, पिण्डमूलक (मूली) करंभ तथा वर्णहीन और रसहीन अन्यान्य वस्तु ।१२। गान्धारिका (कचूर) अलावु (तुंबी) खारी लवण, लालगोंद और प्रत्यक्ष लवण ।१३। श्राद्ध में यह सब द्रव्य भी वर्जित हैं, वाणी से गर्हित अर्थात् जिस वस्तु का उच्चारण श्रेष्ठ न हो और उत्कोच से प्राप्त हो, या पतित का आया हुआ धन ।१४। और अन्याय से आया हुआ तथा घृणित कन्याशुल्क द्वारा लब्ध द्रव्य अर्थात् कन्यापर लिया हुआ द्रव्य इत्यादि को भी त्याग करें। दुर्गन्धपूर्ण और फेनयुक्त जल, तथा अल्प जल ।१५। और जिससे गौ की तृप्ति नहीं हो सकती या बासी जल या अपेय जल अथवा अभोज्यों के बनाये कूपादि का जल ।१६। हे तात ! ऐसा जल भी पितृकार्य में सर्वथा त्याग दे । मृग, ऊंट, बकरी और एक खुराक वाले जितने पशु हैं यह भी तथा ।१७। भैंस का दूध, चमर गाय (सुरागाय) का दूध, वा व्यान के बाद जिसको दश दिन नहीं बीते हैं ऐसी गाय का दूध "मेरे पितृ कार्य के लिये प्रदान करो' इस प्रकार कहकर लाया हुआ जो किसी भाँति का दूध है ।१८। साधु पुरुष यह सब दूध श्राद्धकर्म में त्याग देते हैं जो स्थान कीटादि से पूर्ण रूखा, अग्नि से जला हुआ ।१९। और दुर्गन्धपूर्ण है तथा अनिष्ट स्थान की मिट्टी और कुवाक्य कहना श्राद्धकर्म में त्याग करे और कुलहिंसक तथा कुल का तिरस्कार करने वाले श्राद्ध में वर्जित हैं ।२०। नीच कुलवाला, ब्रह्महत्यारा, रोगी, अन्त्यज (नीच), नग्न और पातकी, यह दृष्टि से ही श्राद्ध क्रिया को नष्ट कर देते हैं ।२१। नपुंसक, विद्ध, मुरगा, ग्रामसूकर, कुत्ता और राक्षस इनके देखने से ही श्राद्ध हत हो जाता है ।२२। इसी कारण गोपनभाव से पृथ्वी में तिल बिखेरे । हे वत्स ! इस प्रकार अनुष्ठान करने से दोनों की रक्षा होती है ।२३। मृतक के पातकवाला वा सूतकवाले से सम्पर्क करने वाला अथवा काक सूकर से स्पर्श किया हुआ, सदा रोगी, पतित और मलिन अर्थात् पातकी पुरुषों के द्वारा पितामहगण को

वर्जनीयं तथा श्राद्धे सदोदक्यादिदर्शनम् । चण्डशौण्डसमा भाषा यजमानेन चादरात् ॥२५
केशकीटावपन्नं च तथा श्वभिरवेक्षितम् । पूतिपर्युषितं चैव वार्ताक्यभिषवांस्तथा ॥२६
वर्जनीया हि वै श्राद्धे तथा वस्त्रानिलाहतम् । श्रद्धया परया दत्तं पितृणां नामगोत्रतः ॥२७
यदाहाराश्च ते जातास्तदाहारत्वमेति तत् । तस्माच्छ्रद्धायुतं पात्रे यच्छ त्वं पितृकर्मणि ॥२८
तथा तच्चैव दातव्यं पितृणां तृप्तिमिच्छता । योगिनश्च सदा श्राद्धे भोजनीया विपश्चिता ॥२९
योगाधारा हि पितरस्तस्मात्तान्भोजयेत्सदा । ब्राह्मणानां सहस्रस्य योगी त्वग्रासनी यदि ॥३०
यजमानं च भोक्तृंश्च नौरिवांभसि तारयेत् । पितृगाथास्तथैवात्र श्रूयन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥३१
या गीताः पितृभिः पूर्वमैलस्यासन्महीपतेः । कदा नः संततावग्र्यः कस्यचिद्भविता सुतः ॥३२
यो योगिभुक्तशेषान्नैर्भुवि पिण्डं प्रदास्यति । गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं महाहविः ॥३३
कालशाकं तिलाढ्यं वा कृसरं मासतृप्तये । वैश्वदेव्यं च सौम्यं च खड्गमांसं परं हविः ॥३४
विषाणवर्ज्यखड्गात्प्यामासूर्यान्नाशयामहे । तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ॥३५
मधुसर्पिः समायुक्ता पायसं दक्षिणायने । तस्मात्सम्पूजयेद्भक्त्या स्वपितॄन्यतमानसः ॥
कामानभीप्सन्सकलान्पापाच्चात्मविमोचनम् ॥३६
वसून्रुद्रांस्तथादित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः । प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥३७

पुष्टिलाभ की संभावना नहीं है ।२४। श्राद्ध में पुरुष का वर्जन करें और रजस्वला का दर्शन भी उस समय परित्याग कर यजमान मुंडित समस्त और सुरासक्त पुरुष का स्पर्श यत्नसहित परित्याग करे ।२५। केश और कीटयुक्त कुत्ते के द्वारा देखा हुआ, पूतिगन्धपूर्ण, बासी बैंगन (वस्त्र की पवन से युक्त) द्रव्य श्राद्ध में परित्याग करे ।२६। परम श्रद्धासहित पितरों के नाम और गोत्रानुसार जो कुछ अर्पण किया जाय ।२७। वही उनके आहाररूप में परिणत होता है । इसी कारण श्राद्ध में पितरों का सन्तोष-साधन के लिये पात्र को भोजन करायें ।२८। श्रद्धावान होकर समस्त श्रेष्ठवस्तु विधानानुसार समर्पण करे । विद्वान् पुरुष श्राद्ध में सदा योगियों को भोजन करायें ।२९। क्योंकि पितृगण ही योग के एक मात्र आधार हैं, अतएव योगी की सदा पूजा करनी चाहिये । सहस्र ब्राह्मणों की अपेक्षा एक मात्र योगी को सबसे पहले भोजन कराने से ।३०। जल में नौका जिस प्रकार आरोही को उद्धार करती है, इसी प्रकार वह भी यजमान और भोक्ता सबको उद्धार करता है । ब्रह्मवादिगण इस स्थल में पितृगाथा कीर्त्तन कर गये हैं ।३१। पूर्वकाल में पितरों ने महीपति ऐल के उद्देश्य से यह गाथा गाई थी । उन्होंने इस प्रकार कहा था कि "हमारे पुत्रों में कब ऐसा सर्वोत्तम पुत्र जन्म ग्रहण करेगा" ।३२। जो योगियों के भोजन से बचे हुए अन्न द्वारा पृथ्वीतल में हमको पिण्ड समर्पण करेगा । अथवा हमारी एक मास की तृप्तिके लिये गयाधाम में उत्कृष्ट हविस्वरूप गैंडे का मांस ।३३। कालशाक, तिलयुक्त खिचड़ी इन सब वस्तुओं के द्वारा पिण्ड प्रदान करेगा । वैश्वदेव और सौम्यबलि के विषय में गैंडे का मांस ही परम हवि कहा गया है ।३४। सींग विहीन गैंडे का मांस प्राप्त होने पर जब तक सूर्य की स्थिति रहती है, हम तब तक उसको भोजन करते हैं। त्रयोदशीतिथियुक्त मघानक्षत्र में विधानानुसार।३५। श्राद्ध और दक्षिणायन में मधु घृतयुक्त पायस (खीर) प्रदान करे। हे पुत्र ! इस प्रकार भक्तिसहित एकाग्र मन से पूजा करने पर संपूर्ण कामना पूरी होती है और समस्त पाप दूर होते हैं। श्राद्ध में पितरों को तृप्त करने से वसु, रुद्र, आदित्य सब ही प्रसन्न

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥३८
एतत्ते कथितं पुत्र श्राद्धकर्मयथोदितम् । काम्यानां श्रूयतां वत्स श्राद्धानां तिथिकीर्त्तनम् ॥३९
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने श्राद्धकल्पो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ।२९।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

अलर्कानुशासनवर्णनम्

मदालसोवाच

प्रतिपद्धनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा । वरार्थिनी तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी ॥१
श्रियं प्राप्नोति पचम्यां षष्ठ्यां पूज्यो भवेन्नरः । राजाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां वृद्धिमुत्तमाम् ॥२
स्त्रियो नवम्यां प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम् । वेदान्स्तथाप्नुयात्सर्वानेकादश्यां क्रियापरः ॥३
द्वादश्यां जयलाभं च प्राप्नोति पितृपूजकः । प्रजां बुद्धिं पशून्वृद्धिं स्वातंत्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ॥४
दीर्घमायुस्तथैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम् । अवाप्नोति न सन्देहो श्राद्धं श्रद्धापरो नरः ॥५
यथा सम्भाविताऽन्नेन श्रद्धासम्पत्समन्वितः । विकृत्या पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः ॥६
तेन कार्यं चर्तुदश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता । श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः ॥७

होते हैं ।३६-३७। श्राद्ध द्वारा पितरों की तृप्ति साधन करने से वह आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य प्रदान करते हैं ।३८। हे पुत्र ! यह मैंने तुमसे शास्त्रविहित श्राद्धविधिका वर्णन किया । हे वत्स ! अब काम्यश्राद्ध की तिथि वर्णन करती हूँ; सुनो ।३९

इस श्रीमार्कण्डेयपुराण में श्राद्ध-कल्प नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।२९।

अध्याय ३०

अलर्कानुशासन-वर्णन

मदालसा बोली—हे वत्स ! प्रतिपत् तिथि में श्राद्ध का अनुष्ठान करने से धनलाभ होता है । इसी प्रकार द्वितीया में सम्पत्ति लाभ, तृतीया में वर प्राप्ति और चतुर्थी तिथि में श्राद्ध करने से शत्रु का विनाश होता है ।१। पंचमी में श्राद्ध करने से स्त्री लाभ, षष्ठी में सर्व जनसमाज में पूजा, सप्तमी में गणाधिपत्य और अष्टमी में श्राद्ध करने से अनुत्तम बुद्धि लाभ होता है ।२। नवमी में श्राद्ध करने से रमणी का लाभ, दशमी में समस्त कामना पूर्ण और एकादशी तिथि में श्राद्ध करने से समस्त वेद में अभिज्ञता लाभ होता है ।३। जो पुरुष द्वादशी तिथि में पितरों की पूजा करता है, उसको जयलाभ, पशुलाभ, मेधालाभ, स्वाधीनतालाभ और पुष्टिलाभ होता है ।४। जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर त्रयोदशीतिथि में यथासंभव अन्न द्वारा श्राद्ध सम्पादन करता है, उसको दीर्घ परमायु और ऐश्वर्यलाभ होता है इसमें सन्देह नहीं । जिसके, पितर यौवन में मृत्यु को प्राप्त हुए हैं अथवा शस्त्राघात से जीवन परित्याग किया है ।५-६। वह पुरुष उनकी तृप्ति करने के लिये चतुर्दशी तिथि में श्राद्ध करे । पवित्र होकर यत्नसहित अमावास्या में श्राद्ध

सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गं चानन्यमश्नुते । कृत्तिकासु पितॄनर्चन्स्वर्गं प्राप्नोति मानवः ॥८
अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये तेजस्वितां लभेत् । शौर्यमार्द्रासु चाप्नोति क्षेत्रादि च पुनर्वसौ ॥९
पुष्टिं पुष्ये सदाभ्यर्च्य आश्लेषासु वरान्सुतान् । मघासु स्वजनश्रैष्ठ्यं सौभाग्यं फल्गुनीषु च ॥१०
प्रदानशीलो भवति सापत्यश्चोत्तरासु वै । प्रयाति श्रेष्ठतां सत्सु हस्ते श्राद्धप्रदो नरः ॥११
रूपयुक्तस्तु चित्रासु तथापत्यान्यवाप्नुयात् । वाणिज्यलाभदा स्वातिर्विशाखा पुत्रकामदा ॥१२
कुर्वन्तश्चानुराधासु लभन्ते चक्रवर्तिताम् । आधिपत्यं च ज्येष्ठासु मूले चारोग्यमुत्तमम् ॥१३
आषाढासु यशः प्राप्तिरुत्तरासु विशोकताम् । श्रवणेन शुभाँल्लोकान्धनिष्ठासु धनं महत् ॥१४
वेदविद्यां चाभिजिति भिषक्सिद्धिं च वारुणे । अजाविकं प्रोष्ठपदे विद्या गावस्तथोत्तरे ॥१५
रेवतीषु तथा कुप्यमश्विनीषु तुरङ्गमान् । श्राद्धं कुर्वंस्तथाप्नोति भरणीष्वायुरुत्तमम् ॥१६
तस्मात्काम्यानि कुर्वीत ऋक्षेष्वेतेषु तत्त्ववित् ॥१७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासने श्राद्धकल्पो नाम त्रिंशोऽध्यायः ।३०।

करने से सम्पूर्ण कामनापूर्ण होती है और अक्षय स्वर्गलाभ होता है जो पुरुष कृत्तिकानक्षत्र में पितरों की पूजा करता है उसको स्वर्ग भोग होता है।७-८। जो पुरुष अपत्य (सन्तान) की कामना करता है, उसको रोहिणी नक्षत्र में श्राद्ध करना चाहिये । मृगशिरा नक्षत्र में श्राद्ध करने से ओजस्विता, आर्द्रा में शौर्य और पुनर्वसुनक्षत्र में श्राद्ध करने से क्षेत्रादि लाभ होता है ।९। पुष्य नक्षत्र में श्राद्ध करने से पुष्टिलाभ, आश्लेषा में श्रेष्ठ पुत्र, मघा में स्वजनों मे प्रधान्य और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में श्राद्ध करने से सौभाग्यलाभ होता है ।१०। उत्तराफाल्गुनी में श्राद्ध करने से दानशील और पुत्रवान् हो जाता है और जो पुरुष हस्तनक्षत्र में श्राद्ध का अनुष्ठान करता है उसको निःसन्देह श्रेष्ठता प्राप्त होती है ।११। चित्रानक्षत्र में श्राद्ध करने से रूप और अपत्यलाभ होता है, स्वाती में वाणिज्य, विशाखा में पुत्र और कामनासिद्धि ।१२। अनुराधा में चक्रवर्त्तित्व, ज्येष्ठा में आधिपत्य, मूल में आरोग्य ।१३। पूर्वाषाढा में यश प्राप्ति, उत्तराषाढा में शोकराहित्य, श्रवण में शुभलोक प्राप्ति और घनिष्ठा नक्षत्र में अभिजात अनुष्ठान करने से समस्त वेदों में अभिज्ञ हो जाता है, शतभिषा में श्राद्ध करने से वैद्यकशास्त्र में सिद्धि लाभ होता है, पूर्वभाद्रपद नक्षत्र में श्राद्ध करने से आबिक (भेड बकरी) लाभ, उत्तराभाद्रपद में विद्या गोलाभ ।१५। रेवती में सुवर्ण, चांदी के अतिरिक्त अन्यान्य धातु, अश्विनी में अश्व और भरणी नक्षत्र में श्राद्ध करने से दीर्घायुलाभ होता है ।१६। इस कारण ही तत्त्ववित् पुरुष को इन सब नक्षत्रों में काम्यश्राद्ध का आचरण करना चाहिये ।१७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में अलर्कानुशासन वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।३०।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

सदाचार-वर्णनम्

मदालसोवाच

एवं पुत्र गृहस्थेन देवताःपितरस्तथा । संपूज्य हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबान्धवाः ॥१
भूतानि भृत्या विकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः । भिक्षवो याचमानास्तु ये चान्ये वसता गृहे ॥२
सदाचारवता तात साधुना गृहमेधिना । पापं भुङ्क्ते समुल्लंघ्य नित्यं नैमित्तिकीः क्रियाः ॥३

अलर्क उवाच

कथितं मे त्वया मातर्नित्यं नैमित्तिकं च यत् । नित्यं नैमित्तिकं चैव त्रिविधं कर्म पौरुषम् ॥४
सदाचारमहं श्रोतुमिच्छामि कुलनन्दिनी । यं कुर्वन्सुखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ॥५

मदालसोवाच

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम् । न ह्याचारविहीनस्य सुखमत्र परत्र वा ॥६
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये । भवन्ति यः सदाचारं समुल्लंघ्य प्रवर्त्तते ॥७
दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत् । कार्यो यत्नः सदाचारे आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥८
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य पुत्रक । समाहितमनाः श्रुत्वा तथैव परिपालय ॥९

अध्याय ३१

सदाचार-वर्णन

मदालसा बोली—हे पुत्र ! इस प्रकार से साधु गृही सदाचारपरायण हो हव्य, कव्य और अन्नदानपूर्वक पितृगण, देवगण, अतिथिगण तथा बांधवगण की पूजा करें ।१। इनके अतिरिक्त भूतगण, भृत्यगण, पशु, पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक और अपरापर जो कोई प्रार्थना करें ।२। उन-उन सब की यथाविधि पूजा करे । गृही मनुष्य नित्य नैमित्तिकी क्रिया का उल्लंघन करने से पाप का भान्गी होता है ।३

अलर्क ने कहा—तुमने मुझे नित्य, नैमित्तिक और नित्यनैमित्तिक इन तीन प्रकृत पुरुषोचित कर्म का विषय वर्णन किया ।४। हे कुलनन्दिनी ! जिसका अनुष्ठान करने से मनुष्य क्या इस लोक, क्या पर लोक दोनों में सुख का भागी होता है, अब मैं वही सदाचार का विषय सुनने की इच्छा करता हूँ ।५

मदालसा बोली—गृहस्थ सर्वदा सदाचार का प्रतिपालन करे, जो पुरुष आचारहीन है, किसी लोक में उसको सुख मिलने की संभावना नहीं है । जो पुरुष सदाचार को उल्लंघन करके संसारमार्ग में प्रवृत्त होता है, उसका यज्ञ, दान और तपस्या सब अमंगल का कारण होता है ।६-७। दुराचारी पुरुष कभी दीर्घ- जीवी नहीं हो सकता, अतएव सदाचार में यत्नशील होना चाहिए । सदाचार द्वारा अलक्षण दूर होता है ।८। हे पुत्र ! मैं उस सदाचार के स्वरूप का वर्णन करती है, तुम एकाग्र मन से सुनकर उसके

त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्त्तव्यो गृहमेधिना । तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च ॥१०
पादेनार्थस्य पारत्र्यं कुर्यात्सञ्चयमात्मवान् । अर्धेन चात्मभरणं नित्यनैमित्तिकान्वितम् ॥११
पादं चात्मार्थमायस्य मूलभूतं विवर्द्धयेत् । एवमाचरतः पुत्र अर्थः साफल्यमृच्छति ॥१२
तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता । परत्रार्थं तथा चान्यः काम्योऽत्रैव फलप्रदः ॥१३
प्रत्यवायभयात्कामस्तथान्यश्चाविरोधवान् । द्विधा कामो निगदितस्त्रिवर्गोऽस्याविरोधतः ॥१४
परस्परानुबन्धांश्च सर्वानेतान्विचिन्तयेत् । विपरीतानुबन्धांश्च धर्मादींस्ताञ्छृणुष्व मे ॥१५
धर्मानुबन्धार्थो धर्मो नात्मार्थबाधकः । उभाभ्यां च द्विधा कामस्तेन तौ च द्विधा पुनः ॥१६
ब्राह्मे मूहुर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् । कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥१७
उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः । समुत्थाय तथाचम्य प्राङ्मुखो नियतः शुचिः ॥१८
पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् । उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ॥१९
असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत् । असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च पुत्रक ॥२०
सायंप्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान् । नोदयास्तमये बिम्बमुदीक्षेत विवस्वतः ॥२१

अनुरूप कार्य का अनुष्ठान करो।९। गृही पुरुष त्रिवर्गसाधन में यत्न करे। त्रिवर्ग की सिद्धि होने पर वह गृहस्थ क्या इस लोक क्या परलोक दोनों में ही सिद्धिलाभ करता है।१०। आत्मवान होकर उपार्जित अर्थ का चतुर्थांश पारलौकिक धर्म के लिये संचय करना गृही का कर्त्तव्य है। अर्द्धांश द्वारा आत्मपोषण और नित्य, नैमित्तिकादि क्रिया साधन करे।११। और अवशिष्ट को मूलधनस्वरूप बढ़ावे। हे पुत्र ! इस प्रकार का आचरण करने से ही अर्थ की सफलता साधित होती है।१२। अर्थविषय में जिस प्रकार आचरण करे पाप दूर होने के लिये वैसा ही धर्मसंचय करना चाहिये। धर्म दो प्रकार का है काम्य और निष्काम। निष्काम धर्म परलोक में फलप्रदान करता है और काम्य इस लोक में बलि प्रदान करने वाला होता है।१३। विघ्न और व्यय के कारण काम्य और निष्काम कर्म अविरोधपूर्वक इन दोनों धर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये। त्रिवर्ग के अविरोध से काम भी दो प्रकार है।१४। धर्म, अर्थ, और काम, यह त्रिवर्ग जिस प्रकार परस्पर अनुबद्ध हैं, इसी प्रकार इनको परस्पर बिना बँधे भी विचारें। मैं इनके अनुबंधादिक वर्णन करती हूँ सुनो।१५। धर्म और धर्म के अनुबंधनिमित्त धर्म आत्मा के लिये बाधक नहीं होता, इनके योग में काम जिस भाँति दो प्रकार है, ऐसे ही कामद्वारा धर्म और अर्थ भी दो अंश में विभक्त जानना चाहिए अर्थात् धर्म और धर्मानुबंधार्थ धर्म, इन दोनों के योग में काम जिस प्रकार धर्मानुबद्ध काम अर्थानुबद्ध काम यह दो भाग में विभक्त है, इसी प्रकार कामद्वारा धर्म और अर्थ भी दो भाग में विभक्त हुआ है।१६। गृही पुरुष ब्राह्ममुहूर्त में उठकर धर्म, अर्थ, धर्मार्थमूलक कायक्लेश और वेदतत्त्वार्थ इन सब की चिन्ता करे।१७। फिर शय्यात्यागपूर्वक आचमन करके नियत और पवित्र भाव से पूर्वमुख बैठ।१८। नक्षत्र रहते-रहते पूर्वसंध्या का आचरण करे। इसी प्रकार सूर्यदेव के रहते-रहते सायंसंध्या करनी चाहिये। अनापत्काल में यथाविधि संध्या की उपासना करे, कभी अन्यथा न करे।१९। हे पुत्र ! असत् वाक्य, अनृत वाक्य और कर्कश वाक्य त्याग करना अवश्य कर्त्तव्य है, तथा असत् शास्त्र, असत् वाद और असत् सेवा भी परित्याग करे।२०। नियतात्मा होकर प्रातःकाल और सायंकाल होम का अनुष्ठान करना चाहिए। उदयकाल और अस्तगमनसमय में सूर्य के बिम्ब का दर्शन न करे।२१। बाल काढ़ना, दर्पण में मुख देखना, दंतधावन, और

केशप्रसाधनादर्शदर्शनं दन्तधावनम् । पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च तर्पणम् ॥२२
ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि । न मूत्रमनुतिष्ठेत न कृष्टे न च गोव्रजे ॥२३
नग्नां परस्त्रियं नेक्षेन्न पश्येदात्मनः शकृत् । उदक्यादर्शनं स्पर्शो वर्ज्यं सम्भाषणं तथा ॥२४
नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा निष्ठीवं न समाचरेत् । नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रं केशभस्मकपालिकाः ॥२५
तुषांगारास्थिचूर्णानि रजो वस्त्राणि कानिचित् । नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञः पथि पत्राणि वा भुवि ॥२६
पितृदेवमनुष्याणां भूतानां च तथार्चनम् । कृत्वा विभवतः पश्चाद्गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥२७
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वाचान्तो वाग्यतः शुचिः । भुञ्जीतान्नं च तच्चित्तो ह्यन्तर्जानुः सदा नरः ॥२८
उपघातमृते दोषं नान्नस्योदीरयेद्बुधः । प्रत्यक्षं लवणं वर्ज्यमन्नमत्युष्णमेव च ॥२९
न गच्छन्नैव तिष्ठन्वै विण्मूत्रोत्सर्गमाचरन् । कुर्वीत नैव चाचामेन्न किञ्चिदपि भक्षयेत् ॥३०
उच्छिष्टो नालपेत्किञ्चित्स्वाध्यायं च विवर्जयेत् । गां ब्राह्मणं तथा चाग्निं स्वमूर्धानं च न स्पृशेत् ॥३१
न च पश्येद्रविं नेन्दुं न नक्षत्राणि कामतः । भिन्नासनं तथा शय्यां भाजनं च विवर्जयेत् ॥३२
गुरूणामासनं देयमभ्युत्थानादि सत्कृतम् । अनुकूलं तथा लापमभिवादनपूर्वकम् ॥३३
तथानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न संलपेत् । नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम् ॥३४
न गर्हयेद्द्विजान्नाग्नौ मेहं कुर्वीत बुद्धिमान् । न स्नायीत नरो नग्नो न शयीत कदाचन ॥३५

देवतार्पण, यह सब कार्य दिन के पूर्वाह्ण में करने चाहिये ।२२। ग्राम, निवास, तीर्थ, क्षेत्र, पथ (मार्ग) जुताहुआ खेत और गौओं का स्थान इन सब स्थानों में मल-मूत्र त्यागना अनुचित है ।२३। पराई स्त्री को नग्न नहीं देखे और स्वीय मलको भी देखना अनुचित है, ऋतुमती स्त्री को नहीं देखे और उसको स्पर्श तथा उसके संग वार्त्तालाप नहीं करना चाहिए ।२४। जल में विष्ठा, मूत्र-त्याग, तथा मैथुनकार्य नहीं करना चाहिए । बुद्धिमान् पुरुष मलमूत्र, केश, भस्म, कपाल ।२५। तुष, अंगार, अस्थि, रज्जू, वसनादि मार्ग की मृत्तिका इन सब के ऊपर कभी न बैठे ।२६। गृही मनुष्य अपनी सम्पत्ति के अनुसार सबसे पहले पितर, देवता, नरगण और भूतगण की पूजा करके फिर स्वयं भोजन करे ।२७। आचमन के अन्त में संयतवाक्य पवित्र और अन्तर्जानु होकर पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठ एकाग्रमन से अन्न भोजन करे ।२८। किसी प्रकार का अनिष्ट या उत्तेजना न करने पर किसी अन्न का दोष प्रकाशित नहीं करना चाहिये प्रत्यक्ष अधिक लवण और अत्यन्त उष्ण अन्न सर्वथा वर्जित है ।२९। आत्मवान् मनुष्य चलते या बैठे-बैठे मल-मूत्र का परित्याग न करे । आचमन के अन्त में किञ्चित्मात्र भी आहार करना अनुचितहै ।३०। उच्छिष्ट शरीर से किसी के संग भी वार्त्तालाप न करे और इस अवस्था में वेदाध्ययन का भी परित्याग करे । विशेष करके उच्छिष्ट देह से गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने मस्तक को स्पर्श न करे ।३१। उच्छिष्ट शरीर से स्वेच्छानुसार चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र का दर्शन करना अनुचित है । टूटा आसन, टूटी शय्या और टूटे पात्र सर्वथा वर्जित हैं ।३२। अभ्युत्थान इत्यादि (उठकर) खड़ा होना इत्यादि सत्कार सहित गुरु को आसन प्रदान करे । प्रणामपूर्वक उनसे अनुकूल वार्त्ता करे और गमन काल में उनका अनुगमन करना चाहिये । उनसे प्रतिकूल वचन प्रयोग करना कभी उचित नहीं है एक वस्त्र से आहार या देवपूजा करना निषिद्ध है ।३३-३४। द्विजातिगण की निन्दा नहीं करे और बुद्धिमान् पुरुष कभी अग्नि में मूत्रादि त्यान न

न पाणिभ्यामुभाभ्यां च कण्डूयेत शिरस्तथा । न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं कार्यं निष्कारणं नरैः ॥३६
शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् । अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायं च विवर्जयेत् ॥३७
ब्राह्मणानलगोसूर्यान्न मेहेत कदाचन । उदङ्मुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुखः ॥३८
आबाधासु यथाकामं कुर्यान्मूत्रपुरीषयोः । दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत् ॥३९
परीवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् । पन्था देयो ब्राह्मणानां राज्ञो दुःखातुरस्य च ॥४०
विद्याधिकस्य गुर्विण्या भारार्त्तस्य यवीयसः । मूकान्धबधिराणां च मत्तस्योन्मत्तकस्य च ॥४१
पुंश्चल्या कृतवैरस्य बालस्य पतितस्य च । देवालयं चैत्यतरुं तथैव च चतुष्पथम् ॥४२
विद्याधिकं गुरुं चैव बुधः कुर्यात्प्रदक्षिणम् । उपानद्वस्त्रमाल्यादि धृतमन्यैर्न धारयेत् ॥४३
उपवीतमलङ्कारं करकं चैव वर्जयेत् । प्रशस्तानि च कर्माणि कुर्वाणा दीर्घजीविनः ॥४४
चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पञ्चदश्यां च पर्वसु । तैलाभ्यङ्गं तथा भोगं योषितश्च विवर्जयेत् ॥४५
न क्षिप्तपादजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन । न चापि विक्षिपेत्पादौ पादं पादेन नाक्रमेत् ॥४६
मर्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यं च विवर्जयेत् । दम्भाभिमानतैक्ष्ण्यानि न कुर्वीत विचक्षणः ॥४७
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपान्मायिनस्तथा । न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गाश्च नोपहासेन दूषयेत् ॥
परस्य दण्डं नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं पुत्रशिष्ययोः ॥४८

करे, नग्न होकर स्नान और शयन करना अनुचित है ।३५। दोनों हाथों से कभी मस्तक न खुजलावे, बिना कारण स्नान वा सदा शिर से स्नान करना उचित नहीं है ।३६। और शिरस्नान के अन्त में किसी अंग में तेल नहीं मलना चाहिये । सब अनध्याय के दिनों में वेदाध्ययन परित्याग करे ।३७। ब्राह्मण, अग्नि, गौ और सूर्य के सन्मुख कभी विष्ठा मूत्रादि त्याग न करे । दिन में उत्तरमुख और रात्रि काल में दक्षिणमुख होकर ।३८। पीड़ा होने में इच्छानुसार मल मूल परित्याग करे । गुरु का दुष्कृत (पाप) किसी के निकट प्रकाश न करे, उनके क्रुद्ध होने पर उनको प्रसन्न करना चाहिये ।३९। और यदि कोई दूसरा उनकी झूठी निन्दा करे तो उसमें कर्णपात न करे विप्र, राजा, दुःखातुर ।४०। अपनी अपेक्षा अधिक विद्यावान्, गुर्विणी स्त्री, भयातुर, युवा, मूक, अन्ध, बधिर, मत्त, उन्मत्त ।४१। पुंश्चली, वैर करने वाला, बालक और पतित इन सब पुरुषों को पथ (मार्ग) प्रदान करे । देवमन्दिर, चैत्य वृक्ष, चतुष्पथ, (चौराहा) ।४२। अपनी अपेक्षा अधिक विद्यावान्, गुरु और देवता बुद्धिमान् पुरुष को इन सब की प्रदक्षिणा करनी चाहिये दूसरे किसी पुरुष का पहना हुआ जूता, वस्त्र और माल्यादि न पहने ।४३। और दूसरे का धारण किया हुआ जनेऊ, विभूषण और कमण्डल धारण न करे, प्रशस्त कर्म करने से दीर्घजीवी होता है ।४४। चतुर्दशी, अष्टमी, पंचदशी और पर्व के दिन तैलमर्दन और स्त्रीसंग परित्याग करे ।४५। बुद्धिमान् पुरुष चरण जंघा फैलाकर न बैठे और चरण द्वारा चरण आक्रमण करना तथा लात मारना भी निषिद्ध है ।४६। किसी को भी मर्मव्यथा नहीं देनी चाहिये और लोकों के प्रति कोसना और चुगली परित्याग करे तथा बुद्धिमान् पुरुष को दंभ, अभिमान और तीक्ष्ण व्यवहार परित्याग करना चाहिये ।४७। मूढ, उन्मत्त, दुःखी, आपदाग्रस्त, विरूप, मायावी, हीनाङ्ग और अधिकाङ्ग इन सबको हास्यद्वारा दूषित करना अनुचित है। अन्य के प्रति दंडका विधान न करे और उपदेशप्रदानार्थ पुत्र और शिष्य के प्रति दंडविधान करना

तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञः पादेनाक्रम्य चासनम् । संयावं कृसरं मांसं नात्मार्थमुपसाधयेत् ॥४९
सायंप्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा चातिथिपूजनम् । उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वान्यतो दन्तधावनम् ।५०
कुर्वीत सततं वत्स वर्जयेद्वर्ज्यवीरुधः । नोदक्छिराःस्वपेज्जातु न च प्रत्यक्छिरा नरः ॥५१
शिरस्यगस्त्यमास्थाय शयीताथ पुरन्दरम् । न तु गन्धवतीष्वप्सु स्नायीत न तथा निशि ॥५२
उपरागे परं स्नानमृते दिनमुदाहृतम् । अपमृज्यान्न चास्नातो गात्राण्यम्बरपाणिभिः ॥५३
न चापि धूनयेत्केशान्वाससी न च धूनयेत् । नानुलेपनमादद्यादस्नातः कर्हिचिद्बुधः ॥५४
न चापि रक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा । न च कुर्याद्विपर्यासं वाससोर्नापि भूषणे ॥५५
वर्ज्यं च विदशं वस्त्रमत्यन्तोपहतं च यत् । केशकीटावपन्नं च क्षुण्णं श्वभिरवेक्षितम् ॥५६
अवलीढावपन्नं च सारोद्धरणदूषितम् । पृष्ठमांसं वृथामांसं वर्ज्यमांसं च पुत्रक ॥५७
न भक्षयीत सततं प्रत्यक्षलवणानि च । वर्ज्यं चिरोषितं पुत्र भक्तं पर्युषितं च यत् ॥५८
पिष्टशाकेक्षुपयसां विकारा नृपनन्दन । तथा मांसविकाराश्च ते च वर्ज्याश्चिरोषिताः ॥५९
उदयास्तमने भानोः शयनं च विवर्जयेत् । नास्नातो नैव संविष्टो न चैवान्यमना नरः ॥६०
न चैवं शयने नोर्व्यामुपविष्टो न शब्दवत् । न चैकवस्त्रो न वदन्प्रेक्षतामप्रदाय च ॥६१

अनुचित नहीं है ।४८। पावों से आक्रमणपूर्वक आसन पर नहीं बैठे केवल आत्मोदरपूरण के लिए संयाव (मोहनभोग) कृसर (खिचडी) और मांस प्रस्तुत न करना चाहिये ।४९। प्रातःकाल और सायंकाल में अतिथि की पूजा करके फिर स्वयं भोजन करे वाणी को रोक पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठकर दन्तधावन करे ।५०। जो काष्ठादि वर्जित हैं, दन्तधावनार्थ उनका व्यवहार नहीं करना चाहिये । उत्तर को शिर कर वा पश्चिम को शिर कर शयन न करे ।५१। दक्षिण वा पूर्वदिशा में मस्तक रखकर शयन करना चाहिये । दुर्गन्धपूर्ण जल में और रात्रिकाल में स्नान करना अनुचित है ।५२। केवल मात्र चन्द्र, सूर्य के ग्रहणादिकाल में ही रात्रि में स्नान कर सकता है, स्नान के बाद वस्त्र वा हस्त देहमार्जन करना निषिद्ध हैं ।५३। एवं गीले केश वा गीले वस्त्र का फटकारना अनुचित है, बुद्धिमान् पुरुष बिना स्नान किये कभी चन्दनादि धारण न करे ।५४। लाल वर्ण, काले वर्ण, अथवा चित्रित वस्त्र नहीं पहनने चाहिये, पहनने के और उत्तरीय वस्त्र तथा विभूषण इन सब को विपरीत भाव से नहीं पहने ।५५। दशाशून्य, जीर्ण और छिन्नवस्त्र सर्वथा वर्जित हैं, केश और कीट से युक्त (विकृत) कुत्ते का देखा हुआ ।५६। वा चाटा हुआ और जिसका सार निकाल लिया हो, दूषित अन्न, पृष्ठमांस, वृथा मांस ।५७। वर्जित मांस और प्रत्यक्ष लवण हे पुत्र ! यह सब कभी भोजन न करे । हे वत्स ! बहुत दिनों का रखा और बासी अन्न त्याग दे ।५८। हे नृपनन्दन ! पिंडी, शाक, इक्षु और दुग्ध इन सबका विकार भोजन न करे, मांसविकार बहुत दिनों का होने पर वह भी वर्जित है ।५९। सूर्य के उदय काल में वा अस्तगमनसमय में शयन करना छोड़दें, स्नान के बाद भी शयन करमा अनुचित है और बैठा-बैठा भी न सोवे, तथा अन्यमनस्क अर्थात् दूसरी ओर को भी मन लगाकर शयन नहीं करना चाहिये ।६०। सेज वा मृत्तिकामें 'हा ! ' कहकर न बैठे, उत्तरीय परित्यागपूर्वक एक वस्त्र से भोजन न करे, बात कहते-कहते भी भोजन करना निषिद्ध है और जो सामने बैठा हो, उसको बिना दिये आहार करना उचित नहीं है ।६१। प्रातःकाल और सायंकाल में

भुञ्जीत पुरुषः स्नातः सायं प्रातर्यथाविधि । परदारा न गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥६२
इष्टापूर्त्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम् । न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते ॥६३
यादृशं पुरुषस्येह परदाराभिमर्शनम् । देवार्चनाग्निकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ॥६४
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम् । अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥६५
आचामेत्पुत्र पुण्याभिः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः । अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ॥६६
कृतशौचावशिष्टाच्च वर्जयेत्पञ्चवै मृदः। प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च समभ्युक्ष्य समाहितः ॥६७
अन्तर्जानुस्तथाचामेत्त्रिश्चतुर्वा पिबेदपः । परिमृज्य द्विरास्यान्तं खानि मूर्धानमेव च ॥६८
सम्यगाचम्य तोयेन क्रियां कुर्वीत वै शुचिः । देवतानामृषीणां च पितॄणां चैव यत्नतः ॥६९
समाहितमना भूत्वा कुर्वीत सततं नरः । क्षुत्त्वा निष्ठीव्य वासश्च परिधायाचमेद्बुधः ॥७०
क्षुतेऽवलीढे वान्ते च तथा निष्ठीवनादिषु । कुर्यादाचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ॥७१
कुर्वीतालम्बनं चापि दक्षिणश्रवणस्य वै । यथा विभवतो ह्येतत्पूर्वाभावे ततः परम् ॥७२
अविद्यमाने पूर्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते । न कुर्याद्दन्तसंघर्षं नात्मनो देहताडनम् ॥७३
स्वप्नाध्यापनभोज्यानि स्वाध्यायं च विवर्जयेत् । सन्ध्यायां मैथुनं चापि तथा प्रस्थानमेव च ॥७४
पूर्वाह्णे तात देवानां मनुष्याणां च मध्यमे । भक्त्या तथापराह्णे च कुर्वीत पितृपूजनम् ॥७५

विधानानुसार स्नान करके फिर भोजन करे, बुद्धिमान् कभी परस्त्रीगमन न करे ।६२। क्योंकि परस्त्रीगमन करने से इष्टापूर्त विनष्ट होता है और परमायु का ह्रास होता है, परदाराभिमर्शन पुरुष के पक्ष में जिस प्रकार परमायु का ह्रास करने वाला है, ऐसा इस लोक में और पाप कुछ भी नहीं है देवताओं की पूजा, अग्निकार्य और गुरुजनों को प्रणाम करना सर्वथा उचित है ।६३। सम्यक् आचमन करके अन्नभोजन कार्यसमापन करे । हे पुत्र ! फेनशून्य निर्गन्ध, निर्मल, पवित्र जल सादर ग्रहणपूर्वक ।६५। पूर्वमुख या उत्तरमुख होकर आचमन करना चाहिए । जल के भीतर की, वासगृह की, वल्मीक की, चूहे के भट्टे की ।६६। और शौचक्रिया से बची हुई यह पाँच प्रकार की मृत्तिका ग्रहण न करे । एकाग्रमन से हाथ पैर धो और सम्यक् प्रकार से शौच कर ।६७। दोनों जानु समेटकर बैठे तीन बार वा चार बार जलपानसहित आचमन करे । दो बार मुख के इधर-उधर और मुखगह्वर में एवं दो बार मस्तक और इन्द्रिय द्वार मार्जनपूर्वक ।६८। सम्यक् प्रकार आचमन करके पवित्र भाव से क्रियानुष्ठान करे । सदा यत्नपूर्वक एकाग्र मन से देवता, ऋषि और पितरों का कार्य करना चाहिये । हुचकी और खखार त्याग करने से आचमन करना उचित है और वस्त्र पहनने के बाद भी आचमन करे ।६९-७०। छींक अवलेहन (चाटना) वमन और निष्ठीवन होने पर आचमन, गोपृष्ठावलोकन सूर्यदर्शन ।७१। और दाहिना कान छूना चाहिये । इन सब में पूर्व का अभाव होने पर विभव के अनुसार परस्पर कार्य का अनुष्ठान करे ।७२। कयोंकि पूर्व पूर्व के अभाव में परस्पर की क्रिया ही श्रेष्ठ कही गई है । दन्तद्वारा दन्तघर्षण न करे और अपने देह का ताड़न करना भी अनुचित है ।७३। क्या प्रातः संध्या, दोनों काल में शयन, अध्ययन और भोजन परित्याग करे । संध्याकाल में मैथुनक्रिया और प्रस्थान न करे ।७४। हे वत्स ! भक्तिसहित पूर्वाह्न में देवताओं की, मध्याह्न में नरगणों की और अपराह्न में पितरों की पूजा करें ।७५।

शिरःस्नातश्च कुर्वीत दैवं पैत्र्यमथापि वा। प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि श्मश्रुकर्म च कारयेत् ॥७६
व्यङ्गां विवर्जयेत्कन्यामकुलां चापि रोगिणीम्। विकृतां पिंगलां चैव वाचालां सर्वदूषिताम् ॥७७
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं सर्वलक्षणलक्षिताम्। तादृशीमुद्वहेत्कन्यां श्रेयः कामो नरः सदा ॥७८
उद्वहेत्पितृमात्रोश्च सप्तमीं पञ्चमीं तथा। रक्षेद्दारान्त्यजेदीर्षां दिवा च स्वप्नमैथुने ॥७९
परोपतापकं कर्म जन्तुपीडां च वर्जयेत्। उदक्याः सर्ववर्णानां वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम् ॥८०
स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमीमपि वर्जयेत्। ततः षष्ठ्यां व्रजेद्रात्र्यां श्रेष्ठा युग्मासु पुत्रक ॥८१
पर्वाणि वर्जयेन्नित्यमृतुकालेऽपि योषितः। तस्मान्नित्यं नरो गच्छेच्छेषयुग्मासु पुत्रक ॥८२
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु। तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेत सदा नरः ॥८३
विधर्मिणोऽह्नि पूर्वाख्ये संध्याकाले च षण्ढकाः। क्षुरकर्मणि वान्ते च स्त्रीसंभोगे च पुत्रक ॥८४
स्नायीत चैलवान्प्राज्ञः कटभूमिमुपेत्य च। देववेदद्विजातीनां साधुसम्यमहात्मनाम् ॥८५
गुरोः पतिव्रतानां च तथा यज्वितपस्विनाम्। परीवादं न कुर्वीत परिहासं च पुत्रक ॥८६
कुर्वतामविनीतानां न श्रोतव्यं कथञ्चन। देवपित्र्यातिथेयाश्च क्रियाः कुर्वीत वै बुधः ॥८७
स्वाध्यायं चापि कुर्वीत यथाशक्त्या ह्यतन्द्रितः। नोत्कृष्टशय्यासनयोर्नापकृष्टस्य चारुहेत् ॥८८

शिर से स्नान करके पितरों के और देवताओं के क्रियानुष्ठान में प्रवृत्त होना चाहिए। पूर्वमुख वा उत्तरमुख होकर (बाल) हजामत बनवाना चाहिए।७६। जो कन्या सत्कुलोत्पन्न होकर भी रोगिणी, विकलाङ्गी, विकृत, पिंगल वर्ण, वाचाल (बहुत बोलने वाली) वा समस्त दोषों से दूषित हो, ऐसी कन्या को ग्रहण करना उचित नहीं है।७७। जो पुरुष कल्याणकी कामना करे, व सर्वाङ्गपूर्ण सौम्य नाम, सर्व सुलक्षण विभूषित कन्या से विवाह करे।७८। पिता वा माता की सात वा पांच पीढ़ी छोड़कर अन्य कन्या से विवाह करना चाहिये। स्त्री की रक्षा करना और ईर्ष्या त्यागना उचित है। दिन में शयन वा मैथुनक्रिया नहीं करना चाहिये।७९। जिससे दूसरे पुरुष को संताप हो और जिससे जीवगण क्लेश अनुभव करें ऐसे कार्य का परित्याग करना उचित है। समस्त वर्ण ही चार दिन ऋतुमती नारी का संग परित्याग करे।८०। हे पुत्र! जो पुरुष कन्या उत्पन्न होने की अभिलाषा नहीं करता, वह पंचम रात्रि में स्त्रीसंग परित्याग करके छठी रात्रि में सहवास करे। क्योंकि युग्म रात्रि ही नारी सहवास में श्रेष्ठ कही गई है।८१। स्त्री के ऋतुकाल के दिन और चौदस, अमावस, अष्टमी तथा संक्रान्ति में सम्भोग त्याग दे और शेष युग्म रात्रियों में गमन करे।८२। युग्म रात्रि में नारीसंग करने से पुत्र और अयुग्म रात्रियों में कन्या की उत्पत्ति होती है, इसलिए यदि पुत्र प्राप्त होने की इच्छा हो तो युग्म रात्रि में सहवास करे।८३। यदि पूर्वाह्न में नारीसंग किया जाय तो विधर्मी उत्पन्न होता है और सायंकाल में स्त्रीसंग करने से नपुंसक का जन्म होता है। हे पुत्र! क्षौर कर्म अर्थात् हजामत के बाद, वमन के पीछे, नारीसंग के बाद।८४। और श्मशानभूमि में गमन करने पर सवस्त्र स्नान करना चाहिए। हे पुत्र! देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्त्वनिष्ठ महात्मा।८५। गुरुजन, पतिव्रता स्त्री, यज्ञशील और तपःपरायण पुरुष, इनकी निन्दा वा हास्य करना उचित नहीं है।८६। अविनीत मनुष्य यदि निन्दा करे तो उसमें कर्णपात न करे। बुद्धिमान् को देवता, पितर, अतिथि की क्रिया का अनुष्ठान करना चाहिए।८७। यथाशक्ति सावधानी से वेद पढ़े, अपनी अपेक्षा उत्कृष्ट वा अपकृष्ट

न चामङ्गल्यवेषः स्यान्न चामङ्गल्यवाग्भवेत् । धवलाम्बरसंवीतः सितपुष्पविभूषितः ॥८९
नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्च पण्डितः । गच्छेन्मैत्रीं न चाशीलैर्न च चौर्यादिदूषितैः ॥९०
न चातिव्ययशीलैश्च न लुब्धैर्नापि वैरिभिः । नानृतकैस्तथा क्रूरैः सहासीत कदाचन ॥
न बन्धकीभिर्न न्यूनैर्बन्धकीपतिभिस्तथा ॥९१
सार्द्धं न बलिभिः कुर्यान्न च न्यूनैर्न निन्दितैः । न सर्वशङ्किभिर्नित्यं न च दैवपरैर्नरैः ॥९२
कुर्वीत साधुभिर्मैत्रीं सदाचारावलम्बिभिः । प्राज्ञैरपिशुनैः शक्तैः कर्मण्युद्योगभागिभिः ॥९३
वेदविद्याव्रतस्नातैः सहासीत सदा बुधः । सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैः सह ॥
ऋत्विगादीन्षडर्घार्हानर्चयेच्च गृहागतान् ॥९४
यथा विभवतः पुत्र द्विजान्संवत्सरोषितान् । अर्चयेन्मधुपर्केण यथाकालमतन्द्रितः ॥९५
तिष्ठेच्च शासने तेषां श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः । न च तान्विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापि तैः सदा ॥९६
सम्यग्गृहार्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् । सम्पूजयेत्ततो वह्निं दद्याच्चैवाहुतीः क्रमात् ॥९७
प्रथमं ब्रह्मणे दद्यात्प्रजानां पतये ततः । तृतीयां चैव गुह्येभ्यः कश्यपाय तथापराम् ॥९८
ततोऽनुमतये दत्त्वा दद्याद्गृहबलिं ततः । पूर्वं ख्यातो मया यस्ते नित्यकर्मक्रियाविधिः ॥९९
वैश्वदेवं ततः कुर्याद्बलयस्तत्र मे शृणु । यथास्थानविभागं तु देवानुद्दिश्य वै पृथक् ॥१००

मनुष्य की शय्या वा आसन पर न बैठे ।८८। अमंगल वेष धारण करना उचित नहीं है और अमंगल वचन भी परित्याग करे । श्वेतवस्त्र और सित कुसुम का व्यवहार करे ।८९। उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, अविनयी, असच्चरित्र, चौर्यादि दोष से दूषित ।९०। अपरिमित खर्च करनेवाला, लुब्ध, शत्रु, व्यभिचारिणी, हीन, बन्धकी का स्वामी ।९१। नीचाशय, निन्दित, सर्वदा शंकी और दैवपरायण, बुद्धिमान् पुरुष को इन सबके संग मित्रता नहीं करनी चाहिए ।९२। सदाचारपरायण साधुपुरुषों के सहित मित्रता स्थापना करनी चाहिए । बुद्धिमान्, पिशुनतारहित शक्तिमान् और जो कार्य में उद्योगशील हैं ऐसे पुरुषों के संग मैत्री स्थापित करे ।९३। पण्डित पुरुष सर्वदा वेदज्ञ, विद्वान् व्रतपरायण और स्नातक पुरुष के संग स्थिति करे । सुहृद्, दीक्षित, भूपति, स्नातक, श्वशुर और ऋत्विक् यह छः जन अर्घ्यप्रदान के उपयुक्त पात्र हैं, इनके घर आने पर पूजा करनी चाहिए ।९४। हे पुत्र ! पूर्वोक्त अर्घार्ह छः जनों के घर समागम होने पर संवत्सर बीते घर आने पर विभव के अनुसार यथासमय में उनकी मधुपर्कसहित पूजा करे ।९५। और यदि कल्याणलाभ की इच्छा हो तो उनकी आज्ञा में रहना चाहिए उनके क्रोध प्रकाश करने पर भी विवाद करना बुद्धिमान् को उचित नहीं है ।९६। सम्यक् प्रकार से गृहपूजा करके क्रमानुसार अग्नि की अर्चनापूर्वक आहुतिप्रदान करे ।९७। ब्रह्मा जी के उद्देश्य से पहली आहुति प्रदानपूर्वक प्रजापति को दूसरी, गुह्यक गण को तीसरी और कश्यप को चौथी आहुति देवे ।९८। फिर अनुमति के उद्देश्य से पंचमाहुतप्रदानपूर्वक पहले तुमसे नित्यकर्मक्रिया विधि के उपलक्ष में जिस प्रकार वर्णन किया है, उसी के अनुसार गृहबलिप्रदान करना चाहिए ।९९। फिर वैश्वदेवबलिप्रदान करे उसका नियम सुनो। स्थानविभाग के अनुसार देवताओं के उद्देश्य से पृथक्पृथक् बलि देने चाहिए ।१००। अनन्तर पर्जन्य

पर्जन्याद्भ्यो धरित्र्यै च दद्याच्च मणिके त्रयम् । ततो धातुर्विधातुश्च दद्याद्द्वारे गृहस्य तु ॥
वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादितः क्रमात् ॥१०१
ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय सूर्याय च यथाक्रमम् । विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च ॥१०२
उषसे भूतपतये दद्याच्चोत्तरतस्ततः । स्वधा नम इतीत्युक्त्वा पितृभ्यश्चापि दक्षिणे ॥१०३
कृत्वापसव्यं वायव्यां यक्ष्मैतत्तेति भाजनात् ।अन्नावशेषमिच्छन्वै तोयं दद्याद्यथाविधि ॥१०४
ततोऽन्नाग्रं समुद्धृत्य हन्तकारोपकल्पनम् । यथाविधि यथान्यायं ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥१०५
कुर्यात्कर्माणि तीर्थेन स्वेन स्वेन यथाविधि । देवादीनां तथा कुर्याद्ब्राह्मेणाचमनक्रियाम् ॥१०६
अङ्गुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्या दक्षिणस्य तु । एतद्ब्राह्ममिति ख्यातं तीर्थमाचमनाय वै ॥१०७
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पैत्रं तीर्थमुदाहृतम् । पितृणां तेन तोयादि दद्यान्नान्दीमुखादृते ॥१०८
अङ्गुल्यग्रे तथा दैवं तेन दिव्यक्रियाविधिः । तीर्थं कनिष्ठिकामूले कायं तेन प्रजापतेः ॥१०९
एवमेभिः सदा तीर्थैर्देवानां पितृभिः सह । सदा कार्याणि कुर्वीत नान्यतीर्थेन कर्हिचित् ॥११०
ब्राह्मेणाचमनं शस्तं पित्र्यं पैत्रेण सर्वदा । देवतीर्थेन देवानां प्राजापत्यं निजेन च ॥१११
नान्दीमुखानां कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् । प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चित्प्रजापतेः ॥११२

(मेघ) अन्न और धरित्री इनको तीन बलि और वायु को बलि प्रदानपूर्वक पूर्वादि क्रम से प्रतिदिशा में समस्त दिशा को यथाक्रम से बलिप्रदान करे ।१०१। फिर उत्तर दिशा में ब्रह्मा, अन्तरिक्ष में सूर्य, विश्वेदेवगण विश्वभूतगण ।१०२। उषा और भूतपति, क्रमशः इनके उद्देश्य से बलिप्रदान करके "स्वधा नमः" यह वाक्य उच्चारणपूर्वक दक्षिण दिशा में पितरों के उद्देश्य से बलिप्रदान करे ।१०३। अनन्तर अन्नावशेष की कामना करके अपसव्य हो, वायुकोण में "यक्ष्मैतत्ता" इत्यादि मन्त्रपाठसहित जलाधार से जल लेकर विधानानुसार जलदान करे ।१०४। फिर अन्न का अग्रभाग तोड़ हन्तकारकी कल्पना कर यथाविधान और यथान्याय ब्राह्मण को देवे ।१०५। तदनन्तर स्वीय-स्वीय तीर्थयोग में विधानानुसार कार्य सम्पादन करे, देवादि के उद्देश्य से ब्रह्मतीर्थ द्वारा आचमन करना चाहिए ।१०६। दाहिने हाथ की अगुष्ठाङ्गुली की उत्तर दिशा में जो रेखा विद्यमान है, वही ब्रह्मतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है, इसी तीर्थ के द्वारा आचमन करे ।७। तर्जनी और अंगुल, इन दोनों अंगुलियों का मध्यस्थल ही पितृतीर्थ के नाम से विख्यात है। नान्दीमुख के अतिरिक्त अन्यान्य समस्त क्रिया में भी पितरों के उद्देश्य से इसी पितृतीर्थद्वारा जलादि प्रदान करे ।१०८। अंगुली के अग्रभाग में ही देवतीर्थ विद्यमान है, देवक्रियाविधि उसके द्वारा ही समापन करनी चाहिए। कनिष्ठा के मूलदेश में कायनामक तीर्थ विराजित है, उसके द्वारा प्रजापति का कार्य सम्पन्न करे ।१०९। इस प्रकार से इन सब तीर्थों के द्वारा सदा देवता और पितरों की क्रिया का अनुष्ठान करे, अन्यतीर्थ द्वारा कभी न करे ।११०। ब्रह्मतीर्थद्वारा ही आचमन करना विधिसिद्ध है। पितृतीर्थ द्वारा पितृकार्य, देवतीर्थद्वारा देवकार्य और कायतीर्थ द्वारा प्रजापति का कार्य करे ।१११। प्रजापति का कार्य जिस प्रकार से प्राजापत्ये तीर्थ अर्थात् कायतीर्थ द्वारा संपादित करना चाहिए। नान्दीमुख की पिण्डोदक क्रिया भी उसी प्रकार कायतीर्थ द्वारा संपन्न करे ।११२। एक साथ

युगपज्जलमग्निं च बिभृयान्न विचक्षणः । गुरुदेवान्प्रति तथा न च पादौ प्रसारयेत् ॥११३
नाचक्षीत धयन्तीं गां जलं नाञ्जलिना पिबेत् । शौचकालेषु सर्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः ॥११४
न विलम्बेत शौचार्थं न मुखेनानलं धमेत् । तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ॥११५
ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजला नदी । जितामित्रो नृपो यत्र बलवान्धर्मतत्परः ॥११६
तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञः कुतः कुनृपतः सुखम् । यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सस्यवती मही ॥११७
पौराः सुसंयता यत्र सततं न्यायवर्त्तिनः । यत्रामत्सरिणो लोकास्तत्र वासः सुखोदयः ॥११८
यस्मिन्कृषीवला राष्ट्रे प्रायशो नातिभोगिनः । यत्रौषधान्यशेषाणि वसेत्तत्र विचक्षणः ॥११९
तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्रैतत्त्रितयं सदा । जिगीषुः पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सवः ॥१२०
वसेन्नित्यं सुशीलेषु सहवासिषु पण्डितः । इत्येतत्कथितं पुत्र मया ते हितकाम्यया ॥१२१

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे अलर्कानुशासने सदाचारवर्णनं
नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।३१।

जल और अग्नि धारण करना बुद्धिमान् पुरुष को कर्त्तव्य नहीं है। गुरु वा देवता के सामने पाँव न फैलावे ।११३। जो गाय बछड़े को स्तन पिलाने में उद्यत हो, उसको न बुलावे और अंजलि (चुल्लू) द्वारा जल न पीवे अधिक हो वा कम हो ।११४। सब प्रकार की शौचक्रिया में शीघ्रता करे और मुखद्वारा अर्थात् फूँक से अग्नि प्रज्वलित न करे और हे पुत्र ! जहाँ यह चार वस्तु न हों, वहाँ वास न करे ।११५। ऋण (कर्ज) देनेवाला, वैद्य, श्रोत्रिय और सजला नदी। जिस राज्य में शत्रुओं को जीतने वाला धर्मनिष्ठ बलवान् राजा वास करता हो ।११६। उस देश में बुद्धिमान् पुरुष को सदा वास करना चाहिये। क्योंकि कुराजा के राज्य में सुख की संभावना कहाँ है ? जिस राज्य का राजा दुर्धर्ष और जिस स्थान की भूमि सस्य (धान्य) वती है।११७। जहाँ पौर (पुरवासी) नियम में तत्पर और नित्य न्यायमार्गानुवर्त्ती हैं और जिस स्थान के समस्त मनुष्य मात्सर्यहीन हैं, उस स्थान में वास करने से सुखोदय होता है।११८। जिस जिस स्थान के कृषकगण सदा अतिभोगरहित हैं, जिस स्थान में असंख्य-असंख्य औषधी उत्पन्न होती हैं बुद्धिमान् पुरुष को उसी स्थान में वास करना चाहिए।११९। हे पुत्र ! जिस स्थान में जिगीषु अर्थात् (जीतने की इच्छावाले) पूर्वशत्रु औरसदा उत्सवोन्मत्त इन तीन प्रकार के मनुष्य वास करते हैं वहाँ वास करना उचित नहीं है।१२०। सुशील सहवासियों में बुद्धिमान् को वास करना चाहिये। हे वत्स ! यह मैंने तुम्हारे हित की कामना से सब वर्णन किया।१२१

श्रीमार्कण्डेयपुराण के मदालसाख्यान में
सदाचारवर्णन नामक एकतीसवाँ अध्याय समाप्त।३१।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

(३२)

धर्माधर्मनिरूपणम्

मदालसोवाच

अतः परं शृणुष्व त्वं वर्ज्यावर्ज्यप्रतिक्रियाम् । भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसंभृतम् ॥१
अस्नेहाश्चापि गोधूमयवगोरसविक्रियाः । शशकः कच्छपो गोधा श्वावित्खड्गोऽथ पुत्रक ॥२
भक्ष्या ह्येते तथा वर्ज्यौ ग्रामशूकरकुक्कुटौ । पितृदेवादिशेषं च श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया ॥३
प्रोक्षितं चौषधार्थं च खादन्मांसं न दुष्यति । शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जूनामथ वाससाम् ॥४
शाकमूलफलानां च तथा विदलचर्मणाम् । मणिवज्रप्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च ॥५
गात्राणां च मनुष्याणामम्बुना शौचमिष्यते । पात्राणां चमसानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥६
ताम्रायः कांस्यरैत्यानां त्रपुषः सीसकस्य च । शौचं यथार्थं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिणा ॥७
तथायसानां तोयेन ग्राव्णः संघर्षणेन च । सस्नेहानां च भाण्डानां शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥८
शूर्पधान्याजिनानां च मुशलोलूखलस्य च । संहतानां च वस्त्राणां प्रोक्षणात्सञ्चयस्य च ॥९
वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते । तृणकाष्ठौषधीनां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥१०

अध्याय ३२

धर्म और अधर्म का निरूपण

मदालसा बोली—हे वत्स ! अब वर्ज्यावर्ज्य द्रव्य की प्रतिक्रिया का वर्णन करती हूँ सुनो—बासी अन्न बहुत दिन का संगृहीत स्नेहद्रव्य ।१। और घी रहित गेहूँ का द्रव्य यव और दुग्धविकार (फटा दूध) भोजन न करे, खरगोश, कछुआ, गोय, श्वावित् (साही-सेही) खड्गी[1] हे पुत्र ! इन सब जीवों का मांस।२। भक्षण कर सकता है किन्तु ग्राम्यसूकर और ग्रामकुक्कुट (मुरगा) अभक्ष्य हैं अर्थात् इनको भोजन नहीं करना चाहिए । ब्राह्मणों के लिये श्राद्ध में पितृदेवताओं का जो अवशिष्ट रहता है ।३। वह मांस और यज्ञादि में प्रोक्षित और औषधार्थ आया हुआ मासभोजन दूषणीय नहीं है, शंख, पाषाण, सुवर्ण, चाँदी, रज्जु, वसन ।४। शाक, मूल, फल, विदल, अन्न, चर्म (चमडा), मणि, हीरा, मूँगा, मोती ।५। और मनुष्य का देह यह सब जल में धुलने में शुद्ध होते है धातुपात्र और चमस की जल से शुद्धि हो जाती है ।६। ताँबा, काँसा, राँगा, सीसा इनका खटाई के जल से तथा क्षार से विधिपूर्वक शौच करना चाहिये ।७। छाजधान्य, मृग, चर्म, मूसल, ओखली और मलिन वस्त्र यह सब वस्तु जल में प्रोक्षण करने से शुद्ध होती है ।९। सब प्रकार का वल्कल और मृत्तिका भी जल के संयोग से शुद्ध होती है । तृण काष्ठ और समस्त औषधि जल से प्रोक्षण करने पर शुद्ध होती हैं ।१०। मेष के रोम से बने वस्त्र और केश, इन दोनों वस्तु के

---

१. गैंड़ा

आविकानां समस्तानां केशानां चापि मेध्यता । सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः ॥११
साम्बुना तात भवति उपघातवतां सदा । तथा कार्पासिकानां च विशुद्धिर्जलभस्मना ॥१२
नागदन्तास्थिभृङ्गाणां तत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते । पुनः पाकेन भाण्डानां पार्थिवानां च मेध्यता ॥१३
शुचिर्भैक्षं कारुहस्तैः पण्यं यच्च प्रसारितम् । योषिन्मुखं बालमुखमात्मवृद्धमुखं तथा ॥१४
रथ्यागतमविज्ञातं दासवर्गादिनाहृतम् । वाक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु ॥१५
अतिप्रभूतं बालं च वृद्धातुरविचेष्टितम् । कर्मान्ताङ्गारशालाश्च स्तनन्धयसुताः स्त्रियः ॥१६
अभ्यस्य च तथा वाचः स्रवन्त्योऽनन्धबुद्बुदाः । भूमिर्विशुध्यते कालाद्दाहमार्जनगोक्रमैः ॥१७
लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्मसंमार्जनार्चनात् । केशकीटावपन्नेऽन्ने गोघ्राते मक्षिकान्विते ॥१८
मृदम्बुभस्मना तात प्रोक्षितव्यं विशुद्धये । औदुम्बराणामम्लेन क्षारेण त्रपुसीसयोः ॥१९
भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धि प्लावो द्रवस्य च । अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च ॥२०
अन्येषां चैव तद्द्रव्यैर्वर्णगन्धापहारतः । चाण्डालैरन्त्यजैश्चैव म्लेच्छैरस्पृश्यजातिभिः ॥२१
स्पृष्टमक्षालितं धान्यमनर्हं सर्वकर्मणि । द्रोणादधस्तु यद्धान्यं तस्यायं विधिरुच्यते ॥२२
द्रोणादूर्ध्वं तु यद्धान्यं प्रोक्षणादेव शुध्यति । रथ्यासु पतितं धान्यं दृष्ट्वा यत्नेन वन्दयेत् ॥२३

किसी प्रकार दूषित होने पर जलयुक्त सरसों कल्क वा तिलकल्कद्वारा शुद्ध करे ।११। और इनके बिगड़ने से जल द्वारा ही इनकी शुद्धि हो जाती है तथा जल और भस्म से कार्पासनिर्मित्त वस्तु की शुद्धि होती है ।१२। हाथीदाँत और उसकी अस्थि, सींग इनकी तत्काल वैसे ही शुद्धि है, मिट्टी का पात्र दूसरी बार पकाने से शुद्ध होता है ।१३। भिक्षालब्ध वस्तु, शिल्पकार का हाथ, बाजार की वस्तु, स्त्रीजाति का मुख, बालक का मुख, अपना मुख और वृद्धपुरुष का मुख स्वयं पवित्र हैं ।१४। मार्ग में आता हुआ, अविज्ञात, दासवर्गादिद्वारा ताड़ना को प्राप्त हुआ, बहुत दिनों का अतीत, अनेक बखेड़ोंवाला और लघुजन वाक्यमात्र से ही शुद्ध होता है ।१५। बहुत बालक और वृद्ध तथा आतुर मनुष्य का कर्म, यह भी स्वभाव से ही शुद्ध है, कर्मसमापन के बाद अंगारशाला, जिसका बालक स्तन नहीं छोड़ती ऐसी स्त्री ।१६। और गंधरहित, बदबूरहित और स्रोतः संयुक्त जल विशुद्ध है, काल से तथा बुहारने और गौ के चरने से भूमि शुद्ध हो जाती है ।१७। लीपने से, खुरचने से, जल छिड़कने से मार्जन और अर्चन, इन सब के द्वारा गृह की शुद्धि करनी चाहिए । हे तात ! मृत्तिका ! सलिल और भस्मद्वारा प्रोक्षण करके केश कीटसंयुक्त, गौके सूंघे और मक्षिकायुक्त द्रव्यादि की शुद्धि करे, ताम्र के बने पात्रादि की खटाई से, रांगा और सीसे की क्षार सें ।१-१९। तथा कांसे की भस्म और जल से शुद्धि करनी चाहिए, जो सब द्रव्य अमेध्य वस्तु से संसक्त हो मिट्टी और जलद्वारा उनकी गंध दूर करने पर ।२०। एवं अन्यान्य वस्तु का वर्ण और गंध दूर करने से वह शुद्ध होता है । चाण्डाल, अन्त्यज, म्लेच्छ और छूने के अयोग्य जातियों सें ।२१। छुआ और धोया धान्य सब कार्यों में अयोग्य हैं, यह द्रोण से कमती धान्य में जानना ।२२। और जो धान्य द्रोणपरिमाण[1] से अधिक हो, वह प्रोक्षण से ही शुद्ध हो जाता है, गली में पड़े हुए धान्य को देखकर यत्न से

---

१. बत्तीस शेरका एक द्रोण होता है ।

उद्धृत्य मूर्ध्ना चादद्याल्लक्ष्मीर्नश्यति चान्यथा । शुचिगोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥२४
तथा मांसं च चण्डालक्रव्यादादिनिपातितम् । रथ्यागतं च चेलादि तात वाताच्छुचि स्मृतम् ॥२५
गजोऽग्निरश्वो गौश्छायारश्मयः पवनो मही । विप्रुषो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः ॥२६
अजाश्वौ मुखतो मेध्यौ न गोर्वत्सस्य चाननम् । मातुः प्रस्रवणं मेध्यं शकुनिः फलपातने ॥२७
आसनं शयनं यानं नावः पथि तृणानि च । सोमसूर्यांशुपवनैः शुध्यन्ते तानि पण्यवत् ॥२८
रथ्याप्रसर्पणे स्नाने क्षुतपानान्नकर्मसु । आचामेत यथान्यायं वासो विपरिधाय च ॥२९
स्पृष्टानामप्यसंस्पृश्यैर्विरथ्याकर्दमांभसाम् । पङ्क्तेष्टरचितानां च मेध्यता वायुसंगमात् ॥३०
प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्य संत्यजेत् । शेषस्थप्रोक्षणं कुर्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा ॥३१
उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टभक्ष्याशिनो भवेत् । अज्ञाते ज्ञानपूर्वं तु तद्दोषोपशमेन तु ॥३२
उदक्याश्वशृगालादीन्सूतिकान्त्यावसायिनः । स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥३३
नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नातः शुध्यति मानवः । आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥३४
न लंघयेत्तथैवासृक्ष्ठीवनोद्वर्तनानि च । नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥३५
न चालपेज्जनद्विष्टां वीरहीनां तथा स्त्रियम् । गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि क्षिपेद्बहिः ॥३६

प्रणाम करना चाहिये ।२३। और उसे उठाकर शिर पर धरे, अन्यथा लक्ष्मी क्रोध करती है, जितने जल में गौ की तृप्ति हो सकती है जो अपने स्वभाव में स्थित हो, पृथ्वी में हो ।२४। और चाण्डाल तथा क्रव्याद द्वारा मारे हुए जीवों का मांस भी शुद्ध कहा गया है । हे वत्स ! गलियों में पड़े पुराने वस्त्र वायु द्वारा ही शुद्ध होते हैं ।२५। धूलि, अग्नि, अश्व, गौ, छाया, सूर्यादि की किरणें, वायु, पृथ्वी, जल की बूँदे और मक्खी इत्यादि दुष्ट के संसर्ग में भी दूषित नहीं होती अर्थात् इनका स्पर्श अपवित्र स्थानों पर रहने से भी यह शुद्ध है ।२६। बकरी और अश्व का मुख पवित्र है, गोवत्स का मुख अपवित्र है, गौ का मल, मूत्र, माता का दूध और पक्षी का गिराया फल पवित्र है ।२७। आसन, शय्या, यान, नौका, मार्ग में स्थित तृण, चंद्र सूर्य के किरण और वायु यह सब बाजार के द्रव्य के समान शुद्ध हैं ।२८। मार्गभ्रमण, स्नान, छींक, पान और मलमूत्रविसर्जन, इन सब कार्यों के बाद तथा वस्त्रपरिवर्त्तन के अनन्तर यथाविधि आचमन करना चाहिए ।२९। मार्ग की कीच, जल, ईंट और कीच से लिप्त द्रव्यादि के संसर्गदोष से दूषित होने पर वायु के संसर्ग से शुद्ध होता है ।३०। अन्न का ढेर यदि किसी प्रकार से दूषित हो जाय तो उसका अग्रभाग पृथक् करके त्याग करे फिर जल और मृत्तिका द्वारा आचमन करे शेष अंश जल छिड़कने से शुद्ध होता है ।३१। बिना जाने दुष्टान्नभोजन करने पर तीन रात्रि उपवासी रहे और जानबूझकर भोजन करने से विधानानुसार उस दोष के शान्त करने को प्रायश्चित का अनुष्ठान करना चाहिये ।३२। ऋतुमती स्त्री, श्वान, गीदड आदि, सूतिका, चाण्डाल और शववाहक अर्थात् मृतक उठाने वाला इन सब का स्पर्श होने पर स्नान करके शुद्ध होता है ।३३। स्नेहयुक्त मनुष्य अस्थि का स्पर्श होने से स्नान कर शुद्ध होता है। और स्नेहरहित अस्थिस्पर्श करने पर आचमन करके गोस्पर्श और सूर्य का दर्शन करने से ही शुद्ध होता है।३४। रुधिर, खखार और उबटन उल्लंघन करना उचित नहीं है। बुद्धिमान् पुरुष कभी असमय उद्यानादि में स्थित न करे ।३५। निन्दित और अवीरा नारी के संग बात करना भी अनुचित है, उच्छिष्ट मल मूत्र और पैरों का धोया हुआ जल घर के बाहर फेंकना चाहिये।३६। पंच पिंड विना उद्धार किये जल

पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिणा । स्नायीत देवखातेषु गंगाह्रदसरित्सु च ॥३७
देवतापितृसच्छास्त्रयज्ञमन्त्रादिनिन्दकैः । कृत्वा तु स्पर्शनालापं शुध्येतार्कावलोकनात् ॥३८
अवलोक्य तथोदक्यामन्त्यजं पतितं शवम् । विधर्मिसूतिकाषण्डविवस्त्रान्त्यावसायिनः ॥३९
मृतनिर्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये । एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः ॥४०
अभोज्यसूतिकाषण्ढमार्जाराखुश्वकुक्कुटान् । पतिताविद्धचण्डालमृतहारांश्च धर्मवत् ॥४१
संस्पृश्य शुध्यते स्नानादुदक्याग्रामसूकरौ । तद्वच्च सूतिकाशौचदूषितौ पुरुषावपि ॥४२
अतः परं शृणुष्व त्वं स्त्रीधर्मान्ननुविस्तरात् । उदुम्बरे वसेन्नित्यं भवानी सर्वदेवता ॥४३
ततः सा प्रत्यहं पूज्या गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । अशून्या देहली कार्या प्रातःकाले विशेषतः ॥४४
यस्य शून्या भवेत्सा तु शून्यं तस्य कुलं भवेत् । पादस्य स्पर्शनं तत्र असम्पूज्य च लङ्घनम् ॥४५
कुर्वन्नरकमाप्नोति तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । प्रातःकाले स्त्रिया कार्यं गोमयेनानुलेपनम् ॥४६
प्रत्यहं सदने तस्मान्नैव दुःखानि पश्यति । स्पृशन्ति रश्मयो यस्य गृहं सम्मार्जनादृते ॥४७
भवन्ति विमुखास्तस्य पितरो देवमातरः । निशायाः पश्चिमे यामे धान्यसंस्करणादिकम् ॥४८
कुरुते या तु मोहेन वंध्या जन्मनि जन्मनि । सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते मार्जनं न करोति या ॥४९
भर्तृहीना भवेत्सा तु निःस्वा जन्मनि जन्मनि । अकृतस्वस्तिकां या तु कामलिप्तां च मेदिनीम् ॥५०

में स्नान न करे । देवखात, गंगा, ह्रद और नदी इन समस्त जल में स्नान करे ।३७। जो व्यक्ति देवता, पितृ, सच्छास्त्र, यज्ञ, मंत्र इत्यादि की निन्दा करते हैं, हे पुत्र ! उनके संग बातचीत या उनको स्पर्श करने पर सूर्य का दर्शन करनेसे शुद्ध होता है ।३८। ऋतुमती स्त्री, अन्त्यज (चाण्डालादि), पतित, शव, विधर्मी, सूतिका (नवप्रसूता), नपुंसक, विवस्त्र पुरुष, अन्त्यावसायी ।३९। सूतनिर्यातक (प्रसवबंधीय) द्रव्यादि का बाहर निकालने वाला और परस्त्रीपरायण, इन सब का दर्शन करने पर सूर्य का दर्शन करके शुद्धिलाभ करना बुद्धिमान् मनुष्य का कर्त्तव्य है ।४०। अभक्ष्य द्रव्य, नवप्रसूता नारी, नपुंसक मार्जारी (बिलाई), चूहा, कुत्ता, मुरगा, पतित, आविद्ध (पितामाता के द्वारा त्यागा हुआ व्यक्ति वा परित्यक्त दूषित द्रव्यादि), चाण्डाल, मृतहारी ।४१। रजस्वला स्त्री, ग्राम्य सूकर और सूतिकाशौचदूषित व्यक्ति इन सब का स्पर्श करने पर स्नान करके शुद्ध होता है ।४२। अब तुम विस्तार सहित स्त्री धर्म को सुनो ! भवानी और सब देवता नित्य उदुम्बर में वसते हैं ।४३। गंध, पुष्प और अक्षत आदि से उनका नित्य पूजन करना चाहिए । विशेष करके प्रातःकाल के समय देहली को शून्य न रखे जिस पुरुष की देहली शून्य रहती है, उसका कुल भी शून्य हो जाता है देहली को चरण से स्पर्श करना और बिना पूजे लाँघना ।४४-४५। ऐसा करने से नरक होता है इस कारण उल्लंघन न करे, वरन प्रातःकाल में स्त्रियों को गोबर से लीपना चाहिये ।४६। क्योंकि प्रतिदिन घर लीपने से दुःख दिखाई नहीं देता, बुहारी दिये बिना जिसके घर में सूर्य की किरणे पड़ती हैं ।४७। उससे पितर देवता और माता विमुख हो जाती हैं, रात्रि के पिछले पहर में जो धान्य का संस्कार इत्यादि करती है ।४८। वह अज्ञानता के कारण ऐसा करने से जन्म-जन्म में बांझ होती है और जो स्त्रियाँ संध्या होने पर घर में बुहारी नहीं देती ।४९। वह जन्म में स्वामी और धन से हीन होती हैं और जो स्त्री लिपी भूमि में स्वस्तिक (सथिया) नहीं करती

तस्याः स्त्रिया विनश्यन्ति वित्तमायुर्यशस्तथा । मार्जनीचुल्लिकाष्ठीवद्दृषदश्चोपलं तथा ।।५१
नाक्रमेदङ्घ्रिणा जातु पुत्रदारधनक्षयात् । उलूखलं च मुसलं तथा चैव तु घर्षणम् ।।५२
पदाक्रमणात्पापीयान्नाप्नोत्युत्तमतां गतिम् । भिन्नासनं योगपट्टं तथैव मृगचर्म च ।।५३
कृष्णाविकं तथा तात वर्जयेत्पुत्रन्वान्गृही । दक्षिणाभिमुखो यस्तु विदिक्संमुख एव च ।।५४
केशान्संस्कुरुते मर्त्यो धननाशं च विन्दति । अनूढस्तु न कुर्वीत भुक्त्वा दन्तविशोधनम् ।।५५
पादुकारोहणं चैव तिलैश्चापि सतर्पणम् । न जीवत्पितृकः कुर्यादर्धकक्षोत्तरीयकम् ।।५६
दर्शश्राद्धं न कुर्वीत दर्शस्नानं कथञ्चन । पादुकारोहणं चैव योगपट्टकमेव च ।।५७
न जीवत्पितृकः कुर्याद्गयाश्राद्धं तथैव च । दीपभाण्डमयीच्छाया विभीतककुरण्टजा ।।५८
वर्जनीया सदा पुत्र यदि जीवितुमिच्छति । अधोवस्त्रेण यो वायुं कुरुते शिरसि द्विज ।।५९
स्थालेन चर्मशूर्पाभ्यां सुकृतं तस्य नश्यति ।।

अलर्क उवाच

भवत्या कीर्तिता भोज्या य एते सूतिकादयः ।।६०
अमीषां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो लक्षणानि ह ।।

मदालसोवाच

ब्राह्मणी ब्राह्मणस्येह यावरोधत्वमागता ।।६१
तावुभौ सूतिकेत्युक्तौ तयोरन्नं विगर्हितम् । न जुहोत्युचिते काले नाश्नाति न ददाति च ।।६२

है ।५०। उस स्त्री का धन तथा आयु और यश का नाश हो जाता है । बुहारी, चूल्हा, सिलबट्टा ।५१। इन्हें पैर से कभी आक्रमण न करे, करने से पुत्र, स्त्री और धन का क्षय होता है इसी प्रकार ओखली तथा मूसल के वृथा घर्षण से ।५२। और चरण से आक्रमण करने पर पुरुष पापी होकर उत्तम गति को प्राप्त नहीं होता, टूटे हुए आसन, योगपट्ट तथा मृगचर्म ।५३। और काला कम्बल, हे तात ! इन वस्तुओं का पुत्रवान् पुरुष को सवेन नहीं करना चाहिए जो पुरुष दक्षिण की ओर को मुख करके अथवा विदिशाओं की ओर मुख करके ।५४। बालों का संस्कार करता है, उसके धन का नाश हो जाता है, क्वाँरे बालक को भोजन करके दांत कुरेदने उचित नहीं है ।५५। खड़ाऊँ पर चढ़ना, तिलों से तर्पण, आधी धोती शिर से ओढ़ना जिसका पिता जीवित हो, वह इन बातों को न करे ।५६। वह पुरुष अभाव में श्राद्ध और तदर्थ स्नान न करे, खड़ाऊं पर न चढ़े, योगपट्ट ।५७। गयाश्राद्ध यह जीवित पितावाला न करे, दीपक की बहेड़े की और कुरंट की छाया ।५८। जीने की इच्छा करने वाले पुरुष को सदा त्यागनी चाहिए और जो पुरुष धोती से शिर की हवा करते हैं ।५९। स्थाली चर्म और सूर्य से जो हवा करते हैं, उनका पुण्य नष्ट हो जाता है ।

अलर्क बोले—तुमने जो यह सूतिकादिक भोज्य कहे हैं ।६०। वह अब मैं तुमसे इनके यथार्थ लक्षण सुनने की इच्छा करता हूँ ।

मदालसा बोली—जो ब्राह्मण की स्त्री हुई है अर्थात् ब्राह्मण ने उसे कर लिया है ।६१। वह दोनों सूतिका और उनका अन्न गर्हित है । जो पुरुष समय पर हवन, भोजन और दान नहीं करता ।६२। जो

पृष्ठ त्रुटि

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

(३६)

आत्मविवेकवर्णनम्

जड उवाच

सोऽप्यलर्को यथान्यायं पुत्रवन्मुदिताः प्रजाः । पालयामास धर्मात्मा स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥१
दुष्टेषु दण्डं शिष्टेषु सम्यक्च परिपालनम् । कुर्वन्परां मुदं लेभे इयाज च महामखैः ॥२
अजायन्त्त सुताश्चास्य महाबलपराक्रमाः । धर्मात्मानो महात्मानो विमार्गपरिपन्थिनः ॥३
चकार सोऽर्थं धर्मेण धर्ममर्थेन वा पुनः । तयोश्चैवाविरोधेन बुभुजे विषयानपि ॥४
एवं बहूनि वर्षाणि तस्य पालयतो महीम् । धर्मार्थकामसक्तस्य जग्मुरेकमहर्यथा ॥५
वैराग्यं नास्य संजज्ञे भुञ्जतो विषयान्प्रियान् । न चाप्यलमभूत्तस्य धर्मार्थोपार्जनं प्रति ॥६
तं तथा भोगसंसर्गप्रमत्तमजितेन्द्रियम् । सुबाहुर्नाम शुश्राव भ्राता तस्य वनेचरः ॥७
तं बुबोधयिषुः सोऽथ चिरं ध्यात्वा महामतिः । तद्वैरिसंश्रयं तस्य श्रेयोऽमन्यत भूपतेः ॥८
ततः स काशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम् । स्वीराज्यमाप्तुमागच्छद्बहुशः शरणं कृती ॥९
सोऽपि चक्रे बलोद्योगमलर्कं प्रति पार्थिवः । दूतं च प्रेषयामास राज्यमस्मै प्रदीयताम् ॥१०

अध्याय ३४

आत्मविवेक नामक वर्णन

जड ने कहा—धर्मात्मा अलर्क के न्यायानुसार पुत्र के समान प्रजापालन करने से उन्होंने परम आनंद प्राप्त किया और सब स्वस्वहित कार्यानुष्ठान में प्रवृत्त हुए ।१। उन्होंने दुष्ट पुरुषों में दंडविधान और शिष्टपुरुषों का पालन करके परमानंदलाभ और अनेक प्रकार के श्रेष्ठ यज्ञ संपादन किये ।२। कालक्रम से उनके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए । वह सब महाबल पराक्रान्त, धर्मात्मा, महात्मा और कुमार्ग के नष्ट करने वाले थे ।३। अलर्क आत्मवान् होकर धर्म के सहित अर्थ का और अर्थ के सहित धर्म का रक्षण एवं धर्म और अर्थ इन दोनों के अविरोध में विषयभोग करने लगे ।४। इस प्रकार से धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग के अनुसारी होकर पृथ्वी पालन करते-करते उनको बहुत वर्ष एक दिन के समान बीत गये ।५। प्रियतम विषय संभोग करके भी उनको वैराग्य का संचार औरधर्म अर्थोपार्जन के प्रति पूर्णता का उदय न हुआ ।६। अलर्क का सुबाहु नामक एक भाई पहले से ही वनवास आश्रय करता था, उसने अलर्क की भोग संभोग में, प्रमत्तता और परायणता का विषय सुना ।७। इस कारण उस महीमति ने भ्राता को तत्त्वज्ञान होने की इच्छा से बहुत काल तक चिन्ता करके अन्त में उसने शत्रु का आश्रय ग्रहण करना ही श्रेष्ठ समझा ।८। अनन्तर कार्यकुशल सुबाहु ने स्वीय राज्यलाभ की वासना से महाबल बलवाहन युक्त काशीपति की अनेक बार शरण ग्रहण की ।९। काशीराज ने भी अलर्क के प्रतिकूल सेना का उद्योग करके उनके निकट दूत भेजा और यह कहलाने भेजा कि, "सुबाहु को राज्य प्रदान करो" ।१०। क्षत्रधर्मवित्

सोऽपि नैच्छत्तदा दातुमाज्ञा पूर्वं स्वधर्मवित् । प्रत्युवाच च तं दूतमलर्कः काशिभूभृतः ॥११
मामेवाभ्येत्य हार्देन याचतां राज्यमग्रजः । नाक्रान्त्या सम्प्रदास्यामि भयेनाल्पामपि क्षितिम् ॥१२
सुबाहुरपि नो याच्ञां चकार मतिमांस्तदा । न धर्मः क्षत्रियस्येति याच्ञावीर्यधनो हि सः ॥१३
ततः समस्तसैन्येन काशीशः परिवारितः । आक्रान्तुमभ्यगाद्राष्ट्रमलर्कस्य महीपतेः ॥१४
अनन्तरैश्च संश्लेषमभ्येत्य तदनन्तरम् । तेषामन्यतमैर्भृत्यैः समाक्रम्यानयद्वशम् ॥१५
अपीडयंश्च सामन्तांस्तस्य राष्ट्रोपरोधनैः । तथा दुर्गान्तपालांश्च चक्रे चाटविकान्वशे ॥१६
कांश्चिच्चोपप्रदानेन कांश्चिद्भेदेन पार्थिवान् । साम्नैवान्यान्वशं निन्ये निभृतास्तस्य येऽभवन् ॥१७
ततः सोऽल्पबलो राजा परचक्रावपीडितः । कोशक्षयमवापोच्चैः पुरं चारुध्यतारिणा ॥१८
इत्थं संपीडयमानस्तु क्षीणकोशो दिने दिने । विषादमागात्परमं व्याकुलत्वं च चेतसः ॥१९
आर्ति स परमां प्राप्य तत्सस्माराङ्गुलीयकम् । यदुद्दिश्य पुरा प्राह माता तस्य मदालसा ॥२०
ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा वाचयित्वा द्विजोत्तमान् । निष्कृष्य शासनं तस्माद्ददृशे प्रस्फुटाक्षरम् ॥२१
तत्रैव लिखितं मात्रा वाचयामास पार्थिवः । प्रकाशपुलकाङ्गोऽसौ प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ॥२२
संगः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्युक्तं न शक्यते । सद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम् ॥२३
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः । मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम् ॥२४

अलर्क ने इस बात को स्वीकार न करके काशिराज के दूत को यह उत्तर दिया कि ।११। "मेरे बड़े भ्राता मेरे निकट आकर विनयपूर्वक राज्य को प्रार्थना करे मैं आक्रमण के भय से कणिकामात्र भूमि नहीं दूँगा" ।१२। महामति सुबाहु ने प्रार्थना नहीं की, क्योंकि प्रार्थना करना क्षत्रियों का धर्म नहीं है, एक मात्र वीर्य ही उनका धन है ।१३। तदनन्तर काशीराज सब सेना से परिवृत हो महीपति अलर्क के राज्य पर आक्रमण करने के लिये आये ।१४। उन्होंने अपने सामन्त राजाओं के साथ उनके अन्य भृत्यों सहित आगमनपूर्वक आक्रमण के पीछे बाद को अपने वशीभूत कर लिया ।१५। उन्होंने भ्राता का राज्य अवरोधपूर्वक सामन्तगणों को पीड़ित, दुर्गपाल और आटविक गण (वनवासी) को वशीभूत ।१६। और किसी को अर्थदान द्वारा, किसी को भेद द्वारा और किसी को सामद्वारा अपने वश में कर लिया ।१७। इस प्रकार से अलर्क परचक्र द्वारा पीड़ित होकर क्षीणबल और क्षीणकोष हो गये और उनका पुर भी शत्रु के द्वारा अवरुद्ध हो गया ।१८। इस प्रकार से दिन-दिन क्षीणकोष और शत्रु के द्वारा पीड़ित होने से वह अत्यन्त विषाद को प्राप्त हुए और उनका चित्त व्याकुल हो गया ।१९। क्रमानुसार अत्यन्त आर्त्तभाव को प्राप्त होने पर जननी मदालसा ने पहले जो बात कही थी, वही अँगूठी का विषय उनको स्मरण हुआ ।२०। तब उन्होनें स्नानपूर्वक पवित्र होकर ब्राह्मण द्वारा स्वस्तिवाचन कराया और वह निबद्ध शासन बाहर करके देखा, उसमें स्पष्ट-स्पष्ट रूप से अक्षर लिख रहे थे ।२१। माता का लिखा हुआ वह शासनपत्र पढ़ते ही उनका शरीर पुलकायमान और दोनों नेत्र आनन्द से उत्फुल हो गये ।२२। शासन में लिखा था, "सर्वान्तःकरण से संग परित्याग करे" यदि संगत्याग में समर्थ न हो तो वह संग साधुओं के सहित करना चाहिए क्योंकि साधुसंग ही जगत् का औषधीस्वरूप है ।२३। सर्वान्तःकरण से काम का परित्याग करना उचित है, यदि उसके त्याग करने में समर्थ न हो तो मुक्ति कामना के प्रति ही उसका

वाचयित्वा तु बहुशो नृणां श्रेयः कथं त्विति । मुमुक्षयेति निश्चित्य सा च तत्सङ्गतो यतः ॥२५
ततः स साधुसम्पर्कं चिन्तयन्पृथिवीपतिः । दत्तात्रेयं महाभागमगच्छत्परमार्तिमान् ॥२६
तं समेत्य महात्मानमकल्मषमसङ्गिनम् । प्रणिपत्याभिसम्पूज्य यथान्यायमभाषत ॥२७
ब्रह्मन्कुरु प्रसादं मे शरण्यः शरणार्थिनाम् । दुःखापहारं कुरु मे दुःखार्त्तस्यातिकामिनः ॥२८

दत्तात्रेय उवाच

दुःखापहारमद्यैव करोमि तव पार्थिव । सत्यं ब्रूहि किमर्थं ते दुःखं तत्पृथिवीपते ॥२९
कस्य त्वं कस्य वा दुःखं तत्त्वमेव विचार्यताम् । अङ्गान्यङ्गी निरङ्गं च सर्वाङ्गानि विचिन्तय ॥३०

जड उवाच

इत्युक्तश्चिन्तयामास स राजा तेन धीमता । त्रिविधस्यापि दुःखस्य स्थानमात्मानमेव च ॥३१
स विमृश्य चिरं राजा पुनः पुनरुदारधीः । आत्मानमात्मना धीरः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥३२
नाहमुर्वी न सलिलं न ज्योतिरनिलो न च । नाकाशं किं तु शारीरं समेत्य सुखमिष्यते ॥३३
न्यूनातिरिक्ततां याति पञ्चकेस्मिन्सुखासुखम् । यदि स्यान्मम किं न स्यादन्यस्थेऽपि हितं मयि ॥३४
नित्यप्रभूतसद्भावे न्यूनाधिक्यान्नतोन्नते । तथा च ममता त्यक्ता विशेषेणोपलभ्यते ॥३५

करना उचित है, क्योंकि वही उसकी महौषध है ।२४। इसी प्रकार बार-बार माता के दिये शासन का पाठ करके क्या करने से मनुष्य को कल्याणलाभ हो मोक्ष कामना ही उस कल्याण लाभ होने का उपाय है और सत्संग ही उस मुमुक्षा के साधन का कारण है ।२५। इस प्रकार निश्चय कर साधुसंग लाभ की चिन्ता करने लगे । अतीव आर्त्तभावातुर नरपति इस प्रकार से चिन्ता करके अन्त में महाभाग दत्तात्रेय के निकट गये । उन्होंने निष्पाप निःसंग और महानुभाव दत्तात्रेय को प्रणाम पूर्वक पूजा करके न्यायानुसार कहा ।२६-२७। हे ब्रह्मन् ! आप मेरे प्रति प्रसन्न हों, आप ही शरणार्थिगणों के आश्रय हैं, मैं विषयभोग की कामना करता हुआ दुःख से अभिभूत हो गया हूँ, आप मेरा दुःख दूर कीजिये ।२८

दत्तात्रेय बोले—हे पार्थिव ! मैं अभी तुम्हारा दुःख दूर करूँगा । हे पृथ्वीपते ! तुम सत्य कहो, किस कारण तुमको दुःख का उदय हुआ है ।२९। तुम किसके हो ? किसका दुःख है ? पहले यह विचार करो । अंग अंगिभाव तथा निरंग इन सब अंगों का विचार करो ।३०

जड ने कहा—महामति दत्तात्रेय के इस प्रकार पूछने पर महीपति त्रिविध दुःख का स्थान और आत्मा इन दो विषय की चिन्ता करने में प्रवृत्त हुए ।३१। उदारमति धीरप्रकृति नरपति पुनः पुनः अनेक बार आत्म द्वारा आत्मविचार करके हँसते हुए कहने लगे ।३२। मैं भूमि जल नहीं, ज्योति नहीं, अनिल नहीं और आकाश भी नहीं हूँ । किन्तु शरीर आश्रय पूर्वक सुख की वासना करता हूँ ।३३। इस पाँच भौतिक शरीर में सुख-दुःख उपस्थित होकर न्यूनातिरिक्तता प्राप्त होती है ।३४। यदि इस प्रकार हो उसमें भी मेरी क्या हानि ? क्योंकि वे शरीर नहीं, शरीर से स्वतंत्र भाव में अवस्थित हूँ । मेरी न्यूनता अतिरिक्तता की संभावना नहीं है मुझको नित्य प्रभूत सद्भाव उपस्थित होता है, न्यूनाधिक्य वश नत और उन्नत भी होता हूँ। अतएव ममता त्याग कर विशेषरूप से ज्ञान की उपलब्धि करना ही उचित है। मैं

तन्मात्रावस्थिते सूक्ष्मे तृतीयांशे च पश्यतः । तथैव भूतसद्भावं शारीरं किं सुखासुखम् ॥३६
मनस्यवस्थितं दुःखं सुखं वा मानसं च यत् । यतस्ततो न मे दुःखं सुखं वा न ह्यहं मनः ॥३७
नाहङ्कारो न च मनो बुद्धिर्नाहं यतस्ततः । अन्तःकरणजं दुःखं पारक्यं मम तत्कथम् ॥३८

नाहं शरीरं न मनो यतोऽहं पृथक्छरीरान्मनसस्तथाहम् ।
तत्सन्तु चेतस्यथवापि देहे सुखानि दुःखानि च किं ममात्र ॥३९
राज्यस्य वाञ्छां कुरुतेऽग्रजोऽस्य देवस्य चेत्पञ्चमयः स राशिः ।
गुणप्रवृत्त्या मम किं नु तत्र तत्स्थः स चाहं च शरीरतोऽन्यः ॥४०
न यस्य हस्तादिकमप्यशेषं मांसं न चास्थीनिशिराविभागः ।
कस्तस्य नागाश्वरथादिकोशैः स्वल्पोऽपि सम्बन्ध इहास्तिपुंसः ॥४१
तस्मान्न मेऽरिर्न च मेऽस्ति दुःखं न मे सुखं नापि पुरं न कोशम् ।
न चाश्वनागादिबलं न तस्य नान्यस्य वा कस्यचिद्वा ममास्ति ॥४२
यथा घटीकुम्भकमण्डलुस्थामाकाशमेकं बहुधा हि दृष्टम् ।
तथा सुबाहुः स च काशिपोऽहं मन्ये च देहेषु शरीरभेदैः ॥४३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे आत्मविवेको नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।३४।

तन्मात्रावस्थित सूक्ष्म तृतीयांश में अवस्थित हूँ, मेरा शरीर भी भूतसद्भावसंघटित है इसलिए सुख और दुःख की संभावना कहाँ है ।३५-३६। सुख और दुःख मन में ही स्थित करते हैं, वह मन का ही धर्म है जब मैं वह मन भी नहीं हूँ, तब मुझको सुख भी नहीं और दुःख भी नहीं है ।३७। जब मैं अहंकार नहीं, मन नहीं और बुद्धि भी नहीं हूँ, तब मुझमें अन्तःकरण जनित पारक्य दुःख अर्थात् दूसरे का दिया दुःख किस प्रकार से संभव हो सकता है ।३८। मैं शरीर नहीं, मन नहीं, मैं शरीर और मन से पृथक् हूँ । अतएव सुख मन में हो या शरीर में स्थिति करे मेरा उसमें क्या ? अर्थात् मेरी उसमें हानि भी नहीं और फल भी नहीं ।३९। इस प्रकार शरीर के अग्रज (बड़े भाई) ही राज्य की प्रार्थना करते हैं, यदि यह शरीर पांचभौतिक है तो उसकी गुणप्रवत्ति में मेरी क्या आवश्यकता है ? क्यों, अग्रेज ? क्या मैं ? दोनों ही देह से पृथक् पदार्थ हूँ ।४०। जिसके हस्तादि अवयव मांस, अस्थि और शिरा विभाग कुछ नहीं है, घोड़ा, हाथी और रथादि कोष में उसकी क्या आवश्यकता है ? इसमें पुरुष का कोई सबंध नहीं दिखता ।४१। अतएव मेरे शत्रु को दुःख, सुख, पुर, कोष, अश्वगजादि और सैन्य भी नहीं है । जिस प्रकार मेरे कुछ नहीं है इसी प्रकार मेरे अग्रज का और अन्यान्य किसी पुरुष का भी यह सब नहीं है ।४२। एकमात्र आकाश ही जिस प्रकार घटी, कुम्भ और कमण्डलु भेद से अनेक दिखाई देता है इसी प्रकार आत्मा एक मात्र होकर भी सुबाहु काशिराज और मेरे इत्यादि देह के भेद से नाना बोध होते हैं ।४३

श्रीमार्कण्डेयपुराण में दत्तात्रेय आख्यान वर्णन नामक
चौतींसवाँ अध्याय समाप्त ।३४।

पितृदेवार्चनाद्धीनः षण्ढः स परिगीयते । दम्भार्थे यजते यश्च तप्यते च तपस्तथा ॥६३
न परार्थमिहेत्युक्तः स मार्जारः स्मृतो बुधैः । विभवे सति नैवात्ति न ददाति जुहोति च ॥६४
तमाहुराखुस्तस्यान्नं भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुद्धयति । समागतानां मर्त्यानां पक्षपातं समाश्रयेत् ॥६५
तमाहुः कुक्कुटं देवास्तस्याप्यन्नं विगर्हितम् । स्वधर्मं यः समुच्छिद्य परधर्मं समाश्रयेत् ॥६६
अनापदि विद्वद्भिः पतितः परिकीर्तितः । देवत्यागी गुरुत्यागी गुरुपत्न्युज्झकस्तथा ॥६७
गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धः प्रचक्षते । येषां कुलं न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम् ।६८
ते नग्नाः कीर्तिताः सद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम् । आशाकर्तुस्त्वदाता च दातुश्च प्रतिषेधकः ॥६९
शरणागतं यस्त्यजति स चाण्डालो नराधमः । यो बान्धवैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि ॥७०
कुण्डाशी यश्च तस्यान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् । यो नित्यकर्मणो हानिं कुर्यान्नैमित्तिकस्य च ॥७१
भुक्त्वान्नं तस्य शुद्धयै च त्रिरात्रोपोषितो नरः । यस्य चानुदिनं हानिर्गृहे नित्यस्य कर्मणः ॥
यश्च ब्राह्मणसन्त्यक्तः किल्बिषी स नराधमः ॥७२
नित्यस्य कर्मणो हानिं न कुर्वीत कदाचन । तस्य त्वकरणे बन्धः केवलं मृतजन्मसु ॥७३
दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमादिवर्जितः । क्षत्रियो द्वादशाहं च वैश्यो मासार्द्धमेव च ॥७४
शूद्रस्तु मासमासीत नित्यकर्मविवर्जितः । रोगग्रहादिविधिना नित्यकर्मविधिच्युतः ॥७५
पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा गां दत्त्वा शुद्धिमाप्नुयात् । ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वे यथोदितम् ॥७६

पितर और देवता की पूजा से हीन है, वह षण्ढ कहलाता है और जो मनुष्य दिखाने के लिये तप और हवन करता है ।६३। वह परमार्थ नहीं है, पण्डितों ने उसके मार्जार कहा है । धन होने पर जो हवन, दान और भोजन नहीं करता ।६४। उसे चूहा कहा है उसका अन्न भोजन करने पर व्रत करने से शुद्ध होता है, जो पुरुष सभा में प्राप्त हुए मनुष्यों का पक्षपात करता है ।६५। उसको देवताओं ने कुक्कुट (मुरगा) कहा है उसका अन्न भी गर्हित है । जो पुरुष अपना धर्म छोड़कर पराये धर्म का आश्रय करता है ।६६। वह पुरुष आपत्ति के बिना ऐसा करने से पतित कहा गया है । देवत्यागी, गुरुत्यागी ।६७। गौ ब्राह्मण और स्त्री का वध करने वाला अपविद्ध कहलाता है । जिन पुरुषों के कुल में वेद, शास्त्र और व्रत नहीं है ।६८। पण्डितों ने उनको नग्न कहा है, उनका अन्न भी निन्दित है आश कराकर फिर न दे अथवा देने वाले से निषेध कर दे ।६९। जो पुरुष शरण में आये हुए को छोड़ता है वह नराधम चाण्डाल होता है, जो बांधव साधु और ब्राह्मणों से त्यागा गया है ।७०। जो वर्णसंकर के यहाँ भोजन करता है वह चान्द्रायण करने से शुद्ध होता है, जो नित्य और नैमित्तिक कर्म की हानि करता है ।७१। वह भोजन करने के उपरान्त तीन रात व्रत करने से शुद्ध होता है, जिस घर में नित्यकर्म की प्रतिदिन हानि होती है, और जो ब्राह्मणों से त्यागा हुआ है, वह पापी मनुष्यों में अधम है ।७२। नित्यकर्म की कभी हानि न करे, नित्यकर्म अनुष्ठान मरण जन्म में संघटित होता है, केवल मात्र मरणकाल में और जन्मकाल में नित्यकर्म अनुष्ठान न करने से कोई दोष नहीं होता है ।७३। जन्माशौच और मरणाशौच में ब्राह्मणगण दश दिन तक दान होमादि नित्यकर्म से रहित होकर स्थित रहें और क्षत्रियगण बारह दिन, वैश्यगण पन्द्रह दिन ।७४। और शूद्रगण एक मास तक इसी प्रकार के आचरण में रहें । रोग और ब्रह्मादि की बाधा में भी नित्यकर्म की विधि छूट जाती है ।७५। उसमें पादकृच्छ्र व्रत करे और गोदान करने से शुद्ध होता है । इसके बाद शास्त्रोक्तविधान से

प्रेताय सलिलं देयं बहिर्गेहाच्च गोत्रिकैः । प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा ।।७७
भस्मास्थिचयनं कार्यं चतुर्थे गोत्रिकैर्दिने । ऊर्ध्वं सञ्चयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते ।।७८
सोदकैस्तु क्रियाः सर्वाः कार्या सञ्चयनात्परम् । स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तयोभयोः ।।७९
वृक्षाहिगोदंष्ट्रिशस्त्रतोयोद्बंधनवह्निषु । विषप्रपातादिमृते प्रायो नाशकयोरपि ।।८०
बाले देशान्तरस्थे च तथा प्रव्रजिते मृते । सद्यः शौचमथान्यैश्च त्र्यहमुक्तमशौचकम् ।।८१
नैवौर्ध्वदैहिकं कार्यं न च कार्योदकक्रिया । गर्भस्रावे तदेवोक्तं पूर्णकालेन शुध्यति ।।८२
ब्राह्मणानामहोरात्रं क्षत्रियाणां दिनत्रयम् । षड्रात्रमपि वैश्यानां शूद्राणां द्वादशाह्निकम् ।।८३
सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि । पूर्वाशौचसमाख्यातैः कार्या तस्य दिनैः क्रिया ।।८४
एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके । सपिण्डानां सपिण्डेषु यथावत्सोदकेषु च ।।८५
जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते । मृते हि सर्वबन्धूनामित्याह भगवान्भृगुः ।।८६
तत्रापि यदि चान्यस्मिञ्जाते जायेत चापरः । तत्रापि शुद्धिरुद्दिष्टा पूर्वजन्मवतो दिनैः ।।८७
दशद्वादशमासार्द्धमाससंख्यैर्दिनैर्गतैः । स्वाः स्वाः कर्मक्रियाः कुर्युः सर्वे वर्णा यथाविधि ।।८८
प्रेतमुद्दिश्य कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं ततः परम् । सपिण्डीकरणं चैव कार्यमावत्सरान्नरैः ।।८९
ततः पितृत्वमापन्ने दर्शपूर्णादिभिस्त्रिभिः । प्रीणयंस्तस्य कर्तव्यं यथाश्रुतिनिदर्शनम् ।।९०

सब अपने-अपने कार्य का अनुष्ठान करे ।७६। सगोत्रीयगण बहिर्भाग में मृतदेह दग्ध कर प्रथम, चतुर्थ सप्तम और नवम दिन में प्रेत के उद्देश्य से जलदान करे ।७७। चौथे दिन में भस्म और अस्थिचयन करना चाहिए और अस्थिसंचयन के बाद उसका अंग स्पर्श करना उचित है ।७८। संचय के बाद समानोदक पुरुष सब क्रिया समापन करे, मृत दिवस में सपिण्ड और समानोदक व्यक्ति का स्पर्श करना चाहिए ।७९। वृक्ष, सर्प, पशु, श्वापद, शस्त्र, जल, फाँसी, वह्नि, विष और पर्वत से गिरने प्रायोपवेशन करने और अनशन करने इत्यादि में मृत्यु होने पर सगोत्र और समानोदक व्यक्ति का एक दिन अशौच होता है ।८०। बालक देशान्तरवासी और प्रव्रज्याश्रयी की मृत्यु होने पर तत्काल अशौच होता है। किसी-किसी के मत से त्रिरात्र अशौच की व्यवस्था है ।८१। फिर इनकी और्ध्वदैहिक क्रिया और जलदान नहीं होता। गर्भस्राव में भी यही विधि है पूर्णकाल में शुद्धि होती है ।८२। ब्राह्मणों के यहाँ गर्भपात में एक दिनरात, क्षत्रियों के तीन दिन, वैश्यों के छः दिन और शूद्रों की बारह दिन में शुद्धि होती है ।८३। एक पुरुष के मरने पर उसी के अशौच में अपर किसी सपिंडी की मृत्यु होने पर प्रथम पुरुष के मृत दिन की गणना में पर व्यक्ति की अशौच शुद्धि क्रिया पूर्ण करे ।८४। जन्माशौच में भी सपिण्ड और समानोदक पुरुष की इसी प्रकार विधि निर्दिष्ट है ।८५। पुत्र उत्पन्न होने पर पिता को सवस्त्र स्नान करना चाहिए और मृत्यु में सब बंधु सवस्त्र स्नान करें, यह भगवान् भृगु ने कहा है ।८६। यदि एक के जन्म ग्रहण करने पर अन्य एक जन्म ले तो पहले के जन्म की शुद्धि के दिन उसकी भी शुद्धि हो सकती है ।८७। ब्राह्मणादि समस्त वर्ण ही विधानानुसार दश दिन, बारह दिन, पक्ष और एक मास का अवलम्बन करके निज-निज वर्ण के अनुसार कार्यादि निर्वाह करे ।८८। फिर प्रेत के उद्देश्य से एकोदिष्ट करना चाहिए और वर्ष दिन तक सपिण्डीकरण कर लेना चाहिए।८९। अनन्तर प्रेत के पितृत्व प्राप्त होने में दर्शपौर्णमास को वेदानुसार

दानादि चैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः । यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे ॥९१
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता । प्रेतं प्रेतं समुद्दिश्य भूमिधेन्वादिकं स्वकम् ॥९२
दद्याद्येनास्य सम्प्रीताः पितरः सन्ति पुत्रक । पूर्णैस्तु दिवसैः स्पृष्ट्वा सलिलं वाहनायुधम् ॥९३
प्रतोददण्डौ च तथा सम्यग्वर्णाः कृतक्रियाः । स्ववर्णधर्मनिर्दिष्टमुपादानं तथा क्रियाः ॥९४
कुर्युः समस्ताः शुचिनः परत्रेह च भूतिदाः । अध्येतव्या त्रयी नित्यं भवितव्यं विपश्चिता ॥९५
धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि यत्नतः । यच्चापि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति पुत्रक ॥९६
तत्कर्तव्यमशंकेन यन्न गोप्यं महाजने । एवमाचरतो वत्स पुरुषस्य गृहे सतः ॥
धर्मार्थकामसम्प्राप्त्या परत्रेह च शोभनम् ॥९७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने धर्माधर्मनिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।३२।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(३६)

मदालसोपाख्यानवर्णनम्

जड उवाच

स एवमनुशिष्टः सन्मात्रा सम्प्राप्य यौवनम् । ऋतत्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम् ॥१
पुत्रांश्चोत्पादयामास यज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः । पितुश्च सर्वकालेषु चकाराज्ञानुपालनम् ॥२

पितर की तृप्ति करनी चाहिये ।९०। और ब्राह्मणों के निमित्त दान देने चाहिए, जो-जो लोक में इष्ट और अपने को प्रिय हो अथवा प्रिय वस्तु घर में हो ।९१। वह अक्षय की इच्छा करने वाले को गुणी के निमित्त देनी चाहिए, प्रेत के उद्देश्य से भूमि धेनु आदि ।९२। देने से पितर संतुष्ट होते हैं, हे पुत्र ! अशौच के पूर्ण होने पर सलिल, सवारी और शस्त्र का स्पर्श करके ।९३। तथा चाबुक, दण्ड स्पर्श कर सब वर्ण क्रमानुसार निज-निज कार्य करें अपने वर्णानुसार क्रिया करने से मंगल होता हैं ।९४। पवित्र होकर क्रिया करने से दोनों लोक में मंगल होता है बुद्धिमान् को नित्य प्रति तीन वेद का पाठ करना चाहिए ।९५। धर्मानुसार धन उपार्जन करके यत्न सहित यज्ञ का अनुष्ठान करे और हे पुत्र ! जिससे आत्मा निन्दित न हो वह कर्म करे ।९६। जो महाजनों के समीप गोपनीय नहीं हैं, निःशंक होकर ऐसे कर्म में प्रवृत्त होना चाहिए । हे वत्स ! गृहस्थाश्रमी इस प्रकार आचरण करने से धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्गलाभ और इस लोक तथा परलोक दोनों में कल्याण लाभ करते हैं ।९७

श्रीमार्कण्डेयपुराण के मदालसाख्यान में अलर्कानुशासन वर्णन नामक
बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।३२।

अध्याय ३३

मदालसोपाख्यान वर्णन

जड ने कहा—जननी के इस प्रकार अनुशासन करने पर ऋतध्वजनंदन ने यौवन को प्राप्त हो सम्यक् विधानानुसार विवाह किया ।१। क्रमशः पुत्र उत्पादन और विविध यज्ञ का अनुष्ठान पूर्वक

ततः कालेन महता सम्प्राप्य चरमं वयः । चक्रेऽभिषेकं पुत्रस्य तस्य राज्ये ऋतध्वजः ॥३
भार्यया सह धर्मात्मा यियासुस्तपसेवनम् । अवतीर्णो महीरक्षो महाभागो महीपतिः ॥४
मदालसा च तनयं प्राहेदं पश्चिमं वचः । कामोपभोगसंसर्गप्रहाणाय सुतस्य वै ॥५

मदालसोवाच

यदा दुःखमसह्यं ते प्रियबन्धुवियोगजम् ॥६
भवेत्तत्कुर्वतो राज्यं गृहधर्मावलम्बिनः । दुःखायतनभूतो हि ममत्वालम्बनो गृही ॥७
तदास्मात्पुत्र निष्कृष्य मद्दत्तादंगुलीयकात् । वाच्यं ते शासनं पट्टे सूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ॥८

जड उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै सौवर्णं सांगुलीयकम् । आशिषश्चापि या योग्याः पुरुषस्य गृहे सतः ॥९
ततः कुवलयाश्वोऽसौ सा च देवी मदालसा । पुत्राय दत्त्वा तद्राज्यं तपसे काननं गतौ ॥१०

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानं नाम त्र्यस्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ।३३।

निरन्तर पिता की आज्ञा में रहने लगे ।२। अनन्तर दीर्घकाल बीतने पर जब चरम अवस्था उपस्थित हुई, तब धर्मात्मा महाभाग महीपति ऋतध्वज तपस्या के लिये स्त्रीसहित वन में जाने की इच्छा करके पुत्र को युवराज पद में अभिषिक्त किया ।३-४। तब मदालसा पुत्र का कामभोग निवृत्त करने की अभिलाषा से शेष वचनों के द्वारा इस प्रकार कहने लगी ।

मदालसा बोली—जब तुमको प्रिय या बन्धु के वियोग का असह्य दुःख प्राप्त हो या शत्रुबाधा अथवा धननाश से दुःख हो ।५-६। हे वत्स ! गृहस्थ सदा ही ममतापरायण है, इसलिए स्वाभाविक ही दुःख का आस्पद स्वरूप है। इसी कारण कहती हूँ कि, गृहस्थ धर्मावलम्बी होकर राज्य शासन करते-करते दुःसह दुःख उपस्थित हो, उस समय मेरी दी हुई इस अंगुली से पत्र बाहर करके इसके मध्यस्थ सूक्ष्माक्षरों से लिखित शासन पाठ करना ।७-८

जड ने कहा—मदालसा ने इस प्रकार कहकर अपनी सुवर्ण अँगूठी प्रदानपूर्वक पुत्र को गृहस्थ के उपयुक्त आशीर्वाद दिया ।९। तदनन्तर कुवलयाश्व पुत्र को राज्यप्रदान पूर्वक तपस्यार्थ देवी मदालसा के सहित वन में चले गये ।१०

श्री मार्कण्डेयपुराण के मदालसोपाख्यान वर्णन में तैंतीसवां अध्याय समाप्त ।३३।

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

३८

दत्तात्रेयवर्णनम्

जड उवाच

दत्तात्रेयं ततो विप्रं प्रणिपत्य स पार्थिवः । प्रत्युवाच महात्मानं प्रश्रयावनतो वचः ॥१
सम्यक्प्रपश्यतो ब्रह्मन्मम दुःखं न किञ्चन । असम्यग्दर्शिनो मग्नाः सर्वदैवासुखार्णवे ॥२
यस्मिन्यस्मिन्ममत्वेन बुद्धिः पुंसः प्रजायते । ततस्ततः समादाय दुःखान्येव प्रयच्छति ॥३
मार्जारभक्षिते दुःखं यादृशं गृहकुक्कुटे । न तादृङ्ममताशून्ये कलविङ्केऽथ मूषिके ॥४
सोऽहं न दुःखी न सुखी यतोऽहं प्रकृतेः परः । यो भूताभिभवो भूतैः सुखदुःखात्मको हि सः ॥५

दत्तात्रेय उवाच

एवमेतन्नरव्याघ्र यथैतद्व्याहृतं त्वया । ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति च निर्वृतिः ॥६
मत्प्रश्नादेव तं ज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम् । ममेति प्रत्ययो येन क्षिप्तः शाल्मलितूलवत् ॥७
अहमित्यङ्कुरोत्पन्नो ममेति स्कन्धवान्महान् । गृहक्षेत्रोच्चशाखश्च पुत्रदारादिपल्लवः ॥८
धनधान्यमहापत्रो नैककालप्रवर्धितः । पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्च सुखदुःखमहाफलः ॥९

अध्याय ३५

दत्तात्रेय का वर्णन

जड ने कहा—अनन्तर नरपति विनय से नम्र हो महात्मा विप्र दत्तात्रेय को प्रणाम करके कहने लगे ।१। हे ब्रह्मन् ! सम्यक् प्रकार दृष्टि का उदय होने से मुझको अब कुछ भी दुःख नहीं है । असम्यक् दर्शी मनुष्य ही सदा दुःख सागर में निमग्न होते हैं ।२। मनुष्य की बुद्धि जिस-जिस में आसक्त हो जाती है उसी-उसी विषय में दुःख उत्पन्न होता है ।३। घर के पाले हुए मुरगे को बिल्ली के भक्षण करने पर जिस प्रकार दुःख का उदय होता है ममताशून्य कलविङ्क वा मूषक भक्षित होने पर वैसे दुःख की संभावना नहीं है, क्योंकि ममता तो मुरगे में रहती है ।४। मैं सुखी भी नहीं और दुःखी भी नहीं हूँ क्योंकि मैं प्रकृति के अतीत हूँ भूतगण के द्वारा भूताभिभव ही सुखदुःखात्मक है अर्थात् जो इस संसार में आसक्त रहता है उसी को सुख दुःख होता है ।५

दत्तात्रेय ने कहा—हे नरव्याघ्र ! तुमने जो कहा यह सत्य है ममता ही दुःख का कारण और ममता ही सुख का मूल है ।६। मेरे पूछते ही तुम्हारे हृदय में इस अनुत्तम ज्ञान का उदय हुआ है । इस ज्ञान के बल से ही तुम्हारी ममता रुई के समान उड़ गई है ।७। अहंकाररूपी अंकुर से ही अज्ञानरूपी महावृक्ष की उत्पत्ति हुई है, ममत्व उस वृक्ष का स्कन्ध है, गृह क्षेत्र उसकी उच्चशाखा, स्त्री पुत्रादि उसके पल्लव हैं ।८। धन-धान्य उसके बृहत् पत्र, पुण्यापुण्य प्रधान कुसुम, सुखदुःख उसका महाफल ।९। और मोहाभिभूत

अपवर्गपथव्यापी मूढसम्पर्कसेचनः । विधित्साभृङ्गमालाढचोऽकृत्यज्ञानमहातरुः ॥१०
संसाराध्वपरिश्रान्ता ये तच्छायां समाश्रिताः । भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यन्तिकं कुतः ॥११
यैस्तु सत्सङ्गपाषाणशितेन ममतातरुः । छिन्नो विद्याकुठारेण ते गतास्तेन वर्त्मना ॥१२
प्राप्य ब्रह्मवनं शीतं नीरजस्कमकण्टकम् । प्राप्नुवन्ति परां प्राज्ञा निर्वृतिं वृत्तिवर्जिताः ॥१३
भूतेन्द्रियमयं स्थूलं न त्वं राजन्न चाप्यहम् । न तन्मात्रं मया वाच्यं नैवान्तः करणात्मकौ ॥१४
कं वा पश्यामि राजेन्द्र प्रधानमिदमावयोः । यतः परो हि क्षेत्रज्ञसंघातो हि गुणात्मकः ॥१५
मशकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भसां यथा । एकत्वेऽपि पृथग्भावस्तथा क्षेत्रात्मनोर्नृप ॥१६

अलर्क उवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन ममाविर्भूतमुत्तमम् । ज्ञानं प्रधानचिच्छक्तिविवेककरमीदृशम् ॥१७
किन्त्वत्र विषयाक्रान्ते स्थैर्यवत्त्वं न चेतसि । न चापि वेद्मि मुच्येयं कथं प्रकृतिबन्धनात् ॥१८
कथं न भूयां भूयश्च कथं निर्गुणतामियाम् । कथं च ब्रह्मणैकत्वं व्रजेयं शाश्वतेन वै ॥१९
तन्मे योगं तथा ब्रह्मन्प्रणतायाभियाचते । सम्यग्ब्रूहि महाप्राज्ञ सत्सङ्गो ह्युपकृन्नृणाम् ॥२०

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयालर्कसंवादे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः ।३५।

होकर जो सम्यक् सम्बन्ध किया जाता है वही इस वृक्ष का थांवला है वह वृक्ष दिन में बढ़ता है और यह वृक्ष ही मुक्तिमार्ग को ढककर स्थित है यह वृक्ष बनाये रखने की कामनारूप भृङ्गमाला से समाकीर्ण है ।१०। जो पुरुष संसार पथ में थक गये हैं और भ्रान्तिज्ञान सुख के अधीन हो इस वृक्ष की छाया का आश्रय करते हैं उनको किस प्रकार मोक्ष लाभ होगा ।११। जो पुरुष विद्यारूपी कुठार को सत्संगरूपी पत्थर के द्वारा तेज करके उससे ममता वृक्ष के छेदन करने में समर्थ होते हैं ।१२। वही उस मार्ग द्वारा ब्रह्मरूप वन में उपस्थित होते हैं यह वहअतिशय शीतल, रजोविहीन और कंटकविहीन है इस वन में उपस्थित होने से वृत्तरहित होकर परम बुद्धि और निर्वृत्तलाभ होता है ।१३। हे भूपते ! तुम भी भूतेन्द्रियमय वा स्थूल नहीं हो और मैं भी नहीं हूँ । हम दोनों कोई भी तन्मात्र नहीं और अन्तःकरणात्मक भी नहीं है । हे राजेन्द्र ! हम दोनों में किसी को भी प्रधान अर्थात् प्रकृतिमय देखते हो ? क्योंकि क्षेत्रज्ञ पुरुष, प्रकृति के अतीत और पाँच भौतिक पदार्थ ही गुणात्मक और प्रकृति का विषयीभूत है ।१४-१५। हें राजन् ! मशक और गूलर अर्थात् गूलर में मच्छर, इषीका (सींक) और मुंज तथा मछली और जल यह जिस प्रकार एक होकर भी पृथक् भावयुक्त हैं, क्षेत्र और आत्मा को भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।१६

अलर्क ने कहा—हे भगवन् ! आप के प्रसाद से मुझको प्रधान और चिच्छक्ति का विवेक करने वाला अनुत्तम ज्ञान का उदय हुआ ।१७। किन्तु मेरा चित्त विषयों में खींचा रहने से स्थिरता धारण नहीं कर सकता और किस प्रकार प्रकृति के बंधन से छूटूंगा, यह भी नहीं जान सकता ।१८। किस प्रकार से फिर पुनर्जन्म ग्रहण करना न हो ? किस प्रकारसे निर्गुणत्व प्राप्त हो, किस प्रकार के अनुष्ठान से शाश्वत ब्रह्म के सहित एकता प्राप्त हो।१९। ऐसे योग का मुझको सम्यक् प्रकारसे उपदेश कीजिये। हे महाप्राज्ञ! मैं प्रणत होकर आपके निकट प्रार्थना करता हूँ । सत्संग ही मनुष्य का उपकारसाधन करता है।२०

श्रीमार्कण्डेयपुराण में दत्तात्रेयअलर्क वर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३५।

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

योगनिरूपणवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

ज्ञानपूर्वो वियोगो योऽज्ञानेन सह योगिनः । सा मुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यमनैक्यं प्राकृतैर्गुणैः ॥१
योगे च शक्तिर्विदुषां येन श्रेयः परं भवेत् । मुक्तिर्योगात्तथा योगः सम्यग्ज्ञानान्महीपते ॥
सङ्गदोषोद्भवं दुःखं ममत्वासक्तचेतसाम् ॥२
तस्मात्सङ्गं प्रयत्नेन मुमुक्षुः संत्यजेन्नरः । सङ्गाभावे ममेत्यस्याः ख्यातेर्हानिः प्रजायते ॥३
निर्ममत्वं सुखायैव वैराग्याद्दोषदर्शनम् । ज्ञानादेव च वैराग्यं ज्ञानं वैराग्यपूर्वकम् ॥४
तद्गृहं यत्र वसतिस्तद्भोज्यं येन जीवति । यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानमज्ञानमन्यथा ॥५
उपभोगेन पुण्यानामपुण्यानां च पार्थिव । कर्त्तव्यमिति नित्यानामकामकरणात्तथा ॥६
असञ्चयादपूर्वस्य क्षयात्पूर्वार्जितस्य च । कर्मणो बन्धमाप्नोति शरीरं च पुनः पुनः ॥७
कर्मणा मोक्षमाप्नोति वैपरीत्येन तस्य तु । एतत्ते कथितं ज्ञानं योगं चेमं निबोध मे ॥
यं प्राप्य ब्रह्मणो योगी शाश्वतान्नान्यतां व्रजेत् ॥८

अध्याय ३६

योगनिरूपण नामक वर्णन

दत्तात्रेय ने कहा—योगारूढ पुरुषों का ज्ञानलाभ के द्वारा अज्ञान से जो वियोग होता है, उसी को मुक्ति कहा जाता है और प्राकृतिक गुणों के सहित अनैक्य ही साक्षात् ब्रह्म के सहित एकता कही गई है।१। हे महीपते ! योग से मोक्ष, सम्यक् ज्ञान से योग, दुःख से सम्यक् ज्ञान और ममतासक्त चित्त से ही दुःख का आविर्भाव होता है।२। अतएव मुमुक्ष पुरुष यत्नसहित संग परित्याग करें। विषयासक्ति छोड़ते ही "मेरा" यह ज्ञान दूर हो जाता है।३। निर्ममता ही सुख का कारण और वैराग्य का संचार होने पर संसार के समस्त दोष स्पष्टरूपसे[1] हृदयङ्गम कर सकता है। ज्ञान से जिस प्रकार वैराग्य का उदय होता है, वैराग्य से भी इसी प्रकार ज्ञान का आविर्भाव होता है।४। जिस स्थान में वास किया जाय उसी को गृह, जिसके द्वारा जीवन धारण किया जाय उसी को भोज्य, जिसके द्वारा मोक्ष लाभ हो उसी को ज्ञान और इसके अन्यथा होने से उसको अज्ञान कहा जाता है।५। हे पार्थिव ! पुण्यापुण्य का उपभोग होने से कामनाविहीन होकर नित्यंक्रिया का अनुष्ठान करने पर।६। पूर्वोपार्जित कर्म का क्षय होने पर और अपूर्व कर्म का असंचय होने से ही बार-बार शरीरबंधन प्राप्त नहीं होता। हे राजन् ! यह जो तुम्हारे निकट वर्णन किया इसी को योग कहते हैं। इस योग के लाभ होते ही योगिजन शाश्वत ब्रह्म के अतिरिक्त और किसी को भी आश्रय नहीं करते।७-८। सबसे पहले आत्मा के द्वारा आत्मा को जय करना चाहिये।

---

१. दोष—अर्थात् संसार की असारता और अनित्यादि।

प्रागेवात्मात्मना जेयो योगिनां स हि दुर्जयः । कुर्वीत तज्जये यत्नं तस्योपायं शृणुष्व मे ॥९
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् । प्रत्याहारेण विषयान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥१०
यथा पर्वतधातूनां ध्मातानां दह्यते मलम् । तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात् ॥११
प्रथमं साधनं कुर्यात्प्राणायामस्य योगवित् । प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः ॥१२
लघुमध्योत्तरीयाख्यः प्राणायामस्त्रिधोदितः । तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि तदलर्क शृणुष्व मे ॥१३
लघुर्द्वादशमात्रस्तु द्विगुणः स तु मध्यमः । त्रिगुणाभिस्तु मात्राभिरुत्तमः परिकीर्त्तितः ॥१४
निमेषोन्मेषणे मात्रा कालो लघ्वक्षरस्तथा । प्राणायामस्य संख्यार्थं स्मृतो द्वादशमात्रिकः ॥१५
प्रथमेन जयेत्स्वेदं मध्यमेन च वेपथुम् । विषादं हि तृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात् ॥१६
मृदुत्वं सेव्यमानास्तु सिंहशार्दूलकुञ्जराः । यथा यान्ति तथा प्राणो वश्यो भवति योगिनः ॥१७
वश्यं मत्तं यथेच्छातो नागं नयति हस्तिपः । तथैव योगी छन्देन प्राणं नयति साधितम् ॥१८
यथा हि साधितः सिंहो मृगान्हन्ति न मानवान् । तद्वन्निषिद्धपवनः किल्बिषं न नृणां तनुम् ॥१९
तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत् । श्रूयतां मुक्तिफलदं तस्यावस्थाचतुष्टयम् ॥२०

क्योंकि यह आत्मा ही योगियों को दुर्ज्ञेय है। इसलिए उसके जीतने में यत्नवान् होना उचित है। जिस प्रकार आत्मा को जीतना चाहिए वह कहता हूँ सुनो।९। दोषों को प्राणायाम द्वारा, पापों को धारणा द्वारा, विषयों को प्रत्याहार द्वारा और समस्त अनीश्वर गुणों को ध्यान द्वारा दग्ध करे।१०। जिस प्रकार दहनद्वारा पर्वत की समस्त धातु निर्दोषता को प्राप्त होती हैं इसी प्रकार प्राणवायु को निगृहीत करने से ही इन्द्रिय कृत समस्त दोष दग्ध होते हैं।११। योगवित् पुरुष प्रथम प्राणायाम का साधन करे। प्राण और अपान इन दोनों वायु का निरोध ही प्राणायाम कहा गया है।१२। प्राणायाम तीन प्रकार का है, लघु मध्यम और उत्तरीय। हे अलर्क ! इन तीनों प्राणायाम का प्रमाण कहता हूँ सुनो।१३। लघुप्राणायाम द्वादशमात्रायुक्त, मध्यम उससे द्विगुण और उत्तम वा उत्तरीय प्राणायाम उससे त्रिगुण मात्रायुक्त कहा गया है।१४। निमेष और उन्मेष इन दोनों का समय ही मात्रा का काल कहकर निर्दिष्ट है अर्थात् यही एक मात्रा है। इस प्रकार द्वादश मात्रा होने से ही लघुप्राणायाम होता है।१५। प्रथम प्राणायाम द्वारा स्वेद (पसीना) दूसरे के द्वारा वेपथु अर्थात् कम्प, और तीसरे प्राणायाम द्वारा यथाक्रम से विषादादि दोषों को: जीतना चाहिए।१६। सिंह व्याघ्र और हाथी जिस प्रकार सेवा द्वारा मृदुत्व (कोमलता) को प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार प्राण और प्राणायाम द्वारा योगियों में वशता प्राप्त होती है।१७। हाथीवान् जिस प्रकार वशीभूत मत्त हाथी को अपनी इच्छानुसार चलाता है योगिजन भी इसी प्रकार प्राण साधित होने पर उसके द्वारा सहज में ही अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं।१८। साधित सिंह जिस प्रकार मृगगणों को निहत करता है किन्तु मनुष्यादि को नहीं मारता। इसी प्रकार प्राणवायु की साधना करने से पाप ही नष्ट होते हैं शरीर नष्ट नहीं होता।१९। अत एव योगी पुरुष सदा प्राणायाम परायण होने में यत्नवान् हो। प्राणायाम की अवस्था चार प्रकार की है, उसके द्वारा मुक्तिफल प्राप्त हो जाता है, अब वही कहता

ध्वस्तिः प्राप्तिस्तथा संवित्प्रसादश्च महीपते । स्वरूपं शृणु चैतेषां कथ्यमानमनुक्रमात् ॥२१
कर्मणामिष्टदुष्टानां जायते फलसंक्षयः । चेतसोऽपकषायत्वं यत्र सा ध्वस्तिरुच्यते ॥२२
ऐहिकामुष्मिकान्कामाँल्लोभमोहात्मकान्स्वयम् । निरुध्यास्ते सदा योगी प्राप्तिः सा सार्वकालिकी ॥२३
अतीतानागतानर्थान्विप्रकृष्टतिरोहितान् । विजानातीन्दुसूर्यर्क्षग्रहाणां ज्ञानसम्पदा ॥२४
तुल्यप्रभावस्तु यदा योगी प्राप्नोति संविदम् । तदा संविदिति ख्याता प्राणायामस्य सा स्थितिः ॥२५
यान्ति प्रसादं येनास्य मनः पञ्च च वायवः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स प्रसाद इति स्मृतः ॥२६
शृणुष्व च महीपाल प्राणायामस्य लक्षणम् । युञ्जतश्च सदा योगं यादृग्विहितमानसम् ॥२७
पद्ममर्द्धासनं चापि तथा स्वस्तिकमासनम् । आस्थाय योगं युञ्जीत कृत्वा च प्रणवं हृदि ॥२८
समः समासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ । संवृतास्यस्तथैवोरू सम्यग्विष्टभ्य चाग्रतः ॥२९
पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणावस्पृशन्प्रयतः स्थितः । किंचिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ॥३०
संपश्यन्नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् । रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा ॥३१
संछाद्य निर्मले सत्त्वे स्थितो युञ्जीत योगवित् । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन्मन एव च ॥३२
निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् । यस्तु प्रत्याहरेत्कामान्सर्वाङ्गानीव कच्छपः ॥३३

हूं, सुनो ।२०। हे महीपते ! प्राणायाम चार प्रकार का है । ध्वस्ति, प्राप्ति, संवित् और प्रसाद । अब क्रमानुसर इनका स्वरूप वर्णन करता हूँ सुनो ।२१। जिस अवस्था में दुष्ट और अदुष्ट समस्त कर्मों का फल क्षय को प्राप्त हो और चित्त की मलीनता दूर हो जाय, उसको ध्वस्ति कहते हैं ।२२। योगी पुरुष जिस अवस्था में लोभ मोहात्मक ऐहिक और आमुष्मिक समस्त काम को निरंतर स्वयं निरुद्ध करते हैं, उस अवस्था को प्राप्ति कहा गया है।२३। योगिजन जिस अवस्था में ज्ञानसम्पत्तिवशतः चन्द्र सूर्य और ग्रह नक्षत्र की सदृश ज्ञान शक्ति को प्राप्त होकर।२४। अतीत, अनागत और तिरोहित यह दूरस्थ सब विषय जान सकते हैं, उसी अवस्था को संवित् कहा जाता है।२५। जिस अवस्था द्वारा योगी का चित्त, पंचवायु, इन्द्रिय, इन्द्रियों के विषयसमूह से शुद्धिलाभ करता है, उसी अवस्था को प्रसाद कहते हैं।२६। हे महीपाल ! अब प्राणायम के लक्षण और योग के आरंभ में जिस प्रकार आसन का अनुष्ठान करना चाहिए वह सुनो ! पद्मासन, अर्द्धासन, स्वस्तिकासन इत्यादि आसनावलम्बनपूर्वक हृदय में प्रणवजप करके योगानुष्ठान में प्रवृत्त होवे ।२७-२८। सरलभाव से सम आसन में बैठकर दोनों चरणों को सकोड़ मुख को मूँद और दोनों उरु सम्यक् प्रकार से अग्रभाग में विष्टब्ध (स्तब्ध) करके ।२९। संयुक्त मन से इस प्रकार स्थित होना चाहिये कि, जिससे हस्त द्वारा लिंग और अंडकोष का (स्पर्श) न हो उसी समय शिर कुछेक ऊपर को उठा हो और दाँतों का स्पर्श न करे ।३०। और केवल मात्र अपनी नासिका के अग्रभाग में दृष्टि रखे, अन्य किसी ओर न देखे । इसी अवस्था में योगवित् पुरुष रजोगुण द्वारा तामसी वृत्ति का और सत्त्वगुण द्वारा राजसिक वृत्तिका ।३१। विनाश करके केवल मात्र निर्मल तत्त्व में अवस्थान पूर्वक योगाभ्यास में नियुक्त हो इन्द्रिय के विषय एवं मन और प्राणादि को ।३२। निगृहीत करके कच्छप जिस प्रकार अपने समस्त अंगों को सकोड़ लेता है इसी प्रकार प्रत्याहार में प्रवृत्त होना चाहिये ।३३। इस प्रकार से कामसमूह को प्रत्याहरण-

सदात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि । स बाह्याभ्यन्तरं शौचं निष्पाद्याकण्ठनाभितः ।।३४
पूरयित्वा बुधो देहं प्रत्याहारमुपक्रमेत् । प्राणायामा दश द्वौ च धारणा साभिधीयते ।।३५
द्वे धारणे स्मृते योगे योगिभिस्तत्त्वदृष्टिभिः । तथा वै योगयुक्तस्य योगिनो नियतात्मनः ।।३६
सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति स्वस्थश्चैवोपजायते । वीक्षते च परं ब्रह्म प्राकृतांश्च गुणान्पृथक् ।।३७
व्योमादिपरमाणूंश्च तथात्मानमकल्मषम् । इत्थं योगी यताहारः प्राणायामपरायणः ।।३८
जितां जितां शनैर्भूमिमारोहेत यथा गृहम् । दोषान्व्याधींस्तथा मोहमाक्रान्ता भूरनिर्जिता ।।३९
विवर्धयति नारोहेत्तस्माद्भूमिमनिर्जिताम् । प्राणानामुपसंरोधात्प्राणायाम इति स्मृतः ।।४०
धारणेत्युच्यते चेयं धार्यते यन्मनो यया । शब्दादिभ्यः प्रवृत्तानि यदक्षाणि यतात्मभिः ।।४१
प्रत्याह्रियन्ते योगेन प्रत्याहारस्ततः स्मृतः । उपायश्चात्र कथितो योगिभिः परमर्षिभिः ।।४२
येन व्याध्यादयो दोषा न जायन्ते हि योगिनः । यथा तोयार्थिनस्तोयं यन्त्रनालादिभिः शनैः ।।४३
आपिबेयुस्तथा वायुं पिबेद्योगी जितश्रमः । प्राङ्नाभ्यां हृदये चाथ तृतीये च तथोरसि ।।४४
कण्ठे मुखे नासिकाग्रे नेत्रभ्रूमध्यमूर्द्धसु । किञ्च तस्मात्परस्मिंश्च धारणा परमा स्मृता ।।४५
दशैता धारणाः प्राप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् । नाध्मातः क्षुधितः श्रान्तो न च व्याकुलचेतनः ।।४६

पूर्वक केवल मात्र आत्मा में ही सदा आसक्त होकर स्थित रहने से आत्मा द्वारा आत्मा का दर्शन प्राप्त हो जाता है । विचक्षण योगी कंठ से नाभिदेशपर्यन्त बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धिविधानपूर्वक ।३४। देह परिपूर्ण करके प्रत्याहार साधन करे । प्राणायाम दशविध और धारणा दो प्रकार कही गई है ।३५। तत्त्वदर्शी योगिजनों के योगाभ्यास में दो ही प्रकार की धारणा का निर्देश किया है । नियतात्मा होकर योगसाधन करने से ।३६। योगी के समस्त दोष प्रशमित होते है, शान्ति प्राप्त होती है, पृथक् रूप से समस्त प्राकृतगुण और परब्रह्म का दर्शनलाभ होता है ।३७। एवं आकाशादि परिमाणु और विशुद्ध आत्मा का साक्षात्कार लाभ किया जाता है । इस प्रकार से योगी नियताहारपूर्वक प्राणायाम में निरत हो ।३८। शनैः शनैः योगभूमि जय करता हुआ अपने घर के समान उसी में आरूढ होवे । इस प्रकार भूमि के विजित न होने से उसके द्वारा कामादि दोष व्याधिसमूह ।३९। और मोह की वृद्धि प्राप्त होती है अत-एव अनिर्जिता भूमि में आरोहण न करे । जिसके द्वारा पञ्च प्राण संयत होते हैं उसी को प्राणायाम कहते हैं ।४०। जिसके द्वारा मन को धारण किया जाय वही धारणा कहाती है और नियतात्मा पुरुष जिस अवस्था में इन्द्रियसमूह को शब्दादि स्व स्व विषय से ।४१। प्रत्याहरण करते हैं उसी को प्रत्याहार कहते हैं । योगसिद्ध ऋषियों ने इस विषय में जो उपाय निरूपण किया है ।४२। उसके द्वारा योगी के शरीर में व्याधि इत्यादि आक्रमण नहीं कर सकती, जलार्थी जिस प्रकार यंत्रनालादि के सहित धीरे-धीरे जलपान करते हैं ।४३। योगी पुरुष भी उसी प्रकार श्रम जीतकर वायुपान करते है । प्रथम नाभि में, फिर हृदय में, फिर वक्षस्थल में ।४४। फिर कंठ में, वदन में, नासाग्र में, लोचनमें, भ्रूमें, ऊर्ध्वप्रदेश में और अन्त को उस परब्रह्म में धारणा[1] करनी चाहिये ।४५। धारणा यह दशविध कहकर निर्दिष्ट है इन दश प्रकार की

---

१. मन की धारणा करना अर्थात् स्वपद में रखकर आत्मदर्शन करना ।

युञ्जीत योगं राजेन्द्र योगी सिद्ध्यर्थमादृतः । नातिशीते न चोष्णे वै न द्वन्द्वे नानिलात्मके ॥४७
कालेष्वेतेषु युञ्जीत न योगं ध्यानतत्परः । स शब्दाग्निजलाभ्याशे जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ॥४८
शुष्कपर्णचये नद्यां श्मशाने ससरीसृपे । सभये कूपतीरे वा चैत्यवल्मीकसञ्चये ॥४९
देशेष्वेतेषु तत्त्वज्ञो योगाभ्यासं विवर्जयेत् । सत्त्वस्यानुपपत्तौ च देशकालं विवर्जयेत् ॥५०
नासतो दर्शनं योगे तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । दोषानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति वै ॥५१
विघ्नाय तस्य वै दोषा जायन्ते तन्निबोध मे । बाधिर्यं जडता लोपः स्मृतेर्मूकत्वमन्धता ॥५२
ज्वरश्च जायते सद्यस्तत्तदज्ञानयोगिनः । प्रमादाद्योगिनो दोषा यद्येते स्युश्चिकित्सितम् ॥५३
तेषां नाशाय कर्त्तव्यं योगिनां तन्निबोध मे । स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रैव धारयेत् ॥५४
वातगुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्त्ते तथोदरे । यवागूं वापि पवनं वायुग्रन्थिं प्रतिक्षिपेत् ॥५५
तद्वत्कम्पे महाशैलं स्थिरं मनसि धारयेत् । विघाते वचसो वाचं बाधिर्ये श्रवणेन्द्रियम् ॥५६
यथैवाम्रफलं ध्यायेत्तृष्णार्त्तो रसनेन्द्रियम् । यस्मिन्यस्मिन्रुजा देहे तस्मिंस्तदुपकारिणीम् ॥५७
धारयेद्धारणामुष्णे शीतां शीते च दाहिनीम् । कीलं शिरसि संस्थाप्य काष्ठं काष्ठेन ताडयेत् ॥५८

धारणासिद्धि से ब्रह्मसारूप्यलाभ होता है । हे राजेन्द्र ! योगी पुरुष सिद्धिलाभार्थ अधिक भाषण, क्षुधा, थकावट और चित्त की चंचलता ।४६। दूर करके यत्नपूर्वक योगाभ्यास में प्रवृत्त हों । अतिशीत और अतिग्रीष्म के समय एवं अति वायुवहनकाल में ।४७। ध्यानतत्पर होकर योगाभ्यास नहीं करना चाहिए । सशब्द स्थान में अग्नि और जल के निकट पुरानी गोशाला में, चौराहे में ।४८। सूखे पत्तों से पूर्ण स्थान में, नदीतट में श्मशान सर्पादि से युक्त स्थान में कूपतीर में, चैत्यवृक्ष में और वल्मीकसमूह के टीले में ।४९। तत्त्ववित् पुरुष योगाभ्यास न करे । सात्त्विकभाव की भलीभाँति सिद्धि न होने पर अर्थात् जिस स्थान में सात्त्विक वस्तु प्राप्त न हो वह देशकाल भी परित्याग करना चाहिए ।५०। और योग में असत् बातों का देखना भी उचित नहीं है अत एव वह वर्जन करे । जो पुरुष मूर्खता के वश होकर इन सब स्थानों का विचार न करके योगाभ्यास का अनुष्ठान करता है ।५१। वह सब दोष उत्पन्न होकर उसके कार्य में विघ्न साधन करते हैं, वह कहता हूँ सुनो—उस योगी को बहरापन, जड़ता, गूँगापन, स्मृतिलोप, अन्धता ।५२। और तत्क्षण ज्वर होता है। प्रमादवश इन सब दोषों का आविर्भाव होने पर उनकी शान्ति के लिये जिस प्रकार से चिकित्सा करे ।५३। वह भी सुनो ! भली भाँति उष्ण किया हुआ यवागू स्निग्ध करके भक्षणपूर्वक उदर में धारण करे ।५४। वात गुल्म और अफरा तथा उदररोग शान्त होने के लिये यवागू अवश्य भक्षण करे । इसका भक्षण करने से वायु और वायुग्रंथिरोग भी नष्ट होता है ।५५। और कंप होने पर मन में बड़े बोझ का पर्वत धारण करे अर्थात् मन के चंचल होने पर प्रलयकालीन स्थिर महाशैल की धारणा करे वाक्यशक्ति विलुप्त होने से वाक्यधारणा करनी चाहिए और श्रवणशक्ति के नष्ट होने पर ।५६। तृष्णार्त्त पुरुष जिस प्रकार रसनेन्द्रिय में लाभ होने की चिन्ता करता है ऐसे ही श्रवणेन्द्रिय की धारणा करता रहे इस प्रकार जिस-जिस देह में व्याधि उपस्थित हो उस देह में ही तदुपकारिणी धारणा धारण करे ।५७। उष्ण में शीतल धारणा और शीतल में उष्ण धारणा का अनुगामी होना चाहिए शिर में सूक्ष्म कीलक का स्थापन पूर्वक काष्ठ द्वारा उस कीलककाष्ठ को ठोकने से ।५८। लुप्तस्मृति रोगी

लुप्तस्मृतेः स्मृतिः सद्यो योगिनस्तेन जायते। द्यावापृथिव्यौ वाय्वग्नी व्यापिनावपि धारयेत् ॥५९
अमानुषात्सत्त्वजाद्वा बाधास्त्विति चिकित्सितम्। अमानुषं सत्त्वमन्तर्योगिनं प्रविशेद्यदि ॥६०
वाय्वग्निंधारणेनैनं देहसंस्थं विनिर्दहेत्। एवं सर्वात्मना रक्षा कार्या योगविदा नृप ॥६१
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः। प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्योगिनो विस्मयात्तथा॥
विज्ञानं विलयं याति तस्माद्गोप्याः प्रवृत्तयः ॥६२

अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम्।
कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च योगप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम् ॥६३

अनुरागं जनो याति परोक्षे गुण कीर्तिनम्। न बिभ्यति च सत्त्वानि सिद्धेर्लक्षणमुत्तमम् ॥६४
शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्य बाधा न विद्यते। न भीतिमेति चान्येभ्यस्तस्य सिद्धिरुपस्थिता ॥६५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे जडोपाख्याने योगनिरूपणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः। ३६।

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

योगसिद्धिवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

उपसर्गाः प्रवर्तन्ते दृष्टे ह्यात्मनि योगिनः। ये तांस्ते सम्प्रवक्ष्यामि समासेन निबोध मे ॥१

की तत्काल स्मृतिशक्ति का फिर उदय होता है अथवा स्मृतिशक्ति विलुप्त होने से आकाश, पृथ्वी, वायु और अग्नि की धारणा करे।५९। अमानुष सत्त्व के जनित विघ्नसमूह में चिकित्सा इस प्रकार निर्दिष्ट है योगियों के हृदय में अमानुष सत्त्व के प्रविष्ट होने पर।६०। वायु और अग्नि की धारणा से उसको दग्ध करे। हे नृपते! इस प्रकार सर्वान्तःकरण से शरीर का रक्षाविधान करना योगिवत् पुरुष को उचित है।६१। क्योंकि शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्ग के साधन का मूल है प्रवृत्ति स्वरूप वर्णन और विस्मय इन दो कारणों से ही योगी का विज्ञान नष्ट हो जाता है। इसी कारण प्रवृत्ति गुप्त रखे।६२। अचंचलता, आरोग्यता, अनिष्ठुरता, देह में सुगंधि का संचार, मूत्र और पुरीष की अल्पता, कान्ति, प्रसाद और मधुर स्वर, यह सब योगप्रवृत्ति के प्रथम चिह्न हैं।६३। जिस अवस्था में मनुष्य अनुरागी होकर परोक्ष में अर्थात् पीछे गुणों का कीर्त्तन करें और किसी जीव को भय प्राप्त न हो, उसी समय सिद्धि का उत्तम लक्षण समझना चाहिए।६४। अत्यन्त उग्र शीत और उष्णादि जिसको बाधा देने में समर्थ न हों, तथा दूसरे से जिसको भय का संचार न हो, उसी को सिद्धि लाभ हुई जाने।६५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में योगनिरूपण नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।३६।

अध्याय ३७

योगसिद्धि का वर्णन

दत्तात्रेय ने कहा—आत्मा का दर्शन होने पर योगियों को जो सब उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वह संक्षेप से कहता हूँ सुनो।१। उस समय नाना प्रकार की काम्य क्रिया और मानसोचित नाना भाँति के भोग

काम्याः क्रियास्तथा कामान्मानुषानभिवाञ्छति । स्त्रियो दानफलं विद्यां मायां कुप्यं धनं दिवम् ॥२
देवत्वममरेशत्वं रसायनवयः क्रियाम् । मरुत्प्रपतनं यज्ञं जलाग्न्यावेशनं तथा ॥३
श्राद्धानां सर्वदानानां फलानि नियमांस्तथा । तथोपवासात्पूर्त्ताच्च देवताभ्यर्चनादपि ॥४
तेभ्यस्तेभ्यश्च कर्मभ्य उपसृष्टोऽभिवाञ्छति । चित्तमित्थं वर्तमानं यत्नाद्योगी निवर्तयेत् ॥५
ब्रह्मसङ्गिमनः कुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते । उपसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततः पुनः ॥६
योगिनः संप्रवर्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः। प्रातिभः श्रावणो दैवो भ्रमावर्त्तौ तथापरौ ॥७
पञ्चैते योगिनां योगविघ्नाय कटुकोदयाः । वेदार्थाः काव्यशास्त्रार्था विद्याशिल्पान्यशेषतः ॥८
प्रतिभान्ति यदस्येति प्रातिभिः स तु योगिनः । शब्दार्थानखिलान्वेत्ति शब्दं गृह्णाथ चैव यत् ॥९
योजनानां सहस्रेभ्यः श्रावणः सोऽभिधीयते । समन्ताद्वीक्षते चाष्टौ स यदा देवयोनयः ॥१०
उपसर्गं तमप्याहुर्दैवमुन्मत्तवद्बुधाः । भ्राम्यते यन्निरालम्बं मनोदोषेण योगिनः ॥११
समस्ताचारविभ्रंशाद् भ्रमः स परिकीर्तितः । आवर्त इव तोयस्य ज्ञानावर्त्तो यदाकुलः ॥१२
नाशयेच्चित्तमावर्त उपसर्गः स उच्यते । एतैर्नाशितयोगास्तु सकला देवयोनयः ॥१३
उपसर्गैर्महाघोरैरावर्तन्ते पुनः पुनः । प्रावृत्य कम्बलं शुक्लं योगी तस्मान्मनोमयम् ॥१४
(शरीरमण्डले दृष्ट्वा गुरुज्ञानं ततो हि यत् । ज्ञानपूर्वोपि यो योगो ज्ञातव्यो वै विपश्चिता) ॥१५

भोगने की इच्छा होती है। स्त्री, दान, फल, विद्या, माया, कूप्य (कूप का जल), धन, स्वर्ग ।२। अमरत्व, देवेन्द्रत्व, नाना प्रकार रसायन, वायु भरे (स्थान में कूदना), यज्ञ, जल और अग्नि में प्रवेश ।३। समस्त श्राद्ध और दानसमूह का फल, तथा नियम इत्यादि विषय में योगी की कामना उदय होती है। उस काल वह उपवास, पूर्त्तादि कर्म, देवतार्चन ।४। जब-जब उस उस कर्म से संलग्न होने की वाञ्छा करे मन के इस प्रकार होने पर योगी तब यत्न सहित उसको उस विषय से निवृत्त करे ।५। इस प्रकार से निवृत्त करके मन को ब्रह्मसाक्षी कर सकने से ही उपसर्ग से मुक्तिलाभ हो जाता है ।६। इन समस्त उपसर्ग के जीतने पर फिर सात्त्विक राजसिक और तामसिक भेद से अपरा पर विघ्न आकर योगी को आक्रमण करते हैं उसमें प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त्त ।७। यह पाँच प्रकार के उपसर्ग योग में विघ्नसाधन करने के लिये भयंकर रूप से आविर्भूत होते हैं-जिसके द्वारा निखिल वेदार्थ समस्त काव्य शास्त्रार्थ यावतीय विद्या और शिल्प ।८। योगी के चित्त में प्रतिभात हो उसको ही प्रातिभ कहते हैं जिसके द्वारा सम्पूर्ण शब्द का अर्थ विदित हो जाय ।९। और सहस्र-सहस्र योजन दूर का शब्द भी श्रवणगोचर हो वही श्रावण कहा गयाहै। जिसके द्वारा मूर्त्तिमान् देवता के समान योगी उन्मत्त के सदृश आठों दिशाओं का दर्शन करता है ।१०। पंडितगण उसी को दैव उपसर्ग कहते हैं। जिसके द्वारा योगी का चित्त सम्पूर्ण आचारभ्रंश के कारण और मन के दोषों के कारण निरालम्बभाव से भ्रमण करता है ।११। उसी को भ्रम कहते हैं जिसके प्रभाव से ज्ञानावर्त्त जलावर्त्त के समान आकुल होकर ।१२। चित्तको विनाश करता है उसी को आवर्त्त उपसर्ग कहते हैं। योगिगण इन समस्त उपसर्गों के प्रभाव द्वारा सब देवयोनि ।१३। और योग से भ्रष्ट होकर बार-बार संसारचक्र में लौटते हैं इसी कारण योगी मनोमय मन के बनाये श्वेत कम्बल से आवृत्त होकर ।१४। (शरीर मंडल में गुरु ज्ञान को अवलोकन करे, कारण कि

चिन्तयेत्परमं ब्रह्म कृत्वा तत्प्रवणं मनः । योगयुक्तः सदा योगी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।।१६
सूक्ष्मास्तु धारणाः सप्त भूराद्या मूर्ध्नि धारयेत् । धरित्रीं धारयेद्योगी तत्सौक्ष्म्यं प्रतिपद्यते ।।१७
आत्मानं मन्यते चोर्वीं तद्गन्धं च जहाति सः । तथैवाप्सु रसं सूक्ष्मं तद्वद्रूपं च तेजसि ।।१८
स्पर्शं वायौ तथा तद्वद्बिभ्रतस्तस्य धारणाम् । व्योम्नः सूक्ष्मां प्रवृत्तिं च शब्दं तद्वज्जहाति सः ।।१९
मनसा सर्वभूतानां मनस्याविशते यदा । मानसीं धारणां बिभ्रन्मनः सूक्ष्मं च जायते ।।२०
तद्वद्बुद्धिमशेषाणां सत्त्वानामेत्य योगवित् । परित्यजति सम्प्राप्य बुद्धिसौक्ष्म्यमनुत्तमम् ।।२१
परित्यजति सूक्ष्माणि सप्त त्वेतानि योगवित् । सम्यग्विज्ञाय योऽलर्क तस्यावृत्तिर्न विद्यते ।।२२
एतासां धारणानां तु सप्तानां सौक्ष्म्यमात्मवान् । दृष्ट्वा दृष्ट्वा ततः सिद्धिं त्यक्त्वा त्यक्त्वा परां व्रजेत् ।।२३
यस्मिन्यस्मिंश्च कुरुते भूते रागं महीपते । तस्मिन्स्तस्मिन्समासक्तिं सम्प्राप्य स विनश्यति ।।२४
तस्माद्विदित्वा सूक्ष्माणि संसक्तानि परस्परम् । परित्यजति यो देही स परं प्राप्नुयात्पदम् ।।२५
एतान्येव तु संधाय सप्त सूक्ष्माणि पार्थिव । भूतादीनां विनाशोऽत्र सद्भावज्ञस्य मुक्तये ।।२६
गन्धादिषु समासक्तिं सम्प्राप्य स विनश्यति । पुनरावर्त्तते भूप स ब्रह्मापरमानुषम् ।।२७
सप्तैता धारणा योगी समतीत्य यदिच्छति । तस्मिन्स्तस्मिँल्लयं सूक्ष्मे भूते याति नरेश्वर ।।२८
देवानामसुराणां वा गन्धर्वोरगरक्षसाम् । देहेषु लयमायाति सङ्गं नाप्नोति च क्वचित् ।।२९

बुद्धिमान् को ज्ञानपूर्वक योग करना जानना चाहिए ।१५।) मन में एक मात्र परब्रह्म की ही चिन्ता कर उनका ही ध्यान करना योगी का कर्त्तव्य है । योगी पुरुष निरन्तर जितेन्द्रिय, लघुभोजी और योगयुक्त होकर ।१६। भूरादि सात प्रकार की सूक्ष्म धारणा मस्तक में धारण करे । वह धरित्री को धारण करे तो उसको उसका सूक्ष्म विदित होगा ।१७। वह आत्मा की इस प्रकार चिन्ता करने से धरित्री का बंधन छेदन करने में समर्थ होगा । इसी प्रकार से जल में सूक्ष्म रस, तेज में रूप ।१८। वायु में स्पर्श और आकाश में सूक्ष्म प्रवृत्ति और शब्दधारणपूर्वक परित्याग करना चाहिये ।१९। जब मन द्वारा समस्त भूत के मन में प्रविष्ट होकर मानसी धारणा की जाय, तब ही सूक्ष्म मन उत्पन्न होता है ।२०। इस प्रकार से योगी पुरुष समस्त भूत की बुद्धि में प्रविष्ट होकर अनुत्तम सूक्ष्मबुद्धिस्वरूपलाभ करके उसको परित्याग करता है ।२१। हे अलर्क ! जो योगी इस सात प्रकार के सूक्ष्म भाव को भलीभाँति जानकर परित्याग करताहै, उसको फिर जन्मग्रहण करना नहीं पड़ता ।२२। आत्मवान् पुरुष इन सात प्रकार की धारणा का सूक्ष्मत्व बार-बार दृष्टिगोचर करके बार-बार सिद्धि विसर्जनपूर्वक परमगति को प्राप्त हो ।२३। हे महीपते ! वह जिस जिस भूत में अनुरागी होता है, उस उस भूत में ही आसक्तिमान् होकर विनाश को प्राप्त होता है ।२४। अत एव जो देही परस्परसंसक्त भूतगण को जानकर परित्याग करता है, वही देही परमपदलाभ करता है ।२५। हे पार्थिव ! यह सप्तविधि सूक्ष्म संधान करके भूतादि में विगत राग हो सकने से ही सद्भावज्ञ पुरुष मुक्ति लाभ करता है।२६। हे राजन् ! गंधादि में आसक्ति प्राप्त होने से ही नष्ट होना पड़ता है और फिर उसको संसार चक्र में लौटना होता है।२७। हे नरेश्वर ! योगी पुरुष इन सात प्रकार की धारणा को अतिक्रम करके गमन करने की इच्छा करने पर उस उस सूक्ष्म भूत में लय को प्राप्त होता है।२८। और देवता, दानव, गंधर्व, पन्नग और राक्षस इनके शरीर में विलीन हो जाता है, किन्तु

अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च । प्राकाम्यं च तथेशित्वं वशित्वं च तथापरम् ॥३०
यत्र कामावसायित्वं गुणानेतांस्तथैश्वरान् । प्राप्नोत्यष्टौ नरव्याघ्र परं निर्वाणसूचकान् ॥३१
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽणीयाञ्छीघ्रत्वं लघिमा गुणः । महिमाऽशेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत्॥३२
प्राकाम्यमस्य व्यापित्वादीशित्वं चेश्वरो यतः । वशित्वाद्वशिमा नाम योगिनः सप्तमो गुणः ॥३३
यत्रेच्छास्थानमप्युक्तं यत्र कामावसायिता । ऐश्वर्यकारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टधा ॥३४
मुक्तिसंसूचकं भूप परं निर्वाणमात्मनः । ततो न जायते नैव वर्द्धते न विनश्यति ॥३५
नापि क्षयमवाप्नोति परिणामं न गच्छति । छेदं क्लेदं तथा दाहं शोषं भूरादितो न च ॥३६
भूतवर्गादवाप्नोति शब्दाद्यैर्ह्रियते न च । न चास्य सन्ति शब्दाद्यास्तद्भोक्ता तैर्न युज्यते ॥३७
यथा हि कानकं खण्डमपद्रव्यवदग्निना । दग्धदोषं द्वितीयेन खण्डेनैक्यं व्रजेन्नृप ॥३८
न विशेषमवाप्नोति तद्वद्योगाग्निना यतिः । निर्दग्धदोषस्तेनैक्यं प्रयाति ब्रह्मणा सह ॥३९
यथाग्निरग्नौ संक्षिप्तः समानत्वमनुव्रजेत् । तदाख्यस्तन्मयो भूतो न गृह्येत विशेषतः ॥४०

किसी में आसक्त नहीं होता ।२९। वह अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, हे नरव्याघ्र ! ।३०। और कामावसायित्व इन अष्टविध निर्वाणप्रद ऐश्वरिक गुणों का अधिकारी होता है ।३१। जिसके द्वारा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर हो सके उसका नाम अणिमा है । जिसके द्वारा क्षिप्रकारिता अर्थात् सब कार्यों में शीघ्रता उत्पन्न हो उसको लघिमा कहते हैं, जिसके द्वारा सबका पूजनीय हो जाय उसका नाम महिमा है । जिसके द्वारा समस्त अभिलषित प्राप्त हो उसको प्राप्ति कहते हैं ।३२। जिसके द्वारा व्याप्तिशक्ति उत्पन्न हो, उसका नाम प्राकाम्य है । जिसके प्रभाव से सब का ईश्वर हो जाय उसको ईशित्व कहते हैं और जिसके प्रभाव से सब वशीभूत हो उसका नाम वशित्व है । यह वशित्व ही योगिजनों का सातवाँ गुण कहा गया है ।३३। जिसके द्वारा अपनी इच्छानुसार जहाँ-तहाँ गमन और इच्छानुसार सब कार्य साधन हो सके उसका ही कामावसायिता है, इन आठ प्रकार गुणों के प्रभाव से ईश्वर के समस्त कार्य करने में समर्थ होता है ।३४। हे राजन् ! यह सब गुण मुक्ति की सूचना कर देते हैं अर्थात् इन सब गुणों के प्रकाशित होने पर ही जानना चाहिए कि योगी शीघ्र ही मुक्तिलाभ करेगा, इसके निर्वाणलाभ होने का समय उपस्थित है, अब उसको जन्मग्रहण करना नहीं पड़ेगा वृद्धि को प्राप्त होना नहीं पड़ेगा, तथा विनष्ट होना भी नहीं पड़ेगा ।३५। क्षय को प्राप्त नहीं होना पड़ेगा और उसका कोई परिणाम भी नहीं होगा उसको फिर कभी भूरादिभूतवर्ग से छिन्न-भिन्न, क्लिन्न (गीला) दग्ध वा शुष्क भी होना नही पड़ेगा ।३६। शब्दादि सब उसको अपहृत करने में समर्थ नहीं होंगें, शब्दादि विषय के संग उसका फिर कोई सबंध नहीं रहता और शब्दादि का भोक्ता भी होना नहीं पड़ता और उनके संग उसका फिर कोई स्पर्श नहीं रहता । हे महीपते ! जिस प्रकार एक स्वर्णखंड को अपद्रव्य के समान बाहर दग्ध करके निर्दोष करने पर अवर एक स्वर्ण खंड के सहित उसका संयोग होता है ।३७-३८। किसी प्रकार उसका प्रभेद दिखाई नहीं देता इसी प्रकार योग अग्नि द्वारा रागद्वेषादिरूप दोषों को भस्म करने से योगी भी ब्रह्म के साथ सम्यक् प्रकार से मिल जाते हैं ।३९। हे राजन् ! जिस प्रकार अग्नि में अग्नि डाली जाय तो वह तुल्यता प्राप्त होती है एवं तदात्मा और तन्मय हो जातीहै और उसका प्रभेद स्थिर नहीं किया जाता ।४०। इसी

परेण ब्रह्मणा तद्वत्प्राप्यैक्यं दग्धकिल्बिषः । योगी याति पृथग्भावं न कदाचिन्महीपते ॥४१
यथा जलं जलेनैक्यं निक्षिप्तमुपगच्छति । तथात्मा साम्यमभ्येति योगिनः परमात्मनि ॥४२

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे योगिसिद्धिर्नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।३७।

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

योगिचर्यावर्णनम्

अलर्क उवाच

भगवन्योगिनश्चर्य्यां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन्यथा योगी न सीदति ॥१

दत्तात्रेय उवाच

मानापमानौ यावेतौ प्रत्युद्वेगकरौ नृणाम् । तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ ॥२
मानापमानौ यावेतौ तावेवाहुर्विषामृते । अपमानोऽमृतं तत्र मानस्तु विषमं विषम् ॥३
चक्षुःपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाणीं बुद्धिपूतं च चिन्तयेत् ॥४
आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु देवयात्रोत्सवेषु च । महाजनेषु सिद्धचर्थं न गच्छेद्योगवित्क्वचित् ॥५
व्यस्ते विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन्भुक्तवज्जने । अटेत योगविद्भैक्ष्यं न तु तेष्वेव नित्यशः ॥६

प्रकार दोषों के दग्ध होने पर जब योगी ब्रह्म के संग एक बार ही संयुक्त होते हैं, तब फिर उनको कभी पृथग्भाव भोगना नहीं पड़ता ।४१। जल जिस प्रकार जल में गिरकर समान भाव धारण करता है, योगी पुरुषों की आत्मा भी वैसे ही परमात्मा में मिलकर साम्यता अर्थात् समानता को प्राप्त होता है ।४२

श्रीमार्कण्डेयपुराण में योगसिद्धिनामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।३७।

अध्याय ३८

योगियों का आचार-वर्णन

अलर्क बोले—हे भगवन् ! योगियों का आचार और जिस प्रकार ब्रह्मपथ के अनुगामी होने से वह नाश को प्राप्त नही होते । वह विषय यथार्थ सुनने की इच्छा करता हूँ ।१

दत्तात्रेय ने कहा—मान और अपमान यह दोनों ही सब की प्रीति और उद्वेग के कारण हैं, यदि यह दोनों योगी के निकट विपरीतार्थ हों अर्थात् अपमान को मान और मान को अपमान समझे तो सिद्धिप्रद होते हैं । मान और अपमान यही दो अमृत और विष कहे गये हैं, उनमें अपमान अमृत और मान ही विषम विष है । योगी भलीभाँति देखकर वैर रखें ।२-३। वस्त्र से छानकर जलपान करें, सदा सत्य से पवित्र हुए वचन कहें और बुद्धिपूर्वक भलीभाँति विचार कर चिन्ता करें ।४। योगवित् पुरुष आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, यात्रा और महोत्सव में कभी न जाय और सिद्धि के लिये महाजनों के निकट जाना भी उचित नहीं है ।५। जिस समय गृहस्थ का घर अग्निविहीन और धूमरहित हो, जब गृहस्थ मनुष्य भोजन करके

यथैवमवमन्यन्ते जनाः परिभवन्ति च । तथा युक्तश्चरेद्योगी सतां वर्त्म न दूषयन् ॥७
भैक्ष्यं चरेद्गृहस्थेषु यायावरगृहेषु च । श्रेष्ठा तु प्रथमा चेति वृत्तिरस्योपदिश्यते ॥८
अथ नित्यं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्यतिः । श्रद्दधानेषु दन्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ॥९
अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेषु च । भैक्ष्यचर्य्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरिष्यते ॥१०
भैक्ष्यं यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव वा । फलं मूलं प्रियङ्गुं वा कणपिण्याकसक्तवः ॥११
इत्येते च शुभाहारा योगिनां सिद्धिकारकाः । तत्प्रयुञ्ज्यान्मुनिर्भक्त्या परमेण समाधिना ॥१२
अपः पूर्वं सकृत्प्राश्य तूर्ष्णीं भूत्वा समाहितः । प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता ॥१३
अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा । उदानाय चतुर्थी स्याद्व्यानायेति च पञ्चमी ॥१४
प्राणायामैः पृथक्कृत्वा शेषं भुञ्जीत कामतः । अपः पुनः सकृत्प्राश्य आचम्य हृदयं स्पृशेत् ॥१५
अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च त्यागोऽलोभस्तथैव च । व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसा परमाणि वै ॥१६
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् । नित्यस्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः ॥१७
सारभूतमुपासीत ज्ञानं यत्कार्यसाधकम् । ज्ञानानां बहुता येयं योगविघ्नकरी हि सा ॥१८
इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत् । अपि कल्पसहस्रेषु नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ॥१९

निश्चिन्त हो, योगी पुरुष नित्य उसी समय भिक्षा के लिये जाये ।६। मनुष्य जिससे तिरस्कार या अपमान करें, ऐसे कार्य का अनुष्ठान पूर्वक साधुजनों की पदवी किसी प्रकार दूषित न करके योगी को भ्रमण करना चाहिए ।७। गृहस्थ पुरुषों के घर से और यायावर पुरुषों के घर से भिक्षा करनी उचित है, किन्तु प्रथमावृत्ति ही प्रधान कही गई है ।८। जो गृहस्थ लज्जावान्, श्रद्धावान्, चतुर, श्रोत्रिय और महात्मा हैं, तथा जो गृहस्थ दूषित और पतित नहीं हैं, उनके घर से ही यतिगण भिक्षा करें, विवर्ण पुरुषों के यहाँ से भिक्षा करने पर उसको जघन्यवृत्ति कहते हैं ।९-१०। यवागू, मठ्ठा, दुग्ध, यावक, कुलथी, फल, मूल, प्रियंगु, कण, पिण्याक और सत्तू, इन सब वस्तुओं की योगी पुरुषों को भिक्षा करनी चाहिए ।११। यह सब वस्तु उनका कल्याणकर और सिद्धिदायक आहार कहकर निर्दिष्ट हैं अत एव परम सावधान और भक्तियुक्त होकर यह सब द्रव्य उपभोग करने चाहिए ।१२। योगी पुरुष भोजन के पूर्व में मौनावलम्बन सहित प्रथमतः एकबार जलपान करके सावधान हो "प्राणाय स्वाहा" इस वाक्य से आहार करें । यही योगियों की प्रथमा आहुति कही गई है ।१३। फिर क्रमानुसार "अपानाय" कहकर दूसरी आहुति, "समानाय" कहकर तीसरी "उदानाय" कहकर चौथी और "व्यानाय" कहकर पाँचवीं आहुति प्रदान करें ।१४। फिर प्राणायाम द्वारा प्रथक् करते हुए अपनी इच्छानुसार शेष भोजन पूर्ण करे, तदनन्तर फिर एकबार जलपान करके आचमन के बाद हृदय को स्पर्श करना चाहिए ।१५। अस्तेय, त्याग, अलोभ और अहिंसा, ये पाँच भिक्षुक के परम व्रत हैं ।१६। और क्रोधशून्यता, गुरुशुश्रूषा, शौच, आहार की लघुता और नित्य वेदाध्ययन ये पाँच उनके नियम कहे गये हैं ।१७। सारस्वरूप कार्यसिद्धि करने वाले ज्ञान की आलोचना करनी ही उचित है, क्योंकि, अनेक प्रकार की ज्ञानविषयक चर्चा करने से योग में विघ्न होता है ।१८। जो योगी "यह ज्ञेय है यह जानना उचित है" कहकर तृषित चित्त से भ्रमण करते हैं सहस्र कल्प में भी उनको ज्ञेय पदार्थ लाभ होने की संभावना नहीं है ।१९। संगपरित्यागपूर्वक जितक्रोध,

त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारी जितेन्द्रियः। विधाय बुद्धया द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत् ॥२०
शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वनेषु च। नित्ययुक्तः सदा योगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत् ॥२१
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः। यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महायतिः ॥२२
सर्वमात्ममयं यस्य सदसज्जगदीदृशम्। गुणागुणमयं तस्य कः प्रियः को नृपाप्रियः ॥२३

विशुद्धबुद्धिः समलोष्ठकाञ्चनः समस्तभूतेषु समः समाहितः।
स्थानं परं शाश्वतमव्ययं च यतिर्हि गत्वा न पुनः प्रजायते ॥२४
वेदाच्छ्रेष्ठाः सर्वयज्ञक्रियाश्च यज्ञाज्जाप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात्।
ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन्प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ॥२५
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः।
समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः ॥२६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगिचर्याकथनं
नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।३८।

लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर बुद्धियोग द्वारा विधान करके चित्त को ध्यान में निमग्न करें।२०। निर्जन प्रदेश गुहा और वन में जाकर नियुक्त हो सर्वदा सम्यक् विधान से ध्यान में निविष्ट होना चाहिए।२१। वाग्दंड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड, यह तीन जिसके वशीभूत हैं उसी को त्रिदण्डी और यह महायति कहा जाता है।२२। जो इस सदसदात्मक गुणागुणमय दृश्यमान जगत् को आत्ममय विचारते हैं हे राजन्! कौन पुरुष उनका प्रिय और कौन पुरुष उनका अप्रिय होता है ?।२३। जो विशुद्धयुक्त, क्या लोहा क्या कंचन दोनों में ही जिसका समान ज्ञान है, और जो पुरुष समस्त भूत में समाहित होकर सर्वाधार शाश्वत अव्यय ब्रह्म को ही सर्वत्र विराजित देखता है, उसको फिर पुनर्जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ता।२४ निखिल वेद और सब प्रकार की यज्ञक्रिया ही श्रेष्ठ हैं। उस यंज्ञ की अपेक्षा जप, जप की अपेक्षा ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्ग की अपेक्षा निःसंग रागविहीन ध्यान ही श्रेष्ठ है, इस ध्यान योग में प्राप्त होने से शाश्वत ब्रह्म की उपलब्धि होती है।२५। जो महात्मा सावधान ब्रह्मपरायण, प्रमादशून्य, पवित्र एकान्तिक अनुरागी और जितेन्द्रिय होकर यह योग लाभ करते हैं, आत्मा में आत्मा का संयोग होकर उनको मुक्ति लाभ होता है।२६

श्रीमार्कण्डेयपुराण में योगिचर्याकथन नामक
वर्णन का अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त।३८।

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः (४२)

ओङ्कारवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

एवं यो वर्त्तते योगी सम्यग्योगव्यवस्थितः । न स व्यावर्तितुं शक्यो जन्मान्तरशतैरपि ।।१
दृष्ट्वा च परमात्मानं प्रत्यक्षं विश्वरूपिणम् । विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम् ।।२
तत्प्राप्तये महत्पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत् । तदेवाध्ययनं तस्य स्वरूपं शृण्वतः परम् ।।३
अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम् । एतास्तिस्रः स्मृता मात्राः सात्त्वराजसतामसाः ।।४
निर्गुणा योगिगम्यान्या चार्धमात्रोर्ध्वसंस्थिता । गान्धारीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसंश्रया ।।५
पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते । यथा प्रयुक्त ओङ्कारः प्रतिनिर्याति मूर्द्धनि ।।६
तथोङ्कारमयो योगी त्वक्षरे त्वक्षरो भवेत् । प्राणो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म वेध्यमनुत्तमम् ।।७
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् । ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः ।।८
विष्णुर्ब्रह्मा हरश्चैव ऋक्सामानि यजूंषि च । मात्राः सार्द्धाश्च तिस्रश्च विज्ञेयाः परमार्थतः ।।९
तत्र युक्तस्तु यो योगी स तल्लयमवाप्नुयात् । अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारश्चोच्यते भुवः ।।१०

अध्याय ३९

ओंकार का वर्णन

दत्तात्रेय ने कहा—इस प्रकारजो योगी सम्यक् विधान से योगयुक्त होते हैं, शतशत जन्मान्तर में भी फिर वह स्वपद से निवृत्त नहीं हो सकते ।१। जो विश्व रूपी, विश्व के ईश्वर और विश्वभाव हैं, विश्व ही जिनके पाद हैं, विश्व ही जिनकी ग्रीवा और विश्व ही जिनका मस्तक है, योगी उन्हीं परमात्मा को प्रत्यक्ष करके ।२। उनको प्राप्त करने के लिये यह पवित्र "ॐ" एकाक्षर जप करें, यही उनका अध्ययन होगा, और इस ओंकार का स्वरूप श्रवण करें ।३। अकार 'उकार और मकार, यह तीन अक्षर ही ओंकार का स्वरूप हैं, और इन्ही को तीन मात्रा जानना चाहिए । यह तीनों मात्रा क्रमानुसार सात्त्विक' राजसिक और तामसिक अर्थात् अकार सात्त्विक, उकार राजसिक और मकार तामसिक है ।४। इसके अतिरिक्त ओंकार की एक अर्द्ध मात्रा है, वह गान्धारी नाम से विख्यात है ।५। यह मात्रा पिपीलिका (चींटी) की समान गति और स्पर्शयुक्त है, यह शिरोभाग में दिखाई देती है ओंकार प्रयुक्त होकर जिस प्रकार शिरदेश के प्रति गमन करती है ।६। इसी प्रकार योगयुक्त पुरुष अक्षर अक्षर में ओंकारमय होता है । प्राण धनुःस्वरूप, एवं आत्मा बाण और ब्रह्म को लक्ष्यस्वरूप जानना चाहिए ।७। प्रमादहीन शर के समान ब्रह्म को संविद्ध कर सकने से ही तन्मय हो सकता है ओंकार तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों अग्नि ।८। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, ऋक्, साम, यजुःस्वरूप है,परमार्थतः ओंकार की मात्रा साढ़े तीन हैं ।९। इस ओंकार में संयुक्त होने से ही योगी उसमें विलीन होते हैं । अकार भूर्लोक उकार भुवर्लोक ।१०। और संव्यञ्चन

सव्यञ्जनो मकारश्च स्वर्लोकः परिकल्प्यते । व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाव्यक्तसंज्ञिता ॥११
मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्धमात्रा परं पदम् । अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योगभूमयः ॥१२
ओमित्युच्चारणात्सर्वं गृहीतं सदसद्भवेत् । ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यसंयुता ॥१३
तृतीया च प्लुतार्धाख्या वचसः सा न गोचरा । इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम् ॥१४
यस्तु वेद नरः सम्यक्तथा ध्यायति वा पुनः । संसारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः ॥१५
प्राप्नोति ब्रह्मणि लयं परमे परमात्मनि । आक्षीणकर्मबन्धश्च ज्ञात्वा मृत्युमरिष्टतः ॥१६
उत्क्रान्तिकाले संस्मृत्य पुनर्योगित्वमृच्छति । तस्मादसिद्धयोगेन सिद्धयोगेन वा पुनः ॥
ज्ञेयान्यरिष्टानि सदा येनोत्क्रान्तौ न सीदति ॥१७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगधर्मे ओङ्कारवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।३९।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

अलर्कनिर्वेदवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

अरिष्टानि महाराज शृणु वक्ष्यामि तानि ते । येषामालोकनान्मृत्युं निजं जानाति योगवित् ॥१
देवमार्गं ध्रुवं शुक्रं सोमच्छायामरुन्धतीम् । यो न पश्येन्न जीवेत्स नरः संवत्सरात्परम् ॥२

मकार स्वर्लोक कहकर निरूपित हुआ है, उसकी पहली मात्रा व्यक्ता, दूसरी अव्यक्ता ।११। तीसरी चिच्छक्ति और चौथी मात्रा परमपद कही गई है इस प्रकार क्रमानुसार इनको योगभूमि जानना चाहिए ।१२। "ॐ" इस अक्षर का केवल उच्चारण करते ही समस्त सदा सत असत् गृहीत होते हैं। पहली मात्रा ह्रस्व, दूसरी मात्रा दीर्घ ।१३। और तीसरी मात्रा प्लुतस्वरूप है। किन्तु अर्द्धमात्रा का स्वरूप वर्णन करना असाध्य है। इस प्रकार से जो योगी ओंकारसंज्ञक अक्षरस्वरूप परब्रह्म को ।१४। जानकर उनका ध्यान करते हैं वह संसार चक्र उल्लंघनपूर्वक तीनों बंधन को छोड़कर ।१५। उस परमात्मा परब्रह्म में विलीन होते हैं यदि उनके कर्मबंधन का क्षय न हो तो वह अरिष्टद्वारा मृत्यु को जानकर ।१६। मरणकाल में जातिस्मृतिलाभपूर्वक फिर योगित्व को प्राप्त होते हैं। इसी कारण सिद्ध योगी क्या असिद्धयोगी अरिष्ट का सब को ही ज्ञान होना चाहिए। अरिष्ट के जान लेने से मृत्यु काल में दुःख को प्राप्त होना नहीं पड़ता ।१७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में ओंकार वर्णन नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ।३९।

अध्याय ४०

अलर्कनिर्वेद नामक वर्णन

दत्तात्रेय बोले—हे महाराज ! अब तुम्हारे निकट समस्त अरिष्ट कहता हूँ सुनो ! योगी पुरुष इन सबको देखकर अपनी मृत्यु जाने ।१। जो पुरुष देवमार्ग ध्रुव, शुक्र, सोम अपनी छाया और अरुन्धती इन सबको नहीं देख सकता वह संवत्सर के बाद ही मृत्यु मुख में गिरता है ।२। जो पुरुष सूर्य के विम्ब को

अरश्मिबिम्बं सूर्यस्य वह्निं चैवांशु मालिनम् । दृष्ट्वैकादशमासेभ्यो नरो नोर्ध्वं तु जीवति ।।३
वान्ते मूत्रपुरीषे च यः स्वर्णं रजतं तथा । प्रत्यक्षं कुरुते स्वप्ने जीवेत्स दशमासिकम् ।।४
दृष्ट्वा प्रेतपिशाचादीन्गन्धर्वनगराणि च । सुवर्णवर्णान्वृक्षांश्च नव मासान्स जीवति ।।५
स्थूलः कृशः कृशः स्थूलो योऽकस्मादेव जायते । प्रकृतेश्च निवर्तेत तस्यायुश्चाष्टमासिकम् ।।६
खण्डं यस्य पदं पार्ष्ण्यां पादस्याग्रे च वा भवेत् । पांसुकर्दमयोर्मध्ये सप्त मासान्स जीवति ।।७
गृध्रः कपोतः काकोलो वायसो वापि मूर्द्धनि । क्रव्यादो वा खगोनीलः षण्मासायुःप्रदर्शकः ।।८
हन्यते काकपंक्तीभिः पांसुवर्षेण वा नरः । स्वां छायामन्यथा दृष्ट्वा चतुः पञ्च स जीवति ।।९
अनभ्रे विद्युतं दृष्ट्वा दक्षिणां दिशमाश्रिताम् । रात्राविन्द्रधनुश्चापि जीवितं हि त्रिमासिकम् ।।१०
घृते तैले तथादर्शे तोये वा नात्मनस्तनुम् । यः पश्येदशिरस्कां वा मासादूर्ध्वं न जीवति ।।११
यस्य बस्तसमो गन्धो गात्रे शवसमोऽपि वा ।तस्यार्द्धमासिकं ज्ञेयं योगिनो नृप जीवितम् ।।१२
यस्य वै स्नातमात्रस्य हृत्पादमवशुष्यते । पिबतश्च जलं शोषो दशाहं सोऽपि जीवति ।।१३
संभिन्नो मारुतो यस्य मर्मस्थानानि कृन्तति । हृष्यते नाम्बुसंस्पर्शात्तस्य मृत्युरुपस्थितः ।।१४
ऋक्षवानरयानस्थो गायन्यो दक्षिणां दिशम् । स्वप्ने प्रयाति तस्यापि न मृत्युः कालमिच्छति ।।१५

रश्मिविहीन और अग्नि को अंशुमान् देखे ग्यारह महीने से अधिक उसको जीवन धारण करना नहीं पड़ता।३। स्वप्न में मूत्र, पुरीष और वमन इन सब मे सुवर्ण वा रजत का दर्शन करने से वह पुरुष केवल दश महीने प्राण धारण करके कालग्रास में गिरता है।४। जो पुरुष प्रेत और पिशाचादि, गंधर्वनगर और स्वर्णवर्ण वृक्ष देखता है, उसको केवल नौ महीने जीवित रहना पड़ता है।५। जो पुरुष सहसा स्थूल होकर कृश और फिर कृश होकर अकस्मात् स्थूल हो जाय, उसकी परमायु आठ मासपर्यन्त अवशिष्ट जानें। इसके बाद प्रकृति भ्रष्ट हो जाती है।६। रेते वा कीचड़के भीतर पैर डालने से जिसकी पार्ष्णि (एडी) या पैर के अग्रभाग का चिह्न खण्डित दिखाई दे, वह केवल सात महीने जीवन धारण करता है।७। गृद्ध, कबूतर, काकोल (उल्लू) काक अथवा क्रव्याद वा अन्य कोई नीलवर्ण मांसाहारी पक्षी उड़कर मस्तक में बैठे तो छः मास की आयु जाने।८। जो काकश्रेणी और धूलि वर्षने से आघात को प्राप्त होता है, जो पुरुष अपने शरीर की छाया को विपरीत देखता है चार महीने वा पाँच महीने वह जीवित रहता है।९। विना बरसात के मेघ दक्षिणदिशा में मेघ की बिजली के देखने से और रात्रिकाल में इन्द्रधनुष के देखने से मनुष्य केवल दो या तीन महीने जीवित रहता है।१०। घृत, तेल, दर्पण और जल इन सब में नेत्र डालने से स्वीयमूर्त्ति जिसको दिखाई न दे और अपने देह को मस्तक शून्य देखे एक मास से अधिक काल तक उसको जीवन धारण करना नहीं पड़ता।११। हे राजन्! जिसके गात्र से मुर्दे की सी गंध निर्गत होती है, वह योगी केवल अर्द्धमास जीवित रहता है।१२। स्नान करते ही जिसका हृदय और पैर सूख जांय और जलपान करते ही फिर तत्काल तृष्णा से जिसका कण्ठ शुष्क हो वह केवल दशदिनमात्र जीवित रहता है।१३। वायु छिन्नभिन्न होकर जिस पुरुष का मर्मस्थान विच्छिन्न कर दे और जलस्पर्श करने से जिसको रोमांच न हो, उसका मृत्युकाल उपस्थित ही जाने।१४। जो पुरुष स्वप्न में ऋक्ष और वानर के यान में चढ़कर गाता हुआ दक्षिण दिशा में जाय उसकी मृत्यु अति निकट जाने।१५। स्वप्न में लाल, काले वस्त्र पहने स्त्री हास्यमुख से गान करते

रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्ती हसती च यम् । दक्षिणाशां नयेन्नारी स्वप्ने सोऽपि न जीवति ।।१६
नग्नं क्षपणकं स्वप्ने हसमानं महाबलम् । एवं संवीक्ष्य वल्गन्तं विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ।।१७
आमस्तकतलाद्यस्तु निमग्नं पङ्कसागरे । स्वप्ने पश्यत्यथात्मानं स सद्यो म्रियते नरः ।।१८
केशाङ्गारांस्तथा भस्म भुजङ्गान्निर्जलां नदीम् । दृष्ट्वा स्वप्ने दशाहात्तु मृत्युरेकादशे दिने ।।१९
करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः । पाषाणैस्ताडितः स्वप्ने सद्यो मृत्युं लभेन्नरः ।।२०
सूर्योदये यस्य शिवा क्रोशन्ती याति संमुखम् । विपरीतं परीतं वा स सद्यो मृत्युमृच्छति ।।२१
यस्य वै भुक्तमात्रस्य हृदयं बाध्यते क्षुधा । जायते दन्तघर्षश्च स गतायुर्न संशयः ।।२२
दीपगन्धं न यो वेत्ति त्रस्यत्यह्नि तथा निशि । नात्मानं परनेत्रस्थं वीक्षते न स जीवति ।।२३
शक्रायुधं चार्द्धरात्रे दिवा ग्रहगणांस्तथा । दृष्ट्वा मन्यते संक्षीणमात्मजीवितमात्मवित् ।।२४
नासिका वक्रतामेति कर्णयोर्नमनोन्नती । नेत्रं च वामं स्रवति यस्य तस्यायुरुद्गतम् ।।२५
आरक्ततामेति मुखं जिह्वा वा श्यामतां यदा । तदा प्राज्ञो विजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः ।।२६
उष्ट्ररासभयानेन यः स्वप्ने दक्षिणां दिशम् । प्रयाति तं च जानीयात्सद्यो मृत्युं नरेश्वर ।।२७
पिधाय कर्णौ निर्घोषं न शृणोत्यात्मसम्भवम् । नश्यते चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्य सोऽपि न जीवति ।।२८
पततो यस्य वै गर्ते स्वप्ने द्वारं पिधीयते । न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम् ।।२९

करते जिसको दक्षिण दिशा में ले जाय, उसको शीघ्र ही मृत्यु मुख में गिरना पड़ता है ।१६। स्वप्न में महाबल नग्न क्षपणक बौद्ध सन्यासी को अकेला हँसते-हँसते जाता देखने से जाने कि उसका मृत्युकाल बहुत निकट है ।१७। जो पुरुष स्वप्न में अपने देह को मस्तकपर्यन्त कींच के सागर में निमग्न देखे, शीघ्र ही उसकी मृत्यु संघटित होती है ।१८। स्वप्न में केश, अंगार, भस्म, सर्प और सूखी नदी यह सब देखने से दश दिन के बाद ग्यारहवें दिन मृत्यु होती है ।१९। स्वप्न में कराल और विकटाकार काले वर्ण पुरुष सशस्त्र आकर पाषाणद्वारा जिसको आघात करें, शीघ्र ही उसकी मृत्यु होती है ।२०। सूर्योदय के समय जिस व्यक्ति के सन्मुख, पीछे अथवा चारों ओर होकर गीदड़ गमन करें, वह शीघ्र ही मृत्युमुख में पतित होता है ।२१। भोजन करके उठते ही जिस मनुष्य का हृदय फिर तत्काल भूख से व्याकुल हो और दन्तघर्ष उपस्थित हो, उसकी आयु निःसंदेह शेष हुई है ।२२। जिसकी नासिका में दीपगंध विदित न हो, जो दिन में और रात्रिकाल में भय को प्राप्त हो और दूसरे के नेत्र में जो पुरुष अपना प्रतिबिम्ब नहीं देख सके उसके जीवन को निःशेष हुआ जानें ।२३। यदि आधी रात के समय में इन्द्र धनुष और दिन में ग्रहण दिखाई दें तो आत्मवित् पुरुष उस परमायु का क्षय हुआ जाने ।२४। जिसकी नासिका टेढी हो जाय, दोनों कान ऊँचे नीचे हों और वामनेत्र से अश्रु गिरते रहें, उसकी परमायु पूरी हुई जाने ।२५। मुख लोहित वर्ण और रसना श्याम वर्ण होने से ही बुद्धिमान् पुरुष अपना मृत्युकाल निकट जाने।२६। जो पुरुष स्वप्न में ऊँट और गधे के यान में चढ़कर दक्षिणदिशा में जाय, शीघ्र ही उसकी मृत्यु होती है, इसमें संदेह नहीं।२७। दोनों कर्ण ढकने से स्वीय शब्द जिसको सुनाई न आवै और जिसके नेत्रों की ज्योति विलुप्त हो जाय वह पुरुष शीघ्र ही जीवन त्याग करता है।२८। जो पुरुष स्वप्न में गर्त (गढ़े) में गिरकर बाहर निकलने के लिये द्वार न पावे इसलिए उठने में असमर्थ हो, उसका परमायु निःशेष हुआ समझे।२९। जिस पुरुष की दृष्टि ऊर्ध्वभाग

ऊर्ध्वा च दृष्टिर्न च संप्रतिष्ठा रक्ता पुनः संपरिवर्तमाना ।
मुखस्य चोष्मा शिशिरा च नाभिः शंसंति पुंसामपरं शरीरम् ॥३०
स्वप्नेऽग्निं प्रविशेद्यस्तु न च निष्क्रमते पुनः । जलप्रवेशादपि वा तदन्तं तस्य जीवितम् ॥३१
यश्चाभिहन्यते दुष्टैर्भूतै रात्रावथो दिवा । स मृत्युं सप्तरात्रान्ते नरः प्राप्नोत्यसंशयम् ॥३२
स्ववस्त्रममलं शुक्लं रक्तं पश्यत्यथोऽसितम् । यः पुमान्मृत्युमासन्नं तस्यापि हि विनिर्दिशेत् ॥३३
स्वभाववैपरीत्यं तु प्रकृतेश्च विपर्ययः । कथयन्ति मनुष्याणां समासन्नौ यमान्तकौ ॥३४
येषां विनीतः सततं येऽस्य पूज्यतमा मताः । तानेव चावजानाति तानेव च विनिन्दति ॥३५
देवान्नार्चयते वृद्धान्गुरूनिविप्रांश्च निन्दति । मातापित्रोर्न सत्कारं जामातॄणां करोति च ॥३६
योगिनां ज्ञानविदुषामन्येषां च महात्मनाम् । प्राप्ते तु काले पुरुषस्तद्विज्ञेयं विचक्षणैः ॥३७
योगिनां सततं यत्नादरिष्टान्यवनीपते । संवत्सरान्ते तज्ज्ञेयं फलदानि दिवानिशम् ॥३८
विलोक्याविशदा चैषां फलपङ्क्तिः सुभीषणा । विज्ञाय कार्यो मनसि स च कालो नरेश्वर ॥३९
ज्ञात्वा कालं च तं सम्यगभयस्थानमाश्रितः । युञ्जीत योगी कालोऽसौ यथा नास्याफलो भवेत्॥४०
दृष्ट्वारिष्टं तथा योगी त्यक्त्वा मरणजं भयम् । तत्स्वभावं तदालोक्य कालो यावद्विपाकदः ॥४१
तस्य भागे तथैवाह्नो योगं युञ्जीत योगवित् । पूर्वाह्णे चापराह्णे च मध्याह्ने चापि तद्दिने ॥४२

में स्थित नहीं होती, लोहितवर्ण होकर बार- बार घूर्णित और चंचल हो जाय और जिसकी मुख ऊष्मा (गरमी) से परिपूर्ण और नाभि शीत हो जाय उसको वे देह त्यागकर दूसरा देह ग्रहण करना पड़ता है ।३०। जो पुरुष स्वप्न में अग्नि या जल के भीतर प्रवेश करके फिर बाहर न निकल सके उसका जीवन निःशेष हुआ जाने ।३१। जो पुरुष दिन में रात्रिकाल में दुष्टभूतगणों से ताड़ना को प्राप्त हो सात रात्रि में उसको मृत्यु मुख में गिरना होता है ।३२। जो पुरुष अपने शुक्लवर्ण पहने वस्त्र को लोहित वर्ण या कृष्ण वर्ण देखता है उसका मृत्युकाल निकट ही जानना चाहिए ।३३। स्वभाव की विपरीतता और प्रकृति का काल विपर्यय होने से यम और अन्तक उस मनुष्य के निकट होते हैं ।३४। बुद्धिमान् पुरुष निश्चय जाने कि काल प्राप्त होने पर ही मनुष्य पूजनीय पुरुषों का और जिनके निकट सदा विनीत भाव से रहना उचित है उनका अपमान और निन्दा करता है ।३५। देवताओं की पूजा से विमुख होता है, वृद्ध और ब्राह्मणों की निन्दा करता है, माता-पिता का सत्कार तथा जामाता का आदर ।३६। करने से विमुख होता है एवं योगी और अन्यान्य महात्मा सबके ही असत्कार में उद्यत होता है उसकी आयु समाप्त जानें ।३७। हे अवनीपते ! योगिगण यत्नसहित निरन्तर जान रखें कि, यह सब अरिष्ट संवत्सर के अन्त में दिनरात फलप्रदान करते हैं ।३८। वह इन समस्त अतिभीषण फलों के प्रति भली भाँति दृष्टि रखें । यह सब फल सहज में ही जाने जाते हैं । हे नरेश्वर ! इन समस्त फल को सम्यक् विधान से जानकर उनके आगमन का समय सदा मन में रखना चाहिए ।३९। इस प्रकार से योगी उपस्थित काल को जानकर भलीभाँति निर्भयस्थान आश्रयपूर्वक योग में अभिनिविष्ट हो जिससे काल का बल न चले ।४०। अरिष्ट के देखते ही योगी मृत्युजनित भय छोड़ उस अरिष्ट के स्वभाव की पर्यालोचना (विचार) करके जिस समय वह समागत हो ।४१। योगवित् पुरुष दिन के उसी भाग में योग में निविष्ट हो । उसी दिन के पूर्वाह्ण में,

यत्र वा रजनीभागे तदरिष्टं निरीक्षितम् । तत्रैव तावद्युञ्जीत यावत्प्राप्तं हि तद्दिनम् ।।४३
ततस्त्यक्त्वा भयं सर्वं जित्वा यं कालमात्मवान् । तत्रैवावसथे स्थित्वा यत्र वा स्थैर्यमात्मनः ।।४४
युञ्जीत योगं निर्जित्य त्रीन्गुणान्परमात्मनि । तन्मयश्चात्मना भूत्वा चिद्वृत्तिमपि संत्यजेत् ।।४५
ततः परमनिर्वाणमतीन्द्रियमगोचरम् । यद्बुद्धेर्यन्न चाख्यातुं शक्यते तत्समश्नुते ।।४६
एतत्सर्वं समाख्यातं तवालर्क यथार्थवत् । प्राप्स्यसे येन तद्ब्रह्म संक्षेपात्तन्निबोध मे ।।४७
शशांकरश्मिसंयोगाच्चन्द्रकान्तमणिः पयः । समुत्सृजति नायुक्तः सोपमा योगिनः स्मृता ।।४८
यथार्करश्मिसंयोगादर्ककान्तो हुताशनम् । आविष्करोति नैकः सन्नुपमा सापि योगिनः ।।४९
पिपीलिकाखुनकुलगृहगोधाकपिञ्जलाः । वसन्ति स्वामिवद्गेहे ध्वस्ते यान्ति ततोऽन्यतः ।।५०
दुःखं तु स्वामिनो ध्वंसे तस्य तेषां न किञ्चन । वेश्मनो यत्र राजेन्द्र सोपमा योगसिद्धये ।।५१
मृद्देहिकाल्पदेहापि मुखाग्रेणाप्यणीयसा । करोति मृद्भारचयमुपदेशः स योगिनः ।।५२

मध्याह्न में, या अपराह्न में ।४२। अथवा रात्रिकाल में, या जिस समय अरिष्ट दिखाई दिया है, उसीकाल में योगनिविष्ट होना चाहिए । जब तक वह दिन न आवे, तब तक इसी प्रकार से योगक्रिया का आचरण करे ।४३। वह आतमवान् होकर सब भय विसर्जन और उस समय को पराजय करके उसी गृह में अथवा अन्य जिस स्थान में मन की स्थिरता हो ।४४। ऐसे स्थान में वास कर तीनों गुणों को जीत योगयुक्त और परमात्मा में ऐकान्तिक चित्त से अभिनिविष्ट हो और आत्मा को तन्मय करके अन्त में चित्तवृत्ति को भी सर्वथा विसर्जन करना चाहिए ।४५। इस प्रकार करने से ही वह इन्द्रियातीत, बुद्धि के अगोचर और वाक्य का अतीत परम निर्वाण लाभ कर सकते हैं ।४६। हे अलर्क ! मैंने यथार्थ रूप से तुम्हारे निकट यह सब वर्णन किया । अब जिस उपाय से ब्रह्म पदार्थ लाभ किया जाता है वह संक्षेप से कहता हूँ, सुनो ! ।४७। चन्द्रमा की किरणों का संयोग होने से ही चन्द्रकान्तमणि से जल निकलता है चन्द्रमा की किरणों के सहित संयोग न होने से कभी जल नहीं निकलता, यही योगी के योगसिद्धि का उपाय है, अर्थात् योग में मन को अभिनिविष्ट न करने से कभी योगी के हृदय में आनन्द रस का संचार नहीं होता, योग में मन को नियुक्त करने से ही वह आनन्द होता है ।४८। सूर्य की किरणों का संयोग होने पर ही सूर्यकान्तमणि से अग्नि निकलती है, सूर्य की किरणों का बिना संयोग हुए नहीं निकल सकती । यह भी योगी के योगसिद्धि की और एक उपमा है अर्थात् योग में युक्तचित्त न होने से कभी योगी ब्रह्म के साक्षात्कार में समर्थ नहीं होता ।४९। पिपीलिकी, मूषिक, नकुल, गृहगोधा (घर कीगोय) और कपिञ्जल कबूतर यह गृहस्वामी के समान विद्यमान रहते हैं अर्थात् उस स्थान में सदा वास करते हैं उसके नष्ट होने पर अन्य स्थान में जाते हैं ।५०। गृहस्वामी के ध्वंस होने से वह कुछ भी दुःखी नहीं होते हे राजेन्द्र ! यह भी योगों के योगसिद्धि की तीसरी उपमा है, अर्थात् स्वभाव से ही शरीर के पीछे शरीर का आविर्भाव तिरोभाव होता है, अत एव उसके लिये दुःख या ममता के वशीभूत होना अनुचित है, योगी यह जानकर दुःखादि परित्याग पूर्वक योगसाधन में मन लगावें ।५१। देखो चींटी अत्यन्त छोटी वस्तु होकर भी अत्यन्त सूक्ष्ममुख द्वारा (मट्टी खींच खींच कर ढेर) संचय करती है । यह भी योगी के लिये एक उपदेश है, अर्थात् यद्यपि ब्रह्मसाधन कठिन कार्य है किन्तु तो भी योगरूप सामान्य उपाय के बल से ही उसको वशीभूत किया जाता है ।५२।

पशुपक्षिमनुष्याद्यैः पत्रपुष्पफलान्वितम् । वृक्षं विलुप्यमानं तु दृष्ट्वा सिध्यन्ति योगिनः ।।५३
रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्य तिलकाकृतिम् । सह तेन विवर्द्धन्तं योगी सिद्धिमवाप्नुयात् ।।५४
द्रवपूर्णमुपादाय पात्रमारोहतो भुवः । तुंगमंगं विलोक्योच्चैर्विज्ञातं किं न योगिना ।।५५
सर्वस्वे जीवनायालं निखाते पुरुषस्य या । चेष्टां तां तत्त्वतो ज्ञात्वा योगिनः कृतकृत्यता ।।५६
तद्गृहं यत्र वसति तद्भोज्यं येन जीवति । येन सम्पद्यते चार्थस्तत्सुखं ममतात्र का ।।५७
अभ्यर्थितोऽपि तैः कार्यं करोति करणैर्यथा । तथा बुद्धयादिभिर्योगी पारक्यैः साधयेत्परम् ।।५८

जड उवाच

ततः प्रणम्यात्रिपुत्रमलर्कः स महीपतिः । प्रश्रयावनतो वाक्यमुवाचातिमुदान्वितः ।।५९
दिष्टया देवैरिदं ब्रह्मन्पराभिभवसम्भवम् । उपपादितमत्युग्रं प्राणसंदेहदं भयम् ।।६०
दिष्टया काशिपतेर्भूरिबलसम्पत्पराक्रमः । यदुच्छेदादिहायातः स युष्मत्सङ्गदो मम ।।६१
दिष्टया मंदबलश्चाहं दिष्टया भृत्याश्च मे हताः । दिष्टया कोषः क्षयं यातो दिष्टयाहं भीतिमागतः ।।६२
दिष्टया त्वत्पादयुगुलं मम स्मृतिपथं गतम् । दिष्टया त्वदुक्तयः सर्वा मम चेतसि संस्थिताः ।।६३

पशु-पक्षी मनुष्य इत्यादि फल, पुष्प, पत्रान्वित वृक्ष को नष्ट कर देते हैं । योगी यह देखकर भी सिद्धि लाभ करें अर्थात् समृद्धि होने से ही ध्वंस है समय में काल के हाथ से अवश्य नष्ट होना पड़ेगा । इस प्रकार जानकर ही योगिगण योगसाधन में निविष्ट होकर निर्वाण लाभ करें ।५३। रुरुशावक (मृगविशेष) के सींग का अग्रदेश तिलकाकार होकर भी उसके संग संग में वह वृद्धि को प्राप्त होता है, इसी दृष्टान्त के अनुगामी होकर भी योगी सिद्धिलाभ करते हैं । अर्थात् योगचर्या कितनी ही भारी क्यों न हो, धीरे-धीरे अभ्यास करने से अवश्य ही कृतकार्य हो सकता है ।।५४। और भी देखो ! जब मनुष्य द्रवपरिपूर्ण पात्र हाथ में लेकर पृथ्वी से ऊँचे स्थान में आरोहण करता है, उस काल उसके अंग के प्रति सम्यक् प्रकार दृष्टि डालने से योगी को कोई विषय अज्ञात नहीं रहता ।५५। मनुष्य जीवन के लिये अपना सर्वस्व नष्ट करने की जो चेष्टा करता है, उसको सम्यक् प्रकार जाननेसे योगी कृतकृत्यता का लाभ करता है ।५६। जिस स्थान में वास किया जाय वही गृह, जिसके द्वारा प्राण धारण हो, वही भोज्य और जिसके द्वारा अर्थ निष्पन्न हो, वही सुख कहा गया है, अत एव इस विषय में ममता करने की क्या आवश्यकता है ।५७। जिस प्रकार कारण द्वारा अपना चिन्तित कार्य साधित होता है, उसी प्रकार योगी पारलौकिक बुद्धयादि से ही ब्रह्म की साधना करे ।५८

जड ने कहा—अनन्तर नरपति अलर्क विनयावनतहो अत्रिनन्दन दत्तात्रेय जी को प्रणाम करके आनन्दसहित कहने लगे ।५९। हे ब्रह्मन् ! सौभाग्य से ही मुझको यह अति उग्र, प्राणों को संदेह में डालने वाला भयदायी शत्रु से तिरस्कार प्राप्त हुआ है ।६०। सौभाग्य वश ही वह काशिराज महाबल पराक्रान्त और समृद्धिमान् हुए हैं जिसके कारण मुझे तुम्हारी संगति प्राप्त हुई है ।६१। मैं सौभाग्य से ही क्षीणबल हुआ हूँ, सौभाग्य से ही मेरे भृत्यगण मारे गये हैं और सौभाग्य से ही मेरा कोष क्षय को प्राप्त हुआ है तथा भय का संचार हुआ है ।६२। सौभाग्यवश ही आपके चरणयुगल मेरे स्मृतिपथ में उदित हुए हैं सौभाग्यवश ही आपके सब वचनों ने मेरे हृदय में स्थान पाया है ।६३। और सौभाग्यवश ही आपका

दिष्ट्या ज्ञानं ममोत्पन्नं भवतश्च समागमात् । भवता चैव कारुण्यं दिष्ट्या ब्रह्मकृतं मयि ॥६४
अनर्थोऽप्यर्थतां याति पुरुषस्य शुभोदये । तथेदमुपकाराय व्यसनं संगमात्तव ॥६५
सुबाहुरुपकारी मे स च काशिपतिः प्रभो । तयोः कृतेऽहं सम्प्राप्तो योगीश भवतोऽन्तिकम् ॥६६
सोऽहं तव प्रसादाग्निनिर्दग्धाज्ञानकिल्बिषः । तथा यतिष्ये येनेदृङ् भूयो दुःखभाजनम् ॥६७
परित्यजिष्ये गार्हस्थ्यमार्तिपादपकाननम् । त्वत्तोऽनुज्ञां समासाद्य ज्ञानदातुर्महात्मनः ॥६८

दत्तात्रेय उवाच

गच्छ राजेन्द्र भद्रं ते यथा ते कथितं मया । निर्ममो निरहङ्कारस्तथा चर विमुक्तये ॥६९

जड उवाच

एवमुक्तः प्रणम्यैनमाजगाम त्वरान्वितः । यत्र काशिपतिर्भ्राता सुबाहुश्चास्य सोऽग्रजः ॥७०
समुत्पत्य महाबाहुं सोऽलर्कः काशिभूपतिम् । सुबाहोरग्रतो वीरमुवाच प्रहसन्निव ॥७१
राज्यकामुक काशीश भुज्यतां राज्यमूर्जितम् । यथा च रोचते तद्वत्सुबाहोः संप्रयच्छ वा ॥७२

काशिराज उवाच

किमलर्क परित्यक्तं राज्यं ते संयुगं विना । क्षत्रियस्य न धर्मोऽयं भवांश्च क्षत्रधर्मवित् ॥७३

समागम लाभ होने से मुझको ज्ञान का उदय हुआ है । हे ब्रह्मन् ! सौभाग्यवश ही आपने मेरे प्रति दया दर्शन की है ।६४। पुरुष का शुभोदय होने पर अनर्थ भी अर्थरूप में परिणत होता है इस भयंकर विपद् ने भी आपसे मिलाकर मेरा उपकार साधन किया है ।६५। हे प्रभो ! हे योगीश्वर ! जिनके लिये मैं आपके निकट उपस्थित हुआ हूँ वह सुबाहु और काशिराज दोनों ही मेरे परम उपकारी है, इसमें सन्देह नहीं ।६६। आपकी प्रसाद रूप अग्निद्वारा मेरे अज्ञानरूप पाप दग्ध हो गये हैं, जिससे फिर ऐसे दुःख को प्राप्त होना न पड़े अब मैं उसी के अनुष्ठान में यत्नवान होऊँगा ।६७। हे ब्रह्मन् ! आप ज्ञानदाता और महात्मा हैं, आपकी आज्ञा होने पर ही मैं गृहस्थाश्रम का परित्याग करूँगा । यह आश्रम दुःखरूपी वृक्ष का वनस्वरूप है ।६८

दत्रात्रेय बोले—हे राजेन्द्र ! तुम गमन करो । तुम्हारा मंगल हो, मैंने तुमको जिस प्रकार उपदेश प्रदान किया, तुम ममता और अहंकाररहित होकर मुक्तिलाभ होने के लिये उसी के अनुरूप कार्य करो ।६९

जड ने कहा—दत्रात्रेय जी के इस प्रकार कहने पर अलर्क उनको प्रणाम करके शीघ्रतासहित अग्रज सुबाहु और काशीपति के निकट उपस्थित हुए ।७०। उन्होंने महाबाहु काशीनाथ के निकट सुबाहु के सन्मुख उपस्थित हो हँसते-हँसते कहा ।७१। हे काशीपते ! तुमने राज्यलाभ की कामना की है, अत एव यह समृद्धशाली साम्राज्य भोग करो अथवा सुबाहु को दे दो, या तुम्हारी जो इच्छा हो, वही कर सकते हो ।७२

काशीराज ने कहा—हे अलर्क ! तुम बिना युद्ध के राज्य क्यों परित्याग करते हो यह क्षत्रियों का धर्म नहीं है, तुम भी क्षात्रधर्म में विशारद हो ।७३। नरपति अमात्यवर्ग को जीतकर मरणभय

निर्जितामात्यवर्गस्तु त्यक्त्वा मरणजं भयम् । संदधीत शरं राजा लक्ष्यमुद्दिश्य वैरिणम् ।।७४
तं जित्वा नृपतिर्भोगान्यथाभिलषितान्वरान् । भुञ्जीत परमं सिद्ध्यै यजेत च महामखः ।।७५

अलर्क उवाच

एवमीदृशकं वीर ममाप्यासीन्मनः पुरा । साम्प्रतं विपरीतार्थं शृणु चाप्यत्र कारणम् ।।७६
यथायं भौतिकः संघस्तथान्तःकरणं नृणाम् । गुणास्तु सकलास्तद्वदशेषेष्वेव जन्तुषु ।।७७
चिच्छक्तिरेक एवायं यदा नान्योऽस्ति कश्चन । तदा का नृपतेऽज्ञानन्मित्रारिप्रभुभृत्यता ।।७८
तन्मया दुःखमासाद्य त्वद्भयोद्भवमुत्तमम् । दत्तात्रेयप्रसादेन ज्ञानं प्राप्तं नरेश्वर ।।७९
निर्जितेन्द्रियवर्गस्तु त्यक्त्वा संगमशेषतः । मनो ब्रह्मणि संधास्ये तज्जये परमो जयः ।।८०
संसाध्यमन्यत्तत्सिद्ध्यै यतः किञ्चिन्न विद्यते । इन्द्रियाणि च संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ।।८१

सोऽहं न तेऽरिर्न ममासि शत्रुः सुबाहुरेषो न ममापकारी ।
दृष्टं मया सर्वमिदं यथात्मा अन्विष्यतां भूप रिपुस्त्वयान्यः ।।८२
इत्थं स तेनाभिहितो नरेन्द्रो हृष्टः समुत्थाय ततः सुबाहुः ।
दिष्टयेति तं भ्रातरमाभिनंद्य काशीश्वरं वाक्यमिदं बभाषे ।।८३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे अलर्कनिर्वेदो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।४०।

परित्यागपूर्वक शत्रु का लक्ष्य निर्देश कर शरसंधान करे ।७४। वह शत्रु को पराजय करके सिद्धि के लिये अभिलषित अति उत्तम भोगों को भोगते अनेक श्रेष्ठ यज्ञ का अनुष्ठान करे ।७५

अलर्क ने कहा—हे वीर ! पहले मेरी भी इसी प्रकार वासना थी और मेरा मन भी ऐसी ही धारणा करता था । किन्तु अब उसके विपरीत भाव का संचार हुआ है, उसका कारण सुनो ।७६। मनुष्यमात्र का ही संग जिस प्रकार भौतिक है, उनका अन्तःकरण और गुणसमूह भी उसी प्रकार भूत की समष्टिमात्र है ।७७। हे नृपते ! केवल मात्र चिच्छक्तिरूपी ब्रह्म ही सत्य है उसके अतिरिक्त जब और कोई भी सत्य नहीं है ऐसा ज्ञान लाभ हुआ है तब शत्रु, मित्र और प्रभु, भृत्य की कल्पना किस प्रकार से होगी ।७८। हे राजन् ! मैंने तुम्हारे भय से अत्यन्त दुःख को प्राप्त होकर इस समय दत्तात्रेय के प्रसाद से ज्ञान प्राप्त किया है ।७९। अब जितेन्द्रिय होकर सम्यक् प्रकार से समस्त संग परित्याग पूर्वक मन को परब्रह्म में अभिनिविष्ट करुँगा । ब्रह्म के जय होने से ही समस्त जय हुई ।८०। एक मात्र जिनके अतिरिक्त और कोई विद्यमान नहीं है और उनके साधन के लिये अन्य साधना करना अनुचित है । जितेन्द्रिय होने से ही सिद्धि लाभ की जाती है ।८१। हे राजन् ! मैं तुम्हारा वैरी या तुम भी मेरे शत्रु नहीं हो, इस सुबाहु ने भी मेरा कोई अपकार नहीं किया यह मैंने भली भाँति से जान लिया है, अत एव तुम अब अन्य शत्रु को खोजो ।८२। अलर्क के इस प्रकार कहने पर काशिराज अत्यंत संतुष्ट हुआ और सुबाहु हर्ष से उठकर "परम सौभाग्य" कहकर भ्राता का अभिनन्दन करते हुए काशीश्वर से कहने लगे ।८३

श्रीमार्कण्डेयपुराण में अलर्कनिर्वेद नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४०।

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

(४१)

जडोपाख्यानवर्णनम्

सुबाहुरुवाच

यदर्थं नृपशार्दूल त्वामहं शरणं गतः । तन्मया सकलं प्राप्तं यास्यामि त्वं सुखी भव ।।१

काशिराज उवाच

किं निमित्तं भवान्प्राप्तो निष्पन्नोऽर्थश्च कस्तव । सुबाहो तन्ममाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे ।।२
समाक्रान्तमलर्केण पितृपैतामहं महत् । राज्यं देहीति निर्जित्य त्वयाहमभिचोदितः ।।३
ततो मया समाक्रम्य राज्यमस्यानुजस्य ते । एतत्ते बलमानीतं तद्भुङ्क्ष्व स्वकुलोचितम् ।।४

सुबाहुरुवाच

काशिराज निबोध त्वं यदर्थमयमुद्यमः । कृतो मया भवांश्चैव कारितोऽत्यन्तमुद्यमम् ।।५
भ्राता ममायं ग्राम्येषु सक्तो भोगेषु तत्त्ववित् । विमूढौ बोधवन्तौ च भ्रातरावग्रजौ मम ।।६
तयोर्मम च यन्मात्रा बाल्ये स्तन्यं यथा मुखे । तथावबोधो विन्यस्तः कर्णयोरवनीपते ।।७
तयोर्मम च विज्ञेयाः पदार्था ये मता नृभिः । प्रकाश्यं मनसो नीतास्ते मात्रा नास्य पार्थिव ।।८
यथैकमर्थे यातानामेकस्मिन्नवसीदति । दुःखं भवति साधूनां तथास्माकं महीपते ।।९

अध्याय ४१

जड का उपाख्यान

सुबाहु ने कहा—हे नृपशार्दूल ! मैंने जिस कारण आपकी शरण ग्रहण की थी सब प्राप्त किया । अब मैं जाता हूँ । आप सुखी हों ।१

काशीपति बोले—हे सुबाहो ! आपने किसलिये मेरी शरण ग्रहण की थी और आपका क्या कार्य सम्पादित हुआ ? वह कहो । यह जाननेके लिये मुझको परम कौतूहल उत्पन्न हुआ है ।२। अलर्क अपने पितृपैत्रामहिक समृद्ध राज्य भोग करता था, आपने शत्रु को जीतकर वह राज्य छुड़ा देने के लिये मुझको उत्तेजित किया ।३। इसी कारण मैंने आपके भ्राता का राज्य आक्रमण पूर्वक अपने वश में कर लिया है, अब आप स्ववंशोचित राज्य भोगिये ।४

सुबाहु ने कहा—हे काशीपते ! मैंने जिस कारण ऐसा उद्यम किया था और आपको इसमें प्रवर्तित किया था। वह सुनो ! ।५। मेरे यह अनुज तत्त्वज्ञानी होकर भी ग्राम्य भोग में आसक्त थे, मेरे दो अग्रज विमूढ़ होकर भी तत्त्ववित् हुए हैं।६। हे अवनीपते ! मेरी जननी शैशव में दोनों अग्रज के और मेरे मुख में जिस प्रकार स्तन प्रदान किया था, वैसे ही हमारे कान में तत्त्वज्ञान का भी उपदेश दिया था ।७। जो-जो विषय मनुष्य मात्र को जानने के लिए उचित हैं हे राजन् ! माता ने हमारे तीनों भाइयों के हृदय में वह सब प्रकाशित कर दिये थे, किन्तु अलर्क को वह नहीं हुए।८। हे महीपते ! जिस प्रकार एक सार्थगत अर्थात् एक साथ में जाने वाली मनुष्यों में एक मनुष्य के दुःखग्रसित होने पर सब साधु दुःखित होते हैं मेरी भी वही अवस्था हुई है ।९।

गार्हस्थ्यमोहमापन्ने सीदत्यस्मिन्नरेश्वर । सम्बन्धिन्यस्य देहस्य बिभ्रति भ्रातृकल्पनाम् ॥१०
ततो मया विनिश्चित्य दुःखाद्वैराग्यभावना । भविष्यतीत्यस्य भवानित्युद्योगाय संश्रितः ॥११
तदस्य दःखाद्वैराग्यं सम्बोधादवनीपते । समुद्भूतं कृतं कार्यं भद्रं तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥१२
उष्ट्वा मदालसागर्भे पीत्वा तस्यास्तथा स्तनम् । नान्यनारीसुतैर्यातं वर्त्म यात्विति पार्थिव ॥१३
विचार्य तन्मया सर्वं युष्मत्संश्रयपूर्वकम् । कृतं तच्चापि निष्पन्नं प्रयास्ये सिद्धये पुनः ॥१४
उपेक्ष्यते सीदमानः स्वजनो बान्धवः सुहृत् । यैर्नरेन्द्र न तान्मन्ये सेन्द्रिया विकला हि ते ॥१५
सुहृदि स्वजने बन्धौ समर्थे योऽवसीदति । धर्मार्थकाममोक्षेभ्यो वाच्यास्ते तत्र न त्वसौ ॥१६
एतत्त्वत्सङ्गमाद्भूप मया कार्यं महत्कृतम् । स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि ज्ञानभाग्भव सत्तम ॥१७

काशिराज उवाच

उपकारस्त्वया साधोरलर्कस्य कृतो महान् । ममोपकाराय कथं न करोषि स्वमानसम् ॥१८
फलदायी सतां सद्भिः सङ्गमो नाफलो यतः । तस्मात्त्वत्संश्रयाद्युक्ता मया प्राप्ता समुन्नतिः ॥१९

सुबाहुरुवाच

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् । तत्र धर्मार्थकामास्ते सकलो हीयतेऽपरः ॥२०

क्योंकि अलर्क के संग मेरा संबंध है, इनको इस देह में मैनें भातृकल्पना किया है, गार्हस्थ्यमोह में अभिभूत होकर दुःख को प्राप्त हो रहे थे ।१०। इस कारण दुःख होने पर ही वैराग्य का उदय होगा, इस प्रकार स्थिर करके उद्योगार्थ आपका आश्रय ग्रहण किया था ।११। हे अवनीपते ! इसमें उस दुःख का संचार हुआ और उस दुःख से ही तत्त्वज्ञान का उदय होने पर वैराग्य का संचार हुआ है इसलिए सुतराम् अब मैं कृतकार्य हुआ हूँ, इस समय मैं प्रस्थान करता हूँ, आपका कल्याण हो ।१२। हे पार्थिव ! यह अलर्क मदालसा के उदर में स्थित हुआ है और उसका स्तनपान किया है, अत एव अन्यस्त्रीगर्भोत्पन्न पुत्रगण जिस मार्ग में जाने को समर्थ नहीं होते, यह उसीमार्ग में गमन करे ।१३। मैंनें यह सब विचारकर आपका आश्रय ग्रहण पूर्वक उसी के अनुरूप कार्य का अनुष्ठान किया, मेरा कार्य भी सम्पन्न हुआ है, अब फिर सिद्धि लाभ के लिये गमन करता हूँ ।१४। हे नरेन्द्र ! स्वजन, बांधव और सुहृज्जनों के दुःखी होने पर जो व्यक्ति उनके प्रति उपेक्षा करता है मैं उसको विकलेन्द्रिय समझता हूँ ।१५। सुहृज्जन बन्धु और स्वजन इनके समर्थ होने पर भी जो मनुष्य (दुःख) को प्राप्त होता है, उसके वह सुहृज्जनादि ही निन्दनीय एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से च्युत होते हैं, उसको निन्दनीय होना नहीं पड़ता ।१६। हे सत्तम ! मैंने आपका संगलाभ करके इसप्रकार महत् कार्य सम्पन्न किया है, आप सुखी और ज्ञानमार्गी हों, मैं अब जाता हूँ ।१७

काशीराज बोले—आपने साधुमति अलर्क का बड़ा उपकार साधन किया किन्तु मेरा उपकार करने में मन क्यों नहीं लगाते ।१८। साधुओं के संग साधुओं का मिलना फलदायक ही होता है कभी विफल होने वाला नहीं है, अत एव आपके संग मिलने में मेरा उन्नतिलाभ ही संगत है ।१९

सुबाहु ने कहा—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यही चारो पुरुषार्थ कहे गये हैं, इनमें आपका धर्म, अर्थ और काम सिद्ध हुआ है, मोक्षमात्र का अभाव विद्यमान है ।२०। अत एव आपसे कहता हूँ एकाग्र चित्त से

तत्ते संक्षेपतो वक्ष्ये तदिहैकमनाः शृणु । श्रुत्वा च सम्यगालोच्य यतेथाः श्रेयसे नृप ।।२१
ममेति प्रत्ययो भूप न कार्योऽहमिति त्वया । सम्यगालोच्य धर्मो हि धर्माभावे निराश्रयः ।।२२
को वाहमिति संज्ञेयमित्यालोच्य त्वयात्मना । बाह्यान्तर्गतमालोच्यमालोच्यापररात्रिषु ।।२३
अव्यक्तादिविशेषान्तमविकारमचेतनम् । व्यक्ताव्यक्तं त्वया ज्ञेयं ज्ञाता कश्चाहमित्युत ।।२४
एतस्मिन्नेव विज्ञाते विज्ञातमखिलं त्वया । अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्वे स्वमिति मूढता ।।२५
सोऽहं सर्वगतो भूप लोकसंव्यवहारतः । मयेदमुच्यते सर्वं त्वया पृष्टो व्रजाम्यहम् ।।२६
एवमुक्त्वा ययौ धीमान्सुबाहुः काशिभूमिपम् । काशिराजोऽपि संपूज्य सोऽलर्कं स्वपुरं ययौ ।।२७
अलर्कोऽपि सुतं ज्येष्ठमभिषिच्य नराधिपम् । वनं जगाम सन्त्यक्तसर्वसङ्गः स्वसिद्धये ।।२८
ततः कालेन महता निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः । प्राप्य योगर्द्धिमतुलां परं निर्वाणमाप्तवान् ।।२९
पश्यञ्जगदिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् । पाशैर्गुणमयैर्बद्धं बध्यमानं च नित्यशः ।।३०
पुत्रादिभ्रातृपुत्रादिस्वपारक्यादिभावितैः । आकृष्यमाणं करणैर्दुःखार्त्तं भिन्नदर्शनम् ।।३१
अज्ञानपङ्कगर्भस्थमनुद्धारं महामतिः । आत्मानं च समुत्तीर्णं गाथामेतामगायत ।।३२
अहो कष्टं यदस्माभिः पूर्वं राज्यमनुष्ठितम् । इति पश्चान्मया ज्ञातं योगान्नास्ति परं सुखम् ।।३३

सुनो ! मुझसे सुनकर उसकी भली भाँति आलोचना करके कल्याण लाभ के लिये यत्नवान् होओ ।२१। हे भूप ! 'यह मेरा' "यह मैं" इस प्रकार ममता और अहंकार के वशीभूत न होना सम्यक् प्रकार से धर्म की आलोचना करना । क्योंकि धर्म के अभाव में ही निराश्रय होना पड़ता है ।२२। आलोचना करने से ही "मैं किसका हूँ" यह सम्यक् प्रकार जाना जाता है । रात्रि के शेष भाग में आलोचना करके बाह्यान्तर्गत आलोचना करनी आरंभ करो ।२३। अव्यक्त से प्रकृतिपर्यन्त अधिकारी, अचेतन व्यक्ताव्यक्त समस्त विषय को जानकर कौन ज्ञेय, कौन ज्ञाता और मैं कौन हूँ, यह जानना चाहिए ।२४। यह सब विदित होने से ही आप समस्त जानेगें देहादि अनात्मवस्तु में आत्मबोध और जो अपना नहीं है, उसको अपना जानना ही मूढता मात्र है ।२५। हे भूपते ! "वही मैं" लौकिक व्यवहार में सर्वगत हूँ । आपने जो विषय पूँछा था, वह वर्णन किया । अब मैं जाता हूँ ।२६। जब महाबुद्धिमान् सुबाहु काशीराज से यह कहकर चले गये । तब काशीपति ने भी अलर्क की सम्यक् प्रकार पूजा करके अपने नगर में प्रस्थान किया ।२७। अलर्क भी अपने ज्येष्ठनंदन को राज्य पद में प्रतिष्ठित करके सब संगपरित्याग पूर्वक आत्मसिद्धि के लिए वनवासी हुए ।२८। फिर बहुत काल बीतने पर छन्दरहित और निष्परिग्रह हो अतुल योगसम्पत्तिलाभपूर्वक परमनिर्वाणपदवी लाभ किया ।२९। सुर-असुर-मनुष्यादि पूर्ण यह दृश्यमान संपूर्ण जगत् गुणमय पाशद्वारा बँधकर नित्य ही बध्यमान होता है ।३०। पुत्रादि—भ्रातृ-पुत्रादि एवं अपने और पराये पुरुषों के द्वरा यह पाश निर्मित है । यह भिन्न-दर्शन जगत् संसार उसी पाश में आकृष्यमाण होने के कारण दुःख से पराभूत हो गया है ।३१। इस पर भी अज्ञानरूपी कीचड़ में निमग्न होने से निकलने का भी उपाय नहीं है । मतिमान् अलर्क ने यह सब देखकर और "मेरा उद्धार हुआ है" इस भाँति विचारकर यह गाथा गाई थी ।३२। "अहो क्या कष्ट है ? मैं प्रथम राज्योपभोग करता था, अंत में जाना—योग की अपेक्षा परम सुख और कुछ नहीं है" ।३३

पुत्र उवाच

तातैनं त्वं समातिष्ठ मुक्तये योगमुत्तमम् । प्राप्स्यसे येन तद्ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचसि ॥३४
ततोऽहमपि यास्यामि किं यज्ञैः किं जपेन मे । कृतकृत्यस्य करणं ब्रह्मभावाय कल्पते ॥३५
ततोऽनुज्ञामवाप्याहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः । प्रयतिष्ये तथा मुक्तौ यथा यास्यामि निर्वृतिम् ॥३६

पक्षिण ऊचुः

एवमुक्त्वा स पितरं प्राप्यानुज्ञां ततश्च सः । ब्रह्मञ्जगाम मेधावी परित्यक्तपरिग्रहः ॥३७
सोऽपि तस्य पिता तद्वत्क्रमेण सुमहामतिः । वानप्रस्थं समास्थाय चतुर्थाश्रममभ्यगात् ॥३८
तत्रात्मजं समासाद्य हित्वा बन्धं गुणादिकम् । प्राप सिद्धिं परां प्राज्ञस्तत्कालोपात्तसन्मतिः ॥३९
एतत्ते कथितं ब्रह्मन्यत्पृष्टा भवता वयम् । सुविस्तरं यथावच्च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥४०
यश्चैतच्छृणुयाद्विप्र पठेद्वा सुसमाहितः ॥४१
यदश्वमेधावभृथस्नातः प्राप्नोति वै फलम् । सकलं तदवाप्नोति श्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ॥४२
एतत्संसारभ्रमणपरित्राणमनुत्तमम् । अलर्कात्रेयसंवादमशुभान्मुच्यते नरः ॥४३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे जडोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।४१।

पुत्र ने कहा—हे तात ! आप मुक्तिलाभ के लिये उस अनुत्तम योग का आचरण कीजिये तो ब्रह्म को प्राप्त हो सकोगे, उस ब्रह्म के लाभ होने से फिर शोक में अभिभूत होना नहीं पडेगा, मैं भी गमन करूँगा ।३४। यज्ञ और जप की मुझको क्या आवश्यकता है ? कृतकृत्य मनुष्य का कार्य केवल ब्रह्मलाभ के निमित्त है इसमें सन्देह नहीं ।३५। अत एव मैं आपकी आज्ञा ग्रहण करके द्वन्द्वरहित और परिग्रहशून्य होकर मुक्ति के लिये उस विषय में सम्यक् प्रकार यत्नवान् होऊँगा ।३६

पक्षी बोले—हे द्विज ! महाबुद्धिमान् वह जड पिता से इस प्रकार कह उनकी आज्ञा ग्रहणपूर्वक निष्परिग्रह होकर चला गया ।३७। उसके महामति पिता ने भी क्रमक्रम से वानप्रस्थता अवलम्बनपूर्वक चतुर्थ आश्रम में प्रवेश किया ।३८। वह पुत्र के सहित संगत होकर गुणादिबंधविसर्जनपूर्वक तत्कालोत्पन्न बुद्धि के प्रभाव से परम सिद्धि को प्राप्त हुए ।३९। हे ब्रह्मन् ! आपने मुझसे जो पूँछा था वह आपके निकट विस्तार सहित यथावत् वर्णन किया । अब और क्या सुनने की इच्छा है, उसे स्पष्ट करो ।४०। हे विप्र ! जो इसको सुने वा सावधान होकर पढ़े ।४१। वह अश्वमेध के अवभृथस्नान के फल को प्राप्त होता है। हे मुनिसत्तम ! इसके सुनने से वह सब मिलता है।४२। यही संसार में भ्रमण करने वालों की उत्तम रक्षा है इस अलर्क और दत्तात्रेय के संवाद को सुनकर मनुष्य अशुभ से छूट जाता है।४३

श्रीमार्कण्डेयपुराण के पितापुत्रसंवाद में जडोपाख्यान वर्णन का इकतालिसवाँ अध्याय समाप्त।४१।

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

(४२)

ब्रह्मोत्पत्तिवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

सम्यगेतन्ममाख्यातं भवद्भिर्द्विजसत्तमाः । प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्मवैदिकम् ।।१
अहो पितृप्रसादेन भवतां ज्ञानमीदृशम् । येन तिर्यक्त्वमप्येतत्प्राप्य मोहस्तिरस्कृतः ।।२
धन्या भवन्तः संसिद्धयै प्रागवस्थास्थितं यतः । भवतां विषयोद्भूतैर्न मोहैश्चाल्यते मनः ।।३
दिष्टया भगवता तेन मार्कण्डेयेन धीमता । भवन्तो वै समाख्याताः सर्वसन्देहहृत्तमाः ।।४
संसारेऽस्मिन्मनुष्याणां भ्रमतामतिसङ्कटे । भवद्विधैः समं सङ्गो जायते नातपस्विनाम् ।।५
यद्यहं सङ्गमासाद्य भवद्भिर्ज्ञानदृष्टिभिः । न स्यां कृतार्थस्तन्नूनं न मेऽन्यत्र कृतार्थता ।।६
प्रवृत्ते च निवृत्ते च भवतां ज्ञानकर्मणि । मतिमस्तमलां मन्ये यथा नान्यस्य कस्यचित् ।।७
यदि त्वनुग्रहवती मयि बुद्धिर्द्विजोत्तमाः । भवतां तत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषतः ।।८
कथमेतत्समुद्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम् । कथं च प्रलयं काले पुनर्यास्यति सत्तमाः ।।९
कथं च वंशा देवर्षिपितृभूतादिसम्भवाः । मन्वन्तराणि च कथं वंशानुचरितं च यत् ।।१०
यावत्यः सृष्टयश्चैव यावन्तः प्रलयास्तथा । यथाकल्पविभागश्च या च मन्वन्तरस्थितिः ।।११

अध्याय ४२

ब्रह्मकी उत्पत्ति का वर्णन

जैमिनि ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठगण ! वैदिककर्म दो प्रकार का है, प्रवृत्ति और निवृत्ति ! आपने वह विषय मुझसे सम्यक् प्रकार वर्णन किया ।१। अहो पिता के प्रसाद से आपने ऐसा ज्ञान प्राप्त किया है, उस ज्ञान के बल से तिर्यक् योनि को प्राप्त होकर भी आपका मोह दूर हुआ है ।२। आपका मन जब सिद्धि लाभार्थ पूर्वावस्था में ही रहता है, तब आप ही धन्य हैं, विषयजनित मोह आपके मन को विचलित नहीं कर सकता ।३। सौभाग्यवश ही महामति भगवान् मार्कण्डेयजी ने आपकी कथा कही थी आप सभी संदेह हरण करने वाले हैं ।४। इस संकटमय संसार में जो भ्रमण करते हैं, आपके समान तपस्वियों से मिलना उनके भाग्य में कठिन है ।५। आप ज्ञानदर्शी हैं आपका संग प्राप्त होकर भी यदि मेरा मनोरथ सिद्ध न हो तो फिर और कहीं भी होने की संभावना नहीं है ।६। आपको प्रवृत्त और निवृत्त, इस दो प्रकार कें ज्ञान कर्म में ऐसी विशदबुद्धि प्राप्त हुई है, मेरे विचार में ऐसी और किसी को नहीं है ।७। हे द्विजगणश्रेष्ठ ! यदि मेरे प्रति आपकी मति अनुग्रहवती हुई है तो मैं जो पूँछता हूँ, वह विस्तारसहित कहिये ।८। किस प्रकार से स्थावर जंगमात्मक जगत् की सृष्टि हुई। और फिर किस प्रलयकाल में लय को प्राप्त होगी ? ।९। किस प्रकार वंश से देवता, ऋषि, पितृगण और भूतादिकी उत्पत्ति होती है, किस प्रकार से सब मन्वन्तरों का आविर्भाव होता है ? इसके अतिरिक्त वंशों का आनुपूर्विक विवरण ।१०। समस्त सृष्टि, समस्त प्रलय, कल्पविभाग, मन्वन्तरों की स्थिति ।११। पृथ्वी का संस्थान और परिमाण, गिरि,

यथा च क्षितिसंस्थानं यत्प्रमाणं च वै भुवः । यथास्थितिसमुद्राद्रिनिम्नगाः काननानि च ॥१२
भूर्लोकादिश्च लोकानां गणः पातालसंश्रयः। गतिस्तथार्कसोमादिग्रहर्क्षज्योतिषामपि ॥१३
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वमेतदाभूतसंप्लवम् । उपसंहृते च यच्छेषं जगत्यस्मिन्भविष्यति ॥१४

पक्षिण ऊचुः

प्रश्नभारोऽयमतुलो यस्त्वया मुनिसत्तम । पृष्टस्तं ते प्रवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वेह जैमिने ॥१५
मार्कण्डेयेन कथितं पुरा क्रौष्टुकये यथा । द्विजपुत्राय शान्ताय व्रतस्नाताय धीमते ॥१६
मार्कण्डेयं महात्मानमुपासीनं द्विजोत्तमैः । क्रौष्टुकिः परिपप्रच्छ यदेतत्पृष्टवान्प्रभो ॥१७
तस्य चाकथयत्प्रीत्या यन्मुनिर्भृगुनन्दनः । तत्ते प्रकथयिष्यामः शृणु त्वं द्विजसत्तम ॥१८
प्रणिपत्य जगन्नाथं पद्मयोनिं पितामहम् । जगद्योनिं स्थितं सृष्टौ स्थितौ विष्णुस्वरूपिणम् ॥
प्रलये चान्तकर्त्तारं रौद्रं रुद्रस्वरूपिणम् ॥१९

मार्कण्डेय उवाच

उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । पुराणमेतद्वेदाश्च मुखेभ्योऽनुविनिःसृताः ॥२०
पुराणसंहिताश्चक्रुर्बहुलाः परमर्षयः । वेदानां प्रविभागश्च कृतस्तैस्तु सहस्रशः ॥२१
धर्मज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च महात्मनः । तस्योपदेशेन विना नहि सिद्धं चतुष्टयम् ॥२२
वेदान्सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्य मानसाः । पुराणं जगृहुश्चाद्या मुनयस्तस्य मानसाः ॥२३

शैल, सरित् और वनों का विवरण ।१२। मृत्युलोक, स्वर्गलोक और पातालसमूह का वृत्तान्त, एवं सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिष इत्यादि की गति ।१३। यह सब प्रलयपर्यन्त सुनने की इच्छा करता हूँ। जगत् संसार प्रलयकाल में उपसंहृत होने पर जो अवशेष रहता है वह भी सुनने की अभिलाषा करता हूँ।१४

पक्षी बोले—हे जैमिने ! हे मुनिसत्तम ! आपने हमारे ऊपर अतुलनीय प्रश्न भार डाला है, तुम्हारे पूँछने से हम कहते हैं सुनो ।१५। पहले मार्कण्डेय जी ने जिस प्रकार शान्तवृत्ति विद्यास्नातक क्रौष्टुकि के निमित्त से कथन किया है वह कहेंगे ।१६। हे प्रभो ! आपने जो पूँछा, क्रौष्टुकिने भी ब्राह्मणों से उपासित महात्मा मार्कण्डेय के निकट यही प्रश्न किया था ।१७। हे द्विजश्रेष्ठ ! भृगुनन्दन ने प्रसन्नचित्त होकर जो कहा था मैं वही तुमसे कहता हूँ सुनो ! ।१८। जो जगत्कारण पद्मयोनि पितामहरूप से इस विश्व को उत्पन्न करते हैं विष्णुस्वरूप से स्थिति विधान करते हैं, रौद्रस्वरूप रूद्ररूप से प्रलयकाल में सबका संहार करते हैं, उन्हीं जगन्नाथ को प्रणाम करके हम भी वही सविशेष वर्णन करते हैं सुनो ।१९

मार्कण्डेय जी बोले— पूर्व काल में अव्यक्तयोनि ब्रह्मा जी के उत्पन्न होते ही उनके चारों मुख से वेदों और पुराणों का आविर्भाव हुआ।२०। ऋषियों ने उस पुराणसंहिता को विविध अंश में और वेद को भी सहस्र भाग में विभक्त किया।२१। उन महात्मा के विना उपदेश, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वरीय भाव, इन चारों के सिद्ध होने की संभावना नहीं है।२२। उनके मन से सप्तर्षिगणों के उत्पन्न होने पर उन मानस ऋषियों ने उनके निकट से समस्त वेद और तदीय मानसोत्पन्न अन्यान्य आद्य ऋषियों ने पुराण ग्रहण

भृगोः सकाशाच्च्यवनस्तेनोक्तं च द्विजन्मनाम् । ऋषिभिश्चापि दक्षाय प्रोक्तमेतन्महात्मभिः ॥२४
दक्षेण चापि कथितमिदमासीत्तदा मम । तत्तुभ्यं कथयाम्यद्य कलिकल्मषनाशनम् ॥२५
सर्वमेतन्महाभाग श्रूयतां मे समाधिना । यथाश्रुतं मया पूर्वं दक्षस्य गदतो मुने ॥२६
प्रणिपत्य जगद्योनिमजमव्ययमाश्रयम् । चराचरस्य जगतो धातारं परमं पदम् ॥२७
ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसंयमे । यत्कारणमनौपम्यं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥२८
तस्मै हिरण्यगर्भाय लोकतन्त्राय धीमते । प्रणम्य सम्यग्वक्ष्यामि भूतवर्गमनुत्तमम् ॥२९
महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् । प्रमाणैः पञ्चभिर्गम्यं स्रोतोभिः षड्भिरन्वितम् ॥३०
पुरुषाधिष्ठितं नित्यमनित्यमिव च स्थितम् । तच्छ्रूयतां महाभाग परमेण समाधिना ॥३१
प्रधानं कारणं यत्तदव्यक्ताख्यं महर्षयः । यदाहुः प्रकृतिं सूक्ष्मां नित्यां सदसदात्मिकाम् ॥३२
ध्रुवमक्षय्यमजरममेयं नान्यसंश्रयम् । गन्धरूपरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ॥३३
अनाद्यन्तं जगद्योनिं त्रिगुणप्रभवाप्ययम् । असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥३४
प्रलयस्यानु तेनेदं व्याप्तमासीदशेषतः । गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ॥३५
गुणभावात्सृज्यमानात्सर्गकाले ततः पुनः । प्रधानं तत्त्वमुद्भूतं महान्तं तत्समावृणोत् ॥३६

किये ।२३। च्यवन ने भृगु के समीप से उस पुराण को लेकर ऋषियों के निकट प्रकाश किया, महात्मा ऋषियों ने वह पुराण दक्ष से कहा ।२४। दक्ष ने ही वह हमको प्रदान किया है, तब से वह हमारे पास रहता है । अब तुमसे कहते हैं इसके प्रसाद से कलियुग में पापसमूह नाश को प्राप्त होते हैं ।२५। हे मुने ! हें महाभाग ! हमने पहले दक्ष के निकट से जिस प्रकार सुना है, सावधान चित्त होकर हमसे वह सब सुनो ।२६। जो जगत् के कारण, जन्मरहित , और अव्यय हैं, जो चराचर जगत् के एक मात्र आश्रय और धाता हैं जो परमपदस्वरूप हैं ।२७। जो सृष्टि स्थिति प्रलय के कारण आदि पुरुष हैं जो उपमारहित और जिनमें समस्त ही प्रतिष्ठित रहता है ।२८। उन धीमान् हिरण्यगर्भ को प्रणाम करके अनुत्तम प्रपंच सम्यक् प्रकार वर्णन करते हैं ।२९। महत् से विशेषपर्यन्त जितने भौतिक-सृष्टि-विकार लक्षण पंचविध प्रमाण और षट्स्रोत के सहित आनुपूर्विक कहेंगे ।३०। हे महाभागृ ! यह भूतसृष्टि पुरुष से अधिष्ठित और इसी कारण नित्य होकर भी जिस प्रकार अनित्य के समान अवस्थित रहती है वह भी वर्णन करते हैं, तुम सावधान होकर सुनो ।३१। जो अव्यक्तनाम से कही जाती है, महर्षिगण जिसको सदसदात्मिका नित्य सूक्ष्मा प्रकृति कहते हैं ।३२। जो नित्य अक्षय, अजर और अपरिमेय है जो किसी का आश्रय ग्रहण करके अवस्थित नहीं है, जो गंधविहीन, रूपविहीन, रसहीन और शब्दस्पर्शरहित है ।३३। जो अनादि और अनन्त हैं, जो जगत् के उत्पत्ति स्थान हैं, जिनसे तीनों गुण उत्पन्न हुए हैं, जो अविनाशी हैं, जो सदा विद्यमान और अविज्ञेय हैं और जो सबके कारण हैं, वह प्रधानस्वरूप ब्रह्म सब के आगे विराजित रहकर ।३४। प्रलय के पीछे अखिल जगत् को सम्यक् प्रकार से व्याप्त करके विराजमान रहते हैं । तीनों गुण परस्पर अनुकूल और अव्याहत रूप से उनमें ही अधिष्ठित रहते हैं ।३५। सृष्टिकाल में क्षेत्र के अधिष्ठान के कारण उनके उस गुण की सहायता से, सृष्टिकार्य में उद्यत होने पर प्रथम तो प्रधानतत्त्व आविर्भूत होकर महत्त्व को आच्छन्न कर देता है ।३६। बीज जिस प्रकार त्वचाद्वारा ढका रहता है प्रधान

यथा बीजं त्वचा तद्वदव्यक्तेनावृतो महान् । सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधोदितः ।।३७
ततस्तस्मादहंकारस्त्रिविधो वै व्यजायत । वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्च स तामसः ।।३८
महता चावृतः सोऽपि यथा व्यक्तेन वै महान् । भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः ।।३९
ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् । आकाशं शब्दमात्रं तु भूतादिश्चावृणोत्ततः ।।४०
स्पर्शतन्मात्रमेवेह जायते नात्र संशयः । बलवाञ्जायते वायुस्तस्य स्पर्शगुणो मतः ।।४१
वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह । ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ।।४२
स्पर्शमात्रस्तु वै वायुरूपमात्रं समावृणोत् । ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ।।४३
सम्भवन्ति ततो ह्यापश्चासन्वै ता रसात्मिकाः । रसमात्रं तु ता ह्यापो रूपमात्रं समावृणोत् ।।४४
आपश्चापि विकुर्वत्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे । संघातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः ।।४५
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता । अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततश्च ते ।।४६
न शान्ता नापि घोरास्ते न मूढाश्चाविशेषतः । भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसात् ।।४७
वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकात् । वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्संप्रवर्त्तते ।।४८
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाणि च । तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ।।४९
एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः । श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ।।५०

भी उसी प्रकार महत्तत्त्व को आवृत्त करता है यह महत्तत्त्व त्रिविध है सात्त्विक, राजस और तामस ।३७। फिर महत्तत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है । यह अहंकार भी तीन प्रकार है, वैकारिक, तैजस और तामस । यह तामस अहंकार ही भूतादि के नाम से कहा गया है ।३८। महत्तत्त्व जिस प्रकार प्रधान तत्त्व के द्वारा समाच्छन्न होता है, ऐसे ही यह अहंकार भी महत्तत्त्व के द्वारा ढका रहता है और उसी के प्रभाव से विकार को प्राप्त होकर शब्दतन्मात्र को सृजन कर देता है ।३९। शब्दलक्षण आकाश इस शब्दतन्मात्र से ही उत्पन्न होता है तब तामस अहंकार द्वारा शब्दमात्र आकाश आच्छादित होता है ।४०। इससे निःसन्देह स्पर्श तन्मात्र की उत्पत्ति होती है, तब महाबली स्पर्शगुणयुक्त वायु उत्पन्न होता है ।४१। शब्दमात्र आकाश से स्पर्शमात्र आवृत्त रहता है इसी से वायु की विकृति के कारण रूपमात्र उत्पन्न होता है वायु से रूपगुणयुक्त ज्योति का आविर्भाव हुआ ।४२। स्पर्शमात्र वायु के द्वारा रूपमात्र आवृत्त होता है पीछे ज्योति विकृत होकर रसमात्र को उत्पन्न करती है ।४३। इसी से रसात्मक जल उत्पन्न होता है, वही रसात्मक जल रूपमात्र से आवृत्त होता है ।४४। फिर रसमात्र जल विकृत होकर गंधमात्र को उत्पन्न करता है, उसी से गंधगुणयुक्त पृथ्वी की उत्पत्ति होती है ।४५। इस प्रकार से उन उन पदार्थों में जो तन्मात्रा है, उसके द्वारा ही तन्मात्रता की गिनती होती है, इसके लिये कोई विशेष वाचक नहीं होंने से यह भी अविशेष है ।४६। इस अविशेष के कारण वह शान्त, घोर वा मूढ़ भी नहीं हैं, तामस अहंकार से ही इस प्रकार भूत तन्मात्रा की उत्पत्ति होती है ।४७। सत्त्वोद्रिक्त सात्त्विक और वैकारिक अहंकार से एक साथ वैकारिक सृष्टि प्रवर्तित होती है ।४८। पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्मेन्द्रिय को तैजस इन्द्रिय कहा गया है, वहाँ वैकारिक दशक देवता हैं ।४९। मन ग्यारहवाँ है । उल्लिखित दश इन्द्रिय और ग्यारहवाँ मन, वहाँ वैकारिक देवता कहे गये हैं, श्रोत्र त्वक्, चक्षु, जीभ और नासिका ।५०। इनके द्वारा शब्दादि का बोध

शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते । पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाक्पञ्चमी भवेत् ॥५१
गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यं च कर्म तत् । आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समाविशत् ॥५२
द्विगुणो जायते वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः । रूपं तथैवाविशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ ॥५३
त्रिगुणस्तु ततश्चाग्निः स शब्दस्पर्शरूपवान् । शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसमात्रं समाविशत् ॥५४
तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्ता रसात्मिकाः । शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धं समाविशत् ॥५५
संहता गन्धमात्रेण आवृण्वंस्ते महीमिमाम् । तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु दृश्यते ॥५६
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः । परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् ॥५७
भूमेरन्तस्त्विमं सर्वं लोकालोकं घनावृतम् । विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः ॥५८
गुणं पूर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् । नानावीर्याः पृथग्भूताः सप्तैते संहतिं विना ॥५९
नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः । समेत्यान्योन्यसंयोगमन्योन्याश्रयिणश्च ते ॥६०
एकसंघातचिह्नाश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः । पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ॥६१
महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते । जलबुद्बुदवत्तत्र क्रमाद्वै वृद्धिमागतम् ॥६२
भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे बृहत्तदुदकेशयम् । प्राकृतेऽण्डे विवृद्धः सन्क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥६३
स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते । आदिकर्ता च भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥६४

होता है, इसीकारण यह बुद्धीन्द्रिय कहीं गई हैं चरण पायु (गुदा) उपस्थ, हस्त और वाक्य ।५१। इत्यादि को कर्मेन्द्रिय कहते हैं । इनके द्वारा गति, मलत्याग, आनन्द, शिल्प और वाक्यकथन यह सब कार्य सम्पन्न होते हैं, शब्दमात्र आकाश स्पर्शमात्र में आविष्ट होकर ।५२। द्विगुण वायु को उत्पन्न करता है, किन्तु स्पर्श ही उसका विशेषगुण है, शब्द और स्पर्श यह दोनों गुण रूपमें आविष्ट होकर ।५३। अग्नि उत्पन्न करते हैं यह अग्नि शब्द, स्पर्श और रूप इन तीन गुण से युक्त है, अनन्तर शब्द, स्पर्श और रूप, यह रसमात्र में आविष्ट होकर ।५४। चौगुने रसात्मक जल को उत्पन्न कर देते हैं, अन्त में शब्द, स्पर्श, रूप और रस गंधमात्र में आविष्ट होने से ।५५। उनके संघट में संहत होकर इस पृथ्वी को समावृत्त करते हैं इसी कारण भूतगण में पंचगुणसम्पन्न स्थूलाकार भूमि दिखाई देती है ।५६। इसी हेतु वह शान्त, घोर और मूढ कहकर परिगणित है, वह परस्पर अनुप्रवेशपूर्वक परस्पर को धारण करते हैं ।५७। यह घनावृत्त समस्त लोकालोक भूमि के अन्तर में सन्निविष्ट रहते हैं, नियतत्व के हेतु यह इन्द्रियग्राह्य "विशेष" नाम से कहे जाते हैं ।५८। पहले पहले गुण उत्तरोत्तर में अनुप्रवेश करते हैं, यह नानावीर्यवान् सात पदार्थ जब तक परस्पर मिलन होकर पृथक् भाव में अवस्थित रहते हैं ।५९। तब तक प्रजासृष्टि में समर्थ नहीं होते । यह जिस समय परस्पर में मिलन होकर परस्पर को अवलम्बन पूर्वक ।६०। सम्यक् प्रकार ऐक्यता को प्राप्त होते हैं एवं जिस समय पुरुष का अधिष्ठान और प्रकृति का अनुग्रह लाभ करते हैं ।६१। उसी समय महत् से विशेषपर्यन्त इन सब में अण्ड उत्पादन करते हैं । यह अण्ड जलबुद्बुद् समान जल में आश्रयपूर्वक क्रमशः वर्द्धित होता रहता है ।६२। हे महामते ! सलिल में स्थित यह अंड भूतगण से बृहत् है ब्रह्मसंज्ञक क्षेत्र भी उस प्राकृत अण्ड में वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।६३। वही प्रथम शरीरी और पुरुष नाम से अभिहित है, वही भूतगण के आदिकर्ता ब्रह्मा हैं, वही इन सबसे आगे विराजित होते हैं ।६४। वही

तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् । मेरुस्तस्यानुसंभूतो जरायुश्चापि पर्वताः ॥६५
समुद्रा गर्भसलिलं तस्याण्डस्य महात्मनः । तस्मिन्नण्डे जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥६६
द्वीपाद्यद्रिसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः । जलानिलानलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः ॥६७
वृतमण्डं दशगुणैरेकैकत्वेन तैः पुनः । महता तत्प्रमाणेन सहैवानेन वेष्टितः ॥६८
महांस्तै सहितः सर्वैरव्यक्तेन समावृतः । एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ॥६९
अन्योन्यमावृत्य च ता अष्टौ प्रकृतयः स्थिताः । एषा सा प्रकृतिर्नित्या तदन्तः पुरुषस्य सः ॥७०
ब्रह्माख्यः कथितो यस्ते समासाच्छ्रूयतां पुनः । यथा मग्नो जले कश्चिदुन्मज्जञ्जलसम्भवम् ॥७१
वलयं क्षिपति ब्रह्मा स तथा प्रकृतिर्विभुः । अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥७२
एतत्समस्तं जानीयात्क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणम् । इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ॥
अबुद्धिपूर्वः प्रथमः प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ॥७३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे ब्रह्मोत्पत्तिर्नाम द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ।४२।

सचराचर त्रैलोक्य व्याप्त कर रहे है मेरु उस बृहत् अण्ड का पर्वत उसका जरायु ।६५। औरसमुद्र उसका गर्भसलिल है । सुर-असुर और मनुष्यों से पूर्ण समस्त जगत् उस अंडे में ही ।६६। द्वीपादि, पर्वत, सागर और ज्योतिसहित सब लोक उसमें स्थित, जल, वायु, अग्नि, और आकाश यह भूतादिसहित ।६७। प्रत्येक उत्तरोत्तर दशगुण नियम से बहिर्भाग में उस अंडे को परिवेष्टित किये रहते हैं । इसके अतिरिक्त उसी प्रमाण से महत्तत्त्व ने भी उनके संग अण्ड को आच्छादित किया है ।६८। प्रकृति इस महत्तत्त्व के सहित अंडे को आवरण करके शोभा पाती है । इस प्रकार सप्त प्राकृत आवरण द्वारा उक्तअंड आच्छादित है ।६९। इसी प्रकार से अष्ट प्रकृति परस्पर को आवरण करके स्थित हैं इन प्रकृति को नित्यस्वरूप जानना चाहिए इसके अन्त में वह पुरुष हैं ।७०। तुम्हारे निकट जो ब्रह्मसंज्ञित पुरुष का उल्लेख किया, उनका विषय संक्षेप से कहता हूँ, सुनो । जल में डूबा हुआ पुरुष जिस प्रकार जल के भीतर से उठने के समय में जल और जल में प्रगट ।७१। द्रव्य फेंक देता है, ब्रह्मा को भी उसी प्रकार प्रकृति का विभु जानना चाहिए । यह प्रकृति ही क्षेत्र और ब्रह्मा ही क्षेत्रज्ञ नाम से कथित हैं ।७२। यही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के लक्षण हैं, इस प्रकार ही क्षेत्रज्ञाधिष्ठित प्राकृत सृष्टि अबुद्धिपूर्वक प्रथम बिजली के समान आविर्भूत हुई है ।७३

श्रीमार्कण्डेयपुराण में ब्रह्मोत्पत्ति वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४२।

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मायुःप्रमाणवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवंस्त्वण्डसम्भूतिर्यथावत्कथिता मम । ब्रह्माण्डे ब्रह्मणो जन्म तथा चोक्तं महात्मनः ॥१
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्तो भृगुकुलोद्भव । यदा न सृष्टिर्भूतानामस्ति किंनु न चास्ति वा ॥
काले वै प्रलयस्यान्ते सर्वस्मिन्नुपसंहृते ॥२

मार्कण्डेय उवाच

यदा तु प्रकृतौ याति लयं विश्वमिदं जगत् । तदोच्यते प्राकृतोऽयं विद्वद्भिः प्रतिसंचरः ॥३
स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते । प्रकृतिः पुरुषश्चैव साधर्म्येणावतिष्ठतः ॥४
तदा तमश्च सत्त्वं च समत्वेन गुणौ स्थितौ । अनुद्रिक्तावनूनौ च ओतप्रोतौ परस्परम् ॥५
तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम् । तथा तमसि सत्त्वे च रजोऽप्यनुसृतं स्थितम् ॥६
उत्पत्तिर्ब्रह्मणो यावदायुर्वै द्विपरार्द्धिकम् । तावद्दिनं परेशस्य तत्समा संयमे निशा ॥७
(अष्टौ युगसहस्राणि अहोरात्रं प्रजापतेः । अनेनैव तु मानेन शतं ब्रह्मा स जीवति ॥
पितामहशतेनैव विष्णोर्मानं विधीयते । निमेषार्धेन शम्भोस्तु सहस्राणि चतुर्दश ॥

अध्याय ४३

ब्रह्मायुप्रमाण नामक वर्णन

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! आपने अण्डे की उत्पत्ति और ब्रह्माण्ड में महात्मा ब्रह्मा जी का जन्म यथावत् वर्णन किया ।१। हे भृगुवंशोद्भव ! प्रलय के अवसान में समस्त संहार को प्राप्त होने पर जब सृष्टि का कुछ भी विद्यमान नहीं था, इसके पीछे फिर किस प्रकार से भूतगण की उत्पत्ति हुई ? अब वही विषय आपसे सुनने की अभिलाषा करता हूँ ।२।

मार्कण्डेय जी बोले—जिस समय वह विश्व प्रकृति में लीन होता है, तब विद्वद्गण उसी को प्राकृत प्रलय कहते हैं ।३। प्रकृति के आत्मा में अवस्थित होने से संपूर्ण सृष्ट पदार्थ संहार को प्राप्त होते हैं, जिस समय प्रकृति और पुरुष साधर्म्य में अवस्थित होते हैं ।४। उस काल में सत्त्व और तम यह दो गुण समभावसहित अधिष्ठित होते है । उस समय उनमें किसी को भी किसी प्रकार की वृद्धि या न्यूनता विद्यमान नहीं रहती, वह दोनों परस्पर समभाव से मिलकर ताने बाने के समान अधिष्ठित रहते हैं ।५। तिल में तेल और दूध में घृत के समान रजोगुण भी सत्त्व और तमोगुण में प्राप्त होकर स्थित होता है ।६। सर्वेश्वर ब्रह्मा की परमायु का परिमाण द्विपरार्द्धपर्यन्त है । उनके दिन का परिमाण जिस प्रकार है, रात्रि का भी उसी प्रकार है ।७। (आठ सहस्रयुग का प्रजापति का दिन रात होता है इसी मान से ब्रह्मा जी सौ वर्ष जीते हैं ब्रह्मा की सौ अवस्था बीतने से विष्णु की अवस्था का प्रमाण है । शिव के आधे निमेष में

विनश्यन्ति तथा विष्णोरसंख्याताः पितामहाः ।) अहर्मुखे प्रबुद्धस्तु जगदादिरनादिमान् ॥
सर्वहेतुरचिन्त्यात्मा परः कोऽप्यपरक्रियः ॥८
प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु जगत्पतिः । क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ॥९
यथा मदो नवस्त्रीणां यथा वा माधवानिलः । अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथासौ योगमूर्त्तिमान् ॥१०
प्रधाने क्षोभ्यमाणे तु स देवो ब्रह्मसंज्ञितः । समुत्पन्नोऽण्डकोषस्थो यथा ते कथितं मया ॥११
स एव क्षोभकः पूर्वं स क्षोभ्यः प्रकृतेः पतिः । स सङ्कोचविकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि संस्थितः ॥१२
उत्पन्नः स जगद्योनिरगुणोऽपि रजोगुणम् । भुञ्जन्प्रवर्तते सर्गे ब्रह्मत्वं समुपाश्रितः ॥१३
ब्रह्मत्वे स प्रजाः सृष्ट्वा ततः सत्त्वातिरेकवान् । विष्णुत्वमेत्य धर्मेण कुरुते परिपालनम् ॥१४
ततस्तमोगणोद्रिक्तो रुद्रत्वे चाखिलं जगत् । उपसंहृत्य वै शेते त्रैलोक्यं त्रिगुणोऽगुणः ॥१५
यथा प्राग्व्यापकः क्षेत्री पालको लावकस्तथा । तथा स संज्ञामाप्नोति ब्रह्मविष्णुहरात्मिकाम् ॥१६
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान्रुद्रत्वे संहरत्यपि । विष्णुत्वे चाप्युदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः ॥१७
रजो ब्रह्मा तमो रुद्रो विष्णुः सत्त्वं जगत्पतिः । एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणाः ॥१८
अन्योन्यमिथुना ह्येते अन्योन्याश्रयिणस्तथा । क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम् ॥१९

१४००० चौदह सहस्र विष्णु हो गये होते हैं और ब्रह्मा कितने होते हैं इसकी संख्या नहीं है यह क्षेपक है ।) वह जगत् के आदि हैं, किन्तु उनका आदि कोई नहीं है । वह सबके कारण, अचिंत्यात्मा, परमेश्वर और क्रिया के अतीत हैं ।८। वह जगत्पति परमेश्वर परम योग हेतु प्रकृति और पुरुष में प्रविष्ट होकर उनको विक्षोभित करते हैं ।९। मद, गर्व या वसन्त वायु जिस प्रकार नव युवतियों के अन्तर में प्रविष्ट होकर क्षोभित करते हैं योगमूर्तिमान् ब्रह्मा भी इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष को विक्षोभित करते हैं ।१०। प्रकृति के क्षोभित होने पर वह ब्रह्मा नामधारी देवता अंडकोष में स्थित होकर समुत्पन्न होते हैं । मैंने तुम्हारे निकट यह कहा है ।११। वह प्रथम तो क्षोभित करते हैं, फिर प्रकृति के पति होकर स्वयं विक्षोभित होते हैं । इस प्रकार संकोच और विकास द्वारा वह प्रकृतिरूप में विराजित रहते हैं ।१२। वह जगत् योनि निर्गुण होकर भी प्रगट होकर रजोगुण अवलम्बनपूर्वक ब्रह्मा के रूप से उत्पन्न हो सृष्टि करने का उद्योग करते हैं ।१३। वह ब्रह्मरूप से प्रजासृजनपूर्वक सत्त्वगुण की अधिकता के कारण विष्णुमूर्ति धारण करके न्यायानुसार प्रजा का पालन करते हैं ।१४। तदनन्तर तमोगुण के उद्वेग से रुद्रमूर्ति ग्रहण करके संपूर्ण विश्व का संहार करते हुए शयन करते हैं इस प्रकार से वह निर्गुण होकर भी उल्लिखित तीन काल में तीनों गुणों की सर्जना करते हैं ।१५। सबके जननक्षेत्र सर्वव्यापी वह ईश्वर इस प्रकार से सृजन, रक्षण और संहार करने के कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर संज्ञा को प्राप्त हुए हैं ।१६। वह ब्रह्मत्व में संपूर्ण लोकों को उत्पन्न, रुद्रत्व में निधन और विष्णुत्व में उदासीन होकर अवस्थान करते हैं अर्थात् पालन करते हैं, स्वयम्भू की यह तीन अवस्था हैं ।१७। ब्रह्मा ही साक्षात् रजोगुण, रुद्र तमोगुण और जगत्पति विष्णु सत्त्वगुण हैं ।१८। उस प्रकार से यह तीनों देवता तीनों गुण रूप में परस्पर निपुण भाव से परस्पर को आश्रयपूर्वक विराजमान रहते हैं, क्षणमात्र को भी इनका वियोग नहीं है और मूहूर्त मात्र के लिये भी कोई किसी को परित्याग नहीं करता १९। इस प्रकार जगत् के आदि देवदेव चतुरानन रजोगुण

एवं ब्रह्मा जगत्पूर्वो देवदेवश्चतुर्मुखः । रजोगुणं समाश्रित्य स्रष्टृत्वे स व्यवस्थितः ॥२०
हिरण्यगर्भो देवादिरनादिरुपचारतः । भूपद्मकर्णिकासंस्थो ब्रह्माग्रे समजायत ॥२१
तस्य वर्षशतं त्वेकं परमायुर्महात्मनः । ब्राह्म्येणैव हि मानेन तस्य संख्यां निबोध मे ॥२२
निमेषैर्दशभिः काष्ठा तथा पञ्चभिरुच्यते । कलास्त्रिंशच्च वै काष्ठा मुहूर्तं त्रिंशदेव ताः ॥२३
अहोरात्रं मुहूर्त्तानां नृणां त्रिंशत्त वै स्मृतम् । अहोरात्रैश्च त्रिंशद्भिः पक्षौ द्वौ मास उच्यते ॥२४
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे । तद्देवानामहोरात्रं दिनं तत्रोत्तरायणम् ॥२५
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् । चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं शृणुष्व मे ॥२६
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कृतमुच्यते । शतानि सन्ध्या चत्वारि सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२७
त्रेता त्रीणि सहस्राणि दिव्याब्दानां शतत्रयम् । तस्य सन्ध्या समाख्याता संध्यांशश्च तथाविधः ॥२८
द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां द्वे शते तथा । तस्य सन्ध्या समाख्याता द्वे शताब्दे तदंशकः ॥२९
कलिः सहस्रं दिव्यानामब्दानां द्विजसत्तम । सन्ध्या सन्ध्यांशकश्चैव शतकौ समुदाहृतौ ॥३०
एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या कविभिः कृता । एतत्सहस्रगुणितमहो ब्राह्ममुदाहृतम् ॥३१
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवः स्युश्चतुर्दश । भवन्ति भागशस्तेषां सहस्रं तद्विभज्यते ॥३२
देवाः सप्तर्षयः सेन्द्रा मनुस्तत्सूनवो नृपाः । मनुना सह सृज्यन्ते संह्रियन्ते च पूर्ववत् ॥३३

अवलम्बन करके सब के सृजन कार्य में प्रवृत्त होते हैं ।२०। वह हिरण्यगर्भ देवादि और एक प्रकार से अनादि हैं । वह भूपद्मकर्णिका अवलम्बन पूर्वक सबके आगे आविर्भूत होते हैं ।२१। उन महात्मा की परमायुसंख्या ब्राह्ममान से शतवर्ष निरूपित है । उनकी संख्या कहता हूँ, सुनो ।२२। पन्द्रह निमेष में एक काष्ठा, तीस काष्ठा में एक कला, तीस कला में एक मुहूर्त्त ।२३। और तीस मुहूर्त्त में मनुष्य का एक दिन रात्र होता है, तीस दिन रात्र में अथवा दो पक्ष में एक मास होता है ।२४। छः मास में एक अयन, और दो अयन में एक वर्ष होता है । अयन दो प्रकार के हैं दक्षिणायन और उत्तरायण । इस प्रकार नरमान के एक वर्ष में देवताओं का एक अहोरात्र होता है, उन में उत्तरायण उनका दिन है ।२५। दिव्यपरिमाण से बारह हजार वर्ष में सत्यादि चार युग होते हैं, उन चारों युग का विभाग कहता हूँ, सुनो! ।२६। दिव्य चार हजार वर्ष में सत्ययुग होता है, चार सौ वर्ष उसकी संध्या और ४०० वर्ष संध्यांश है ।२७। तीन हजार दिव्य वर्ष में त्रेतायुग होता है, देवमान के तीन सौ वर्ष में उसकी संध्या और ३०० वर्ष संध्यांश होता है ।२८। द्वापर युग का परिमाण दो हजार दिव्य वर्ष है । दो सौ दिव्य वर्ष में उसकी संध्या और वर्ष २०० संध्यांश होता है ।२९। हे मुनिसत्तम ! एक हजार दिव्य वर्ष में कलियुग होता है, एवं उसकी संध्या और संध्यांश, दोनों ही एक शतक दिव्यवर्ष हैं ।३०। कवियों ने इस प्रकार से चारों युग का परिमाण बारह हजार दिव्य वर्ष में विभाग किया है, इसको सहस्र गुण करने से जो होता है, वही ब्रह्मा का एक दिन निरूपित है ।३१। हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा के इस एक दिन में यथा विभाग चौदह मनु उत्पन्न होते हैं, उनका सहस्र विभाग कल्पित होता है ।३२। इन्द्रादि देवता, सप्तर्षिगण, मनुगण और मनुपुत्र नृपतिगण मन्वन्तर के सहित उत्पन्न होते हैं और पूर्व के समान संहार को प्राप्त होते हैं ।३३। इकहत्तर चतुर्युग में एक

चतुर्युगानां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः । मन्वन्तरं तस्य संख्यां मानुषाब्दैर्निबोध मे ।।३४
त्रिंशत्कोटचस्तु सम्पूर्णाः संख्याता संख्यया द्विज । सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि च संख्यया ।।३५
विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकं विना । एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तं दिव्यैर्वर्षैर्निबोध मे ।।३६
अष्टौ वर्ष सहस्राणि दिव्यया संख्यया युतम् । द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ।।३७
चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्ममहः स्मृतम् । तस्यान्ते प्रलयः प्रोक्तो ब्राह्मो नैमित्तिको बुधैः ।।३८
भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकस्तन्निवासिनः । तदा विनाशमायान्ति महर्लोकश्च तिष्ठति ।।३९
तद्वासिनोऽपि तापेन जनलोकं प्रयान्ति वै । एकार्णवे च त्रैलोक्ये ब्रह्मा स्वपिति वै निशि ।।४०
तंत्प्रमाणैव सा रात्रिस्तदन्ते सृज्यते पुनः । एवं तु ब्रह्मणो वर्षमेकं वर्षशतं तु तत् ।।४१
शतं हि तस्य वर्षाणां परमित्यभिधीयते । पञ्चाशद्भिस्तथा वर्षैः परार्द्धमिति कीर्त्यते ।।४२
एकमस्य परार्द्धं तु व्यतीतं द्विजसत्तम । यस्यान्तेऽभून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिविश्रुतः ।।४३
द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्त्तमानस्य वै द्विज । वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकल्पितः ।।४४

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे ब्रह्मायुः प्रमाणकथनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।४३।

मन्वन्तर होता है, नरमान के अनुसार इसकी संख्या कहता हूँ सुनो ! ।३४। संपूर्ण तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस सहस्र ३०६७२०००० मनुष्यवर्ष ही एक मन्वन्तर का परिमाण है, अब दिव्यमान के वर्षानुसार सुनो ।३५-३६। आठ लाख बावन हजार दिव्यवर्ष में एक मन्वन्तर होता है ।३७। इस काल को चतुर्दशगुणित करने से ११९२८००० दिव्य वर्ष का ब्रह्मा का एक दिन होता है ४२९४०००००० यह मनुष्य वर्षों का ब्रह्मा का एक दिन होता है । हे ब्रह्मन् ! इस ब्राह्म दिन के अन्त में जो प्रलय संघटित होता है पण्डितगण उसी को नैमित्तिक प्रलय कहते हैं ।३८। भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक के निवासी इन लोकों के नाश को प्राप्त होने पर महर्लोक में जाकर रहते हैं ।३९। महर्लोक के निवासी प्रलयकालजनित ताप से जनलोक में प्रस्थान करते हैं, तब त्रिभुवन एकार्णव होता है, ब्रह्मा रात्रिकाल में शयन करते हैं ।४०। दिन का परिमाण जिस प्रकार है, ब्रह्मा जी की रात्रि का परिमाण भी उसी प्रकार है । रात्रि के अन्त में फिर सृजन कार्य आरंभ होता है । इस प्रकार तीन सौ साठ दिन में अर्थात् इतनी प्रलय में ब्रह्मा का एक वर्ष होता है ।४१। एक शत वर्ष को पर कहते हैं, इस प्रकार पञ्चाशत् वर्ष में एक परार्द्ध होता है ।४२। हे द्विजसत्तम ! इस भाँति ब्रह्मा का एक परार्द्ध बीत गया है उसी के अन्त में पाद्म नामक महाकल्प उपस्थित हुआ था ।४३। हे द्विज ! अब दूसरा परार्द्ध विद्यमान है, इसी को बाराह कल्प कहते हैं, यही प्रथम कल्प कहकर परिकल्पित है ।४४

श्रीमार्कडेयपुराण में ब्रह्मायुप्रमाणकथन नामक तिरालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४३।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

प्राकृतवैकृतसर्गवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

यथा ससर्ज वै ब्रह्मा भगवानादिकृत्प्रजाः । प्रजापतिः पतिर्देवस्तन्मे विस्तरतो वद ॥१

मार्कण्डेय उवाच

कथयाम्येष ते ब्रह्मन्ससर्ज भगवान्यथा । लोककृच्छाश्वतः कृत्स्नं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥२
पाद्मावसानसमये निशासुप्तोत्थितः प्रभुः । सत्त्वोद्रिक्तस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत ॥३
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति । ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥४
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः ॥५
विबुद्धः सलिले तस्मिन्विधायान्तर्गतां महीम् । अनुमानात्समुद्धारं कर्तुकामस्तदा क्षितेः ॥६
अकरोत्स तनूरन्याः कल्पादिषु यथा पुरा। मत्स्यकूर्मादिकास्तद्वद्वाराहं वपुरास्थितः ॥७
वेदयज्ञमयं दिव्यं वेदयज्ञमयो विभुः । रूपं कृत्वा विवेशाप्सु सर्वगः सर्वसम्भवः ॥८
समुद्धृत्य च पातालान्मुमोच सलिले भुवम् । जनलोकस्थितैः सिद्धैश्चिन्त्यमानो जगत्पतिः ॥९
तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता । विस्तृतत्वात्तु देहस्य न मही याति संप्लवम् ॥१०

अध्याय ४४

प्राकृतवैकृत का वर्णन

क्रौष्टुकि बोले—भगवान् प्रजापति प्रभु आदिस्रष्टा ब्रह्मा जी ने जिस प्रकार प्रजा को उत्पन्न किया था, वह मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ।१

मार्कण्डेय जी बोले—हे ब्रह्मन् ! जगत्कारण भगवान् अनादि ने जिस प्रकार इस स्थावर जंगम पूर्ण समस्त जगत् का निर्माण किया था, वह आपसे कहता हूँ ।२। पाद्म नामक प्रलय का अवसान होने पर अर्थात् पादकल्प के शेष होने पर सत्त्वगुणद्वारा उद्रिक्त प्रभु ब्रह्मा जी जब रात्रि बीतने पर सोकर उठे तो संपूर्ण भुवन को शून्य देखा ।३। उस समय जगत्कारण अव्यय ब्रह्मस्वरूपी नारायण के प्रति यह श्लोक कहा जाता है कि "सुना है जल शब्द का नाम नार-तनु है । उसमें वह अयन शयन करते हैं, इस कारण वह नारायण नाम से कीर्तित होते हैं ।४-५। नारायण ने जागरित होकर पृथ्वी को उस जल में डुबा हुआ अनुमान किया और उसके उद्धार की कामना से ।६। पूर्व पूर्व कल्प में मत्स्य कूर्मादि के समान वाराहमूर्त्ति धारण की ।७। वह वेदयज्ञ में प्रभु वेदयज्ञरूप शरीर को धारण करके वह सर्वगामी सर्वभावन वाराहरूप धर जल में प्रविष्ट हुए ।८। और फिर पाताल से उद्धार कर पृथ्वी को जल के ऊपर स्थापित किया फिर जन लोक निवासी महर्षियों से चिन्त्यमान वह जगत्पति प्रभु देखने लगे ।९। कि यह जल में नौका के समान डोलती है, विस्तार होने से यह ठहरती नहीं ।१०। इसके पीछे पृथ्वी को बारबार करके

ततः क्षितिं समीकृत्य पृथिव्यां सोऽसृजद्गिरीन् । प्राक्सर्गे दह्यमाने तु सदा संवर्तकाग्निना ॥११
तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भुवि सर्वशः । शैला एकार्णवे मग्ना वायुनापस्तु संहताः ॥१२
निषक्ता यत्र यत्रासंस्तत्र तत्राचलाभवन् । भूविभागं ततः कृत्वा सप्तद्वीपोपशोभितम् ॥१३
भूराद्यांश्चतुरो लोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् । सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ॥१४
अबुद्धिपूर्वकस्तस्मात्प्रादुर्भूतस्तमोमयः । तमोमोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ॥१५
अविद्या पञ्चपूर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः । पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ॥१६
बहिरन्तश्चाप्रकाशः संवृतात्मा नगात्मकः । मुख्या नगा यतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ॥१७
तं दृष्ट्वा साधकं सर्गममन्यदपरं पुनः । तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक्स्रोतो ह्यवर्तत ॥१८
यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तिः सा तिर्यक्स्रोतस्ततः स्मृतः । पश्वादयस्ते विख्यातास्तमःप्राया ह्यवेदिनः ॥१९
उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः । अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकाः ॥२०
अन्तः प्रकाशास्ते सर्वे आवृतास्तु परस्परम् । तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ॥२१
ऊर्द्धवस्रोतस्तृतीयस्तु सात्त्विकोर्द्धवमवर्तत । ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः ॥२२
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतः समुद्भवाः । तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गो हि स स्मृतः ॥२३
तस्मिन्सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा । ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ॥२४
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः । प्रादुर्बभौ तदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥२५

प्रथम तो पर्वतों की सृष्टि की । प्रथम सृष्टि को संवर्तक अग्नि ने जलाया था ।११। सब पर्वत उस अग्नि के सन्ताप से विशीर्णकलेवर होकर समुद्र में डूब गये थे तब वहाँ का जल भी वायु द्वारा एकत्रित हो गया ।१२। अत एव पर्वत जिस जिस स्थल में संलग्न हुए थे उसी उसी स्थान में अचल हो गये, अनन्तर सप्तद्वीप रूप में भू विभाग करके ।१३। पूर्ववत् भूर्लोकादि चार लोक का विभाग किया । पूर्व पूर्व कल्प के समान सृष्टि—विषय की चिन्ता करते करते ।१४। तमोमय तमः मोह महामोह, तामिस्र और अंधतामिस्रनामक ।१५। पंच अविद्या उन महात्मा से प्रादुर्भूत हुई, इस प्रकार चिन्ता करने से अप्रतिबोधयुक्त सृष्टि पांच प्रकार से स्थित हुई ।१६। वह संवृतात्मक और पर्वतस्वरूप तथा अपने बहिर्भाग और अनन्तर देश में सब ही अप्रकाशित थी, यह सृष्टि पर्वतप्रधान होने के कारण मुख्य सर्ग के नाम से कही गई है ।१७। उन्होंने यह असाधक सृष्टि देखकर फिर दूसरी सृष्टि की इच्छा की तब उनके ध्यान से तिर्यक्स्रोत प्रवृत्त हुआ ।१८। सृष्टि की चिन्ता करते करते उनसे तिर्यक्स्रोत प्रवाहित होने के कारण यह तिर्यक्स्रोत कहाता है, इससे अधिक तमोगुणवाले पशु आदिक अज्ञानी हुए ।१९। वह अज्ञान में ज्ञान मानने वाले उन्मार्गगामी हुए वे अहंकारी अहंमानी अट्ठाईस प्रकार के हुए ।२०। यह सब अन्तःप्रकाश और परस्पर को आवरण करके अवस्थित हैं इस सृष्टि को भी असाध्य विचारकर फिर चिन्ता करने से अन्य ।२१। ऊर्ध्वपथगामी तीसरा सात्त्विक स्रोत प्रवाहित होने लगा, उसमें जो उत्पन्न हुआ, वह सुख प्रीति की अधिकाई वाले बाहर भीतर अनावृत्त ।२२। भीतर बाहर प्रकाशवाले और तुष्टात्मा थे इस तीसरी सृष्टि को देवसर्ग कहते हैं ।२३। इस सृष्टि के उत्पन्न होने से ब्रह्मा जी को अत्यन्त संतोष हुआ, तब वह फिर उत्तम साधक सर्ग की चिन्ता करने लगे ।२४। तब उन यथार्थ चिन्तासमन्वित ब्रह्मा जी के चिन्ता करने पर अव्यक्त से अर्वाक्स्रोत नामक साधक सर्ग उत्पन्न हुआ ।२५। यह अर्वाक

यस्मादर्वाग्व्यवर्तन्त ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तु ते । ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ।।२६
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारिणः । प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ।।२७
पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गः स चतुर्द्धा व्यवस्थितः । विपर्ययेण सिद्धया च शांत्या तुष्टया तथैव च ।।२८
निवृत्तं वर्तमानं च तेऽर्थं जानन्ति वै पुनः । भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ।।२९
ते परिग्राहिणः सर्वे संविभागरतास्तथा । चोदनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च ते ।।३०
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः । तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ।।३१
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्गश्चैन्द्रियकः स्मृतः । इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्वकः ।।३२
मुख्यः सर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः । तिर्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पञ्चमः ।।३३
तथोर्द्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः । ततोर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ।।३४
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः । पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ।।३५
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः । इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः ।।३६
प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः । सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।३७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे प्राकृतवैकृतसर्गवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।४४।

ऊर्ध्व से अग्र हुए हैं, इस कारण इसको अर्वाक्स्रोत सर्ग कहते हैं, इनमें प्रकाश अधिक, तम थोड़ा, और रजोगुण बहुत है ।२६। इसी कारण इनमें दुःख अधिक और बार बार कार्य करते हैं, यह बाहर भीतर प्रकाश वाले साधक मनुष्य हैं ।२७। पांचवी सृष्टि अनुग्रहनामक है, विपर्यय सिद्धि, शांति, और सृष्टिद्वारा चार भाग में विभक्त है ।२८। जो भूत और वर्तमान समस्त अर्थ को जानते हैं, उन भूतादिक और समस्त भूतों की सृष्टि छः सर्ग कहा गया है ।२९। वह सब ही स्त्री रखने वाले सम्यक् विभाग विषय में रत, प्रेरणा में निपुण और कुत्सितस्वभाव हैं, इनको ही भूतादिक कहते हैं ।३०। प्रथम जिससे ब्रह्मा जी की सृष्टि होती है, उसको महत् सृष्टि कहते हैं, ब्रह्मांश की सृष्टि दूसरी है, उसको भूतसर्ग कहते हैं ।३१। ऐन्द्रियक वैकारिक सृष्टि तीसरी है, यही प्राकृत सर्ग और बुद्धिपूर्वक है ।३२। मुख्य सर्ग चौथा है, स्थावरगण को ही मुख्य कहा गया है, कथित तिर्यक् योनिरूप तिर्यक्स्रोत पंचम सर्ग है ।३३। ऊर्ध्वस्रोत की सृष्टि छठी है, वह देवसर्ग के नाम से ही कही गई है, इसके पीछे अर्वाक्स्रोत सातवीं सृष्टि है वह मानुष है ।३४। अनुग्रह सर्ग आठवाँ है, वह सात्त्विक और तामस भेद से दो प्रकार का है यह पाँच वैकृत सृष्टि और पूर्वोक्त तीन प्राकृत सृष्टि हैं ।३५। प्राकृत और विकारी कौमार नामक सृष्टि नवम है, इस भाँति प्रजापति की नवसंख्यक सृष्टि कही गई है ।३६। यह प्राकृत और विकारी ही जगत् के मूलकारण हैं, जो जगदीश ने सृजन किये हैं, अब और क्या सुनने की इच्छा है ।३७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में प्राकृतवैकृत वर्णन नामक चौवालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४४।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः (462)

सृष्टिप्रकरणवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

समासात्कथिता सृष्टिः सम्यग्भगवता मम । देवादीनां भवं ब्रह्मन्विस्तरात्तु ब्रवीहि मे ।।१

मार्कण्डेय उवाच

कुशलाकुशलैर्ब्रह्मन्भाविता पूर्वकर्मभिः । ख्यात्या तया ह्यनिर्मुक्ताः प्रलये ह्युपसंहृताः ।।२
देवाद्याः स्थावरान्ताश्च प्रजा ब्रह्मंश्चतुर्विधाः । ब्रह्मणः कुर्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसास्तदा ।।३
ततो देवासुरपितॄन्मानुषांश्च चतुष्टयम् । सिसृक्षुरम्भस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ।।४
युक्तात्मनस्तमोमात्रा उद्रिक्ताभूत्प्रजापतेः । सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः ।।५
उत्ससर्ज ततस्ता तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् । सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ।।६
अन्यां तनुमुपादाय सिसृक्षुः प्रीतिमाप सः । सत्त्वोद्रेकास्ततो देवा मुखतस्तस्य जज्ञिरे ।।७
उत्ससर्ज च भूतेशस्तनुं तामप्यसौ विभुः । सा चापविद्धा दिवसं सत्त्वप्रायमजायत ।।८
सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम् । पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे ।।९
सृष्ट्वा पितॄनुत्ससर्ज तनुं तामपि स प्रभुः । सा चोत्सृष्टाभवत्सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता ।।१०

अध्याय ४५

सृष्टिप्रकरण का वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! आपने मुझसे जिस प्रकार सृष्टिप्रकरण वर्णन किया, वह अतिसंक्षेप से हुआ है, अत एव हे ब्रह्मन् ! अब देवता इत्यादि की उत्पत्ति विस्तार सहित कहिये ।१

मार्कण्डेय जी बोले—हे ब्रह्मन् ! पूर्वजन्म के शुभ-अशुभ कर्म से ही फिर उत्पत्ति होती है, कारण कि वह प्रलय में संहृत होते हैं, मुक्त नहीं होते ।२। देवता इत्यादि से स्थावर पर्यन्त चार प्रकार की प्रजा के प्रलयकाल में नष्ट होने पर ब्रह्मा जी ने फिर उसकी सृष्टि के निमित्त इच्छा की, तब अपने मन से ।३। देवता, असुर, पितर और मनुष्य, यह चार प्रकार प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से उन्होंने जल में अपने अंश निक्षेप किया ।४। सृष्टि की इच्छा करने वाले प्रजापति में तमोगुण का उद्रेक होने के कारण पहले उनकी जंघा से असुरगण उत्पन्न हुए ।५। इसी निमित्त उनको तमोगुणात्मक शरीर प्रदान किया और वही शरीर त्यक्त होकर तत्काल तमोगुणात्मिका रात्रि के नाम से विख्यात हुआ ।६। अनन्तर प्रजापति अन्य शरीर ग्रहण करके प्रसन्नता को प्राप्त हुए, उसमें सत्त्वगुण का उद्रेक होने के कारण उनके मुख से देवताओं की सृष्टि होने पर ।७। उनको सात्त्विक शरीर दिया, तब त्यागा हुआ सत्त्वगुण बहुल कलेवर ही दिन नाम को प्राप्त हुआ ।८। फिर सत्त्वमय दूसरा शरीरग्रहणपूर्वक पितरों की इच्छा से पितरों को उत्पन्न किया ।९। पितरों को उत्पन्न करके प्रभु ने उस शरीर का भी परित्याग किया, तब वही दिन रात्रि के

रजोमात्रात्मिकामन्यां तनुं भेजेऽथ स प्रभुः । ततो मनुष्याः सम्भूता रजोमात्रसमुद्भवाः ॥११
सृष्ट्वा मनुष्यान्स विभुरुत्ससर्ज तनुं ततः । ज्योत्स्ना समभवत्सा च नक्तांतेऽहर्मुखे च या ॥१२
इत्येतास्तनवस्तस्य देवदेवस्य धीमतः । ख्याता रात्र्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च वै द्विज ॥१३
ज्योत्स्ना सन्ध्या तथैवाहः सत्त्वमात्रात्मकं त्रयम् । तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात्तमोधिका ॥१४
तस्माद्देवा दिवा रात्रावसुरास्तु बलान्विताः । ज्योत्स्नागमे च मनुजाः सन्ध्यायां पितरस्तथा ॥१५
भवन्ति बलिनोऽधृष्या विपक्षाणां न संशयः । तद्विपर्ययमासाद्य प्रयान्ति च विपर्ययम् ॥१६
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्येतानि वै प्रभोः । ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपसृतानि तु ॥१७
चत्वार्येतान्यथोत्पाद्य तनुमन्यां प्रजापतिः । रजस्तमोमयीं रात्रौ जगृहे क्षुत्तृडन्वितः ॥१८
तदन्धकारे क्षुत्क्षामानसृजद्भगवानजः । विरूपाञ्छ्मश्रुलानत्तुमारब्धास्ते च तां तनुम् ॥१९
रक्षाम इति तेभ्योऽन्ये य ऊचुस्ते तु राक्षसाः । खादाम इति ये चोचुस्ते यक्षा यक्षणाद्द्विज ॥२०
तान्दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्यन्त वेधसः । समारोहणहीनाश्च शिरसो ब्रह्मणस्तु ते ॥२१
सर्पणात्तेऽभवन्सर्पा हीनत्वादहयः स्मृताः । सर्पान्दृष्ट्वा ततः क्रोधात्क्रोधात्मानो विनिर्ममे ॥२२
वर्णेन कपिलेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः । ध्यायतो गां ततस्तस्य गन्धर्वा जज्ञिरे सतः ॥२३
जज्ञिरेऽपि ततो वाचं गन्धर्वास्तेन ते स्मृताः । अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः ॥२४

अभ्यन्तर स्थित संध्या रूप में परिणत हुआ ।१०। इसके बाद रजोमात्रात्मिका अन्य तनु ग्रहणपूर्वक रजोगुण बहुल मनुष्य सृष्टि उत्पन्न किया ।११। मनुष्यों को उत्पन्न करके उस विभु ने वह शरीर भी त्याग किया, वही ज्योत्सना हुआ यह ज्योत्सना रात्रि के शेष और दिन के प्रथम भाग में प्रादुर्भूत होती है ।१२। हे द्विज ! बुद्धिमान् देवदेव के यह समस्त विग्रह ही दिवा, रात्रि, संध्या और ज्योत्स्ना के नाम से विख्यात हुए हैं ।१३। ज्योत्सना संध्या और दिवा यह तीन सत्त्वमात्रात्मिका है, रात्रि तामसी है इस कारण ही रात्रि त्रियामा हुई है ।१४। पूर्वोक्त गुणाधिक्य से ही दिन में देवता, रात्रि में असुर, ज्योत्सना में मनुष्य और संध्याकाल में पितरगण ।१५। अधिक बलशाली होकर शत्रुओं से अजेय होते हैं अर्थात् शत्रु इनको संग्राम में नहीं जीत सकते और विपरीत बलशाली होते हैं ।१६। प्रजापति ने दिन, रात्रि, संध्या और ज्योत्सना, यह चार प्रकार के शरीर उत्पन्न किये, यह ब्रह्मा जी का त्रिगुणात्मक शरीर है ।१७। प्रजापति ने इन चारों शरीरों को उत्पन्न करके भूँख-प्यास से युक्त रज और तमोमयी रात्रि को ग्रहण किया ।१८। उस अंधकार में भगवान् अज (ब्रह्मा) ने भूख से कृश विरूप डाढ़ी मूँछवालों का सृजन किया, तब वह उस शरीर के खाने को प्रवृत्त हुए ।१९। हे द्विज ! जब वह शरीर भक्षण करने लगे तब जिन्होंने "रक्षा करो" यह कहा, वह राक्षस और जिन्होंनें "भक्षण करुँगा" यह कहा, वह यक्ष नाम से प्रसिद्ध हुए ।२०। उनको देखकर अप्रसन्नता उपस्थित होने से विधाता के सब केश गिरने लगे, यह केश ब्रह्मा के मस्तक से गिरकर ।२१। विचरण करने के कारण सर्पसंज्ञा को प्राप्त हुए, हीनजाति होने से इन्हें अहि भी कहते हैं, सर्पों के देखने से क्रोध युक्त होकर उनको क्रोधात्मा किया ।२२। कपिलवर्ण से उत्पन्न उग्रस्वभाव पिशिताशन (मांस भोजी) गणों का प्रादुर्भाव हुआ । गौ की चिन्ताकाल में गंधर्वों की उत्पत्ति हुई।२३। वाक्य ग्रहण करते-करते उत्पन्न होने के कारण वह गंधर्व नाम को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार

ततः स्वदेहतोऽन्यानि वयांसि पशवोऽसृजत् । मुखतोऽजाः ससर्ज्जाथ वक्षसश्चावयोऽसृजत् ॥२५
गाश्चैवोदरतो ब्रह्मा पार्श्वाभ्यां च विनिर्ममे। पद्भ्यां चाश्वान्स मातङ्गान्रासभाञ्छशकान्मृगान्॥२६
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव नानारूपाश्च जातयः । ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥२७
एवं पश्वौषधीः सृष्ट्वा ह्ययजच्चाध्वरे विभुः । तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा ॥२८
गौरजः पुरुषो मेषो ह्यश्वाश्वतरगर्दभाः । एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे ॥२९
श्वापदं द्विखुरं हस्ती वानरा पक्षिपञ्चमाः । औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥३०
गायत्रीं च तृचं चैव त्रिवृत्सामरथन्तरम् । अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥३१
यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा । बृहत्साम तथोक्तं च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥३२
सामानि जगतीन्छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा । वैरूपमतिरात्रं च निर्ममे पश्चिमान्मुखात् ॥३३
एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च । आनुष्टुभं स वैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥३४
विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च । वयांसि च ससर्ज्जादौ कल्पस्य भगवान्विभुः ॥३५
उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे । सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरपितृन्प्रजाः ॥३६
ततोऽसृजत्स भूतानि स्थावराणि चराणि च । यक्षान्पिशाचान्गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसां गणान् ॥३७
नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् । अव्ययं च व्ययं चैव यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ॥३८
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्टेः प्रतिपेदिरे । तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥३९

अष्टविध देवयोनि उत्पन्न करके ।२४। अपने देह से अन्य समस्त पशु पक्षी उत्पन्न किये । मुख से छाग, हृदय से भेंडें ।२५। उदर और पार्श्व स्थान से गौ, दोनों पैरों से अश्व, हस्ती, गर्दभ, शशक (खरगोश), मृग ।२६। ऊंट और खच्चर तथा रोम से फलमूलशाली अनेक प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न हुई हैं ।२७। भगवान् त्रेतायुग के प्रारंभ में इस प्रकार पशु और औषधी उत्पन्न करके यज्ञसृष्टि में नियुक्त हुए थे ।२८। गौ, छाग, महिष, मेष, अश्व, खच्चर और गर्दभ, इन सब पशुओं को ग्राम्य कहते हैं, अब आरण्य अर्थात् वन के पशु कहता हूँ ।२९। श्वापद, द्विखुर, हस्ती, वानर, पक्षी, जलचर, पशु और सरीसृप सर्पादि इन सात को आरण्यवासी प्राणी कहते हैं ।३०। विधाता ने प्रथम मुख से यज्ञ की गायत्री, त्रि-ऋक्, त्रि-वृत, साम रथन्तर और अग्निष्टोम उत्पन्न किया ।३१। दक्षिण मुख से यजुः, त्रैष्टुभछन्द, पंचदश स्तोम बृहत्साम और उक्थ को उत्पन्न किया ।३२। पश्चिम मुख से साम जगतीछन्द, पंचदश स्तोम तथा वैरूप और अतिरात्र को उत्पन्न किया ।३३। उत्तर मुख से इक्कीस अथर्व, आप्तोर्याम, आनुष्टुभ और वैराज को उत्पन्न किया ।३४। भगवान् विभु ने कल्प के पहले बिजली, वज्र, मेघ रोहित (लाल) इन्द्र धनुष, और पक्षियों की सृष्टि की है ।३५। इसके उपरान्त देवता, असुर, पितृ और मनुष्यों के उत्पन्न होने पर उनके शरीर से नानाविध प्राणी उत्पन्न हुए हैं ।३६। इसके उपरान्त स्थावर, जंगम, भूतगण, यक्ष, पिशाच, गंधर्व और अप्सरागण ।३७। नर, किन्नर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग और भुजंग इत्यादि सम्पूर्ण नश्वर और अविनश्वर स्थावर, जंगम पदार्थ उत्पन्न हुए हैं।३८। जिनका जो कर्म है, वह सृष्टि के प्रथम ही निर्दिष्ट हुआ है, अत एव वह बार-बार उत्पन्न होकर उन्हीं सब कर्मों को प्राप्त होते हैं।३९। प्राणिगण

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ।।४०
इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः । नानात्वं विनियोगं च धातैव यद्व्यधात्स्वयम् ।।४१
नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम् । वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ।।४२
ऋषीणां नामधेयानि याश्च देवेषु सृष्टयः । शर्वर्यन्ते प्रसूतानामन्येषां च ददाति स ।।४३
यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ।।४४
एवंविधाः सृष्टयस्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । शर्वर्यन्ते प्रबुद्धस्य कल्पे कल्पे भवन्ति वै ।।४५

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।४५।

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

सृष्टिवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

अर्वाक्स्रोतस्तु कथितो भवता यस्तु मानुषः । ब्रह्मन्विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा समसृजद्यथा ।।१
यथा च वर्णानसृजद्यद्गुणांश्च महामते । यच्च येषां स्मृतं कर्म विप्रादीनां वदस्व तत् ।।२

मार्कण्डेय उवाच

ब्रह्मणः सृजतः पूर्वं सत्याभिध्यायिनस्तथा । मिथुनानां सहस्रं तु मुखात्सोऽथासृजन्मुने ।।३

पूर्व जन्म में हिंसा, अहिंसा, मृदुता (कोमलता), क्रूरता, धर्म, अधर्म, सत्य और मिथ्या इनकी जिस प्रकार चिन्ता करते हैं दूसरे जन्म में उनको वही प्राप्त होती है ।४०। प्राणियों में इन्द्रियों के अर्थ और शरीर में इन्द्रियाँ अनेक प्रकार के कर्मानुसार उस विभु ने स्वयं निर्माण की है ।४१। प्राणियों के नाम और रूप उनके कृत अकृत्य प्रपंच तथा देवताओं के कर्म आदि में वेद शब्द से निर्माण किये ।४२। ऋषियों के नाम तथा देवताओं की सृष्टि सब उन्होंने प्रलय के उपरान्त पूर्व के समान की है ।४३। जिस प्रकार ऋतु के बदलने में उसके लिङ्गादि दीखने लगते हैं, ऐसे ही युग-युग में आने वाले भाव प्रगट होते हैं ।४४। इस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा जी प्रतिकल्प में ही प्रलयान्त के समय सृष्टि करते हैं ।४५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सृष्टिप्रकरण वर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।४५।

अध्याय ४६

सृष्टि का वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने अर्वाक्स्रोत मनुष्यों का जो विषय कहा अब फिर उसी को विस्तारसहित कहिये ।१। हे महामते ! जिस गुणयुक्त समस्त वर्णों की जिस प्रकार सृष्टि हुई और ब्राह्मणादि का जो जो कर्तव्य है वह सब कथा प्रकाशित कीजिये ।२

मार्कण्डेय जी बोले—सृष्टि के प्रथम ही ध्यानशील ब्रह्मा जी के मुख से सहस्र मिथुन की उत्पत्ति हुई

जातास्ते ह्युपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ताः स्वतेजसः । सहस्रमन्यद्वक्षस्थो मिथुनानां ससर्ज ह ॥४
ते सर्वे रजसोद्रिक्ताः शुष्मिणश्चाप्यमर्षिणः । ससर्जान्यत्सहस्रं तु द्वंद्वानामूरुतः पुनः ॥५
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृताः । पद्भ्यां सहस्रमन्यच्च मिथुनानां ससर्ज ह ॥६
उद्रिक्तास्तमसा सर्वे निःश्रीका ह्यल्पतेजसः । ततः संघर्षमाणास्ते द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिनः ॥७
अन्योन्यं हृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमुः । ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन्मिथुनानां हि सम्भवः ॥८
मासि मास्यार्तवं यत्तु न तदासीत्तु योषिताम् । तस्मात्तदा न सुषुवुः सेवितैरपि मैथुनैः ॥९
आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव ताः सकृत् । (कुलिकं कुलिका चैव उत्पद्यन्ते मुमूर्षताम्) ॥
ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन्मिथुनानां हि सम्भवः ॥१०
ध्यानेन मनसा तासां प्रजानां जायतेऽसकृत् । शब्दादिर्विषयः शुद्धः प्रत्येकं पञ्चलक्षणः ॥११
इत्येषा मानुषी सृष्टिर्या पूर्वं वै प्रजापतेः । तस्यान्ववायसम्भूता यैरिदं पूरितं जगत् ॥१२
सरित्सरःसमुद्रांश्च सेवन्ते पर्वतानपि । तास्तदा ह्यल्पशीतोष्णा युगे तस्मिंश्चरन्ति वै ॥१३
तृप्तिं स्वाभाविकीं प्राप्ता विषयेषु महामते । न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वेषो नापि मत्सरः ॥१४
पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेतास्तु सर्वशः । ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः ॥१५
पिशाचोरगरक्षांसि तथा मत्सरिणो जनाः । पशवः पक्षिणश्चैव नक्रा मत्स्याः सरीसृपाः ॥१६
अवारका ह्यण्डजा वा ते ह्यधर्मप्रसूतयः । न मूलफलपुष्पाणि नार्तवा वत्सराणि च ॥१७

है ।३। यह सब तेजवान् और सत्त्व की अधिकतावाले हुए, उनके वक्षस्थल (छाती) से अन्य सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए थे ।४। वह सब तेजस्वी और क्रोधितस्वभाव तथा रजोगुणी थे, उनके ऊरुदेश से जो सहस्र मिथुन की उत्पत्ति हुई ।५। वह रज और तमोगुणोद्रिक्त तथा ईर्षायुक्त हुए और दोनों पैरों से जो सहस्र मिथुन हुये ।६। वह तमोगुणी और लक्ष्मीरहित निस्तेज हुए, फिर संघर्षण से द्वन्द्वरूप प्राणी हुए ।७। और वह द्वन्द्वोत्पन्न प्राणी प्रसन्न चित्त से परस्पर मैथुन करने में प्रवृत्त हुए तब से कल्प में इस भाँति मिथुन की उत्पत्ति हुई ।८। पहले स्त्रियों का प्रतिमास में रजोधर्म नहीं होता था, इस कारण वह दूसरे समय में मैथुन करके भी ।९। सन्तान उत्पन्न नहीं करती थीं, केवल अवस्था के अन्त में एक बार सन्तान होती थी । (कुलिक और कुलका यह अन्त अवस्था में प्रगट होते थे) तब से इस कल्प में मिथुन की इसी प्रकार होती आती है ।१०। जब ब्रह्मा जी ने प्रजा की चिन्ता की, तब उनके मन से एक साथ जो पंचमहाभूत और शब्दादि विषय उत्पन्न हुए ।११। इसी को प्रजापति की मानसी सृष्टि कहते हैं इस समय उसी सृष्टि से जगत् परिपूर्ण हो रहा है ।१२। पूर्वयुग में प्रजागण अल्प शीतोष्ण होकर सरित्, सरोवर और समुद्र के समीप तथा पर्वतों में विचरण करते थे ।१३। हे महामते ! वह उपभोग्य विषय में स्वाभाविक तृप्ति लाभ करते और उनमें किसी प्रकार का विघ्न, द्वेष या मत्सरादि नहीं था ।१४। वह घर न बनाकर पर्वत और समुद्र के तट में वास करते एवं सदा निष्कामचारी और प्रसन्नचित्त थे ।१५। पिशाच, उरग, राक्षस, अभिमानी मनुष्य, पशु, पक्षी, नक्र (नाके), मत्स्य, विच्छु ।१६। अवारक (प्राणी विशेष) और अंडज प्राणी अधर्म से उत्पन्न हुए हैं । उस काल मूल फल पुष्प ऋतु और वर्ष इत्यादि कुछ नहीं था ।१७। उस

सर्वकालसुखः कालो नात्यर्थं घर्मशीतता । कालेन गच्छता तेषां पित्रा सिद्धिरजायत ॥१८
ततश्च तेषां पूर्वाह्ले मध्याह्ने च वितृप्तता । पुनस्तथेच्छतां तृप्तिरनायासेन साभवत् ॥१९
इच्छतां च तथायासो मनसः समजायत । अपां सौक्ष्म्यं ततस्तासां सिद्धिर्नाम्ना रसोल्लसा ॥२०
समजायत चैवान्या सर्वकामप्रदायिनी । असंस्कार्यैः शरीरैश्च प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः ॥२१
तासां विना तु संकल्पं जायन्ते मिथुनाः प्रजाः । समं जन्म च रूपं च म्रियन्ते चैव ताः समम् ॥२२
अनिच्छा द्वेषसंयुक्ता वर्तन्ते तु परस्परम् । तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमतां विना ॥२३
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु । आयुः प्रमाणं जीवन्ति न च क्लेशाद्विपत्तयः ॥२४
क्वचित्क्वचित्पुनः साभूत्क्षितिर्भाग्येन सर्वशः । कालेन गच्छता नाशमुपयान्ति यथा प्रजाः ॥२५
तथा ताः क्रमशो नाशं जग्मुः सर्वत्र सिद्धयः । तासु सर्वासु नष्टासु नभसः प्रच्युता रसाः ॥२६
पयसः कल्पवृक्षास्ते संभूता गृहसंस्थिताः । सर्वे प्रत्युपभोगाश्च तासां तेभ्यः प्रजायत ॥२७
वर्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे तदा । ततः कालेन वैरागस्तासामाकस्मिकोऽभवत् ॥२८
मासि मास्यार्तवोत्पत्त्या गर्भोत्पत्तिः पुनः पुनः । रागोत्पत्त्या ततस्तासां वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः ॥२९
प्रणेशुरपरे चासंश्चतुःशाखा महीरुहाः । वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥३०
तेष्वेव जायते तेषां गन्धवर्णरसान्वितम् । अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु ॥३१

समय अत्यन्त गरमी या अत्यन्त शीत कुछ नहीं था, सर्वदा ही अत्यन्त सुख का समय था । कालक्रम से उनको अद्भुत सिद्धि उत्पन्न हुई ।१८। पूर्वाह्ल वा मध्याह्न में उनकी तृप्ति न होने पर इच्छा करने से सहज में वह तृप्त हो जाते ।१९। और इच्छा करते ही मन से उनका मनोरथ प्रगट हो जाता था तब जल की सूक्ष्मता के कारण उनकी नानाप्रकार रसोल्लासवती नामक अन्य सिद्धि ।२०। उपस्थित होकर संपूर्ण अभिलाषा पूर्ण करती । वह 'संस्कारहीन हो कर भी' स्थिरयौवनवाले थे ।२१। संकल्प के विना ही उनकी मिथुन प्रजा उत्पन्न होती, यह मिथुन प्रजा जिस प्रकार एक संग उत्पन्न होती, वैसे ही रूपादि की समता लाभ करके एक संग ही प्राण त्याग करती ।२२। उनकी परस्पर के प्रति अभिलाषा या द्वेष कुछ नहीं था । सब ही समान भाव से समय बिताते थे, उनमें कोई उत्तम या अधम नहीं था क्योंकि सब आयु और रूपादि में समान भाव से रहते थे ।२३। यह मिथुन प्रजा मनुष्य परिमाण के चार हजार वर्ष जीवित रहती और बिना ही क्लेश तथा विपत्ति के प्राणत्याग करती थीं ।२४। दैववशतः पृथ्वी किसी किसी स्थान में इस प्रकार हो जाती कि जिससे प्रजा क्रमानुसार जीवन विसर्जन करती ।२५। तब क्रमानुसार वह सब सिद्धियाँ नष्ट हो गई, उनके नष्ट होने पर आकाश से रस गिरने लगे ।२६। जल, दूध की प्राप्ति हुई और घरों में कल्पवृक्ष भी उत्पन्न हो गये, इन कल्पवृक्षों से ही उनका समस्त भोग प्राप्त होने लगा ।२७। त्रेतायुग के प्रारंभ में मनुष्यगण इस प्रकार निर्वाह करते थे, अनन्तर कालवशतः उनको आकस्मिक राग हो गया ।२८। तब इस प्रकार राग की उत्पत्ति से उनकी मास-मास में ऋतु और इसी कारण बार-बार गर्भोत्पत्ति होने लगी और उनके घरों में स्थित कल्पवृक्षों में राग उत्पन्न होने लगा ।२९। तब वह कल्पवृक्ष नष्ट हो गये और चार शाखावाले दूसरे वृक्ष उत्पन्नहो गये, उनके फलों में वस्त्र और आभरण लगते थे ।३०। और उन फलों के प्रत्येक पुट में सुन्दर गंध और वर्णयुक्त बलकारक

तेन ता वर्तयन्ति स्म मुखे त्रेतायुगस्य वै । ततः कालान्तरेणैव पुनर्लोभान्वितास्तु ताः ॥३२
वृक्षास्ताः पर्यगृह्णन्त ममत्वाविष्टचेतसः । नेशुस्तेनापचारेण ते हि तासां महीरुहाः ॥३३
(मूलेषु चापरं वासं चक्रुः शालामहीरुहाम्) । ततो द्वन्द्वान्यजायन्त शीतोष्णक्षुन्मुखानि वै ॥
तास्तद्द्वन्द्वोपघातार्थं चक्रुः पूर्वं पुराणि तु ॥३४
मरुधन्वसु दुर्गेषु पर्वतेषु दरीषु च । संश्रयन्ति च दुर्गाणि वार्क्षं पार्वतमौदकम् ॥३५
कृत्रिमं च तथा दुर्गं मित्वा मित्वात्मनोऽङ्गुलैः । मानार्थानि प्रमाणानि तास्तु पूर्वं प्रचक्रिरे ॥३६
परमाणुः परं सूक्ष्मं त्रसरेणुर्महीरजः । वालाग्रं चैव लिक्षां च यूकां चाथ यवोदरम ॥३७
क्रमादष्टगुणान्याहुर्यवानष्टौ तथाङ्गुलम् । षडंगुलं पदं तच्च वितस्तिर्द्विगुणं स्मृतम् ॥३८
द्वे वितस्ती तथा हस्तो ब्राह्म्यतीर्थादिवेष्टितः । चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो नाडिकायुगमेव च ॥३९
क्रोशो धनुः सहस्रे द्वौ गव्यूतिस्तच्चतुर्गुणम् । प्रोक्तं च योजनं प्राज्ञैः संख्यानार्थमिदं परम् ॥४०
चतुर्णामथ दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु । चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तच्चक्रुर्यत्नतस्तु वै ॥४१
पुरं च खेटकं चैव तद्वद्द्रोणीमुखं द्विज । शाखानगरक चापि तथा खर्वटकं द्रमी ॥४२
ग्रामसंघोषविन्यासं तेषु चावसथान्पृथक् । सोत्सेधवप्रकारं च सर्वतः परिखावृतम् ॥४३

बिना मक्खियों के मधु उत्पन्न होता था ।३१। त्रेतायुग के प्रारम्भ में यह मधुपान करके उस समय की प्रजा जीवन धारण करती थी, अनन्तर कालक्रम में वह अत्यन्त लोभी होकर ।३२। ममतायुक्त मन से उन सब वृक्षों को ग्रहण करने लगे, तब इस अपचार से सब वृक्ष नष्ट हो गये ।३३। (क्योंकि वृक्षों की जड़ों में रहने की जगह शाला बना ली थी) अनन्तर शीत, उष्ण, क्षुधा, इत्यादि समस्त द्वन्द्व उत्पन्न हुए, उन सब द्वन्द्वों के निवारण के लिये उन्होंने पहले पुर बनाये ।३४। तब मरुभूमि, पर्वत और गुफा इत्यादि में सब दुर्ग निर्मित होने पर वृक्षों के, पर्वतों के और जल इत्यादि के दुर्ग में वास करने लगे ।३५। और अपनी अपनी अंगुली आदि के परिमाण से समस्त कृत्रिम दुर्ग परिमित करके परिमाण निरूपण के लिये प्रमाण नियत किया ।३६। अति सूक्ष्म प्रमाणार्थ परमाणु जाली के छिद्रों में किरण पड़ने से सूक्ष्म रज दीख पड़ती है, उसके तीसरे भाग को परमाणु कहते हैं त्रसरेणु (तीस परमाणु का एक त्रसरेणु) और धूलि और स्थूल प्रमाणार्थ केशाग्र (तीस त्रसरेणु का एक केशाग्र) निष्क (तीस केशाग्र का एक निष्क) यूका (तीस निष्क का एक यूका) और यव स्थिर हुआ है ।३७। आठ यव में एक अंगुल होता है, छः अंगुल में एक पद, दो पद में एक वितस्ति (बालिस्त) ।३८। दो बालिस्त में एक हाथ, ब्राह्मतीर्थपर्यन्त वेष्टित चार हाथ में एक धनुर्दंड वा नाड़िका युग ।३९। दोहजार धेनु में एक गव्यूति (दो कोश) और चार गव्यूति में एक योजन होता है । बुद्धिमान् पुरुषों ने संख्या निरूपण करने के लिये इस प्रकार निर्द्धारण किया है ।४०। पूर्वोक्त चार प्रकार के दुर्ग में तीन स्वाभाविक हैं, अपर कृत्रिम अर्थात् मनुष्यकृत है । यही दुर्गकर्त्तव्य है ।४१। हे द्विज ! इसके बाद उन्होंने उन सब स्थानों में पुर, खेटक (छोटे ग्राम), द्रोणीमुख, शाखानगर, खर्वटक, द्रमी ।४२। ग्राम और संघोष इन सब को वसा करके उन सबमें फिर पृथक् पृथक् (निवास स्थान) बनाये, जिनके चारों ओर ऊंची दीवारें और परिखावरण खाँई थी ।४३। जो लम्बाई में दो कोश

योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागायतं पुरम् । प्रागुदक्प्रवणं शस्तं शुद्धवंशबहिर्गमम् ॥४४
तदर्द्धेन तथा खेटं तत्पादेन च खर्वटम् । न्यूनं द्रोणीमुखं तस्मादष्टभागेन चोच्यते ॥४५
प्राकारपरिखाहीनं पुरं खर्वटमुच्यते । शाखानगरकं चान्यन्मन्त्रिसामन्तभुक्तिमत् ॥४६
तथा शूद्रजनप्रायाः स्वसमृद्धकृषीवलाः । क्षेत्रोपभोग्यभूमध्ये वसतिर्ग्रामसंज्ञिता ॥४७
अन्यस्मान्नगरादेर्या कार्यमुद्दिश्य मानवैः । क्रियते वसतिः सा वा विज्ञेया वसतिर्नरैः ॥४८
दुष्टप्रायो विना क्षेत्रैः परभूमिचरो बली । ग्राम एव द्रमीसंज्ञो राजवल्लभसंश्रयः ॥४९
शकटारूढभाण्डैश्च गोपालैर्विपणं विना । गोसमूहैस्तथा घोषो यत्रेच्छाभूमिकेतनः ॥५०
त एवं नगरादींस्तु कृत्वा वासार्थमात्मनः । निकेतनानि द्वन्द्वानां चक्रुश्चोपशमाय वै ॥५१
गृहाकारा यथापूर्वं तेषामासन्महीरुहाः । तथा संस्मृत्य तत्सर्वं चक्रुर्वेश्मानि ताः प्रजाः ॥५२
वृक्षस्यैवङ्गताः शाखास्तथैवं च परागता । नताश्चैवोन्नताश्चैव तद्वच्छाखाः प्रचक्रिरे ॥५३
याः शाखाः कल्पवृक्षाणां पूर्वमासन्द्विजोत्तम । ता एव शाखा गेहानां शालात्वं तेन तासु तत् ॥५४
कृत्वा द्वन्द्वोपघातं ते वार्तोपायमचिन्तयन् । नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेष्वशेषतः ॥५५
विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः । ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतामुखे तदा ॥५६

और जो अष्ट भाग में चौड़ा है, उसको पुर कहते हैं । इस पुर का पूर्व और उत्तर भाग जलद्वारा प्लावित होने से और उसमें विशुद्ध वंश निर्मित बर्हिगम (सेतु) होने से वह श्रेष्ठ होता है ।४४। पुर के आधे लक्षणयुक्त स्थान को खेटक, उससे आधे लक्षणयुक्त को खर्वटक और पुर के अष्ट भाग लक्षणाक्रान्त को द्रोणी मुख कहते हैं ।४५। जिस पुर में प्राकार है और परिखा नहीं है, उसको वर्मवत् पुर कहते हैं, जिसमें मंत्री और सामन्तादिक वास करते हों, और उसमें नानाप्रकार भोग के पदार्थ भी हों उसको शाखानगर कहते हैं ।४६। जिस स्थान में शूद्रगण और स्वीय समृद्धियुक्त किसान वास करते हैं और जिसके चारों ओर खेत तथा उपभोग्य भूमि (उद्यानादि) विद्यमान हैं, उसको ग्राम कहते हैं ।४७। कोई कार्य उद्देश्य करके अन्यान्य नगरादि से मनुष्य आकर वास करते हैं उसको वसति कहते हैं ।४८। जहाँ के सब मनुष्य दुष्टप्राय बलवान् और अपना क्षेत्र न होने पर भी पराया क्षेत्र ग्रहण करते हैं और जहाँ राजप्रिय मनुष्य वास करते हैं, उस ग्राम को द्रमी कहते हैं ।४९। गोपाल लोग जहाँ अपने बर्तन भाड़ा गाड़ी पर लादकर रखते हैं और जहाँ गायें अधिक वास करती हैं, एवं जहाँ बाजार हाट न हो और अपनी इच्छानुसार बिना धन धरती मिलती हो, उसको घोष कहते हैं।५०। उन्होंने इस प्रकार अपने रहने के लिये नगरादि निर्माण करके समस्त द्वन्द्व (दुःख) निवारण के अर्थ और व्यापारादि करने के लिये घर बनाये। पहले समस्त वृक्ष जिस प्रकार उनके गृहतुल्य थे, उनको स्मरण करके उसी प्रकार सब गृह निर्माण किये।५१-५२। वृक्ष की शाखाएँ जिस भाँति एक के पीछे एक नीचे और ऊँचे भाव से अवस्थित होती है, इसी भाँति उन्होंने समस्त गृह बनाये ।५३। हे द्विजोत्तम ! पूर्व में कल्पवृक्ष की जो सब शाखाएं थी, उन सब शाखाओं ने इस समय उनके सब गृहों का शालात्व लाभ किया अर्थात् वैसे ही ढालू और ऊँचे शिखर के घर किये ।५४। जब इन शालाओं ने उनके शीत उष्ण इत्यादि सब दुःखों का विनाश किया, तब वह सब जीविका निर्वाह की चिन्ता करने लगे, क्योंकि उसकाल मधु के सहित समस्त कल्पवृक्ष नष्ट हो गये थे ।५५। तब वह समस्त प्रजा विषाद से व्याकुल और भूख-प्यास से व्याकुल अत्यन्त कातर हो गई । उसी समय त्रेतायुग के

वार्त्तास्वसाधिता ह्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः। तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नगतानि वै ॥५७
वृष्ट्यावरुद्धैरभवन्स्रोतः खातानि निम्नगाः । ये पुरस्तादपां स्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ॥५८
ततो भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन् । अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥५९
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे । प्रादुर्भावस्तु त्रेतायामाद्योऽयमौषधस्य तु ॥६०
तेनौषधेन वर्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे मुने । रागलोभौ समासाद्य प्रजाश्चाकस्मिकौ तदा ॥६१
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् । वृक्षगुल्मौषधीश्चैव मात्सर्याच्च यथाबलम् ॥६२
तेन दोषेण ता नेशुरोषध्यो मिषतां द्विज । अग्रसद्भूर्युगपत्तास्तदौषध्यो महामते ॥६३
पुनस्तासु प्रणष्टासु विभ्रान्तास्ताः पुनः प्रजाः। ब्रह्माणं शरणं जग्मुः क्षुधार्त्ताः परमेष्ठिनम् ॥६४
स चापि तत्त्वतो ज्ञात्वा तदा ग्रस्तां वसुन्धराम्। वत्सं कृत्वा सुमेरुं तु दुदोह भगवान्विभुः ॥६५
दुग्धेयं गौस्तदा तेन सस्यानि पृथिवीतले। जज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ताः पुनः ॥६६
औषध्यः फलपाकान्ता गणाः सप्तदश स्मृताः। व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः ॥६७
प्रियङ्गवः कोविदाराः कोरदूषाः सतीनकाः। माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः ॥६८
आढक्यश्चणकाश्चैव शणाः सप्तदश स्मृताः। इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्याणां जातयः पुरा ॥६९
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश । व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः ॥७०

प्रारम्भ में उनकी इस प्रकार सिद्धि उत्पन्न हुई थी।५६। उस समय उनकी इच्छा होने पर ही बहुत वर्षा होती, वह वर्षा के समस्त जल निम्नगामी होकर।५७। रुका हुआ समस्त वृष्टिका जल स्रोतद्वारा खात (गहाराई) करता हुआ निम्नगा (नदी) रूप में परिणत हुआ। पहले जो सामान्य जल पृथ्वी में गिरा था।५८। इस समय वही सब जल मिट्टी के संयोग से दोषरहित हो गया। इस में ग्राम्य और आरण्य जो चौदह वृक्ष एवं समस्त गुल्म बिना ही जोते बोये उत्पन्न हुए थे।५९। वह सब ऋतुकाल में फल और पुष्प उत्पन्न करने लगे। इस प्रकार से त्रेतायुग के प्रारम्भ में संपूर्ण औषधी उत्पन्न हुई।६०। हे मुने! प्रजागण अकस्मात् राग और लोभ को प्राप्त होकर उन औषधियों से उत्पन्न पदार्थों के द्वारा त्रेतायुग के प्रारम्भ में जीवन धारण करने लगे।६१। तदनन्तर जिससे अपना शरीर अतिशय बलवान् हो इस कारण नदी, क्षेत्र, पर्वत, वृक्ष, गुल्म और समस्त औषधियों का आश्रय करने लगे।६२। हे द्विजवर! इसी दोष से देखते देखते वह सब औषधी नष्ट हो गई अर्थात् हे महामते! पृथ्वी ने एक काल में ही उन सब औषधियों को ग्रास कर लिया।६३। इस प्रकार सब औषधियों के नष्ट होने पर फिर संपूर्ण प्रजा विभ्रान्त हो गई और भूख से आतुर होकर परमेष्ठी ब्रह्मा जी की शरण ग्रहण की।६४। उन विभु भगवान् ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को सम्यक् प्रकार ग्रासकारिणी जान सुमेरुपर्वत को बछड़ा बनाकर दुहा।६५। तब भूमि पृथ्वीतल में समस्त धान्य दुहाने लगी, उससे सब बीज उत्पन्न हुए एवं ग्राम और वन के वृक्ष उत्पन्न हुए।६६। सत्रह प्रकार के फल पकने पर सूखने वाली समस्त औषधी उत्पन्न हुई उनके नाम व्रीहि (चावल धान्य) यव गेहूं कोदों, तिल।६७। प्रियंगु, फलिनी, राई, कोविदार, लालकचनार, कोदों, मटर, उरद, मूंग, मसूर, लोबिया, कुलथी।६८। आढक (अरहर) और चने पहले सब ग्राम औषधियों की यह सत्रह प्रकार जाति उत्पन्न हुई।६९। ग्राम और वन की जो चौदह प्रकार औषधी हैं वह यज्ञ के व्यवहार में आती हैं व्रीहि (धान्य)

प्रियङ्गुषष्ठा वै ह्येते सप्तमास्तु कुलत्थकाः । श्यामाकास्त्वथ नीवारा जर्त्तिलाः सगवेधुकाः ॥७१
कुरुविन्दा मर्कटकास्तथा वेणुयवाश्च ये । ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यश्च चतुर्दश ॥७२
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः । ततः स तासां वृद्धचर्थं वार्त्तोपायं चकार ह ॥७३
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम् । ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे ॥७४
संसिद्धायां तु वार्त्तायां ततस्तासां स्वयं प्रभुः । मर्यादां स्थापयामास यथान्यायं यथागुणम् ॥७५
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्धिर्मभृतां वर । लोकानां सर्ववर्णानां सम्यग्धर्मार्थपालिनाम् ॥७६
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् । स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥७७
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तताम् । गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचर्यानुवर्तिनाम् ॥७८
अष्टाशीति सहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् । स्मृतं तेषां तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥७९
सप्तर्षीणां तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम् । प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयम् ॥
योगिनाममृतं स्थानमिति वै स्थानकल्पना ॥८०

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।४६।

यव गेंहू अणु (साँवा) तिल ।७०। प्रियंगु (फलिनी) कुलथी श्यामाक (सामा) अलसी जर्त्तिल (तिल) गवेधुक गरहेडुआ धान्य ।७१। कुरुविन्द (कुलथी) मर्कटक धान्यविशेष और वेणु यव बाँस के चावल यह चौदह प्रकार की औषधी ग्रामारण्य हैं ।७२। इस प्रकार जब वह सब श्रेष्ठ औषधियाँ फिर नहीं उपजी तब ब्रह्मा जी उनकी वृद्धि के लिये जीवनोपाय की चिन्ता करने लगे ।७३। तब भगवान् स्वयम्भू ब्रह्मा जी ने कर्म से सिद्ध होने वाली हस्तसिद्धि की तब से ही कृष्टपच्या औषधी (जोतने से उत्पन्न होने वाली उत्पन्न हुई) ।७४। इस प्रकार उनके जीवन का उपाय निर्द्धारित होने पर स्वयं प्रभु ब्रह्मा जी ने न्यायानुसार और गुणानुसार मर्यादा की स्थापना की ।७५। हे धार्मिकश्रेष्ठ ! तब समस्त वर्ण और आश्रमों का धर्म एवं धर्मार्थपालक सर्व वर्णोत्पन्न लोकों का धर्म निरूपण किया ।७६। क्रियानिष्ठ ब्राह्मणों के लिये उन्होंने प्राजापत्यस्थान नियत किया, संग्राम में नहीं भागने वाले क्षत्रियों के निमित्त ऐन्द्रस्थान ।७७। स्वधर्मपरायण वैश्यों के लिये मारुतस्थान और सेवापरायण शूद्रों के लिये गान्धर्व स्थान की कल्पना की ।७८। ऊर्ध्वरेता अठासी हजार ऋषियों के जो स्थान कल्पित हुए हैं, गुरु के घर में वास करने वाले ब्राह्मण के लिये भी वही स्थान कल्पित हुए ।७९। जो स्थान सप्तर्षियों के निमित्त निर्दिष्ट है, वनवासियों के लिये भी वही स्थान कल्पित हुए । गृहस्थ के लियें प्राजापत्य, संन्यासियों के लिये अक्षय ब्राह्मपद और योगियों के लिये अमृतमोक्षस्थान कल्पित हुआ ।८०

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सृष्टि वर्णन नामक छियालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४६।

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

यक्ष्मानुशासनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीः प्रजाः । तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः कारणैः सह ॥१
क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः । ते सर्वे समवर्त्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः ॥२
देवाद्याः स्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यविषयाः स्मृताः । एवं भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च ॥३
यदास्य ताः प्रजाः सर्वा न व्यवर्द्धन्त धीमतः । अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥४
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा । मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम् ॥५
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः । ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं क्रोधात्मसम्भवम् ॥६
सङ्कल्पं चैव धर्मं च पूर्वेषामपि पूर्वजम् । सनन्दनादयो ये च पूर्वं सृष्टाः स्वयंभुवा ॥७
न ते लोकेषु सज्जन्तो निरपेक्षाः समाहिताः । सर्वे तेऽनागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ॥८
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः । ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः ॥९
अर्द्धनारीनरवपुः पुरुषोऽतिशरीरवान् । विभजात्मानमित्युक्त्वा स तदान्तर्दधे ततः ॥१०
स चोक्ता वै पृथक्स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाकरोत् । बिभेद पुरुषत्वं च दशधा चैकधां तु सः ॥११

अध्याय ४७

यक्ष्मानुशासन का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर ब्रह्मा जी के पुनर्वार चिन्ता करने पर उनके शरीर से कार्य और कारण के सहित मानसी प्रजा उत्पन्न हुई ।१। उन बुद्धिमान् ब्रह्मा जी के गात्र से समस्त क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए । इसके अतिरिक्त और जो उत्पन्न हुए पूर्व में उनका उल्लेख किया है ।२। देवता से स्थावर पर्यन्त सब ही त्रिगुणात्मक हैं । इस प्रकार ब्रह्मा जी ने स्थावर और जंगम चराचर जीवों को उत्पन्न किया ।३। फिर जब बुद्धिमान् ब्रह्मा जी ने अपनी सब प्रजा को बढ़ता हुआ नहीं देखा, तब अपने ही समान मानस पुत्रों को उत्पन्न किया ।४। भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ यह ब्रह्मा के मानसी पुत्र हुए।५। यह नौ ब्रह्मा के मानस पुत्र पुराणों में निश्चय किये गये हैं। तब फिर उन्होंने क्रोधात्मक रुद्र को उत्पन्न किया ।६। इसके बाद संकल्प और धर्म को उत्पन्न किया । जो कि प्रथम से ही प्रगट हैं और सनन्दनादिकों को स्वयम्भू की पूर्व सृष्टि में ही उत्पन्न किया।७। यह सब भविष्यत् ज्ञान-सम्पन्न, वीतराग, मत्सरहीन, निरपेक्ष और समाधिमान् हुए, प्रजा सृष्टि विषय में सज्जित न हुए ।८। उनके सृष्टि विषय में इस प्रकार निरपेक्ष होने पर महातमा ब्रह्मा जी को अत्यन्त क्रोध उदय हुआ। उसी क्रोध से (भयंकर देहयुक्त) सूर्य के समान तेजस्वी एक पुरुष ने जन्म ग्रहण किया।९। उसके देह का आधा भाग पुरुष और आधा भाग नारी था, तदनन्तर 'अपने देह को विभक्त कर' यह कहकर ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गये।१०। उस पुरुष ने भी ब्रह्मा जी की इस प्रकार आज्ञा पाकर देह को दो भाग में विभक्त किया।

सौम्यासौम्यैस्तथा शान्तैः पुंस्त्वं स्त्रीत्वं च स प्रभुः । बिभेद बहुधा देवः पुरुषैरमितैः शितैः ॥१२
ततो ब्रह्मात्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः । आत्मनः सदृशं कृत्वा प्रजापाल्ये मनुं द्विज ॥१३
शतरूपां च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम् । स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे विभुः ॥१४
तस्माच्च पुरुषात्पुत्रौ शतरूपा व्यजायत । प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥१५
कन्ये द्वे च तथाकूतिं प्रसूतिं च ततः पिता । ददौ प्रसूतिं दक्षाय तथाकूतिं रुचेः पुरा ॥१६
प्रजापतिः स जग्राह तयोर्यज्ञः सदक्षिणः । पुत्रो जज्ञे महाभाग दम्पतीमिथुनं ततः ॥१७
यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे । यामा इति समाख्याता देवाः स्वायंभुवेऽन्तरे ॥१८
तस्य पुत्रास्तु यज्ञस्य दक्षिणायां सुभास्वराः । प्रसूत्यां च तथा दक्षश्चतस्रो विंशतिस्तथा ॥१९
ससर्ज कन्यास्तासां च सम्यङ् नामानि मे शृणु । श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ॥२०
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी । पत्न्यर्थे प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ॥२१
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः । ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिस्तथा क्षमा ॥२२
सन्ततिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा । भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः ॥२३
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्च ऋषयस्तथा । वसिष्ठोऽत्रिस्तथा वह्निः पितरश्च यथाक्रमम् ॥२४
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः । श्रद्धा कामं श्रीश्च दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् ॥२५

उसमें स्त्रीत्व और पुरुषत्व पृथक् प्रगट हुआ उनमें जो भाग पुरुषाकार था, उसको सौम्य, असौम्य, शान्त, असित और सित इत्यादि भेद से ग्यारह भाग में विभक्त किया ।११-१२। हे द्विज ! अनन्तर प्रभु ब्रह्मा जी ने उस पूर्वोत्पन्न अपने समान पुरुष का "स्वायंभुवमनु" नाम रखकर प्रजापालन किया ।१३। और तपस्याद्वारा जिसने अपने पापों को नष्ट किया उस कामिनी को 'शतरूपा' नाम प्रदान किया । देव विभु स्वायम्भुव मनु ने शतरूपा को अपनी पत्नी बनाया ।१४। उस पुरुष से शतरूपा के दो पुत्र उत्पन्न हुए । उन दोनों का नाम प्रियव्रत और उत्तानपाद हुआ । यह दोनों अपने-अपने कर्म से विख्यात हैं ।१५। इनके अतिरिक्त जो शतरूपा के दो कन्या उत्पन्न हुई, उन दोनों का नाम आकूति और प्रसूति हुआ । पिता स्वायंभुव ने प्रसूति नामक कन्या दक्ष को और आकूतिनामक कन्या को प्रजापति रुचि के ।१६। हाथ में समर्पण किया । हे महाभाग ! उनके जो एक पुत्र और एक कन्या ने जन्म ग्रहण किया, उनका नाम यज्ञ और दक्षिणा हुआ । उन दोनों ने दाम्पत्यभाव धारण किया ।१७। उस दक्षिणा में यज्ञ के जो बारह पुत्र उत्पन्न हुए वह स्वायंभुव मन्वन्तर में 'याम' नामक देवता कहकर प्रसिद्ध हैं ।१८। भास्वर इत्यादि और भी कितने ही पुत्र दक्षिणा के गर्भ से यज्ञ के द्वारा उत्पन्न हुए थे । इधर दक्ष प्रजापति ने प्रसूति के गर्भ से जो चौबीस ।१९। कन्या को उत्पन्न किया उनके नाम सम्यक् प्रकार से सुनो । श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया ।२०। बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और कीर्त्ति, इन दक्ष की तेरह कन्या को पत्नी के अर्थ-धर्म ने ग्रहण किया था ।२१। और अवशिष्ट जो ग्यारह सुलोचना कन्या थीं जो ख्याति, सती, संभूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा ।२२। सन्नति, अनसूया, ऊर्ज्जा, स्वाहा और स्वधा नाम से विख्यात थीं उनको भृगु इत्यादि सब ने क्रमानुसार ग्रहण किया ।२३। भृगु, महादेव, मरीचि, अंगिरा मुनि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, अत्रि, वह्नि और पितृगण ।२४। इन मुनि ऋषि और मुनिसत्तम गणों ने ख्याति इत्यादि इन ग्यारह दक्ष की कन्याओं को यथाक्रम से ग्रहण किया। उन में श्रद्धा

सन्तोषं च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरजायत । मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं नयं विनयमेव च ॥२६
बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम् । व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत ॥२७
सुखं सिद्धिर्यशः कीर्तिरित्येते धर्मयोनयः । कामादतिमुदं हर्षं धर्मपौत्रमसूयत ॥२८
हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तस्यां जज्ञे तथानृतम् । कन्या च निर्ऋतिस्तस्यां सुतौ द्वौ नरकं भयम् ॥२९
माया च वेदना चैव मिथुनं द्वयमेतयोः । तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् ॥३०
वेदनात्मसुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् । मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधश्च जज्ञिरे ॥३१
दुःखोद्भवाः स्मृता ह्येते सर्वे वाधर्मलक्षणाः । नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्द्ध्वरेतसः ॥३२
निर्ऋतिश्च तथा चान्या मृत्योर्भार्याभवन्मुने । अलक्ष्मीर्नाम तस्यां च मृत्योः पुत्राश्चतुर्दश ॥३३
अलक्ष्मीपुत्र का ह्येते मृत्योरादेशकारिणः । विनाशकालेषु नरान्भजन्त्येते शृणुष्व तान् ॥३४
इन्द्रियेषु दशस्वेते तथा मनसि च स्थिताः । स्वे स्वे नरं स्त्रियं वापि विषये योजयन्ति हि ॥३५
अथेन्द्रियाणि चाक्रम्य रागक्रोधादिभिर्नरान् । योजयन्ति यथा हानिं यान्त्यधर्मादिभिर्द्विज ॥३६
अहङ्कारगताश्चान्ये तथान्ये बुद्धिसंस्थिताः । विनाशाय नरस्त्रीणां यतन्ते मोहसंश्रिताः ॥३७
तथैवान्यो गृहे पुंसां दुःसहो नाम विश्रुतः । क्षुत्क्षामोऽधोमुखो नग्नश्चीरी काकसमस्वनः ॥३८

ने काम को, श्री ने दर्प को, धृति ने नियम को ।२५। तुष्टि ने संतोष को, पुष्टि ने लोभ को मेधा ने श्रुत को, क्रिया ने दंड को ।२६। बुद्धि ने बोध को, लज्जा ने विनय को, वपु ने व्यवसाय को, शान्ति ने क्षेम को ।२७। सिद्धि ने सुख को कीर्ति ने यश को उत्पन्न किया । यही धर्म की सन्तान हैं । काम से अतिहृष्ट हर्षनामक धर्म का पौत्र उत्पन्न हुआ ।२८। अधर्म की भार्या का नाम हिंसा हुआ, उसके गर्भ से अनृत की उत्पत्ति हुई, अनृत ने उस निर्ऋति के गर्भ से नरक और भयनामक दो पुत्र ।२९। और माया तथा वेदना नामक दो कन्या को उत्पन्न किया यह परस्पर मिथुनभावापन्न हैं । उनमें माया ने प्राणियों का संहार करने वाला मृत्यु नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ।३०। और नरक से दुःखनामक एक पुत्र को वेदना ने उत्पन्न किया । इस मृत्यु के व्याधि, जरा, शोक तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए ।३१। यह सब दुःख से उत्पन्न और महा अधर्मी हुए, उनके भार्या या पुत्र कोई नहीं है क्योंकि यह सब ऊर्ध्वरेता हैं ।३२। हे मुनिवर ! निर्ऋतिनामक मृत्यु की जो और एक भार्या थी, जिसको लोक में अलक्ष्मी कहते हैं, मृत्यु ने उसमें चौदह पुत्र उत्पन्न किये ।३३। मृत्यु के आज्ञावर्ती पुत्रगण 'अलक्ष्मीपुत्र' के नाम से विख्यात हैं, यह विनाश के समय मनुष्यों के जिस-जिस अंग में रहते हैं उनके नाम कहता हूँ सुनो ।३४। यह प्रथम दश-दश इन्द्रियों में वास करते हैं और ग्यारहवाँ सब के मन के ऊपर वास करता है, यही सब स्त्री और पुरुषों को अपने अपने विषय में मिला लेता है ।३५। हे द्विज ! अनन्तर राग और क्रोधादि द्वारा समस्त इन्द्रियों का आक्रमण करके अधर्मादि के सहित संयोजित करता है, जिससे प्राणियों की हानि होती है ।३६। तथा एक अर्थात् बारहवीं मृत्यु का पुत्र अहंकार को आश्रय करके वर्त्तमान है, अपर प्राणियों की बुद्धि के ऊपर अवस्थान करता है, इससे ही पुरुषगण मोहित होकर स्त्रियों का विनाश करने में यत्नवान् होते हैं ।३७। अपना एक अर्थात् चौदहवाँ जो अलक्ष्मी का पुत्र है, उसका नाम दुःसह है यह पुरुषों के घर-घर में वास करता है । यह दुःसह सदा ही क्षुधातुर, अधोमुख, नग्न, चीरधारी और काक के समान शब्द करने वाला

स सर्वान्खादितुं सृष्टो ब्रह्मणा तमसो निधिः । दंष्ट्राकरालमत्यर्थं विवृतास्यं सुभैरवम् ॥३९
तमत्तुकाममाहेदं ब्रह्मा लोकपितामहः । सर्वब्रह्ममयः शुद्धः कारणं जगतोऽव्ययः ॥४०

ब्रह्मोवाच

नात्तव्यं ते जगदिदं जहि कोपं शमं व्रज । त्यजैनां तामसीं वृत्तिमपास्य रजसः कलाम् ॥४१

दुःसह उवाच

क्षुत्क्षामोऽस्मि जगन्नाथ पिपासुश्चापि दुर्बलः । कथं तृप्तिमियां नाथ भवेयं बलवान्कथम् ॥
कश्चाश्रयो ममाख्याहि वर्तेयं यत्र निर्वृतः ॥४२

ब्रह्मोवाच

तवाश्रयो गृहं पुंसां जनश्चाधार्मिको बलम् । पुष्टिर्नित्यक्रियाहान्या भवान्वत्स गमिष्यति ॥४३
लूताः स्फोटाश्च ते वस्त्रमाहारं च ददामि ते । क्षुतकीटावपन्नं च तथा श्वभिरवेक्षितम् ॥४४
भग्नभाण्डगतं तद्वन्मुखवातोपशामितम् । उच्छिष्टापक्वमस्विन्नमवलीढमसंस्कृतम् ॥४५
भग्नासनस्थितैर्भुक्तमासन्नागतमेव च । विदिङ्मुखं सन्ध्ययोश्च नृत्यवाद्यस्वनाकुलम् ॥४६
उदक्योपहतं भुक्तमुदक्यादृष्टमेव च । यच्चोपघातवर्त्किचिद्भक्ष्यं पेयमथापि वा ॥४७

है ।३८। बोध होता है ब्रह्मा जी ने सब पदार्थ को भक्षण करने के लिये ही इस तपोनिधि को उत्पन्न किया है । अनन्तर दुःसह को कराल दाढ़, मुख फैलाये अत्यन्त भयंकर मूर्ति से शब्द करते ।३९। सब को भक्षण करने में उद्यत देखकर लोक पितामह, सर्वब्रह्म, शुद्ध और जगत् के कारण अविनाशी ब्रह्मा जी कहने लगे ।४०

ब्रह्मा जी बोले—हे दुःसह ! जगत् को तुम्हारा भक्षण करना उचित नहीं है, कोप परित्याग करके शान्त हो जाओ । इस तमोगुण की वृत्ति को त्याग दो, और रजोगुण के अंश को भी त्याग दो ।४१

दुःसह ने कहा—हे जगन्नाथ ! मैं भूँख से अत्यन्त कृश और प्यास के मारे अत्यन्त दुर्बल हो गया हूँ । हे नाथ ! किस प्रकार तृप्ति लाभ करूँ ? और किस प्रकार से बलवान् होऊँ तथा किसका आश्रय करके सुख से रहूँ । यह आप कृपा करके कहिये ।४२

ब्रह्मा जी बोले—हे वत्स ! पुरुषों का घर ही तुम्हारा आश्रय, अधर्मी मनुष्य ही तुम्हारा बल और मनुष्यों के नित्यकृत्य की हानि होने से तुम पुष्टि लाभ करोगे।४३। मकरी के जाले और सब स्फोट (फोड़े) ही तुम्हारे वस्त्र है। अब तुमको आहार प्रदान करता हूँ। जिस स्थान में कीड़े उत्पन्न हुए हैं जिसको कुत्ते ने देख लिया है, ऐसे घाव का स्थान ही तुम्हारा आहार है ।४४। और जो पदार्थ फूटे बर्तन में रखा हो, या मुख से फूंक मारकर ठंडा किया हो, अथवा उच्छिष्ट या कच्चा हो, या जो अन्न संस्कार हीन हो।४५।अथवा फटे हुए आसन पर बैठकर, या घर आये अतिथि को बिना भोजन कराये या दक्षिण दिशा की ओर को मुख करके, किंवा संध्या के समय अथवा नृत्य के समय, गाने के समय या बजाने के समय जो कोई भोजन करता है।४६। या रजस्वला स्त्री का देखा हुआ या उसका छुआ हुआ अथवा किसी का उच्छिष्ट किया हुआ, किंवा कोई दूषित पाक यदि कोई भोजन करता हो।४७। यह सब पदार्थ तुम्हारे खाद्य और

एतानि तव पुष्ट्यर्थमन्यच्चापि ददामि ते । अश्रद्धया हुतं दत्तमस्नातैर्यदवज्ञया ॥४८
यन्नाम्बुपूर्वकं क्षिप्तमनात्मीकृतमेव च । त्यक्तुमाविष्कृतं यत्तु दत्तं चैवातिविस्मयात् ॥४९
दुष्टं क्रुद्धातदत्तं च यक्ष्मन्प्राप्स्यसि तत्फलम् । यच्च पौनर्भवः किंचित्करोत्यामुष्मिकं क्रमम् ॥५०
यच्च पौनर्भवा योषित्तद्यक्ष्म तव तृप्तये । कन्याशुल्कोपधानाय समुपास्ते धनक्रियाः ॥५१
तथैव यक्ष्म पुष्ट्यर्थमसच्छास्त्रक्रियाश्च याः । यच्चार्थनिर्वृतौ किञ्चिदधीतं यन्न सत्यतः ॥५२
तत्सर्वं तव कामांश्च ददामि तव सिद्धये । गुर्विण्यभिगमे सन्ध्या नित्यकार्यव्यतिक्रमे ॥५३
असच्छास्त्रक्रियालापदूषितेषु च दुःसह । तवाभिभवसामर्थ्यं भविष्यति सदा नृषु ॥५४
पङ्क्तिभेदे वृथापाके पाकभेदे तथा कृते । नित्यं च गेहकलहे भविता वसतिस्तव ॥५५
अपोष्यमाणे च तथा भृत्यगोवाहनादिके । असन्ध्याम्युक्षितागारे काले त्वत्तो भयं नृणाम् ॥५६
नक्षत्रग्रहपीडासु त्रिविधोत्पातदर्शने । अशान्तिकपरान्यक्ष्मन्नरानभिभविष्यसि ॥५७
वृथोपवासिनो मत्या द्यूतस्त्रीषु सदा रताः। त्वद्भाषणोपकर्त्तारो बैडालव्रतिकाश्च ये ॥५८
अब्रह्मचारिणाधीतमिज्या चाविदुषा कृता । तपोवने ग्राम्यभुजां तथैवानिर्जितात्मनाम् ॥५९
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च स्वकर्मतः । परिच्युतानां या चेष्टा परलोकार्थमीप्सताम् ॥६०
तस्याश्च यत्फलं सर्वं तत्ते यक्ष्मन्भविष्यति । अन्यच्च ते प्रयच्छामि पुष्ट्यर्थं संनिबोध तत् ॥६१

पुष्टिकारक होंगे ? हे दुःसह ! तुम्हारी पुष्टि के लिये और भी देता हूँ। जो बिना स्नान किये खाद्य और अश्रद्धापूर्वक होम करता है, जो अज्ञानी मनुष्यों के द्वारा दिया जाता है ।४८। जल स्पर्श न करके जो दिया हो अर्थात् जो वस्तु बिना जल के पवित्र की हो, या जो वस्तु व्यर्थ पड़ी हो, परित्याग करने के लिये जो विस्तार की हो, फैलाई हो, जो अत्यन्त डरकर दी गई ।४९। जो दुष्ट, क्रोधित और आर्त्तमनुष्यों ने दी हो और जो फल हो, यह सब भोग करो । हे यक्ष्म ! यही तुम्हारे वशीभूत हैं। जो दूसरी बार विवाही स्त्री के पुत्र ने परलोकसम्बन्धी कार्य किया हो ।५०।और पुनर्भवा स्त्री जो कर्म करती है, हे यक्ष्म ! वह तुम्हारी ही तृप्ति के लिये है । यह यक्ष्म ! (जो कन्या के ऊपर द्रव्य लेने में धनक्रिया की जाती है) ।५१। इसी प्रकार जो क्रिया असत् शास्त्र द्वारा संपादित होती हैं, वह तुम्हारी ही पुष्टि के अर्थ है और जो अर्थप्राप्ति के निमित्त कार्य है जो असत्यता से पढ़ा है । हे दुःसह ! वही तुम्हारी पुष्टि का हेतु होगा । अब तुम्हारी सिद्धि के लिये तुमको समय देता हूँ, सुनो ! जब मनुष्य गर्भवती स्त्री से रमण करते हैं, जब संध्या या नित्य कार्य का व्यतिक्रम होता है ।५२-५३। और जब मनुष्यगण असत् शास्त्रोक्त कार्य कलाप द्वारा दूषित होते हैं, हे दुःसह ! उसी समय तुम उनके तिरस्कार की सामर्थ्य लाभ करोगे ।५४। जहाँ पंक्तिभेद हो, जहाँ वृथा पाक बनता हो अर्थात् अपने ही लिये भोजन बनता हो, या जहाँ सदा क्लेश रहता हो वह तुम्हारा वास होगा ।५५। जिन घरों में बिना अन्न तृण दिये गाय, घोड़ा इत्यादि जो और पशु हैं, उनको भूंखा बांध रखते हैं और जिन घरों में सूर्यास्त होने से पहले असंध्याकाल में बुहारी नहीं लगती, हे दुःसह ! वहाँ के मनुष्यों को तुमसे भय होगा ।५६। नक्षत्रपीड़ा, ग्रहपीड़ा या त्रिविध के उत्पात के दिखाई देने पर जो मनुष्य शांति नहीं करते उन मनुष्यों को तुम अभिभूत करोगे ।५७। जो वृथा उपवास करते हैं, जुए और स्त्री में सदा आसक्त रहते हैं या जो तुम्हारे ही उपकार की बातचीत करते हैं और वैडालव्रतिक अर्थात् जो बिल्ली की समान अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं ।५८। जो लोग बिना ब्रह्मचर्य के वेदपाठ करते हैं और मूर्खों का क्रिया यज्ञ, और तपोवन में गृहस्थियों की समान कर्म और चंचलचित्त अजितेन्द्रियों का अध्ययन ।५९। स्वकर्मभ्रष्ट परलोक में सुख की

भवतो वैश्वदेवान्ते नामोच्चारणपूर्वकम् । एतत्तवेति दास्यन्ति भवतो बलिमूर्ज्जितम् ।।६२
यः संस्कृताशी विधिवच्छुचिरन्तस्तथा बहिः । अलोलुपो जितस्त्रीकस्तद् गेहमपवर्जय ।।६३
पूज्यन्ते हव्यकव्याभ्यां देवताः पितरस्तथा । जामयोऽतिथयश्चापि तद्गेहं यक्ष्म वर्जय ।।६४
यत्र मैत्री गृहे बालवृद्धयोषिन्नरेषु च । तथा स्वजनवर्गेषु गृह तच्चापि वर्जय ।।६५
योषितोऽभिमता यत्र न बहिर्गमनोत्सुकाः । लज्जान्विताः सदा गेहं यक्ष्म तत्परिवर्जय ।।६६
वयः सम्बन्धयोग्यानि शयनान्यशनानि च । यत्र गेहे त्वया यक्ष्म तद्वर्ज्यं वचनान्मम ।।६७
यत्र कारुणिका नित्यं साधुकर्मण्यवस्थिताः । सामान्योपस्कैर्युक्तास्त्यजेथा यक्ष्म तद्गृहम् ।।६८
यत्रासनस्थास्तिष्ठत्सु गुरुवृद्धद्विजातिषु । न तिष्ठन्ति गृहं तच्च वर्ज्यं यक्ष्म त्वया सदा ।।६९
तरुगुल्मादिभिर्द्वारं न विद्धं यस्य वेश्मनः । मर्मभेदो न वा पुंसस्तच्छ्रेयो भवनं न ते ।।७०
देवतापितृभृत्यानामतिथीनां च वर्तनम् । यस्यावशिष्टेनान्नेन पुंसस्तस्य गृहं त्यज ।।७१
सत्यवाक्यान्क्षमाशीलानहिंस्रान्नानुतापिनः । पुरुषानीदृशान्यक्ष्म त्यजेथाश्चानसूयकान् ।।७२
भर्तृशुश्रूषणे युक्तामसत्स्त्रीसङ्गवर्जिताम् । कुटुम्बभर्तृशेषान्नपुष्टां च त्यज योषितम् ।।७३
यजनाध्ययनाभ्यासदानासक्तमतिं सदा । यजनाध्यापनादानकृतवृत्तिं द्विजं त्यज ।।७४

इच्छा करने वाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की तपोवन में चेष्टा।६०। और इन सब कार्योंका फल, हे यक्ष्म ! तुम्हारे अधीन हैं। तुम्हारी पुष्टि के लिये और भी देता हूँ।६१। जो वैश्वदेव के (होमाङ्गविशेष के) अन्त में तुम्हारा नाम उच्चारण करके 'यह तुम्हारा है' इस प्रकार कह मनुष्यगण तुमको ऊर्ज्जित बलि प्रदान करते हैं ।६२। जो मनुष्यविधिपूर्वक समस्त संस्कृत पदार्थ भोजन करते हैं अन्दर और बाहर में सदा पवित्र निर्लोभ और स्त्रियाँ जिसको वशीभूत करने में समर्थ नहीं होतीं, तुम उनका गृह परित्याग करो ।६३। जिस घर में हव्य कव्य द्वारा देवता और पितृगण सर्वदा पूजित होते हैं, और जहाँ अतिथिगगण सदा पूजित होते हैं हे यक्ष्म ! तुम उस घर को परित्याग करो ।६४। जिस घर में बालक, वृद्ध, युवक, युवती और स्वजनवर्ग सदा मित्रतासंपन्न हैं, उस घर को भी तुम परित्याग करो ।६५। जिस घर की स्त्री अनुरक्त हैं, बाहर जाने की इच्छा नहीं करतीं और सर्वदा लज्जायुक्त हैं, वह घर तुम्हारे त्यागने योग्य है ।६६। हे यक्ष्म ! जिस घर में अपनी अवस्था और अपने वैभवानुसार शयन या भोजन करते हों, तुमको उस घर का भी मेरे वचन से परित्याग करना उचित है ।६७। जिस घर में मनुष्य अत्यन्त करुणा के वशीभूत है सर्वदा सत्कार्य में अवस्थित और सामान्य (सामग्री) द्वारा संयुक्त हैं, हे यक्ष्म ! तुम उसको त्याग देना ।६८। जहाँ गुरु, वृद्ध और ब्राह्मणों के आसन में बैठने पर जो आसन ग्रहण नहीं करते । हे यक्ष्म ! उस घर को तुम सर्वदा परित्याग करना ।६९। जिस घर का द्वार वृक्ष गुल्मादि से रुद्ध न हो जो किसी की मर्मभेदी बात न कहता हो, उस सुन्दर मंदिर में जाने से तुम्हारा कभी कल्याण नहीं होगा ।७०। जो पुरुष देवता, पितृ, मनुष्य और अतिथि को भोजन कराकर उनके बचे हुए उच्छिष्ट मात्र से अपनी जीवन यात्रा निर्वाह करता है, उसका घर तुम छोड़ देना ।७१। जो सत्यवादी, क्षमाशील, अहिंसक, अनुतापरहित, और जो असूया के वशीभूत नहीं हैं, हे यक्ष्म ! उन पुरुषों को तुम सदा परित्याग करना ।७२। जो स्त्री सदा स्वामी की सेवा में तत्पर है, असती का संग परित्याग करती है और कुटुम्ब तथा स्वामी के भोजन से बचे हुए अन्न द्वारा अपना पोषण करती है, ऐसी स्त्री को तुम परित्याग करो ।७३। जो ब्राह्मण यजन, अध्ययन, अभ्यास और दानविषय में सदा आसक्तचित्त है, एवं याजन, अध्यापन और दान प्रतिग्रह द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं, उन ब्राह्मणों का तुम परित्याग करो ।७४। हे

दानाध्ययनयज्ञेषु सदोद्युक्तं च दुःसह । क्षत्रियं त्यज सच्छुल्कशस्त्राजीवात्तवेतनम् ॥७५
त्रिभिःपूर्वगुणैर्युक्तं पाशुपाल्यवणिज्ययोः । कृषेश्चावाप्तवृत्तिं च त्यज वैश्यमकल्मषम् ॥७६
दानेज्याद्विजशुश्रूषातत्परं यक्ष्म संत्यज । शूद्रं च ब्राह्मणादीनां शुश्रूषावृत्तिपोषकम् ॥७७
श्रुतिस्मृत्यविरोधेन कृतवृत्तिगृहे गृही । यत्र तत्र च तत्पत्नी तस्यैवानुगतात्मिका ॥७८
यत्र पुत्रो गुरोः पूजां देवानां च तथा पितुः । पत्नी च भर्तुः कुरुते तत्रालक्ष्मीभयं कुतः ॥७९
सदानुलिप्तं सन्ध्यासु गृहमम्बुसमुक्षितम् । कृतपुष्पबलिं यक्ष्म न त्वं शक्नोषि वीक्षितुम् ॥८०
भास्करादृष्टशय्यानि नित्याग्निसलिलानि च । सूर्यावलोकदीपानि लक्ष्म्यागेहानि भाजनम् ॥८१
यत्रोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी । विषाज्यताम्रपात्राणि तद्गृहं न तवाश्रयः ॥८२
यत्र कण्टकिनो वृक्षा यत्र निष्पाववल्लरी । भार्या पुनर्भूर्वल्मीकस्तत्ह्यक्ष्म तव मन्दिरम् ॥८३
यस्मिन्गृहे नराः पञ्च स्त्रीत्रयं तावतीश्च गाः । अन्धकारेन्धनाग्निश्च तद्गृहं वसतिस्तव ॥८४
एकच्छागं द्विबालेयं त्रिगवं पञ्चमाहिषम् । षडश्वं सप्तमातङ्गं गृहं यक्ष्माशु शोषय ॥८५
कुद्दालदात्रपिटकं तद्वत्स्थाल्यादिभाजनम् । यत्र तत्रैव क्षिप्तानि तव दद्युः प्रतिश्रयम् ॥८६
मुशलोलूखले स्त्रीणामास्या तद्वदुदुम्बरे । अवस्करे मन्त्रणं च यक्ष्म तदुपकृत्तव ॥८७

दुःसह ! जो क्षत्रिय सर्वदा दान, अध्ययन और यज्ञ करने में प्रवृत्त रहते हैं और स्वीय पवित्र शस्त्रजीविका द्वारा वेतन ग्रहण करते हैं उनको तुम परित्याग करो ।७५। जो वैश्य त्रिविध पूर्व गुणयुक्त और पशुपालन, व्यापार और खेती के द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं उन निष्पाप वैश्यगण को तुम परित्याग करना ।७६। जो शूद्र दान, यज्ञ और ब्राह्मणों की सेवा में तत्पर हैं और ब्राह्मणादि की सेवा द्वारा अपनी वृत्ति के परिपोषक हैं, हे दुःसह ! ऐसे शूद्रों को सम्यक् प्रकार से त्याग देना ।७७। जो मनुष्य घर में वास करके श्रुति और स्मृति के अविरोध में वृत्ति निर्वाह करते हैं, और उनकी पत्नी भी उनके ही अनुगत होती हैं ।७८। जिस घर में पुत्रगण देवता, गुरु और पितरों की पूजा करते हैं, स्त्रियाँ स्वामी की सेवा करती हैं, हे यक्ष्म ! उस स्थान में किस प्रकार से अलक्ष्मी का भय होगा ।७९। जो घर तीनों संध्या में लीपा जाय, अथवा जल छिड़कर पवित्र किया जाय और सुगंधित पुष्पों के द्वारा देवताओं को बलि दिया जाय, उस घर के देखने में भी तुम समर्थ नहीं होगे ।८०। सूर्य जिस घर की शय्या को नहीं देखते हों और जिस घर में अग्नि और जल विद्यमान रहता है, और जो सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है वह घर लक्ष्मी का स्थान है ।८१। जिस घर में चंदन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, विष और तांबे के बर्तन विद्यमान हों, उस घर को तुम अपना आश्रय नहीं कर सकोगे ।८२। जिस घर में कंटकयुक्त वृक्ष, निष्पावलता (लोबिये की बेल) पुनर्भू भार्या और वल्मीक (बमई) वर्तमान हो, हे यक्ष्म ! वह तुम्हारा ही घर है ।८३। जिस घर में पाँच पुरुष, तीन स्त्री, गाय, अन्धकार, काष्ठ और अग्नि अवस्थित है, उसी घर में तुम्हारा वास होगा ।८४। हे यक्ष्म ! जिस घर में एक छाग (बकरी), दो स्त्री, तीन गाय, पांच भैंसे, छः घोडे और सात हाथी रहते हो उस घर को शीघ्र ही शोषित अर्थात् विनाश करो ।८५। जिस घर में कुदाल दात्र (दराती) पीढ़ा और थाली इत्यादि समस्त पात्र इधर उधर बिखरे पड़े रहते हैं, वहाँ के मनुष्य तुमको अपने घर में आश्रय देने की इच्छा करते हैं ।८६। हे यक्ष्म ! जिस घर में स्त्री मुसल या ओखली के ऊपर बैठी रहती है या उदुंबर (देहली) के ऊपर बैठी रहती है और घर के पिछवारे रहने वाली स्त्री से बातें करती रहती है, यह सर्व

लंघ्यन्ते यत्र धान्यानि पक्वापक्वानि वेश्मनि । तद्वच्छास्त्राणि तत्र त्वं यथेष्टं चर दुःसह ॥८८
स्थालीपिधाने यत्राग्निर्दत्तो दर्वीफलेन वा । गृहे तत्र हि रिष्टानामशेषाणां समाश्रयः ॥८९
मानुषास्थिगृहे यत्र दिवारात्रं मृतस्थितिः । तत्र यक्ष्म तव वासस्तथान्येषां च रक्षसाम् ॥९०
अदत्त्वा भुञ्जते ये वै बन्धोः पिण्डं तथोदकम् । सपिण्डान्सोदकांश्चैव तत्काले तान्नरान्भज ॥९१
यत्र पद्ममहापद्मौ सुरभिर्मोदकाशिनी । वृषभैरावतौ यत्र कल्प्यन्ते तद्गृहं त्यज ॥९२
अशस्त्रा देवता यत्र सशस्त्राश्चाहवं विना । कल्प्यन्ते मनुजैरर्च्यास्तत्परित्यज मन्दिरम् ॥९३
पौरजानपदैर्यत्र प्राक्प्रसिद्धमहोत्सवाः । क्रियन्ते पूर्ववद्गेहे न त्वं तत्र गृहे चर ॥९४
शूर्पवातघटाम्भोभिः स्नानं वस्त्राम्बुविप्रुषैः । नखाग्रसलिलैश्चैव तान्याहि हतलक्षणान् ॥९५
देशाचारान्समयाञ्ज्ञातिधर्मं जपं होमं मङ्गलं देवतेष्टिम् ।
सम्यक्छौचं विधिवल्लोकवादान्पुंसस्त्वया कुर्वतो माऽस्तु सङ्गः ॥९६

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा दुःसहं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत । चकार शासनं सोऽपि तथा पङ्कजजन्मनः ॥९७

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे यक्ष्मानुशासनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।४७।

कार्य तुम्हारे ही उपकार के लिये हैं ।८७। जिस घर में पकाया, बिना पका हुआ धान्य और सत् शास्त्र का अनादर होता है, हे दुःसह ! उस घर में तुम इच्छानुसार विचरण करो ।८८। और जिस घर में थाली ढकना अथवा करछली से घर वाली स्त्री किसी को आग देती हो, वह घर सब अरिष्ट का स्थान है ।८९। मनुष्य की हड्डी और मृतपदार्थ जिस घर में दिनरात रहे, वहाँ और अन्यान्य समस्त राक्षसों का वास होगा ।९०। जब मनुष्य बंधु, सपिंड, या समानोदक पुरुषों को पिंड या जल दान नहीं करते उसी समय में तुम उनकी सेवा करो ।९१। जिस घर में पद्म और महापद्म (निधिविशेष) वर्तमान हैं, स्त्रियाँ सदा मोदक (लड्डू) भोजन करती हैं एवं बैल और ऐरावत वर्तमान रहता है, उस घर को तुम परित्याग करो ।९२। जहाँ अशस्त्र देवता युद्ध के बिना ही मनुष्यों के द्वारा सशस्त्र अवस्था में कल्पित होकर पूजे जाते हैं। उस मन्दिर को तुम परित्याग करो ।९३। पूर्ववत् जिन सब घरों में पुरवासी पुरों में और समस्त जनपद पूर्वप्रसिद्ध महोत्सव से संयुक्त होते हैं, उसमें तुम मत जाना ।९४। जो छाज की वायु कलश के जल वस्त्र के निचोड़े हुए जल और पादाग्रजल चरण के अग्रभाग को लगे जल से स्नान करते हैं, उन हतलक्षण मनुष्यों के निकट तुम गमन करो ।९५। जो मनुष्य देशाचार, जाति, धर्म, जप, होम, मंगलकार्य, देवपूजा, सम्यक् शौच और यथाविधि समस्त लोकवाद का आचरण करते हैं उन मनुष्यों के सहित तुम्हारा संग न हो ।९६

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विजवर ! ब्रह्मा जी दुःसह को इस प्रकार आज्ञा देकर उसी स्थान में अन्तर्धान हो गये और वह दुःसह भी पद्मजन्मा ब्रह्मा जी का अनुशासन उसी प्रकार पालन करने लगा ।९७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में यक्ष्मानुशासन वर्णन नामक सैंतालिसवां अध्याय समाप्त ।४७।

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

दौःसहोत्पत्तिसमापनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

दुःसहस्याभवद्भार्या निर्माष्टिर्नाम नामतः । जाता कलेस्तु भार्यायामृतौ चाण्डालदर्शनात् ॥१
तयोरपत्यान्यभवञ्जगद्व्यापीनि षोडश । अष्टौ कुमाराः कन्याश्च तथाष्टावतिभीषणाः ॥२
दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्च परिवर्तस्तथापरः । अङ्गध्रुक्छकुनिश्चैव गण्डप्रान्तरतिस्तथा ॥३
गर्भहा सस्यहा चान्यः कुमारास्तनयास्तयोः । कन्याश्चान्यास्तथैवाष्टौ तासां नामानि मे शृणु ॥४
नियोजिका वै प्रथमा तथैवान्या विरोधिनी । स्वयंहारकरी चैव भ्रामणी ऋतुहारिका ॥५
स्मृतिबीजहरे चान्ये तयोः कन्ये सुदारुणे । विद्वेषण्यष्टमी नाम कन्या लोकभयावहा ॥६
एतासां कर्म वक्ष्यामि दोषप्रशमनं च यत् । अष्टानां च कुमाराणां श्रूयतां द्विजसत्तम ॥७
दन्ताकृष्टिः प्रसूतानां बालानां दशनस्थितः । करोति दन्तसंघर्षं चिकीर्षुर्दुःसहागमम् ॥८
तस्योपशमनं कार्यं सुप्तस्य सितसर्षपैः । शयनस्योपरिक्षिप्तैर्मानुषैर्दशनोपरि ॥९
सौवर्चलौषधीस्नानात्तथा सच्छास्त्रकीर्त्तनात् । उष्ट्रकण्टकगङ्गास्थिक्षौमवस्त्रविधारणात् ॥१०
तिष्ठत्यन्यकुमारस्तु तथास्त्वित्यसकृद्ब्रुवन् । शुभाशुभे नृणां युङ्क्ते तथोक्तिस्तच्च नान्यथा ॥११

अध्याय ४८

दौःसहोत्पत्तिसमापन का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—दुःसह की भार्या निर्म्मार्ष्टि हुई यह निर्म्मार्ष्टि यम की कन्या थी। यमपत्नी ऋतुमती होकर चाण्डाल के देखने पर उस गर्भ से निर्म्मार्ष्टि ने जन्म ग्रहण किया।१। इसके उपरान्त दुःसह के द्वारा निर्म्मार्ष्टि के गर्भ से जगत्व्यापी अत्यन्त भीषणाकार सोलह सन्तान हुई उनमें आठ पुत्र और आठ कन्या।२। दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त्त, अङ्गध्रुक, शकुनि, गण्ड, प्रान्तरति।३। गर्भहा और सस्यहा यह आठ पुत्र हुए, अब आठ कन्याओं के नाम कहते हैं, सुनो।४। नियोजिका, विरोधिनी, स्वयंहारकरी, भ्रामणी, ऋतुहारिका।५। स्मृतिहरा, बीजहरा यह दोनों महाभयंकर हुई और आठवीं विद्वेषिणी जो सब लोकों को महाभय दिखानेवाली थी।६। हे द्विजसत्तम ! अब इन आठों कुमारों के कर्म और उनके दोष शमन करने का उपाय कहता हूँ, सुनो।७। दन्ताकृष्टि तो प्रसूत बालक के दाँतों में रह कर दांतों को अत्यन्त किडकिड़ाता इसी के आश्रय से वहाँ पर दुःसह भी आता है।८। इसके शमन करने का उपाय यह है, कि सोते हुए बालक के दांतों पर और शय्या पर सफेद सरसों डाल दे।९। या औषधियों के जल से स्नान करावे, सत् शास्त्र का कीर्त्तन करावे, या ऊंट वा गेंडे की अस्थि का यंत्र बनाकर बालक के गले में डाले अथवा रेशमी वस्त्र धारण कराने से बालक की शान्ति होती है।१०। दूसरा कुमार तथोक्ति "यही हो" इस प्रकार कहकर सब मनुष्यों के शुभाशुभ विषय में नियुक्त होती है, यह सत्य है।११। इसकी

तस्माददुष्टं मङ्गल्यं वक्तव्यं पण्डितैः सदा । दुष्टे श्रुते तथैवोक्ते कीर्त्तनीयो जनार्दनः ॥१२
चराचरगुरुर्ब्रह्मा या यस्य कुलदेवता । अन्यगर्भे परान्गच्छन्सदैव परिवर्तयन् ॥१३
रतिमाप्नोति वाक्यं च विवक्षोरन्यदेव यत् । परिवर्त्तकसंज्ञोऽयं तस्यापि सितसर्षपैः ॥१४
रक्षोघ्नमन्त्रजप्यैश्च रक्षां कुर्वीत तत्त्ववित् । अन्यश्चानिलवन्नृणामङ्गेषु स्फुरणोदितम् ॥१५
शुभाशुभं समाचष्टे कुशैस्तस्याङ्गताडनम् । काकादिपक्षिसंस्थोऽन्यः श्वादेरङ्गगतोऽपि वा ॥१६
शुभाशुभं च शकुनिः कुमारोऽन्योब्रवीति वै । तत्रापि दुष्टे व्याक्षेपः प्रारम्भत्याग एव च ॥१७
शुभे द्रुततरं कार्यमिति प्राह प्रजापतिः । गण्डान्तेषु स्थितश्चान्यो मुहूर्तार्द्धं द्विजोत्तम ॥१८
सर्वारम्भान्कुमारोऽत्ति शमं तस्य निशामय । विप्रोक्त्या देवतास्तुत्या मूलोत्खातेन च द्विज ॥१९
गोमूत्रसर्षपस्नानैस्तदृक्षग्रहपूजनैः । पुनश्च धर्मोपनिषत्करणैः शास्त्रदर्शनैः ॥२०
अवज्ञया जन्मनश्च प्रशमं याति गण्डवान् । गर्भे स्त्रीणां तथाऽन्यस्तु कललाशी सुदारुणः ॥२१
तस्य रक्षा सदा कार्या नित्यं शौचनिषेवणात् । प्रसिद्धमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यादिधारणात् ॥२२
विशुद्धगेहावसनादनायासाच्च वै द्विज । तथैव सस्यहा चान्यः सस्यर्द्धिमुपहन्ति यः ॥२३
तस्यापि रक्षां कुर्वीत जीर्णोपानद्विधारणात् । तथापसव्यगमनाच्चण्डालस्य प्रवेशनात् ॥२४

शान्ति के लिये पण्डितगण श्रेष्ठता और मंगल दोनों को सदा प्रकाश करें और मन्दविषय सुनने या कहने पर जनार्दन भगवान् के नाम का कीर्तन करें।१२। या चराचर जगत् के गुरु ब्रह्मा जी के नाम का कीर्त्तन करें अथवा जो जिसका कुलदेवता है, वह उसी का नाम कीर्त्तन करे। परिवर्त्तक नामक तीसरा कुमार सदा अन्य गर्भ में अपर गर्भ स्थापन।१३। और एक प्रकार के कहने के वचनों को अन्यरीति से कहलाकर प्रसन्न होता है उसके दूर होने के लिए सफेद सरसों बखेरे।१४। अथवा तत्त्ववित् रक्षोघ्न मंत्र का जप करके रक्षा करें। अंगध्रुक् नामक चौथा कुमार वायु के समान मनुष्य के अंग में स्पन्दन (फड़काना)।१५। और लोभ हर्षण के कारण शुभाशुभ विषय प्रकाश करता है, उसकी शान्ति करनी हो तो शरीर में कुशाघात करे। शकुनी नामक पाँचवां कुमार काक इत्यादि पक्षी में कुत्ते अथवा गीदड के शरीर में रहकर।१६। मनुष्य के शुभाशुभ प्रकाश करता है इस समय अशुभ-सूचक चिह्न प्रकाशित होने पर समस्त कार्य का उद्योग परित्याग करना चाहिए।१७। हे द्विजोत्तम! शुभसूचक चिह्न प्रकाशित होने पर अति शीघ्र कर्तव्य कार्य का आरंभ करे। यह प्रजापति ने स्वयं कहा है। गण्डान्तरति नामक छठा कुमार आधे मुहूर्त गण्डान्त में रहकर।१८। समस्त कार्यारम्भ माङ्गल्य कर्म, और अनसूय्या (अनिन्द्यता) नष्ट करता है। हे द्विजोत्तम! उसकी शान्ति के लिये ब्राह्मण का आशीर्वाद, देवता की स्तुति मूलनक्षत्र की शान्ति।१९। गोमूत्र और सफेद सरसों से स्नान उस नक्षत्र और ग्रह की पूजा धर्मोपनिषद् श्रवण शास्त्रदर्शन।२०। और जन्मावज्ञा जन्म का तिरस्कार करने से गण्डदोष कीं शान्ति होती है। गर्भहा नामक जो भयंकर सातवाँ कुमार है वह स्त्रियों के गर्भ में कलल नाश करता है।२१। उसकी शान्ति का उपाय यह है कि सदा शुद्ध भाव से रहना प्रसिद्ध मंत्र (कवचादि) लिखना माल्यादि धारण।२२। विशुद्ध घर में वास और आयास (परिश्रम) परित्याग करना चाहिए। हे ब्राह्मण! इसी प्रकार, सस्यहा नामक आठवाँ कुमार संपूर्ण सस्य (धान्य) नष्ट करता है।२३। पुराना जूता सस्य (खेत) में रखने अपसव्य

बहिर्बलिप्रदानाच्च सोमाम्बुपरिकीर्तनात् । परदारपरद्रव्यहरणादिषु मानवान् ॥२५
नियोजयति चैवान्यान्कन्या सा च नियोजिका । तस्याः पवित्रपठनात्क्रोधलोभादिवर्जनात् ॥२६
नियोजयति मामेष विरोधाच्च विवर्जनात् । आक्रुष्टोऽन्येन मन्येत ताडितो वा नियोजिका ॥२७
नियोजयत्येनमिति न गच्छेत्तद्वशं बुधः । परदारादिसंसर्गे चित्तमात्मानमेव च ॥२८
नियोजयत्यत्र सा मामिति प्राज्ञो विचिन्तयेत् । विरोधं कुरुते चान्या दम्पत्योः प्रीयमाणयोः ॥२९
बन्धूनां सुहृदां पित्रोः पुत्रैः सावर्णिकैश्च या । विरोधिनी सा तद्रक्षां कुर्वीत बलिकर्मणा ॥३०
तथातिवादसहनाच्छास्त्राचारनिषेवणात् । धान्यं खलाद्गृहाद्गोष्ठात्पयः सर्पिस्तथा परा ॥३१
समृद्धिमृद्धिमद्द्रव्यादपहन्ति च कन्यका । सा स्वयंहारिकेत्युक्ता सदान्तर्धानतत्परा ॥३२
महानसादर्द्धसिद्धमन्नागारस्थितं तथा । परिविष्यमाणं च सदा सार्द्धं भुङ्क्ते च भुञ्जता ॥३३
उच्छेषणं मनुष्याणां हरत्यन्नं च दुर्हरा । कर्मान्तागारशालाभ्यः सिद्धमृद्धिं हरति द्विज ॥३४
गोस्त्रीस्तनेभ्यश्च पयः क्षीरहारी सदैव सा । दध्नो घृतं तिलात्तैलं सुरागारात्तथा सुराम् ॥३५
रागं कुसुम्भकादीनां कार्पासात्सूत्रमेव च । सा स्वयंहारिका नाम हरत्यविरतं द्विज ॥३६
कुर्याच्छिखण्डिनोर्द्वन्द्वं रक्षार्थं कृत्रिमां स्त्रियम् । रक्षाश्चैव गृहे लेख्या वर्ज्या चोच्छिष्टता तथा ॥३७
होमाग्निदेवताधूपभस्मना च परिष्क्रिया । कार्या क्षीरादिभाण्डानामेवं तद्रक्षणं स्मृतम् ॥३८

गमन अर्थात् बाँई ओर से खेत में जाकर चाण्डाल को प्रवेश करावे ।२४। बाहर बलिप्रदान एवं सोमाम्बु (मंत्रविशेष) का पाठ कराने से उसकी शान्ति होती है । पहली कन्या नियोजिका सब मनुष्यों को परस्त्रीगमन और परद्रव्यहरणादि कार्य में नियोजित करती है । इसकी शांति के लिये पुण्य ग्रंथ पाठ और क्रोधलोभादि का परित्याग करे ।२५-२६। और अन्य किसी मनुष्य के दुर्वचन कहने या ताड़ना करने पर भी क्रोध के वशीभूत न हो क्योंकि विचक्षण पण्डितगण इसकी शान्ति का कारण 'जो परदारा-गमन आदि दुष्कर्म में सदा ही नियोजिका प्रेरणा करती है" यह चिन्ता करके इस असद्वृत्ति से मन को निवृत्त करे दूसरी कन्या विरोधिनी है । यह अत्यन्त प्रिय दम्पत्ति में ।२७-२९। एवं सुहृद्, बंधु, पिता, माता, पुत्र और अपने मनुष्यों में विवाद उपस्थित कराती है । उसकी शान्ति के लिये बलि कर्म करना चाहिए।३०। इसी प्रकार सब झगड़ों को छोड़कर शास्त्रानुसार पवित्र पवित्र क्रियाओं को करना चाहिये। और जो दुःसह की तीसरी खरिहान नामक कन्या है, वह घर के अन्न और गऊ दूध और दूध से घृत।३१। और द्रव्यादिक की हानि करके ऋद्धि और सिद्धि हरण करती है, उसका नाम स्वयंहारिणी है और वह सदा गुप्त रहती है।३२। और रसोई व घर की वस्तुओं में प्रवेश करके कभी अन्न को इकट्ठा नहीं होने देती और भोजन करने वाले के संग आप भोजन करती है ।३३। हे द्विजोत्तम ! जिस घर में अन्न के ढेर से कोई चोरी करता है तो उसे अन्न को वही चुराती है, जो घर में कोई उत्तम कर्म नहीं होता, उस घर की ऋद्धि और सिद्धि वही हरती है ।३४। गाय स्त्रियों के स्तनों में से दूध और दही में से घृत, तिलों में से तेल और सुरा की भट्टी में से सुरापान कर लेती है ।३५। कुसुम्भादि पुष्पका राग (रंग) । कपास से सूत्र (डोरा) स्वयं हरण करती है इसी कारण इसका नाम स्वयंहारिका है ।३६। इसकी शान्ति के लिये अपने घर में एक स्त्री और दो मोरों के चित्र लिखने चाहिए और वह चित्र सदा चमकते रहें, घिसने नहीं ।३७। हवन करे देवताओं के लिये, अग्नि में धूप दे फिर उसी अग्नि की भस्म लेकर दुग्धादि के बर्तन में लगा दे

उद्वेगं जनयत्यन्या एकस्थाननिवासिनः । पुरुषस्य तु या प्रोक्ता भ्रामणी सा तु कन्यका ।।३९
तस्याथ रक्षां कुर्वीत विक्षिप्तैः सितसर्षपैः । आसने शयने चोर्व्यां यत्रास्ते स तु मानवः ।।४०
चिन्तयेच्च नरः पापा मामेषा दुष्टचेतना । भ्रामयत्यसकृज्जप्यं भुवः सूक्तं समाधिना ।।४१
स्त्रीणां पुष्पं हरत्यन्या प्रवृत्तं सा तु कन्यका । तथा प्रवृत्तं सा ज्ञेया दुःसहा ऋतुहारिका ।।४२
कुर्वीत तीर्थदेवौकश्चैत्यपर्वतसानुषु । नदीसङ्गमखातेषु स्नपनं तत्प्रशान्तये ।।४३
मन्त्रविद्भूततत्त्वज्ञः पर्वसूषसि च द्विज । (तेषां तु पूजनं कार्यं धूपवर्त्युपहारकैः) ।।
चिकित्साज्ञश्च यै वैद्यः सम्प्रयुक्तैर्वरौषधैः ।।४४
स्मृतिं चापहरत्यन्या (प्रवृत्तां सा तु कन्यका । अथाप्रवृत्ता सा ज्ञेया) नृणां सा स्मृतिहारिका ।।४५
विविक्तदेशसेवित्वात्तस्याश्चोपशमो भवेत् । बीजापहारिणी चान्या स्त्रीपुंसोरतिभीषणा ।।
मेध्यान्नभोजनैः स्नानैस्तस्याश्चोपशमो भवेत् ।।४६
दारुणा सा दुराचारा दारुणं कुरुते भयम् । तत्प्रशान्त्यै प्रकुर्वीत द्विजानामर्चनं शुभम् ।।४७
अष्टमी द्वेषणी नाम कन्या लोकभयावहा । या करोति जनद्विष्टं नरं नारीमथापि वा ।।४८
मधुक्षीरघृताक्तांस्तु शान्त्यर्थं होमयेत्तिलान् । कुर्वीत मित्रविन्दां च तथेष्टिं तत्प्रशान्तये ।।४९
एतेषां तु कुमाराणां कन्यानां द्विजसत्तम । अष्टत्रिंशदपत्यानि तेषां नामानि मे शृणु ।।५०
दन्ताकृष्टेरभूत्कन्या विजल्पा कलहा तथा । अवज्ञानृतदुष्टोक्तिर्विजल्पा तत्प्रशान्तये ।।५१

और स्त्री अपने कुचाओं में मल दे क्योंकि इस भस्म से समस्त दोष मिट जाते हैं ।३८। और जो भ्रामणी नामक चौथी कन्या है, वह एक स्थान पर वास करने वाले मनुष्यों के हृदय में प्रवेश करके उद्वेग उत्पन्न कराती है ।३९। इसकी शान्ति करनी हो तो आसन पर शय्या में और भूमि में सफेद सरसों बिखेरे किसी पापकार्य में चित्त के दौड़ने पर "दुष्टात्मा भ्रामणी मुझको प्रेरण करती है" यह विचार समाधियुक्त हो भूमिसूक्त (मंत्रविशेष का जम करे) ।४०-४१। पाँचवी कन्या ऋतुहारिका है, यह ऋतुमती स्त्रियों की रज-हरण करती है ।४२। इसकी शान्ति के लिये तत्त्वज्ञ पण्डितगण पर्वत की कन्दराओं में तीर्थों में मन्दिर बनवावें और नदी के संगम स्थान में प्रातः समय स्नान करें ।४३। मंत्र के ज्ञाता यह सब प्रभात में करे और धूपादि उपहार से उनका पूजन करावे और श्रेष्ठ वैद्य से उत्तम औषधि का प्रयोग करावे ।४४। छठी कन्या स्मृतिहारिका वराङ्गनाओं की तथा मनुष्यों की स्मृति को हरण करती है।४५। इसकी शान्ति के लिये उत्तम, परिष्कृत रमणीय स्थान को सेवा करे सातवीं कन्या बीजापहारिणी है । यह स्त्री और पुरुष दोनों की रति का विनाश करती है इसकी शान्ति के लिये पवित्र अन्न भोजन और स्नान करे ।४६। यह दुराचारिणी दारुण कठिन भय उत्पन्न करती है, उसकी शान्ति के अर्थ ब्राह्मण का पूजन शुभ है ।४७। आठवीं कन्या सर्वलोकभयंकरी द्वेषिणी नामक है यह कन्या नर-नारियों मे द्वेष कराती है ।४८। इसकी शान्ति के लिये मधु, दुग्ध और घृतसंयुक्त तिल की आहुति देकर मित्रविन्दा नामक यज्ञ करे ।४९। हे द्विजश्रेष्ठ ! इन सब कुमार और कुमारियों की अष्टत्रिंशत् (३८) संतान हुई, उनके नाम कहता हूँ, सुनो ।५०। दन्ताकृष्टि के विजल्पा और कलहा नामक दो कन्या हुई, विजल्पा अवज्ञा (निरादर) मिथ्या और दुष्ट वचन कहलाने वाली है, उसकी शान्ति के लिये ।५१। बुद्धिमान् गृहस्थ संयत

तामेव चिन्तयेत्प्राज्ञः प्रयतश्च गृही भवेत् । कलहा कलहं गेहे करोत्यविरतं नृणाम् ॥५२
कुटुम्बनाशहेतुः सा तत्प्रशान्तिं निशामय । दूर्वाङ्कुरान्मधुघृतक्षीराक्तान्बलिकर्मणि ॥५३
विक्षिपेज्जुहुयाच्चैवानलं मित्रं च कीर्तयेत् । भूतानां मातृभिः सार्द्धं बालकानां तु शान्तये ॥५४
विद्यानां तपसां चैव संयमस्य यमस्य च । कृष्यां वाणिज्यलाभे च शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा ॥५५
पूजिताश्च यथान्यायं तुष्टिं गच्छन्तु सर्वशः । कूष्माण्डा यातुधानाश्च ये चान्ये गणसंज्ञिताः ॥५६
महादेवप्रसादेन महेश्वरमतेन च । सर्व एते नृणां नित्यं तुष्टिमाशु व्रजन्तु ते ॥५७
तुष्टाः सर्वं निरस्यन्तु दुष्कृतं दुरनुष्ठितम् । महापातकजं सर्वं यच्चान्यद्विघ्नकारणम् ॥५८
तेषामेव प्रसादेन विघ्ना नश्यन्तु सर्वशः । उद्वाहेषु च सर्वेषु वृद्धिकर्मसु चैव हि ॥५९
पुण्यानुष्ठानयोगेषु गुरुदेवार्चनेषु च । जपयज्ञविधानेषु यात्रासु च चतुर्दश ॥६०
शरीरारोग्यभोग्येषु सुखदानधनेषु च । वृद्धबालातुरेष्वेव शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा ॥६१
सोमाम्बुपौ तथाम्भोभिः सविता चानिलानलौ । तथोक्तेः कलिजिह्वोऽभूत्पुत्रस्तालनिकेतनः ॥६२
स येषां रसनासंस्थस्तानसाधून् विवादयेत् । परिवर्तसुतौ द्वौ तु विरूपविकृतौ द्विज ॥६३
तौ तु वृक्षाद्रिपरिखाप्राकाराम्भोधिसंश्रयौ । गुर्विण्याः परिवर्तन्तौ कुरुतः पादपादिषु ॥६४
क्रौष्टुके परिवर्तःस्याद्गर्भस्यान्योदरात्ततः । न वृक्षं चैव नैवाद्रिं न प्राकारं महोदधिम् ॥६५

होकर उसी की चिन्ता करे। कलहा मनुष्यों के घर में सदा कलह कराती है।५२। और उनके कुटुम्बनाश का हेतुस्वरूप है इसकी शान्ति के लिये दूब के अंकुर, मधु, दुग्ध और बलिपूर्वक ।५३। अग्नि में हवन करना चाहिए और सब घर में जल छिड़के, मित्रविन्दा का कीर्तन करे और भली-भाँति यश विनय के सहित भूतों की पूजा वर्णन करे, जिससे बालक की शान्ति हो जाय ।५४। इसके बाद फिर यह कहे कि विद्या, तप, संयम, यम, कृषि (खेती) और व्यापार लाभ में तुम हमारी सदा रक्षा करो ।५५। और यथाविधि पूजित होकर समस्त कूष्माण्ड तथा यातुधान इत्यादि और भी जो अनेक गण हैं, वह मेरी इस पूजा को स्वीकार करके संतुष्ट हों ।५६। महादेव के अनुग्रह और महेश्वर के अभिमतानुसार समस्त मनुष्यों के प्रति शीघ्र संतुष्ट होकर नित्य रक्षा करें ।५७। और संतुष्ट होकर मेरे समस्त पाप दुष्ट कर्म, और महापातक से उत्पन्न जो कष्ट अथवा और भी जो-जो विघ्न के कारण हैं, उन सबका विनाश करें ।५८। और विवाह आदि शुभकार्यों की वृद्धि में यदि कुछ विघ्न हो जाय तो आपके प्रसाद से वह भी सब नाश को प्राप्त हो ।५९। पुण्य कार्य के अनुष्ठान में, गुरु देवता की पूजा में, जप, यज्ञादि कर्त्तव्य अनुष्ठान में, चौदह यात्रा में ।६०। शारीरिक आरोग्यभोग में, सुख दान और धन विषय में एवं वृद्ध, बालक और पीड़ित व्यक्ति के संबंध में सदा शान्ति स्थापन करें ।६१। और सोम, वरुण, सागर, सूर्य, वायु, अग्नि इत्यादि भी मेरी रक्षा करें। तथोक्तिका तालवृक्षवासी कालजिह्वा नामक एक पुत्र है ।६२। हे द्विज ! यह कालजिह्व जिस स्त्री की रसना में स्थित होती है, उसके बालक को बहुत पीड़ा देता है। परिवर्तक के दो पुत्र उत्पन्न हुए, एक का नाम विरूप और दूसरे का नाम विकृत हुआ ।६३। वह वृक्षाग्र (वृक्ष के अग्रभाग) में परिखा (खाईं) चार दीवारी और (सागर) में वास करके गर्भिणी का परिवर्त्तन करते हैं।६४। हे क्रौष्टुकि ! जो गर्भवती स्त्री ऐसे स्थानों में विचरण करती है, वह उसके गर्भ में महाकष्ट

परिखां वा समाक्रामेदबलागर्भधारिणी । अङ्गध्रुक्तनयं लेभे पिशुनं नाम नामतः ॥६६
सोऽस्थिमज्जागतः पुंसां बलमत्त्यजितात्मनाम् । श्येनकाककपोतांश्च गृध्रोलूकौ च वै सुतान् ॥६७
अवाप शकुनिः पञ्च जगृहुस्तान्सुरासुराः । श्येनं जग्राह मृत्युश्च काकं कालो गृहीतवान् ॥६८
उलूकं निर्ऋतिश्चैव जग्राहातिभयावहम् । गृध्रं व्याधिस्तदीशोऽथ कपोतं च स्वयं यमः ॥६९
एतेषामेव चैवोक्ता भूताः पापोपपादने । तस्माच्छ्येनादयो यस्य निलीयेयुः शिरस्यथ ॥७०
तेनात्मरक्षणायालं शान्तिं कुर्याद्द्विजोत्तम । गेहे प्रसूतिरेतेषां तद्वन्नीडनिवेशनम् ॥७१
नरस्तं वर्जयेद्गेहं कपोताक्रान्तमस्तकम् । श्येनः कपोतो गृध्रश्च काकोलूकौ गृहे द्विज ॥७२
प्रविष्टः कथयेदन्तं वसतां तत्र वेश्मनि । ईदृक्परित्यजेद्गेहं शान्तिं कुर्याच्च पण्डितः ॥७३
स्वप्नेऽपि हि कपोतस्य दर्शनं न प्रशस्यते । षडपत्यानि कथ्यन्ते गण्डप्रान्तरतेस्तथा ॥७४
स्त्रीणां रजस्यवस्थानं तेषां कालांश्च मे शृणु । चत्वार्यहानि पूर्वाणि तथैवान्यत्त्रयोदशम् ॥७५
एकादशं तथैवान्यदपत्यं तस्य वै दिने । अन्यद्दिनाभिगमने श्राद्धदाने तथापरे ॥७६
पर्वस्वथान्यत्तस्मात्तु वर्ज्यान्येतानि पण्डितैः । गर्भहन्तुः सुतो निघ्नो मोहनी चापि कन्यका ॥७७
प्रविश्य गर्भमत्त्येको भुक्त्वा मोहयतेऽपरा । जायन्ते मोहनात्तस्याः सर्पमण्डूककच्छपाः ॥७८
सरीसृपाणि चान्यानि पुरीषमथवा पुनः । षण्मासाद्गुर्विणी मांसमश्नुवानामसंयताम् ॥७९
वृक्षच्छायाश्रयां रात्रावथवा त्रिचतुष्पथे । श्मशानकटभूमिष्ठामुत्तरीयविवर्जिताम् ॥८०

देते हैं अत एव गर्भवती नारी को वृक्षों में, कोठे पर, नदी के तट पर ।६५। और खाँई में कभी नहीं जाना चाहिए । अंगध्रुक् ने पिशुन नामक पुत्र लाभ किया है ।६६। पिशुन अज्ञानान्ध मनुष्यों की अस्थि मज्जा में प्रवेश करके बलभोजन करता है शकुनि के श्येन, काक, कपोत, गृध्र और उलूक ।६७। यह पाँच शकुनि के पुत्र हैं उनको सुरासुर ने ग्रहण किया है । श्येन को मृत्यु ने, काक को काल ने ।६८। उलूक को नैर्ऋति ने, गृध्र को व्याधि ने और व्याधीश्वर स्वयं यम ने कपोत को ग्रहण किया ।६९। यह सब पापोत्पादन करते हैं इसलिये बाज इत्यादि के मस्तक पर बैठने से ।७०। आत्मरक्षा के लिये शान्तिकार्य करना चाहिए । जिस घर में यह घोंसला बनावे या बच्चे उत्पन्न करे ।७१। मनुष्य उस घर को भी परित्याग करे । हे द्विज ! बाज, कबूतर, गृघ्र, काक, उलूकगण ।७२। घर में प्रवेश करके उस गृहवासी के अन्तकाल की सूचना देते हैं अत एव पण्डितगण ऐसे गृह को परित्याग करके शान्ति कार्य करें ।७३। स्वप्न में भी कबूतर का देखना अमंगलदायक है गंडप्रान्तरति के जो छः पुत्र कहे हैं ।७४। वह स्त्रियों की रज में वास करते हैं उनका समय कहता हूँ सुनो । प्रथम चार दिन त्रयोदश दिन ।७५। एकादश दिन का अन्त श्राद्धदिन दानकार्यदिवस ।७६। और पर्वदिन यह सब उनके रहने का समय है अत एव पण्डितगण इन सब दिनों को परित्याग करे गर्भहन्ता का विघ्ननामक एक पुत्र और महनी नामक एक कन्या हुई थी।७७। यह गर्भ में प्रवेश करती है विघ्न स्वच्छ गर्भ का भोजन करता है और मोहनी मोह प्रदान करती है उस मोह के कारण ही सर्प, मेंढक, कछुए ।७८। और विच्छू इत्यादि जन्तुगण तथा पुरीष की उत्पत्ति होती है। गर्भवती छः महीने तक मांसभोजन करने से असंयत होने से ।७९। रात्रि के समय वृक्षतल में त्रिपथ या चतुष्पथ (चौराहे) में अवस्थित रहने से श्मशान इत्यादि उत्कट स्थान में गमन करने से या

रुद्यमानां निशीथेऽथ आविशेत्तामिमौ स्त्रियम् । सस्यहन्तुस्तथैवैकः क्षुद्रको नाम नामतः ॥८१
सस्यार्द्धिं स सदा हन्ति लब्ध्वा रन्ध्रं शृणुष्व तत् । अमङ्गल्यदिनारम्भे सुतृप्तो वपते च यः ॥८२
क्षेत्रेष्वनुप्रवेशं वै करोत्यन्तोपसङ्गिषु ॥८३
अमङ्गल्यादनारम्भं मङ्गलानां च वर्जयेत् । (महद्भयं प्रयच्छन्ति यत्र वै तत्प्रसङ्गिषु) ॥
तस्मात्कल्यः सुप्रशस्ते दिनेऽभ्यर्च्य निशाकरम् ८४
कुर्यादारम्भमुप्तिं च हृष्टस्तुष्टः सहायवान् । नियोजिकेति या कन्या दुःसहस्य मयोदिता ॥८५
जातं प्रचोदिकासंज्ञं तस्याः कन्याचतुष्टयम् । मत्तोन्मत्तप्रमत्तान्स्तु नरान्नारीस्तु ताः सदा ॥८६
समाविशन्ति नाशाय चोदयन्तीह दारुणम् । अधर्मं धर्मरूपेण कामं चाकामरूपिणम् ॥८७
अनर्थं चार्थरूपेण मोक्षं चामोक्षरूपिणम् । दुर्विनीतान्विना शौचं दर्शयन्ति पृथङ् नरान् ॥८८
भ्रंशत्याभिः प्रविष्टाभिः पुरुषार्थात्पृथङ् नराः । तासां प्रवेशश्च गृहे सन्ध्यृक्षेषु ह्युदुम्बरे ॥८९
धात्रे विधात्रे च बलिर्यत्र काले न दीयते । भुञ्जतां पिबतां वापि संगिभिर्जलविप्रुषैः ॥९०
नरनारीषु संक्रान्तिस्तासामाश्वभिजायते । विरोधिन्यास्त्रयः पुत्राश्चोदको ग्राहकस्तथा ॥९१
तमः प्रच्छादकश्चान्यस्तत्स्वरूपं शृणुष्व मे । प्रदीपतैलसंसर्गदूषिते लङ्घिते खले ॥९२
मुसलोलूखले यत्र पादुके वासने स्त्रियः । शूर्पदात्रादिकं यत्र पदाकृष्टं तथासनम् ॥९३

उत्तरीयरहित अर्थात् नग्न होने से ।८०। और रात्रि के समय रोदन करने से विघ्न उस स्त्री में प्रवेश करता है । सस्यहन्ता का क्षुद्रक नामक एक पुत्र हुआ ।८१। वह छिद्र पाते ही सस्यवृद्धि की हानि करता है । जो मनुष्य अमङ्गल दिन में अतृप्त होकर धान्य बोने का कार्य प्रारम्भ करता है ।८२। उसके खेत में क्षुद्रक प्रवेश करता है ।८३। वह अमङ्गल का आरम्भ कर मङ्गलों को वर्ज देता है । (और संगियों में बडा भय करता है) इसका उपाय यही कहा गया है कि अच्छे पवित्र दिन में चन्द्रमा की पूजा करके ।८४। प्रसन्न चित्त से कृषि कार्य का आरंभ और बीजवपन करे । दुःसह की नियोजिका नामक कन्या थी, जिसका वर्णन मैं पहले आपसे कर चुका हूँ ।८५। उसकी प्रचोदिका नामक चार कन्या हुई वह सदा ही अति प्रमत्त यौवन के मद से गर्वित नर-नारियों में प्रवेश कर।८६। नाश करने के निमित्त उनको दारुण रूप से प्रेरण करती हैं दुर्विनीतभाव (खोटेपन) के द्वारा धर्मरूप में अधर्म को अकामरूप में काम को।८७। अर्थरूप में अनर्थ को और अमोक्षरूप में मोक्ष को प्रेरणपूर्वक मनुष्यों को पृथक्-पृथक् दर्शन कराकर अत्यन्त दारुण भाव से नाश करने के लिये प्रवेश करती हैं ।८८। पूर्वोक्त आठ कन्याओं के द्वारा पुरुषार्थ से पृथक् होकर पुरुष भ्रष्ट हो भ्रमण करते हैं इनका प्रवेश घरों के उदुम्बर में नक्षत्र की संधि में होता है ।८९। और धाता विधाता को जब पूजा नहीं दी जाती उसी समय वह घर में प्रविष्ट होती है संगी गणों के सहित भोजन और जलपान के समय कुल्ले के समय में।९०। उनका नर-नारियों में संक्रमण होता है विरोधिनी के तीन पुत्र हुए एक का नाम चोदक और दूसरे का नाम ग्राहक ।९१। और जो तीसरा तमः प्रच्छादक पुत्र है, उसका स्वरूप सुनो ! जहाँ मुसल या ओखली दीपक के तेल से दूषित वा उलांघी जाती है।९२। जहाँ मुसल-ओखली स्त्रियों की पादुका और आसन होता है वा दूषित होता अथवा उलाँघा जाता है, जहाँ पैरों से आसन और छाज, दराती इत्यादि सरकाती हैं।९३। जहाँ लिपे हुए बिना पूजन किये विहार किया

यत्रोपलिप्तेनाभ्यर्च्य विहारः क्रियते गृहे । दर्वीमुखेन यत्राग्निराहृतोऽन्यत्र नीयते ।।९४
विरोधिनी सुतास्तत्र विजृम्भन्ते प्रचोदिताः। एको जिह्वागतः पुंसां स्त्रीणां चालीकसत्यवान् ।।९५
चोदको नाम स प्रोक्तः पैशुन्यं कुरुते गृहे । अवधानगतश्चान्यः श्रवणस्थोऽतिदुर्मतिः ।।९६
करोति ग्रहणं तेषां वचसां ग्राहकस्तु सः । आक्रम्यान्यो मनो नृणां तमसाच्छाद्य दुर्मतिः ।।९७
क्रोधं जनयते यस्तु तमः प्रच्छादकस्तु सः । स्वयंहार्यास्तु चौर्येण जनितं तनयत्रयम् ।।९८
सर्वहार्यर्द्धहारी च वीर्यहारी तथैव च । अनाचान्तगृहेष्वेते मन्दाचारगृहेषु च ।।९९
अप्रक्षालितपादेषु प्रविशत्सु महासनम् । खलेषु गोष्ठेषु च वै दोहो येषु गृहेषु वै ।।१००
तेषु सर्वे यथान्यायं विहरन्ति रमन्ति च । भ्रामण्यास्तनयस्त्वेकः काकजङ्घ इति स्मृतः ।।१०१
तेनाविष्टो रतिं सर्वो नैव प्राप्नोति वै मुने । भुञ्जन्यो गायते मैत्रे गायते हसते च यः ।।१०२
सन्ध्यामैथुनिनं चैव नरमाविशति द्विज । कन्यात्रयं प्रसूता सा या कन्या ऋतुहारिणी ।।१०३
एका कुचहरा कन्या अन्या व्यञ्जनहारिका। तृतीया तु समाख्याता कन्यका जातहारिणी ।।१०४
यस्या न क्रियते सर्वः सम्यग्वैवाहिको विधिः। कालातीतोऽथवा तस्या हरत्येका कुचद्वयम् ।।१०५
सम्यक् श्राद्धमदत्त्वा च तथानभ्यर्च्य मातृकाः। विवाहितायाः कन्याया हरति व्यञ्जनं तथा ।।१०६
अग्न्यम्बुशून्ये च तथा विधूपे सूतिकागृहे । अदीपशस्त्रमुसले भूतिसर्षपवर्जिते ।।१०७
अनुप्रविश्य सा जातमपहृत्यात्मसम्भवम् । क्षणप्रसविनी बालं तत्रैवोत्सृजते द्विज ।।१०८

जाता है और जहाँ करछली से आग निकालकर दूसरे को दी जाती है।९४। उन सब स्थानों में इस विरोधिनी के पुत्र विक्रम प्रकाश करते हैं। एक तो स्त्री और पुरुषों की जिह्वा में वास करके मिथ्या और सत्य कहलाता है।९५। उसका नाम चोदक है वही मनुष्यों के घर में पिशुनता अर्थात् कुटिलता और नीचकर्म करता है, अति दुर्मतिग्राहक कानों में वास करके।९६। उन सब वाक्यों को ग्रहण करता है, तमःप्रच्छादक मनुष्यों के मन को आक्रमण करके।९७। तम (अंधकार) द्वारा आच्छादनपूर्वक क्रोध की उत्पत्ति करता है। स्वयंहारी के तीन पुत्र हुए हैं।९८। सर्वाहारी, अर्द्धहारी, और वीर्यहारी यह अपवित्र गृह में मन्दाचार गृह में।९९। बिना पैर धोये पाकशाला में प्रवेश और जिसके खल में (खरहान में) गोष्ठ में और घर में विद्रोह उपस्थित होता है।१००। उन सब स्थानों में अन्याय रीति से विहार और रमण करते हैं। काकजंघ नामक भ्रामणी का पुत्र हुआ।१०१। उसके प्रविष्ट होने पर घर में कोई प्रसन्नता को प्राप्त नहीं होता, जो पुरुष भोजन करने के समय गान करते है मित्रों से बातचीत करते हैं या हँसते हैं।१०२। और जो संध्याकाल में मैथुन करते हैं, उन पर काकजंघ आक्रमण करता है। हे द्विज! ऋतुकाल में हरिणी ने तीन कन्या उत्पन्न की।१०३। पहली कन्या का नाम कुचहरा, दूसरी का नाम व्यञ्जनहारिका और तीसरी कन्या का नाम जातिहारिणी हुआ।१०४। सम्यक् प्रकार की विधि से जिस कन्या का विवाह नहीं किया जाता है और विवाह की लग्न के बीत जाने पर विवाह होता है, उस नारी के दोनों कुचों को वह कुचहरा हरण करती है।१०५। श्राद्धादि कार्य भली भाँति न करके और माता की बिना पूजा किये जो कन्या व्याही जाती है, उसका व्यञ्जनहारिका व्यञ्जन हरण करती है।१०६। सूतिकागृह अर्थात् सोवर में अग्नि, जल, धूप, दीप, शस्त्र, मुसल, भस्म और सरसों के न होने से।१०७। जातहारिणी वहाँ प्रवेश करके वहाँ के बालकों को हरण कर तत्कालोत्पन्न अन्य बालकों को उस स्थान में

सा जातहारिणी नाम सुघोरा पिशिताशना । तस्मात्संरक्षणं कार्यं यत्नतः सूतिकागृहे ।।१०९
स्मृतिं चाप्रयतानां च शून्यागारनिषेवणात् । अपहन्ति सुतस्तस्याः प्रचण्डो नाम नामतः ।।११०
पौत्रेभ्यस्तस्य सम्भूता लीकाः शतसहस्रशः । चण्डालयोनयश्चाष्टौ दण्डपाशातिभीषणाः ।।१११
क्षुधाविष्टास्ततो लीकास्ताश्च चण्डालयोनयः । अभ्यधावन्त चान्योन्यमत्तुकामाः परस्परम् ।।११२
प्रचण्डो वारयित्वा तु यास्ताश्चण्डालयोनयः । समये स्थापयामास यादृशे तादृशं शृणु ।।११३
अद्यप्रभृति लीकानामावासं यो हि दास्यति । दण्डं तस्याहमतुलं पातयिष्ये न संशयः ।।११४
चण्डालयोन्यावसथे लीका या प्रसविष्यति । तस्याश्च सन्ततिः पूर्वा सा च सद्यो न शिष्यति ।।११५
प्रसूते कन्यके द्वे तु स्त्रीपुंसोर्बीजहारिणी । वातरूपामरूपां च तस्याः प्रहरणं तु ते ।।११६
वातरूपा निषेकान्ते सा यस्मै क्षिपते सुतम् । स पुमान्वातशुक्रत्वं प्रयाति वनितापि वा ।।११७
तथैव गच्छतः सद्यो निर्बीजत्वमरूपया । अस्नाताशी नरो योऽसौ तथा चापि वियोगिनः ।।११८
विद्वेषिणी तु या कन्या भृकुटीकुटिलानना । तस्य द्वौ तनयौ पुंसामपकारप्रकाशकौ ।।११९
निर्बीजत्वं नरो याति नारी वाशौचवर्जिता । पैशुन्याभिरतं लोलमसज्जलनिषेवणम् ।।१२०
पुरुषद्वेषिणं चैतो नरमाक्रम्य तिष्ठतः । मात्रा भ्रात्रा तथा मित्रैरभीष्टैः स्वजनैः परैः ।।१२१
विद्विष्टो नाशमायाति पुरुषो धर्मतोऽर्थतः । एकस्तु स्वगुणाँल्लोके प्रकाशयति पापकृत् ।।१२२

रख देती है ।१०८। इस कारण पिशिताशना भयंकरी उस जातहारिणी से सोवर में यत्नपूर्वक सदा बालक की रक्षा करे ।१०९। उसका पुत्र प्रचण्ड है, सूने घर में रहने के कारण असंयतचित्त मनुष्यों की स्मृति नष्ट करता है ।११०। उसके पौत्रों से सैकड़ों हजारों लीका उत्पन्न हुई दण्ड पाश धारण करने वाली महाभयंकर आठ चाण्डालयोनिभी इसी वंशी से उत्पन्न हुई हैं ।१११। लीका और चाण्डाल जातिगण भूख से आतुर होकर परस्पर को भक्षण करने की इच्छा से जब दौड़ीं ।११२। तब प्रचंड ने उसको निवारण करके जिस समय में स्थापन किया था, वह सुनो ।११३। जो पुरुष आज से लीकों को स्थान देगा उसको मैं निःसन्देह अत्यन्त दारुण दंड दूंगा ।११४। चाण्डाल के घर में बास करके या पराये गृह (वेश्यागृह) में जो स्त्री संतान उत्पन्न करती है, वह लीक उसकी समस्त संतान का विनाश करती है ।११५। स्त्री-पुरुष के वीर्य को हरने वाली बीजापहारिणी ने वातरूपा और अरूपा नामक जो दो कन्या को उत्पन्न किया ।११६। उन में वातरूपा अभिषेक समय में शुक्र को जिसमें निक्षेप करती है वह पुरुष या स्त्री वातशुक्रत्व (रोगविशेष) को प्राप्त होते हैं ।११७। जो मनुष्य बिना स्नान किये और बिना भोजन किये स्त्रीसंग भोग करता है तथा किसी वियोनि में मैथुनासक्त होता है अरूपा उसको शीघ्र निर्बीज करती है ।११८। कुटिल मुख और भृकुटि चढ़ाने वाली विद्वेषिणी को दो पुत्र हुए । वह सदा पुरुषों का अपकार प्रकाश करते हैं ।११९। शौचवर्जित अर्थात् अपवित्र रहने वाले नर नारीगण ही निर्बीजता लाभ करते हैं । विद्वेषणी के दोनों पुत्र पैशुन्यरत पराई निन्दा में रत लोल (चपल) अशुद्धजलसेवी ।१२०। और पुरुष द्वेषी पुरुष को आक्रमण करके अवस्थान करते हैं। यथार्थ में किसी माता, भ्राता, मित्र, प्रियजन और आत्मीय जनों के ।१२१। विद्वेषी होने से धर्म और अर्थ का नाश करते हैं। पापाचारी एक पुत्र अपने गुणों को लोक में प्रकाशित करता है ।१२२। दूसरा लोकों का गुण और

द्वितीयस्तु गुणान्मैत्रीं लोकस्थामपकर्षति । इत्येते दौःसहाः सर्वे यक्ष्मणः सन्ततावथ ॥
पापाचाराः समाख्याता यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥१२३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दौःसहोत्पत्तिसमापनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।४८।

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रुद्रसर्गाभिधानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इत्येष तामसः सर्गो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । रुद्रसर्गं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥१
तनवश्च तथैवाष्टौ पत्न्यः पुत्राश्च ते तथा । कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतः प्रभोः ॥२
प्रादुरासीदथाङ्केऽस्य कुमारो नीललोहितः । रुरोद सुस्वरं सोऽथ द्रवंश्च द्विजसत्तम ॥३
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह । नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच जगत्पतिम् ॥४

ब्रह्मोवाच

रुद्रस्त्वं देव नाम्नासि मा रोदीर्धैर्यमावह । एवमुक्तस्ततः सोऽथ सप्तकृत्वो रुरोद ह ॥५
ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभुः । स्थानानि चैषामष्टानां पत्नीः पुत्रांश्च वै द्विज ॥६
भवं शर्वं तथेशानं तथा पशुपतिं प्रभुः । भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ॥७
चक्रे नामान्यथैतानि स्थानान्येषां चकार ह । सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च ॥८

मैत्री का आकर्षण कर लेता है । इस प्रकार पापाचारी दुःसहगण सम्पूर्ण व्याप्त कर रहे हैं ।१२३

श्रीमार्कण्डेयपुराण में दौःसहोत्पत्तिसमापन नामक अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४८।

अध्याय ४९

रुद्रसर्गाभिधान का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा जी की यह तामसी सृष्टि कही गई । अब रुद्रसर्ग का विषय कहता हूँ सुनो ।१। आठ पुत्र, उनकी पत्नी, और समस्त पुत्र कल्पादि में आत्मतुल्य पुत्र की चिन्ता करने से वैसे ही हुऐ ।२। हे द्विजसत्तम ! उन आठों कुमारों में जो एक कुमार नीललोहित शरीरवाला ब्रह्मा जी के शरीर से उत्पन्न हुआ था वह प्रभु की गोदी में सुस्वर से रोदन करने लगा ।३। उसको रोता देखकर ब्रह्मा जी ने पूछा "तूँ किस निमित्त रोता है ?" कुमार ने कहा "हे जगत्पते ! मुझको नाम प्रदान कीजिये" ।४

ब्रह्मा जी बोले—तुम्हारा "रुद्र" नाम हुआ अब मत रोओ, धैर्य धारण करो । ब्रह्मा जी के इस प्रकार कहने पर कुमार सात-बार फिर रोया ।५। हे द्विज ! तब क्रमानुसार उसको और भी सात नाम प्रदान किये । फिर इन आठों को आठ स्थान, पत्नी और पुत्र दान किये ।६। पितामह ब्रह्मा जी ने रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ।७। यह आठ नाम प्रदान करके आठ स्थान का निर्देश

दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात् । सुवर्चला तथैवोमाविकेशी चापरा स्वधा ॥९
स्वाहा दिशस्तथा दीक्षा रोहिणी च यथाक्रमम् । सूर्यादीनां द्विजश्रेष्ठ रुद्राद्यैर्नामभिः सह ॥१०
शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः । स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चानुक्रमात्सुताः ॥११
एवम्प्रकारो रुद्रोऽसौ सतीं भार्यामविन्दत । दक्षकोपाच्च तत्याज सा सती स्वं कलेवरम् ॥१२
(शम्भोरवज्ञा यत्रास्ते स्थातव्यं नैव सूरिभिः । एते च ब्राह्मणाः सर्वे ये द्विषन्तो महेश्वरम् ॥
भवन्तु ते वेदबाह्याः पापोपहतचेतसः । पाखण्डाचारनिरताः सर्वे निरयगामिनः ॥
कलौ युगे तु सम्प्राप्ते दरिद्राः शूद्रजापकाः ॥) हिमवद्दुहिता साभून्मेनायां द्विजसत्तमः ॥
तस्या भ्राता तु मैनाकः सखाम्भोधेरनुत्तमः ॥१३
उपयेमे पुनश्चैनामनन्यां भगवान् भवः । देवौ धाताविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत ॥१४
श्रियं च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या । आयतिर्नियतिश्चैव मेरोः कन्ये महात्मनः ॥१५
भार्ये धाताविधात्रोस्ते तयोर्जातौ सुतावुभौ । प्राणश्चैव मृकण्डुश्च पिता मम महायशाः ॥१६
मनस्विन्यामहं तस्मात्पुत्रो वेदशिरा मम । धूम्रवत्यां समभवत्प्राणस्यापि निबोध मे ॥१७
प्राणस्य द्युतिमान्पुत्र उत्पन्नस्तस्य चात्मजः । अजराश्च तयोः पुत्राः पौत्राश्च बहवोऽभवन् ॥१८
पुत्री मरीचेः सम्भूतिः पौर्णमासमसूयत् । विरजाः पर्वतश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मनः ॥१९

किया । सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश ।८। दीक्षित, ब्राह्मण और सोम यह आठ मूर्त्ति और सुर्वचला, उमा, विकेशी, स्वधा ।९। स्वाहा, दिक्, दीक्षा और रोहिणी, यह रुद्रादि नामक रुद्र की पत्नी हैं, हे द्विजश्रेष्ठ ! अब रुद्रादि के नाम सहित सूर्य के पुत्रों के नाम कहता हूँ, सुनो ।१०। शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध यह आठ क्रमशः रुद्रादि के पुत्र हैं ।११। यह रुद्र इस प्रकार से सती को भार्यारूप से प्राप्त हुए थे । फिर दक्ष के कोप से सती ने अपना देह त्याग किया ।१२। (कारण कि जहाँ शिवजीका निरादर होवे वहाँ विद्वान् को स्थित रहना नहीं चाहिए यह सब ब्राह्मण जो महेश्वर से द्वेष करते हैं, वे पाप से नष्टचित्त हो वेद से बाहर हों तथा पाखण्ड में निरत होकर नरकगामी हों यह कलियुग प्राप्त होने से दरिद्र और शूद्रों का जप करने वाले हों) ऐसा शाप दे मेनका के गर्भ में हिमवान् की पुत्री हुई थी, समुद्र का सखा मैनाक उनका भाई था ।१३। भगवान् भव ने फिर पार्वती से विवाह किया और भृगुजी की भार्या जो ख्याति नाम से प्रसिद्ध थी, उसके दो पुत्र हुए । एक का नाम धाता और दूसरे का विधाता रखा गया ।१४। और जो देव-देव भगवान् नारायण हैं, उनकी पत्नी लक्ष्मी जी हुई और जो महात्मा मेरु की आयति और नियति नामक दो कन्या थी ।१५। वह धाता-विधाता की भार्या हुई । एक-एक पुत्र इन दोनों के उत्पन्न हुआ, आयति के जो पुत्र हुआ, उसका नाम धाता ने प्राण रखा और नियति के पुत्र का नाम विधाता ने मृकण्ड रखा यही महायशवान् मुझ मार्कण्डेय के पिता हैं ।१६। मेरे पिता मृकण्डु जी का विवाह मनस्विनी से हुआ जो मेरी जननी है और मेरे जो पुत्र हुआ, उसका नाम मैंने वेदशिरा रखा । प्राण की पत्नी धूम्रवती हुई उसके जो पुत्र हुए, उनको कहता हूँ ।१७। पुत्रवती के गर्भ से द्युतिमान् और अजरानामक प्राण के दो पुत्र उत्पन्न हुए इनके पुत्र पौत्र अनेक हुए थे ।१८। मरीचि की पत्नी सम्भूति ने पौर्णमास को उत्पन्न किया । विरजा और पर्वतनामक उसके दो महात्मा पुत्र

तयोः पुत्रांस्तु वक्ष्येऽहं वंशसंकीर्त्तने द्विज । स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी प्रसूता कन्यकास्तथा ।।२०
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा । अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ।।२१
सोमं दुर्वाससं चैव दत्तात्रेयं च योगिनम् । प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तोऽन्यस्तत्सुतोऽभवत् ।।२२
पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे । कर्दमश्चार्ववीरश्च सहिष्णुश्च सुतत्रयम् ।।२३
क्षमा तु सुषुवे भार्या पुलहस्य प्रजापतेः । क्रतोस्तु सन्नतिर्भार्या बालखिल्यानसूयत् ।।२४
षष्ठिर्यानि सहस्राणि ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् । ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः ।।२५
रजो गात्रोर्ध्वबाहुश्च सबलश्चानवस्तथा । सुतपाः शुक्ल इत्येते सर्वे सप्तर्षयः स्मृताः ।।२६
योसावग्निरभीमानी ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः । तस्मात्स्वाहा सुताँल्लेभे त्रीनुदारौजसो द्विज ।।२७
पावकं पवनं चैव शुचिं चापि जलाशिनम् । तेषां तु सन्ततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च ।।२८
कथ्यन्ते बहुशश्चैते पितापुत्रत्रयं च यत् । एवमेकोनपञ्चाशद्दुर्जयाः परिकीर्तिताः ।।२९
पितरो ब्रह्मणा सृष्टा ये व्याख्याता मया तव । अग्निष्वात्ता बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये ।।३०
तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वै धारिणीं तथा । ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चाप्युभे द्विज ।।३१

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रुद्रसर्गाभिधानो नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।४९।

हुए ।१९। हे द्विजवर ! इनके पुत्रों की वंशकीर्त्ति के लिये रक्षा करूँगा अर्थात् राजवंश के वर्णन में कीर्तन करूँगा । अंगिरा की पत्नी स्मृति ने ।२०। सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामक चार कन्या को उत्पन्न किया । अत्रि से अनसूया ने पापरहित ।२१। सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय नामक तीन योगियों को पुत्ररूप में प्राप्त किया था । पुलस्त्य की भार्या प्रीति के गर्भ से दत्त या दम्भोलिकी उत्पत्ति हुई ।२२। यही पूर्वजन्म अर्थात् स्वायम्भुव मन्वन्तर में अगस्त्य नाम से विख्यात थे । प्रजापति पुलह की भार्याक्षमा ने कर्दम, अर्ववीर और सहिष्णु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये । त्रस्तु की भार्या सन्नति ने ।२३-२४। ऊर्ध्वरेता साठ हजार वालखिल्यगण को उत्पन्न किया है, ऊर्ज्जा के गर्भ से वसिष्ठ के सात पुत्र उत्पन्न हुए ।२५। उनके रज, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सबल, अनघ, सुतपा और शुक्र, यही सप्त ऋषि के नाम से विख्यात हैं ।२६। हे द्विज ! अभिमानी अग्नि ब्रह्मा जी के ज्येष्ठ पुत्र हैं, उनका विवाह स्वाहा के संग हुआ और उनके भी तीन पुत्र बड़े प्रतापी और महाबलवान् हुए ।२७। पावक, पवमान और शुचि, जो सदा जल का पान करते रहते हैं, उनके पैंतालीस पुत्र उत्पन्न हुए ।२८। और अन्य तीन पुत्र पिता नाम से कहे गये हैं वह अग्नि के पोते हैं, यह उनचास (४९) अग्नि के पोते दुर्जय कहे गये हैं ।२९। मैंने तुमसे इनको ही पूर्व में पितरों के नाम से व्याख्या की है अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, अनग्नि और साग्नि ।३०। पितरों से स्वधा ने मैना और वैधारिणी नामक दो कन्या प्राप्त की । हे द्विज ! यह दोनों कन्या परम ब्रह्मवादिनी और योगाभ्यास में तत्पर हुई ।३१

श्रीमार्कण्डेयपुराण में रुद्रसर्गाभिधान नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ।४९।

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः (५३)

स्वायम्भुवमन्वन्तरवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

स्वायम्भुवं त्वया ख्यातमेतन्मन्वन्तरं च यत् । तदहं भगवन्सम्यक् श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥१
मन्वन्तरप्रमाणं च देवा देवर्षयस्तथा । ये च क्षितीशा भगवन्देवेन्द्रश्चैव यस्तथा ॥२

मार्कण्डेय उवाच

मन्वन्तराणां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः । मानुषेण प्रमाणेन शृणु मन्वन्तरं च मे ॥३
त्रिंशत्कोटयस्तु संख्याता सहस्राणि च विंशतिः । सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि च संख्यया ॥४
मन्वन्तरप्रमाणं च इत्येतत्साधिकं विना । अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतम् ॥५
द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि च । स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा ॥६
औत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा । षडेते मनवोऽतीतास्तथा वैवस्वतोऽधुना ॥७
सावर्णाः पञ्च रौच्याश्च भौत्याश्चागामिनस्त्वमी । एतेषां विस्तरं भूयो मन्वन्तरपरिग्रहे ॥८
वक्ष्ये देवानृषींश्चैव देवेन्द्राः पितरश्च ये । उत्पत्तिसंग्रहं ब्रह्मन् श्रूयतामस्य सन्ततिः ॥९
यच्च तेषामभूत्क्षेत्रं तत्पुत्राणां महात्मनाम् । मनोः स्वायम्भुवस्यासन्दश पुत्रास्तु तत्समाः ॥१०
यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता । ससमुद्राऽऽकरवती प्रतिवर्षं निवेशिता ॥११

अध्याय ५०

स्वायम्भुव मन्वन्तरों का वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! आपने जो यह स्वायंभुव मन्वन्तर का विषय वर्णन किया, उसको सम्यक् प्रकार से सुनने की इच्छा करता हूँ आप कहो।१। हे ब्रह्मन् ! मन्वन्तर का प्रमाण देवता देवर्षि क्षितिज (राजा) और देवेन्द्र की कथा विस्तारसहित वर्णन किजिए।२

मार्कण्डेय जी बोले—मन्वन्तर की संख्या कुछ अधिक इकहत्तर (७१) चौयुगी, है, उसको मनुष्य के प्रमाण से कहता हूँ सुनो।३। तीस करोड़ सडसठ लाख, बीस हजार वर्ष मनुष्य के एक मन्वन्तर में बीतते हैं।४। यह मन्वन्तर का प्रमाण अधिकाई के बिना है देवताओं के आठ लाख।५। बावन सहस्र वर्ष एक मन्वन्तर में बीत जाते हैं। पहला मनु स्वायम्भुव, दूसरा स्वारोचिष।६। औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष यह छः मनु बीत गये हैं, इस समय वैवस्वत मनु वर्तमान है।७। और पंचसावर्णि रौच्य और औत्य यह आगामी हैं अर्थात् अब आगे आवेंगे, इनका संपूर्ण वृत्तान्त मन्वन्तरों के वर्णन में विस्तार सहित आप से कहूँगा।८। हे ब्रह्मन् ! देवता, ऋषि, इन्द्र और पितर जो जो मन्वन्तरों में होते हैं, उन सब की उत्पत्ति और संग्रह सन्तान सहित वर्णन करता हूँ, आप सुनिये।९। और उन महात्मा पुरुषों के जो जो स्थान तथा जो जो संतान उत्पन्न हुई, वह भी कहता हूँ। स्वायम्भुवमनु के दश पुत्र उत्पन्न हुए, वह सब उनके ही समान थे।१०। जिन्होंने सप्तद्वीपवाली सपर्वता, ससमुद्रा और

स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तथा । प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य च ॥१२
प्रियव्रतात्प्रजावत्यां वीरात्कन्या व्यजायत । कन्या सा तु महाभागा कर्दमस्य प्रजापतेः ॥१३
कन्ये द्वे दशपुत्रांश्च सम्राट् कुक्षी च ते उभे । तयोर्वै भ्रातरः शूरा प्रजापतिसमा दश ॥१४
आग्नीध्रो मेधातिथिश्च वपुष्मांश्च तथापरः । ज्योतिष्मान्द्युतिमान्भव्यः सवनः सप्त एव ते ॥१५
मेधाग्निबाहुमित्रास्तु त्रयो योगपरायणाः । जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधुः ॥
प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तान्सप्त सप्तसु पार्थिवान् । द्वीपेषु तेन धर्मेण द्वीपांश्चैव निबोध मे ॥१६
जम्बुद्वीपे तथाग्नीध्रं राजानं कृतवान्पिता । प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः ॥१७
शाल्मलेस्तु वपुष्मन्तं ज्योतिष्मन्तं कुशाह्वये । क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमन्तं भव्यं शाकाह्वयेश्वरम् ॥१८
पुष्कराधिपतिं चापि सवनं कृतवान्सुतम् । महावीतो धातकिश्च पुष्कराधिपतेः सुतौ ॥१९
द्विधा कृत्वा तयोर्वर्षं पुष्करे सन्यवेशयत् । भव्यस्य पुत्राः सप्तासन्नामतस्तान्निबोध मे ॥२०
जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीवकः । कुशोत्तरोऽथ मेधावी सप्तमस्तु महाद्रुमः ॥२१
तन्नामकानि वर्षाणि शाकद्वीपे चकार सः । तथा द्युतिमतः सप्त पुत्रास्तांस्तु निबोध मे ॥२२
कुशलो मनुगश्चोष्णः प्राकाराश्चार्थकारकः । मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तमः परिकीर्तितः ॥२३
तेषां स्वनामधेयानि क्रौञ्चद्वीपे तथाभवन् । ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे पुत्रनामाङ्कितानि वै ॥२४

आकर (खान) वती इस पृथ्वी को वर्षों में विभक्त किया था ।११। पूर्व में स्वायम्भुव के पौत्रों ने भी ऐसा ही किया था ।१२। कर्दम प्रजापति की प्रजावती नामक महाभागा कन्या के गर्भ में और प्रियव्रत के औरस से ।१३। दश पुत्र और दो कन्याओं ने जन्म ग्रहण किया । इन दोनों कन्या ने सम्राट् और कुक्षि नाम धारण किया था और उपरोक्त दश भ्राता महाशूर और प्रजापति के समान हुए ।१४। उन दशों के नाम—आग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य, और सवन ।१५। हे महाभाग ! इनमें सबसे छोटे मेधा, अग्निबाहु और मित्र इन तीनों ने जातिस्मर होने से राज्य नहीं किया, वरन् योगपरायण हुए । तब शेष उन सात पुत्रों को राजा प्रियव्रत ने सातों द्वीपों का राज्य दिया और वह लोग भी धर्मसहित सातों द्वीपों का राज्य करने लगे । अब मैं उन द्वीपों का नाम भी वर्णन करता हूँ ।१६। अर्थात् राजा प्रियव्रत ने आग्नीध्र को जम्बूद्वीप का राजा किया और मेधातिथि को प्लक्षद्वीप का राज्य दिया ।१७। फिर वपुष्मान् को शाल्मलिद्वीपका, ज्योतिष्मान् को कुशद्वीप का, द्युतिमान् को क्रौंचद्वीप का और भव्य को शाकद्वीप का राजा किया ।१८। सवन नामक पुत्र को पुष्कर द्वीप का अधिपति किया, तब इन पुष्कराधिपति सवन के मेधावी और धातकी नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ।१९। तब उन दोनों पुत्रों को महाराज सवन ने पुष्करद्वीप के दो भाग करके बाँट दिये, और शाकद्वीप के राजा भव्य के सात पुत्र हुए, उन सब के नाम वर्णन करता हूँ ।२०। जलद, कुमार, सुकुमार, मणीवक, कुशोत्तर, मेधावी और सातवाँ महाद्रुम नाम हुआ ।२१। तब शाकद्वीप के सात भाग करके उस राजा ने सातों पुत्रों को दे दिये, वह सप्त भाग, सप्त वर्ष इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हुए । इसी प्रकार क्रौञ्चद्वीप के राजा द्युतिमान् के भी सात पुत्र हुए, उनके नाम भी नाम कहता हूँ ।२२। कुशल, मनुग, उष्ण, आकार, अर्थकारक, मुनि और सातवाँ दुन्दुभि नामक हुआ ।२३। इन सात नामों के अनुसार क्रौञ्चद्वीप के भी सात भाग हुए थे । ज्योतिष्मान्

(तत्रापि सप्त वर्षाणि तेषां नामानि मे शृणु) । तस्यापि सप्त पुत्रास्तु ज्ञेयास्तेऽपि महौजसः ॥
उद्भिदं वैणवं चैव सुरथं लम्बनं तथा ॥२५
धृतिमत्प्राकरं चैव कपिलं चापि सप्तमम् । वपुष्मतः सुताः सप्त शाल्मलेशस्य चाभवन् ॥२६
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा । वैद्युतो मानसश्चैव केतुमान्सप्तमस्तथा ॥२७
तथैव शाल्मले तेषां समनामानि सप्त वै । सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै ॥२८
येषां नामाङ्कितैर्वर्षैः प्लक्षद्वीपस्तु सप्तधा । पूर्वं शाकभवं वर्षं शिशिरं तु सुखोदयम् ॥२९
आनन्दं च शिवं चैव क्षेमकं च ध्रुवं तथा । प्लक्षद्वीपादिभूतेषु शाकद्वीपान्तिमेषु वै ॥३०
ज्ञेयः पञ्चसु धर्मश्च वर्णाश्रमविभागजः । नित्यः स्वाभाविकश्चैव अहिंसाऽविधिवर्जितः ॥३१
(यानि किंपुरुषाद्यानि वर्जयित्वा हिमाह्वयम् । सुखमायुश्च रूपं च बलं धर्मश्च नित्यशः ॥)
पञ्चस्वेतेषु वर्षेषु सर्वसाधारणः स्मृतः । आग्नीध्राय पिता पूर्वं जम्बूद्वीपं ददौ द्विज ॥३२
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमा नव । ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किंपुरुषोऽनुजः ॥३३
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः । वश्यश्च पञ्चमः पुत्रो हिरण्यः षष्ठ उच्यते ॥३४
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वश्चाष्टमः स्मृतः । नवमः केतुमालश्च तन्नाम्ना वर्षसंस्थितिः ॥३५
यानि किंपुरुषाद्यानि वर्जयित्वा हिमाह्वयम् । तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥३६
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च । धर्माधर्मो न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ॥३७

ने सप्त पुत्रों के नामानुयायी सप्त वर्ष का कुशद्वीप में विभाग किया था ।२४। (वहाँ भी सात वर्ष बनाये उनके नाम मुझसे सुनो) उनके नाम ये हैं : उद्भिद, वैष्णव, सुरथ, लम्बन ।२५। धृतिमान्, प्राकर और कपिल और शाल्मलिद्वीप का जो वपुष्मान् राजा था, उसके भी सात पुत्र उत्पन्न हुए ।२६। उनके नाम—श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सातवाँ केतुमान् हुआ ।२७। इन्हीं के नाम से वह शाल्मलिद्वीप भी सप्त भाग होकर वर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जो मेधातिथि प्लक्षद्वीप का नरेश्वर था, उसके भी सात पुत्र हुए ।२८। तब इसने भी अपने सातों पुत्रों को प्लक्षद्वीप के सात भाग करके दे दिये और इन्हीं सबके नाम से वर्ष विख्यात हुए, उनके नाम शाकभव, शिशिर और सुखोदय ।२९। आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव तथा प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच और शाक इत्यादि इन पांचों द्वीपों में ।३०। और इनके विभागों में सदा वर्णाश्रम का धर्म बना रहता है तथा नित्य स्वभाव से ही वहाँ हिंसाविधि वर्जित है अर्थात हिंसा नहीं होती ।३१। (और हिमालय को छोड़कर जो किम्पुरुषादि वर्ष हैं उनमें सुख पूर्णायुरूप बल और धर्म सदा बना रहता है) हे द्विजोत्तम ! संपूर्ण धर्म इन पाँचों द्वीपों में साधारण हैं । जिन आग्नीध्र को उनके पिता ने जम्बूद्वीप प्रदान किया था ।३२। उनके प्रजापति के समान नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे । ज्येष्ठ का नाम नाभि, दूसरे का किंपुरुष ।३३। तीसरे का हरि, चौथे का इलावृत, पांचवें का रम्य, छठे का हिरण्य ।३४। सातवें का कुरु आठवें का भद्र और नवम का नाम केतुमाल है । इन सब के नामानुसार वर्ष का भी विभाग हुआ है ।३५। हिमालय के अतिरिक्त जिनको किंपुरुष कहते हैं उनको स्वभाव से सिद्धि और बिना ही यत्न किये सुख लाभ होता है ।३६। विपर्यय वा जरामृत्युजनित उनको कोई भय नहीं होता । वहाँ धर्माधर्म, उत्तम, मध्यम और अधम विभाग ।३७। चारों युग की भिन्न

न वै चतुर्युगावस्था नाश्रमा ऋतवो न च । आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत्सुतो द्विज ।।३८
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः । सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थितः ।।३९
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः । हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ।।४०
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः । भरतस्यान्वभूत्पुत्रः सुमतिर्नाम धार्मिकः ।।४१
तस्मिन्राज्यं समावेश्य भरतोऽपि वनं ययौ । एतेषां पुत्रपौत्रैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।।४२
प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तु भुक्ता स्वायम्भुवेऽन्तरे । एष स्वायम्भुवः सर्गः कथितस्ते द्विजोत्तम ।।
पूर्वमन्वन्तरे सम्यक्किमन्यत्कथयामि ते ।।४३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोशे स्वायंभुवमन्वन्तरकथनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५०।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

जम्बूद्वीपवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्वता वा कति द्विज । कियन्ति चैव वर्षाणि तेषां नद्यश्च का मुने ।।१
महाभूतप्रमाणं च लोकालोकं तथैव च । पर्यासं परिमाणं च गतिं चन्द्रार्कयोरपि ।।२
एतत्प्रब्रूहि मे सर्वं विस्तरेण महामुने ।।३

अवस्था विभिन्न ऋतु की अवस्था या ऋतुविभाग नहीं है । आग्नीध्र के पुत्र नाभि की सन्तान ऋषभ हुआ ।३८। और ऋषभ के पुत्र भरत हुए । ऋषभ ने पुत्र को राज्य में अभिषिक्त करके संन्यास अवलम्बन किया था ।३९। और पुलहाश्रम में वास करके इन महाभाग ने तपस्या की थी । हिमनामक दक्षिणवर्ष भरत को उनके पिता ने समर्पण किया था ।४०। इसी कारण उनके नामानुसार भारतवर्ष नाम हुआ है । भरत के सुमतिनामक एक धार्मिक पुत्र था ।४१। वह भी सुमति को राज्य देकर बन को गये थे, इनके पुत्र-पौत्रगण और प्रियव्रत के पुत्रगण स्वायंभुव मन्वन्तर में इस सप्तद्वीपवाली पृथ्वी का भोग करते आते हैं ।४२। यह स्वायंभुव सर्ग पूर्व मन्वन्तर में सम्यक् प्रकार कहा है, अब अधिक क्या कहूँ ।४३

श्रीमार्कण्डेयपुराण के भुवनकोश में स्वायंभुवमन्वन्तरकथन नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ।५०।

अध्याय ५१

जम्बूद्वीप का वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—हे मुने ! द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियाँ कितनी हैं ।१। महाभूत और लोकालोक का प्रमाण क्या है ? और चन्द्र-सूर्य का व्यास परिमाण और गति किस प्रकार है ।२। हे महामुने ! यह सब विस्तारसहित वर्णन कीजिये ।३

मार्कण्डेय उवाच

शतार्द्धकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नशो द्विज । तस्याः संस्थानमखिलं कथयामि शृणुष्व तत् ॥४
ये ते द्वीपा मया प्रोक्ता जम्बुद्वीपादयो द्विज । पुष्करान्ता महाभाग शृण्वेषां विस्तरं पुनः ॥५
द्वीपात्तु द्विगुणो द्वीपो जम्बुः प्लक्षोऽथ शाल्मलिः । कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करद्वीप एव च ॥६
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलाब्धिभिः । द्विगुणैर्द्विगुणैर्वृद्धया सर्वतः परिवेष्टिताः ॥७
जम्बुद्वीपस्य संस्थानं प्रवक्ष्येऽहं निबोध मे । लक्षमेकं योजनानां वृत्तो विस्तारदैर्घ्यतः ॥८
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च । नीलःश्वेतस्तथा शृङ्गी सप्त तद्वर्षपर्वताः ॥९
द्विलक्षयोजनायामौ मध्ये तत्र महाचलौ । तयोर्दक्षिणतो यौ तु यौ तथोत्तरतो गिरी ॥१०
दशभिर्दशभिर्न्यूनैः सहस्रैस्ते परस्परम् । द्विसाहस्रोच्छ्रयाः सर्वे तावद्विस्तारिणश्च ते ॥११
समुद्रान्तःप्रविष्टाश्च षडस्मिन्वर्षपर्वताः । दक्षिणोत्तरतो निम्ना मध्ये तुङ्गा यथा क्षितिः ॥१२
वेद्यर्द्धे दक्षिणे त्रीणि त्रीणि वर्षाणि चोत्तरे । इलावृतं तयोर्मध्ये चन्द्रार्द्धाकारवत्स्थितम् ॥१३
ततः पूर्वेण भद्राश्वं केतुमालं च पश्चिमे । इलावृतस्य मध्ये तु मेरुः कनकपर्वतः ॥१४
चतुराशीति साहस्रस्तस्योच्छ्रायो महागिरेः । प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तारः षोडशैव तु ॥१५
शरावसंस्थितत्वाच्च द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः । शुक्लः पीतोऽसितो रक्तः प्राच्यादिषु यथाक्रमम् ॥१६
विप्रे वैश्यस्तथा शूद्रः क्षत्रियश्च स्ववर्णतः । तस्योपरि तथैवाष्टौ पुर्यो दिक्षु यथाक्रमम् ॥१७
तस्योपरि सभा दिव्याः पूर्वादिषु क्रमेण तु । इन्द्रादिलोकपालानां तन्मध्ये ब्रह्मणः सभा ॥

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विज ! समस्त पृथ्वी का विस्तार पचास करोड़ योजन हैं, उनके सब स्थानों के संबंध में कहता हूँ सुनो ।४। हे द्विज ! हे महाभाग ! जम्बू इत्यादि पुष्करान्त जिन सब द्वीपों का विषय कहा है वह फिर विस्तार सहित कहता हूँ ।५। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्करद्वीप, यह पूर्व द्वीप से यथाक्रम द्विगुण हैं ।६। लवण, इक्षु, सुर, सर्पि (घृत), दधि, दुग्ध और जलसमुद्र द्वारा द्विगुण-द्विगुण वृद्धिभाव से वह परिवेष्टित हैं ।७। जम्बूद्वीप की आकृति का परिमाण कहता हूँ, विस्तार, दीर्घता और गोलाई में एक लक्ष योजन जम्बुद्वीप का परिमाण है ।८। हिमवान्, हेमकूट, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत और शृंगी, यह सात उसके वर्षपर्वत हैं ।९। मध्य स्थल में दो लाख योजन विस्तृत जो दो महागिरि हैं, उनकी दक्षिण और उत्तरदिशा में जो दो-दो गिरि अवस्थित हैं ।१०। वह परस्पर दश सहस्र न्यून संख्यायुक्त हैं, अन्य सब दो हजार योजन ऊँचे और इसी प्रकार विस्तृत हैं ।११। इसके बीच समुद्र में प्रविष्ट छः वर्षपर्वत हैं । यह पृथ्वी उत्तर दक्षिण में नीची एवं मध्यस्थल में ऊँची और चौड़ी है ।१२। तीन वर्ष उत्तर में और तीन दक्षिण में जाने । इन दोनों के बीच में इलावृतवर्ष अर्द्धचन्द्राकार से अवस्थित है ।१३। उसकी पूर्वदिशा में भद्राश्व और पश्चिम में केतुमाल है । इलावृत के मध्यस्थल में कनक पर्वत सुमेरु है ।१४। इस महापर्वत की ऊँचाई चौरासी हजार योजन है । सोलह हजार योजन भूमि में प्रविष्ट और वहाँ से सोलह हजार योजन विस्तृत है ।१५। इसकी चोटी शरावे के समान बत्तीस हजार योजन चौड़ी है । इस गिरि का वर्ण पूर्व की ओर श्वेत, दक्षिण की ओर पीत, पश्चिम की ओर नीला और उत्तर की ओर लाल है ।१६। इसकी पूर्वादि आठों दिशा में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का क्रमशः वास है ।१७। उसके ऊपर पूर्वादि के क्रम से इन्द्रादि लोकपालों की और

योजनानां सहस्राणि चतुर्दश समुच्छ्रिता ॥१८
अयुतोच्छ्रायास्तस्याधस्तथा विष्कम्भपर्वतः । प्राच्यादिषु क्रमेणैव मन्दरो गन्धमादनः ॥१९
विपुलश्च सुपार्श्वश्च केतुपादपशोभिताः । कदम्बो मन्दरे केतुर्जम्बुर्वै गन्धमादने ॥२०
विपुले च तथाश्वत्थः सुपार्श्वे च वटो महान् । एकादशशतायामा योजनानामिमे नगाः ॥२१
जठरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ । आनीलनिषधायातौ परस्परनिरन्तरौ ॥२२
निषधः पारियात्रश्च मेरोः पार्श्वे तु पश्चिमे । यथा पूर्वौ तथा चैतावानीलनिषधायतौ ॥२३
कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणेन महाचलौ । पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥२४
शृङ्गवाञ्जारुधिश्चैव तथैवोत्तरपर्वतौ । यथैव दक्षिणे तद्वदर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥२५
मर्यादापर्वता ह्येते कथ्यतेऽष्टौ द्विजोत्तम । हिमवद्धेमकूटादिपर्वतानां परस्परम् ॥२६
नवयोजनसाहस्रं प्रागुदग्दक्षिणोत्तरम् । मेरोरिलावृते तद्वदन्तरे वै चतुर्दिशम् ॥२७
फलानि यानि वै जम्ब्वा गन्धमादनपर्वते । गजदेहप्रमाणानि पतन्ति गिरिमूर्द्धनि ॥२८
तेषां स्रावात्प्रभवति ख्याता जम्बूनदीति वै । यत्र जाम्बूनदं नाम कनकं सम्प्रजायते ॥२९
सा परिक्रम्य वै मेरुं जम्बूमूलं पुनर्नदी । विशति द्विजशार्दूल पीयमाना जनैश्च तैः ॥३०
भद्राश्वेऽश्वशिरा विष्णुर्भारते कूर्मसंस्थितिः । वराहः केतुमाले च मत्स्यरूपस्तथोत्तरे ॥३१
तेषु नक्षत्रविन्यासादृषयः समवस्थिताः । चतुर्ष्वपि द्विजश्रेष्ठ ग्रहाभिभवपाठकाः ॥३२

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोशे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५१।

मध्यस्थल में ब्रह्मा की चौदह हजार योजन विस्तृत सभा शोभायमान है ।१८। इसके नीचे दश हजार योजन ऊँचे पूर्व आदि चारों दिशाओं में चार विष्कम्भ पर्वत हैं । उनके नाम मन्दार, गंधमादन ।१९। विपुल और सुपार्श्व, इन चारों पर्वतों के ऊपर केतु के समान शोभायमान चार वृक्ष हैं अर्थात् मन्दर पर कदम्ब, गंधमादन पर जामुन ।२०। विपुलपर पीपल और सुपार्श्व के ऊपर महान् बरगद का वृक्ष हैं। इन पर्वतों का प्रमाण ग्यारह सौ योजन है ।२१। पूर्व दिशा में जठर और देवकूट पर्वत है, वह परस्पर नील और निषध पर्यन्त दीर्घ है ।२२। मेरु के पश्चिम पार्श्व में निषध और पारियात्र हैं, पूर्वदिशा के समान यह भी नील और निषध पर्यन्त विस्तृत है ।२३। दक्षिण दिशा में कैलास और हिमवान् महागिरि हैं, यह पूर्व-पश्चिम में आयत् (लम्बायमान) होकर समुद्र में प्रविष्ट हुए हैं ।२४। उत्तर में श्रृंगवान् और जारुधि हैं, दक्षिणदिशा के समान यह भी समुद्रपर्यन्त विस्तृत हैं ।२५। हे द्विजोत्तम ! यही आठों पर्वतों की मर्यादा है, वह मैंने तुमसे कही और हिमवान् तथा हेमकूट आदि पर्वतों का परस्पर में।२६। नौ हजार योजन विस्तार है और मेरु के पूर्व दक्षिण आदि चारों दिशा में इलावृत्त के बीच में यह सब पर्वत हैं ।२७। गंधमादन पर्वत से हाथी के समान जो जम्बूफल पर्वत के शिखर से गिरते हैं ।२८। उनकी रसोत्पन्न नदी को जम्बू नदी कहते हैं, इस जम्बू नदी से जाम्बूनद नामक स्वर्ण की उत्पत्ति हुई है ।२९। हे द्विजशार्दूल ! मेरु पर्वत की चारों ओर परिक्रमा करके वह जाम्बूनदी उसी जामुनि के वृक्ष के नीचे आकर बहती है और वहाँ के वास करने वाले मनुष्य उसी का जल पान करते हैं।३०। भद्राश्व में अश्वशिरा, भारत में, कूर्माकृति विष्णु, केतुमाल में बराह और उत्तर में मत्स्यरूप से नारायण स्थित है।३१। हे द्विजश्रेष्ठ ! इन चारों पर्वतों में नक्षत्रों, ऋषियों की स्थिति और नक्षत्रों का गमनागमन होता है और ग्रहों का अच्छा-बुरा फल भी होता रहता है।३२

श्रीमार्कण्डेयपुराण में जम्बूद्वीपवर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ।५१।

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः (५२)

खण्डवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

शैलेषु मन्दराद्येषु चतुर्ष्वपि द्विजोत्तम । वनानि यानि चत्वारि सरांसि च निबोध मे ॥१
पूर्वे चैत्ररथं नाम दक्षिणे नन्दनं वनम् । वैभ्राजं पश्चिमे शैले सावित्रं चोत्तराचले ॥२
अरुणोदं सरः पूर्वे मानसं दक्षिणे तथा । शीतोदं पश्चिमे मेरोर्महाभद्रं तथोत्तरे ॥३
शीतार्तश्चक्रमुञ्जश्च कुलीरोऽश्वश्च कङ्कवान् । मणिशैलोऽथ वृषवान्महानीली भवाचलः ॥४
सुबिन्दुर्मन्दरो वेणुस्तामसो निषधस्तथा । देवशैलश्च पूर्वेण मन्दरस्य महाचलः ॥५
त्रिकूटः शिखराद्रिश्च कलिङ्गोऽथ पतङ्गकः । रुचकः सानुमांश्चाद्रिस्ताम्रकोऽथ विशाखवान् ॥६
श्वेतोदरः समूलश्च वसुधारश्च रत्नवान् । एकशृङ्गो महाशैलो राजशैलः पिपाठकः ॥७
पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः । इत्येते दक्षिणे पार्श्वे मेरोः प्रोक्ता महाचलाः ॥८
सुरक्षः शिशिराक्षश्च वैदूर्यः पिङ्गलस्तथा । पिञ्जरोऽथ महाभद्रः सुरसः कपिलो मधुः ॥९
अञ्जनः कुक्कुटः कृष्णः पाण्डुरश्चाचलोत्तमः । सहस्रशिखरश्चाद्रिः पारियात्रः सशृङ्गवान् ॥१०
पश्चिमेन तथा मेरोर्विष्कम्भात्पश्चिमाद्बहिः । एतेऽचलाः समाख्याताः शृणुष्वान्यांस्तथोत्तरान् ॥११
शङ्खकूटोऽथ वृषभो हंसनाभस्तथाचलः । कपिलेन्द्रस्तथा शैलः सानुमान्नील एव च ॥१२

अध्याय ५२

खण्ड (पर्वत) का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विजोत्तम ! मन्दरादि चार पर्वतों में जो चार वन और सरोवर हैं, वह कहता हूँ सुनो ।१। पूर्व शैल में चैत्ररथ, दक्षिण में नन्दन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में सावित्र नामक वन है ।२। मेरु के पूर्व में अरुणोद, दक्षिण में मानस, पश्चिम में शीतोद और उत्तर में महाभद्र नामक सरोवर अवस्थित है ।३। मन्दर की पूर्वदिशा में शीतार्त, चक्रमुंज, कुलीर, अश्व, कंगवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानीली, भवाचल ।४। बिन्दु, मन्दर, वेणु, तामस, निषध और देवशैल यह सब पर्वत हैं ।५। त्रिकूट, शिखर, कलिंग, पतङ्गक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक, विशाखवान् ।६। श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान्, एकशृंग, महाशैल, राजशैल, पिपाठक ।७। पंचशैल, कैलास और पर्वत श्रेष्ठ हिमवान्, यह सब महापर्वत मेरु के दक्षिण पार्श्व में स्थित हैं ।८। सुराक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिङ्गल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु ।९। अंजन, कुक्कुट, कृष्णा, पाण्डुर, सहस्रशिखर पारियात्र और शृंगवान् ।१०। यह मेरु और विष्कम्भ की पश्चिम दिशा से बाहर स्थित हैं । अब उत्तरदिशा के पर्वतों का वर्णन करता हूँ, सुनो ।११। शंखकूट, वृषभ, हंसनाभ, कपिलेन्द्र, सानुमान, नील ।१२। स्वर्णशृंगी, शांतशृंग, पुष्पक, मेघपर्वत,

स्वर्णश्रृङ्गः शातश्रृङ्गः पुष्पको मेघपर्वतः । विरजाक्षो वराहाद्रिर्मयूरो जारुधिस्तथा ।।१३
इत्येते कथिता ब्रह्मन्मेरोरुत्तरतो नगाः । एतेषां पर्वतानां तु द्रोण्योऽतीव मनोहराः ।।१४
वनैरमलपानीयैः सरोभिरुपशोभिताः । तासु पुण्यकृतां जन्म मनुष्याणां द्विजोत्तम ।।१५
एते भौमा द्विजश्रेष्ठ स्वर्गाः स्वर्गगुणाधिकाः । न तासु पुण्यपापानामपूर्वाणामुपार्जनम् ।।१६
पुण्योपभोग एवोक्तो देवानामपि तास्वपि । शीतान्ताद्येषु चैतेषु शैलेषु द्विजसत्तम ।।१७
विद्याधराणां यक्षाणां किन्नरोरगरक्षसाम् । देवानां च महावासा गन्धर्वाणां च शोभनाः ।।१८
सभा पुर्यो मनोज्ञाश्च सदैवोपवनैर्युताः । सरांसि च मनोज्ञानि सर्वर्तुसुखदोऽनिलः ।।१९
न चैतेषु क्लमो बाधा वैमनस्यं च कुत्रचित् । तदेतत्पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम् ।।२०
भद्राश्वभारतादीनि पत्राण्यस्य चतुर्दिशम् । भारतं नाम यद्वर्षं दक्षिणेन मयोदितम् ।।२१
तत्कर्मभूमिर्नान्यत्र सम्प्राप्तिः पुण्यपापयोः । एतत्प्रधानं विज्ञेयं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।२२
अस्मात्स्वर्गापवर्गौ च मानुष्यनारकावपि । तिर्यक्त्वमथवाप्यन्यन्नरः प्राप्नोति वै द्विज ।।२३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोशे जम्बूद्वीपान्तर्गतखण्डवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५२।

विरजाक्ष, वराहाद्रि तथा मयूर और जारुधि ।१३। हे ब्रह्मन् ! यह सब पर्वत मेरु के उत्तरभाग में कहे गये हैं। इन पर्वतों की कन्दरा अत्यन्त मनोहर हैं ।१४। हे द्विजोत्तम ! यह संपूर्ण, पर्वत, वन और स्वच्छ जलयुक्त सरोवरों से अत्यन्त शोभायमान हैं और इस परम पुण्यमय भूमि में पुण्यवान् मनुष्यों का ही जन्म होता है ।१५। हे द्विजश्रेष्ठ ! स्वर्ग की अपेक्षा अधिक गुणशाली यह सब स्थान भौमस्वर्ग के नाम से विख्यात है। यहाँ अपूर्व पुण्यपाप का उपार्जन नहीं है ।१६। हे द्विजोत्तम ! इन सब शीतान्तादि पर्वतों का उपभोग देवताओं को भी पुण्यभोग कहा गया है ।१७। वहाँ विद्याधर, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस, देवता और गंधर्वों के शोभायमान वासस्थान है ।१८। यह पृथ्वी महापुण्यरूप और अत्यन्त मनोरम है और देवताओं के उपवन तथा सुन्दर-सुन्दर मनहरण सरोवरों से शोभायमान है और यहाँ की पवन भी सब ऋतुओं में सुख देने वाली है ।१९। किसी भी स्थान में मनुष्यों के कुछ वैमनस्य का कारण दिखाई नहीं देता इसीलिये मैंने इसको चतुष्पत्र पार्थिव पद्म कहकर वर्णन किया है ।२०। भद्राश्वभारतादि ही इसके चारों ओर चार पत्ते हैं। पहले दक्षिण दिशा में जो भारतवर्ष का वर्णन किया है ।२१। वह कर्मभूमि है, दूसरे किसी स्थान में पापपुण्य की प्राप्ति नहीं है, इसमें सब प्रतिष्ठित रहने के कारण भारतवर्ष प्रधान कहकर प्रसिद्ध है ।२२। हे द्विज ! कर्मभूमि के कारण ही मनुष्यगण स्वर्ग, अपवर्ग, मनुष्यता, नरक, पक्षियोनि या अन्यात्य अवस्था को प्राप्त होते हैं ।२३

श्रीमार्कण्डेयपुराण में जम्बूद्वीपान्तर्गतखण्डवर्णन नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ।५२।

(५३)

अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

गङ्गावतरणवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

धराधारं जगद्योनेः पदं नारायणस्य च । ततः प्रवृत्ता या देवी गङ्गा त्रिपथगामिनी ।।१
सा प्रविश्य सुधायोनिं सोममाधारमम्भसाम् । ततः संवर्द्धमानार्करश्मिसङ्गतिपावनी ।।२
पपात मेरुपृष्ठे च सा चतुर्द्धा ततो ययौ । मेरुकूटतटान्तेभ्यो निपतन्ती विवर्तिता ।।३
विकीर्यमाणसलिला निरालम्बा पपात सा । मन्दराद्येषु पादेषु प्रविभक्तोदका समम् ।।४
चतुर्ष्वपि पपाताम्बुविभिन्नांघ्रिशिलोच्चया । पूर्वा सीतेति विख्याता ययौ चैत्ररथं वनम् ।।५
तत्प्लावयित्वा च ययौ वरुणोदं सरोवरम् । शीतान्तं च गिरिं तस्मात्ततश्चान्यान्गिरीन्क्रमात् ।।६
गत्वा भुवं समासाद्य भद्राश्वे जलधिं गता । तथैवालकनन्दाख्या दक्षिणे गन्धमादने ।।७
मेरुपादे वनं गत्वा नन्दनं देवनन्दनम् । मानसं च महावेगात्प्लावयित्वा सरोवरम् ।।८
आसाद्य शैलराजानं रम्यं त्रिशिखरं गता । तस्माच्च पर्वतान्सर्वान्दक्षिणे ये क्रमोदिताः ।।९
तान्प्लावयित्वा सम्प्राप्ता हिमवन्तं महागिरिम् । दधार तत्र तां शम्भुर्न मुमोच वृषध्वजः ।।१०
भगीरथेनोपवासैः स्तुत्या चाराधितो विभुः । तत्र मुक्ता च शर्वेण सप्तधा दक्षिणोदधिम् ।।११

अध्याय ५३

गंगावतरण का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे जगद्योनि नारायण का जो ध्रुवाधार नामक पद है, उससे ही त्रिपथगामिनी गंगा देवी उत्पन्न हुई हैं।१। वह समस्त जल की आधार स्वरूप सुधायोनि चन्द्रमण्डल में प्रविष्ट होकर वहाँ सम्बध्यमान सूर्य की किरणों से मिलने से अतिपवित्र हो।२। सुमेरुपर्वत के ऊपर गिरी है और वहाँ के समस्त कूट प्रान्त से निपतित और विवर्तित होकर चार धारा में निर्गत हुई है।३। इस प्रकार जल के विस्तार वाली अवलम्बरहित गंगा देवी समस्त मन्दरादि पर्वत में विभक्त होकर समान भाव से गिरी हैं।४। और क्रमशः समस्त पर्वत की शिलाओं को तोड़ती हुई गई हैं, उनमें गंगा देवी की जो जलधारा पूर्वदिशा में प्रवाहित होकर चैत्ररथ वन की ओर गई है, उसका नाम सीता विख्यात है।५। वही सीता गंगा चैत्ररथ वन को जलमय करके वरुणोद सरोवर में गई है, फिर वहाँ से शीतान्तपर्वत और अन्यान्य सब पर्वत अतिक्रम करके।६। पृथ्वी में जाकर भद्राश्व वर्ष होती हुई समुद्र में गई है और सुमेरु की दक्षिणदिशा से गंगा का जो जल गंधमादन पर्वत में गिरा है उसका नाम अलकनन्दा है।७। अलकनन्दा ने सुमेरु के निकटवर्ती देवताओं के आह्लादजनक नन्दनवन में जाकर महा वेग से मानससरोवर को प्लावित किया है।८। मानससरोवर प्लावित के करने पर पर्वतराज रम्य पर्वत के शिखर देश और वहाँ से दक्षिण के समस्त पर्वतों को अतिक्रम करके।९। और प्लावित कर महाद्रि हिमालय में गिरी हैं, वहाँ वृषध्वज भगवान् शम्भु ने गंगा को धारण किया और उन्होंने किसी प्रकार भी उनको नहीं छोड़ा।१०। अनन्तर जब महाराज भगीरथ ने उपवास और स्तुति आदि से उसकी आराधना की, तब उन्होंने गंगा को छोड़ा और गंगा देवी

प्रविवेश त्रिधा प्राच्यां प्लावयन्ती महानदी । भगीरथरथस्यानु स्रोतसैकेन दक्षिणाम् ॥१२
तथैव पश्चिमे पादे विपुले सा महानदी । सुचक्षुरिति विख्याता वैभ्राजं सा वनं ययौ ॥१३
शीतोदं च सरस्तस्मात्प्लावयन्ती महानदी । तस्मात्क्रमेण चाद्रीणां शिखरेषु निपत्य सा ॥
सुचक्षुः पर्वतं प्राप्ता ततश्च त्रिशिखं गता ॥१४
केतुमालं समासाद्य प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥१५
(गत्वोत्तरां दिशं गङ्गा दिव्या सा च महानदी । तस्माच्च ऋषभादींश्च क्रमादुत्तरजान्नगान् ॥)
सुपार्श्वं तु तथैवाद्रिं मेरुपादं हि सा गता । भद्रसोमेति विख्याता सा ययौ सवितुर्वनम् ॥१६
तत्प्लावयन्ती सम्प्राप्ता महाभद्रं सरोवरम् । ततश्च शङ्खकूटं सा प्रयाता वै महानदी ॥१७
तस्माच्च वृषभादीन्सा क्रमात्प्राप्य शिलोच्चयान् । महार्णवमनुप्राप्ता प्लावयित्वोत्तरान्कुरून् ॥१८
एवमेषा मया गङ्गा कथिता ते द्विजर्षभ । जम्बूद्वीपनिवेशश्च वर्षाणि च यथातथम् ॥१९
वसन्ति तेषु सर्वेषु प्रजाः किंपुरुषादिषु । सुखप्राया निरातङ्का न्यूनतोत्कर्षवर्जिताः ॥२०
नवस्वपि च वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः । एकैकस्मिंस्तथा देशे नद्यश्चाद्रिविनिःसृताः ॥२१
यानि किंपुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तम । तेषूद्भिज्जानि तोयानि नैवं वार्यत्र भारते ॥२२
वार्क्षी स्वाभाविकी देश्या तोयोत्था मानसी तथा । कर्मजा च नृणां सिद्धिर्वर्षेष्वेतेषु चाष्टसु ॥२३

ने श्रीमहादेव जी के हाथ से छूटते ही सप्त भाग होकर दक्षिण समुद्र में प्रवेश किया है ।११। उन में महानदी के तीन भाग पूर्व की ओर प्लावित करके समुद्र में प्रविष्ट हुई है और एक धारा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे जाकर दक्षिणसमुद्र में मिली है ।१२। सुमेरु पर्वत के पश्चिम में विपुल पाद होकर गंगा की जो धारा निकली है उस महानदी का नाम सुचक्षु है, वह वैभ्राज पर्वत में वैभ्राज वन को पवित्र करके ।१३। शीतोद सरोवर को प्लावित करती है, और वहाँ से क्रमानुसार संपूर्ण पर्वतों के शिखर पर होकर सुचक्षु पर्वत पर होती हुई त्रिशिखर पर्वत में गई है ।१४। फिर केतुमालवर्ष में प्रविष्ट होकर दक्षिण समुद्र में गई है ।१५। इसके पीछे यह महादिव्य गंगा नदी उत्तर दिशा में जाकर फिर ऋषभादिक उत्तर में पर्वतों में गई है । यह चौथी धार सुपार्श्व और मेरु पर्वत पर होकर सविता वन में पहुँची, वहाँ उसका नाम भद्रसोमा विख्यात हुआ, वह भद्रसोमा गंगा सवितृवन को ।१६। पवित्र कर महाभद्र सरोवर में गई है, अनन्तर वह महानदी शंखकूट पर्वत ।१७। और वहाँ से वृषभादि पर्वतों में जाकर समस्त उत्तर कुरुदेश को पवित्र करती हुई महासागर के संग मिली हुई है ।१८। हे द्विजश्रेष्ठ ! मैंने तुमसे यह गंगा जी का विषय वर्णन किया । जम्बूद्वीप के निवेश में जो ।१९। किंपुरुषादि समस्त वर्ष वर्णित हुए हैं, उनमें यथावत् जो सब प्राणी वास करते हैं, वह प्रायः सुखी, निरातङ्क एवं न्यूनता और अधिकता रहित हैं ।२०। जो नव वर्ष कहे गये हैं उनमें भी सात-सात कुलाचल हैं और प्रत्येक देश में ही पर्वत प्रवाहित समस्त नदियाँ विद्यमान हैं ।२१। हे द्विजोत्तम ! किंपुरुषादि जो आठ वर्ष हैं उनमें जो जल है वह केवल मात्र उद्भिद् है क्योंकि इस भारत वर्ष में ही मेघ का जल होता है ।२२। और यह जो आठ वर्ष हैं वहाँ वार्क्षी, स्वाभाविकी, देश्या, तोयोत्था मानसी और कर्मजा, यह छः प्रकार मात्र मन की सिद्धि है ।२३। अभिलाषा प्रदान करने वाले वृक्ष से जो सिद्धि उत्पन्न होती है

कामप्रदेभ्यो वृक्षेभ्यो वार्क्षी सिद्धिः स्वभावजा। स्वाभाविकी समाख्याता तृप्तिर्देश्या च दैशिकी॥२४
अपां सौक्ष्म्याच्च तोयोत्थाद्धयानोपेताच्च मानसी। उपासनादिकार्यात्तु कर्मजा साप्युदाहृता॥२५
न चैतेषु युगावस्था नाधयो व्याधयो न च। पुण्यापुण्यसमारम्भा नैव तेषु द्विजोत्तम॥२६
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे गङ्गावतरणवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।५३।

अथ चतु:पञ्चाशत्तमोऽध्याय: (५८)

नद्यादिवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन्कथितं त्वेतज्जम्बूद्वीपं समासतः। यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म नान्यत्र पुण्यदम्॥१
पापाय वा महाभाग वर्जयित्वा तु भारतम्। इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते॥२
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते। तस्माद्विस्तरशो ब्रह्मन्ममतद्भारतं वद॥३
ये चास्य भेदा यावन्तो यथावत्स्थितिरेव च। वर्षोऽयं द्विजशार्दूल ये चास्मिन्देशपर्वताः॥४

मार्कण्डेय उवाच

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निबोध मे। समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्या परस्परम्॥५

उसका नाम वार्क्षी है। स्वभावोत्पन्न सिद्धि का नाम स्वाभाविकी है, देशजात सिद्धि का नाम देश्या।२४। और जल की सूक्ष्मतावश जो सिद्धि होती है वह तोयोत्था सिद्धि है, सिद्धि के नाम से मानसी सिद्धि ध्यानद्वारा संपादित होती है और उपासनादि कार्यद्वारा जो सिद्धि लाभ होती है, वह कर्मजा विख्यात है।२५। हे द्विजोत्तम! इन समस्त वर्ष में युगभेद आधि-व्याधि और पुण्य या पाप का समारम्भ कुछ नहीं है।२६

श्रीमार्कण्डेयपुराण में गंगावतरणवर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त।५३।

अध्याय ५४

नदियों आदि का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे भगवन्! आपने इस जम्बूद्वीप का विषय संक्षेप से वर्णन किया। जो हो हे महाभाग! आपने कहा कि भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान में ही कोई कर्म।१। पाप या पुण्य के निमित्त अनुष्ठित नहीं होता इसी स्थान से स्वर्ग और मोक्ष मध्यदशा और अन्त्यदशा (मरणदशा)।२। समस्त लाभ होता है अन्य किसी स्थान में मनुष्यों का कर्मानुष्ठान नहीं होता। इसलिए हे ब्रह्मन्! इस भारतवर्ष की कथा विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।३। हे द्विजशार्दूल! इस भारत वर्ष में जितने भेद हैं उन सब भेदों का जितना परिमाण है, जिस प्रकार स्थिति है, उसमें जितने देश और जितने पर्वत हैं, सब विस्तारसहित कहिये।४

मार्कण्डेय जी बोले—हे विप्रोत्तम! इस भारतवर्ष के नव भेद हैं, वह समस्त ही समुद्र द्वारा

इन्द्रद्वीपः कशेरूमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वो वारुणस्तथा ।।६
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः । योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ।।७
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तः स्थिता द्विज ।।८
इज्याध्यायवणिज्याद्यैः कर्मभिः कृतपावनाः । तेषां संव्यवहारश्च एभिः कर्मभिरिष्यते ।।९
स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्च पुण्यं पापं च वै तदा । महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।।१०
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचलाः । तेषां सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः ।।११
विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानवः । कोलाहलः स वै भ्राजो मन्दरो दर्दुराचलः ।।१२
वातस्वनो वैद्युतश्च मैनाकः स्वरसस्तथा । तुङ्गप्रस्थो नागगिरी रोचनः पाण्डुराचलाः ।।१३
पुष्पो गिरिर्दुर्जयन्तो रैवतोऽर्बुद एव च । ऋष्यमूकः सगोमन्तः कूटशैलः कृतस्मरः ।।१४
श्रीपर्वतश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्वताः । तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाश्चार्याश्च भागशः ।।१५
तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा यास्ताः सम्यङ् निबोध मे । गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्र भागा तथाऽपरा ।।१६
यमुना च शतद्रुश्च वितस्तेरावती कुहूः । गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ।।१७
विपाशा देविका रंक्षुर्निश्चीरा गण्डकी तथा । कौशिकी चापगा विप्र हिमवत्पादनिःसृताः ।।१८
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च । वेणा सानन्दना चैव सदानीरा मही तथा ।।१९

अन्तरित और परस्पर अगम्य हैं, उनका वर्णन करता हूँ ।५। इन्द्रद्वीप, कशेरुमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व, वारुण ।६। और नवम भारत है । यह भारत नामक जो नवम द्वीप है, यह सागर से घिरा है एवं दक्षिण और उत्तर में सहस्रयोजनपरिमित है ।७। हे द्विज ! इसके पूर्वभाग में किरात, एवं पश्चिम सीमा में यवनगण वास करते हैं । तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण इसके मध्यभाग में स्थित हैं ।८। यह यज्ञ, अध्ययन और वाणिज्य इत्यादि अपने-अपने कर्म से पवित्र होते हैं और सब कर्मों के द्वारा उनका सम्यक् प्रकार व्यवहार ।९। स्वर्गलाभ, मोक्षप्राप्ति और पुण्य-पापादि समस्त ही उपस्थित होते हैं । महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान, ऋक्ष ।१०। विन्ध्य और पारियात्र नामक सात कुलपर्वत इसमें वर्तमान हैं। इन सब कुलाचलों के समीपवर्त्ती सहस्र पर्वत हैं।११। उन में कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर दर्दुर ।१२। वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डुर ।१३। पुष्प, दुर्ज्जयन्त, रैवतक, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कूटशैल, कृतस्मर ।१४। श्रीपर्वत और चकोरपर्वत यह अत्यन्त ऊँचे, मनोहर, विस्तीर्ण और विपुल हैं । इनमें और भी शत-शत जनपद हैं । इन सब पर्वतों के द्वारा समस्त जनपद भागानुसार म्लेच्छ और आर्य नाम से विख्यात हुए हैं ।१५। उन जनपदों में वास करने वाले मनुष्य जिन सब श्रेष्ठ नदियों का जलपान करते हैं, अब उनके नाम कहता हूँ भलीभाँति अवगत होओ । गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा ।१६। यमुना, शतद्रु, वितस्ता, इरावती, कुहू, गोमती, धूतपापा, बहुदा, दृषद्वती ।१७। विपाशा, देविका, रंक्षु, निश्चीरा, गण्डकी और कौशिकी । हे विप्र ! यह सब नदियाँ हिमालय के प्रत्यन्त सब पर्वतों से निकली हैं।१८। और वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वेणा, सानन्दना, सदानीरा, मही ।१९। पारा, चर्मण्वती, नूपी, विदिशा, वेत्रवती, क्षिप्रा और अवन्ती,

पारा चर्मण्वती नूपी विदिशा वेत्रवत्यपि । क्षिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ॥२०
शोणो महानदश्चैव नर्मदा सुरथाद्रिजा । मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा ॥२१
चित्रोत्पला सतमसा करमोदा पिशाचिका । तथान्या पिप्पलश्रोणिर्विपाशा वञ्जुला नदी ॥२२
सुमेरुजा शुक्तिमती सकुली त्रिदिवाक्रमुः । ऋक्षपादप्रसूता वै तथान्या वेगवाहिनी ॥२३
क्षिप्रा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी च निषधावती । वेण्या वैतरणी चैव सिनीवाली कुमुद्वती ॥२४
करतोया महागौरी दुर्गा चान्तः शिवा तथा । विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥२५
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेण्या तथापरा । तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्यथापगा ॥२६
सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरिदुत्तमाः । कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा सूत्पलावती ॥२७
मलयाद्रिसमुद्भूता नद्यः शीतजलास्त्विमाः । पितृसोमर्षिकुल्या च इक्षुका त्रिदिवा च या ॥२८
लाङ्गूलिनी वंशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः । ऋषिकुल्या कुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ॥२९
कुशा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः । सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः ॥३०
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः स्मृताः । अन्याः सहस्रशश्चोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तम ॥३१
प्रावृट्कालवहाः काश्चित्सर्वकालवहाश्च याः । मत्स्याश्वकूटाः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ॥३२
अर्बुदाश्चाकलिङ्गाश्च मलकाश्च वृकैः सह । मध्यदेश्या जनपदा प्रायशोऽमी प्रकीर्तिताः ॥३३
सह्यस्य चोत्तरे यास्तु यत्र गोदावरी नदी । पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥३४

क्षिप्रा और अवन्ती, यह सब नदियाँ पारियात्र पर्वत से निकली हैं ।२०। महानद शोण और नर्मदा सुरथाद्रि से उत्पन्न हुई हैं । मन्दाकिनी और दशार्णानदी चित्रकूट पर्वत से निकली हैं ।२१। चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलिश्रोणि, विपाशा, वंजुला ।२२। सुमेरुजा, शुक्तिमती, सकुली, त्रिदिवा और आक्रमु यह वेगवाहिनी सब नदियाँ स्कन्दपाद या ऋक्ष पर्वत के उन्नतस्थानों से निकली हैं ।२३। क्षिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेण्या, वैतरणी, सिनीवाली, कुमुद्वती ।२४। करतोया, महागौरी, दुर्गा और अन्तःशिवा यह पुण्यजलवाली, शुभप्रद समस्त नदियाँ विन्ध्यपाद से निकली हैं ।२५। गोदावरी, भीमरथा, कृष्णा, वेण्या, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या और महानदी कावेरी ।२६। यह भी विन्ध्यपर्वत से निकली हैं । और कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा और उत्पलावती नदी मलय से उत्पन्न हुई हैं ।२७। पितृकुल्या, सोमकुल्या, ऋषिकुल्या इक्षुका और त्रिदिवा यह शीतलजलवाली नदियाँ मलयाद्रि से उत्पन्न हुई हैं ।२८। लाङ्गूलिनी और वंशकरा नामक दो नदी महेन्द्र पर्वत से उत्पन्न हुई हैं । ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी ।२९। कुशा और पलाशिनी, यह सब नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत से निकली हैं । हे द्विजवर ! यह जो सब नदियों के नाम कहे, यह सब ही अत्यन्त पुण्यप्रद और अधिक जलवाली हैं, इनमें कितनी ही गंगा और कितनी ही समुद्र में गिरी हैं ।३०। हे द्विजोत्तम ! यह सब ही विश्व संसार की मातास्वरूप और समस्त ही पापों को हरने वाली हैं । इनके अतिरिक्त और भी सहस्र सहस्र छोटी नदियाँ हैं ।३१। उनमें कोई वर्षा के समय बहती हैं और किसी में सदा जल रहता है । मत्स्य, अश्वकूट कुल्य, कुन्तल, काशी, कोशल ।३२। अर्बुद, कलिंग, मलक और वृक, यह संपूर्ण जनपद (देश) प्राय: मध्यदेश के कहे गये हैं ।३३। सह्यपर्वत की उत्तरदिशा के जिस स्थान

गोवर्द्धनपुरं रम्यं भार्गवस्य महात्मनः । बाह्लीका वाटधानाश्च आभीरा कालतोयकाः ॥३५
अपरान्ताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिकाः । गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥३६
शतद्रुजाः कलिङ्गाश्च पारदा हारभूषिकाः । माठरा बहुभद्राश्च कैकेया दशमालिकाः ॥३७
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च । काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा अङ्गलौकिकाः ॥३८
चीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदराः । आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च कशेरुकाः ॥३९
लम्पाकाः शूलकाराश्च चुलिका जागुडैः सह । औपधाश्चानिमद्राश्च किरातानां च जातयः ॥४०
तामसा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तु गणास्तथा । शूलिकाः कुहकाश्चैव च ऊर्णा दार्वास्तथैव च ॥४१
एते दश ह्युदीच्यास्तु प्राच्यान्देशान्निबोध मे । अभ्रारका मुद्‌गरका अन्तर्गिरिबहिर्गिराः ॥४२
तथा प्लवङ्गा रङ्गेया मालदामलवर्त्तिकाः । ब्राह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा गेयमल्लकाः ॥४३
प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः । मल्ला मगधगोमेदा प्राच्या जनपदाः स्मृताः ॥४४
अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः । पांड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुन्त्यास्तथैव च ॥४५
शैलूषा मूषिकाश्चैव कुमारा वानवासकाः । महाराष्ट्रा माहिषिकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः ॥४६
आभीराः सह वैशिक्या आटव्याः शबराश्च ये । पुलिन्दा विन्ध्यमालेया वैदर्भा दण्डकैः सह ॥४७
पौरिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः । नैषिकाः कुन्तला आन्ध्रा उद्भिदा वनदारकाः ॥४८
दाक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरांस्तान्निबोध मे । सूर्यारकाः कालिबला दुर्गाश्चामी कटैः सह ॥४९

में गोदावरी नदी बहती है, संपूर्ण पृथ्वी में वही स्थान अत्यन्त मनोरम है ।३४। वहाँ महात्मा भार्गव की गोवर्द्धननामक मनोहर नगरी है और बाह्लीक, वाटधान, आभीर और कालतोयक ।३५। यह अपरान्तदेश है । शूद्र, पह्लव, चर्मखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक ।३६। शतद्रुज, कलिंग, पारद, हारभूषिक, माठर, बहुभद्र, केकय और दशमालिक ।३७। इत्यादि सब देशों में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकुल वास करते हैं, काम्बोज, दरद, बर्बर, अंगलौकिक, (हर्षवर्द्धन) ।३८। चीन, तुषार और बह्लव, इन प्रदेशोंत्पन्न मनुष्यगण बहिर्देशज कहलाते हैं । आत्रेय, भारद्वाज, पुष्कल, कशेरूक ।३९। लम्पाक, शूलकार, चुलिक, जागुड़ औपध और अनिमद्र इत्यादि जाति के मनुष्य किरात जाति का भेदविशेष है ।४०। और तामस, हंसमार्ग, काशमीर शूलिक, कुहक, ऊर्ण और दार्व ।४१। इत्यादि समस्त देश उत्तर में स्थित हैं । इनके बाद पूर्वदेश सुनो । अभ्रारक, मुद्‌गरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि ।४२। प्लवङ्ग, रङ्गेय, माल, दामल, वर्त्तिक, उत्तरब्रह्म, प्रविजय, भार्गव, गेयमल्लक ।४३। प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल मगध और गोमेद इत्यादि समस्त जनपद पूर्वदिशा में अवस्थित हैं ।४४। अनन्तर दक्षिणपथस्थित समस्त जनपदों का वर्णन करता हूँ । पाण्ड्य, केरल, चोल, कुन्त्य ।४५। शैलूष, मूषिक, कुमार, वानवासक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिंग ।४६। आभीर, वैशिक्य, आटव्य जहाँ पर शबरलोग वास करते हैं । पुलिन्द, विन्ध्य, मालेय, वैदर्भ, दण्डक ।४७। पौरिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्द्धन, नैषिक, कुन्तल, आंध्र उद्भिद और वनदारक ।४८। इत्यादि भोगवर्द्धन समस्त देश दाक्षिणात्य कहे गये हैं, अब पश्चिम देश की कथा कहता हूँ सुनो । सूर्यारक, कालिबल, दुर्ग, कट, ।४९। पुलिन्द, सुमीन, रूपप,

पुलिन्दाश्च सुमीनाश्च रूपपाः स्वापदैः सह । तथा कुरुमिनश्चैव सर्वे चैव कठाक्षराः ॥५०
(कारस्करा लोहजङ्घा वाजेया राजभद्रकाः) । तोसलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा विदिशस्तथा ॥
(तुषारास्तुम्बुराश्चैव सर्वे चैव करस्कराः ॥) नासिक्यावाश्च ये चान्ये ये चैवोत्तरनर्मदाः ॥५१
भीरुकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैरपि । काश्मीराश्च सुराष्ट्राश्च आवन्त्याश्चार्बुदैः सह ॥५२
इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणु विन्ध्यनिवासिनः । सरजाश्च करूषाश्च केरलाश्चोत्कलैः सह ॥५३
उत्तमर्णाश्च दशार्णाश्च भोज्याः किष्किन्धकैः सह । तुम्बरास्तुम्बुलाश्चैव पटवी नैषधैः सह ॥५४
अन्नजास्तुष्टिकारश्च वीरहोत्रा ह्यवन्तयः । एते जनपदाः सर्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥५५
अतो देशान्प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये । नीहारा हंसमार्गाश्च कुरवो गुर्गणाः खसाः ॥५६
कुन्तप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दार्वाः सकृत्रकाः । त्रिगर्त्ता गालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥५७
कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधिः । एतत्तु भारतं वर्षं चतुःसंस्थानसंस्थितम् ॥५८
दक्षिणापरतो ह्यस्य पूर्वेण च महोदधिः । हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः ॥५९
तदेतद्भारतं वर्षं सर्वबीजं द्विजोत्तम । ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मर्त्यतां तथा ॥६०
मृगपश्वप्सरोयोनिस्तद्वत्सर्वे सरीसृपाः । स्थावराणां च सर्वेषामितो ब्रह्मञ्शुभाशुभैः ॥६१
प्रयान्ति कर्मभूर्ब्रह्मन्नान्यलोकेषु विद्यते । देवानामपि विप्रर्षे सदा एष मनोरथः ॥६२

स्वापद और कुरुमिन इत्यादि देश को कठाक्षर ।५०। (कारस्कर, लोहजंघ, वाजेय, राजभद्र) तोशल और कोशल, त्रैपुर, विदिश (तुषार और तुंबुर यह सब करस्कार है) या नासिक्याव कहते हैं। और उत्तरनर्मद ।५१। भीरुकच्छ, माहेय, सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र, आवन्त्य और अर्बुद इत्यादि समस्त देश अपरान्त अर्थात् पाश्चात्य कहकर विख्यात हैं, अब विन्ध्यवासी सब देशों का वर्णन सुनो सरज, करुष, केरल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज्य, किष्किन्धक, तुम्बुरु, पटु, नैषध ।५२-५४। अन्नज, तुष्टिकार, वीरहोत्र और अवन्ति, यह संपूर्ण जनपद विन्ध्यपर्वत की पीठ में स्थित हैं ।५५। अब जो देश पर्वताश्रयी अर्थात् पर्वत का आश्रय लेने वाले हैं, इनके बाद उन्हीं का वर्णन किया जाता है। यह नीहार, हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस ।५६। कुन्त, प्रावरण, ऊर्ण, दार्व, कृत्रक, त्रिगर्त्त, गालव, किरात और तामस इन सब देशों को पार्वतीय देश कहते हैं ।५७। और इसी भारतवर्ष में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर इत्यादि चारों युगों की विधि विद्यमान रहती है और चार संस्थान करके इस भारत वर्ष की स्थिति है ।५८। इसको पूर्वदक्षिण और पश्चिम दिशा में महासागर धनुषाकार से घेर रहा है और उत्तर दिशा में हिमालय पर्वत धनुष के गुण के समान विद्यमान रहता है ।५९। हे द्विजवर ! यह वही भारतवर्ष सब का बीजस्वरूप है। इसमें ब्रह्मत्व, इन्द्रत्व, देवत्व और मनुष्यत्व सभी वर्तमान हैं ।६०। यही मृग, पशु आदि और अप्सराओं को उत्पन्न करने वाला, और इसमें ही सरीसृप (विच्छू) आदि उत्पन्न होते हैं। हे ब्रह्मन् ! स्थावर जंगमादि यावतीय पदार्थ, समस्त ही इसमें शुभाशुभ कर्म के फल से उत्पन्न होते हैं ।६१। हे ब्रह्मन् ! हे विप्रर्षे ! समस्त लोकों में यह भारतवर्ष ही एकमात्र कर्मभूमि है। देवतागण भी सदा अभिलाषा करते हैं ।६२। कि यदि देवत्व से कभी भ्रष्ट हो तो पृथ्वी के मध्य इस भारत वर्ष में ही मनुष्ययोनि प्राप्त करे,

अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात्प्रच्युताः क्षितौ । मनुष्यः कुरुते तत्तु यन्न शक्यं सुरासुरैः ॥६३
तत्कर्मनिगडग्रस्तैः स्वकर्मख्यापनोत्सुकैः । न किञ्चित्क्रियते कर्म सुखलेशोपबृंहितैः ॥६४
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नद्यादिवर्णनो नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५४।

अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भारतीयकूर्मनिवेशवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन्कथितं सम्यग्भवता भारतं मम । सरितः पर्वता देशा ये च तत्र वसन्ति वै ॥१
किन्तु कूर्मस्त्वया पूर्वं भारते भगवान्हरिः । कथितस्तस्य संस्थानं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥२
कथं स संस्थितो देवः कूर्मरूपी जनार्दनः । शुभाशुभं मनुष्याणां व्यज्यते च ततः कथम् ॥
यथा मुखं यथा पादास्तस्य तद्ब्रूह्यशेषतः ॥३

मार्कण्डेय उवाच

प्राङ्मुखो भगवान्देवः कूर्मरूपी व्यवस्थितः । आक्रम्य भारतं वर्षं नवभेदमिदं द्विज ॥४
नवधा संस्थिते न्यस्य नक्षत्राणि समन्ततः । विषयाश्च द्विजश्रेष्ठ ये सम्यक्तान्निबोध मे ॥५
वेदिमद्रारिमाण्डव्याः शाल्वा नीपास्तथा शकाः । उज्जिहानास्तथा वत्स घोषसंख्यास्तथा खशाः ॥६

क्योंकि मनुष्यगण जिस कार्य के करने में समर्थ होते हैं, देवता या असुर वह कार्य नहीं कर सकते ।६३। देखो, यह कर्मरूपी बेड़ियों से ग्रसित मनुष्यगण लेशमात्र सुख के द्वारा मोहित होकर अपने कर्म विख्याति के अभिलाषी होकर कुछ कर्म नहीं करते ।६४

श्रीमार्कण्डेयपुराण में नद्यादिवर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ।५४।

अध्याय ५५

भारतीयकूर्मनिवेश का वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा— हे भगवन् ! आपने मुझसे भारतवर्ष का विषय सम्यक् प्रकार वर्णन किया । और उस भारत में जो सब नदी, पर्वत, देश और उसमें जो वास करते हैं, वह सब कहा ।१। किन्तु आपने पहले कहा है कि जिस भारतवर्ष में भगवान् हरि कूर्मरूप से वास करते हैं, उनकी स्थिति किस प्रकार है वह इस समय भलीभाँति सुनने की इच्छा है ।२। उन देवदेव जनार्दन ने किस प्रकार कूर्मरूप में वास किया था ? और उनके द्वारा मनुष्यों का शुभाशुभ किस प्रकार प्रकाशित हुआ था हे भगवन् ! उनका मुख और चरण कैसे हैं, यह सब कथा भलीभाँति से वर्णन कीजिये ।३

मार्कण्डेय जी बोले—हे ब्रह्मन् ! वही देवभगवन् कूर्मरूप धारणपूर्वक इस नवधा भिन्न अर्थात् नव खण्डों में विभक्त भारतवर्ष को आक्रमण करते हुए पूर्वमुख से वास करते हैं ।४। नक्षत्र और संपूर्ण विषय भी नवभागों में विभक्त होकर उनके चारों ओर वास करते हैं । हे द्विजवर ! यह विवरण भलीभाँति से सुनो ।५। वेदि, मद्र, अरिमाण्डव्य, शाल्व, नीप, शक, उज्जिहान, घोषसंख्य, खस ।६। सारस्वत, मत्स्य,

मध्ये सारस्वता मत्स्या शूरसेनाः समाथुराः । धर्मारण्या ज्योतिषिका गौरग्रीवा गुडाश्मकाः ॥७
वैदेहकाः सपाञ्चालाः सङ्केताः कङ्कमारुताः । कालकोटिसपाषण्डाः पारियात्रनिवासिनः ॥८
कापिञ्जलाः कुरोर्बाह्यास्तथैवोदुम्बरा जनाः । गजाह्वयाश्च कूर्मस्य जना मध्यनिवासिनः ॥९
कृत्तिकारोहिणीसौम्या एतेषां मध्यवासिनाम् । नक्षत्रत्रितयं विप्र शुभाशुभविपाकदम् ॥१०
वृषध्वजोऽञ्जनश्चैव जम्ब्वाख्यो मानवाचलः । शूर्पकर्णो व्याघ्रमुखो मुर्वरः कर्वटाशनः ॥११
तथा चन्द्रेश्वराश्चैव खशाश्च मगधास्तथा । शिबयो मैथिलाः शुभ्रास्तथा वदनदन्तुराः ॥१२
प्राग्ज्योतिषा सलौहित्याः सामुद्राः पुरुषादकाः । पूर्णोत्कटो भद्रगौरस्तथोदयगिरिर्द्विज ॥१३
काशयो मेखला मुष्टास्ताम्रलिप्तैकपादपाः । वर्द्धमाना कोसलाश्च मुखे कूर्मस्य संस्थिताः ॥१४
रौद्रं पुनर्वसुः पुष्पो नक्षत्रत्रितयं मुखे । पादे तद्दक्षिणे देशाः क्रौष्टुके वदतः शृणु ॥१५
कलिङ्गवङ्गजठराः कोशला मूषिकास्तथा । चेदयश्चोर्द्धकर्णश्च मत्स्यांध्रा विन्ध्यवासिनः ॥१६
विदर्भानारिकेलाश्च धर्मद्वीपास्तथैलिकाः । व्याघ्रग्रीवा महाग्रीवास्त्रैपुराः श्मश्रुधारिणः ॥१७
कैष्किन्ध्या हैमकूटाश्च निषधाः कटकस्थलाः । दशार्णा हारिका नग्ना निषधाः काकुलालकाः ॥१८
तथैव पर्णशबराः पादे वै पूर्वदक्षिणे । आश्लेषर्क्ष तथा पैत्र्यं फाल्गुन्यः प्रथमास्तथा ॥१९
नक्षत्रत्रितयं पादमाश्रितं पूर्वदक्षिणम् । लङ्काकालाजिनाश्चैव शैलिका निकटास्तथा ॥२०
महेन्द्रमलयाद्रौ च दर्दुरे च वसन्ति ये । कर्कोटकवने ये च भृगुकच्छाः सकोङ्कणाः ॥२१
सर्वाश्चैव तथाभीरा वेण्यास्तीरनिवासिनः । अवन्तयो दासपुरास्तथैवाकारिणो जनाः ॥२२

शूरसेन, माथुर, धर्मारण्य, ज्योतिषिक, गौरग्रीव, गुडाश्मक ।७। वैदेहक, पांचाल, संकेत, कंक, मारुत, कालकोटि, पाखण्ड, पारियात्रनिवासीगण ।८। कापिञ्जल, कुरुबाह्य, उदुम्बर और गजाह्व यह संपूर्ण देश कूर्म के मध्यस्थल में वास करते हैं ।९। कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिर, यह तीनों नक्षत्र उन्हीं मध्यवासी मनुष्यों के शुभाशुभ की सूचना देते रहते हैं ।१०। वृषध्वज, अंजन, जम्बुनामक, मानवाचल, शूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख, मुर्वर, कर्वटाशन ।११। चन्द्रेश्वर, खश, मगध, शिनि, मैथिल, शुभ्र और वदन-दन्तुर ।१२। समस्त पर्वत प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, सामुद्रक, पुरुषादक, पूर्णोत्कट, भद्रगौर, उदयाचल ।१३। काशय, मेखल, मुष्ट, ताम्रलिप्त, एकपादप, वर्धमान और कोशल, यह सब कूर्मरूपी भगवान् के मुख में स्थित हैं ।१४। आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य, यह तीनों नक्षत्र भी मुख में ही अवस्थित हैं । उनके दक्षिण में जो सब देश हैं, हे क्रौष्टुके ! उनका वर्णन करता हूँ सुनो ।१५। कलिंग, वंग, जठर, कोशल, मूषिक, चेदि, ऊर्ध्वकर्ण और मत्स्य, आंध्र इत्यादि जो सब देश विन्ध्य पर्वत के निकट अवस्थित हैं ।१६। और विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलिक, व्याघ्रग्रीव, महाग्रीव, त्रैपुर, श्मश्रुधारी ।१७। कैष्किन्ध, हैमकूट, निषध, कटकस्थल, दशार्ण, हारिक, नग्न, निषध, काकुलालक, देश ।१८। और पर्ण, शबर इत्यादि समस्त देश तथा आश्लेषा, मघा और पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र ।१९। उनके पूर्व दक्षिण पाद में वास करते हैं। लंका, कालाजिन, शैलिक, निकट ।२०। महेन्द्र, मलय और दर्दुर, पर्वतस्थ समस्त जनपद, कर्कटकवनस्थित संपूर्ण देश, भृगुकच्छ, कोङ्कण ।२१। आभीर, वेण्या नदी के तीर स्थित, सब देश अवन्ति दाशपुर आकारी ।२२। महाराष्ट्र, कर्णाट, गोनर्द, चित्रकूट, चोल, कोलगिरि, क्रौञ्चद्वीप,

महाराष्ट्राः सकर्णाटा गोनर्द्दाश्चित्रकूटकाः । चोलाः कौलगिराश्चैव क्रौञ्चद्वीपजटाधराः ॥२३
कावेरीऋष्यमूकस्था नासिक्याश्चैव ये जनाः । शङ्खशुक्त्यादिवैदूर्यशैलप्रान्तचराश्च ये ॥२४
तथा वारिचराः कोलाश्चर्मपट्टनिवासिनः । गणबाह्याः पराः कृष्णाद्वीपवासनिवासिनः ॥२५
सूर्याद्रौ कुमुदाद्रौ च वसन्ति तथा जनाः । रौद्रस्वनाः सपिशिकास्तथा ये कर्मनायकाः ॥२६
दक्षिणाः कौरुषा ये च ऋषिकास्तापसाश्रमाः । ऋषभाः सिंहलाश्चैव तथा काञ्चीनिवासिनः ॥२७
त्रिलङ्गाः कुञ्जरदरीकच्छवासाश्च ये जनाः । ताम्रपर्णी तथा कुक्षिरिति कूर्मस्य दक्षिणः ॥२८
फाल्गुन्यश्चोत्तराहस्तश्चित्रा चर्क्षत्रयं द्विज । कूर्मस्य दक्षिणे कुक्षौ बाह्यपादस्तथापरम् ॥२९
काम्बोजाः पह्लवाश्चैव तथैव वडवामुखाः । तथा च सिन्धुसौवीराः सानर्त्ता वनितामुखाः ॥३०
द्रावणाः सार्गिगाः शूद्राः कर्णप्राधेयबर्बराः । किराताः पारदाः पाण्ड्यास्तथा पारशवाः कलाः ॥३१
धूर्त्तकाः हैमगिरिकाः सिन्धुकालकवैरताः । सौराष्ट्रा दरदाश्चैव द्राविडाश्च महार्णवाः ॥३२
एते जनपदाः पादे स्थिता वै दक्षिणेऽपरे । स्वात्यो विशाखा मैत्रं च नक्षत्रत्रयमेव च ॥३३
मणिमेघक्षुराद्रिश्च खञ्जयोऽस्तगिरिस्तथा । अपरान्तिका नोहयाश्च शान्तिका विप्रशस्तकाः ॥३४
कोङ्कणाः पञ्चनदका वमना ह्यवरास्तथा । तारक्षुराः ह्यंगतकाः शर्कराः शाल्मवेश्मकाः ॥३५
गुरुस्वराः फाल्गुनका वेणुमत्यां च ये जनाः । तथा फल्गुलुगा घोरा गुरुहाश्चकलास्तथा ॥३६
एकेक्षणा वाजिकेशा दीर्घग्रीवाः सचूलिकाः । अश्वकेशास्तथा पुच्छे जनाः कूर्मस्य संस्थिताः ॥३७
ऐन्द्रं मूलं तथाषाढानक्षत्रत्रयमेव च । माण्डव्याश्चण्डखाराश्च अश्वकालनदास्तथा ॥३८
कुशात्ता लडहाश्चैव स्त्रीबाह्या बालिकास्तथा । नृसिंहा वेणुमत्यां च बलावस्थास्तथापरे ॥३९

जटाधर ।२३। कावेरी और ऋष्यमूकस्थित नासिक, संपूर्ण देश शंखशुक्ति इत्यादि वैदूर्य शैल और जो समीपवर्ती ।२४। वारिचर, कोल, चर्मपट्ट और गणबाह्य कृष्णाद्वीपनिवासी मनुष्य ।२५। सूर्याद्रि और कुमुदाद्रि इन दोनों पर्वत में वसने वाले मनुष्य और रौद्रशब्दवाले पिशिक, कर्मनायक ।२६। दक्षिण, कौरुष, ऋषिक, तापसाश्रम, ऋषभ, सिंहल, काञ्चीनिवासी ।२७। त्रिलङ्ग, कुञ्जर और दरी कच्छस्थित मनुष्य तथा ताम्रपर्णी, यह सब कूर्म की दक्षिण कुक्षि में अवस्थित हैं ।२८। उत्तरा फाल्गुनी, हस्त और चित्रा यह तीनों नक्षत्र कूर्म के दक्षिण की ओर विराजमान हैं बाह्यपाद ।२९। काम्बोज, पह्लव, वडवामुख, सिन्धु, सौवीर, आनर्त्त, वनितामुख ।३०। द्रावण, सार्गिग, शूद्र, कर्ण, प्राधेय, बर्बर, किरात, पारद, पाण्ड्य, पारशव, कल ।३१। धूर्तक, हैमगिरिक, सिन्धु, कालक, वैरत, सौराष्ट्र, दरद, द्राविड और महार्णव ।३२। यह संपूर्ण जनपद कूर्म के दक्षिण पद में वास करते हैं। स्वाती, विशाखा और अनुराधा यह तीनों नक्षत्र इन सब देशों के शुभाशुभ की सूचना देते हैं ।३३। मणिमेघ, क्षुराद्रिखंज, अस्त्रगिरि, अपरान्तिक, नोहय, शान्तिक, विप्रशस्तक, ।३४। कोङ्कण, पञ्चनद, वमन, अवर, तारक्षुर, अंगतक, शर्कर, शाल्मवेश्मक ।३५। गुरुस्वर, फाल्गुनक, वेणुमतीनिवासी, फल्गुलुक, गुरुह, चकल ।३६। एक नेत्रवाले, वाजि से केशवाले, दीर्घ गर्दनवाले, चुलिक और अश्वकेश, यह समस्त देशवासी कूर्म की पूँछ में अवस्थित हैं ।३७। ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढा, यह तीन नक्षत्र भी कूर्म की पूँछ में वास करते हैं। माण्डव्य, चण्डखार, अश्व, कालनद ।३८। कुशात्त, लडह, स्त्रीबाह्य, बालिक, नृसिंह, वेणुमतीनिवासी,

धर्मबद्धास्तथोलूका उरुकर्मस्थिता जनाः । (तथा फल्गुलका घोरा घुरला हेमतारकाः ॥
एकेक्षणा वाजिकोशा दीर्घपादास्तथैव च ॥) वामे परे जनाः पादे स्थिताः कूर्मस्य भागुरे ॥४०
आषाढाश्रवणे चैव धनिष्ठा यत्र संस्थिता । कैलासो हिमवांश्चैव धनुष्मान्वसुमांस्तथा ॥४१
क्रौञ्चाः कुरुबकाश्चैव क्षुद्रवीणाश्च ये जनाः । रसालयाः सकैकेया भोगप्रस्थाः सयामुनाः ॥४२
अन्तर्द्वीपास्त्रिगर्त्ताश्च आग्नीज्याः सार्दना जनाः । तथैवाश्वमुखाः प्राप्ताश्चिबिडाः केशधारिणः ॥४३
दासेरका वाटधानाः शवधानास्तथैव च । पुष्कलाधमकैरातास्तथा तक्षशिलाश्रयाः ॥४४
अम्बष्ठा मालवा मद्रा वेणुकाः सवदन्तिकाः । पिङ्गला गानकलहा हूणाः कोहलकास्तथा ॥४५
माण्डव्या भूतियुवकाः शातका हेमतारकाः । यशोमत्याः सगान्धाराः खरसा गरराशयः ॥४६
यौधेया दासमेयाश्च राजन्याः स्यामकास्तथा । क्षेमधूर्त्ताश्च कूर्मस्य वामकुक्षिमुपाश्रिताः ॥४७
वारुणं चात्र नक्षत्रं तद्वत्प्रोष्ठपदाद्वयम् । येन किन्नरराज्यं च पशुपालं सकीचकम् ॥४८
काश्मीरकं तथा राष्ट्रमभिसारजनस्तथा । दरदास्त्वंगणाश्चैव कुलटा वनराष्ट्रकाः ॥४९
सैरिष्ठा ब्रह्मपुरकास्तथैव वनबाह्यकाः । किरातकौशिका नन्दा जनाः पह्लवलोलनाः ॥५०
दार्वा दामरकाश्चैव कुरटाश्चान्नदारकाः । एकपादाः खशा घोषाः स्वर्गभौमानवद्यकाः ॥५१
तथा सयवना हिङ्गाश्चीरप्रावरणाश्च ये । त्रिनेत्राः पौरवाश्चैव गन्धर्वाश्च द्विजोत्तम ॥५२
पूर्वोत्तरं तु कूर्मस्य पादमेते समाश्रिताः । रेवत्यश्वाश्विदैवत्यं याम्यं चर्क्षमिति त्रयम् ॥५३
तत्र पादे समाख्यातं पाकाय मुनिसत्तम । देशेष्वेतेषु चैतानि नक्षत्राण्यपि वै द्विज ॥५४

बलावस्थ ।३९। धर्मबद्ध, उलूक, उरुकर्मस्थित मनुष्य (तथा फल्गुलक, घोर, घुरल, हेमतारक, एकेक्षण, वाजिकोश और दीर्घपाद) यह सब देश भगवान् कूर्म के वामपद में स्थित हैं ।४०। उत्तराषाढा, श्रवण और धनिष्ठा यह तीनों नक्षत्र भी उसी स्थान में स्थित हैं । कैलास, हिमालय, धनुष्मान्, वसुमान् ।४१। क्रौञ्च, कुरुबक, क्षुद्रवीण, रसालय, कैकय, भोगप्रस्थ, यामुन ।४२। अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, आग्नीज्य, अर्दन, अश्वमुख, प्राप्त, चिबिड, केशधारी ।४३। दासेरक, वाटदान, शवधान, पुष्कल, अधम, कैरात, तक्षशिल ।४४। अम्बष्ठ, मालव, मद्र, वेणुक, वदन्तिक, पिंगल गानकलह, हूण, कोहलक ।४५। माण्डव्य, भूतियुवक, शातक, हेमतारक, यशोमत्य, गान्धार, खरस, गरराशि ।४६। यौधेय, दासमेय, राजन्य, स्यामक और क्षेमधूर्त्त यह सब जनपद कूर्मरूपी भगवान् की वामकुक्षि में वास करते हैं ।४७। शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद यह तीन नक्षत्र वहाँ के शुभाशुभ की सूचना देते हैं । किन्नरराज्य, पशुपाल, कीचक ।४८। काश्मीर, अभिसारजन, दरद, अंगण, कुलट, वनराष्ट्र, ।४९। सैरिष्ठ, ब्रह्मपुरक, वनवाह्यक, किरात, कौशिक, नन्द, पह्लव, लोलन ।५०। दार्व, दामरक, कुरट, अन्नदारक, एकपाद, खश, घोष, स्वर्ग, भौम, अनवद्यक ।५१। यवन, हिंग, चिरप्रावरण, त्रिनेत्र, पौरव और गंधर्व ।५२। यह समस्त देश कूर्म के पूर्व उत्तर में अवस्थित हैं । रेवती, अश्विनी और भरणी इन तीनों नक्षत्रों से उक्त देशों का शुभाशुभ जाना जाता है ।५३। हे मुनिसत्तम ! हे द्विजोत्तम ! जिस प्रकार मैंने आपसे कथन किया, इतने देशों में इतने ही नक्षत्र, इतने ही मनुष्य और इतने ही पर्वत हैं ।५४। हे विप्र !

एतत्पीडा अमी देशाः पीडयन्ते ये क्रमोदिताः । यान्ति चाभ्युदयं विप्र ग्रहैः सम्यगवस्थितैः ।।५५
यस्यर्क्षस्य पतिर्यो वै ग्रहस्तद्भावतो भयम् । तद्देशस्य मुनिश्रेष्ठ तदुत्कर्षे शुभागमः ।।५६
प्रत्येकं देशसामान्यं नक्षत्रग्रहसम्भवम् । भयं लोकस्य भवति शोभनं वा द्विजोत्तम ।।५७
स्वर्क्षैरशोभनैर्जन्तोः सामान्यमिति भीतिदम् । ग्रहैर्भवति पीडोत्थमल्पायासमशोभनम् ।।५८
तथैव शोभनः पाको दुःस्थितैश्च तथा ग्रहैः । अल्पोपकाराय नृणां देशज्ञैरुदितो बुधैः ।।५९
द्रव्ये गोष्ठेऽथ भृत्येषु सुहृत्सु तनयेषु वा । भार्यायां च ग्रहे दुःस्थे भयं पुण्यवतां नृणाम् ।।६०
आत्मन्यथाल्पपुण्यानां सर्वत्रैवातिपापिनाम् । नैकत्रापि ह्यपापानां भयमस्ति कदाचन ।।६१
दिग्देशजनसामान्यं नृपसामान्यमात्मजम् । नक्षत्रग्रहसामान्यं नरो भुङ्क्ते शुभाशुभम् ।।६२
परस्पराभिरक्षा च ग्रहदौस्थ्येन जायते । एतेभ्य एव विप्रेन्द्र शुभहानिस्तथाशुभैः ।।६३
यदेतत्कूर्मसंस्थानं नक्षत्रेषु मयोदितम् । एतत्तु देशसामान्यमशुभं शुभमेव च ।।६४
तस्माद्विज्ञाय देशर्क्षं ग्रहपीडां तथात्मनः । कुर्वीत शान्तिं मेधावी लोकवादांश्च सत्तम ।।६५
आकाशाद्देवतानां च दैत्यादीनां च दौर्हृदाः । पृथ्व्यां पतन्ति ते लोके लोकवादा इति श्रुताः ।।६६
तां तथैव बुधः कुर्याल्लोकवादान्न हापयेत् । तेषां तत्करणान्नृणां युक्तो दुष्टागमक्षयः ।।६७
शुभोदयं प्रहाणिं च पापानां द्विजसत्तम । प्रज्ञाहानिं प्रकुर्युस्ते द्रव्यादीनां च कुर्वते ।।६८

उक्त देशों में क्रमानुसार इन्हीं नक्षत्रों के बिगड़ने से मनुष्यों को पीड़ा उपस्थित होती है और वही ग्रह जब सम्यक् प्रकार श्रेष्ठ ग्रह के संग मिल जाते हैं तब पुरुष को सुख प्राप्त होता है ।५५। हे मुनिश्रेठ ! जिस नक्षत्र का जो अधिपति है उसके बिगड़ने से उस देश में पुरुषों को दुःख अथवा भय उपस्थित होता है और उसी के श्रेष्ठ स्थान में होने से मनुष्यों को शुभ होता है ।५६। हे द्विजोत्तम ! प्रत्येक देश के समान वहाँ के मनुष्यों को भी नक्षत्र या ग्रहजनित भय अथवा शुभ होता है ।५७। संपूर्ण मनुष्यों को समस्त देशों में अपने अपने नक्षत्र के बिगड़ने से अत्यन्त भय और दुःख उत्पन्न होता है ।५८। तथा ग्रहों के वक्र होने पर जो भय उपस्थित होता है उस ग्रहभय को मिटाने के लिये बुद्धिमान् ज्योतिषीगण मनुष्यों को जप और दान करने का उपदेश देते हैं ।५९। ग्रह के बिगड़ने से पुण्यात्मा पुरुषों को भी द्रव्य, गोष्ठ, भृत्य, पुत्र और स्त्री आदि के सहित पीड़ा होती है ।६०। अल्पपुण्य मनुष्यों को अपने देह में पीडा होती है और पापियों को सर्वत्र ग्रहपीडा का भय होता है किन्तु पुण्यवानों को वास्तविक किसी स्थान में भय नहीं है ।६१। दिशा, देश, जन, नृप, पुत्र, सुख, तथा दुःख आदि मनुष्यों को नक्षत्र और ग्रह के अनुकूल तथा प्रतिकूल के अनुसार शुभाशुभ फल प्राप्त होता है ।६२। हे विप्रेन्द्र ! ग्रहों के स्वस्थतापूर्वक रहने से मनुष्यों को सुख मिलता है और ग्रहों की दुःस्थिति होने से मनुष्यों को अशुभ प्राप्त होता है ।६३। यह जो नक्षत्रों के सहित मैंने कूर्मभगवान् के संस्थान का वर्णन किया यह सब देशों में शुभाशुभ का देने वाला है ।६४। हे द्विजसत्तम ! इसी कारण बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि देश, नक्षत्र और ग्रह द्वारा की हुई पीड़ा को जानकर उसकी शान्ति करे ।६५। आकाश में देवता और दैत्यों का शत्रु जब स्वर्ग से गिरता है और वही लोकवाद के नाम से विख्यात है ।६६। अत एव बुद्धिमान् मनुष्यों को ग्रह और लोकवाद दोनों की शान्ति करनी चाहिए क्योंकि मनुष्यों को इन्हीं सब के गिरने से यहाँ शुभ और अशुभ प्राप्त होता है ।६७। हे द्विजसत्तम ! जब यह ग्रहादिक अनुकूल होते हैं, तब शुभ का उदय और पाप की हानि करते हैं और जब यही ग्रहादिक

तस्माच्छान्तिपरः प्राज्ञो लोकवादरतस्तथा । लोकवादांश्च शान्तिश्च ग्रहपीडासु कारयेत् ॥६९
अद्रोहानुपवासांश्च शस्तं देवादिवन्दनम् । जपो होमस्तथा दानं स्नानं क्रोधादिवर्जनम् ॥७०
अद्रोहं सर्वभूतेषु मैत्रीं कुर्याच्च पण्डितः । वर्जयेदसतीं वाचमतिवादांस्तथैव च ॥७१
ग्रहपूजां च कुर्वीत सर्वपीडासु मानवः । एवं शाम्यन्त्यशेषाणि घोराणि द्विजसत्तम ॥७२
प्रयतानां मनुष्याणां ग्रहर्क्षोत्थान्यशेषतः । एष कूर्मो मया ख्यातो भारते भगवान्विभुः ॥७३
नारायणो ह्यचिन्त्यात्मा यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । अत्र देवाः स्थिताः सर्वे प्रतिनक्षत्रसंश्रयाः ॥७४
तथा मध्ये हुतवहः पृथ्वी सोमश्च वै द्विज । मेषादयस्त्रयो मध्ये मुखे द्वौ मिथुनादिकौ ॥७५
प्राग्दक्षिणे तथा पादे कर्किसिंहौ व्यवस्थितौ । सिंहकन्यातुलाश्चैव कुक्षौ राशित्रयं स्थितम् ॥७६
तुलाथ वृश्चिकश्चोभौ पादे दक्षिणपश्चिमे । पृष्ठे च वृश्चिकेनैव सह धन्वी व्यवस्थितः ॥७७
वायव्ये चास्य वै पादे धनुर्ग्राहादिकं त्रयम् । कुम्भमीनौ तथैवास्य उत्तरां कुक्षिमाश्रितौ ॥७८
मीनमेषौ द्विज श्रेष्ठपादे पूर्वोत्तरे स्थितौ । कूर्मे देशास्तथर्क्षाणि देशेष्वेतेषु वै द्विज ॥७९
राशयश्च तथर्क्षेषु ग्रहराशिष्ववस्थिताः । तस्माद्ग्रहर्क्षपीडासु देशपीडां विनिर्दिशेत् ॥८०
तत्र स्नात्वा प्रकुर्वीत दानहोमादिकं विधिम् । स एष वैष्णवः पादो ब्रह्मन्मध्ये ग्रहस्य यः ॥८१
(नारायणाख्योऽचिन्त्यात्मा कारणं जगतः प्रभुः) ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भारतीयकूर्मनिवेशो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५५।

विपरीत होते हैं तब द्रव्य तथा बुद्धि की हानि करते हैं ।६८। इस कारण लोकवादरत बुद्धिमान् मनुष्य को पीडा के समय लोकवाद और ग्रह की शान्ति अवश्य करनी चाहिए ।६९। और आप किसी से द्रोह न करे, उपवास (व्रत) करें, शान्तिस्तोत्र का पाठ करें, तथा जप, होम, स्नान, दान करे और क्रोधादि से दूर रहना उचित है ।७०। सर्वभूत (संसार) से अद्रोह अर्थात् वैररहित होकर सबसे मित्रता करे, मिथ्या न बोले और अधिक विवाद भी नहीं करना चाहिए ।७१। हे द्विजसत्तम ! संपूर्ण पीडाओं में मनुष्य को ग्रह पूजन करना उचित है क्योंकि इस प्रकार शान्ति और पूजा करने से सब घोर पीड़ा भी दूर हो जाती है ।७२। और जो पुरुष पवित्र हैं उनको भी ग्रहों के कारण से शुभ-अशुभ फल प्राप्त होता है । इस प्रकार से भारतवर्ष में यह कूर्मभगवान् विभु विद्यमान रहते हैं जिनका वृत्तान्त मैने आपसे वर्णन किया ।७३। यह नारायण कूर्म अचिन्त्यात्मा हैं इन्हीं में समस्त देव नक्षत्रों के स्वामी स्थित रहते हैं ।७४। उनके मध्य में अग्नि, पृथ्वी और चन्द्र विद्यमान हैं, मेषादि तीन राशि उनके मध्यस्थल में अवस्थित हैं मिथुनादि दो राशि उनके मुख में स्थित हैं ।७५। कर्कट और सिंहराशि उनके पूर्व दक्षिण चरण में वास करती हैं, सिंह, कन्या और तुला यह तीन राशि उनकी कुक्षि में विराजमान हैं ।७६। तुला और वृश्चिक राशि दक्षिण पश्चिम पद में विद्यमान हैं वृश्चिक और धनुराशि उनके पृष्ठदेश में ।७७। धनु और मकरादि तीन राशि उनके वायव्य चरण में कुंभ और मीन राशि उनकी उत्तर कुक्षि में स्थित रहती हैं ।७८। हे द्विजोत्तम ! हे विप्र ! पूर्व और उत्तर चरण में मीन, मेष स्थित रहती हैं । इस कूर्म में देश, देश में नक्षत्र ।७९। नक्षत्र में राशि और ग्रह, ग्रह में राशि स्थित हैं। इस कारण ग्रह नक्षत्र की पीड़ा में देशपीडा समझनी चाहिए ।८०। देशपीडादि के होने पर स्नान करके दान होमादि संपूर्ण नियम करने चाहिए । यह जो विष्णु के चरणस्वरूप ब्रह्मा जी ग्रहों के बीच में अवस्थान करते हैं, (यही नारायण अचिन्त्यात्मा, जगत्कारण और जगत् के प्रभु हैं) ।८१

श्रीमार्कण्डेयपुराण में कूर्मनिवेश वर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।५५।

अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

उत्तरकुरुवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं तु भारतं वर्षं यथावत्कथितं मुने । कृतं त्रेता द्वापरं च तथा तिष्यं चतुष्टयम् ॥१
अत्रैवैतद्युगानां तु चातुर्वर्ण्यं च वै द्विज । चत्वारि त्रीणि द्वे चैव तथैकं च शरच्छतम् ॥२
जीवन्त्यत्र नरा ब्रह्मन्कृतत्रेतादिषु क्रमात् । देवकूटस्य पूर्वस्य शैलेन्द्रस्य महात्मनः ॥३
पूर्वेण यत्स्थितं वर्षं भद्राश्वं तन्निबोध मे । श्वेतपर्णश्च नीलश्च शैवालश्चाचलोत्तमः ॥४
कौरञ्जः पर्णशालाः पञ्चैते तु कुलाचलाः । तेषां प्रसूतिरन्ये ये बहवः क्षुद्रपर्वताः ॥५
तैर्विशिष्टा जनपदा नानारूपाः सहस्रशः । ततः कुमुदसंकाशाः शुद्धसानुसुमङ्गलाः ॥६
इत्येवमादयोऽन्येऽपि शतशोऽथ सहस्रशः । सीताशङ्खावतीभद्राचक्रावर्त्तादिकास्तथा ॥७
नद्योऽथ बह्व्यो विस्तीर्णाः शीततोयौघवाहिकाः । अत्र वर्षे नराः शङ्खशुद्धहेमसमप्रभाः ॥८
दिव्यसङ्गमिनः पुण्या दशवर्षशतायुषः । अधमोत्तमं न तेष्वस्ति सर्वे ते समदर्शनाः ॥९
तितिक्षादिभिरष्टाभिः प्रकृत्यात्मगुणैर्युताः । तत्राप्यश्वशिरा देवश्चतुर्बाहुजनार्दनः ॥१०

अध्याय ५६

उत्तरकुरु का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! यह मैंने भारतवर्ष का विषय यथावत् वर्णन किया इस भारतवर्ष में ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, और कलिरूप चारों युग वर्त्तमान हैं ।१। और इस स्थान में ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों का भेद है, यहाँ पर सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगों के भेद से इस स्थान के मनुष्य क्रमानुसार चार सौ, तीन सौ, दो सौ और एक सौ वर्ष जीवित रहते हैं । पूर्व दिशा में देवकूट नामक महापर्वत के ।२-३। पूर्व की ओर जो वर्ष स्थित है, उसका नाम भद्राश्व वर्ष है । अब उसकी कथा वर्णन करता हूँ । श्वेतपर्ण, नील, शैवाल ।४। कौरंज और पर्णशालाग्र नामक पाँच श्रेष्ठ कुलाचल इस वर्ष में स्थित हैं और इन सब पर्वतों से उत्पन्न हुए अनेक छोटे पर्वत भी इस वर्ष में हैं ।५। इस वर्ष में कुमुदसङ्काश, शुद्धसानु, सुमंगल इत्यादि अन्यान्य शत सहस्र (सैकड़ों हजारों) जनपद छोटे-छोटे पर्वतों से युक्त होकर नानाभाँति से अवस्थान करते हैं । सीता, शंखावती, भद्रा और चक्रावर्त्ता आदि ।६-७। अनेकानेक अत्यन्त शीतलजलवाहिनी नदियाँ विस्तीर्ण होकर इस वर्ष में बहती हैं । इस वर्ष में जो मनुष्य जन्म लेते हैं वह समस्त ही शंख और निर्मल सुवर्ण के समान प्रभायुक्त होते हैं ।८। और श्रेष्ठ संग तथा पवित्र होकर हजार वर्ष जीवित रहते हैं, उनमें कोई अधम या उत्तम नहीं है, क्योंकि सभी समदर्शन हैं ।९। वहाँ के संपूर्ण मनुष्य स्वभाव से ही सहनशीलता आदि आठ गुणों से गुणवान् होते हैं । इस भद्राश्व वर्ष में भगवान् चतुर्बाहु जनार्दन हयग्रीवरूप से ।१०। शिर, हृदय, मेढ्र, चरण, हस्त और

शिरोहृदयमेढ्रांघ्रिहस्तैश्चाक्षित्रयान्वितः । तस्याप्यथैवं विषया विज्ञेया जगतः प्रभोः ॥११
केतुमालमतो वर्षं निबोध मम पश्चिमम् । विशालः कम्बलः कृष्णो जयन्तो हरिपर्वतः ॥१२
विशोको वर्द्धमानश्च सप्तैते कुलपर्वताः । अन्ये सहस्रशः शैला येषु लोकगणः स्थितः ॥१३
मौलयस्ते महाकायाः शाकपोतकरम्भकाः । अच्चुलप्रमुखाश्चापि वसन्ति शतशो जनाः ॥१४
ये पिबन्ति महानद्यो वंक्षुश्यामां स्वकम्बलाम् । अमोघां कामिनीं श्यामां तथैवान्याः सहस्रशः ॥१५
अत्राप्यायुः समं पूर्वैरत्रापि भगवान्हरिः । वराहरूपी पादास्यहृत्पृष्ठे पार्श्वतस्तथा ॥१६
(मुखे नासादतश्चैव कण्ठतः पुच्छतस्तथा) । त्रिनक्षत्रयुते देशे नक्षत्राणि युतानि च ॥
इत्येतत्केतुमालं ते कथितं मुनिसत्तम ॥१७
अतः परं कुरून्वक्ष्ये निबोधेह ममोत्तरान् । तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः ॥१८
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च । सर्वकामप्रदास्ते हि सर्वकालफलप्रदाः ॥१९
भूमिर्मणिमयी वायुः सुगन्धः सर्वदा सुखः । जायन्ते मानवास्तत्र देवलोकपरिच्युताः ॥२०
मिथुनानि प्रसूयन्ते समकालस्थितानि वै । अन्योन्यमनुरक्तानि चक्रवाकोपमानि च ॥२१
चतुर्दश सहस्राणि तेषां सार्द्धानि वै स्थितिः । चन्द्रकान्तश्च शैलेन्द्रः सूर्यकान्तस्तथापरः ॥२२
तस्मिन्कुलाचले वर्षे तन्मध्ये च महानदी । भद्रसोमा प्रयात्युर्व्यां पुण्यामलजलौघिनी ॥२३

तीन नेत्र युक्त होकर अवस्थान करते हैं उन प्रभु जगदीश्वर का संपूर्ण विषय भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।११। अनन्तर सुमेरु के पश्चिम देश में स्थित केतुमालवर्ष की कथा का वर्णन करता हूँ ! इस वर्ष में जो सप्तकुल पर्वत हैं, उनके नाम यथा विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरिपर्वत ।१२। विशोक और वर्द्धमान । इसके अतिरिक्त पृथ्वी मौलिस्वरूप महाकाव्य और भी हजारों पर्वत हैं, जिनमें अनेक लोग रहते हैं ।१३। उनमें मौलि, महाकाय, शाकपोत, करम्भक और अच्चुलाख्य इत्यादि अनेक प्रकार के जन वास करते हैं।१४। यह मनुष्य जिन महानदियों का जल पीते हैं उनके नाम वंक्षुश्यामा, स्वकम्बला, अमोघा, कामिनी और श्यामा इसी प्रकार और भी हजारों नदियाँ बहती हैं ।१५। वहाँ पर भी मनुष्यों की आयु पूर्व की समान है और उस देश में भगवान् हरि वराहरूप से विराजमान रहते हैं। उनके चरण, हृदय, मुख, पीठ तथा पार्श्व में मुख नासिका कण्ठ दांत और पुच्छ से तीन नक्षत्रों से युक्त होकर संपूर्ण देश स्थित हैं और वहाँ भी नक्षत्रों से शुभ-अशुभ विदित होता है। हे मुनिसत्तम! इस प्रकार जो केतुमाल नामक वर्ष है, उसका भी मैंने आपसे वर्णन किया।१६-१७। अनन्तर उत्तरकुरुदेश की कथा कहता हूँ सुनो इस उत्तर कुरुदेश में सर्व काल के फलपुष्पयुक्त, मधुरफल से युक्त सर्वकामनादायक और सर्वकालफल-दायक संपूर्ण वृक्ष ।१८। वस्त्र उत्पन्न करते हैं और उनके संपूर्ण फलों से नाना प्रकार के गहने उत्पन्न होते है ।१९। वहाँ की भूमि मणिमयी, वायु सुन्दर गन्धयुक्त और सर्वदा सुखदायक है देवलोक से भ्रष्ट होकर मनुष्य वहाँ जन्म लेते हैं ।२०। वह चक्रवाक के समान परस्पर प्रीति करते हैं और समकाल में स्थित हुए बालक बालिका उत्पन्न करते हैं ।२१। वह साढे चौदह हजार वर्ष पर्यन्त जीवित रहते हैं । इस वर्ष में चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नामक दो श्रेष्ठ कुलपर्वत वर्तमान हैं ।२२। उस पर्वत में पवित्र और निर्मल जल बहने वाली भद्रसोमानामक महानदी पृथ्वी में बहती है ।२३। तथा और भी छोटी-छोटी हजारों

सहस्रशस्तथैवान्या नद्यो वर्षेऽपि चोत्तरे । तथान्याः क्षीरवाहिन्यो घृतवाहिन्य एव च ॥२४
दध्नो हृदास्तथा तत्र तथान्ये चानुपर्वताः । अमृतास्वादकल्पानि फलानि विविधानि च ॥२५
वनेषु तेषु रम्याणि शतशोऽथ सहस्रशः । तत्रापि भगवान्विष्णुः प्राक्छिरा मत्स्यरूपवान् ॥२६
विभक्तो नवधा विप्र नक्षत्राणां त्रयं त्रयम् । देशास्तत्रापि नवधा विभक्ता मुनिसत्तम ॥२७
चन्द्रद्वीपः समुद्रे च भद्रद्वीपस्तथापरः । तत्रापि पुण्यो विख्यातः समुद्रान्तर्महामुने ॥२८
इत्येतत्कथितं ब्रह्मन्कुरुवर्षं मयोत्तरम् । शृणु किंपुरुषादीनि वर्षाणि गदतो मम ॥२९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे उत्तरकुरुकथनं नाम षट्पञ्चाशोऽध्यायः ।५६।

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भुवनकोशवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

यत्तु किम्पुरुषं वर्षं तत्प्रवक्ष्याम्यहं द्विज । तत्रायुर्दशसाहस्रं पुरुषाणां वपुष्मताम् ॥१
अनामयाद्यशोकाश्च नरा यत्र तथा स्त्रियः । प्लक्षः खण्डश्च यत्रोक्तः सुमहान्नन्दनोपमः ॥२
तस्य ते वै फलरसं पिबन्तः पुरुषाः सदा । स्थिरयौवननिष्पन्नाः स्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ॥३

नदियाँ वहाँ वर्तमान हैं, दूसरी और जो नदियाँ हैं उनमें कोई क्षीरवाहिनी, कोई घृतवाहिनी ।२४। और कोई दधि के तलाव से युक्त हैं । और इन सात कुल पर्वतों के अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे बहुत पर्वत हैं । इस उत्तर कुरुदेशस्थ सैकड़ों-हजारों वनों के मध्यवर्त्ती समस्त वृक्षों में भाँति-भाँति के स्वादयुक्त फल फलते हैं इस स्थान में भी भगवान् नारायण मत्स्यरूप धारणपूर्वक पूर्व को मस्तक कर वास करते हैं ।२५-२७। हे विप्र ! इस उत्तर कुरुदेश में नक्षत्र नव भागों में विभक्त होकर तीन-तीन क्रमानुसार स्थिति करते हैं । हे मुनिसत्तम ! इसीप्रकार सब देश भी नव भाव में विभक्त हैं । हे महामुने ! इस वर्ष में चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप नामक दो प्रसिद्ध द्वीप हैं, दोनों ही समुद्र के बीच में अवस्थित और पवित्र हैं ।२८। हे ब्रह्मन् ! यह मैंने तुमसे उत्तर कुरुवर्ष की कथा कही, इसके उपरान्त किंपुरुषादि वर्ष का विषय वर्णन करता हूँ, सुनो ।२९

श्रीमार्कण्डेयपुराण में कुरुकथन नामक वर्णन का छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ।५६।

अध्याय ५७

भुवनकोश का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विजोत्तम ! अब किंपुरुष नामक जो वर्ष है, उसकी कथा कहता हूँ सुनो वहाँ शरीरधारी पुरुष दश हजार वर्ष जीवित रहते हैं ।१। वहाँ के स्त्री-पुरुष निरोग और शोकरहित होते हैं । उस स्थान में नन्दनवन के समान महान् एक प्लक्षखंड है ।२। वहाँ के मनुष्य सदा उन वृक्षों के फलों का रस पीकर स्थिर यौवन हुए हैं और स्त्रियाँ पद्म के समान गंधयुक्त हुई हैं ।३। इस किंपुरुष वर्ष के

अतः परं किंपुरुषाद्धरिवर्षं प्रचक्षते । महारजतसंकाशा जायन्ते तत्र मानवाः ।।४
देवलोकच्युताः सर्वे देवरूपाश्च सर्वशः । हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम् ।।५
न जरा बाधते तत्र न जीर्यन्ते च कर्हिचित् । तावन्तमेवं ते कालं जीवन्त्यथ निरामयाः ।।६
मेरुवर्षे मया प्रोक्तं मध्यमं यदिलावृतम् । न तत्र सूर्यस्तपति न ते जीर्यन्ति मानवाः ।।७
लभन्ते नात्मलाभं च रश्मयश्चन्द्रसूर्ययोः । नक्षत्राणां ग्रहाणां च मेरोस्तत्र परा द्युतिः ।।८
पद्मप्रभाः पद्मगन्धा जम्बूफलरसाशिनः । पद्मपत्रायताक्षास्तु जायन्ते तत्र मानवाः ।।९
वर्षाणां तु सहस्राणि तत्राप्यायुस्त्रयोदश । शरावाकारसंस्तारो मेरुमध्ये इलावृते ।।१०
मेरुस्तत्र महाशैलस्तदाख्यातमिलावृतम् । रम्यकं वर्षमस्माच्च कथयिष्ये निबोध तम् ।।११
वृक्षस्तत्रापि चोत्तुङ्गो न्यग्रोधो हरितच्छदः । तस्यापि ते फलरसं पिबन्तो वर्तयन्ति वै ।।१२
वर्षायुतायुषस्तत्र नरास्तत्फलभोगिनः । रतिप्रधानविमला जरादौर्गन्ध्यवर्जिताः ।।१३
तस्मादथोत्तरं वर्षं नाम्ना ख्यातं हिरण्मयम् । हिरण्वती नदी यत्र प्रभूतकमलोज्ज्वला ।।१४
महाबला सतेजस्का जायन्ते तत्र मानवाः । महाकाया महासत्त्वा धनिनः प्रियदर्शनाः ।।१५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवनकोशवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५७।

पीछे हरिवर्ष नामक और एक वर्ष है, वहाँ जो पुरुष जन्म लेते हैं, वह श्रेष्ठ चाँदी के समान वर्णवाली होते हैं ।४। जो देवरूपी मनुष्य देवलोक से गिरकर हरिवर्ष में जन्म लेते हैं वहाँ उत्तम इक्षु (ऊख) का रस पीते हैं ।५। बुढ़ापा उनको पीड़ित नहीं करता, अत एव कोई भी जीर्ण नहीं होता । और जितने कालतक वह जीवित रहते हैं तब तक सदा युवा-अवस्था बनी रहती है और निरामय रहते हैं ।६। मेरुवर्ष नामक जो मध्यम वर्ष है, जिसको इलावृत कहते हैं, वहाँ सूर्य का ताप नहीं है और मनुष्य बुढ़ापे से जीर्ण नहीं होते ।७। चन्द्र, सूर्य, ग्रह और संपूर्ण नक्षत्रों की किरणें वहाँ आत्मलाभ अर्थात् उज्ज्वलता प्राप्त नहीं कर सकतीं क्योंकि वहाँ सुमेरुपर्वत की अत्यन्त ज्योति प्रकाशित होती है ।८। मेरुवर्ष में जो मनुष्य जन्म लेते हैं, वह समस्त ही पद्म के समान प्रभायुक्त, पद्मगंध, पद्मपत्र के समान चौडे नेत्रों वाले और जम्बू के फलों का रस पीनेवाले होते हैं ।९। उन पुरुषों की आयु तेरह हजार वर्ष की होती है और उस इलावृत के मध्य में मेरुनामक जो पर्वत है, उसका आकार शरावे के समान है ।१०। उस वर्ष में महापर्वत मेरु ही विख्यात है जो इलावृत्त कहलाता है अब रम्यकवर्ष का वृत्तान्त कहता हूँ सुनो ।११। रम्यकवर्ष में बहुत ऊँचा न्यग्रोध नामक एक वृक्ष है, उसके सब पत्ते हरितवर्ण हैं बाहर के मनुष्य उस वृक्ष के फलों का रस पीकर जीवन धारण करते हैं ।१२। जो उस वृक्ष के फलों का भोजन करते हैं वह दश हजार वर्प तक जीवित रहते हैं और वह रतिक्रीड़ा में निपुण, सुन्दर तथा जरा दौर्गन्ध्यरहित होते हैं ।१३। उसके उत्तर में जो वर्ष है उसका नाम हिरण्यमय वर्ष है इस वर्ष में अनके कमलों के पुष्पों से शोभायमान हिरण्वती नदी बहती है ।१४। वहाँ जो मनुष्य जन्मते हैं वह अत्यन्त बलशाली, तेजस्वी, महाकाय, अत्यन्त सत्त्वसंपन्न धनी और प्रियदर्शन होते हैं ।१५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में भुवनकोश वर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।५७।

(५२)

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्राह्मणवाक्यवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

कथितं भवता सम्यग्यत्पृष्टोऽसि महामुने । भूसमुद्रादिसंस्थानं प्रमाणानि तथा ग्रहाः ॥१
तेषां चैव प्रमाणं यन्नक्षत्राणां च संस्थितिः । भूरादयस्तथा लोकाः पातालान्यखिलान्यपि ॥२
स्वायम्भुवं तथाख्यातं मुने मन्वन्तरं मम । तदन्तराण्यहं श्रोतुमिच्छे मन्वन्तराणि वै ॥
मन्वन्तराधिपान्देवानृषींस्तत्तनयान्नृपान् ॥३

मार्कण्डेय उवाच

मन्वन्तरं मयाख्यातं तव स्वायम्भुवं च यत् । स्वारोचिषाख्यमन्यत्तु शृणु तस्मादनन्तरम् ॥४
कश्चिद्द्विजातिप्रवरः पुरेऽभूदरुणास्पदे । वरुणायास्तटे विप्रो रूपेणात्यश्विनावपि ॥५
मृदुस्वभावः सद्वृत्तो वेदवेदाङ्गपारगः । सदातिथिप्रियो रात्रावागतानां समाश्रयः ॥६
तस्य बुद्धिरियं त्वासीदहं पश्ये वसुन्धराम् । अतिरम्यवनोद्यानां नानानगरशोभिताम् ॥७
अथागतोऽतिथिः कश्चित्कदाचित्तस्य वेश्मनि । नानौषधिप्रभावज्ञो मन्त्रविद्याविशारदः ॥८
अभ्यर्थितस्तु तेनासौ श्रद्धापूतेन चेतसा । तस्याचख्यौ सदेशांश्च रम्याणि नगराणि च ॥९

अध्याय ५८

ब्राह्मणवाक्य का वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—हे महामुने ! जो मैंने पूछा था उसका तो आपने भलीभाँति वर्णन किया और पृथ्वी समुद्रादि की स्थिति, परिमाण तथा ग्रहका परिमाण ।१। नक्षत्र इत्यादि की स्थिति और परिमाण और भूरादि सप्त लोक, सप्त पाताल ।२। और स्वायंभुव नामक प्रसिद्ध मन्वन्तर इन सबका जो मुझसे वर्णन किया है, अब उक्त मन्वन्तर के बाद के अपर समस्त मन्वन्तर, उन उन मन्वन्तरों के अधिपति, तद्वंशीय नृपति, देवता और ऋषियों का वृत्तान्त सुनने की मेरी अत्यन्त अभिलाषा है ।३

मार्कण्डेय जी बोले—मैंने तुमसे जिस स्वायंभुव मन्वन्तर का विषय कहा है, उसके पीछे स्वारोचिष नामक अपर मन्वन्तर की कथा सुनो ।४। दोनों अश्विनीकुमारों की अपेक्षा भी रूपवान् शान्तस्वभाव सच्चरित्र वेदवेदांगपारदर्शी कोई एक ब्राह्मण वरुणानदी के तटपर अरुणास्पद नगर में वास करता था अतिथि के आने पर वह सदा ही प्रसन्न होता । इसलिए रात्रिकाल में आये हुए मनुष्यों का आश्रयस्वरूप था ।५-६। सदा ही उसके मन में यह इच्छा होती कि, "मैं अतिरमणीय वन और उद्यानों से युक्त तथा अनेक नगरों से शोभायमान इस पृथ्वी को देखूँ" ।७। अनन्तर एक दिन सब औषधियों के प्रभाव का जानने वाला और मंत्रविद्या में पारदर्शी एक अतिथि उसके घर आया ।८। श्रद्धायुक्त मन से ब्राह्मण के पूछने पर उस अतिथि ने उससे अनेक देश, मनोहर नगर ।९। वन, नदी, पर्वत और संपूर्ण पवित्र स्थान कहे उससे वह

नदी वनानि शैलांश्च पुण्यान्यायतनानि च । स ततो विस्मयाविष्टः प्राह तं द्विजसत्तमम् ॥१०
अनेकदेशदर्शित्वेनातिश्रमसमन्वितः । त्वं नातिवृद्धो वयसा नातिवृत्तश्च यौवनात् ॥
कथमल्पेन कालेन पृथिवीमटसि द्विज ॥११

ब्राह्मण उवाच

मन्त्रौषधिप्रभावेण विप्राप्रतिहता गतिः । योजनानां सहस्रं हि दिनार्द्धेन व्रजाम्यहम् ॥१२

मार्कण्डेय उवाच

ततः स विप्रस्तं भूयः प्रत्युवाचेदमादरात् । श्रद्धधानो वचस्तस्य ब्राह्मणस्य विपश्चितः ॥१३
मम प्रसादं भगवन्कुरु मन्त्रप्रभावजम् । द्रष्टुमेतां मम महीमतीवेच्छा प्रवर्तते ॥१४
प्रादात्स ब्राह्मणश्चास्मै पादलेपमुदारधीः । अभिमन्त्रयामास दिशं तेनाख्यातां च यत्नतः ॥१५
तेनानुलिप्तपादोऽथ स द्विजो द्विजसत्तम । हिमवन्तमगाद्द्रष्टुं नानाप्रस्रवणान्वितम् ॥१६
सहस्रं योजनानां हि दिनार्धेन व्रजामि यत् । आयास्यामीति सञ्चिन्त्य तदर्द्धेनापरेण हि ॥१७
सम्प्राप्तो हिमवत्पृष्ठं नातिश्रान्ततनुर्द्विज । विचचार ततस्तत्र तुहिनाचलभूतले ॥१८
पादाक्रान्तेन तस्याथ तुहिनेन विलीयता । प्रक्षालितः पादलेपः परमौषधिसम्भवः ॥१९
ततो जडगतिः सोऽथ इतश्चेतश्च पर्यटन् । ददर्शातिमनोज्ञानि सानूनि हिमभूभृतः ॥२०
सिद्धगन्धर्वजुष्टानि किन्नराभिरतानि च । क्रीडाविहाररम्याणि देवादीनामितस्ततः ॥२१

अरुणास्पद नगर में वास करने वाला ब्राह्मण आश्चर्ययुक्त होकर कहने लगा ।१०। हे द्विजवर ! आपने अनेक देशों में भ्रमण किया है किन्तु आपके देह में उसकी कुछ भी थकावट विदित नहीं होती आप बूढ़े भी नहीं हैं और न अधिक तरुण ही हैं, आपकी आयु भी अधिक नहीं दीखती, फिर थोड़े ही काल में आपने किस प्रकार सब पृथ्वी में भ्रमण किया है ।११। आये हुए ब्राह्मण ने कहा हे विप्र ! मैं मंत्र औषधियों के प्रभाव से अप्रतिहतगति होकर आधे दिन में हजार योजन जा सकता हूँ ।१२

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर उस अरुणास्पदनिवासी ब्राह्मण ने विद्वान् अतिथि के वचन में श्रद्धायुक्त होकर आदरसहित फिर उससे यह वचन कहा ।१३। हे भगवन् । आप मेरे प्रति औषधीप्रदान रूप कृपा कीजिये । क्योंकि मेरी इस पृथ्वी को देखने के लिये अत्यन्त इच्छा हुई है ।१४। यह वचन सुनकर उस आये हुए उदारचित्त ब्राह्मण ने नगरवासी द्विजवर के पद में औषधी का लेप कर दिया और कही हुई दिशाओं का यत्नपूर्वक उपदेश भी दिया ।१५। हे मुनिसत्तम ! जब उस अतिथि ने पैर में लेप लगा दिया, तब वह ब्राह्मण "दिन के प्रथमार्द्ध में सहस्र योजन जाऊँगा और अपरार्द्ध दिन में वहाँ से आ भी सकता हूँ" इस प्रकार चिन्ता करके अनेक झरनों से युक्त हिमालय पर्वत को देखने के लिये गया ।१६-१७। द्विजवर सहज में ही हिमालय की पीठ पर पहुँचकर उस हिमाचल की भूमि में विचरण करने लगा ।१८। वहाँ विचरण करते-करते पैर में अधिक शीलता के लगने से उसका परमौषधीसम्भूत पाद लेप धुल गया ।१९। तब उस ब्राह्मण की जडगति हो गई अनन्तर वह इधर-उधर विचरण करते उस हिमालय पर्वत के मनोहर सानुप्रान्तभाग देखने लगा ।२०। कि वहाँ पर सिद्ध, गंधर्व, किन्नर विहार कर रहे हैं और उस पर्वत के किनारे देवताओं के क्रीडा और विहार के लिए अत्यन्त रमणीक स्थान बन रहे हैं ।२१।

दिव्याप्सरोगणशतैराकीर्णान्यवलोकयन् । नातृप्यत द्विजश्रेष्ठः प्रोद्भूतपुलको मुने ॥२२
क्वचित्प्रस्रवणाद्भ्रष्टजलपातमनोरमम् । प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्च निनादितम् ॥२३
दात्यूहकोयष्टिकाद्यैः क्वचिच्चातिमनोहरैः । पुंस्कोकिलकलालापैः श्रुतिहारिभिरन्वितम् ॥२४
प्रफुल्लतरुगन्धेन वासितानिलवीजितम् । मुदा युक्तः स ददृशे हिमवन्तं महागिरिम् ॥२५
दृष्ट्वा चैतं द्विजसुतो हिमवन्तं महाचलम् । श्वो द्रक्ष्यामीति संचिन्त्य मतिं चक्रे गृहं प्रति ॥२६
विभ्रष्टपादलेपोऽथ चिरेण जडितक्रमः । चिन्तयामास किमिदं मयाऽज्ञानादनुष्ठितम् ॥२७
यदि प्रलेपो नष्टो मे विलीनो हिमवारिणा । शैलोऽतिदुर्गमश्चायं दूरं चाहमिहागतः ॥२८
प्रयास्यामि क्रियाहानिमग्निशुश्रूषणादिकम् । कथमत्र करिष्यामि संकटं महदागतम् ॥२९
इदम्परमिदं रम्यमित्यस्मिन्वरपर्वते । सक्तदृष्टिरहं तृप्तिं न यास्येऽब्दशतैरपि ॥३०
किन्नराणां कलालापाः समन्ताच्छ्रोत्रहारिणः । प्रफुल्लतरुगन्धांश्च घ्राणमत्यन्तमृच्छति ॥३१
सुखस्पर्शस्तथा वायुः फलानि रसवन्ति च । हरन्ति प्रसभं चेतो मनोज्ञानि सरांसि च ॥३२
एवं गते तु पश्येयं यदि कञ्चित्तपोनिधिम् । स ममोपदिशेन्मार्गं गमनाय गृहं प्रति ॥३३

हे मुने ! वह उत्तम ब्राह्मण उस स्थान को सैकड़ों अप्सराओं से युक्त देखने लगा, कि जिसके देखने से उसका देह पुलकित हुआ और वह अपने मन को किसी प्रकार तृप्त नहीं कर सका ।२२। यह ब्राह्मण प्रसन्नता से देखने लगा कि हिमालय पर्वत किसी स्थान में पत्थरों से छूटी हुई जलराशि के गिरने से शोभा पाता है, कहीं नाचनेवाले मोरों के केकाराव से शब्दायमान हो रहा है । और कहीं अन्यान्य पक्षी मनभाविनी सुहावनी बोलियाँ बोल रहे हैं ।२३। कहीं अत्यन्त मनोहर दात्यूह, पपीहा, कोयष्टि, टिटीहरी इत्यादि पक्षियों से व्याप्त हो रहा है, कहीं पुंस्कोकिल के समान मनोहर मधुरालाप से प्रतिध्वनित हो रहा है ।२४। और कहीं वृक्षों के खिले हुए पुष्पों की गंध से सुवासित वायु द्वारा वीजित हो रहा है । वह ब्राह्मण इस प्रकार हिमवन्त नामक महागिरि की शोभा को देखकर अत्यन्त मुदित हुआ ।२५। इसके बाद ब्राह्मणकुमार हिमवन्तनामक महाचल को देखकर अपने मन में विचार करने लगा कि "फिर कल प्रातः समय आकर देखूँगा" यह बात अपने चित्त में स्थिर करके घर चलने की इच्छा की ।२६। वहाँ विलम्ब होने के कारण पादलेप धुल जाने से जडगति हो ब्राह्मण चिन्ता करने लगा कि मैंने अज्ञान के वश होकर क्या कार्य किया ।२७। कि, जब मेरा चरणलेप इस शीतल जल से नष्ट हो गया है, तब यहाँ से जाना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि यह पर्वत महादुर्गम है और मेरा घर बहुत दूर है ।२८। अब मुझको महासंकट उपस्थित हुआ है, यहाँ अग्निशुश्रूषणादि कार्य किस प्रकार करूँगा अत एव नित्यक्रिया भी सब नष्ट हो गई ।२९। "यह भी रमणीय, यह भी रमणीय" इस प्रकार करके इस श्रेष्ठ पर्वत में आसक्तदृष्टि हो मैं सौ वर्ष में भी तृप्त नहीं हो सकूँगा ।३०। अहाहा चारों ओर से किन्नरों का कानों को सुखदायक मधुर आलाप सुनाई दे रहा है । कुसुमित वृक्षों से सुगन्धि प्राप्त कर नासिका तृप्त हुई है ।३१। यहाँ का वायु सुखस्पर्श, समस्त फल, सुरस मनोहर सरोवर से मानो बलपूर्वक मेरा चित्त आकर्षित होता है ।३२। अब इस प्रकार कुछ काल बीतने पर यदि किसी तपोधन को देखूँ, तो उनसे घर जाने का उपदेश ग्रहण करूँ ।३३

मार्कण्डेय उवाच

स एवं चिन्तयन्विप्रो बभ्राम च हिमाचले । भ्रष्टपादौषधिबलो वैक्लवं परमं गतः ॥३४
तं ददर्श भ्रमन्तं च मुनिश्रेष्ठं वरूथिनी । वराप्सरा महाभागा मौलेया रूपशालिनी ॥३५
तस्मिन्दृष्टे ततः साभूद्द्विजवर्ये वरूथिनी । मदनाकृष्टहृदया सानुरागा हि तत्क्षणात् ॥३६
चिन्तयामास को न्वेष रमणीयतमाकृतिः । सफलं मे भवेज्जन्म यदि मां नावमन्यते ॥३७
अहोऽस्य रूपमाधुर्यमहोऽस्य ललिता गतिः । अहो गम्भीरता दृष्टेः कुतोऽस्य सदृशो भुवि ॥३८
दृष्टा देवास्तथा दैत्याः सिद्धगन्धर्वपन्नगाः । कथमेकोऽपि नास्त्यस्य तुल्यरूपो महात्मनः ॥३९
यथाहमस्मिन्मय्येष सानुरागस्तथा यदि । भवेदत्र मया कार्यस्तत्कृतः पुण्यसञ्चयः ॥४०
यद्येष मयि सुस्निग्धां दृष्टिमद्य निपातयेत् । कृतपुण्या न मत्तोऽन्या त्रैलोक्ये वनिता ततः ॥४१

मार्कण्डेय उवाच

एवं सञ्चिन्तयन्ती सा दिव्ययोषित्स्मरातुरा । आत्मानं दर्शयामास कमनीयतराकृतिम् ॥४२
तां तु दृष्ट्वा द्विजसुतश्चारुरूपां वरूथिनीम् । सोपचारं समागम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥४३
का त्वं कमलगर्भाभे कस्य किं वानुतिष्ठसि । ब्राह्मणोऽहमिहायातो नगरादरुणास्पदात् ॥४४
पादलेपोऽत्र मे ध्वस्तो विलीनो हिमवारिणा । यस्यानुभावादत्राहमागतो मदिरेक्षणे ॥४५

मार्कण्डेय जी बोले—पैर में लगी हुई औषधि की शक्ति के नष्ट हो जाने से परम दुःखित हो वह द्विजवर इस प्रकार चिन्ता करता हुआ हिमालय में विचरण करने लगा ।३४। उस काल वरूथिनीनामक मौलेया रूपशालिनी किसी एक महाभाग अप्सराश्रेष्ठ ने उस उत्तममुनि को विचरण करते देखा ।३५। द्विजवर को देखते ही कामबाणों से जर्जरितहृदय हो वह बरूथिनी तत्काल उसमें अनुरागवती हुई ।३६। और विचार करने लगी कि यह मनोहर आकृति कौन पुरुष है, यदि यह मेरा अनादर न करे तो मेरा जन्म सफल हो ।३७। अहो ! इसकी क्या अपूर्व रूपमाधुरी है, क्या मनोहर गति है, दृष्टि की गंभीरता में क्या चमत्कार है, भूमण्डल में इसके समान पुरुष कौन है ? ।३८। देव, दैत्य, सिद्ध, गंधर्व और पन्नग, यह समस्त ही देखे हैं, किन्तु उनमें इन महात्मा के समान रूपवान् किसी को भी नहीं देखा ।३९। मैं इनके प्रति जिस प्रकार प्रीतिमती हुई हूँ, यह भी यदि मुझमें उसी प्रकार अनुरक्त हो, तो मेरे पूर्वजन्मकृत पुण्यसंचय का फल प्राप्त हुआ समझना चाहिए ।४०। यदि यह मुझको स्निग्ध दृष्टि से देखें, तो तीनों लोक में मेरे समान स्त्री दूसरी कौन है ? ।४१

मार्कण्डेय जी बोले—दिव्याङ्गना वरूथिनी ने कामातुर हो इस प्रकार चिन्ता करते-करते अपने मनोहर संपूर्ण अङ्गप्रत्यङ्ग इस ब्राह्मण को दिखाये ।४२। ब्राह्मण कुमार उस शोभायमान रूपवती वरूथिनी को देख, सम्यक् रीति से पाद्यादि उपचार ले, उसके निकट आकर कहने लगा ।४३। हे सुन्दरी, तुम्हारा वर्णन कमल के गर्भ के समान मनोहर है, तुम कौन हो ? किसकी भार्या हो ? यहाँ क्या कार्य करती हो ? मैं ब्राह्मण अरुणास्पद नगर से यहाँ आ गया हूँ ।४४। हे मदिरेक्षणे ! मैं जिसके प्रभाव से यहाँ आया हूँ वह मेरा औषधी का पादलेप शीतलजल से नष्ट हो गया है और इस (बर्फ समूह) में लीन हो गया है ।४५

वरूथिन्युवाच

मौलेयाहं महाभागा नाम्ना ख्याता वरूथिनी । विचरामि सदैवात्र रमणीये महाचले ।।४६
साहं त्वद्दर्शनाद्विप्र कामवैक्लव्यतां गता । प्रशाधि यन्मया कार्यं त्वदधीनास्मि सांप्रतम् ।।४७

ब्राह्मण उवाच

येनोपायेन गच्छेयं निजगेहं शुचिस्मिते । तन्ममाचक्ष्व कल्याणि हानिर्नोऽखिलकर्मणाम् ।।४८
नित्यनैमित्तिकानां तु महाहानिर्द्विजन्मनः । भवत्यतस्त्वं हे भद्रे मामुद्धर हिमालयात् ।।४९
प्रशस्यते न प्रवासो ब्राह्मणानां कदाचन । अपराध्यति मे भीरु देशदर्शनकौतुकम् ।।५०
सतो गृहे द्विजग्र्यस्य निष्पत्तिः सर्वकर्मणाम् । नित्यनैमित्तिकानां च हानिरेवं प्रसासिनः ।।५१
सा त्वं किं बहुनोक्तेन तथा कुरु यशस्विनि । यथा नास्तङ्गते सूर्ये पश्यामि निजमालयम् ।।५२

वरूथिन्युवाच

मैवं ब्रूहि महाभाग मा भूत्स दिवसो मम । मां परित्यज्य यत्र त्वं निजगेहमुपैष्यसि ।।५३
अहो रम्यतरः स्वर्गो न यतो द्विजनन्दन । अतो वयं परित्यज्य तिष्ठामोऽत्र सुरालयम् ।।५४
सा त्वं सह मया कान्त कान्तेऽत्र तुहिनाचले । रममाणो न मर्त्यानां वान्धवानां स्मरिष्यसि ।।५५
स्रजो वस्त्राण्यलङ्कारान्भक्ष्यभोज्यानुलेपनम् । दास्याम्यत्र तथाहं ते स्मरेण वशगा हृता ।।५६
वीणावेणुस्वनं गीतं किन्नराणां मनोरमम् । अङ्गाह्लादकरो वायुरुष्णान्नमुदकं शुचि ।।५७

वरूथिनी बोली——हे महाभाग ! मैं वरूथिनी नामक विख्यात अप्सरा सदा ही इस रमणीय पर्वत पर विचरण करती रहती हूँ ।४६। हे विप्रवर ! अब तुमको देखकर मैं काम के वशीभूत हो निन्दनीय होती हूँ, आज्ञा कीजिये, मैं क्या करूँ ? क्योंकि अब मैं आपके ही अधीन हुई हूँ ।४७

ब्राह्मण ने कहा—हे शुचिस्मिते ! मैं जिस उपाय से अपने घर जा सकूँ वही मुझसे कह, हे कल्याणी ! परदेश के कारण यहाँ मेरे नित्य नैमित्तिक सम्पूर्ण कर्मों की हानि होती है ।४८। ब्राह्मण के पक्ष में नित्य नैमित्तिक कर्मों की हानि महा अनिष्टकारक है, अत एव हे भद्रे ! इस हिमालय से मुझको निकालो ।४९। ब्राह्मण का परदेश में रहना कभी प्रशंसनीय नहीं है, हे भीरु ! मैंने कोई अपराध नहीं किया है देशों को देखने के कौतूहल से परदेशी हुआ हूँ ।५०। घर में वास करने वाले ब्राह्मण के नित्यनैमित्तिक संपूर्ण कर्म संपन्न होते हैं, किन्तु परदेशी होने से उन सबकी हानि होती है ।५१। हे यशस्विनी ! बहुत कहने का प्रयोजन क्या है, इस समय जिस प्रकार सूर्यास्त के पहले ही अपने घर को देख सकूँ तू वही कर ।५२

वरूथिनी बोली—हे महाभाग ! जिस दिन आप मुझको छोड़कर अपने घर जाँय, वह दिन मेरे लिये उपस्थित न हो ।५३। हे द्विजनन्दन ! स्वर्ग भी इस स्थान की अपेक्षा मनोहर नहीं है, अत एव मैं स्वर्ग को छोड़कर इस स्थान में वास करूँगी ।५४। हे कान्त ! आप इस रमणीय हिमाचल में मेरे संग विहार करते हुए बांधवों को भी स्मरण नहीं करेंगे ।५५। यहाँ मैं तुमको माल्य, वस्त्र, अलंकार, भक्ष्य, भोज्य और अनुलेपन प्रदान करूँगी, क्योंकि काम से हरी जाकर मैं तुम्हारे वशीभूत हुई हूँ ।५६। हे महाभाग ! इस स्थान में वास करने से वीणा, वेणु का शब्द, किन्नरों का मनोहर संगीत, आह्लादजनक वायु, उष्ण

मनोभिलषिता शय्या सुगन्धमनुलेपनम् । इहासतो महाभाग गृहे किं ते निजेऽधिकम् ॥५८
इहासतो नैव जरा कदाचित्ते भविष्यति । त्रिदशानामियं भूमिर्यौवनोपचयप्रदा ॥५९
इत्युक्त्वा सानुरागा सा सहसा कमलेक्षणा । आलिलिङ्ग प्रसीदेति वदन्ती कलमुन्मनाः ॥६०

ब्राह्मण उवाच

मा मां स्प्राक्षीर्व्रजान्यत्र दुष्टे यः सदृशस्तव । मयान्यथा याचिता त्वमन्यथैवाभ्युपैषि माम् ॥६१
सायंप्रातर्हुतं हव्यं लोकान्यच्छति शाश्वतान् । त्रैलोक्यमेतदखिलं मूढे हव्ये प्रतिष्ठितम् ॥६२
तमुपायं समाचक्ष्व येन यामि स्वमालयम् ॥

वरूथिन्युवाच

किं तेनाहं प्रिया विप्र रमणीयो न किं गिरिः । गन्धर्वान्किन्नरादींश्च त्यक्त्वाभीष्टो हि कस्तव ॥६३
निजमालयमप्यस्माद् भवान्यास्यत्यसंशयम् । स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान्सुदुर्लभान् ॥६४

ब्राह्मण उवाच

अभीष्टा गार्हपत्याद्याः सततं ते त्रयोऽग्नयः । रम्यं ममाग्निशरणं वेदी विष्टरिणी प्रिया ॥६५

वरूथिन्युवाच

अष्टावात्मगुणा ये हि तेषामादौ दया द्विज । तां करोषि कथं न त्वं मयि सद्धर्मपालक ॥६६

अन्न, पवित्र जल ।५७। अभिलषित शय्या, सुगंधित अनुलेपन, यह सब तुमको सुलभ होंगे, इस सबकी अपेक्षा तुम्हारे घर में अधिक क्या है ? ।५८। इस स्थान में वास करने से तुम कभी जरा-ग्रसित अर्थात् बूढ़े नहीं होगे, क्योंकि यह देवभूमि यौवन की वृद्धि करने वाली है ।५९। यह कहकर अनुरागवती उस कमल के समान नेत्रोंवाली वरूथिनी ने अत्यन्त व्याकुल हो मधुर स्वर से "प्रसन्न होओ" यह बात कहते-कहते उसको सहसा आलिंगन किया ।६०

ब्राह्मण ने कहा—रे दुष्टे ! मुझको स्पर्श मत कर, जो तेरे योग्य हो, उसके ही समीप जा । मैंने तुझसे जो प्रार्थना की, तू उसके विपरीत विचार कर मुझसे मिलने की चेष्टा करती है ।६१। प्रातःकाल और सायंकाल में होम करने से नित्य संपूर्ण शाश्वत लोक प्राप्त होते हैं । रे मूढे ! यह समस्त त्रैलोक्य होमद्वारा ही प्रतिष्ठित है ।६२। अत एव उसका निर्वाह करने के लिए जिस उपाय से मैं अपने घर पहुँच सकूँ, उसको शीघ्र कहो ।

बरूथिनी बोली—हे विप्र ! मुझको देखकर क्यों तुम्हें प्रसन्नता नहीं होती यह हिमालय क्या रमणीय नहीं है ? गंधर्व किन्नरादि के अतिरिक्त और किस पुरुष की आप इच्छा करते हैं ? ६३। आप निःसन्देह यहाँ से अपने घर जा सकेंगे, किन्तु इस समय मेरे संग यहाँ कुछ काल तक दुर्लभ सुखभोग कीजिये ।६४

ब्राह्मण ने कहा—गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि यह तीन अग्नि ही मेरी अभीष्ट हैं, अग्निगृह ही रमणीयस्थान और विष्टरिणी वेदी ही मुझको प्रसन्न करती है ।६५

बरूथिनी बोली—हे द्विज ! आठ प्रकार के आत्मगुणों में दया ही प्रधान है, फिर आप सद्धर्मपालक

त्वद्विमुक्ता न जीवामि तथा प्रीतिमती त्वयि । नैतद्वदाम्यहं मिथ्या प्रसीद कुलनन्दन ।।६७

ब्राह्मण उवाच

यदि प्रीतिमती सत्यं नोपचाराद्ब्रवीषि माम् । तदुपायं समाचक्ष्व येन यामि स्वमालयम् ।।६८

वरूथिन्युवाच

निजमालयमप्यस्माद्भवान्यास्यत्यसंशयम् । स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान्सुदुर्लभान् ।।६९

ब्राह्मण उवाच

न भोगार्थाय विप्राणां शस्यते हि वरूथिनी । इह क्लेशाय विप्राणां चेष्टा प्रेत्य फलप्रदा ।।७०

वरूथिन्युवाच

सन्त्राणं म्रियमाणाया मम कृत्वा परत्र ते । पुण्यस्यैव फलं भावि भोगाश्चान्यत्र जन्मनि ।७१
एवं च द्वयमप्यत्र तवोपचयकारणम् । प्रत्याख्यानादहं मृत्युं त्वं च पापमवाप्स्यसि ।।७२

ब्राह्मण उवाच

परस्त्रियं नाभिलषेदित्यूचुगुर्रवो मम । तेन त्वां नाभिवाञ्छामि कामं विलप शुष्य वा ।।७३

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा स महाभागः स्पृष्ट्वापः प्रयतः शुचिः । प्राहेदं प्रणिपत्याग्निं गार्हपत्यमुपांशुना ।।७४

होकर भी प्रीति दया क्यों मेरे प्रति नहीं करते ।६६। मैं आपके प्रति जिस प्रकार प्रीतिमती अर्थात् अनुरागिणी हुई हूँ, इससे आपके बिना जीवित नहीं रह सकती, मैं मिथ्या नहीं कहती हूँ, आप अपने कुल को आनन्द देने वाले हैं अब आप मुझ पर प्रसन्न होइये ।६७

ब्राह्मण ने कहा—यदि तू मेरे प्रति सत्य ही प्रीतिमती हुई है, और मुझसे जो कहा, वह यदि मिथ्या वचन नहीं है, तो मैं जिस उपाय से अपने घर पहुँच सकूँ, वह मुझसे कहो ।६८

बरूथिनी बोली—आप निःसन्देह इस स्थान से अपने घर जा सकते हैं, किन्तु अब मेरे संग अल्पकाल तक दुर्लभसुख भोगिये ।६९

ब्राह्मण ने कहा—हे बरूथिनी ! शास्त्रों की आज्ञा ब्राह्मण के लिये भोग करने को नहीं है क्योंकि चेष्टा ब्राह्मण को इस लोक में क्लेश और पर लोक में विपरीत फल प्रदान करती है ।७०

बरूथिनी बोली—मैं मृतप्राय हुई हूँ मेरी रक्षा करने से आपको परलोक में उसी पुण्य का फल प्राप्त होगा। और दूसरे जन्म में आप उसी के द्वारा अनेक भोग प्राप्त करेंगे ।७१। परलोक में जन्मान्तर में भोग, इन दोनों प्रकार के पुण्यों का फल ही आपको लाभदायक है, किन्तु मुझको निराश करने से मेरी मृत्यु होगी और आप भी पाप के भागी होंगे ।७२

ब्राह्मण ने कहा—मेरे गुरु ने कहा है, परस्त्री में इच्छा न करना अत एव तुम विलाप करो अथवा यौवन त्याग करो, मैं तेरी इच्छा नहीं करता ।७३

मार्कण्डेय जी बोले—बरूथिनी से इस प्रकार कहकर वह नियमवान् महाभाग ब्राह्मण आचमन के

भगवान्गार्हपत्याग्ने योनिस्त्वं सर्वकर्मणाम् । त्वत्त आहवनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्च नान्यतः ।।७५
युष्मदाप्यायनाद्देवा वृष्टिसस्यादिहेतवः । भवन्ति सस्यादखिलं जगद् भवति नान्यतः ।।७६
एवं त्वत्तो भवत्येतद्येन सत्येन वै जगत् । तथाहमद्य स्वं गेहं पश्येयं सति भास्करे ।।७७
यथा वै वैदिकं कर्म स्वकाले नोज्झितं मया । तेन सत्येन पश्येयं गृहस्थोऽथ दिवाकरम् ।।७८
यथा च न परद्रव्ये परदारे च मे मतिः । कदाचित्साभिलाषाभूत्तथैतत्सिद्धिमेतु मे ।।७९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे
ब्राह्मणवाक्यं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५८।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

ब्राह्मणवाक्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं तु वदतस्तस्य द्विजपुत्रस्य पावकः । गार्हपत्यः शरीरे तु सन्निधानमथाकरोत् ।।१
तेन चाधिष्ठितः सोऽथ प्रभामण्डलमध्यगः । व्यदीपयत तं देशं मूर्तिमानिव हव्यराट् ।।२
तस्यास्तु सुतरां तत्र तादृग्रूपे द्विजन्मनि । अनुरागोऽभवद्विप्रं पश्यन्त्या देवयोषितः ।।३

अन्त में शुद्ध हो गार्हपत्य अग्नि को प्रणामपूर्वक उपांशु जप द्वारा यह कहने लगा ।७४। हे भगवन् ! गार्हपत्य अग्ने ! तुम्हीं सब कर्मों के बीजस्वरूप हो । आहवनीय और दक्षिण यह दोनों अग्नि तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं अन्य कोई उनका उत्पन्न करने वाला नहीं है ।७५। तुम्हारे प्रसन्न होने पर ही देवता वृष्टि और सस्य इत्यादि प्रदान करते हैं, तथा सस्य (धान्य) से ही जगत् प्रतिष्ठित है, अन्य किसी प्रकार नहीं रह सकता ।७६। जिस सत्य द्वारा यह जगत् तुममें इसी प्रकार प्रतिष्ठित है, मैं उसी सत्यद्वारा जिससे अभी सूर्य के विद्यमान रहते-रहते अपने घर को देख सकूँ ।७७। जिस सत्य से सम्पूर्ण वैदिक कर्म यथोचित काल में संपादित होते हैं, मैं उसी सत्य से गृहवासी होकर अभी दिवाकर को देखूँ ।७८। जिस सत्य से कभी मेरी मति परद्रव्य अथवा पराई स्त्री में अभिलाषिणी नहीं हुई है, उसी सत्य से मेरी वह मति अब इस विषय में सिद्धि लाभ करे ।७९

मार्कण्डेयपुराण में ब्राह्मणवाक्य नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ।५८।

अध्याय ५९

ब्राह्मणवाक्य का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—इस प्रकार कहते-कहते द्विजपुत्र के शरीर में गार्हपत्य अग्नि ने आकर अधिष्ठान किया ।१। उससे प्रभामण्डलमध्यवर्ती हो वह ब्राह्मण मूर्त्तिमान् अग्नि के समान स्वयं उस देश को प्रकाशित करने लगा ।२। हे विप्र ! जब बरूथिनी नामक अप्सरा ने इस प्रकार उस ब्राह्मणकुमार का रूप देखा, तब अत्यन्त अनुराग से और भी अधिक मोहित हो गई ।३। जब इस द्विजनन्दन में अग्नि का

ततः सोऽधिष्ठितस्तेन हव्यवाहेन तत्क्षणात् । यथापूर्वं तथा गन्तुं प्रवृत्तो द्विजनन्दनः ॥४
जगाम च त्वरायुक्तस्तया सास्रं निरीक्षितः । आदृष्टिपातात्तन्वङ्ग्या निश्वासोत्कम्पिकन्धरम् ॥५
ततः क्षणेनैव तदा निजगेहमवाप्य सः । यथा प्रोक्तं द्विजश्रेष्ठश्चकार सकलाः क्रियाः ॥६
अथ सा चारुसर्वांगी तत्रासक्तात्ममानसा । निश्वासपरमा निन्ये दिनशेषं तथा निशाम् ॥७
निश्वसन्त्यनवद्याङ्गी हाहेति रुदी मुहुः । मन्दभाग्येति चात्मानं निनिन्द मदिरेक्षणा ॥८
न विहारे न चाहारे रमणीये न वा वने । न कन्दरेषु रम्येषु सा बबन्ध तदा रतिम् ॥९
चकार रममाणे च चक्रवाकयुगे स्पृहाम् । मुक्ता तेन वरारोहा निनिन्द निजयौवनम् ॥१०
क्वागताहमिमं शैलं दुष्टदैवबलात्कृता । क्व च प्राप्तः स मे दृष्टेर्गोचरं तादृशो नरः ॥११
यदद्य स महाभागो न मे संगमुपैष्यति । तत्कामाग्निरवश्यं मां क्षपयिष्यति दुःसह ॥१२
रमणीयमभूद्यत्तत्पुंस्कोकिलनिनादितम् । तेन हीनं तदेवैतद्दहतीवाद्य मामलम् ॥१३

मार्कण्डेय उवाच

इत्थं सा मदनाविष्टा जगाम मुनिसत्तमम् । ववृधे च तदा रागस्तस्यास्तस्मिन्प्रतिक्षणम् ॥१४
कलिर्नाम्ना तु गन्धर्वः सानुरागो निराकृतः । तया पूर्वमभूत्सोऽथ तदवस्थां ददर्श ताम् ॥१५

अधिष्ठान अर्थात् प्रवेश हुआ, तो तत्काल ही वह पूर्ववत् शक्तिमान् हो गमन करने में प्रवृत्त हुआ ।४। तन्वङ्गी बरूथिनी खड़ी देखती रही और यह विप्र कुमार अत्यन्त शीघ्रतायुक्त गति से चल दिया, जब वह इसको दिखाई नहीं दिया, तब यह लम्बे-लम्बे श्वास लेती हुई कम्पायमान होने लगी ।५। तदनन्तर वह उत्तम ब्राह्मण क्षणकाल में ही अपने घर पहुँचा और पूर्वोक्त नित्य नैमित्तिक संपूर्ण क्रियाकलाप का अनुष्ठान करने लगा ।६। फिर उस सर्वाङ्गमनोहर बरूथिनी उक्त द्विजवर के प्रति आसक्तिचित्त हो दीर्घश्वास छोड़ते-छोड़ते उस दिन का शेषभाग और रात्रि बिताई ।७। मदिरेक्षणा सर्वाङ्गसुन्दरी वह अप्सरा हाहाकार शब्द से रोदन और बार-बार दीर्घ श्वास छोड़ते-छोड़ते अपने आपको अत्यन्त हतभाग्य जान निन्दा करने लगी ।८। क्या आहार, क्या विहार, क्या रमणीय वन, क्या मनोहर पर्वतों की कन्दरा, किसी से भी वह तोष प्राप्त नहीं कर सकी ।९। दो चक्रवाकों को रमण करता हुआ देखकर उसको रमणविषय में स्पृहा उत्पन्न हुई, किन्तु वह द्विजवर से त्यागी गई थी, इस लिये अपने यौवन की निन्दा करने लगी ।१०। दुष्ट दैव के वशीभूत होकर मैं जो इस पर्वत में आई, यह क्या कभी संभव था और वह सर्वाङ्गसुन्दर पुरुषश्रेष्ठ जो मुझको दिखाई दिया, उसको मैं क्या जानती थी ? ।११। इस समय यदि वह महाभाग मेरे सहित संगत न होंगे, तो मैं दुःसह कामाग्नि से भस्म होकर अवश्य जीवन परित्याग करूँगी ।१२। पहले जो मेरा स्वररंजन था, इस समय द्विजवर के विरह में वह कोकिल का शब्द मानो अग्नि के समान मुझको दग्ध करता है ।१३

मार्कण्डेय जी बोले—बरूथिनी ने इस प्रकार कामासक्त हो सहसा मुनिसत्तम को मन से देखा, तब उनमें प्रतिक्षण उसका अनुराग बढ़ने लगा ।१४। पहले इस अप्सरा ने जो कि इसके प्रति अत्यन्त अनुरक्त था, उस कलिनामक गंधर्व का निरादर कर दिया था, वह इस समय इसकी ऐसी अवस्था देखकर पहले कलि नामक गंधर्व जो इस अप्सरा में अनुरक्त था लेकिन अनादृत हुआ था, उसकी यह अवस्था देखकर

स चिन्तयामास तदा किं न्वेषा गजगामिनी । निश्वासपवनम्लाना गिरावत्र वरूथिनी ॥१६
मुनिशापक्षता किं नु केनचित्किं विमानिता । बाष्पवारिपरिक्लिन्नमियं धत्ते यतो मुखम् ॥१७
ततः स दध्यौ सुचिरं तमर्थं कौतुकात्कलिः । ज्ञातवांश्च प्रभावेण समाधेः स यथातथम् ॥१८
पुनः स चिन्तयामास तद्विज्ञाय मुनेः कलिः । ममोपपादितं साधु भाग्यैरेतत्पुरा कृतैः ॥१९
मयैषा सानुरागेण बहुशः प्रार्थिता सती । निराकृतवती सेयमद्य प्राप्या भविष्यति ॥२०
मानुषे सानुरागेयं तत्र तद्रूपधारिणि । रंस्यते मय्यसन्दिग्धं किं कालेन करोमि तत् ॥२१

मार्कण्डेय उवाच

आत्मप्रभावेण ततस्तस्य रूपं द्विजन्मनः । कृत्वा चचार यत्रास्ते निषण्णा सा वरूथिनी ॥२२
सा तं दृष्ट्वा वरारोहा किञ्चिदुत्फुल्ललोचना । समेत्य प्राह तन्वङ्गी प्रसीदेति पुनः पुनः ॥२३
त्वया त्यक्ता न सन्देहः परित्यक्ष्यामि जीवितम् । तत्राधर्मः कष्टतरः क्रियालोपो भविष्यति ॥२४
मया समेत्य रम्येऽस्मिन्महात्मन्वनकन्दरे । मत्परित्राणजं धर्ममवश्यं प्रतिपत्स्यसे ॥२५
आयुषः सावशेषं मे नूनमस्ति महामते । निवृत्तस्तेन नूनं त्वं हृदयाह्लादकारकः ॥२६

कलिरुवाच

किं करोमि क्रियाहानिर्भवत्यत्र सतो मम । त्वमप्येवंविधं वाक्यं ब्रवीषि तनुमध्यमे ॥२७

।१५। चिन्ता करने लगा "इस पर्वत में यह जो गजगामिनी प्रतिक्षण निश्वासपवनघात से परिम्लान होती है, यह क्या वही बरूथिनी है।१६। क्या वह मुनि के शाप से ग्रसित हुई है या किसी ने इसका अपमान किया है। क्योंकि इसके मुख पर आसुओं की बूँदें दिखाई देती हैं।१७। अनन्तर कलि ने कौतूहल के वशीभूत हो, बहुत काल तक उस विषय की चिन्ता कर ध्यान के द्वारा संपूर्ण यथार्थ वृत्तान्त जान लिया।१८। मुनिघटित वह सब वृत्तान्त जानकर फिर चिन्ता करने लगा "मेरे पहले किये पुण्य के फल से मेरा यह अभिलषित विषय सिद्ध हुआ"।१९। मेरे अनुरक्त होकर बार बार प्रार्थना करने पर भी जिसने मेरा निरादर किया था, वही बरूथिनी अब मुझको सुलभ होगी अर्थात् प्राप्त होगी।२०। यह अप्सरा मनुष्य के प्रति अनुरागवती हुई है, इस समय मैं यदि मुनि का रूप धारण करूँ तो मेरे प्रति भी निःसन्देह प्रीतिमती होगी। अब विलम्ब नहीं करना चाहिए।२१

मार्कण्डेय जी बोले—इसके बाद वह कलि आत्मप्रभाव से उस ब्राह्मण का रूप धारण कर जिस स्थान में बरूथिनी बैठी थी, वहाँ विचरण करने लगा।२२। कृशाङ्गी वरारोहा उस मुनिवेशधारी कलि को देख मुनि जान, आह्लाद से कुछेक प्रफुल्लनेत्र हो उसके समीप जाकर "मुझ पर प्रसन्न होओ" यह बात बार बार कहने लगी।२३। और यह भी कहा कि, यदि आप मुझको छोड़ देंगे तो मैं जीवन परित्याग करूँगी तथा मेरे जीवन त्याग करने से आपको अधर्म होगा और उस अधर्म के कारण क्रिया भी अवश्य लोप होगी।२४। यदि इस महाकन्दरायुक्त हिमालय पर्वत की मनोहर गुहा में मेरे संग रमण करके मेरी रक्षा करोगे, तो उस रक्षा करने का धर्म भी अवश्य आपको प्राप्त होगा।२५। हे महामते ! अब तक मेरी अवस्था शेष नहीं हुई है, इसी कारण आपने निवृत्त होकर मेरे हृदय में आनन्द अनुभव कराया।२६

कलि ने कहा—हे कृशोदरि ! मैं क्या करूँ ? इस स्थान में रहने से मेरी क्रिया का लोप तो होगा ही

तदहं सङ्कटं प्राप्तो यद्ब्रवीमि करोषि तत् । यदि स्यात्सङ्गमो मेऽद्य भवत्या सह नान्यथा ॥२८

वरूथिन्युवाच

प्रसीद यद्ब्रवीषि त्वं तत्करोमि न ते मृषा । ब्रवीम्येतदनाशङ्कं यत्तत्कार्यं मयाधुना ॥२९

कलिरुवाच

नाद्य सम्भोगसमये द्रष्टव्योऽहं त्वया वने । निमीलिताक्ष्याः संसर्गस्तव सुभ्रु मया सह ॥३०

वरूथिन्युवाच

एवं भवतु भद्रं ते यथेच्छसि तथास्तु तत् । मया सर्वप्रकारं हि वशे स्थेयं तवाधुना ॥३१

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ।५९।

अथ षष्टितमोऽध्यायः (५३)

ब्राह्मणवाक्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः सह तया सोऽथ रराम गिरिसानुषु । फुल्लकाननहृद्येषु मनोज्ञेषु सरःसु च ॥१

कन्दरेषु च रम्येषु निम्नगा पुलिनेषु चं । मनोज्ञेषु तथान्येषु देशेषु मुदितो द्विज ॥२

वह्निनाधिष्ठितस्यासीद्यद्रूपं तस्य तेजसा । अचिन्तयद्भोगकाले निमीलितविलोचना ॥३

और तुम भी इस प्रकार के अनुरोध वचन कहती हो ।२७। अत एव संकट को प्राप्त होकर मुझको तुम्हारी बातों में सम्मत होना पड़ा । किन्तु मैं जो कहता हूँ, वह यदि स्वीकार करो तो तुम्हारे संग मेरा मिलन हो अन्यथा नहीं ।२८

बरूथिनी बोली—आप प्रसन्न होइये, आप जो कहेंगे, मैं वही करूँगी, इसमें संदेह न कीजिये में मिथ्या नहीं कहती हूँ आपकी कही बात मैं अभी संपादन करूँगी ।२९

कलि ने कहा—हे सुभ्रु ! तो यह बात अंगीकार करो कि, "वन में विहार के समय तुम मुझको न देखो, तुमको मेरे संग नेत्र मूँदकर संसर्ग करना होगा' ।३०

बरूथिनी बोली—"यही हो" आपकी जिस प्रकार इच्छा है, वह उसी प्रकार संपन्न होगी । मैं इस समय स्वीकार करती हूँ कि सब प्रकार से आपके वशीभूत हुई । आपका मंगल हो ।३१

श्रीमार्कण्डेयपुराण में स्वारोचिष मन्वन्तर नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ।५९।

अध्याय ६०

ब्राह्मणवाक्य का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—कलि बरूथिनी के संग पर्वत के कंगूरे, मनोहर कुसुमित वनों, मनोज्ञ सरोवरों ।१। रमणीय गुहा, नदी-पुलिन और अन्यान्य संपूर्ण देशों में प्रसन्नचित्त से रमण करने लगा ।२। अग्नि से अधिष्ठित होने के कारण उस ब्राह्मण तेजस्वी का जो रूप हो गया था वरूथिनी संभोगकाल में नेत्र मूँदकर

ततः कालेन सा गर्भमवाप मुनिसत्तम । गन्धर्ववीर्यतो रूपं चिन्तनाच्च द्विजन्मनः ।।४
तां गर्भधारिणीं सोऽथ सान्त्वयित्वा वरूथिनीम् । विप्ररूपधरो यातस्तया प्रीत्या विसर्जितः ।।५
जज्ञे स बालो द्युतिमाञ्ज्वलन्निव विभावसुः । स्वरोचिभिर्यथा सूर्यो भासयन्सकला दिशः ।।६
स्वरोचिभिर्यतो भाति भास्वानिव स बालकः । ततः स्वरोचिरित्येवं नाम्ना ख्यातो बभूव सः ।।७
ववृधे च महाभागो वयसानुदिनं तथा । गुणौघैश्च यथा बालः कलाभिः शशलाञ्छनः ।।८
स जग्राह धनुर्वेदं वेदांश्चैव यथाक्रमम् । विद्याश्चैव महाभागस्तदा यौवनगोचरः ।।९
मन्दराद्रौ कदाचित्स विचरंश्चारुचेष्टितः । ददर्शैकां तदा कन्यां गिरिप्रस्थे भयातुराम् ।।१०
त्रायस्वेति निरीक्ष्यैनं सा तदा वाक्यमब्रवीत् । मा भैषीरिति स प्राह भयविप्लुतलोचनाम् ।।११
किमेतदिति तेनोक्ते वीरवाक्ये महात्मना । ततः सा कथयामास श्वासक्षेपप्लुताक्षरम् ।।१२

कन्योवाच

अहमिन्दीवराख्यस्य सुता विद्याधरस्य वै । नाम्ना मनोरमा जाता सुतायां मरुधन्वनः ।।१३
मन्दारविद्याधरजा सखी मम विभावरी । कलावती चाप्यपरा सुता पारस्य वै मुनेः ।।१४
ताभ्यां सह मया यातं कैलासतटमुत्तमम् । तत्र दृष्टो मुनिः कश्चित्तपसातिकृशाकृतिः ।।१५

उसी की चिन्ता करने लगी।३। हे मुनिसत्तम! तदनन्तर उस अप्सरा ने यथा समय में गन्धर्व के औरस से गर्भधारण किया। विहार काल में ब्राह्मण के रूप की चिन्ता करने से उस समय उसका रूप भी उसी के समान तेजस्वी हुआ।४। वह विप्ररूपधारी गंधर्व गर्भवती वरूथिनी को समझाकर उससे प्रीतिपूर्वक विदा होकर चला गया।५। सूर्यनारायण जिस प्रकार अपनी किरणों के द्वारा समस्त दिशाओं को प्रकाशित करते हैं, इसी प्रकार अंग की प्रभा से चारों दिशा को दीप्तिमान् कर प्रज्वलित अग्नि के समान दीप्तिशाली एक बालक ने यथा काल में जन्मग्रहण किया।६। स्वरोचि अर्थात् अपने अंग की प्रजा से सूर्य के समान दीप्ति पाने के कारण वह बालक 'स्वरोचिः' नाम से प्रसिद्ध हुआ।७। हे महाभाग! चन्द्रमा की कला जिस प्रकार शुक्लपक्ष में दिन-दिन बढ़ती है, उसी प्रकार उक्त महानुभाव बालक के गुण भी प्रतिदिन अवस्था के अनुसार बढ़ने लगे।८। उस महाभाग स्वरोचि ने क्रमानुसार चारों वेद, सम्पूर्ण शास्त्र और धनुर्वेद में सुशिक्षित हो यौवन की सीमा में पदार्पण किया।९। उस शोभनगति स्वरोचि ने किसी समय मन्दर पर्वत पर विचरण करते-करते पर्वतप्रान्त में एक भय से आतुर हुई कन्या को देखा।१०। उस कन्या ने इनको देखकर 'रक्षा करो' इस प्रकार कहा। तब उन्होंने भी कन्या को भय से विह्वल देखकर "भय नहीं है" यह कहकर समझाया।११। इसके बाद उन महात्मा ने वीरजनोचित वचनों से "तुमको क्या हुआ है" इस भाँति पूछा। तब कन्या श्वास लेती हुई टूटे-फूटे शब्दों से कहने लगी।१२

कन्या बोली—हे महाभाग! इन्दीवर नामक विद्याधर के औरस और मरुधन्वा की कन्या के गर्भ से मेरा जन्म हुआ है तथा मेरा नाम मनोरमा है।१३। विभावरी और कलावती नामक मेरी दो सखी हैं। पहली मन्दारनामक विद्याधर की कन्या और दूसरी पारमुनि की कन्या है।१४। एक दिन मैंने उनके संग अति उत्तम कैलास के तट में जाकर वहाँ एक मुनि को देखा था। वह अत्यन्त दुबले उनके अंग तप के क्लेश से

क्षुत्क्षामकण्ठो निस्तेजा दूरपाताक्षितारकः । मयावहसितः क्रुद्धः स तदा मां शशाप ह ।।१६
क्षामक्षामस्वरः किञ्चित्कम्पिताधरपल्लवः । त्वयावहसितो यस्मादनार्ये दुष्टतापसि ।।१७
तस्मात्त्वामचिरेणैव राक्षसोऽभिभविष्यति । दत्ते शापे मत्सखीभ्यां सतु निर्भत्सितो मुनिः ।।१८
धिक्ते ब्राह्मण्यमक्षान्त्या हतं ते निखिलं तपः । अमर्षणैर्धर्षितोऽसि तपसा नातिकर्शितः ।।१९
क्षान्त्यास्पदं वै ब्राह्मण्यं क्रोधसंयमनं तपः । एतच्छ्रुत्वा ददौ शापं तयोरप्यमितद्युतिः ।।२०
एकस्याः कुष्ठमङ्गेषु भाव्यन्यस्यास्तथा क्षयः । तयोस्तथैव तज्जातं यथोक्तं तेन तत्क्षणात् ।।२१
ममाप्येवं महद्रक्षः समुपैति पदानुगम् । न शृणोषि महानादं तस्यादूरेऽपि गर्जतः ।।२२
तृतीयमद्य दिवसं यन्मे पृष्ठं न मुञ्चति । अस्त्रग्रामस्य सर्वस्य हृदयञ्चाहमद्य ते ।।२३
तं प्रयच्छामि मां रक्ष रक्षसोऽस्मान्महामते । प्रादात्स्वायम्भुवस्यादौ स्वयं रुद्रः पिनाकधृक् ।।२४
स्वायम्भुवो वसिष्ठाय सिद्धवर्याय दत्तवान् । तेनापि दत्तं मन्मातुः पित्रे चित्रायुधाय वै ।।२५
प्रादादौद्वाहिकं सोऽपि मत्पित्रे श्वशुरः स्वयम् । मयापि शिक्षितं वीर सकाशाद्बालया पितुः ।।२६
हृदयं सकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् । तदिदं गृह्यतां शीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ।।२७
ततो जहि दुरात्मानमेनं राक्षसमागतम् ।।२८

अत्यन्त कृश ।१५। क्षुधा से कंठ क्षीण (नेत्र मानो खखोडल से हो गये हैं वे मानो चक्षु फाड़कर निकल पड़ रहे हों) जब मैंने उन तपस्वी की हँसी की तब उन्होंने क्रोधित हो अत्यन्त क्षीण कंठ से कुछेक कम्पायमान होठ कर तत्काल मुझको यह शाप दिया "हे अनार्ये दुष्ट तापसी ! तुमने मेरी हँसी की है ।१६-१७। इस कारण तू शीघ्र ही राक्षस के निकट से पराभव को प्राप्त होगी" मुनि के इस प्रकार शाप देने पर मेरी उन दोनों सखियों ने उन मुनि की भर्त्सना (बुराई) की ।१८। तुम सरीखे क्षमाहीन ब्राह्मण को धिक्कार है, तुमने जो तपस्या की है वह सब वृथा है । जान पड़ता है क्रोध से तुम्हारा शरीर कृश हो रहा है तप से नहीं ।१९। क्योंकि ब्राह्मण क्षमा के आधार हैं और क्रोध संयम ही उनकी तपस्या है तुम तपस्या में परिपक्व न होकर इस बीच में ही अपने क्रोध से आप नष्ट हुए । यह तिरस्कार सुनते ही उन अतुल प्रभावशाली मुनि ने उनको भी शाप दिया ।२०। एक से कहा "तेरे सर्वाङ्ग में कुष्ठ होगा" और दूसरी से "तेरे क्षयरोग होगा" यह कहकर शाप दिया । मुनि के यह वचन कहते-कहते ही तत्काल उनके उसी प्रकार रोग उत्पन्न हुए ।२१। और मेरे पीछे भी एक महाराक्षस दौड़ा । आज तीसरा दिन हुआ किसी प्रकार से भी वह मेरा संग नहीं छोड़ता, यह निकट ही महान् गर्जन कर रहा है, वह शब्द क्या आपको सुनाई नहीं देता ? सम्पूर्ण अस्त्रों के सार द्वारा बना हुआ यह प्रसिद्ध अस्त्र ।२२-२३। आपको देती हूँ आप इसके द्वारा मेरी विपद् से रक्षा कीजिये । हे महामते ! यह अस्त्र पहले पिनाकपाणि रुद्र ने स्वायम्भुव मनु को दिया था ।२४। स्वायम्भुव ने वह सिद्ध श्रेष्ठ अस्त्र वशिष्ठ को दिया, फिर मेरे नाना चित्रायुध ने वशिष्ठजी से वह अस्त्र प्राप्त कर ।२५। विवाह के यौतुक में मेरे पिता को दिया । हे वीर ! मैंने बाल्यकाल में पिता से सब अस्त्रों के सारभूत इस अस्त्र की शिक्षा पाई थी ।२६। यह समस्त अस्त्रों का हृदय जो शत्रुओं का नाश करने वाला है, इसको आप शीघ्र ग्रहण कीजिये, यह सब अस्त्रों का काम देता है ।२७। इसको ग्रहण करके शीघ्र इस दुष्टात्मा राक्षस को मारो जो ब्राह्मण के शाप से मेरे पीछे पड़ा हुआ है ।२८

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्ते ततस्तेन वार्युपस्पृश्य तस्य तत् । अस्त्राणां हृदयं प्रादात्सरहस्यनिवर्तनम् ।।२९
एतस्मिन्नन्तरे रक्षस्ततदाभीषणाकृतिः । नर्दमानं महानादमाजगाम त्वरान्वितम् ।।३०
मयाभिभूता किं त्राणमुपैति द्रुतमेहि मे । भक्षाय किञ्चिरेणेति ब्रुवाणं तद्ददर्श सः ।।३१
स्वरोचिश्चिन्तयामास दृष्ट्वा तं समुपागतम् । गृह्णात्येष वचः सत्यं तस्यास्त्विति महामुनेः ।।३२
जग्राह समुपेत्यैनां त्वरया सोऽपि राक्षसः । त्राहि त्राहीति करुणं विलपन्तीं सुमध्यमाम् ।।३३
ततः स्वरोचिः संक्रुद्धश्चाण्डास्त्रमतिभैरवम् । दृष्ट्वा निवेश्य तद्रक्षो ददर्शानिमिषेक्षणः ।।३४
तदाभिभूतः स तदा तामुत्सृज्य निशाचरः । प्रसीद शाम्यतामस्त्रं श्रूयतां चेत्यभाषत ।।३५
मोक्षितोऽहं त्वया शापादतिघोरान्महाद्युते । प्रदत्तादतितीव्रेण ब्रह्ममित्रेण धीमता ।।३६
उपकारो न मे त्वत्तो महाभागाधिको परः । येनाहं सुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः ।।३७

स्वरोचिरुवाच

ब्रह्ममित्रेण मुनिना किन्निमित्तं महात्मना । शप्तस्त्वं कीदृशश्चैव शापो दत्तोऽभवत्पुरा ।।३८

राक्षस उवाच

ब्रह्ममित्रोऽष्टधा भिन्नमायुर्वेदमधीतवान् । त्रयोदशाधिकारं च प्रगृह्याथर्वणो द्विजः ।।३९

मार्कण्डेय जी बोले—फिर जब स्वरोचि अस्त्र ग्रहण करने में सम्मत हुए, तब उस मनोरमा नामक विद्याधरी ने आचमनपूर्वक रहस्य और निवर्तन मंत्र के सहित वह अस्त्र हृदय मंत्र उनको दिया।२९। इसी अवसर में स्वरोचि ने देखा कि वह भयंकर आकार राक्षस महाशब्द से गर्जता हुआ शीघ्र उपस्थित हुआ।३०। वह आकर "मेरे आक्रमण करने पर क्या कोई रक्षा पा सकता है, अब विलम्ब की क्या आवश्यकता है शीघ्र आओ, मैं भोजन करूँ" इस प्रकार कहते हुए उस राक्षस को उन्होंने देखा।३१। उसको आया हुआ देखकर स्वरोचि चिन्ता करने लगे "कि यदि यह राक्षस इस कन्या को ग्रहण करे तो उन महामुनि महर्षि का वचन सत्य होगा"।३२। स्वरोचि इस प्रकार चिन्ता करते-करते ही उस राक्षस ने शीघ्र आकर विद्याधरी को ग्रहण किया, इससे वह सुमध्यमा "त्राहि त्राहि" शब्द द्वारा करुणास्वर से विलाप करने लगी।३३। तदनन्तर स्वरोचि ने अत्यन्त क्रोधित हो धनुष में अत्यन्त भयंकर प्रचण्डास्त्र चढ़ाकर उस राक्षस की ओर एकटक देखा।३४। उनको देख भय से विह्वल हो उस निशाचर ने मनोरमा कन्या को छोड़, स्वरोचि से कहा। आप प्रसन्न होइये और अस्त्र परित्याग कीजिए। मैं अपना वृत्तान्त कहता हूँ, सुनिये।३५। हे महाद्युतिमान्। अत्यन्त तेजस्वी बुद्धिमान् ब्रह्ममित्र ने मुझे जो कठिन शाप दिया था, आपने मुझे उससे छुड़ाया।३६। हे महाभाग! आपके समान मेरा अधिक उपकार करने वाला और कोई नहीं है, क्योंकि आपने मुझको महाक्लेशदायक ब्राह्मशाप से छुड़ाया है।३७

स्वरोचि ने कहा—महात्मा ब्रह्ममित्र मुनि ने तुमको पूर्वकाल में किस निमित्त कैसा शाप दिया था।३८। राक्षस ने कहा ब्रह्ममित्र मुनि ने अथर्ववेद के त्रयोदश अधिकार में ज्ञान प्राप्त कर आठ भाग में विभक्त सम्पूर्ण आयुर्वेद अध्ययन किया था।३९। मेरा नाम इन्दीवराक्ष विख्यात है, मैं इस कन्या का

अहं चेन्दीवराक्षेति ख्यातोऽस्या जनकोऽभवम् । विद्याधरपतेः पुत्रो नलनाभस्य खङ्गिनः ।।४०
मया च याचितः पूर्वं ब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः । आयुर्वेदमशेषं मे भगवन्दातुमर्हसि ।।४१
यदा तु बहुशो वीर प्रश्रयावनतस्य मे । न प्रादाद्याचितो विद्यामायुर्वेदात्मिकां मम ।।४२
शिष्येभ्यो ददतस्तस्य मयान्तर्धानगेन हि । आयुर्वेदात्मिका विद्या गृहीताभूतदानघ ।।४३
गृहीतायां तु विद्यायां मासैरष्टाभिरन्तरात् । ममातिहर्षादभवद्धासोऽतीव पुनः पुनः ।।४४
प्रत्यभिज्ञाय मां हासान्मुनिः कोपसमन्वितः । विकम्पिकन्धरः प्राहमामिदं परुषाक्षरम् ।।४५
राक्षसेनेव यस्मान्मे त्वयाऽदृश्येन दुर्मते । हृता विद्यावहासश्च मामवज्ञाय वै कृतः ।।४६
तस्मात्त्वं राक्षसः पाप मच्छापेन निराकृतः । भविष्यसि न सन्देह सप्तरात्रेण दारुणः ।।४७
इत्युक्ते प्रणिपाताद्यैरुपचारैः प्रसादितः । स मामाह पुनर्विप्रस्तत्क्षणान्मृदुमानसः ।।४८
यन्मयोक्तमवश्यं तद्भावि गन्धर्व नान्यथा । किन्तु त्वं राक्षसो भूत्वा पुनः स्वं प्राप्स्यसे वपुः ।।४९
नष्टस्मृतिर्यदा क्रुद्धः स्वमपत्यं चिखादिषुः । निशाचरत्वे गन्तासि तदस्त्रानलतापितः ।।५०
पुनः संज्ञामवाप्य स्वामवाप्स्यसि निजं वपुः । तथैव स्वममधिष्ठानं लोके गन्धर्वसंज्ञिते ।।५१
सोऽहं त्वया महाभाग मोक्षितोऽस्मान्महाभयात् । निशाचरत्वाद्यद्वीर तेन मे प्रार्थनां कुरु ।।५२
इमां ते तनयां भार्यां प्रयच्छामि प्रतीच्छ ताम् । आयुर्वेदश्च सकलस्त्वष्टाङ्गो यो मया ततः ।।
मुनेः सकाशात्सम्प्राप्तस्तं गृह्लीष्व महामते ।।५३

पिता और खङ्गी नलनाभ नामक विद्याधर का पुत्र हूँ ।४०। मैंने पहले उक्त ब्रह्ममित्र मुनि से यह प्रार्थना की थी कि हे भगवन् ! मुझको सम्पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र प्रदान कीजिये ।४१। हे वीर ! विनय से नम्र होकर बार-बार याचना करने पर भी जब मुनि ने मुझको आयुर्वेदविद्या नहीं दी ।४२। हे अनघ ! तब मैंने उनके शिष्य को प्रदान करने के समय छिपकर उस विद्या का अभ्यास किया अर्थात् समस्त आयुर्वेद विद्या ग्रहण की ।४३। आठ महीने में समस्त आयुर्वेद विद्या का अभ्यास हो जाने पर मैं अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुआ और बार-बार हँसने लगा ।४४। मुनि ने मेरा हँसना जान, क्रोधयुक्त हो कंपायमान गर्दन कर यह निष्ठुर वचन कहे ।४५। हे दुर्मते ! तुमने राक्षस के समान अदृश्य होकर विद्या हरण की है, और मेरी अवज्ञा करके हास्य किया है ।४६। इस कारण तू मेरे शाप द्वारा अपने अधिकार से गिरकर सात रात्रि में ही महा दारुण राक्षस होगा इसमें सन्देह नहीं ।४७। जब उन्होंने इस प्रकार कहकर शाप दिया तब मैंने प्रणामादि अनेक उपचारों से उनको प्रसन्न किया, इससे वह ब्राह्मण तत्काल प्रसन्नमन होकर कहने लगे ।४८। हे गंधर्व ! मैंने जो कहा है वह अवश्य ही होगा। इससे अन्यथा नहीं होगा, किन्तु तू राक्षस होकर पुनर्वार अपने देहं को प्राप्त होगा ।४९। तू जब राक्षसपन को प्राप्त हो नष्टस्मृति होने पर क्रोध के वशीभूत हो अपनी पुत्री के भक्षण करने की इच्छा करेगा, तब अपने अस्त्रानल से परितापित हो ।५०। फिर स्मृति लाज कर अपने देह और गंधर्वलोक तथा अपने अधिकार को प्राप्त होगा ।५१। हे महाभाग ! आपने इस समय मुझको इस निशाचरत्व रूप महाभय से छुड़ाया है, अत एव हे वीरवर ! मुझसे वर की प्रार्थना करो ।५२। हे महामते ! यह कन्या आपको देता हूँ, आप इसको भार्या रूप में ग्रहण कीजिये और मुझको उन मुनि से जो सम्पूर्ण अष्टांग आयुर्वेद प्राप्त हुआ है, वह भी देता हूँ ग्रहण कीजिये ।५३

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ विद्यां स च दिव्याम्बरोज्ज्वलः । स्रग्भूषणधरो दिव्यं पौराणं वपुरास्थितः ।।५४
दत्त्वा विद्यां ततः कन्यां स दातुमुपचक्रमे । तमाह सा तदा कन्या जनितारं स्वरूपिणम् ।।५५
अनुरागो ममाऽप्यत्र तातातीव महात्मनि । दर्शनादेव सञ्जातो विशेषेणोपकारिणि ।।५६
किन्त्वेषा मे सखी सा च मत्कृते दुःखपीडिते । अतो नाभिलषे भोगान्भोक्तुमेतेन वै समम् ।।५७
पुरुषैरपि नो शक्या कर्तुमित्थं नृशंसता । स्वभावरुचिरैर्मादृक्कथं योषित्करिष्यति ।।५८
साहं यथा ते दुःखार्त्ते मत्कृते कन्यके पितः । तथा स्थास्यामि दुःखार्ता तच्छोकानलतापिता ।।५९

स्वरोचिरुवाच

आयुर्वेदप्रसादेन ते करिष्ये पुनर्नवे । सख्यौ तव महाशोकं समुत्सृज सुमध्यमे ।।६०

मार्कण्डेय उवाच

ततः पित्रा स्वयं दत्तां तां कन्यां सविधानतः । उपयेमे गिरौ तस्मिन्स्वरोचिश्चारुलोचनाम् ।।६१
दत्तां तु तां तदा कन्यामभिसान्त्व्य च भाविनीम् । जगाम दिव्यया गत्या गन्धर्वः स्वपुरं ततः ।।६२
स चापि सहितस्तन्व्या तदुद्यानं तदा ययौ । कन्यकायुगलं यत्र तच्छापोत्थगदातुरम् ।।६३
ततस्तयोः स तत्त्वज्ञो रोगघ्नैरौषधै रसैः । चकार नीरुजे देहे स्वरोचिरपि राजतः ।।६४

मार्कण्डेय जी बोले—दिव्याम्बर दिव्यमाला दिव्यभूषण और पहले के समान दिव्यदेहधारी उस गंधर्व ने इस प्रकार कह स्वरोचि को ।५४। आयुर्वेद विद्या प्रदान कर जब कन्या देने का यत्न किया तब वह कन्या निजरूपधारी अपने पिता से कहने लगी ।५५। इस महात्मा का दर्शन करते ही इनके प्रति मेरा अत्यन्त अनुराग उत्पन्न हुआ है । और विशेष कर यह इस समय उपकारी हैं ।५६। किन्तु मेरी दो सखी मेरे ही लिये दुःख भोग रही हैं, अत एव इस समय इनके संग मुझको भोग की इच्छा करनी उचित नहीं है ।५७। मनोहर स्वभाव पुरुष भी जब इस प्रकार कठोरता का आचरण नहीं कर सकता, तब मेरे समान सरल रमणी वह किस प्रकार कर सकती है ।५८। वह जिस प्रकार मेरे निमित्त कन्या अवस्था में दुःख भोगती है, मैं भी उसी प्रकार दुःख शोकानल से सन्तापित होकर उन्हीं के अनुसार अवस्था में रहूँगी ।५९

स्वरोचि ने कहा—हे सुमध्यमे ! शोक परित्याग करो । आयुर्वेद शास्त्र के प्रसाद से तुम्हारी दोनों सखी को रोग से छुड़ाऊँगा ।६०

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर स्वरोचि ने मन्दराचल में पिता की दी हुई उस शोभायमान नेत्रों वाली कन्या का यथाविधान से पाणिग्रहण किया ।६१। गंधर्व, कन्या प्रदान करने के बाद उसको समझा-बुझाकर दिव्य विमान में बैठ अपने गन्धर्व लोक में चला गया ।६२। मनोरमा की दोनों सखी मुनि के शाप से रोगाक्रान्त हो जिस उद्यान में अवस्थान करती थीं, स्वरोचि कृशाङ्गी युवती भार्या के सहित वहाँ गये ।६३। इसके बाद आयुर्वेद शास्त्र में विशारद अप्रतिहतप्रभाव स्वरोचि ने रोगघ्न औषधियों के रसों से उन

ततोऽतिशोभने कन्ये विमुक्ते व्याधितः शुभे। स्वकान्त्याज्ज्योतिदिग्भागं चक्राते तन्महीधरम् ॥६५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वरोचिषे मन्वन्तरे षष्टितमोऽध्यायः ।६०।

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

ब्राह्मणवाक्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं विमुक्तरोगा तु कन्यका तं मुदान्विता । स्वरोचिषमुवाचेदं शृणुष्व वचनं प्रभो ॥१
मन्दारविद्याधरजा नाम्ना ख्याता विभावरी। उपकारिन्स्वमात्मानं प्रयच्छामि प्रतीच्छ माम् ॥२
विद्यां च तुभ्यं दास्यामि सर्वभूतरुतानि ते । ययाभिव्यक्तिमेष्यन्ति प्रसादप्रवणो भव ॥३

मार्कण्डेय उवाच

एवमस्त्विवति तेनोक्ते धर्मज्ञेन स्वरोचिषा । द्वितीया तु तदा कन्या इदं वचनमब्रवीत् ॥४
कुमारब्रह्मचार्यासीत्पारो नाम पिता मम । ब्रह्मर्षिः सुमहाभागो वेदवेदाङ्गपारगः ॥५
तस्य पुंस्कोकिलालापरमणीये मधौ पुरा । आजगामाप्सरोभ्याशं प्रख्याता पुञ्जिकस्थला ॥६
कामवैक्लव्यंतां नीतः स तदा मुनिपुङ्गवः । तत्संयोगेऽहमुत्पन्ना तस्यांमत्र महाचले ॥७

दोनों सखियों के देह को नीरोग कर दिया ।६४। तब उन व्याधिविमुक्त अर्थात् रोग से छूटी हुई अत्यन्त रूपवती दोनों कन्याओं के अंग की कान्ति से मन्दर पर्वत की समस्त दिशा दीप्ति पाने लगीं ।६५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में स्वारोचिषमन्वन्तर नामक साठवाँ अध्याय समाप्त ।६०।

अध्याय ६१

ब्राह्मणवाक्य का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—मनोरमा की दोनों सखियों में से पहली, उक्त प्रकार से रोग से छूट प्रसन्नचित हो, स्वरोचि से इस प्रकार कहने लगी हे प्रभो ! मेरा वचन सुनो ।१। मैं मन्दार नामक विद्याधर की कन्या हूँ और मेरा नाम विभावरी है आपने जो मेरा महान् उपकार किया है, उसका प्रतिदानस्वरूप आपको आत्म समर्पण करती हूँ ।२। और जिससे सब प्राणियों का स्वर (बोली) जाना जाता है, वह विद्या भी आपको देती हूँ, आप प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कीजिये ।३

मार्कण्डेय जी बोले—धर्म के जानने वाले स्वरोचि ने "यही हो" इस प्रकार कहकर विभावरी कन्या का वचन स्वीकार किया तब फिर दूसरी कन्या यह बात कहने लगी कि ।४। कौमार अवस्था से ही ब्रह्मचर्यविलम्बी, वेद वेदाङ्ग में पारंगत महाभाग पार नामक ब्रह्मर्षि मेरे पिता हैं ।५। एक समय मनोहर वसन्त काल में कामी जनों का मन हरने वाले पुंस्कोकिल के मधुरालाप से तपोवन प्रतिध्वनित हो रहा था, उसी समय प्रसिद्ध पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा उनके समीप आई ।६। इससे वह मुनिपुंगव काम शत्रु के वशीभूत हो गये इसके उपरान्त उनके सहवास और उस अप्सरा के गर्भ से इस महाचल में ही मेरा जन्म

विहाय मां गता सा च मातास्मिन्निर्जने वने । बालामेकां महीपृष्ठे व्यालश्वापदसङ्कुले ॥८
ततः कलाभिः सोमस्य वर्द्धन्तीभिरहःक्षये । आप्यायमानाहरहो वृद्धिं यातास्मि सत्तम ॥९
ततः कलावतीत्येतन्मम नाम महात्मना । गृहीतायाः कृतं पित्रा गन्धर्वेण शुभात्मना ॥१०
न दत्ताहं तदा तेन याचितेन महात्मना । देवारिणा निशासुप्तस्ततो मे घातितः पिता ॥११
ततोऽहमतिनिर्वेदादात्मव्यापादनोद्यता । निवारिता शम्भुपत्न्या सत्यासत्यप्रतिश्रवा ॥१२
मा शुचः सुभ्रु भर्त्ता ते महाभागो भविष्यति । स्वरोचिर्नाम पुत्रश्च मनुस्तस्य भविष्यति ॥१३
आज्ञां च निधयः सर्वे करिष्यन्ति तवादृताः । यथाभिलषितं वित्तं प्रदास्यन्ति च ते शुभे ॥१४
यस्या वत्से प्रभावेण विद्यायास्तां गृहाण मे । पद्मिनी नाम विद्येयं महापद्माभिपूजिता ॥१५
इत्याह मां दक्षसुता सती सत्यपरायणा । स्वरोचिस्त्वं ध्रुवं देवी नान्यथा सा वदिष्यति ॥१६
साहं प्राणप्रदायाद्य तां विद्यां स्वं तथा वपुः । प्रयच्छामि प्रतीच्छं तं प्रसादसुमुखो भव ॥१७

मार्कण्डेय उवाच

एवमस्त्विवति तामाह स तु कन्यां कलावतीम् । विभावर्याः कलावत्याः स्निग्धदृष्टचानुमोदितः ॥१८
जग्राह च ततः पाणी स तयोरमरद्युतिः । नदत्सु देवतूर्येषु नृत्यन्तीस्वप्सरः सु च ॥१९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे एकषष्टितमोऽध्यायः ।६१।

हुआ है ।७। अनन्तर सर्प श्वापद (हिंसक जन्तु) युक्त इस निर्जन वन में भूमि के ऊपर ही मुझको अकेली छोड़कर माता चली गई ।८। फिर एक महात्मा गंधर्व मुझको ले जाकर पालन करने लगा । वहाँ शुक्लपक्ष में बढ़ती हुई चन्द्रमा की कला से परिपुष्ट होकर मैं वृद्धि पाने लगी । किन्तु कृष्णपक्ष में जब चन्द्रमा की कला का क्षय होता, तब मेरा क्षय नहीं होता, यह देखकर उस प्रतिपालक गंधर्व ने मेरा, "कलावती" नाम रखा ।९-१०। कुछ समय पीछे एक दिन अलि नामक असुर ने आकर महात्मा पिता से मुझको माँगा और उन्होंने जब उसको नहीं दिया, तब उसने रात्रि में सोते हुए मेरे पिता को मार डाला ।११। मैं उस दुःख से दृढ़प्रतिज्ञ होकर आत्मघात करने में उद्यत हुई, तब शंभुपत्नी सती ने निवारण करके कहा ।१२। हे सुभ्रु ! शोक मत करो, स्वरोचि नामक एक महाभाग तुम्हारे भर्त्ता होंगे तथा उनका पुत्र मनु होगा ।१३। हे शुभे ! सम्पूर्ण निधियाँ सदैव तुम्हारी आज्ञा का प्रतिपालन करेंगी और तुम्हें अभिलषित वित्तादि प्रदान करेंगी ।१४। किन्तु हे वत्से ! जिस विद्या के प्रभाव से निधिगण आज्ञानुवर्ती होगा, वह महापद्माभिपूजिता पद्मिनी नामक विद्या मुझसे ग्रहण करो ।१५। सत्यपरायण दक्षसुता सती ने मुझे यह बात कही है वह कभी मिथ्या नहीं कहेंगी, अत एव आप निःसंदेह वही स्वरोचि हैं ।१६। मैं आपको देह, प्राण और वह विद्या देती हूँ, आप मेरे प्रति प्रसन्न होकर ग्रहण कीजिये ।१७

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर स्वरोचि ने कलावती से "यही हो" इस प्रकार अंगीकार वचन कहा। फिर स्निग्धदृष्टि द्वारा विभावरी और कलावती दोनों की अनुमति पाकर ।१८। देवकान्ति स्वरोचि ने उनका भी पाणिग्रहण किया । विवाह के समय देवतूर्य अर्थात् समस्त देवबाजे बजने लगे और अप्सरागण नृत्य करने लगी ।१९

श्रीमार्कण्डेयपुराण में स्वारोचिष मन्वन्तर नामक एकसठवाँ अध्याय समाप्त ।६१।

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

(६२)

ब्राह्मणवाक्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स ताभिः सहितः पत्नीभिरमरद्युतिः । रराम तस्मिञ्छैलेन्द्रे रम्यकानननिर्झरे ॥१
सर्वोपभोगरत्नानि मधूनि मधुराणि च । निधयः समुपाजग्मुः पद्मिन्या वशवर्तिनः ॥२
स्रजो वस्त्राण्यलङ्कारान्गन्धाढ्यमनुलेपनम् । आसनान्यतिशुभ्राणि काञ्चनानि यथेच्छया ॥३
सौवर्णानि महाभाग करकान्भाजनानि च । तथा शय्याश्च विविधा दिव्यैरास्तरणैर्युताः ॥४
एवं स ताभिः सहितो दिव्यगन्धादिवासिते । रराम स्वरुचिर्भाभिर्भासिते वरपर्वते ॥५
ताश्चापि सह तेनेति लेभिरे मुदमुत्तमाम् । रममाणा यथा स्वर्गे तथा तत्र शिलोच्चये ॥६
कलहंसी जगादैकां चक्रवाकीं जले सतीम् । तस्य तासां च ललिते सम्बन्धे च स्पृहावती ॥७
धन्योऽयमतिपुण्योऽयं योऽयं यौवनगोचरः । दयिताभिः सहैताभिर्भुङ्क्ते भोगानभीप्सितान् ॥८
सन्ति यौवनिनः श्लाघ्यास्तत्पत्न्यो नातिशोभनाः । जगत्यामल्पकाः पत्न्यः पतयश्चातिशोभनाः ॥९
अभीष्टा कस्यचित्कान्ता कान्तः कस्याश्चिदीप्सितः । परस्परानुरागाढ्यं दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥१०
धन्योऽयं दयिताभीष्टो ह्येताश्चास्यातिवल्लभाः । परस्परानुरागो हि धन्यानामेव जायते ॥११

अध्याय ६२

ब्राह्मणवाक्य का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर अमरकांति स्वरोचि अपनी पत्नियों के संग उस मलयाचल के रमणीय कानन और निर्झर स्थानों में विहार करने लगे ।१। निधियाँ पद्मिनी विद्या के वशवर्ती होकर उपभोग करने के लिये विविध रत्न मधुर मद्य ।२। माल्य, वस्त्र, गहने, सुगंधित अनुलेपन, आसन, रजत कांचन ।३। कमण्डलु सुवर्णनिर्मित विविध पात्र और दिव्य बिछौने से युक्त विविध शय्या इत्यादि द्रव्य उनकी इच्छानुसार देने लगीं ।४। स्वरोचि दिव्य गंधादिवासित और रत्नादि से प्रकाशित पर्वत प्रदेश में तीनों भार्या के सहित रमण करने लगे ।५। स्वर्ग के समान मनोहर उस पर्वतश्रेष्ठ में विहार करती हुई उक्त पत्नियाँ भी अत्यन्त आह्लादित हुई ।६। उस काल स्वरोचि और उनकी पत्नियों का ऐसा प्रणय देखकर उन्हीं के समान प्रणयानुरागिनी एक कलहंसी ने जलस्थ दूसरी चक्रवाकी से कहा ।७। "यह जो युवक स्त्रियों के सहित इच्छानुसार समस्त भोगों को भोग रहे हैं, यही पुण्यवान् और धन्य हैं ।८। जगत् में रूपयौवनशाली ऐसे पुरुष अनेक हैं कि जिनकी पत्नी रूपवती नहीं है, किन्तु पति और पत्नी दोनों ही सुन्दरता से विभूषित हों, ऐसे दाम्पत्य अत्यन्त विरले हैं ।९। कोई पति अपनी कान्ता में अनुरक्त और कोई पत्नी कान्त के प्रति अनुरागिनी हैं, किन्तु परस्पर में समान अनुराग करने वाले स्त्री-पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं ।१०। अत एव पत्नियों के प्रियतम यह युवक धन्य और इनकी प्रियतमा यह पत्नियाँ भी धन्य हैं, क्योंकि इस जगत् में जो धन्य हैं, उनका ही इस प्रकार परस्पर अनुराग उत्पन्न होता है" ।११। कलहंसी के

एतन्निशम्य वचनं कलहंसी समीरितम् । उवाच चक्रवाकी तां नातिविस्मितमानसा ॥१२
नायं धन्यो यतो लज्जा नान्यस्त्रीसन्निकर्षतः । अन्यां स्त्रियमयं भुङ्क्ते न सर्वास्वस्य मानसम् ॥१३
चित्तानुराग एकस्मिन्नधिष्ठाने यतः सखि । ततोऽतिप्रीतिमानेष भार्यासु भविता कथम् ॥१४
एता न दयिताः पत्युर्नैतासां दयितः पतिः । विनोदमात्रमेवैता यथा परिजनो परः ॥१५
एतासां च यदीष्टोऽयं तत्किं प्राणान्न मुञ्चति । आलिङ्गत्यपरां कान्तां ध्यातो वै कान्तयान्यया ॥१६
विद्याप्रदानमूल्येन क्रीतो ह्येष सुभृत्यवत् । प्रवर्त्ततो न हि प्रेम समं बह्वीषु तिष्ठति ॥१७
कलहंसि पतिर्धन्यो मम धन्याहमेव च । यस्यैकस्यां चिरं चित्तं यस्याश्चैकत्र संस्थितम् ॥१८
बहुपत्नीपतिर्लोकः शरणं पुण्यपापयोः । गृहाशनासनाद्यैश्च भूषणैश्च समागमैः ॥१९
विषमैः क्रियमाणो हि युज्यते महदेनसा । ज्येष्ठां कनीयभावेन कनिष्ठां ज्येष्ठतां नयेत् ॥२०
गुरवे तु वरं दत्त्वा हुत्वान्यां समिधं यथा । ऊढया स कर्त्तव्या नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥२१
जगादाथान्यभावेन पापीयाञ्जायते नरः ।

मार्कण्डेय उवाच

सर्वसत्त्वरुतज्ञोऽसौ स्वरोचिरपराजितः ॥२२
निशम्य लज्जितो दध्यौ सत्यमेव हि नानृतम् । ततो वर्षशते याते रममाणो महागिरौ ॥

कहे यह वचन सुनकर चक्रवाकी ने अधिक विस्मित मन न हो उससे यह बात कही।१२। "हे सखी ! यह स्वरोचि धन्य नहीं है एक स्त्री के समीप दूसरी स्त्री से भोग करते हैं इसलिए इनको कुछ भी लज्जा नहीं है इनकी अभिलाषा सब पत्नियों में समान नहीं हैं।१३। चित्त का अनुराग जब एक मात्र आधार में ही रह सकता है तब यह स्वरोचि सब भार्याओं के प्रति किस प्रकार समान अनुरागी होंगे।१४। यह पत्नियाँ भी इनको प्रियतम नहीं हैं और यह पति भी उनको अत्यन्त प्रिय नहीं हैं, अन्य परिजनों के द्वारा जिस प्रकार चित्त को विनोद प्राप्त होता है इसी प्रकार पत्नियाँ भी इनके विनोद की सामग्री भाव मात्र हैं।१५। यह यदि सब पत्नियों के अभीष्ट होते तो इनका सब काल और समान भाव से संतोष संपादन करने में समर्थ होकर क्या इतने दिन जीवित रहते ? एक स्त्री जब इनकी अभिलाषा करती है, तब यह दूसरी स्त्री को आलिंगन करते रहते हैं, अत एव इनमें परस्पर का अनुराग अधिकतर दाम्पत्य प्रेम कहाँ है ?।१६। विद्याप्रदान के मूल्य में बिककर यह स्वरोचि पत्नियों के निकट भृत्य के समान आचरण करते हैं, प्रेम बहुत पत्नियों में समान भाव से नहीं रह सकता।१७। हे सखी कलहंसी। मेरे पति धन्य और मैं धन्य हूँ, क्योंकि मैं उनकी एक मात्र पत्नी हूँ, मेरे प्रति ही उनके चित्त का अनुराग और मैं भी उन एक मात्र पति में ही अनुरागिणी हूँ।१८। संसार में बहुत स्त्रियों वाला पति ही पुण्य और पाप का कारण है। घर, अशन, आसन आदि से तथा भूषणों से और समागमों से निश्चय से।१९। विषमता करने वाला विषमता करने से महापाप को प्राप्त होता है, बड़ी को छोटे भाव से और छोटी को बड़ेपन के भाव में प्राप्त करें।२०। और गुरु को दक्षिणारूप वर देकर जैसे और समिधाओं से होम करना है, विवाहिता स्त्री के सहित नित्य नैमित्तिक क्रिया करनी चाहिए।२१। अन्यभाव से करने पर मनुष्य पापी होता है।"

मार्कण्डेय जी बोले—सब जीवों की बात समझने वाले अपराजित स्वरोचि।२२। उनके इस प्रकार वचन सुनने से लज्जित होकर चिन्ता करने लगे कि "इसने जो कहा वह सत्य है, कुछ भी मिथ्या नहीं है"

रममाणः समन्ताभिर्ददर्श पुरतो मृगम् ॥२३
सुस्निग्धपीनावयवं मृगीयूथविहारिणम् । वासिताभिः स्वरूपाभिर्मृगीभिः परिवारितम् ॥२४
आकृष्टघ्राणपुटका जिघ्रन्तीस्तास्ततो मृगीः । उवाच स मृगोऽलं वो लज्जात्यागेन गम्यताम् ॥२५
नाहं स्वरोचिस्तच्छीलो न चैवाहं सुलोचनाः । निर्लज्जा बहवः सन्ति तादृशास्तत्र गच्छत ॥२६
एका त्वनेकानुगता यथा हासास्पदं जने । अनेकाभिस्तथैवैको भोगदृष्ट्या निरीक्षितः ॥२७
तस्य धर्मक्रियाहानिरहन्यहनि जायते । सक्तोऽन्यभार्यया चान्यकामासक्तः सदैव सः ॥२८
यस्तादृशोऽन्यस्तच्छीलः परलोकपराङ्मुखः । तं कामयत भद्रं वो नाहं तुल्यः स्वरोचिषा ॥२९

इति श्री मार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे द्विषष्टितमोऽध्यायः ।६२।

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

ब्राह्मणवाक्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं निरस्यमानास्ता हरिणेन मृगाङ्गनाः । श्रुत्वा स्वरोचिरात्मानं मेने स पतितं यथा ॥१
त्यागे चकार च मनः स तासां मुनिसत्तम । चक्रवाकीमृगप्रोक्तो मृगचर्याजुगुप्सितः ॥२

तो भी पत्नियों के सहित महाशैल में विहार करते-करते स्वरोचि को सौ वर्ष बीत गये। फिर एक दिन पत्नियों के संग विहार कर रहे थे, इसी समय में सन्मुखवर्ती।२३। चिकना और स्थूलकाय, सब अवयवों से पुष्ट मृगीयूथविहारी एक मृग को देखा। यह मृग अपने समान मृगियों के यूथ में घिरा हुआ था।२४। तब मृगियाँ नासिका सिकोड़कर मृग का गात्र सूँघने लगी, यह देख उक्त मृग उनसे बोला—हे मृगियो! तुमने लज्जा का त्याग किया इससे अन्यत्र गमन करो।२५। हे सुलोचनाओं! मैं स्वरोचि नहीं हूँ और स्वरोचि के समान मेरा स्वभाव भी नहीं है। स्वरोचि के समान अनेक निर्लज्ज मिलेंगे, उनके निकट जाओ।२६। एक स्त्री अनेक पुरुषों की अनुगत होने से जिस प्रकार वह जनसमाज में हास्यास्पद होती है, इसी प्रकार एक मात्र पुरुष अनेक रमणियों से भोगदृष्टि से देखा जाकर हास्यास्पद होता है।२७। उस पुरुष की नित्यधर्मक्रिया की हानि होती है, वह पुरुष एक भार्या के सहित संगत होकर अन्य भार्या-संगम की सदा ही कामना करता है।२८। अत एव परलोकपराङ्मुख ऐसा स्वरोचि के स्वभाव सम्पन्न अन्य जो कोई हो उसकी कामना करो तुम्हारा मंगल हो, मैं स्वरोचि के तुल्य नहीं हूँ।२९

श्रीमार्कण्डेयपुराण में स्वरोचिष मन्वन्तर नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त।६२।

अध्याय ६३

ब्राह्मणवाक्य का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—उक्त मृगाङ्गना हरिण के द्वारा इस प्रकार निराश हुई तब यह सब सुनने के बाद स्वरोचि अपने आपको पतित जानने लगे।१। हे मुनिसत्तम! उन्होंने चक्रवाकी और मृग के द्वारा इस प्रकार निन्दा को प्राप्त हो और मृग का आचरण देख, अपने को निन्दित जान पत्नियों के त्याग करने

समेत्य ताभिर्भूयश्च वर्द्धमानमनोभवः । आक्षिप्तनिर्वेदकथो रेमे वर्षशतानि षट् ।।३
किन्तु धर्माविरोधेन कुर्वन्धर्माश्रिताः क्रियाः । भुङ्क्ते स्वरोचिर्विषयान्सह ताभिरुदारधीः ।।४
ततश्च जज्ञिरे तस्य त्रयः पुत्राः स्वरोचिषः । विजयो मेरुनन्दश्च प्रभावश्च महाबलः ।।५
मनोरमा च विजयं प्रासूतेन्दीवरात्मजा । विभावरी मेरुनन्दं प्रभावं च कलावती ।।६
पद्मिनी नाम या विद्या सर्वभोगोपपादिका । स तेषां तत्प्रभावेण पिता चक्रे पुरत्रयम् ।।७
प्राच्यां तु विजयं नाम कामरूपे नगोत्तमे । विजयाय सुतायादौ स ददौ पुरमुत्तमम् ।।८
उदीच्यां मेरुनन्दस्य पुरीं नन्दवतीमिति । ख्यातां चकार प्रोत्तुङ्गवप्रप्राकारमालिनीम् ।।९
कलावतीसुतस्यापि प्रभावस्य निवेशितम् । पुरं तालमिति ख्यातं दक्षिणापथमाश्रितम् ।।१०
एवं निवेश्य पुत्रान्स पुरेषु पुरुषर्षभ । रेमे ताभिः समं विप्र मनोज्ञास्वद्रिभूमिषु ।।११
एकदा तु गतोऽरण्ये विहरन्स धनुर्द्धरः । चकर्ष धनुरालोक्य वराहमतिदूरगम् ।।१२
अथाह काचिदभ्येत्य तं तदा हरिणाङ्गना । मय्येव पात्यतां बाणः प्रसीदेति पुनः पुनः ।।१३
किमनेन हतेनाद्य मामाशु विनिपातय । त्वया निपातितो बाणो दुःखान्मां मोक्षयिष्यति ।।१४

स्वरोचिरुवाच

न ते शरीरं सरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते । किन्नु तत्कारणं येन त्वं प्राणान्हातुमिच्छसि ।।१५

की अभिलाषा की ।२। किन्तु पत्नियों के सहित होते ही फिर कामप्रवृत्ति बलवती होने से उनका वैराग्य नष्ट हो गया और इसके बाद भी उनके संग छः सौ वर्ष पर्यन्त विहार किया ।३। किन्तु उदारबुद्धि स्वरोचि पत्नियों के सहित जब विषयभोग करते, तब स्वयं धर्मपथ में रहकर समस्त धर्माश्रित क्रिया यथाविहित सम्पन्न करते थे ।४। अनन्तर विजय, मेरुनन्द और प्रभाव नामक स्वरोचि के तीन महाबलवान् पुत्र हुए ।५। इन्दीवर विद्याधर की कन्या मनोरमा के गर्भ से विजय विभावरी के गर्भ से मेरुनन्द और कलावती के गर्भ से प्रभाव का जन्म हुआ ।६। सर्व भोगसंपादिनी पद्मिनी नामक विद्या के प्रभाव से पिता स्वरोचि ने तीन पुर निर्माण किये ।७। पूर्व दिशा में काम रूप पर्वत के ऊपर बना हुआ विजयनामक श्रेष्ठ पुर विजयनामक पुत्र को प्रदान किया ।८। फिर उत्तर दिशा में अत्यन्त ऊँची दीवार प्राकार से संयुक्त नन्दवती नामक विख्यात पुरी मेरुनन्द को ।९। और दक्षिणपथ स्थित ताल नामक पुर कलावती के पुत्र प्रभाव को दिया ।१०। हे विप्र ! उक्त पुरुषश्रेष्ठ इस प्रकार तीनों पुत्रों को तीनों पुर में स्थापित करके पत्नियों के सहित अत्यन्त मनोहर प्रदेश में विहार करने लगे ।११। एक समय उन्होंने धनुर्धारी होकर वन में विहार करते-करते अति दूर स्थित वराह को देख कर धनुष खींचा ।१२। इसी समय में एक हरिणी आकर उनसे बार-बार कहने लगी "यह बाण मेरे प्रति चलाओ मेरे ऊपर प्रसन्न होओ ।१३। इस वराह का मारना निष्फल है, शीघ्र मेरे प्रति बाण चलाओ, आपका चलाया हुआ बाण मेरी दुःख से रक्षा करेगा" ।१४।

स्वरोचि ने कहा—तेरा शरीर रोगी दिखाई नहीं देता तो फिर तू किस कारण प्राण-त्याग करने की इच्छा करती है ।१५

मृग्युवाच

अन्यास्वासक्तहृदये यस्मिंश्चेतः कृतास्पदम् । मम तेन विना मृत्युरौषधं किमिहापरम् ॥१६

स्वरोचिरुवाच

कस्त्वां नाभिलषद्भीरु सानुरागासि कुत्र वा । यदप्राप्तौ निजान्प्राणान्परित्यक्तुं व्यवस्यसि ॥१७

मृग्युवाच

त्वामेवेच्छामि भद्रं ते त्वया मेऽपहृतं मनः । वृणोम्यहमतो मृत्युं मयि बाणो निपात्यताम् ॥१८

स्वरोचिरुवाच

त्वं मृगी चञ्चलापाङ्गी नररूपधरा वयम् । कथं त्वया समं योगो मद्विधस्य भविष्यति ॥१९

मृग्युवाच

यदि सापेक्षितं चित्तं मयि ते मां परिष्वज । यदि वाऽसाधु चित्तं ते करिष्यामि यथेप्सितम् ॥२०
एतावताहं भवता भविष्याम्यतिमानिता ॥

मार्कण्डेय उवाच

आलिलिङ्ग ततस्तां स स्वरोचिर्हरिणाङ्गनाम् ॥२१
तेन चालिङ्गिता सद्यः साभूद्दिव्यवपुर्धरा । ततः सविस्मयाविष्टः का त्वमित्यभ्यभाषत ॥२२
सा चास्मै कथयामास प्रेमलज्जाजडाक्षरम् । अहमभ्यर्थिता देवैः काननस्यास्य देवता ॥२३

मृगी बोली—जिसका हृदय अन्य स्त्री में आसक्त है, मेरा चित्त उसी के प्रति आसक्त हुआ है, अत एव उसके न पाने से मृत्यु ही मेरे इस रोग की औषधि है । दूसरा उपाय क्या है ? ।१६

स्वरोचि ने कहा—हे भीरु ! कौन तेरी अभिलाषा नहीं करता किसके प्रति तू अनुरागिनी हुई है जिसको न पाने से प्राण त्याग करने का संकल्प किया है ? ।१७

मृगी बोली—मैं आपकी ही इच्छा करती हूँ, आपका मंगल हो आपने ही मेरा चित्त हरण किया है । इस कारण मैं मृत्यु की अभिलाषा करती हूँ, आप शीघ्र मेरे प्रति बाण चलाइये ।१८

स्वरोचि ने कहा—तू चञ्चलापाङ्गी मृगी है और मैं मनुष्यरूपधारी हूँ, अत एव मेरे समान मनुष्य का तुम्हारे संग किस प्रकार संयोग होगा ।१९

मृगी बोली—यदि मेरे प्रति आपका चित्त सानुराग हुआ है तो मुझे आलिंगन कीजिये । यदि आपका चित्त साधु न हो तो मैं आपकी इच्छानुसार कार्य सम्पादन करूँगी ।२०। इससे आपके द्वारा मैं अतिसन्मानित हूँगी ।

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर स्वरोचि ने उस हरिणाङ्गना को आलिङ्गन किया ।२१। उनके आलिङ्गन करते ही वह मृगी तत्काल दिव्य देहधारिणी कामिनी हो गई । इससे स्वरोचि ने अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर "तुम कौन हो?" इस प्रकार कहा ।२२। उस मृगी ने भी प्रेमभरी लज्जा से गद्गद वचन द्वारा उससे कहा 'मैं इस वन की अधिदेवता हूँ, देवताओं की प्रार्थना से तुम्हारे समीप आई हूँ ।२३।

उत्पादनीयो हि मनुस्त्वया मयि महामते । प्रीतिमत्यां मयि सुतं भूर्लोकपरिपालकम् ॥२४
तमुत्पादय देवानां त्वामहं वचनाद्वदे ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः स तस्यां तनयं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥२५
तेजस्विनमिवात्मानं जनयामास तत्क्षणात् । जातमात्रस्य तस्याथ देववाद्यानि सस्वनुः ॥
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥२६
सिषिचुः शीकरैर्मेघा ऋषयश्च तपोधनाः ॥२७
देवाश्च पुष्पवर्षं च मुमुचुश्च समन्ततः । तस्य तेजः समालोक्य नाम चक्रे पिता स्वयम् ॥२८
द्युतिमानिति येनास्य तेजसा भासिता दिशः । स बालो द्युतिमान्नाम महाबलपराक्रमः ॥२९
स्वरोचिषः सुतो यस्मात्तस्मात्स्वारोचिषोऽभवत् । स चापि विचरन्रम्ये कदाचिद्गिरिनिर्झरे ॥३०
स्वरोचिर्ददृशे हंसं निजपत्नीसमन्वितम् । उवाच स तदा हंसी साभिलाषां पुनः पुनः ॥३१
उपसंह्रियतामात्मा चिरं ते क्रीडितं मया । किं सर्वकालं भोगैस्ते आसन्नं चरमं वयः ॥३२
परित्यागस्य कालो मे तव चापि जलेचरि

हंस्युवाच

अकालः को हि भोगानां सर्वं भोगात्मकं जगत् ॥३३
यज्ञाः क्रियन्ते भोगार्थं ब्राह्मणैः संयतात्मभिः । दृष्टादृष्टांस्तथा भोगान्वाञ्छमाना विवेकिनः ॥३४

हे महामते ! मुझमें मनु उत्पन्न करना तुम्हारा कर्त्तव्य है, मैं तुम्हारे प्रति अनुरागिणी हूँ, मुझमें वह भूर्लोकपरिपालक पुत्र उत्पन्न कीजिये ।२४। यह मैंने देवताओं के वचनानुसार कहा ।"

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर स्वरोचि ने उस वनदेवता के गर्भ से तत्काल सर्वलक्षणयुक्त आत्मतुल्य तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया। तब उस पुत्र का जन्म होते ही समस्त देवबाजे बजने लगे, गंधर्वपति गान करने लगे और अप्सराओं के यूथ के यूथ नाचने लगे ।२५-२६। दिशाओं के हाथी जलशीकर सिंचन करने लगे एवं तपोधन ऋषिगण ।२७। और देवतागण चारों दिशाओं में पुष्पवृष्टि करने लगे । उस बालक के तेज से संपूर्ण दिशा प्रकाशमान हुई थी ऐसी अंग की द्युति देखकर पिता स्वरोचि ने पुत्र का ।२८। "द्युतिमान्" यह सार्थक नाम रखा यह द्युतिमान् बालक महाबली पराक्रमी हुआ ।२९। स्वरोचि का पुत्र होने के कारण उस महाबली द्युतिमान् नामक बालक का "स्वरोचिष" यह नाम भी हुआ था। फिर किसी समय रमणीय गिरिनिर्झर में विचरण करते-करते ।३०। उक्त स्वरोचि ने निज पत्नी के सहित एक हंस को देखा वह हंस अभिलाषायुक्त हंसी से बार-बार कहने लगा ।३१। हे जलचरि ! मन को निवृत्त कर, तेरे संग मैंने बहुत काल तक बिहार किया है सदा तुम्हारे संग भोग करने से क्या लाभ होगा ? अब वृद्ध अवस्था उपस्थित है ।३२। यह तुम्हारे और मेरे दोनों के विषयवासना त्यागने का समय है ।

हंसी बोली—भोग का कालाकाल क्या ? देखो, यह जगत् सर्व भोगमय है ।३३। क्योंकि संयतात्मा ब्राह्मणगण भोग के निमित्त ही यज्ञ करते हैं और ज्ञानी पुरुष दृष्टादृष्ट भोगों की कामना करते हुए ।३४।

दानानि च प्रयच्छन्ति पूतान्धर्मांश्च कुर्वते । स त्वं नेच्छसि किं भोगान्भोगश्रेष्टफलं नृणाम् ।।३५
विवेकिनां तिरश्चां च किं पुनः संयतात्मनाम्

हंस उवाच

भोगेष्वासक्तचित्तानां परमार्थान्विता मतिः । भविष्यति कदा सङ्गमुपेतानां च बन्धुषु ।।३६
पुत्रमित्रकलत्रेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः । सरःपङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ।।३७
किं न पश्यसि वा भद्रे जातसङ्गं स्वरोचिषम् । आबाल्यात्कामसंसक्तं मग्नं स्नेहाम्बुकर्दमे ।।३८
यौवनेऽतीव भार्यासु साम्प्रतं पुत्रनप्तृषु । स्वरोचिषो मनो मग्नमुद्धारं प्राप्स्यते कुतः ।।३९
नाहं स्वरोचिषस्तुल्यः स्त्रीवश्यो वा जलेचरि । विवेकवांश्च भोगानां निवृत्तोऽस्मि च साम्प्रतम्।।४०

मार्कण्डेय उवाच

स्वरोचिरेतदाकर्ण्य जातोद्वेगः खगेरितम् । आदाय भार्यास्तपसे ययावन्यत्तपोवनम् ।।४१
तत्र तप्त्वा तपो घोरं सह ताभिरुदारधीः । जगाम लोकानमलान्निवृत्ताखिलकल्मषः ।।४२

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।६३।

दान और पूर्त धर्म (वापी कूप देवमन्दिर निर्माण का) अनुष्ठान करते हैं । संयतात्मा और विवेकी मनुष्यों का भी जब भोग ही कर्म फल है तो तिर्यक् जाति के पक्ष में फिर कहना ही क्या है ।३५। अत एव भोग की तुम किस कारण से इच्छा नहीं करते ?

हंस ने कहा—जिनका चित्त भोग में आसक्त नहीं है, उनकी मति परमात्मानुगामिनी है, बन्धुवर्ग के सहित संगतिवाले मनुष्य की क्या कभी वैसी मति हो सकती है ? ।३६। पुत्र-मित्र और स्त्री में आसक्त प्राणिगण सरोवर की कीचड़ में डूबे हुए वन हाथी के समान दुःख को प्राप्त होते हैं ।३७। हे भद्रे ! बाल्य अवस्था से कामासक्त स्नेहरूपी सजल कीचड़ में डूबे हुए जातसंग (विषयानुरागी) स्वरोचि को क्या तुमने नहीं देखा है ? ।३८। यौवनवती भार्या और पुत्र तथा नातियों में निमग्न हुए स्वरोचि के मनका किस प्रकार उद्धार होगा ।३९। हे जलचरि ! मैं स्वरोचि के समान स्त्रीगणों के वशीभूत नहीं हूँ मैं ज्ञानवान् हूँ अब भोग से निवृत्त हुआ हूँ ।४०

मार्कण्डेय जी बोले—खग के कहे इस प्रकार वचन सुनकर स्वरोचि तीनों भार्या के सहित तपस्या करने के लिए तपोवन में चले गये ।४१। वहाँ उदारबुद्ध स्वरोचि ने पत्नियों के सहित घोर तपस्या का आचरण करके संपूर्ण पापों से मुक्त होकर विमललोक (स्वर्गादि) में गमन किया ।४२

श्रीमार्कण्डेयपुराण स्वारोचिष मन्वन्तर नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ।६३।

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

स्वारोचिषमन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स्वारोचिषं नाम्ना द्युतिमन्तं प्रजापतिम् । मनुं चकार भगवांस्तस्य मन्वन्तरं शृणु ।।१
तत्रान्तरे तु ये देवा मुनयस्तत्सुताश्च ये । भूपालाः क्रौष्टुके ये तान्गदतस्त्वं निशामय ।।२
देवाः पारावतास्तत्र तथैव तुषिता द्विज । स्वारोचिषेऽन्तरे चेन्द्रो विपश्चिदिति विश्रुतः ।।३
ऊर्जस्तम्बस्तथा प्राणो दत्तोऽलिर्ऋषभस्तथा । निश्चरश्चार्ववीरश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवम् ।।४
चैत्रकिंपुरुषाद्याश्च सुतास्तस्य महात्मनः । सप्तासन्सुमहावीर्याः पृथिवीपरिपालकाः ।।५
तस्य मन्वन्तरं यावत्तावत्तद्वंशविस्तरे । भुक्तेयमवनिः सर्वा द्वितीयं वै तदन्तरम् ।।६
स्वरोचिषस्तु चरितं जन्म स्वारोचिषस्य च । निशम्य मुच्यते पापैः श्रद्धधानो हि मानवः ।।७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वारोचिषसमाप्तिर्नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।६४।

अध्याय ६४

स्वारोचिष मन्वन्तर का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर भगवान् ने द्युतिमान् या स्वारोचिष नामक प्रजापति को मनु बनाया था, उनका मन्वन्तर सुनो ।१। हे क्रौष्टुके ! उस स्वारोचिष मन्वन्तर में जो देवता, मुनि और मनुपुत्र भूपालगण थे, उनका मैं वर्णन करता हूँ, तुम मुझसे श्रवण करो ।२। हे द्विज ! उस स्वारोचिष मन्वन्तर में देवगण पारावत और तुषित नाम से तथा इन्द्र विपश्चित नाम से विख्यात थे ।३। ऊर्ज्जस्तम्ब, प्राण, दत्त, अलि, ऋषभ, निश्चर और अर्ववीर नाम से विख्यात सप्तर्षि थे ।४। महात्मा स्वारोचिष मनु के चैत्र और किम्पुरुष इत्यादि महावीर्यवान् सात पुत्र पृथ्वीपालक थे ।५। जितने दिन तक उनका मन्वन्तर था, तब तक उसके वंश के राजाओं ने सब पृथ्वी को भोग किया, मन्वन्तरों में स्वारोचिष मन्वन्तर दूसरा है ।६। इन स्वरोचि का चरित्र और स्वारोचिष मनु का जन्म श्रद्धा-सहित सुनने पर मनुष्य पापों से छूट जाता है ।७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में स्वारोचिष समाप्ति नामक चौंसठवाँ अध्याय समाप्त ।६४।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

निधिवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन्कथितं सर्वं विस्तरेण त्वया मम । स्वरोचिषस्तु चरितं जन्म स्वारोचिषस्य तु ।।१
या तु सा पद्मिनी नाम विद्या भोगोपपादिका । तत्संश्रया ये निधयस्तान्मे विस्तरतो वद ।।२
अष्टौ ये निधयस्तेषां स्वरूपं द्रव्यसंस्थितिः । भवताभिहितं सम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यहं गुरो ।।३

मार्कण्डेय उवाच

पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याश्च देवता । तदाधाराश्च निधयस्तन्मे निगदतः शृणु ।।४
यत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकरकच्छपौ । मुकुन्दो नंदकश्चैव नीलः शङ्खोऽष्टमो निधिः ।।५
सत्यामृद्धौ भवन्त्येते सिद्धिस्तेषां हि जायते । एते ह्यष्टौ समाख्याता निधयस्तव क्रौष्टुके ।।६
देवतानां प्रसादेन साधुसंसेवनेन च । एभिरालोकितं वित्तं मानुषस्य सदा मुने ।।७
यादृक्स्वरूपं भवति तन्मे निगदतः शृणु । पद्मो नाम निधिः पूर्वं स यस्य भवति द्विज ।।८
स तस्य तत्सुतानां च तत्पौत्राणां च नित्यशः । दाक्षिण्यसारः पुरुषस्तेन चाधिष्ठितो भवेत् ।।९
सत्त्वाधारो महाभागो यतोऽसौ सात्त्विको निधिः । सुवर्णरूप्यताम्रादिधातूनां च परिग्रहम् ।।१०

अध्याय ६५

निधि का वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! स्वरोचि का चरित्र और स्वारोचिष मनु के जन्म का वृत्तान्त आपने मुझसे विस्तारपूर्वक कहा है।१। किन्तु सर्वभोगसम्पादिनी पद्मिनी नामक विद्या के आश्रित जो सब निधि हैं, उनका विषय मुझसे विस्तार सहित वर्णन कीजिये।२। हे गुरो ! आठ प्रकार की निधियों का स्वरूप और द्रव्यसंस्थिति भलीभाँति आपके मुख से सुनने की अभिलाषा हुई है।३

मार्कण्डेय जी बोले—पद्मिनी नामक विद्या की अधिष्ठात्री देवता लक्ष्मी हैं यह विद्या आठ प्रकार की निधि का आधारस्वरूप है। मैं तुमसे इसका विषय कहता हूँ सुनो।४। पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शंखनामक आठ निधि पद्मिनी विद्या के आश्रित हैं।५। समृद्धि होने से यह निधियाँ और उनकी सिद्धि लाभ होती है। क्रौष्टुके ! यह अष्टविधि निधि तुम्हारे निकट कही गईं।६। हे मुने ! देवता के प्रसाद और साधु सेवा के फल से मनुष्य का वित्त, निधियों के द्वारा सर्वदा अवलोकित होता है।७। इसका जैसा स्वरूप है, वह मैं कहता हूँ, सुनो ! हे द्विज ! पद्मनामक निधि पहले सदा मनुष्य के।८। और फिर क्रमानुसार उसके पुत्र और पौत्र और प्रपौत्र के अधीन में रहती है। इस निधि के द्वारा अधिष्ठित होने से पुरुष चतुरतासंपन्न।९। सत्त्वगुणसम्पन्न और महाभोगी होता है, क्योंकि यह निधि सात्त्विक है। यह पद्मनिधि से युक्त पुरुष बहुत से सुवर्ण, चाँदी-ताम्र आदि सब धातुओं

करोत्यतितरां सोऽथ तेषां च क्रयविक्रयम् । करोति च तथा यज्ञान्दक्षिणां च प्रयच्छति ॥११
(संपादयति कामांश्च सर्वानिव यथाक्रमम् । सभां देवनिकेतांश्च स कारयति तन्मनाः ॥
सत्त्वाधारो निधिश्चान्यो महापद्म इति श्रुतः ॥१२
सत्त्वप्रधानो भवति तेन चाधिष्ठितो नरः । करोति पद्मरागादिरत्नानां च परिग्रहम् ॥१३
मौक्तिकानां प्रवालानां तेषां च क्रयविक्रयान् । ददाति योगशीलेभ्यस्तेषामावसथांस्तथा ॥१४
स कारयति तच्छीलः स्वयमेव च जायते । तत्प्रसूतास्तथाशीलाः पुत्रपौत्रक्रमेण च ॥१५
पूर्वर्द्धिमात्रः सप्तासौ पुरुषांश्च न मुञ्चति । तामसो मकरो नाम निधिस्तेनावलोकितः ॥१६
पुरुषोऽथ तमःप्रायः सुशीलोऽपि हि जायते । बाणखड्गर्ष्टिधनुषां चर्मणां च परिग्रहम् ॥१७
दंशनानां च कुरुते योऽतिमैत्री च राजभिः । ददाति शौर्यवृत्तीनां भूभुजां ये च तत्प्रियाः ॥१८
क्रयविक्रये च शस्त्राणां नान्यत्र प्रीतिमेति च । एकस्यैव भवत्येष नरस्य न सुतानुगः ॥१९
द्रव्यार्थं दस्युतो नाशं संग्रामे वापि स व्रजेत् । कच्छपश्च निधिर्योऽसौ नरस्तेनाभिवीक्षितः ॥२०
तमःप्रधानो भवति यतोऽसौ तामसो निधिः । व्यवहारानशेषांस्तु पुण्यजातैः करोति च ॥२१
कर्मस्थानखिलांश्चैव न विश्वसिति कस्यचित् । समस्तानि यथाङ्गानि संहरत्येव कच्छपः ॥२२
तथाविष्टभ्य रत्नानि तिष्ठत्याकुलमानसः । न ददाति न वा भुङ्क्ते तद्विनाशभयाकुलः ॥२३

का परिग्रह ।१०। और क्रयविक्रय करता है, बहुत से यज्ञ करके विपुल दक्षिणा देता है ।११। (यथाक्रम संपूर्ण मनोरथों को सिद्ध करता है) और एकाग्रचित्त से सभा और देवालय (मन्दिर) बनवाता है, महापद्म निधि सत्त्वाधार के नाम से प्रसिद्ध है ।१२। तदधिष्ठित मनुष्य भी सत्त्वप्रधान होता है । महापद्माधिष्ठित मनुष्य पद्मरागादि रत्नों का संचय ।१३। तथा मोती और मूँगे का स्वामी होकर उनका क्रय-विक्रय करता है, योगियों को उनका स्थान प्रदान ।१४। और साधारण पुरुषों को योगाभ्यास में उत्साह प्रदान करता है और स्वयं भी योगशील होता है । तद्वंशीय पुत्र-पौत्रादि क्रमशः उसके अनुरूप ही शीलवान् होते हैं ।१५। किन्तु यह महापद्मनिधि पूर्ववर्ती पुरुषों की अपेक्षा पीछे के सब पुरुषों में क्रमशः अर्द्ध-अर्द्ध परिमाण से स्थित होकर सात पुरुष तक नहीं त्यागती, मकरनामक निधि तामस है । तदधिष्ठित पुरुष ।१६। प्रायः तमोगुणप्रधान और सुशील होता है, वह मकराधिष्ठित पुरुष धनुर्बाण, खड्ग, ढाल और ऋष्टि (आयुध) ग्राही होता है ।१७। भोजन करने की वस्तु का भलीभाँति स्वाद ग्रहण करने में समर्थ होता है राजाओं के संग मित्रता स्थापन करता है, भूपाल का प्रिय शौर्य वृत्तिवाले मनुष्यों को दान करके तृप्त होता है ।१८। शास्त्रों के क्रय-विक्रय विना प्रसन्न नहीं होता है और वह पुरुष द्रव्य के लोभ से तस्कर द्वारा अथवा युद्ध में विनाश को प्राप्त होता है । यह मकरनिधि एक पुरुषानुगामी अर्थात् एक पीढ़ी तक प्राप्त रहती है, इसके बाद के पुरुष की अनुगामी नहीं है । कच्छप (मकर) नामक निधि तामस कही गई है । जिस पुरुष पर इसकी दृष्टि पड़ती है ।१९-२०। वह पुरुष तमोगुणप्रधान होता है वह पुरुष पुण्ययुक्त सम्पूर्ण आचार-व्यवहार ।२१। और कर्म के अधीन हो संपूर्ण भोग्य पदार्थों को भोगता है, किसी का भी विश्वास नहीं करता, और कछुआ जिस प्रकार अपना अंग छिपाता है ।२२। इसी प्रकार अपना अभिप्राय गुप्त रीति से स्थिर कर चित्तसंयमपूर्वक स्थिति करता है और विनाश के भय से डरकर स्वयं वित्त (धनादि को)

निधानमुर्व्यां कुरुते निधिः सोऽप्येकपूरुषः । रजोगुणमयश्चान्यो मुकुन्दो नाम यो निधिः ॥२४
नरोऽवलोकितस्तेन तद्‌गुणो भवति द्विज । वीणावेणुमृदङ्गानामातोद्यस्य परिग्रहम् ॥२५
करोति गायतां वित्तं नृत्यतां च प्रयच्छति । बन्दिमागधसूतानां विटानां लास्यपाठिनाम् ॥२६
ददात्यहर्निशं भोगान्भुङ्क्ते तैश्च समं द्विज । कुलटासु रतिश्चास्य भवत्यन्यैश्च तद्विधैः ॥२७
प्रयाति सङ्गमेकं च यं निधिर्भजते नरम् । रजस्तमोमयश्चान्यो नन्दो नाम महानिधिः ॥२८
उपैति स्तम्भमधिकं नरस्तेनावलोकितः । समस्तधातुरत्नानां पुण्यधान्यादिकस्य च ॥२९
परिग्रहं करोत्येष तथैव क्रयविक्रयम् । आधारः स्वजनानां च आगताभ्यागतस्य च ॥३०
सहते नापमानोक्तिं स्वल्पमपि महामुने । स्तूयमानश्च महतीं प्रीतिं बध्नाति यच्छति ॥३१
यं यमिच्छति वै कामं मृदुत्वमुपयाति च । बह्वयो भार्या भवन्त्यस्य सूतिमत्योऽतिशोभनाः ॥३२
भजते सप्त च नरान्निधिर्नन्दोऽनुवर्तते । प्रवर्द्धमानोऽथ नरमष्टभागेन सत्तम ॥३३
दीर्घायुष्ट्वं च सर्वेषां पुरुषाणां प्रयच्छति । बन्धूनामेव भरणं ये च दूरादुपागताः ॥३४
तेषां करोति वै नन्दः परलोके न चादृतः । भवत्यस्य न च स्नेहः सहवासिषु जायते ॥३५
पूर्वमित्रेषु शैथिल्यं प्रीतिमन्यैः करोति च । तथैव सत्त्वरजसी यो विभर्ति महानिधिः ॥३६

नहीं भोगता और दूसरे को भी नहीं दे सकता ।२३। यह निधि एक पीढ़ी तक भूतल में स्थित रहती है । हे द्विज ! मुकुन्दनामक अन्य निधि रजोगुणमयी है ।२४। जिस मनुष्य पर इसकी दृष्टि पड़ती है, वह मनुष्य रजोगुणयुक्त होता है । मुकुन्दाश्रित मनुष्य वीणा, वेणु, मृदंग इत्यादि चार प्रकार के बाजों का परिग्रह करता है ।२५। गाने और नाचनेवालों को बहुत धन देता है, बन्दी, सूत, मागध, विट (लम्पट) और लास्यपाठी गान नृत्य विशेष करनेवाले मनुष्यों को ।२६। रात-दिन अभिलषित भोग प्रदान करता है, और उनके संग स्वयं भोजन करता है । इस मनुष्य की कुलटा और उनके तुल्य मनुष्य के साथ प्रीति होती है ।२७। यह निधि जिसका भजन करती है, उसकी अनुगामी रहती है उसके वंशवालों की अनुगामी नहीं होती । नन्दनामक महानिधि रज और तम इन दोनों गुणों से युक्त है ।२८। जिस मनुष्य पर इसकी दृष्टि पड़ती है, वह अत्यन्त स्तम्भित अर्थात् जड़ता को प्राप्त होता है । नन्दाधिष्ठित मनुष्य समस्त धातु रत्न और धान्यादि पवित्र ।२९। द्रव्य का परिग्रह और क्रय-विक्रय करता है । हे महामुने ! वह मनुष्य स्वजनवर्ग एवं आगत और अभ्यागत पुरुषों का आश्रयस्वरूप होता है ।३०। किंचित् अपमानोक्ति अर्थात् निरादर नहीं सह सकता प्रशंसा करने से अत्यन्त आनन्दित होता है ।३१। अर्थिगण जिस-जिस वस्तु की अभिलाषा करते हैं, उनको वही वस्तु देता है । वह स्वयं मृदुस्वभाव सम्पन्न होता है, और पुत्रवती अतिसुन्दरी बहुत भार्यायें उसकी प्रीति संपादन करती हैं ।३२। हे सत्तम ! नन्दनिधि प्रतिपुरुष में क्रमशः अष्टम भाग में बढ़ते-बढ़ते सात पुरुष पर्यन्त अनुगामी होती है ।३३। और आश्रित पुरुष को दीर्घायु करती है नन्दाधिष्ठित मनुष्य बन्धुवर्ग और दूर देश से आये हुए मनुष्यों का भरण-पोषण करता है ।३४। किन्तु यह परलोक के प्रति यत्नवान् नहीं होता, और जो नगरवासियों से वह स्नेह भी नहीं करता ।३५। और पूर्व मित्र में शिथिलता और नवीन मित्र में प्रीति स्थापित होती है । इसी प्रकार सत्त्व और रजोगुण सम्पन्न महानिधि है ।३६। उसका नाम नीलनिधि है, उससे अधिष्ठित पुरुष भी सत्त्व और रजोगुणयुक्त

स नीलसंज्ञस्तत्सङ्गी नरस्तच्छीलवान्भवेत् । वस्त्रकार्पासधान्यादिफलपुष्पपरिग्रहम् ।।३७
मुक्ताविद्रुमशङ्खानां शुक्त्यादीनां तथा मुने । काष्ठादीनां करोत्येष यच्चान्यज्जलसम्भवम् ।।३८
क्रयविक्रयमन्येषां नान्यत्र रमते मनः । तडागान्पुष्करिण्योऽथ तथारामान्करोति च ।।३९
बन्धं च सरितां वृक्षांस्तथारोपयते नरः । अनुलेपनपुष्पादिभोगभुग्वाभिजायते ।।४०
त्रिपौरुषश्चापि निधिर्नीलो नामैष जायते । रजस्तमोमयश्चान्यः शङ्खसंज्ञो हि यो निधिः ।।४१
तेनापि नीयते विप्र तद्‌गुणित्वं निधीश्वरः । एकस्यैव भवत्येष नरं नान्यमुपैति च ।।४२
यस्य शङ्खो निधिस्तस्य स्वरूपं क्रौष्टुके शृणु । एक एवात्मना सृष्टमन्नं भुङ्क्ते तथाम्बरम् ।।४३
कदन्नभुक्परिजनो न च शोभनवस्त्रधृक् । न ददाति सुहृद्भार्याभ्रातृपुत्रस्नुषादिषु ।।४४
स्वपोषणपरः शङ्खी नरो भवति सर्वदा । इत्येते निधयः ख्याता नराणामर्थदेवताः ।।४५
मिश्रावलोकनान्मिश्राः स्वभावफलदायिनः । यथाख्यातस्वभावस्तु भवत्येव विलोकनात् ।।
सर्वेषामाधिपत्ये च श्रीरेषां द्विजपद्मिनी ।।४६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे निधिवर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।६५।

होता है जिस मनुष्य पर इसकी दृष्टि पड़ती है, वह मनुष्य वस्त्र, कपास, धान्यादि सस्य, फल, पुष्प.।३७। मोती, मूँगा, शंख, सीपी इत्यादि तथा जलोत्पन्न वस्तु और काष्ठादि पदार्थों को ग्रहण करता है ।३८। और अपने भोगने योग्य वस्तु के अतिरिक्त फिर इन सब पदार्थों का क्रय विक्रय भी करता है इसको छोड़कर अन्य विषय में इसकी मानसिक प्रीति उत्पन्न नहीं होती ।३९। यह मनुष्य तालाब, पुष्करिणी, उपवन और नदी का पुल बंधवाता है, तथा वृक्ष (पंचाम्र इत्यादि) लगाता है और अनुलेपन पुष्पादि भोग्य वस्तुओं को भोगकर ख्याति लाभ करता है ।४०। यह नीलनामक निधि त्रिपौरुष अर्थात् तीन पुरुष पर्यन्त अनुगामी होती है । शंख नामक जो अन्य निधि है, वह रज और तमोगुणमय है ।४१। इसके संग से शंख निधीश्वर पुरुष भी रजोगुण और तमोगुण संपन्न होता है । यह शंखनिधि एक पुरुष की अनुगामी है, कभी उसके परवर्त्ती पुरुष में अधिष्ठान नहीं करती ।४२। हे क्रौष्टुके ! शंखनिधि जिसके वशीभूत होती है, उसका स्वरूप सुनो । शंखनिधीश्वर स्वयं अपना उपार्जित उत्तम अन्न भोजन और उत्तम वस्त्र पहनता है ।४३। किन्तु उसके कुटुम्बी मनुष्य, कुत्सित अन्न भोजन और कुवस्त्र पहनकर कष्ट से समय बिताते हैं । शंखी पुरुष सुहृद्, भार्या, भाई, पुत्र और पुत्रवधू आदि का भरण-पोषण करने के लिए कुछ नहीं देता ।४४। अपना ही पोषण करने में तत्पर होता है, यह निधि सब मनुष्यों की अर्थदेवता कहकर प्रसिद्ध हैं ।४५। इनके देखने से मनुष्य उल्लिखितस्वभाव संपन्न होता है । किन्तु यह निधिगण मिश्रावलोकन से मिश्र फलदायक और स्वतंत्रतावलोकन से अपना-अपना फल देने वाली होती है । हे द्विज ! यह श्रीरूपिणी पद्मिनी नामक विद्या उक्त आठ प्रकार की निधि के आधिपत्य में स्थित है ।४६

श्रीमार्कण्डेयपुराण में निधि वर्णन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ।६५।

षट्षष्टितमोऽध्यायः

ऋषिदर्शनवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

विस्तरात्कथितं ब्रह्मन्मम स्वारोचिषं त्वया । मन्वन्तरं तथैवाष्टौ ये पृष्टा निधयो मया ।।१
स्वायम्भुवं पूर्वमेव मन्वन्तरमुदाहृतम् । मन्वन्तरं तृतीयं मे कथयौत्तमसंज्ञितम् ।।२

मार्कण्डेय उवाच

उत्तानपादपुत्रौऽभूदुत्तमो नाम नामतः । सुरुच्यास्तनयः ख्यातो महाबलपराक्रमः ।।३
धर्मात्मा च महात्मा च पराक्रमधनो नृपः । अतीत्य सर्वभूतानि बभौ भानुपराक्रमः ।।४
समः शत्रौ च मित्रे च परे पुत्रे च धर्मवित् । दुष्टे च यमवत्साधौ सोमवच्च महामुने ।।५
बाभ्रव्यां बहुलां नाम उपयेमे स धर्मवित् । उत्तानपादतनयः शचीमिन्द्र इवोत्तमः ।।६
तस्यामतीव तस्यासीद्द्विजवर्य मनः सदा । स्नेहवच्छशिनो यद्वद्रोहिण्यां निहितास्पदम् ।।७
अन्यप्रयोजनासक्तिमुपैति न हि तन्मनः । स्वप्ने चैव तदालम्बि मनोऽभूत्तस्य भूभृतः ।।८
स च तस्याः सुचार्वङ्ग्या दर्शनादेव पार्थिवः । ददाह लोचनैर्गात्रे गात्रस्पर्शश्च तन्मयः ।।९

अध्याय ६६

ऋषि-दर्शन-वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने स्वारोचिषमन्वन्तर विस्तार से कहा इसी प्रकार और आठ मन्वन्तर तथा जो निधि मैंने पूँछी है, वह कहिये ।१। स्वायम्भुव मन्वन्तर तो आप पहले कह चुके हैं अब औत्तमनामक तीसरे मन्वन्तर की कथा कहिये ।२

मार्कण्डेय जी बोले—सुरुचि नामक रानी के गर्भ से उत्तानपादनृपति के महाबल पराक्रमशाली उत्तम नामक प्रसिद्ध पुत्र का जन्म हुआ ।३। धर्मशील और पराक्रमशाली वह उत्तमनामक महात्मा नृपति अपने पराक्रम से सब प्राणियों में सूर्य के समान दीप्तिमान् थे ।४। हे महामुनि ! वह धर्मात्मा राजा शत्रु-मित्र में और प्रजा-पुत्र में समानदृष्टि रखते थे । वह दुष्टों के निकट यम के समान उग्र और शिष्टों के निकट चन्द्रमा के समान सौम्य प्रकृति रहते थे ।५। इन्द्र ने जिस प्रकार सर्वलोक विख्यात शची से विवाह किया है ऐसे ही उन उत्तानपाद तनय धर्मज्ञ उत्तम ने बभ्रुतनया बहुला नामक प्रसिद्ध कन्या से विवाह किया था ।६। हे द्विजवर ! शशिधर (चन्द्रमा) का चित्त जिस प्रकार रोहिणी के प्रति अत्यन्त आसक्त है इसी प्रकार उस भूपाल का चित्त उक्त बहुला के प्रति अत्यन्त अनुरक्त था ।७। उस राजा का चित्त बहुला के अतिरिक्त अन्य किसी के प्रति आसक्त नहीं होता, अधिक क्या स्वप्न में भी उनका मन उस एक मात्र प्रिया का ही अवलम्बी होता, अर्थात् बहुला के अतिरिक्त अन्य नारी स्वप्न के समय भी उनके मन में स्थान नहीं पाती ।८। वह पार्थिव दर्शनमात्र से ही उल्लिखित रूपवती प्रिया का अंग स्पर्श करते और स्पर्श करते ही

श्रोत्रोद्वेगकरं वाक्यं प्रियमप्यवनीपतेः । तस्यापि भूरि सन्मानं मेने परिभवं ततः ॥१०
अवमेने स्रजं दत्तां शुभान्याभरणानि च । उत्तस्थावर्धपीतेव पिबतोऽस्य वरासवम् ॥११
भुञ्जता च नरेन्द्रेण क्षणमात्रं करे धृता । बुभुजे स्वल्पकं भक्ष्यं द्विज नातिमुदावती ॥१२
एवं तस्यानुकूलस्य नानुकूला महात्मनः । प्रभूततरमत्यर्थं चक्रे रागं महीपतिः ॥१३
अथ पानगतो भूपः कदाचित्तां मनस्विनीम् । सुराभृतं पानपात्रं ग्राहयामास सादरः ॥१४
पश्यतां भूमिपालानां वारमुख्या समन्वितः । प्रगीयमानो मधुरैर्गेयगायनतत्परैः ॥१५
सा तु नेच्छति तत्पात्रमादातुं तत्पराङ्मुखी । समक्षमवनीशानां ततः क्रुद्धः स पार्थिवः ॥१६
उवाच द्वाःस्थमाहूय निश्वसन्नुरगो यथा । निराकृतस्तया देव्या प्रियया पतिरप्रियः ॥१७
द्वाःस्थैनां दुष्टहृदयामादाय विजने वने । परित्यज्याशु नैतत्ते विचार्यं वचनं मम ॥१८

मार्कण्डेय उवाच

ततो नृपस्य वचनमविचार्यमवेक्ष्य सः । द्वाःस्थस्तत्याज तां सुभ्रूमारोप्य स्यन्दने वने ॥१९
सा च तं विपिने त्यागं नीता तेन महीभृता । अपश्यमाना तं मेने परं कृतमनुग्रहम् ॥२०
सोऽपि तत्रानुरागार्तिदह्यमानात्ममानसः । औत्तानपादिर्भूपालो नान्यां भार्यामविन्दत ॥२१

तन्मय हो जाते ।९। किन्तु रानी उस पृथ्वीपति के प्रिय वचन भी कानों को कड़वे और उनका अत्यन्त सन्मान करना भी अपना अपमान मानती थी ।१०। रानी उनकी दी हुई माला और रमणीय आभरणों (गहनों) में अवज्ञा प्रकट करती अत्यन्त उत्तम आसव पान के समय उनके निकट से दुःख अनुभव करती व्यथित शरीर वाली के समान उठ जाती ।११। हे द्विज ! नरेन्द्र भोजन करते-करते यदि हाथ पकड़कर उसके अनुरोध करते, तब वह अप्रसन्न चित्त से कुछेक थोड़ा भोजन करती ।१२। इस प्रकार महात्मा महीपति के प्रति रानी के अनुकूल न होने पर भी वह अधिकतर अनुराग प्रकट करते ।१३। अनन्तर एक समय संगीत में चतुर श्रेष्ठ वाराङ्गना मधुर स्वर से राजा के समीप गान कर रही थीं उस समय भूपाल ने पानासक्त होकर समीप में स्थित राजवर्ग के सामने ही सादर उस मनस्विनी पत्नी को सुरा से भरा हुआ पानपात्र दिया ।१४-१५। किन्तु राजाओं के सामने भी रानी ने उनसे विमुख होकर पानपात्र ग्रहण करने की इच्छा नहीं की, इससे राजा क्रोधित होकर ।१६। सर्प के समान श्वास छोड़ते हुए द्वारपाल को बुलाकर कहने लगे, हे प्रतिहारिन् ! इस प्रियतमा देवी बहुला ने अप्रिय जानकर मेरा निरादर किया है ।१७। इस कारण इस दुष्टहृदया को ले जाकर शीघ्र निर्जन वन में छोड़ आओ । मेरी यह आज्ञा अच्छी है या बुरी, इसका विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।१८

मार्कण्डेय जी बोले—उक्त द्वारपाल अच्छे बुरे का विचार न करके "राजकीय आज्ञा" है केवल इतना ही विचार कर उस सुभ्रू रानी को रथ में चढ़ाकर वन में छोड़ आया ।१९। महीपति के वन में त्याग करने पर "अब राजा के सामने नहीं होना पड़ेगा" रानी यही राजा का महान् अनुग्रह मानने लगी ।२०। इस ओर उस उत्तानपाद के पुत्र भूपाल ने रानी के प्रति अत्यन्त प्रीति होने के कारण दुःख से दह्यमानहृदय हो अन्य भार्या ग्रहण नहीं की ।२१। केवल दुःखित चित्त से उसी शोभायमान अंगवाली पत्नी का स्मरण करने लगे।

सस्मार तां सुचार्वङ्गीमहर्निशमनिर्वृतः । चकार च निजं राज्यं प्रजाधर्मेण पालयन् ॥२२
प्रजाः पालयतस्तस्य पितुः पुत्रानिवौरसान् । आगत्य ब्राह्मणः कश्चिदिदमाहार्त्तमानसः ॥२३

ब्राह्मण उवाच

महाराज भृशार्त्तोऽस्मि श्रूयतां गदतो मम । नृणामार्तिपरित्राणमन्यतो न नराधिपात् ॥२४
मम भार्या प्रसुप्तस्य केनाप्यपहृता निशि । गृहद्वारमनुद्घाटच तां समानेतुमर्हसि ॥२५

राजोवाच

न वेत्सि केनापहृता क्व वा नीता तु सा द्विज । यतामि विग्रहे कस्य कुतो वाप्यानयामि ताम् ॥२६

ब्राह्मण उवाच

तथैव स्थगिते द्वारि प्रसुप्तस्य गृहे मम । हृता हि भार्या किं केनेत्येतद्विज्ञायते भवान् ॥२७
त्वं रक्षिता नो नृपते षड्भागादानवेतनः । धर्मस्य तेऽतो निश्चिन्ताः स्वपन्ति मनुजा निशि ॥२८

राजोवाच

न ते दृष्टा मया भार्या यादृग्रूपा च देहतः । वयश्चैव समाख्याहि किंशीला ब्राह्मणी च ते ॥२९

ब्राह्मण उवाच

कठोरनेत्रा सात्युच्चा ह्रस्वबाहुः कृशानना । (लम्बोदरीं ह्रस्वस्फिजं तथा ह्रस्वस्तनीं नृप) ॥

किन्तु वह ऐसी अवस्था में भी धर्मानुगत होकर प्रजा पालन करते हुए अपने राज्य का शासन करते थे ।२२। भूपति औरस पुत्र के समान प्रजा पालन करते थे उसी समय एक दिन कोई ब्राह्मण उनके समीप आकर दुःखित चित्त से यह वचन कहने लगा ।२३। हे महाराज ! मैं अत्यन्त क्लेश पा रहा हूँ, मेरा वचन सुनिये, क्योंकि राजा के अतिरिक्त अन्य किसी से भी मनुष्यों का क्लेश निवारण नहीं होता ।२४। मैं रात्रिकाल में सो रहा था, उसीसमय घर का द्वार खोले विना ही किसी ने मेरी भार्या का हरण किया है अब आप मेरी उस पत्नी को ला दीजिये ।२५

राजा बोले—हे द्विज ! आपकी भार्या को किसने हरण किया है ? और कहाँ रखा है ? यह जब मैं कुछ भी नहीं जानता तो मैं किससे विरोध करूँ और कहाँ से उसको लाऊँ ? ।२६।

ब्राह्मण ने कहा—हे महीपते ! मेरे सोते हुए गृहद्वार उक्त प्रकार से बन्द रहने पर भी मेरी भार्या को किस भाँति से हरण किया, यह आप ही जाने ।२७। क्योंकि आपही नृपति हैं, धर्म का छठा अंश वेतन स्वरूप में ग्रहण करके रक्षक रूप से नियुक्त हैं, इसी कारण मनुष्य निश्चिन्त होकर रात्रिकाल में सोते हैं।२८

राजा ने कहा—मैंने आपकी भार्या को कभी नहीं देखा, अब अपनी ब्राह्मणी की आकृति, अवस्था और स्वभाव यह सब भलीभाँति कहिये ।२९

ब्राह्मण ने कहा—हे भूपाल मेरी पत्नी कठोर नेत्रवाली, अत्यन्त दीर्घाकृति, छोटी भुजावाली कृशानना (लम्बे उदरवाली, सूक्ष्मकमरवाली तथा लघु स्तनोंवाली) और अत्यन्त विरूप है किन्तु मैं तो

विरूपरूपा भूपाल न निन्दामि तथैव ताम् ॥३०
वाचि भूपातिपरुषा न सौम्या सा च शीलतः। इत्याख्याता मया भार्या सा करालनिरीक्षणा ॥३१
मनागतीतं भूपाल तस्याश्च प्रथमं वयः । तादृग्रूपा हि मे भार्या सत्यमेतन्मयोदितम् ॥३२

राजोवाच

अलं ते ब्राह्मण तया भार्यामन्यां ददामि ते । सुखाय भार्या कल्याणी दुःखहेतुर्हि तादृशी ॥३३
अल्पा कुरूपता विप्र कारणं शीलमुत्तमम् । रूपशीलविहीना या त्याज्या तेऽन्येन सा हृता ॥३४

ब्राह्मण उवाच

रक्ष्या भार्या महीपाल इति च श्रुतिरुत्तमा । भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ॥३५
आत्मा हि जायते तस्य सा रक्ष्यातो नरेश्वर । प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः ॥३६
तस्यामरक्ष्यमाणायां भविता वर्णसङ्करः । स पातयेन्महीपाल पूर्वान्स्वर्गादधः पितॄन् ॥३७
अनुज्ञाय गुरुं राजन्दत्त्वान्यां जातवेदसे ॥३८
समिधं तु मया भार्या वृतेयं कर्कशा यतः । कथमेतां विहायान्यभार्यया सह सञ्चरे ॥३९
गृह्यधर्मो यतो ब्रह्म प्राप्यते शाश्वतं नरैः । पूर्वोढया तु धर्मेण गृही कुर्वन्न सीदति ॥४०
त्यक्त्वा तां च क्रियां कुर्वन्नैव कर्मफलं लभेत् । अग्निना सह या नूनं सा जगाम गृहं शुभा ।४१

भी उसकी निन्दा नहीं करता।३०। हे महीपते ! उसका वाक्य और स्वभाव, यह दोनों अत्यन्त कर्कश है और पहली अवस्था कुछेक बीत गई है, अपनी उस दुर्निरीक्षणा भार्या का समस्त विषय मैंने आपके निकट कहा। मेरी भार्या जैसी है, यह मैंने सत्य ही निवेदन किया।३१-३२

राजा बोले—हे ब्राह्मण ! आपको ऐसी कुलक्षणा भार्या की क्या आवश्यकता है, मैं आपको अन्य भार्या देता हूँ, शुभलक्षणयुक्त भार्या सुख के निमित्त और आपकी भार्या के समान कुलक्षणा पत्नी केवल दुःख के लिए ही होती हैं।३३। हे विप्र ! सौन्दर्य और सत्स्वभाव ही मंगल का कारण है इस कारण कुरूप और दुःशील भार्या को सम्यक् प्रकार त्याग करना ही उचित है।३४। ब्राह्मण ने कहा हे महीपाल ! "भार्या सम्यक् प्रकार रक्षणीया है" यह श्रुति मैं जानता हूँ। भार्या की रक्षा करने से सन्तान की रक्षा होती है।३५। हे नरेश्वर ! आत्मा ही पुत्र रूप से भार्या के गर्भ में जन्म ग्रहण करता है इसी कारण सन्तान की रक्षा करने से आत्मा का ही रक्षण होता है।३६। अत एव भार्या की सम्यक् प्रकार से रक्षा करनी चाहिए। हे महीपते ! भार्या की भलीभाँति रक्षा न करने से तत्काल वर्णसंकर की उत्पत्ति होती है, वह पूर्व पितरों को स्वर्ग से नीचे गिराता है।३७। हे राजन् ! गुरुजनों की अनुज्ञा से अग्नि में।,३८। समिधा देकर यह कर्कश भार्या मुझसे वरण की गई है अत एव इसको छोड़कर किस प्रकार अन्य स्त्री के साथ मेल करूँ ? ।३९। जिस कारण कि ऐसे आचरण से मनुष्यों को गृहधर्म और शाश्वतब्रह्म प्राप्त होता है इससे पूर्व स्त्री के साथ धर्म करता हुआ गृहस्थ दुःखी नहीं होता।४०। और उसको छोड़कर जो क्रिया करता है उसका उसको फल प्राप्त नहीं होता जो शुभ अग्नि के साथ घर लाई गई है।४१। धर्म के ग्रहण में वह पहली ही

धर्मस्य ग्रहणे सा तु पूर्वोढैव प्रशस्यते । शठायाचारणात्तस्या जायते वर्णसङ्करः ।।४२
धर्महानिश्चानुदिनमभार्यस्य भवेन्मम । नित्यक्रियाणां विभ्रंशात्स चापि पतनाय मे ।।४३
तस्यां च पृथिवीपाल भवित्री मम सन्ततिः । तव षड्भागदात्री सा भवित्री धर्महेतुकी ।।४४
तदेतत्ते मया ख्याता पत्नी या मे हृता प्रभो । तां समानय रक्षायां भवानधिकृतो यतः ।।४५

मार्कण्डेय उवाच

स तस्यैवं वचः श्रुत्वा विमृश्य च नरेश्वरः । सर्वोपकरणैर्युक्तमारुरोह महारथम् ।।४६
इतश्चेतश्च तेनासौ परिबभ्राम मेदिनीम् । ददर्श च महारण्ये तापसाश्रममुत्तमम् ।।४७
अवतीर्य च तत्रासौ प्रविश्य ददृशे मुनिम् । कौश्यां बृष्यां समासीनं ज्वलन्तमिव तेजसा ।।४८
स दृष्ट्वा नृपतिं प्राप्तं समुत्थाय त्वरान्वितः । सम्मान्य स्वागतेनैव शिष्यमाहार्घ्यमानय ।।४९
तमाह शिष्यः शनकैर्दातव्योऽर्घ्योऽस्य किं मुने । तदाज्ञापय सञ्चिन्त्य तवाज्ञां हि करोम्यहम् ।।५०
ततोऽवगतवृत्तान्तो भूपतेस्तस्य स द्विजः । सम्भाषासनदानेन चक्रे सम्मानमात्मवान् ।।५१

ऋषिरुवाच

किं निमित्तमिहायातो भवान्किं ते चिकिर्षितम् । उत्तानपादतनयं वेद्मि त्वामुत्तमं नृप ।।५२

राजोवाच

ब्राह्मणस्य गृहाद्भार्या केनाप्यपहृता मुने । अविज्ञातस्वरूपेण तामन्वेष्टुमिहागतः ।।५३

प्रशंसा के योग्य है । उस शठा के त्याग से वर्णसंकर उत्पन्न होने की संभावना है ।४२। भार्याविहीन होने से मेरे धर्म की प्रतिदिन हानि होती है, इस प्रकार नित्य क्रिया-कलाप के नष्ट होने पर इससे भी मुझको पतित होना पड़ेगा ।४३। हे पृथ्वीनाथ ! उस भार्या के गर्भ से मेरी जो संतान होगी, वह आपको धर्मपूर्वक छठा भाग देगी ।४४। हे प्रभो ! मैं इन्हीं सब कारणों से कहता हूँ कि मेरी हरण की हुई पत्नी को ला दीजिये, क्योंकि आप ही हमारी रक्षा के लिये नियुक्त हैं ।४५

मार्कण्डेय जी बोले—महाराज उत्तम, उस ब्राह्मण के यह वचन सुन कुछ काल चिन्ता कर सब सामग्री से युक्त एक महारथ में चढ़े ।४६। राजा ने उस रथ में चढ़कर इधर-उधर पृथ्वी का भ्रमण करते-करते महावन में एक अति उत्तम तापसाश्रम देखा ।४७। वहाँ रथ से उतर, आश्रम में प्रवेश कर कुशासन पर विराजमान अपने तेज से जलती हुई अग्नि के समान दीप्यमान एक मुनि को देखा ।४८। राजा को आया हुआ देखकर मुनि शीघ्र उठे, और अत्यन्त सन्मान के सहित उनका स्वागत पूँछकर तत्काल शिष्य से कहा "अर्घ्य लाओ" । यह सुनकर शिष्य ने अत्यन्त मृदुस्वर से कहा "इस राजा को अर्घ्य देना उचित है या नहीं यह आप विचार कर आज्ञा दीजिये, आपकी आज्ञा मैं अभी पालन करूँगा" अनन्तर उस आत्मवान् मुनि ने समस्त वृत्तान्त जानकर केवल संभाषण और आसन प्रदान द्वारा ही राजा का सन्मान किया ।४९-५१।

ऋषि ने कहा—हे नृप ! आप उत्तानपाद के पुत्र उत्तम हैं, यह मैं जानता हूँ, आप किसलिए यहाँ आये हैं और आपका अभिलषित विषय क्या है ? ।५२।

राजा बोले—हे मुने ! कोई अज्ञात मनुष्य ब्राह्मण के घर से उसकी भार्या हरण करके ले गया है,

पृच्छामि यत्ते तन्मे त्वं प्रणतस्यानुकम्पया । अभ्यागतस्याथ गृहं भगवन्वक्तुमर्हसि ।।५४

ऋषिरुवाच

पृच्छ मामवनीपाल यत्प्रष्टव्यमशङ्कितः । वक्तव्यं चेत्तव मया कथयिष्यामि तत्त्वतः ।।५५

राजोवाच

गृहागताय यो मह्यं प्रथमे दर्शने मुने । त्वया समुद्यतो दातुं कथं सोऽर्घ्यो निवर्तितः ।।५६

ऋषिरुवाच

त्वद्दर्शनेन रभसादाज्ञप्तोऽयं मया नृप । यदा तदाहमेतेन शिष्येण प्रतिबोधितः ।।५७
एष वेत्ति जगत्यत्र मत्प्रसादादनागतम् । यथाहं समतीतं च वर्त्तमानं च सर्वतः ।।५८
आलोच्याज्ञापयेत्युक्ते ततो ज्ञातं मयापि तत् । ततो न दत्तवानर्घ्यमहं तुभ्यं विधानतः ।।५९
सत्यं राजंस्त्वमर्घ्यार्हः कुले स्वायम्भुवस्य च । तथापि नार्घ्ययोग्यं त्वां मन्यामो वयमुत्तमम् ।।६०

राजोवाच

किं कृतं हि मया ब्रह्मञ्ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा । येन त्वत्तोऽर्घ्यमर्हामि नाहमभ्यागतश्चिरात् ।।६१

ऋषिरुवाच

किं विस्मृतं ते यत्पत्नी त्वया त्यक्ता च कानने । परित्यक्तस्तया सार्द्धं त्वया धर्मो नृपाखिलः ।।६२

उस द्विजपत्नी को खोजने के निमित्त ही मैं यहाँ आया हूँ ।५३। हे भगवन् ! मैं प्रणत होकर आपसे जो पूँछता हूँ "घर आया हुआ मनुष्य कृपा करने योग्य है" अनुग्रहपूर्वक यह विचार कर उसके कहने की अनुमति दीजिये ।५४

ऋषि ने कहा—हे पृथ्वीपाल ! पूँछने की बात आप निःशंक होकर पूँछिये, यदि मेरे कहने की होगी, तो मैं आपसे वह विषय यथार्थ ही कहूँगा ।५५

राजा बोले—हे मुने ! आपके घर आने पर प्रथम देखते ही आप मुझको अर्घ्य देने में उद्यत हुए थे, किन्तु फिर किस निमित्त उससे निवृत्त हुए अर्थात् अर्घ्य नहीं दिया ।५६

ऋषि ने कहा—हे नृप ! आपको देखते ही उत्सुकता के वश होकर ज्यों ही मैंने अर्घ्य प्रदान करने की आज्ञा दी, उसी समय इस शिष्य ने मुझको समझाया ।५७। मैं जिस प्रकार अतीत और वर्तमान सब विषय, प्रत्यक्ष हों या गुप्त हों भलीभाँति जानता हूँ, इसी प्रकार यह शिष्य भी मेरे प्रसाद से जगत् का समस्त भूत, भविष्य और वर्तमान विषय जानता है ।५८। इस शिष्य के "विचार करके आज्ञा दो" यह कहने पर मैंने सब बात जान ली, इसी कारण मैंने आपको यथा विधान से अर्घ्य नहीं दिया ।५९। हे राजन् ! आपने स्वायंभुव मनु के कुल में जन्म ग्रहण किया है इसलिए आप अर्घ्य के योग्य हैं, यह सत्य है, किन्तु तो भी मैं आपको श्रेष्ठ अर्घ्य के योग्य नहीं समझता ।६०

राजा बोले—हे ब्रह्मन् ! ज्ञान से या अज्ञान से मैंने ऐसा क्या कार्य किया है, जिससे मैं नवीन आया हुआ होकर भी आपके निकट अर्घ्य योग्य नहीं हुआ ।६१

ऋषि ने कहा—हे नृप ! आपने जो अपनी पत्नी को वन में त्याग दिया है, वह क्या इस समय भूल

पक्षेण कर्मणो हान्या प्रयात्यस्पृश्यतां नरः । किमत्र वार्षिकी यस्य हानिस्ते नित्यकर्मणः ।।६३
पत्न्यानुकूलया भाव्यं यथा शीलेऽपि भर्त्तरि । दुःशिलापि तथा भार्या पोषणीया नरेश्वर ।।६४
प्रतिकूला हि सा पत्नी तस्य विप्रस्य या हृता । तथापि धर्मकामोऽसौ त्वामुद्द्योतितवान्नृप ।।६५
चलतः स्थापयस्यन्यान्स्वधर्मेषु महीपते । त्वां स्वधर्माद्विचलितं कोऽपरः स्थापयिष्यति ।।६६
(द्वीपे कडङ्गरीये वा राज्ञि चान्यायवर्तिनि । पापकृत्सु च विद्वत्सु नियंता जन्तुरत्र कः) ।।

मार्कण्डेय उवाच

विलक्ष्यः स महीपाल इत्युक्तस्तेन धीमता । तथेत्युक्त्वा च पप्रच्छ हृतां पत्नीं द्विजन्मनः ।।६७
भगवन्केन नीता सा पत्नी विप्रस्य कुत्र वा । अतीतानागतं वेत्ति जगत्यवितथं भवान् ।।६८

ऋषिरुवाच

तां जहाराद्रितनयो बलाको नाम राक्षसः । द्रक्ष्यते चाद्य तां भूप उत्पलावतके वने ।।६९
गच्छ संयोजयाशु त्वं भार्यया हि द्विजोत्तमम् । मा पापास्पदतां यातु त्वमिवासौ दिने दिने ।।७०

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तमे मन्वन्तरे ऋषिदर्शनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।६६।

गये हो ? जान लीजिये कि उस पत्नी के संग सम्पूर्ण धर्म को भी आपने त्याग दिया है ।६२। और देखो, एक पक्ष तक भी जिसकी क्रिया की हानि हो वह मनुष्य उस हानि के कारण जनसमाज में स्पर्श करने के योग्य नहीं रहता और फिर तुम्हारी तो वर्षों से नित्य कर्म की हानि है और भार्या के विना आपके नित्य कर्म की हानि होती है, इससे आपकी अर्घ्ययोग्यता कितनी है, वह आप विचार करके देखिये ।६३। हे नरेश्वर ! स्वामी जिस किसी प्रकार चरित्रयुक्त क्यों न हो, पति का अनुवर्ती होना जिस भाँति पत्नी को उचित है, ऐसे ही भार्या के दुःशील होने पर भी पति को पत्नी का भरण-पोषण करना अवश्य कर्त्तव्य है ।६४। हे नृप देखो ! ब्राह्मण की जो पत्नी हरी गई है, वह इससे प्रतिकूल होने पर भी केवल कर्म कामनावान होने के कारण यह ब्राह्मण उसका इतना खोज करता है ।६५। हे महीपते ! जो धर्म से भ्रष्ट होता है, आप ही उसको स्वधर्म में स्थापित करते हैं किन्तु जब आप स्वयं स्वधर्म से विचलित होंगे, तब आपको कौन उसमें प्रवृत्त कर सकेगा ।६६। (जंगली गेंडे के खेत के धान्य भक्षण करके अपना निर्वाह करते रहते या राजा के अन्यायी होने पर, और विद्वानों के पाप करने पर इस संसार में फिर कौन जीवन शिक्षक होगा ?)

मार्कण्डेय जी बोले—बुद्धिमान् ऋषि के इस प्रकार कहने पर महीपति लज्जित हुए और वह सब स्वीकार कर हरी हुई ब्राह्मण की पत्नी का वृत्तान्त पूँछने लगे ।६७। हे भगवन् ! जगत् की सम्पूर्ण अतीत और भविष्यत् घटना आप यथार्थ रूप से जानते हैं, अब उस ब्राह्मण की स्त्री को किसने हरण किया है और कहाँ रखा है ? आप अनुग्रहपूर्वक बताइये ।६८

ऋषि ने कहा—हे भूपते ! उस ब्राह्मणी को अद्रिपुत्र बलाक नामक राक्षस ने हरण किया है, आप अभी उसको उत्पलावतनामक वन में देखेंगे ।६९। प्रस्थान कीजिये । द्विजोत्तम को उसकी भार्या के सहित शीघ्र मिलाइये जिससे उक्त ब्राह्मण को आपके समान दिन-दिन पाप का भागी न होना पड़े ।७०

श्रीमार्कण्डेयपुराण में ऋषिदर्शन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ।६६।

(60)

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

ब्राह्मणभार्यानयनम्

मार्कण्डेय उवाच

अथारुरोह स्वरथं प्रणिपत्य महामुनिम् । तेनाख्यातं वनं तच्च प्रययावुत्पलावतम् ॥१
यथाख्यातस्वरूपां च भार्यां भर्त्रा द्विजस्य ताम् । भक्षयन्तीं ददर्शाथ श्रीफलानि नरेश्वरः ॥२
पप्रच्छ च कथं भद्रे त्वमेतद्वनमागता । स्फुटं ब्रवीहि वैशालेरपि भार्या सुशर्मणः ॥३

ब्राह्मण्युवाच

सुताहमतिरात्रस्य द्विजस्य वनवासिनः । पत्नी विशालपुत्रस्य यस्य नाम त्वयोदितम् ॥४
साहं हृता बलाकेन राक्षसेन दुरात्मना । प्रसुप्ता भवनस्यान्तर्भ्रातृमातृवियोजिता ॥५
भस्मीभवतु तद्रक्षो येनास्म्येवं वियोजिता । मात्राभ्रातृभिरन्यश्च तिष्ठाम्यत्र सुदुःखिता ।६
अस्मिन्वनेऽतिगहने येनानीयाहमुज्झिता । न वेद्मि कारणं किं तन्नोपभुङ्क्ते न खादति ॥७

राजोवाच

अपि तज्ज्ञायते रक्षस्त्वामुत्सृज्य क्व वै गतम् । अहं भर्त्रा तवैवात्र प्रेषितो द्विजनन्दिनि ॥८

अध्याय ६७

ब्राह्मणभार्यानयन

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर उक्त महर्षि को प्रणामपूर्वक अपने रथ में चढ़ राजा उत्तम ने उनके बताये उत्पलावत नामक वन में पहुँचकर ।१। देखा कि पति ने जैसा-जैसा स्वरूप बताया है, उसी के अनुसार रूपशालिनी द्विजपत्नी श्रीफल भक्षण कर रही है ।२। उसको देखकर पूछा हे भद्रे ! तुम किस प्रकार इस वन में आई हो ? और तुम विशाल के पुत्र सुशर्मानामक ब्राह्मण की भार्या हो या नहीं, वह स्पष्ट कहो ।३। ब्राह्मणी ने कहा—मैं वनवासी अतिरात्रनामक ब्राह्मण की कन्या और आपने जिन विशाल पुत्र का नाम लिया, मैं उन्हीं की पत्नी हूँ ।४। मैं घर में सो रही थी, इसी बीच में दुरात्मा राक्षस भ्राता माता से वियोग कराकर मुझको हर लाया है ।५। जननी, भ्राता और अन्य सब आत्मीय पुरुषों से अलग होकर अब मैं दुःखित चित्त से यहाँ रहती हूँ । जिसने मेरी यह दशा की है, वह राक्षस भस्म हो ।६। राक्षस ने मुझको इस निर्जन गहन वन में लाकर रखा है नहीं जानती कि वह किस कारण मुझको भोजन या उपभोग नहीं करता ? ।७

राजा बोले—हे द्विजनन्दिनी ! तुम्हारे भर्ता ने ही मुझको यहाँ भेजा है, क्या तुम जानती हो कि वह राक्षस तुमको यहाँ छोड़कर इस समय कहाँ गया है ।८

ब्राह्मण्युवाच

अस्यैव काननस्यान्तः स तिष्ठति निशाचरः । प्रविश्य पश्यतु भवान्न विभेति ततो यदि ।।९

मार्कण्डेय उवाच

प्रविवेश ततः सोऽथ तया वर्त्मनि दर्शिते । ददृशे परिवारेण समवेतं च राक्षसम् ।।१०
दृष्टमात्रे ततस्तस्मिन्स्त्वरमाणः स राक्षसः । दूरादेव महीं मूर्ध्ना स्पृशन्पादान्तिकं ययौ ।।११

राक्षस उवाच

ममात्रागच्छता गेहं प्रसादस्ते महान्कृतः । प्रशाधि किं करोम्येष वसामि विषये तव ।।१२
अर्घ्यं चेमं प्रतीच्छ त्वं स्थीयतां चेदमासनम् । वयं भृत्या भवान्स्वामी दृढमाज्ञापयस्व माम् ।।१३

राजोवाच

कृतमेव त्वया सर्वं सर्वा मेऽपचितिः कृता । किमर्थं ब्राह्मणवधूस्त्वया नीता निशाचर ।।१४
नेयं सुरूपा सन्त्यन्या भार्यार्थं चेद्धृता त्वया । भक्ष्यार्थं चेत्कथं नात्ता त्वयैतत्कथ्यतां मम ।।१५

राक्षस उवाच

न वयं मानुषाहारा अन्ये ते नृप राक्षसाः । सुकृतस्य फलं यत्तु तदश्नीमो वयं नृप ।।१६
(सुकृतस्य फलं यत्तु तत्ते वक्ष्याम्यहं नृप । राक्षसीं योनिमापन्नः क्रूरां लोकभयङ्करीम्) ।।

ब्राह्मणी ने कहा—वह राक्षस इस वन के ही प्रान्त भाग में रहता है यदि उसका भय न करो, तो प्रवेश करके देखो, वह दिखाई देगा।९

मार्कण्डेय जी बोले—ब्राह्मणी के मार्ग दिखाने पर राजा ने वहाँ प्रवेश करके परिवार से घिरे हुए उस राक्षस को देखा।१०। अनन्तर राजा को देखते ही शीघ्र उठकर दूर से ही मस्तक द्वारा भूमिस्पर्श करता हुआ वह राक्षस उनके चरणों में उपस्थित होकर कहने लगा।११।

राक्षस ने कहा—मेरे प्रति महाराज का महा अनुग्रह है कि महाराज मेरे घर आये हैं, मैं आपके राज्य में वास करता हूँ, मुझको आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूँ ?।१२। यह अर्घ्य ग्रहण करो, इस आसन पर बैठो आप प्रभु और मैं आपका सेवक हूँ, आप संकोचरहितचित्त से मुझको आज्ञा दीजिये।१३

राजा बोले—हे निशाचर ! तुमने कर्त्तव्य कार्य समस्त ही संपन्न किया है, और यथोचित अतिथिसत्कार भी किया है, किन्तु ब्राह्मण की वधू को किस निमित्त ले आया है।१४। "भार्या बनाने के लिए हरण किया है" यह भी कैसे कहूँ, क्योंकि यह ब्राह्मण पत्नी रूपवती नहीं है, इसलिए तू ऐसी रूपवती भार्या के होते इसको क्यों लाता, और यदि भक्षण करने के लिए लाया है, तो किस लिए भक्षण नहीं करता? यह तू मुझको बता।१५

राक्षस बोला—हे नृप ! मैं मनुष्य भोगी राक्षस नहीं हूँ—वह राक्षस अलग हैं, पुण्य का जो फल है, मैं वही भोजन करता हूँ।१६। (हे राजन् ! जो कुछ पुण्य का फल है, वह आपसे कहता हूँ, क्रूर और संसार को भय देने वाली राक्षसयोनि को प्राप्त हुआ) सन्मानित या अपमानित जो कोई क्यों न हो, सदा

स्वभावं च मनुष्याणां योषितां च विमानिताः । नामिषं च समश्नीमो न वयं जन्तुखादकाः ॥१७
यदस्माभिर्नृणां क्षान्तिभुक्ता क्रुध्यन्ति ते तदा । भुक्ते दुष्टे स्वभावे च गुणवन्तो भवन्ति च ॥१८
सन्ति नः प्रमदा भूप रूपेणाप्सरसां समाः । राक्षस्यस्तासु तिष्ठत्सु मानुषीषु रतिः कथम् ॥१९

राजोवाच

यद्येषा नोपभोगाय नाहाराय निशाचर । गृहं प्रविश्य विप्रस्य तत्किमेषा हृता त्वया ॥२०

राक्षस उवाच

मन्त्रवित्स द्विजश्रेष्ठो यज्ञे यज्ञे गतस्य मे । रक्षोघ्नमन्त्रपठनात्करोत्युच्चाटनं नृप ॥२१
वयं बुभुक्षितास्तस्य मन्त्रोच्चाटनकर्मणा । क्व यामः सर्वयज्ञेषु स ऋत्विग्भवति द्विजः ॥२२
ततोऽस्माभिरिदं तस्य वैकल्यमुपपादितम् । पत्न्या विना पुमानिज्याकर्मयोग्यो न जायते ॥२३

मार्कण्डेय उवाच

वैकल्योच्चारणात्तस्य ब्राह्मणस्य महामतेः । ततः स राजातिभृशं विषण्णः समजायत ॥२४
वैकल्यमेष विप्रस्य वदन्मामेव निन्दति । अनर्हमर्घस्य च गां सोऽप्याह मुनिसत्तमः ॥२५
वैकल्यं तस्य विप्रस्य राक्षसोऽप्याह मे यथा । अपत्नीकतया सोऽहं सङ्कटं महदास्थितः ॥२६

मैं नर-नारियों का स्वभाव भोजन करता हूँ, मैं जन्तु खाने वाला नहीं हूँ ।१७। इसलिए क्षमागुणयुक्त स्वभाव भोजन करने से मनुष्य क्रोधित होते हैं, और जब दुष्ट स्वभाव भोजन करता हूँ तब वह गुणवान् होते हैं ।१८। हे भूपाल ! मेरी अप्सराओं के समान राक्षसी भार्या अनेक हैं, उनके रहते मानुषी की अभिलाषा क्यों होगी ? ।१९

राजा बोले—हे निशाचर ! यदि यह ब्राह्मण की पत्नी तुम्हारे भोगने योग्य या भक्षण करने योग्य नहीं थी, तो किस कारण ब्राह्मण के घर में घुसकर इसको चुराया ? ।२०

राक्षस ने कहा—हे नृप ! वह ब्राह्मण श्रेष्ठ मंत्रज्ञ हैं, वह प्रायः सब यज्ञों में गमनपूर्वक रक्षोघ्नमंत्र पाठ करके मुझको उच्चाटित करते हैं ।२१। जब ब्राह्मण इस प्रकार मंत्र द्वारा मेरा उच्चाटन करते हैं, तब मैं भूखा होकर कहाँ जाऊँ ? वह सब यज्ञों में ऋत्विक् होते हैं ।२२। इसलिये उनके चित्त में उद्वेग उत्पन्न कराया है, क्योंकि पत्नी के बिना पुरुष कभी यज्ञकार्य में समर्थ नहीं हो सकता ।२३

मार्कण्डेय जी बोले—"महामते ! ब्राह्मण के चित्त में उद्वेग उत्पन्न कराया" राक्षस का कहा यह वचन सुनते ही राजा अत्यन्त विषाद को प्राप्त हुये ।२४। और विचारा कि "विप्र के चित्त में विकलता उत्पन्न हुई है" यह कहकर राक्षस मेरी ही निन्दा करता है इसके पहले उन मुनिसत्तम ने भी मुझको इसी निमित्त अर्घ्य के अयोग्य कहा है ।२५। और अब यह राक्षस भी "मेरी ही समान पत्नी विहीन होकर उस ब्राह्मण के चित्त में उद्वेग उत्पन्न हुआ है" कहता है ? अत एव पत्नी विहीन होकर घोर संकट में पड़ा हूँ ।२६

मार्कण्डेय उवाच

एवं चिन्तयतस्तस्य पुनरप्याह राक्षसः । प्रणामनम्रो राजानं बद्धाञ्जलिपुटो मुने ॥२७
नरेन्द्राज्ञाप्रदानेन प्रसादः क्रियतां मम । भृत्यस्य प्रणतस्येत्थं युष्मद्विषयवासिनः ॥२८

राजोवाच

स्वभावं वयमश्नीमस्त्वयोक्तं यन्निशाचर । तदर्थिनो वयं येन कार्येण शृणु तन्मम ॥२९
अस्यास्त्वयाद्य ब्राह्मण्या दौःशील्यमुपभुज्यताम् । येन त्वयात्तदौःशील्या तद्विनीता भवेदियम् ॥३०
नीयतां यस्य भार्येयं तस्य वेश्म निशाचर । अस्मिन्कृते कृतं सर्वं गृहमभ्यागतस्य मे ॥३१

मार्कण्डेय उवाच

ततः स राक्षसस्तस्याः प्रविश्यान्तः स्वमायया । भक्षयामास दौःशील्यं निजशक्त्या नृपाज्ञया ॥३२
दौःशील्येनातिरौद्रेण पत्नी तस्य द्विजन्मनः । तेन सा सम्परित्यक्ता तमाह जगतीपतिम् ॥३३
स्वकर्मफलपाकेन भर्तुस्तस्य महात्मनः । वियोजिताहं तद्धेतुरयमासीन्निशाचरः ॥३४
नास्य दोषो न वा तस्य मम भर्तुर्महात्मनः । ममैव दोषो नान्यस्य स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥३५
अन्यजन्मनि कस्यापि विप्रयोगः कृतो मया । सोऽयं मयाप्युपगतः को दोषोऽस्य महात्मनः ॥३६

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! राजा इस प्रकार चिन्ता करते थे, इसी समय में राजा को नम्रभाव से प्रणाम कर, हाथ जोड़ वह राक्षस फिर कहने लगा ।२७। हे नरेन्द्र ! मैं आपके राज्य की प्रजा हूँ अतएव इस प्रणत भृत्य को आज्ञा देकर अनुग्रह कीजिये ।२८

राजा ने कहा—हे निशाचर ! तुमने जो कहा कि, "मैं स्वभाव भोजन करता हूँ" अतएव मैं जिस कार्य का प्रार्थी हूँ, वह कहता हूँ सुनो ।२९। अब तुम इस ब्राह्मणी की दुश्चरित्रता (खुटाई) भोजन करो। क्योंकि तुम्हारे द्वारा इसका दुःस्वभाव भक्षित होने पर यह विनीत होगी ।३०। इसके बाद हे निशाचर ! यह जिसकी भार्या है उसी के घर इसको रख आओ । इस प्रकार करने से तुम्हारे द्वारा मेरा अतिथि-सत्कार हो जायगा ।३१

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर उस राक्षस ने अपनी माया के बल से उस ब्राह्मण के अन्तर में प्रवेश करके राजा की आज्ञानुसार निज शक्ति द्वारा ब्राह्मणी का दुःस्वभाव भक्षण कर लिया ।३२। तब अतिप्रचण्ड दुःस्वभाव से छटकर वह द्विजपत्नी राजा से कहने लगी ।३३। मैं अपने कर्मफल के कारण महात्मा स्वामी से वियोग को प्राप्त हुई थी, यह निशाचर उसका केवल कारणमात्र है ।३४। इस राक्षस का दोष नहीं और मेरे उन महात्मा पति का भी दोष नहीं है दोष मेरे अतिरिक्त और किसी का नहीं है, क्योंकि अपने किये कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है ।३५। जान पड़ता है, मैंने अन्य जन्म में किसी का वियोग कराया था, इसी कारण मेरा इन स्वामी से वियोग हुआ, इस महात्मा निशाचर का क्या दोष है? ।३६

राक्षस उवाच

प्रापयामि तवादेशादिमां भर्तृगृहं प्रभो । यदन्यत्करणीयं ते तदाज्ञापय पार्थिव ।।३७

राजोवाच

अस्मिन्कृते कृतं सर्वं त्वया मे रजनीचर । आगन्तव्यं च ते वीर कार्यकाले स्मृतेन मे ।।३८

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वा तु तद्रक्षस्तामादाय द्विजाङ्गनाम् । निन्ये भर्तृगृहं शुद्धां दौःशील्यापगमात्तदा ।।३९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे ब्राह्मणभार्यानयनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।६७।

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः (68)

औत्तममन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तां प्रेषयित्वा राजापि स्वभर्तृगृहमङ्गनाम् । चिन्तयामास निःश्वस्य किमत्र सुकृतं भवेत् ।।१

अनर्घयोग्यता कष्टं स यामाह महामनाः । वैकल्यं विप्रमुद्दिश्य तथाहायं निशाचरः ।।२

सोऽहं कथं करिष्यामि त्यक्ता पत्नी मया हि सा । अथवा ज्ञानदृष्टिं तं पृच्छामि मुनिसत्तमम् ।।३

राक्षस बोला—हे प्रभो ! आपकी आज्ञा से अभी इसके पति के घर इसको लिये जाता हूँ । हे राजन् ! आज्ञा दीजिये अब आपका और क्या करना होगा ! ।३७

राजा ने कहा—हे रजनीचर ! इस कार्य के करने से तुमने प्राय: मेरे समस्त ही कार्य किये, इसके अतिरिक्त हे वीर ! कार्य के समय तुम स्मरण करने से उपस्थित होओ ।३८

मार्कण्डेय जी बोले—इसके बाद राक्षस यह बात स्वीकार करके दु:स्वभाव नष्ट होने के कारण शुद्ध हुई इस ब्राह्मण की पत्नी को उसके पति के घर ले गया ।३९

श्रीमार्कण्डेयपुराण में ब्राह्मणभार्यानयन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।६७।

अध्याय ६८

औत्तममन्वन्तर का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—राजा उस ब्राह्मण की पत्नी को उसके पति के घर भेजकर लम्बी-लम्बी श्वास लेते हुए चिन्ता करने लगे कि, अब क्या करने से भला हो ।१। उन महामना महर्षि ने मुझसे "पत्नीवियोग के कारण तुम अर्घ्य पाने के उपयुक्त पात्र नहीं हो" यह विषादजनक वचन कहा है और इस निशाचर ने भी विप्र को लक्ष्य करके इसी प्रकार पत्नीवियोगजनित वैकल्य का विषय कहा ।२। मैंने अपनी पत्नी को त्याग किया है, अब मैं क्या करूँगा या मैं उन ज्ञानदृष्टिसंपन्न मुनिश्रेष्ठ से पूछूँ ।३। इस

सञ्चिन्त्येत्थं स भूपालः समारुह्य च तं रथम् । ययौ यत्र सधर्मात्मा त्रिकालज्ञो महामुनिः ॥४
अवरुह्य रथात्सोऽथ तं समेत्य प्रणम्य च । यथावृत्तं समाचख्यौ राक्षसेन समागमम् ॥५
ब्राह्मण्या दर्शनं चैव दौःशील्यापगमं तथा । प्रेषणं भर्तृगेहे च कार्यमागमने च यत् ॥६

ऋषिरुवाच

ज्ञातमेतन्मया पूर्वं यत्कृतं ते नराधिप । कार्यमागमने चैव मत्समीपे तवाखिलम् ॥७
प्रष्टुं मामिह किं कार्यं मयेत्युद्विग्नमानसः । त्वमागतो महीपाल शृणु कार्यं च यत्त्वया ॥८
पत्नी धर्मार्थकामानां कारणं प्रबलं नृणाम् । विशेषतश्च धर्मस्य स त्यक्तस्त्यजता हि ताम् ॥९
अपत्नीको नरो भूप न योग्यो निजकर्मणाम् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नृप ॥१०
त्यजता भवता पत्नीं न शोभनमनुष्ठितम् । अत्याज्यो हि यथा भर्त्ता स्त्रीणां भार्या तथा नृणाम् ॥११

राजोवाच

भगवन्किं करोम्येष विपाको मम कर्मणाम् । नानुकूलानुकूलस्य यस्मात्त्यक्ता ततो मया ॥१२
यद्यत्करोति तत्क्षान्तं दह्यमानेन चेतसा । भगवंस्तद्वियोगातिविभीतेनान्तरात्मना ॥१३
साम्प्रतं तु वने त्यक्ता न वेद्मि क्व नु सा गता । भक्षिता वापि विपिने सिंहव्याघ्रनिशाचरैः ॥१४

प्रकार चिन्ता करके वह राजा रथ पर चढ़ जहाँ वह त्रिकालज्ञ धर्मात्मा महामुनि वास करते थे, वहाँ गये ।४। फिर उन्होंने रथ से उतरकर उनके समीप उपस्थित हो उनको प्रणामपूर्वक, राक्षस का समागम ब्राह्मणी का दर्शन, उसके दुष्टस्वभाव का नाश, उसको पति के घर भेजना और अपने पुनर्वार आने का उद्देश्य आद्योपान्त वर्णन किया ।५-६

ऋषि बोले—हे नराधिप ! आपका किया कार्य और मेरे समीप आपके आने का उद्देश्य, मैंने यह सब पहले ही जान लिया है ।७। तो भी आप मुझसे स्वयं पूँछे, यही उद्विग्न मन से प्रतीक्षा करता था । हे महीपाल ! अब आपका कर्त्तव्य कार्य क्या है । वह सुनिये ।८। पत्नी ही मनुष्यों की धर्मार्थ और काम-साधन का प्रबल कारण है विशेष कर भार्यात्यागी धर्म को भी त्याग करते हैं ।९। हे भूपते ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र कोई भी पत्नी त्याग करके निज कार्य के अनुष्ठान में समर्थ नहीं होते ।१०। हे नृपते ! आपने पत्नी-त्याग कर अच्छा नहीं किया, जिस भाँति स्त्री को पति का त्याग नहीं करना चाहिए, इसी प्रकार पति को भी भार्या का त्याग करना उचित नहीं है ।११

राजा ने कहा—"हे भगवन् ! मैं क्या करूँ यह पत्नी परित्याग मेरे पूर्वजन्म में किये कार्य का परिणाम है । मैं सदा ही उसके प्रति अनुकूल था किन्तु मेरे प्रति कुछ भी अनुकूल नहीं थी, इसी कारण मैंने उसको त्याग दिया है ।१२। हे भगवन् ! उसके वियोग की यातना से मेरा अन्तरात्मा भिन्न होता है और चित्त जलता है, इसी कारण उस पत्नी ने जो जो अप्रिय आचरण किये वह सब क्षमा किये ।१३। किन्तु अब वन में त्यागी हुई मेरी वह पत्नी कहाँ चली गई है, अथवा वन में सिंह, व्याघ्र या राक्षस उसको भक्षण कर गये, वह नहीं जानता" ।१४।

ऋषिरुवाच

न भक्षिता सा भूपाल सिंहव्याघ्रनिशाचरैः। सा त्वविप्लुतचारित्रा साम्प्रतं तु रसातले ॥१५

राजोवाच

सा नीता केन पातालमास्ते साऽदूषिता कथम्। अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१६

ऋषिरुवाच

पाताले नागराजोऽस्ति प्रख्यातश्च कपोतकः। तेन दृष्टा त्वया त्यक्ता भ्रममाणा महावने ॥१७
सा रूपशालिनी तेन सानुरागेण पार्थिव। वेदितार्थेन पातालं नीता सा युवती तदा ॥१८
ततस्तस्य सुता सुभ्रूर्नन्दा नाम महीपते। भार्या मनोरमा चास्य नागराजस्य धीमतः ॥१९
तया मातुः सपत्नीयं सा भवित्रीति शोभना। दृष्टा स्वगेहं सा नीता गुप्ता चान्तःपुरे शुभा ॥२०
यदा तु याचिता नन्दा न ददाति नृपोत्तरम्। मूका भविष्यतीत्याह तदा तां तनयां पिता ॥२१
एवं शप्ता सुता तेन सा चास्ते तत्र भूपते। नीता तेनोरगेन्द्रेण धृता तत्सुतया सती ॥२२

मार्कण्डेय उवाच

ततो राजा परं हर्षमवाप्य तमपृच्छत। द्विजवर्यं स्वदौर्भाग्यकारणे दयितां प्रति ॥२३

राजोवाच

भगवन्सर्वलोकस्य मयि प्रीतिरनुत्तमा। किन्तु तत्कारणं येन स्वपत्नी नातिवत्सला ॥२४

ऋषि बोले—हे भूपाल! सिंह, व्याघ्र या निशाचर आदि ने उसको भक्षण नहीं किया, इस समय आपकी वह पत्नी विशुद्ध चरित्र से रसातल में वास करती है।१५

राजा ने कहा—हे ब्रह्मन्! मेरी वह पत्नी किसके द्वारा रसातल में पहुँची और किस प्रकार से अदूषित होकर वहाँ वास करती है? यह अद्भुत विषय यथावत् वर्णन कीजिये।१६

ऋषि बोले—हे राजन्! पाताल में कपोतक नामक विख्यात नागराज वास करते हैं, वह आपके द्वारा त्यागी हुई तुम्हारी रूपशालिनी युवती भार्या को महावन में भ्रमण करता देख, उसके प्रति अनुरागी हो अपना अभिप्राय प्रकट कर उसको पाताल में ले गये।१७-१८। हे महीपते! उन बुद्धिमान् नागराज की सुंदरी कन्या का नाम नन्दा है और उनकी भार्या का नाम मनोरमा है।१९। उस नागकन्या नन्दा ने इस सुंदरी को अपनी माता की भविष्यत् सपत्नी देख अन्तःपुर में अपने घर के भीतर ले जाकर छिपा रखा।२०। नागराज जब नन्दा के निकट उस सुन्दरी के लिये प्रार्थना करते, तब नन्दा उनको कुछ उत्तर नहीं देती, तदनन्तर नागराज ने इस कन्या से कहा "तू वाक्छक्तिहीन अर्थात् गूँगी होगी।२१।" हे भूपते! वह नागराज की कन्या नन्दा पिता से इस प्रकार शाप को प्राप्त हुई है और उन उरगेन्द्र के द्वारा पाताल में पहुँची हुई उस सती को उनकी कन्या ने पकड़ रखा है।२२

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर राजा ने परम हर्ष को प्राप्त होकर उन द्विजश्रेष्ठ से अपने प्रति प्रिया के अप्रिय भाव का कारण पूछा।२३

राजा ने कहा—हे भगवन्! मेरे प्रति सम्पूर्ण मनुष्यों की अत्युत्तम प्रीति है, किन्तु मेरी स्वीय पत्नी

मम चासावतीवेष्टा प्राणेभ्योऽपि महामुने । सा च मां प्रति दुःशीला ब्रूहि तत्कारणं द्विज ।।२५

ऋषिरुवाच

पाणिग्रहण काले त्वं सूर्यभौमशनैश्चरैः । शुक्रवाचस्पतिभ्यां च तव भार्यावलोकिता ।।२६
तन्मुहूर्तेऽभवच्चन्द्रस्तस्याः सोमसुतस्तथा । परस्परविपक्षौ तौ ततः पार्थिव ते भृशम् ।।२७
तद्गच्छ त्वं स्वधर्मेण परिपालय मेदिनीम् । पत्नीसहायः सर्वाश्च कुरु धर्मवतीः क्रियाः ।।२८

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्ते प्रणिपत्यैनमारुह्य स्यन्दनं ततः । उत्तमः पृथिवीपाल आजगाम निजं पुरम् ।।२९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ।६८।

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

औत्तममन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स्वनगरं प्राप्य तं ददर्श द्विजं नृपः । समेतं भार्यया चैव शीलवत्या मुदान्वितम् ।।१

ब्राह्मण उवाच

राजवर्य कृतार्थोऽस्मि यतो धर्मो हि रक्षितः । धर्मज्ञेनेह भवता भार्यामानयता मम ।।२

मुझमें अनुरक्त नहीं है, इसका क्या कारण है ? ।२४। हे महामुने ! हे द्विजोत्तम ! मेरी वह पत्नी प्राणों की अपेक्षा प्रियतम होने पर भी जिस कारण मेरे प्रति बुरा व्यवहार करती है, वह कहिये ।२५

ऋषि बोले—विवाह के समय में आपके ऊपर रवि, मंगल और शनि की दृष्टि थी और आपकी भार्या को शुक्र एवं वृहस्पति देख रहे थे।२६। और उसी मुहूर्त्त में आपकी पत्नी के चन्द्र और आपके बुध, यह परस्पर अत्यन्त विपक्ष थे ।२७। अब जाइये और स्वधर्म द्वारा पृथ्वी का पालन तथा भार्या के सहित सब प्रकार धर्मयुक्त कार्य का अनुष्ठान कीजिये ।२८

मार्कण्डेय जी बोले—महामना ऋषि के इस प्रकार कहने पर पृथ्वीपाल उत्तम उनको प्रणाम कर रथ में चढ़ अपने पुर में आ गये ।२९

मार्कण्डेयपुराण में औत्तममन्वन्तर में अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ।६८।

अध्याय ६९

औत्तम मन्वन्तर का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर राजा उत्तम ने अपने नगर में पहुँचकर उस ब्राह्मण को सुशील भार्या के संग स्थित और हर्षयुक्त देखा ।१

ब्राह्मण ने राजा से कहा—हे राजश्रेष्ठ ! मैं कृतार्थ हूँ क्योंकि आपने धर्म जानने के कारण मेरी भार्या लाकर मेरे धर्म की रक्षा की है ।२

राजोवाच

कृतार्थस्त्वं द्विजश्रेष्ठ निजधर्मानुपालनात् । वयं सङ्कटिनो विप्र येषां पत्नी न वेश्मनि ।।३

ब्राह्मण उवाच

नरेन्द्र सा हि विपिने भक्षिता श्वापदैर्यदि । क्रोधस्य वशमागम्य धर्मो नावेक्षितस्त्वया ।।
अलं तया किमन्यस्या न पाणिर्गृह्यते त्वया । सन्ति राज्ञां गृहे कन्याः शोभना नृपनन्दन ।।४

राजोवाच

न भक्षिता मे दयिता श्वापदैः सा हि जीवति । अविदूषितचारित्रा कथमेतत्करोम्यहम् ।।५

ब्राह्मण उवाच

यदि जीवति ते भार्या न चैव व्यभिचारिणी । अपत्नीकत्वतो जन्म किं पापं क्रियते त्वया ।।६

राजोवाच

आनीतापि हि सा विप्र प्रतिकूला सदैव मे । दुखाय न सुखायालं तस्या मैत्री न वै मयि ।।
यथा ते ब्राह्मणी विप्र वशगा तव सुन्दरी । तथा त्वं कुरु यत्नं मे यथा सा वशगामिनी ।।७

ब्राह्मण उवाच

त्वयि सम्प्रीतये तस्या वरेष्टिरुपकारिणी । क्रियते मित्रकामैर्या मित्रविन्दां करोमि ताम् ।।८

राजा बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! अपना धर्म प्रतिपालन् के कारण आप कृतार्थ हुए हैं, किन्तु हे विप्र ! मेरे घर में पत्नी नहीं है अत एव मैं अत्यन्त संकट में पड़ा हूँ ।३

ब्राह्मण ने कहा—हे नरेन्द्र ! यदि उसको वन में हिंसक जीवों ने भक्षण कर लिया है, तो आपने क्रोध के वशवर्ती होकर धर्म को देखा नहीं अब क्या ? यदि नष्ट हो गई हो तो उसके मिलन की आशा छोड़कर अन्य कन्या का पाणिग्रहण क्यों नहीं करते ? हे नृपनन्दन ! कारण कि राजाओं के घर में अनेक कन्यायें हैं ।४

राजा बोले—मेरी पत्नी को हिंसक जीवों ने नहीं खाया, अब तक विशुद्ध चरित्र से जीवित है, फिर किस प्रकार से मैं स्त्री ग्रहण करूँ ? ।५

ब्राह्मण ने कहा—यदि आपकी पत्नी अभी तक अव्यभिचारिणी होकर जीवित है, तो तुम पत्नी परित्याग करके पाप क्यों करते हो ? ।६

राजा बोले—हे विप्र ! अपनी पत्नी के लाने पर भी वह सदा मेरे प्रतिकूल रहेगी, वह सुख का कारण नहीं है, केवल दुःख का ही कारण है क्योंकि मुझमें स्नेह नहीं है । हे विप्रोत्तम ! जिससे वह मेरी पत्नी मेरे वशीभूत हो, आप उसी में यत्न कीजिये ।७

ब्राह्मण ने कहा—मित्रता की कामना करने वाले जो उपकारी श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं, मैं तुम्हारी और तुम्हारी पत्नी के प्रीति के लिए वही "मित्रविन्दा" नामक यज्ञ करूँगा ।८। हे मनुजेन्द्र ! असंतुष्ट स्त्री

अप्रीतयोः प्रीतिकरी सा हि सञ्जननी परम् । भार्यापत्योर्मनुष्येन्द्र तां तवेष्टिं करोम्यहम् ॥९
यत्र तिष्ठति सा सुभ्रूस्तव भार्या महीपते । तस्मादानीयतां सा ते परां प्रीतिमुपैष्यति ॥१०
(तस्यास्तव हितार्थाय धर्मो यत्र न सीदति)

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तः स तु सम्भारानशेषानवनीपतिः । आनिनाय चकारेष्टिं स च तां द्विजसत्तमः ॥११
सप्तकृत्वः स तु तदा चकारेष्टिं पुनः पुनः । तस्य राज्ञो द्विजश्रेष्ठो भार्यासम्पादनाय वै ॥१२
यदारोपितमैत्रां ताममन्यत महामुनिः । स्वभर्त्तरि तदा विप्रस्तमुवाच नराधिपम् ॥१३
आनीयतां नरश्रेष्ठ या तवेष्टात्मनोऽन्तिकम् । भुंक्ष्व भोगांस्तया सार्द्धं यज यज्ञांस्तथादृतः ॥१४

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तस्तेन विप्रेण भूपालो विस्मितस्तदा । सस्मार तं महावीर्यं सत्यसन्धं निशाचरम् ॥१५
स्मृतस्तेन तदा सद्यः समुपेत्य नराधिपम् । किं करोमीति सोऽप्याह प्रणिपत्य महामुने ॥१६
ततस्तेन नरेन्द्रेण विस्तरेण निवेदिते । गत्वा पातालमादाय राजपत्नीमुपाययौ ॥१७
आनीता चातिहार्देन सा ददर्श तदा पतिम् । उवाच च प्रसीदेति भूयो भूयो मुदान्विता ॥१८
ततः स राजा रभसा परिष्वज्याह मानिनीम् । प्रिये प्रसन्न एवाहं भूयोऽप्येवं ब्रवीषि किम् ॥१९

पुरुष के प्रीतिकारी और परम प्रीति उत्पन्न करने वाली शक्ति का देने वाला वह यज्ञ आपके निमित्त करूँगा।९। हे महीपते ! आपकी वह सुभ्रू भार्या जिस स्थान में वास करती है वहाँ से उसको ले आओ, वह आपमें परम प्रीतिवाली होगी।१०। (उसके तुम्हारे हित के अर्थ ऐसे अवसर में धर्म नष्ट नहीं होता है)

मार्कण्डेय जी बोले—वह राजा उत्तम ब्राह्मण का वचन सुनकर संपूर्ण यज्ञ की सामग्री लाई और उस द्विजश्रेष्ठ ने भी उल्लिखित यज्ञ किया।११। अनन्तर उस द्विजोत्तम ने राजा की भार्या को सुशील करने के लिये पुनः पुनः सात बार वह यज्ञ किया।१२। जब महामुनि ने उस राजमहिषी को स्वीय पति के प्रति अनुरागवती समझा, तब राजा से कहा।१३। हे नरश्रेष्ठ ! अब अपनी उस प्रिय भार्या को अपने समीप लाकर उसके संग सांसारिक भोग भोगिये और यत्नसहित यज्ञ सम्पन्न कीजिये।१४

मार्कण्डेयजी बोले—उस ब्राह्मण का इस प्रकार वचन सुनकर राजा अत्यन्त अचम्भे में हुए और उसी समय महावीर्य, सत्यप्रतिज्ञ उस निशाचर को स्मरण किया।१५। हे महामुने। स्मरण करते ही उस निशाचर ने तत्काल वहाँ उपस्थित हो उनको प्रणाम करके कहा कि "मैं क्या करूँ"।१६। अनन्तर राजा के सब विस्तारसहित कहने पर निशाचर पाताल में जाकर राजपत्नी को लेकर फिर उपस्थित हुआ।१७। उसने आकर हार्दिक अत्यन्त प्रणय के सहित अपने पति का दर्शन किया और प्रीतियुक्त होकर "मेरे प्रति प्रसन्न होओ" इस प्रकार बार बार कहने लगी।१८। अनन्तर राजा ने उत्सुकता के सहित मानिनी पत्नी को आलिंगन करके कहा "हे प्रिये ! मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्न ही हूँ तुम बार बार क्यों कहती हो"।१९।

पत्न्युवाच

यदि प्रसादप्रवणं नरेन्द्र मयि ते मनः । तदेतदभियाचे त्वां तत्कुरुष्व. ममार्हणम् ॥२०

राजोवाच

निःशङ्कं ब्रूहि मत्तो यद्‌भवत्या किञ्चिदीप्सितम् । तदलभ्यं न ते भीरु तवायत्तोऽस्मि नान्यथा ॥२१

पत्न्युवाच

मदर्थं तेन नागेन सुता शप्ता सखी मम । मूका भविष्यसीत्याह सा च मूकत्वमागता ॥२२
तस्याः प्रतिक्रियां प्रीत्या मम शक्नोति चेद्‌भवान् । वाग्विघातप्रशान्त्यर्थं ततः किं न कृतं मम ॥२३

मार्कण्डेय उवाच

ततः स राजा तं विप्रमाहास्मिन्कीदृशी क्रिया । तन्मूकतापनोदाय स च तं प्राह पार्थिवम् ॥२४

ब्राह्मण उवाच

भूप सारस्वतीमिष्टिं करोमि वचनात्तव । पत्नी तवेयमानृण्यं यातु तद्वाक्प्रवर्तनात् ॥२५

मार्कण्डेय उवाच

इष्टिं सारस्वतीं चक्रे तदर्थं स द्विजोत्तमः । सारस्वतानि सूक्तानि जजाप च समाहितः ॥२६
ततः प्रवृत्तवाक्यां तां गर्गः प्राह रसातले । उपकारः सखी भर्त्रा कृतोऽयमतिदुष्करः ॥२७

राजपत्नी बोली—हे नरेन्द्र ! यदि आपका मन मेरे प्रति प्रसन्न हुआ है, तो मैं प्रार्थना करती हूँ, आप मेरे यथायोग्य सन्मान की रक्षा कीजिये ।२०

राजा ने कहा—भीरु ! अपना अभिलाषित विषय निःशंक भाव से वर्णन करो । मेरे समीप तुमको कुछ भी अलभ्य नहीं है । मैं ही तुम्हारे अधीन हूँ, इसमें अन्यथा नहीं हैं ।२१

राजपत्नी बोली—मेरी सखी नागराज की कन्या मेरे ही कारण नागराज के द्वारा "तू गूँगी होगी" इस प्रकार शाप को प्राप्त हो वाक्शक्तिविहीन हुई है ।२२। आप मेरे प्रति प्रीति के कारण यदि उसकी मूकताप्रशमनार्थ प्रतीकार करने में समर्थ हो तो मेरा आपने क्या कार्य नहीं किया ।२३

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर राजा ने उस ब्राह्मण से पूँछा कि नागराज की कन्या का गूँगापन दूर होने के लिये इस समय क्या कार्य करना आवश्यक है ? ।२४

ब्राह्मण ने कहा—हे भूप ! आपके वचनानुसार सारस्वती इष्टि करूँगा । आपकी यह पत्नी उसकी मूकता दूर होने पर ऋणमुक्त होगी ।२५

मार्कण्डेय जी बोले—उस द्विजश्रेष्ठ ने उसकी मूकता नष्ट होने के लिए सारस्वती इष्टि का आरम्भ किया और सावधान होकर सारस्वत सूक्त का जप करने लगा ।२६। तदनन्तर गर्गऋषि ने रसातल में प्रवृत्तवाक्या अर्थात् बोलने की शक्ति को प्राप्त हुई नागकन्या से कहा तुम्हारी सखी के पति ने

इत्थं ज्ञानं समासाद्य नन्दा शीघ्रगतिः पुरम् । ततो राज्ञीं परिष्वज्य स्वसखीमुरगात्मजा ॥२८
तं च संस्तूय भूपालं कल्याणोक्त्या पुनः पुनः । उवाच मधुरं नागी कृतासनपरिग्रहा ॥२९
उपकारः कृतो वीर भवता यो ममाधुना । तेनास्याकृष्टहृदया यद्ब्रवीमि शृणुष्व तत् ॥३०
तव पुत्रो महावीर्यो भविष्यति नराधिपः । तस्याप्रतिहतं चक्रमस्यां भुवि भविष्यति ॥३१
सर्वार्थशास्त्रतत्त्वज्ञो धर्मानुष्ठानतत्परः । मन्वन्तरेश्वरो धीमान्भविष्यति स वै मनुः ॥३२

मार्कण्डेय उवाच

इति दत्त्वा वरं तस्मै नागराजसुता ततः । सखीं तां संपरिष्वज्य पातालमगमन्मुने ॥३३
तत्र तस्य तया सार्द्धं रमतः पृथिवीपतेः । जगाम कालः सुमहान्प्रजाः पालयतस्तथा ॥३४
ततः स तस्यां तनयो जज्ञे राज्ञो महात्मनः । पौर्णमास्यां यथा कान्तश्चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः ॥३५
तस्मिञ्जाते मुदं प्रापुः प्रजाः सर्वाः सहामराः । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च ॥३६
तस्य दृष्ट्वा वपुः कान्तं भविष्यं शीलमेव च । औत्तमश्चेति मुनयो नाम चक्रुः समागताः ॥३७
जातोऽयमुत्तमे वंशे बालः काले तथोत्तमे । उत्तमावयवस्तेन औत्तमोऽयं भविष्यति ॥३८

मार्कण्डेय उवाच

उत्तमस्य सुतः सोऽथ नाम्ना ख्यातस्तथौत्तमः । मनुरासीत्तत्प्रभावो भागुरे श्रूयतां मम ॥३९

तुम्हारा यह दुष्कर उपकार किया है।२७। नागकन्या नन्दा यह जानकर शीघ्रगति से उस पुर में जाकर अपनी सखी राज्ञी को आलिंगन।२८। और उन भूपाल के गुणगान करके आसनपर बैठ कल्याणवचनों के द्वारा मधुर भाव से बार बार कहने लगी।२९। हे वीर ! इस समय आपके द्वारा मेरा जो उपकार साधित हुआ है, उससे आकृष्टहृदय होकर मैं जो कहती हूँ वह सुनो।३०। हे नराधिप ! आपको महावीर्यवान पुत्र उत्पन्न होगा और इस पृथ्वी में उसका अखण्ड राजमण्डल प्रतिष्ठित होगा।३१। आपका सर्वार्थशास्त्र में तत्त्वज्ञ, धर्मानुष्ठान में तत्पर, वह बुद्धिमान् पुत्र मन्वन्तराधिपति मनु होगा।३२

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! तदनन्तर नागराज की कन्या नन्दा उनको इस प्रकार वर दे, और उस सखी को गाढ़ आलिंगन कर पाताल में चली गई।३३। इधर पत्नी के सहित रमणपरायण उन पृथ्वीपति का प्रजा पालन करते हुए बहुत काल बीत गया।३४। अनन्तर रानी के गर्भ से महात्मा राजा पूर्णिमा के संपूर्ण चन्द्रमण्डल के समान मनोहर कान्ति एक पुत्र उत्पन्न हुआ।३५। उन महात्मा के जन्मग्रहण में समस्त प्रजा ने महा आनन्द प्राप्त किया था, समस्त देवताओं की दुन्दिभी बजी थी और फूलों की वर्षा हुई थी।३६। आये हुए मुनियों ने उसके देह की कान्ति देखकर और भावस्वभाव जानकर उसका "औत्तम" नाम से नामकरण किया।३७। मुनियों ने कहा इस महात्मा ने उत्तम वंश में, उत्तम काल में और उत्तम अवयव (अंग) सम्पन्न होकर जन्मग्रहण किया है, इस कारण यह उत्तम नाम से विख्यात होगा।३८

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! भागुरे ! पक्षान्तर में "उत्तम के पुत्र थे" इसी कारण वह औत्तम नाम से अभिहित होकर मनु हुए थे। अब मुझसे उनका प्रभाव सुनो।३९। उत्तमनृपति का आख्यान और

उत्तमाख्यानमखिलं जन्म चैवोत्तमस्य यः । नित्यं शृणोति विद्वेषं स कदाचिन्न गच्छति ।।४०
इष्टैर्दारैस्तथा पुत्रैर्बन्धुभिर्वा कदाचन । वियोगो नास्य भविता शृण्वतः पठतोऽपि वा ।।४१
तस्य मन्वन्तरं ब्रह्मन्वदतो मम विस्तरात् । श्रूयतां तत्र यश्चेन्द्रो ये च देवास्तथर्षयः ।।४२

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।६९।

अथ सप्ततितमोऽध्यायः (62)

औत्तममन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

मन्वन्तरे तृतीयेऽस्मिन्नौत्तमस्य प्रजापतेः । देवानिन्द्रमृषीन्भूपान्निबोध गदतो मम ।।१
स्वधामानस्तथा देवा यथानामानुकारिणः । सत्याख्यश्च द्वितीयोऽन्यस्त्रिदशानां तथा गणः ।।२
तृतीये तु गणे देवाः शिवाख्या मुनिसत्तम । शिवाः स्वरूपतस्ते तु श्रुताः पापप्रणाशनाः ।।३
प्रतर्दनाख्यश्च गणो देवानां मुनिसत्तम । चतुर्थस्तत्र कथित औत्तमस्यान्तरे मनोः ।।४
वशवर्तिनः पञ्चमेऽपि देवास्तत्र गणे द्विज । यथाख्यातस्वरूपास्तु सर्व एव महामुने ।।५
एते देवगणाः पञ्च स्मृता यज्ञभुजस्तथा । मन्वन्तरे मनुश्रेष्ठे सर्वे द्वादशका गणाः ।।६
तेषामिन्द्रो महाभागस्त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् । शतं क्रतूनामाहृत्य शुशान्तिर्नाम नामतः ।।७

औत्तम मनु का जन्मवृत्तान्त जो सुनते हैं, वह कभी विद्वेष को प्राप्त नहीं होते ।४०। जो इसको सुनते हैं या पढ़ते हैं, उनको कभी इष्ट, पुत्र, स्त्री और बंधुवर्ग का वियोग सहना नहीं पड़ता ।४१। उनके मन्वन्तर की कथा विस्तार सहित वर्णन करता हूँ सुनो ! हे ब्रह्मन् ! उस समय जो इन्द्र, जो देवता, और जो ऋषि थे, वह भी कहता हूँ ।४२

श्रीमार्कण्डेयपुराण में औत्तममन्वन्तर नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।६९।

अध्याय ७०

औत्तम मन्वन्तर वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! औत्तम प्रजापति के तीसरे मन्वन्तर के इन्द्र, देवता और ऋषियों का विषय कहता हूँ, सुनो ।१। प्रथमगण स्वधामा नामक देवताओं के नामानुरूप अपनी ज्योति से प्रकाशमान है और देवताओं का दूसरा गण सत्य नाम से विख्यात है ।२। हे मुनिसत्तम ! देवताओं का तीसरा गण "शिव" नाम से विख्यात है। इस नाम का स्मरण करते ही वह पाप नाश करके "शिव" नाम की यथार्थता सम्पादन करता है ।३। हे मुनिवर ! औत्तममन्वन्तर में देवताओं का चौथा गण प्रतर्द्दन नाम से प्रसिद्ध है ।४। हे महामुने ! पाँचवें गण में वशवर्त्ती नामक देवता हैं वह सब नामानुरूप कार्यकारी हैं। हे द्विजोत्तम ! इस मन्वन्तर में यज्ञभुक् देवताओं के पाँच प्रकार गण और प्रत्येक गण में बारह-बारह देवता हैं ।५-६। उन देवताओं के सुशान्ति नामधारी महाभाग इन्द्र सौ अश्वमेध यज्ञ करके त्रैलोक्य के गुरु

यस्योपसर्गनाशाय नामाक्षरविभूषिता । अद्यापि मानवैर्गाथा गीयते तु महीतले ॥८
सुशान्तिर्देवराट् कान्तः सुशान्तिं सम्प्रयच्छति । सहितः शिवसत्याद्यैस्तथैव वशवर्तिभिः ॥९
अजः परशुचिर्दिव्यो महाबलपराक्रमः । पुत्रास्तस्य मनोरासन्विख्यातास्त्रिदशोपमाः ॥१०
तत्सूतिसम्भवैर्भूमिः पालिताभून्नरेश्वरैः । यावन्मन्वन्तरं तस्य मनोरुत्तमतेजसः ॥११
चतुर्युगानां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः । कृतत्रेतादिसंज्ञानि यान्युक्तानि पुरा मया ॥१२
स्वतेजसा हि तपसो वरिष्ठस्य महात्मनः । तनयाश्चान्तरे तस्मिन्सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥१३
तृतीयमेतत्कथितं तव मन्वन्तरं मया । तामसस्य चतुर्थं तु मनोरन्तरमुच्यते ॥१४
वियोनिजन्मनो यस्य यशसा द्योतितं जगत् । जन्म तस्य मनोर्ब्रह्मञ्छूयतां गदतो मम ॥१५
अतीन्द्रियमशेषाणां मनूनां चरितं तथा । तथा जन्मापि विज्ञेयं प्रभावश्च महात्मनाम् ॥१६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।७०।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

(64)

तामसमन्वन्तरे वर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

राजाभूद्भुवि विख्यातः स्वराष्ट्रो नाम वीर्यवान् । अनेकयज्ञकृतत्प्राज्ञः संग्रामेष्वपराजितः ॥१

होते हैं ।७। उन देवराज सुशान्ति की नामाक्षरविभूषित यह गाथा पृथ्वीतल में मनुष्यगण अब तक गाते हैं ।८। वह कान्तिमान् देवराज सुशान्ति शिव सत्यादि देवताओं के सहित सुशान्ति प्रदान करते हैं, वशवर्तीनामक देवगण भी इसी प्रकार करते हैं ।९। इन मनु के अज, परशुचि और दिव्य नामक देवताओं के समान विख्यात महाबल पराक्रमी तीन पुत्र थे ।१०। जितने दिनों उन उत्तम तेजा मनु का मन्वन्तर था, तब तक उनकी वंशोत्पन्न सन्तान सन्तति ने नरेश्वर होकर पृथ्वी का पालन किया था ।११। युगकथनकाल में सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, यह चार युग कहे गये हैं, कुछ अधिक (इकहत्तर) उक्त चारों युग में मन्वन्तर काल निर्दिष्ट है ।१२। अपने तेजोबल में महातपोनामक महात्मा के सात पुत्र औत्तम मन्वन्तर में सप्त ऋषि हुए थे ।१३। मैंने यह तीसरे मन्वन्तर का वर्णन किया, अब तामस मनु का चौथा मन्वन्तर कहता हूँ ।१४। विभिन्नयोनि-उत्पन्न जिन मनु के यशद्वारा जगत् प्रकाशित हुआ था उन मनु के जन्म का वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो ।१५। इन सब महात्मा अनेक मनु गणों का चरित्र, उनके जन्म का वृत्तान्त, और उनका प्रभाव भलीभाँति से जानना चाहिए ।१६

श्रीमार्कण्डेयपुराण में औत्तम मन्वन्तर नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७०।

अध्याय ७१

तामसमन्वन्तर का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—अनेक यज्ञकारी ज्ञानसंपन्नसंग्राम में अपराजित वीर्यवान् स्वराष्ट्रनामक जगद्विख्यात एक राजा थे ।१। हे द्विज ! उनके मंत्रियों द्वारा आराधित होकर महाद्युतिमान् भगवान् सूर्य

तस्यायुः सुमुहद्दत्तं सूर्येण सुमहाद्युतेः । (पुरा भगवता विप्र मन्त्रिणाराधितेन वै)
पत्नीनां च शतं तस्य धन्यानामभवद्द्विज ॥२
तस्य दीर्घायुषः पत्न्यो नातिदीर्घायुषो मुने । कालेन जग्मुर्निधनं भृत्यमन्त्रिजनास्तथा ॥३
स भार्याभिस्तथा मुक्तो भृत्यैश्च सहजन्मभिः । उद्विग्नचेताः सम्प्राप वीर्यहानिमहर्निशम् ॥४
तं वीर्यहीनं निभृतैर्भृत्यैस्त्यक्तं सुदुःखितम् । अनन्तरो विमर्दाख्यो राज्याच्च्यावितवांस्तदा ॥५
राज्याच्च्युतः सोऽपि वनं गत्वा निर्विण्णमानसः । तपस्तेपे महाभागो वितस्तापुलिने स्थितः ॥६
ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षास्वभ्रावकाशकः । जलशायी च शिशिरे निराहारो यतव्रतः ॥७
ततस्तपस्यतस्तस्य प्रावृट्काले महाप्लवः । बभूवानुदिनं मेघैर्वर्षद्भिरनुसन्ततम् ॥८
न दिग्विज्ञायते पूर्वा दक्षिणा वा न पश्चिमा । नोत्तरा तमसा सर्वमनुलिप्तमिवाभवत् ॥९
ततोऽतिपूरेण नृपः स नद्या प्रेरितस्तटम् । प्रार्थयन्नपि नावाप ह्रियमाणोऽतिवेगिना ॥१०
अथ दूरे जलौघेन ह्रियमाणो महीपतिः । आससाद जले रौहीं स पुच्छे जगृहे च ताम् ॥११
तेन प्लवेन स ययावूह्यमानोमहीतले । इतश्चेतश्चान्धकारे आससाद तटं ततः ॥१२
विस्तारिपङ्कमत्यर्थं दुस्तरं स नृपस्तरन् । तथैव कृष्यमाणोऽन्यद्रम्यं वनमवाप सः ॥१३
तत्रान्धकारे सा रौही चकर्ष वसुधाधिपम् । पुच्छे लग्नं महाभागं कृशं धमनिसन्ततम् ॥१४
तस्याश्च स्पर्शसम्भूतामवाप मुदमुत्तमाम् । सोऽन्धकारे भ्रमन्भूपो मदनाकृष्टमानसः ॥१५

ने उनको दीर्घ आयु प्रदान की थी, उन राजा के सुन्दरी धन्या नामक सौ पत्नी थीं ।२। किन्तु हे मुने ! उन दीर्घायु राजा की पत्नियाँ अतिदीर्घायु नहीं थी, अत एव वह यथासमय में मृत्यु को प्राप्त हुई थीं और भृत्य तथा मंत्रिगण भी काल के वश होकर मृत्यु को प्राप्त हुए थे ।३। वयस्कगण (स्नेही), भृत्यगण और समस्त भार्याओं के वियोग में उद्विग्नचित्त होकर राजा रात दिन वीर्यहीन होने लगे ।४। विमर्द नामक समीपवर्ती अन्य राजा ने, वीर्यहीन और विश्वासी भृत्यों के द्वारा इस दुःखित राजा को राज्य से च्युत किया ।५। वह महाभाग राजा स्वराष्ट्र राज्य से च्युत होने के कारण दुखित चित्त से वन में जाकर वितस्तानदी के तट पर सिथत होकर तपस्या करने लगे ।६। वह ग्रीष्म के समय पंचाग्नि में पंचतपा, वर्षा के समय खुले स्थान में बैठकर और शीतकाल में जलशायी होकर निराहार और संयत भाव से व्रत करने लगे।७। तदनन्तर तपस्यानुरक्त राजा की तपस्या के समय एक दिन वर्षाकाल में मेघों के चारों ओर निरन्तर जल वरसाने से महाजलसमूह उपस्थित हुआ था।८। तब चारों दिशा अंधकार से आच्छादित हो गई, यही नहीं, वरन् उस काल दक्षिण, पूर्व, पश्चिम या उत्तर कुछ नहीं जाना जाता था।९। अनन्तर वह राजा अति प्लावनकाल में नदी के तट से प्रेरित होकर अत्यन्त वेगशाली जलधारा से खिंचकर भी प्रार्थित नदी के तट को प्राप्त नहीं हुए।१०। फिर महीपति जल के प्रवाह से हरे जाकर एक रौही (मृगीविशेष) को प्राप्त हुए और उसकी पुच्छ पकड़ी।११। तदनन्तर उस जलसमूह में खिंचे हुए राजा महीतल में पहुँचे। अंधकार में इधर-उधर ढूँढ़कर किनारे पर पहुँचे।१२। मृगी के द्वारा आकृष्यमाण वह राजा बहुत विस्तारवाली दुस्तर कीचड को तरकर एक मनोहर वन में पहुँचे।१३। अंधकार में वह मृगी पुच्छ में लगे नाडियों से व्याप्त देहवाले महाभाग वसुधाधिपति को खींचने लगी।१४। राजा स्वराष्ट्र अंधकार में

विज्ञाय सानुरागं तं पृष्ठस्पर्शनतत्परम् । नरेन्द्रं तं वृषस्यन्तं सा मृगी तमुवाच ह ॥१६
किं पृष्ठं वेपथुमता करेण स्पृशसे मम । अन्यथैवास्य कार्यस्य सञ्जाता नृप ते गतिः ॥१७
नास्थाने वा मनो यातं नागम्याहं तवेश्वर । किन्तु त्वत्सङ्गमे विघ्नमेष लोलः करोति मे ॥१८

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्या मृग्याश्च जगतीपतिः । जातकौतूहलो रौहीमिदं वचनमब्रवीत् ॥१९
का त्वं ब्रूहि मृगी वाक्यं कथं मानुषवद्वदेत् । कश्चैव लोलो यो विघ्नं त्वत्सङ्गे कुरुते मम ॥२०

मृग्युवाच

अहं ते दयिता भूप प्रागासमुत्पलावती । भार्याशताग्रमहिषी दुहिता दृढधन्वनः ॥२१

राजोवाच

किन्तु यावत्कृतं कर्म येनेमां योनिमागता । पतिव्रता धर्मपरा सा चेत्थं कथमीदृशी ॥२२

मृग्युवाच

अहं पितृगृहे बाला सखीभिः सहिता वनम् । रन्तुं गता ददर्शैकं मृगं मृग्या समागतम् ॥२३
ततः समीपवर्तिन्या मया सा ताडिता मृगी । मया त्रस्ता गतान्यत्र क्रुद्धः प्राह ततो मृगः ॥२४
मूढे किमेवं मत्तासि धिक्ते दौःशील्यमीदृशम् । आधानकालो येनायं त्वया मे विफलीकृतः ॥२५

भ्रमण करते-करते उसके स्पर्श से कामासक्तचित्त हो अत्यन्त आनन्द को प्राप्त हुए ।१५। जब राजा ने उस वन में उसकी पीठ का स्पर्श किया, तब मृगी ने उनको अनुरागी जानकर कहा ।१६। हे भूपाल ! काँपते हुए हाथों से मेरी पीठ का स्पर्श क्यों करते हो ? इस स्पर्श का भाव अन्य प्रकार विदित होता है ।१७। हे नरेश्वर ! अयोग्य के प्रति आपकी अभिलाषा नहीं हुई है मैं आपकी अगम्या नहीं हूँ अर्थात् गमन करने के योग्य ही हूँ किन्तु आपके समागम में यह लोल विघ्न करते हैं ।१८

मार्कण्डेय जी बोले—उन राजा ने उस मृगी का इस प्रकार वचन सुन कौतूहलयुक्त होकर मृगी से कहा ।१९। तुम कौन हो ? मृगी होकर किस प्रकार मनुष्य के समान बात कहती हो ? और तुम्हारे संग समागम में जो विघ्न उत्पन्न करते हैं, वह लोल कौन है ? वह कहो ।२०

मृगी ने कहा—हे भूपते ! मैं दृढधन्वा की कन्या हूँ, मैं ही सैकड़ों रानियों में श्रेष्ठ थी मेरा नाम उत्पलावती है मैं आपकी प्रियतमा महिषी हूँ ।२१

राजा बोले—तुमने ऐसा क्या कार्य किया है, जिससे ऐसी योनि प्राप्त हुई है ? मेरी वह पत्नी पतिव्रता और धर्मपरायण होकर किस प्रकार ऐसी दशा को प्राप्त हुई ।२२

मृगी बोली—मैंने पिता के घर बाल्यावस्था में सखियों के संग क्रीडा करने के लिये वन में जाकर मृगी के सहित संगत एक मृग को देखा था ।२३। अनन्तर मैंने निकट जाकर मृगी का ताडन (प्रहार) किया, तब मृगी डरकर अन्यत्र चली गई, इस कारण मृग ने क्रोधित होकर कहा ।२४। हे मूढे ! किसलिये ऐसी मत्त हुई, तेरी ऐसी दुःशीलता को धिक्कार है, क्योंकि मेरे इस गर्भाधान काल को तुमने विफल

वाचं श्रुत्वा ततस्तस्य मानुषस्येव भाषतः । भीता तमब्रुवं कोऽसील्येतां योनिमुपागतः ॥२६
ततः स प्राह पुत्रोऽहमृषेर्निर्वृतिचक्षुषः । सुतपा नाम मृग्यां तु साभिलाषो मृगोऽभवम् ॥२७
इमां चानुगतः प्रेम्णा वाञ्छितश्चानया वने । त्वया वियोजिता दुष्टे तस्माच्छापं ददामि ते ॥२८
मया चोक्तं तवाज्ञानादपराधः कृतो मुने । प्रसादं कुरु शापं मे न भवान्दातुमर्हति ॥२९
इत्युक्तः प्राह मां सोऽपि मुनिरित्थं महीपते । न प्रयच्छामि शापं ते यद्यात्मानं ददासि ते ॥३०
मया चोक्तं मृगी नाहं मृगरूपधरा वने । लप्स्यसेऽन्यां मृगीं तावन्मयि भावो निवर्त्यताम् ॥३१
इत्युक्तः कोपरक्ताक्षः स प्राह स्फुरिताधरः । नाहं मृगी त्वयेत्युक्तं मृगी मूढे भविष्यसि ॥३२
ततो भृशं प्रव्यथिता प्रणम्य मुनिमब्रुवम् । स्वरूपस्थमतिक्रुद्धं प्रसीदेति पुनः पुनः ॥३३
बालानभिज्ञा वाक्यानां ततः प्रोक्तमिदं मया । पितर्यसति नारीभिर्व्रियते हि पतिः स्वयम् ॥३४
सति ताते कथं चाहं वृणोमि मुनिसत्तम । सापराधाथ वा पादौ प्रसीदेषा नमाम्यहम् ॥३५
प्रसीदेति प्रसीदेति प्रणतायां महामते । इत्थं लालप्यमानायाः स प्राह मुनिपुङ्गवः ॥३६
न भवत्यन्यथा प्रोक्तं मम वाक्यं कदाचन । मृगी भविष्यसि मृता वनेऽस्मिन्नेव जन्मनि ॥३७
मृगत्वे च महाबाहुस्तव गर्भमुपैष्यति । लोलो नाम मुनेः पुत्रः सिद्धवीर्यस्य भामिनि ॥३८
जातिस्मरा भवित्री त्वं तस्मिन्गर्भमुपागते । स्मृतिं प्राप्य तथा वाचं मानुषीमीरयिष्यसि ॥३९

किया।२५। मनुष्य के समान वचन बोलने वाले उस मृग का वचन सुनने पर मैंने डरकर उससे पूछा कि, आप किस प्रकार इस मृगयोनि को प्राप्त हुए हैं।२६। तब उसने कहा मैं निवृत्ति चक्षु मुनि का पुत्र हूँ, मेरा नाम सुतपा है, मैंने मृगी में अभिलाषा करके मृगरूप धारण किया है।२७। इस वन में इस मृगी के अभिलाषा करने से प्रीतिवश होकर इसका अनुगमन किया था। हे दुष्टे ! तुमने उस मृगी से मेरा वियोग कराया इस कारण तुझको शाप दूँगा।२८। मैंने कहा हे मुनिवर ! अज्ञान के वश होकर मैंने आपका अपराध किया है, मेरे प्रति प्रसन्न होओ, मुझको शाप मत दो।२९। हे महीपते ! इस प्रकार कहने पर उन मुनि ने भी मुझसे कहा, तुम यदि मुझमें आत्मप्रदान करोगी तो तुझको शाप नहीं दूँगा।३०। मैंने कहा मैं मृगरूप धारिणी या मृगी नहीं हूँ, आपको वन में अन्य मृगी मिलेगी, मेरे प्रति यह अभिलाषा निवृत्त कीजिये।३१। यह बात सुन उन्होंने कोप से लाल नेत्र कर होठ कँपाते हुए तुमने "मैं मृगी नहीं हूँ" यह बात कही, इस कारण तू मृगी ही होगी।३२। तब मैंने अत्यन्त व्यथित हो, उन स्वीयरूपधारी अति क्रुद्ध मुनि को प्रणाम करके बार बार कहा, मैं बाला हूँ अत एव वचन बोलना नहीं जानती इसी से ऐसा कहा है, मेरे प्रति प्रसन्न होओ। पिता के न होने में स्त्री पति को स्वयं वरती है।३३-३४। किन्तु हे मुनिसत्तम ! पिता के वर्तमान रहते मैं किस प्रकार स्वयं वरण करूँ अथवा हे प्रभो ! मैंने अपराध किया है, आपके चरणों की वन्दना करके नमस्कार करती हूँ, आप प्रसन्न होइये।३५। हे महामते ! इस प्रणत के प्रति प्रसन्न होओ। मुझको इस भाँति बार बार कहता देखकर वह मुनिवर बोले।३६। कभी मेरा कहा हुआ वचन मिथ्या नहीं होगा तुम मृत्यु के बाद दूसरे जन्म में इसी वन में मृगी होगी।३७। हे भामिनी ! जब तुम मृगत्व को प्राप्त होगी तब सिद्धवीर्य किसी मुनि का पुत्र महाबाहु लोल तुम्हारे गर्भ से जन्म ग्रहण करेगा।३८। जब तुम उस लोल को गर्भ में प्राप्त करोगी, तब तुम जातिस्मरा होगी और पूर्वजन्म का

तस्मिञ्जाते मृगत्वात्त्वं विमुक्ता पतिनार्चिता । लोकानवाप्स्यसि प्राप्या ये न दुष्कृतकर्मभिः ।।४०
सोऽपि लोलो महावीर्यः पितृशत्रून्निपात्य वै । जित्वा वसुन्धरां कृत्स्नां भविष्यति ततो मनुः ।।४१
एवं शापमहं लब्ध्वा मृता तिर्यक्त्वमागता । त्वत्संस्पर्शाच्च गर्भोऽसौ संभूतो जठरे मम ।।४२
अतो ब्रवीमि नास्थाने तव यातं मनो मयि । न चाप्यगम्या गर्भस्थो लोलो विघ्नं करोत्यसौ ।।४३

मार्कण्डेय उवाच

एवमुक्तस्ततः सोऽपि राजा प्राप्य परां मुदम् । पुत्रो ममारीञ्जित्वेति पृथिव्यां भविता मनुः ।।४४
ततस्तं सुषुवे पुत्रं सा मृगी लक्षणान्वितम् । तस्मिञ्जाते च भूतानि सर्वाणि प्रययुर्मुदम् ।।४५
विशेषतश्च राजासौ पुत्रे जाते महावने । सा विमुक्ता मृगी शापात्प्राप लोकाननुत्तमान् ।।४६
ततस्तस्यर्षयः सर्वे समेत्य मुनिसत्तम । अवेक्ष्य भाविनीमृद्धिं नाम चक्रुर्महात्मनः ।।४७
तामसीं भजमानायां योनिं मातर्यजायत । तमसा चावृते लोके तामसोऽयं भविष्यति ।।४८
ततः स तामसस्तेन पित्रा संवर्द्धितो वने । जातबुद्धिरुवाचेदं पितरं मुनिसत्तम ।।४९
कस्त्वं तात कथं वाहं पुत्रो माता च का मम । किमर्थमागतश्च त्वमेतत्सत्यं ब्रवीहि मे ।।५०

मार्कण्डेय उवाच

ततः पिता यथा वृत्तं स्वराज्यच्यावनादिकम् । तस्याचष्टे महाबाहुः पुत्रस्य जगतीपतिः ।।५१

वृत्तान्त स्मरण करने में समर्थ होने पर मनुष्य के समान वचन कह सकोगी ।३९। उस महाबाहु के जन्म ग्रहण करने पर तुम शाप से छूट और पति के द्वारा अर्चित होकर पापकर्मकारी मनुष्य जो लोक प्राप्त नहीं कर सकते तुम उसी लोक को प्राप्त करोगी ।४०। तदनन्तर वह महावीर्यवान् लोल ही पिता के शत्रुओं को मार और समस्त वसुन्धरा को जीतकर मनु होगा ।४१। हे महाराज ! मैंने इस प्रकार शाप को प्राप्त हो तिर्यक् योनि प्राप्त की है तुम्हारे स्पर्श के कारण मेरे जठर में उस गर्भ ने जन्म ग्रहण किया है ।४२। इसी निमित्त मैंने कहा था कि "मेरे प्रति जो आपकी अभिलाषा हुई है, वह अयोग्यस्थान में नहीं है, आप भी मुझको अगम्य नहीं हैं, किन्तु यह गर्भस्थित लोल ही विघ्न करता है" ।४३

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर "यह पुत्र मेरे शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी में मनु होगा" इस प्रकार वचन सुनकर वह राजा परमहर्ष को प्राप्त हुए ।४४। इसके उपरान्त उस मृगी ने सुलक्षणयुक्त पुत्र प्रसव किया । बालक के जन्म ग्रहण करने पर संपूर्ण प्राणी आनन्दित हुए थे ।४५। इस महाबलवान् पुत्र के जन्म लेने पर विशेषकर राजा आनन्दित हुए और वह मृगी भी शाप से छूटकर अति उत्तम लोक को प्राप्त हुई ।४६। हे मुनिसत्तम ! इसके बाद सब ऋषियों ने आकर, उस महात्मा की भविष्यत् ऋद्धि देखकर नामकरण किया ।४७। उन्होंने कहा—जगत् के तमः अर्थात् अन्धकारद्वारा आवृत होने पर यह तामसी योनि को प्राप्त हुई माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ है, इस कारण यह बालक "तामस" नाम से विख्यात होगा ।४८। हे मुनिश्रेष्ठ ! वन में पिता के द्वारा उस तामस ने वर्द्धित होकर यथासमय में बुद्धि का उदय होने पर पिता से कहा ।४९। हे तात ! आप कौन हैं ? किस प्रकार मैं आपका पुत्र हुआ ? तथा मेरी माता कौन है ? और आप किस निमित्त यहाँ आये हैं ? यह सब मुझसे सत्य कहो ।५०

मार्कण्डेय बोले—उन महाबाहु जगतीपति पिता ने, पुत्र के प्रति स्वीयराज्य से भ्रष्ट होना इत्यादि

श्रुत्वा तत्सकलं सोऽपि समाराध्य च भास्करम् । अवाप दिव्यान्यस्त्राणि ससंहाराण्यशेषतः ।।५२
कृतास्त्रस्तानरीञ्जित्वा पितुरानीय चान्तिकम् । अनुज्ञातान्मुमोचाथ स च स्वं धर्ममास्थितः ।।५३
पिताऽपि तस्य स्वाँल्लोकांस्तपोयज्ञसमार्जितान् । विसृष्टदेहः सम्प्राप्तो दृष्ट्वा पुत्रमुखं सुखम् ।।५४
जित्वा समस्तां पृथिवीं तामसाख्यः स पार्थिवः । तामसाख्यो मनुरभूत्तस्य मन्वन्तरं शृणु ।।५५
ये देवास्तत्पतिर्यश्च देवेन्द्रो ये तथर्षयः । ये पुत्राश्च मनोस्तस्य पृथिवीपरिपालकाः ।।५६
सत्यास्तथान्ये सुधियः सुरूपा हरयस्तथा। एते देवगणास्तत्र सप्तविंशतिका मुने ।।५७
महाबलो महावीर्यः शतयज्ञोपलक्षितः । शिखिरिन्द्रस्तथा तेषां देवानामभवद्विभुः ।।५८
ज्योतिर्धर्मा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्बलकस्तथा । पीवरश्च तथा ब्रह्मन्सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ।।५९
नरः क्षान्तिः शान्तदान्तजानुजंघादयस्तथा । पुत्रास्तु तामसस्यासन्राजानः सुमहाबलाः ।।६०
इत्येतत्तामसं विप्र मन्वन्तरमुदाहृतम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि तमसा स न बाध्यते ।।६१

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे तामसमन्वन्तरे एकसप्ततितमोऽध्यायः ।७१।

संपूर्ण विषय यथावत् वर्णन किया ।५१। उन तामस ने पिता के यह समस्त वचन सुन, भास्कर देव की आराधना कर निवर्त्तन मंत्र के सहित नाना प्रकार के सब दिव्य अस्त्र मंत्र लाभ किये ।५२। उन्होंने अस्त्रप्रयोग में निपुण हो उन शत्रुओं को पराजित कर, पिता के समीप लाकर उनकी आज्ञानुसार उनको छोड़ दिया । इस प्रकार उन्होंने अपने धर्म की रक्षा की ।५३। इसके बाद उनके पिता भी पुत्र का मुख देखक सुखपूर्वक देह छोड़ तप और यज्ञ के प्रभाव से अर्जित स्वर्गादि लोकों में चले गये ।५४। वह तामस नृपति संपूर्ण पृथ्वी को जीतकर तामस नामक मनु हुए थे, उनका मन्वन्तर सुनो ।५५। उस मन्वन्तर में जो-जो देवता, देवताओं के अधिपति जो इन्द्र, जो ऋषि, और उन मनु के जिन-जिन पुत्रों ने पृथ्वी का पालन किया था, वह सुनो ।५६। हे मुने ! इस मन्वन्तर में सत्यगण, सुधीगण, सुरूपगण और हरिगण, यह चार प्रकार के देवता हैं, इनके प्रत्येक गणों में सत्ताईस देवता हैं ।५७। इस मन्वन्तर में महाबल महावीर्य शिखी नामक इन्द्र शत यज्ञ करके उन सब देवताओं के प्रभु हुए थे ।५८। हे ब्रह्मन् ! ज्योतिर्धर्मा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, बलक और पीवर, यह सात सप्तर्षि थे ।५९। नर, क्षान्ति, शान्त, दान्त, जानु, जंघा इत्यादि तामस मनु के महाबल पराक्रमशाली पुत्र उत्पन्न हुए थे ।६०। हे विप्र ! इस प्रकार तामस मन्वन्तर का वृत्तान्त है, वह मैंने आपसे वर्णन किया । जो मनुष्य इसको पढ़ेंगे अथवा सुनेंगे, उनको अज्ञानरूपी अंधकार बाधा नहीं देगा ।६१।

श्रीमार्कण्डेयपुराण में तामसमन्वन्तरवर्णन नामक इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७१।

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

रैवतमन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

पञ्चमोऽपि मनुर्ब्रह्मन्रैवतो नाम विश्रुतः। तस्योत्पत्तिं विस्तरशः शृणुष्व कथयामि ते ॥१
ऋषिरासीन्महाभाग ऋतवागिति विश्रुतः। तस्यापुत्रस्य पुत्रोऽभूद्रेवत्यन्ते महात्मनः ॥२
स तस्य विधिवच्चक्रे जातकर्मादिकाः क्रियाः। तथोपनयनादींश्च स चाशीलोऽभवन्मुने ॥३
यतः प्रभृति जातोऽसौ ततः प्रभृति सोऽप्यृषिः। दीर्घरोगपरामर्शमवाप मुनिपुङ्गवः ॥४
माता तस्य परामार्तिं कुष्ठरोगादिपीडिता। जगाम स पिता चास्य चिन्तयामास दुःखितः ॥५
किमेतदिति सोऽप्यस्य पुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मतिः। जग्राह भार्यामन्यस्य मुनिपुत्रस्य सम्मुखीम् ॥६
ततो विषण्णमनसा ऋतवागिदमुक्तवान्। अपुत्रता मनुष्याणां श्रेयसे न कुपुत्रता ॥७
कुपुत्रो हृदयायासं सर्वदा कुरुते पितुः। मातुश्च स्वर्गसंस्थांश्च स्वपितॄन्पातयत्यधः ॥८
सुहृदां नोपकाराय पितॄणां च न तृप्तये। पित्रोर्दुःखाय धिग्जन्म तस्य दुष्कृतकर्मणः ॥९
धन्यास्ते तनया येषां सर्वलोकाभिसम्मताः। परोपकारिणः शान्ताः साधुकर्मण्यनुव्रताः ॥१०
अनिर्वृतं तथा मन्दं परलोकपराङ्मुखम्। नरकाय न सद्गत्यै कुपुत्रालम्बि जन्म नः ॥११

अध्याय ७२

रैवतमन्वन्तर का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे ब्रह्मन्! अब रैवतनामक विख्यात पाँचवें मनु की उत्पत्ति का वृत्तान्त तुमसे विस्तारसहित वर्णन करता हूँ, सुनो।१। ऋतवाक् नामक विख्यात महाभाग ऋषि पहले तो अपुत्र थे, फिर रेवतीनक्षत्र के शेष में उन ऋषि के एक पुत्र उत्पन्न हुआ।२। हे मुने! ऋषि ने उस पुत्र की विधि के अनुसार जातकर्मादि क्रिया और उपनयन आदि समस्त क्रिया संपन्न की। किन्तु वह पुत्र शीलवान् नहीं हुआ अर्थात् असच्चरित्र हुआ था।३। हे मुनिवर! जब से उक्त बालक का जन्म हुआ तब से ही वह ऋषि दीर्घकालव्यापी रोगद्वारा ग्रसित हुए थे।४। उसकी माता भी कुष्ठ (कोढ़) रोग से पीड़ित होकर अत्यन्त क्लेश भोगने लगी। तब उसके पिता दुःखित होकर चिन्ता करने लगे।५। कि "क्यों ऐसा हुआ?" अनन्तर उस अत्यन्त दुर्मति पुत्र ने एक समय अन्य एक मुनिपुत्र के सन्मुख हो उसकी भार्या को हरण किया।६। इससे ऋतवाक्ऋषि दुःखितचित्त होकर कहने लगे कि, "मनुष्य की कुपुत्रता से अपुत्रता श्रेष्ठ है"।७। क्योंकि कुपुत्र माता-पिता के हृदय में सदा ही कष्टप्रदान करता है और स्वर्ग में वास करने वाले अपने पितरों को भी नीचे गिराता है।८। इसके द्वारा सुहृद्गणों का भी उपकार नहीं होता पितृपुरुषों को भी तृप्ति नहीं होती। माता-पिता के दुःख का हेतु दुष्कर्मकारी कुपुत्र के जन्म को धिक्कार है।९। जिसकी संतान सर्व जनादृत (अर्थात् जिसका सब कोई आदर करे), परोपकारी, शान्त प्रकृति और सत्कर्म में अनुरक्त हैं, वही धन्य है।१०। हमारा परलोकपराङ्मुख, कुपुत्रालम्बी और असन्तुष्ट

करोति सुहृदां दैन्यमहितानां तदा मुदम् । अकाले च जरां पित्रोः कुसुतः कुरुते ध्रुवम् ॥१२

मार्कण्डेय उवाच

एवं सोऽत्यन्तदुष्टस्य पुत्रस्य चरितैर्मुनिः । दह्यमानमनोवृत्तिर्वृत्तं गर्गमपृच्छत ॥१३

ऋतुवागुवाच

सुव्रतेन पुरा वेदा गृहीता विधिवन्मया । समाप्य वेदान्विधिवत्कृतो दारपरिग्रहः ॥१४

सदारेण क्रियाः कार्याः श्रौताः स्मार्त्ता वषट्क्रियाः । न मे न्यूनाः कृताः काश्चिद्यावदद्य महामुने ॥१५

गर्भाधानविधानेन न काममनुरुध्यता । पुत्रार्थं जनितश्चायं पुन्नाम्नो बिभ्यता मुने ॥१६

सोऽयं किमात्मदोषेण मम दोषेण वा मुने । अस्मद्दुःखावहो जातो दौःशील्याद्बन्धुशोकदः ॥१७

गर्ग उवाच

रेवत्यन्ते मुनिश्रेष्ठ जातोऽयं तनयस्तव । तेन दुःखायते दुष्टे काले यस्मादजायत ॥१८

न तेऽपचारो नैवास्य मातुर्नायं कुलस्य ते । तस्य दौःशील्यहेतुत्वं रेवत्यन्तमुपागतम् ॥१९

ऋतुवागुवाच

यस्मान्ममैकपुत्रस्य रेवत्यन्तसमुद्भवम् । दौःशील्यमेतत्सा तस्मात्पतताशु रेवती ॥२०

यह मन्द जन्म केवल नरक के ही लिये हैं, सद्गति के लिये नहीं ।११। कुपुत्र, सुहृद्गणों की दीनता, अपकारी शत्रुओं का आनन्द और अकाल में पिता-माता की जरा (बुढ़ापा) निश्चय ही संपादन करता है ।१२

मार्कण्डेय जी बोले—उन ऋषि ने अत्यन्त दुष्टचरित्र पुत्र के कुव्यवहार से इस प्रकार मन में दग्ध हो सब वृत्तान्त कहकर गर्गऋषि से इस भाँति पूछा ।१३

ऋतुवाक् ने कहा—"पूर्व में मैंने सद्व्रतों में रत होकर यथाविधि वेद पढ़े हैं और वेद पढ़ने के बाद विधिपूर्वक स्त्री ग्रहण की है ।१४। हे महामुने ! श्रौत, स्मार्त और वषट्कार क्रियास्वरूप जो सब कार्य भार्या के सहित करने चाहिए, स्त्रीग्रहण करने तक से आज पर्यन्त उन सब व्रत के किसी अनुष्ठान में त्रुटि नहीं की है ।१५। हे मुने ! मैंने पुन्नाम नरक के भय से भीत होकर रक्षा पाने के लिये गर्भाधान विधानानुसार कर इस पुत्र को उत्पन्न किया है, कामानुरुद्ध होकर पुत्र उत्पन्न नहीं किया ।१६। हे मुने ! तो भी यह बालक जो हमको दुःख देनेवाला और दुःखस्वभावयुक्त बन्धुगणों को शोकप्रद होकर उत्पन्न हुआ है, यह क्या अपने आत्मदोष से अथवा मेरे दोष से ? ऐसा है" ।१७

गर्ग जी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारे पुत्र ने रेवती के अन्त में जन्म ग्रहण किया है, यह दुष्ट काल में जन्मा है, इसी कारण तुमको दुःख देता है ।१८। यह तुम्हारे या तुम्हारी स्त्री के, अथवा तुम्हारे वंश के स्वधर्म के व्यक्तिक्रम का फल नहीं है, रेवती का अन्तभाग ही इसके दुःस्वभाव का कारण है ।१९

ऋतुवाक् ने कहा—जब कि, रेवती के अन्त में जन्म होने के कारण मेरे एक पुत्र का यह दुःस्वभाव हुआ है, इसी निमित्त वह रेवती शीघ्र पतित हो ।२०

मार्कण्डेय उवाच

तेनैवं व्याहृते शापे रवेत्यृक्षं पपात ह । पश्यतः सर्वलोकस्य विस्मयाविष्टचेतसः ॥२१
रेवत्यृक्षं च पतितं कुमुदाद्रौ समन्ततः । भासयामास सहसा वनकन्दरनिर्झरान् ॥२२
कुमुदाद्रिश्च तत्पातात्ख्यातो रैवतकोऽभवत् । अतीव रम्यः सर्वस्यां पृथिव्यां पृथिवीधरः ॥२३
तस्यर्क्षस्य तु या कान्तिर्जाता पङ्कजिनी सरः । ततो जज्ञे तदा कन्यारूपेणातीव शोभना ॥२४
रेवतीकान्तिसम्भूतां तां दृष्ट्वा प्रमुचो मुनिः । तस्या नाम चकारेत्थं रेवती नाम भागुरे ॥२५
पोषयामास चैवैतां स्वाश्रमाभ्याशसम्भवाम् । प्रमुचः स महाभागस्तस्मिन्नेव महाचले ॥२६
तां तु यौवनिनीं दृष्ट्वा कन्यकां रूपशालिनीम् । स मुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या भर्ता भवेदिति ॥२७
एवं चिन्तयतस्तस्य ययौ कालो महान्मुने । न चाससाद सदृशं वरं तस्या महामुनिः ॥२८
ततस्तस्या वरं प्रष्टुमग्निं स प्रमुचो मुनिः । विवेश वह्निशालां वै पृष्टस्तं प्राह हव्यभुक् ॥२९
महाबलो महावीर्यः प्रियवाग्धर्मवत्सलः । दुर्गमो नाम भविता भर्त्ता ह्यस्या महीपतिः ॥३०

मार्कण्डेय उवाच

अनन्तरश्च मृगयाप्रसङ्गेनागतो मुने । तस्याश्रमपदं धीमान्दुर्गमः स नराधिपः ॥३१
प्रियव्रतान्वयभवो महाबलपराक्रमः । पुत्रो विक्रमशीलस्य कालिन्दीजठरोद्भवः ॥३२

मार्कण्डेय जी बोले—जब उन ऋतवाक् ने यह शाप दिया तब सब मनुष्यों के सामने ही रेवतीनक्षत्र को पतित हुआ देखकर सब का ही चित्त आश्चर्ययुक्त हुआ[1] ।२१। उस रेवती नक्षत्र ने कुमुदपर्वत में गिरकर उसकी चारों दिशा के वन, कन्दरा और झरने इन सब को सहसा प्रकाशित किया ।२२। संपूर्ण पृथ्वी में अत्यन्त मनोहर कुमुदपर्वत भी उसके गिरने के कारण 'रैवतक' नाम से विख्यात हुआ ।२३। उस नक्षत्र की कान्ति से पङ्कजयुक्त सरोवर हुआ और उस सरोवर से अत्यन्त स्वरूपवान् एक कन्या ने जन्म ग्रहण किया ।२४। हे भागुरे ! प्रमुचमुनि ने उस कन्या को रेवती की कान्ति से उत्पन्न हुआ देखकर उसका नाम 'रेवती' रखा ।२५। वह महाभाग प्रमुच रैवतकपर्वत में अपने आश्रम के समीप उत्पन्न हुई कन्या का प्रतिपालन करने लगे ।२६। फिर वह मुनि उस रूपशालिनी कन्या को यौवनसंपन्न देखकर "कौन इसका भर्त्ता होगा" यह चिन्ता करने लगे ।२७। हे मुने ! इस प्रकार चिन्ता करते-करते उनको बहुत दिन बीत गये, किन्तु उन महामुनि को उनके समान वर नहीं मिला ।२८। अनन्तर प्रमुचमुनि अग्नि से उसके वर-विषय को पूछने के लिये वह्निशाल में गये वहाँ मुनि के पूँछने पर हुताशन ने मुनि से कहा।२९। कि महाबल, महावीर्य, प्रियवादी, धर्मवत्सल, दुर्गमनात्मक पृथ्वीपति इसके भर्त्ता होंगे।३०

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! अनन्तर स्वायम्भुवमनु के ज्येष्ठपुत्र, प्रियव्रत के वंश में जन्मे विक्रमशीलराजा की कालिन्दीनामक महिषी के गर्भ से उत्पन्न, बुद्धिमान् महाबलपराक्रमशाली वह नराधिपति दुर्गम मृगया खेलते हुए मुनि के उस आश्रमपद में उपस्थित हुए थे ।३१-३२। वह भूमिपति

---

१. यह रेवती देवी पतित हुई थी ।

स प्रविश्याश्रमपद ता तन्वीं जगतीपतिः । अपश्यमानस्तमृषिं प्रियेत्यामन्त्र्य पृष्टवान् ॥३३

राजोवाच

क्व गतो भगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गवः । तं प्रणेतुमिहेच्छामि तत्त्वं प्रब्रूहि शोभने ॥३४

मार्कण्डेय उवाच

अग्निशालां गतो विप्रस्तच्छ्रुत्वा तस्य भाषितम् । प्रियेत्यामन्त्रणं चैव निश्चक्राम त्वरान्वितः ॥३५
स ददर्श महात्मानं राजानं दुर्गमं मुनिः । नरेन्द्रचिह्नसहितं प्रश्रयावनतं पुरः ॥३६
तस्मिन्दृष्टे ततः शिष्यमुवाच स तु गौतमम् । गौतमानीयतां शीघ्रमर्घोऽस्य जगतीपतेः ॥३७
एकस्तावदयं भूपश्चिरकालादुपागतः । जामाता च विशेषेण योग्योऽर्घस्य मतो मम ॥३८

मार्कण्डेय उवाच

ततः स चिन्तयामास राजा जामातृकारणम् । विवेद च न तन्मौनी जगृहेऽर्घं च तन्नृपः ॥३९
तमासनगतं विप्रो गृहीतार्घं महामुनिः । स्वागतं प्राह राजेन्द्रमपि ते कुशलं गृहे ॥४०
कोशे बलेऽथ मित्रेषु भृत्यामात्ये नरेश्वर । तथात्मनि महाबाहो यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥४१
पत्नी च ते कुशलिनी यत एवानुतिष्ठति । पृच्छाम्यस्यास्ततो नाहं कुशलिन्योऽपरास्तव ॥४२

राजोवाच

त्वत्प्रसादादकुशलं न क्वचिन्मम सुव्रत । जातकौतूहलश्चास्मि मम भार्यात्र का मुने ॥४३

आश्रम में प्रवेशपूर्वक ऋषि का दर्शन न पाया उस कृशाङ्गी कन्या को प्रिया कहकर पूँछने लगे ।३३

राजा ने कहा—हे सुन्दरी ! वह भगवान् मुनिश्रेष्ठ इस आश्रम से कहाँ गये हैं ? वह तुम कहो मैं उनको प्रणाम करने की इच्छा करता हूँ ।३४

मार्कण्डेय जी बोले—वह अग्निशाला में गये हुए विप्र राजा का कहा यह वचन और "प्रिया" यह संबोधन सुनकर शीघ्र निकले ।३५। उन मुनि के निकलते ही प्रथम नरेन्द्रचिह्न सहित विनय से नम्र हुए महात्मा राजा दुर्गम को देखा । उन्होंने उनको देखने के बाद गौतम नामक शिष्य से कहा "हे गौतम ! इन भूपाल के लिये शीघ्र अर्घ्य लाओ ।३६-३७। एक तो यह राजा बहुत दिनों के बाद आश्रम में आये हैं, इस पर भी फिर यह जामाता हैं अत एव मेरे मत से यह यथार्थ ही अर्घ्य के योग्य पात्र हैं" ।३८

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर राजा, ऋषि के जामाता कहने के कारण की चिन्ता करने लगे, किन्तु कुछ नहीं समझ सके, तब नृपति ने मौनावलम्बनपूर्वक वह अर्घ्य ग्रहण किया ।३९। उन महामुनि विप्र ने आसन पर बैठे हुए अर्घ्यग्रहणकारी राजेन्द्र से पूछा हे नरेश्वर ! आप कुशल से आये हैं ? हे महाबाहो ! आपके गृह कोशागार (खजाना) सैन्यगण, मित्रगण, एवं भृत्यगण और अमात्यगण की कुशलता है ? आप सबके अवलम्बनस्थान की भी कुशलता है ।४०-४१। आपकी पत्नी यहाँ कुशलपूर्वक अवस्थान करती है इसी से मैंने उसके विषय में नही पूछा । इसके अतिरिक्त आपके पुर की अन्य स्त्रियाँ कुशलिनी तो हैं ।४२

राजा बोले—हे सत्यपरायण ! आपके प्रसाद से मेरी किसी प्रकार अकुशल नहीं है, किन्तु हे मुने ! इस स्थान में मेरी भार्या कौन है ? यह जानने के लिये मुझको कौतूहल उत्पन्न हुआ है ।४३

ऋषिरुवाच

रेवती सुमहाभागा त्रैलोक्यस्यापि सुन्दरी । तव भार्या वरारोहा तां त्वं राजन्न वेत्सि किम् ॥४४

राजोवाच

सुभद्रां शान्ततनयां कावेरीतनयां विभाम् । सुराष्ट्रजां सुजातां च कदम्बां च वरूथजाम् ॥४५
विपाठां नन्दिनीं चैव वेद्मि भार्यां गृहे द्विज । तिष्ठन्ति मे न भगवन्रेवतीं वेद्मि का न्वियम् ॥४६

ऋषिरुवाच

प्रियेति साम्प्रतं येयं त्वयोक्ता वरवर्णिनी । किं विस्मृतं ते भूपाल श्लाघ्येयं गृहिणी तव ॥४७

राजोवाच

सत्यमुक्तं मया किन्तु भावो दुष्टो न मे मुने । नात्र कोपं भवान्कर्तुमर्हत्यस्मासु याचितः ॥४८

ऋषिरुवाच

यत्त्वं ब्रवीषि भूपाल न भावस्तव दूषितः । व्याजहार भवानेतद्वह्निना नृप चोदितः ॥४९
मया पृष्टो हुतवहः कोऽस्या भर्त्तेति पार्थिव । भविता तेन चाप्युक्तो भवानेवाद्य वै वरः ॥५०
तद्गृह्यतां मया दत्ता तुभ्यं कन्या नराधिप । प्रियेत्यामन्त्रिता चेयं विचारं कुरुषे कथम् ॥५१

मार्कण्डेय उवाच

ततोऽसावभवन्मौनी तेनोक्तः पृथिवीपतिः । ऋषिस्तथोद्यतः कर्तुं तस्या वैवाहिकं विधिम् ॥५२

ऋषि ने कहा—हे राजन् ! रेवती नामक महाभाग त्रैलोक्यसुन्दरी वरारोहा आपकी भार्या है, उसको क्या आप नहीं जानते हैं ? ४४

राजा ने कहा—हे विभो ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा ।४५। विपाठा और नन्दिनी इन प्रत्येक को भार्या जानता हूँ, हे द्विज ! वह हमारे ही घर वास करती हैं किन्तु हे भगवन् ! इस रेवतीनामक भार्या को मैं नहीं जानता, यह कौन है ? ।४६

ऋषि बोले—हे भूपाल ! अभी जिस वरवर्णिनी को "प्रिया" कहकर आपने संबोधन किया है, वह वरवर्णिनी ही आपकी श्लाघनीय गृहिणी है आप क्या भूल गये ? ।४७

राजा ने कहा—हे मुने ! सत्य ही मैंने यह कहा है किन्तु मेरे वचन में मेरा दुष्टभाव नहीं है, आप इसके कारण मेरे प्रति कोप न करें यही प्रार्थना है ।४८

ऋषि बोले—हे भूपाल ! आपने कहा कि, "मेरा भाव दूषित नहीं है" यह सत्य है । हे नृपते ! यह आपने अग्नि की प्रेरणा से ही कहा है ।४९। हे पृथिवीपते ! मैंने अग्नि से पूँछा था "कौन इसका पति होगा" हे भूपाल ! "आप ही अब इसके पति होंगे" अग्नि ने यही कहा था ।५०। अत एव हे नराधिपति ! जिसको आपने प्रिया कहकर संबोधन किया है, मैं आपको वही कन्या देता हूँ, ग्रहण कीजिये, आप विचार क्यों करते हैं ।५१

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर वह राजा ऋषि के इस प्रकार कहने पर मौन हो गये । तब ऋषि

तमुद्यतं सा पितरं विवाहाय महामुने । उवाच कन्या यत्किञ्चित्प्रश्रयावनतानना ॥५३
यदि मे प्रीतिमांस्तात प्रसादं कुर्त्तुमर्हसि । रेवत्यृक्षे विवाहं मे तत्करोतु प्रसादितः ॥५४

ऋषिरुवाच

रेवत्यृक्षं न वै भद्रे चन्द्रयोगि व्यवस्थितम् । अन्यानि सन्ति ऋक्षाणि सुभ्रु वैवाहिकानि ते ॥५५

कन्योवाच

तात तेन विना कालो विफलः प्रतिभाति मे । विवाहो विफले काले मद्विधायाः कथं भवेत् ॥५६

ऋषिरुवाच

ऋतवागिति विख्यातस्तपस्वी रेवतीं प्रति । चकार कोपं क्रुद्धेन तेनर्क्षं विनिपातितम् ॥५७
मया चास्मै प्रतिज्ञाता भार्येति मदिरेक्षणा । न चेच्छसि विवाहं त्वं संकटं नःसमागतम् ॥५८

कन्योवाच

ऋतवाक्स मुनिस्तात किमेवं तप्तवांस्तपः । न त्वया मम तातेन ब्रह्मबन्धोः सुतास्मि किम् ॥५९

ऋषिरुवाच

ब्रह्मबन्धोः सुता न त्वं बाले नैव तपस्विनः । सुता त्वं मम यो देवान्कर्तुमन्यान्समुत्सहे ॥६०

उस कन्या के विवाह की विधि संपादन करने में उद्यत हुए ।५२। हे महामुने ! पिता को विवाह करने में उद्यत देखकर विनय से (मस्तक झुकाये हुए) कन्या ने संक्षेप से कहा ।५३। हे तात ! यदि मुझमें आपकी प्रीतिहो, तो मेरे प्रति प्रसन्न होइये आप प्रसन्न होकर रेवतीनक्षत्र में मेरा विवाह कार्य संपन्न कीजिये ।५४

ऋषि बोले—हे भद्रे ! रेवतीनक्षत्र चन्द्रयोगी होकर स्थित नहीं है, इसके अतिरिक्त विवाह में अन्य सब श्रेष्ठ नक्षत्र वर्त्तमान हैं ।५५

कन्या बोली—हे तात ! वह रेवतीनक्षत्रवर्जित काल मेरे सम्बन्ध में विफल बोध होता है, मेरे समान कन्या का विवाह विफल काल में किस प्रकार हो ? ।५६

ऋषि ने कहा—पूर्व में ऋतवाक्नामक विख्यात तपस्वी ने रेवतीनक्षत्र के प्रति कुपित होकर उक्त नक्षत्र को आकाश से गिरा दिया ।५७। मैंने इसके पहले राजा से प्रतिज्ञा की है कि, इस मदिरेक्षणा को भार्यारूप में तुम्हें प्रदान करूँगा, किन्तु तुम इस समय विवाह करने में सम्मत नहीं होती हो, इस कारण मुझको संकट उपस्थित हुआ है ।५८

कन्या बोली—हे तात ! ऋतवाक् मुनि ने ऐसी क्या तपस्या की है कि, जो मेरे पिता आपके द्वारा वैसी तपस्या साधित नहीं हुई, तो मैं क्या ब्रह्मबन्धु की कन्या हूँ ? ।५९

ऋषि ने कहा—हे बाले ! तुम ब्राह्मणाधम की कन्या नहीं हो और सामान्य तपस्वी की कन्या भी नहीं हो, जो ऋषि अन्य देवताओं के उत्पन्न करने में समर्थ है, तुम उसी मुझ ऋषि की कन्या हो ।६०

कन्योवाच

तपस्वी यदि मे तातस्तत्किमृक्षमिदं दिवि । समारोप्य विवाहो मे तदृक्षे क्रियते न तु ॥६१

ऋषिरुवाच

एवं भवतु भद्रं ते भद्रे प्रीतिमती भव । आरोपयामीन्दुमार्गे रेवत्यृक्षं कृते तव ॥६२

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तपःप्रभावेण रेवत्यृक्षं महामुनिः । यथापूर्वं तथा चक्रे सोमयोगि द्विजोत्तम ॥६३
विवाहं चैव दुहितुर्विधिवन्मन्त्रयोगिनम् । निष्पाद्य प्रीतिमान्भूयो जामातरमथाब्रवीत् ॥६४

ऋषिरुवाच

औद्वाहिकं ते भूपाल कथ्यतां किं ददाम्यहम् । दुर्लभ्यमपि दास्यामि ममाप्रतिहतं तपः ॥६५

राजोवाच

मनोः स्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नः सन्ततौ मुने । मन्वन्तराधिपं पुत्रं त्वत्प्रसादाद्वृणोम्यहम् ॥६६

ऋषिरुवाच

भविष्यत्येष ते कामो मनुस्त्वत्तनयो महीम् । सकलां भोक्ष्यते भूप धर्मविच्च भविष्यति ॥६७

मार्कण्डेय उवाच

तामादाय ततो भूपः स्वमेव नगरं ययौ । तस्मादजायत सुतो रेवत्यां रैवतो मनुः ॥६८

कन्या बोली—यदि मेरे पिता ऐसे तपस्वी हैं, तो रेवती नक्षत्र को आकाश में स्थित कर उस नक्षत्र में मेरा विवाहकार्य सम्पादन क्यों नहीं करते ।६१

ऋषि ने कहा—हे भद्रे ! ऐसा ही हो, तुम्हारा मंगल हो अब प्रीतिमती होओ, मैं तुम्हारे निमित्त रेवतीनक्षत्र को चन्द्रमार्ग में स्थित करूँगा ।६२

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विजोत्तम ! इसके उपरान्त उन महामुनि प्रमुच ने तपस्या के प्रभाव से रेवतीनक्षत्र को पूर्व के समान चंद्रसंयुक्त किया ।६३। फिर यथाविहित मंत्रों के द्वारा दुहिता का विवाहकार्य संपन्न करके अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो जामाता से कहने लगे ।६४

ऋषि ने कहा—हे भूपाल ! मैं विवाह का यौतुकस्वरूप तुमको क्या दूं ? सो कहो । तुम्हारी मांगी हुई दुर्लभ वस्तु भी मैं अप्रतिहत तप के प्रभाव से तुम्हें दूंगा ।६५

राजा बोले—हे मुने ! मैंने स्वाम्भुव मनु के वंश में जन्म ग्रहण किया है, आपके प्रसाद से मन्वन्तराधिपति पुत्र प्राप्त करूँ यही मेरी प्रार्थना है ।६६

ऋषि बोले—हे भूप ! तुम्हारी कामना पूर्ण होगी तुम्हारा पुत्र मनु होकर संपूर्ण पृथ्वी का भोग करेगा और धर्मज्ञ होगा ।६७।

मार्कण्डेय जी बोले—इसके बाद वह राजा भार्या रेवती के सहित अपनी राजधानी में चले गये ।

समेतः सकलैर्धर्मैर्मानवैरपराजितः । विज्ञाताखिलशास्त्रार्थो वेदविद्यार्थशास्त्रवित् ।।६९
तस्य मन्वन्तरे देवान्मुनिदेवेन्द्रपार्थिवान् । कथ्यमानान्मया ब्रह्मन्निबोध सुसमाहितः ।।७०
सुमेधसस्तत्र देवास्तथा भूतनया द्विज । वैकुण्ठश्चामिताभाश्च चतुर्दश चतुर्दश ।।७१
तेषां देवगणानां तु चतुर्णामपि चेश्वरः । नाम्ना विभुरभूदिन्द्रः शतयज्ञोपलक्षकः ।।७२
हिरण्यलोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः । वेदबाहुः सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः ।।७३
वसिष्ठश्च महाभागो वेदवेदाङ्गपारगः । एते सप्तर्षयश्चासन्रैवतस्यान्तरे मनोः ।।७४
बलबन्धुर्महावीर्यः सुयष्टव्यस्तथापरः । सत्यकाद्यास्तथैवासन्रैवतस्य मनोः सुताः ।।७५
रैवतान्तास्तु मनवः कथिता ये मया तव । स्वायम्भुवाश्रया ह्येते स्वारोचिषमृते मनुम् ।।७६
(य एषां शृणुयान्नित्यं पठेदाख्यानमुत्तमम् । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो लोकं प्राप्नोत्यभीप्सितम् ।।७७)

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रैवतमन्वन्तरे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।७२।

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः (६८)

षष्ठमन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इत्येतत्कथितं तुभ्यं पञ्चमं मन्वन्तरं मया । चाक्षुषस्य मनोः षष्ठं श्रूयतामिदमन्तरम् ।।१
अन्यजन्मनि जातोऽसौ चक्षुषः परमेष्ठिनः । चाक्षुषत्वमतस्तस्य जन्मन्यस्मिन्नपि द्विज ।।२

अनन्तर रेवती के गर्भ से रैवतमनु ने जन्म ग्रहण किया ।६८। यह धर्मों के जाननेवाले मनुष्यों से अपराजित, संपूर्ण शास्त्रार्थ में पारगामी, और वेदविद्या और अर्थशास्त्र के ज्ञाता हुए थे ।६९। हे ब्रह्मन् ! उनके मन्वन्तर के देवता, मुनि, इन्द्र और भूपालगण का विषय कहता हूँ, सावधान होकर सुनो ।७०। हे द्विज ! देवगण सुमेधा, भूपति, वैकुण्ठ और अमिताभ, यह चारगण मुख्य हैं प्रत्येक गण में चौदह देवता हैं ।७१। उन चार गण मुख्य देवताओं के अधिपति शतयज्ञकारी विभु नामक इन्द्र थे ।७२। हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, महामुनि, पर्जन्य ।७३। और वेदवेदांगपारगामी महाभाग वसिष्ठ रैवत मन्वन्तर में यह सप्तर्षि थे ।७४। बलबन्धु, महावीर्य, सुयष्टव्य और सत्यक इत्यादि रैवत मनु के पुत्र थे ।७५। रैवत मनुपर्यन्त जिन समस्त मनुगणों का विषय मैंने तुमसे कहा, स्वारोचिष मनु के अतिरिक्त यह सब ही स्वायंभुव मनु के वंश में उत्पन्न हुए थे ।७६। (जो मनुष्य इस उत्तम आख्यान को नित्य सुनते हैं या पढ़ते हैं, वे संपूर्ण पापों से छूटकर अभिलषित लोको को प्राप्त होते हैं) ।७७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में रैवतमन्वन्तरवर्णन नामक बहात्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७२।

अध्याय ७३

षष्ठमन्वन्तर का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विजोत्तम ! यह पाँच मन्वन्तर का विषय तुमसे वर्णन किया अब चाक्षुष मनु के छठे मन्वन्तर का वृत्तान्त कहता हूँ सुनो।१। हे द्विज ! अन्य जन्म में यह परमेष्ठी ब्रह्मा जी के चक्षु से

(अनमित्रस्य राजर्षेर्भद्रा भार्या महात्मनः । जज्ञे सुतं सुविद्वांसं शुचिं जातिस्मरं विभुम् ।।३)
जातं माता निजोत्सङ्गे स्थितमुल्लाप्य तं पुनः । परिष्वजति हार्देन पुनरुल्लापयत्यथ ।।४
जातिस्मरः स जातो वै मातुरुत्सङ्गमास्थितः । जहास तं तदा माता संक्रुद्धा वाक्यमब्रवीत् ।।५
भीतास्मि किमिदं वत्स हासो यद्वदने तव । अकालबोधः सञ्जातः कच्चित्पश्यसि शोभनम् ।।६
(तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा प्रहस्येदमथाब्रवीत्) ।।

पुत्र उवाच

मामत्तुमिच्छति पुरो मार्जारी किं न पश्यसि । अन्तर्द्धानगता चेयं द्वितीया जातहारिणी ।।७
पुत्रप्रीत्या च भवती सहार्दा मामवेक्षती । उल्लाप्योल्लाप्य बहुशः परिष्वजति मां यतः ।।८
उद्भूतपुलका स्नेहसम्भवास्राविलेक्षणा । ततो ममागतो हासः शृणु चाप्यत्र कारणम् ।।९
स्वार्थे प्रसक्ता मार्जारी प्रसक्तं मामवेक्षते । तथान्तर्द्धानगा चैव द्वितीया जातहारिणी ।।१०
स्वार्थाय स्निग्धहृदये यथैवैते ममोपरि । प्रवृत्ते स्वार्थमास्थाय तथैव प्रतिभासि मे ।।११
किन्तु मदुपभोगाय मार्जारी जातहारिणी । त्वं तु क्रमेणोपभोग्यं मत्तः फलमभीप्ससि ।।१२
न मां जानासि कोऽप्येष न चैवापोकृतं मया । सङ्गतं नातिकालीनं पञ्चसप्तदिनात्मकम् ।।१३
तथापि स्निह्यसे सास्रा परिष्वजसि चाप्यति । ताततेति वत्स भद्रेति निर्व्यलीकं ब्रवीषि माम् ।।१४

उत्पन्न हुए थे, इसी कारण इस जन्म में भी उनका नाम चाक्षुष हुआ ।२। (महात्मा राजर्षि अनमित्र की भद्रा नामक भार्या ने विद्वान्, शुचि, जातिस्मर और विभु गुणयुक्त एक पुत्र उत्पन्न किया) ।३। अपनी गोदी में बैठे हुए उस नवीन उत्पन्न पुत्र का आदर करके जननी ने फिर आनन्द में भरकर आलिंगन किया । तदनन्तर फिर आदर करने लगी ।४। इससे माता की गोदी में स्थित उस जातिस्मर पुत्र ने हास्य किया तब माता अत्यन्त क्रोधित होकर उससे कहने लगी ।५। हे वत्स ! मैं भीत हुई हूँ, तुम्हारे वदन में हँसी कैसी है ? बालकपन में ज्ञानोत्पन्न करके क्या कोई शुभ देखते हो ।६। (माता के यह वचन सुनकर पुत्र हँसकर कहने लगा)

पुत्र बोला—सन्मुख मार्जारी जो मुझको भक्षण करने की इच्छा करती है, यह क्या तुम नहीं देखती हो . और यह जातहारिणी जो गुप्तभाव से विद्यमान है, इसको भी क्या नहीं जान सकती ।७। जब तुमने पुत्र प्रीति द्वारा स्नेहवती होकर मुझको देखते-देखते पुलकायमान और स्नेह से प्रगट आँसुओं के द्वारा नेत्रों को पूर्ण कर बार बार आदरपूर्वक मुझको आलिंगन किया, तब मुझको हँसी आ गई, अब उसका कारण कहता हूँ सुनो ।८-९। मार्जारी और दूसरी छिपी हुई जातहारिणी अपने अर्थ में आसक्त होकर मुझको स्वार्थ में तत्पर होकर देखती हैं ।१०। यह दोनों जिस प्रकार स्वार्थ के लिये मेरे प्रति नम्रहृदयवाली हुई है, तुम भी उसी प्रकार स्वार्थ के निमित्त मेरे प्रति स्नेहवती हुई हो, मुझको यही बोध होता है ।११। यह मार्जारी और जातहारिणी मुझको भोजन करने के लिये हरण करेंगी, तुम मुझसे क्रमशः अभिलषित उपभोग्य काल प्राप्त करने की कामना करती हो ।१२। मुझको जानती नहीं हो, मैं कौन हूँ ? मैंने तुम्हारा कोई उपकार नही किया है, बहुत दिनों का मिलन भी नहीं है, केवल पाँच सात दिन माता-पुत्र रूप में मिलन हुआ है ।१३। किन्तु तो भी नेत्रों में आँसू भरकर मुझसे स्नेह करती हो, आलिंगन करती हो और अकपट हृदय से मुझको "हे तात ! हे वत्स !!! हे भद्रे ! ! !" इस प्रकार कहती हो ।१४

मातोवाच

न त्वाहमुपकारार्थं वत्स प्रीत्या परिष्वजे । न चेदेतद्भवत्प्रीत्यै परित्यक्तास्म्यहं त्वया ॥१५
स्वार्थो मया परित्यक्तो यस्त्वत्तो मे भविष्यति। इत्युक्त्वा सा तमुत्सृज्य निष्क्रान्ता सूतिकागृहात् ॥१६
जडाङ्गबाह्यकरणं शुद्धान्तःकरणात्मकम् । जहार तं परित्यक्तं सा तदा जातहारिणी ॥१७
सा हित्वा तं तदा बालं विक्रान्तस्य महीभृतः । प्रसूतपत्नीशयने न्यस्य तस्याददे सुतम् ॥१८
तमप्यन्यगृहे नीत्वा गृहीत्वा तस्य चात्मजम् । तृतीयं भक्षयामास सा क्रमाज्जातहारिणी ॥१९
हृत्वा हृत्वा तृतीयं तु भक्षयत्यतिनिर्घृणा । करोत्यनुदिनं सा तु परिवर्तं तथान्ययोः ॥२०
विक्रान्तोऽपि ततस्तस्य सुतस्यैव महीपतिः । कारयामास संस्कारान्राजन्यस्य भवन्ति ये ॥२१
आनन्देति च नामास्य पिता चक्रे विधानतः । मुदा परमया युक्तो विक्रान्तः स नराधिपः ॥२२
कृतोपनयनं तं तु गुरुराह कुमारकम् । जनन्याः प्रागुपस्थानं क्रियतां चाभिवादनम् ॥२३
स गुरोस्तद्वचः श्रुत्वा विहस्यैवमथाब्रवीत् ॥

आनन्द उवाच

वन्द्या मे कतमा माता जननी पालनी नु किम् ॥२४

गुरुरुवाच

नन्वियं ते महाभाग जनित्री जारुजात्मजा । विक्रान्तस्याग्रमहिषी हैमिनी नाम नामतः ॥२५

माता बोली—हे वत्स ! उपकार की आशा से मैं तुमको आलिंगन करती हूँ, इस आलिंगन और खिलाने आदि के द्वारा यदि तुम्हारी प्रीति का संचार नहीं होता, अर्थात् तुम प्रसन्न नहीं होते, तो मुझको तुम परित्याग करो ।१५। तुमसे मेरा जो स्वार्थ सिद्ध होगा, मैंने भी उसको परित्याग किया । इस प्रकार कहकर प्रसूति जडवत् बाह्येन्द्रियसम्पन्न और विशुद्ध अन्तःकरण उस पुत्र को परित्याग करके सूतिकागृह (सोवर) से निकली । तदनन्तर जातहारिणी ने उस माता के त्यागे हुए पुत्र को हरण किया ।१६-१७। जातहारिणी ने इस बालक को हरण करके विक्रान्त नामक महीपाल की पत्नी की शय्या में स्थापन पूर्वक उसका नवप्रसूत पुत्र हरण किया ।१८। उस जातहारिणी ने उस राजपुत्र को भी अन्य के घर रख, उसके पुत्र को हरण कर अन्त में तीसरे को भक्षण किया ।१९। अत्यन्त निर्दयी वह जातहारिणी प्रतिदिन इस प्रकार नवप्रसूत बालक हरणपूर्वक प्रथम दो का परिवर्त्तन करके तीसरे को भक्षण करती थी ।२०। इसके बाद उन महीपति विक्रान्त ने, क्षत्रियों के जो-जो संस्कार हैं, उस परिवर्त्तित पुत्र के भी वह सब संस्कार किये ।२१। विक्रान्तनरपति अत्यन्त आनन्दित हुए थे, इस कारण विधानानुसार "आनन्द" इस नाम से पुत्र का नामकरण किया ।२२। गुरुजी ने उस यज्ञोपवीत किये कुमार के समीप जाकर प्रथम प्रणाम करने को कहा ।२३। आनन्द गुरुजी का वचन सुनकर हँसता हुआ कहने लगा ।

आनन्द बोला—मैं किस माता की वन्दना करूँ? जननी को अथवा पालने वाली को प्रणाम करूँ? ।२४

गुरुजी बोले—हे महाभाग ! यह जारुजात्मजा हैमिनी नामक विक्रान्तराजा की प्रधान महिषी क्या तुम्हारी जननी नहीं है ? २५

आनन्द उवाच

इयं जनित्री चैत्रस्य विशालग्रामवासिनः। विप्राग्र्यबोधपुत्रस्य योऽस्यां जातोऽन्यतोऽगमम् ॥२६

गुरुरुवाच

कुतस्त्वं कथयानन्द चैत्रः को वा त्वयोच्यते। संकटं महदाभाति क्व जातोऽत्र ब्रवीषि किम् ॥२७

आनन्द उवाच

जातोऽहमनमित्रस्य क्षत्रियस्य गृहे द्विज। तत्पत्न्यां गिरिभद्रायामाददे जातहारिणी ॥२८
तयात्र मुक्तो हैमिन्यां गृहीत्वा च सुतं च सा। बोधस्य द्विजमुख्यस्य गृहे नीतवती पुनः ॥२९
भक्षयामास च सुतं तस्य बोधद्विजन्मनः। स तत्र द्विजसंस्कारैः संस्कृतो हैमिनीसुतः ॥३०
वयमत्र महाभाग संस्कृता गुरुणा त्वया। मया तव वचः कार्यमुपैमि कतमां गुरो ॥३१

गुरुरुवाच

अतीव गहनं वत्स संकटं महदागतम्। न वेद्मि किञ्चिन्मोहेन भ्रमन्तीव हि बुद्धयः ॥३२

आनन्द उवाच

मोहस्यावसरः कोऽत्र जगत्येवं व्यवस्थिते। कः कस्य पुत्रो विप्रर्षे को वा कस्य न बान्धवः ॥३३
आरभ्य जन्मनो नृणां सम्बन्धित्वमुपैति यः। अन्यसम्बन्धिनो विप्र मृत्युना सन्निर्वर्तिताः ॥३४
अत्रापि जातस्य सतः सम्बन्धा योऽस्य बान्धवैः। सोऽप्यस्तमन्ते देहस्य प्रयात्येषोऽखिलक्रमः ॥३५

आनन्द ने कहा—यह बोध नामक विप्रश्रेष्ठ के पुत्र विशालग्रामनिवासी चैत्र की माता हैं, इनके गर्भ से वह चैत्र ही उत्पन्न हुआ था, मैंने अन्यत्र जन्म ग्रहण किया है।२६

गुरुजी बोले—हे आनन्द! तुम कहाँ से आये हो? तुमने जिस चैत्र की बात कही है, वह चैत्र कौन है? तुमने कहाँ जन्म लिया था? और यहाँ कैसे आये तथा यहाँ जो उत्पन्न हुआ था, वह कहाँ गया? तुम क्या कहते हो? यह तो महा संकट देखा जाता है।२७

आनन्द ने कहा—हे द्विज! मैंने अवनीपति अनमित्र नामक क्षत्रिय के घर उनकी पत्नी गिरिभद्रा के गर्भ से जन्म ग्रहण किया है और मुझको जातहारिणी हरण करके इस स्थान में रख गई थी।२८। और हैमिनी के पुत्र को हरण करके पुनः द्विज श्रेष्ठ बोध के घर ले जाकर।२९। उस द्विजोत्तम बोध की सन्तान को भक्षण कर गयी थी। हैमिनी सुत वह बालक विशाल ग्राम में द्विज के संस्कार से संस्कृत हुआ है।३०। और आपके द्वारा मैं यहां संस्कृत हुआ हूँ। हे महाभाग! आप मेरे गुरु हैं। आपकी आज्ञा मुझको सम्यक् प्रकार पालनीय है। हे गुरो! मैं किस जननी को प्रणाम करूँ।३१

गुरुजी बोले—हे वत्स! अत्यन्त विषम महासंकट उपस्थित हुआ है कुछ भी नहीं समझ सकता मानो मोह के कारण बुद्धि भ्रमण करती है।३२

आनन्द ने कहा—इस प्रकार व्यवस्था वाले इस जगत् में मोह का विराम क्या है। अत एव कौन किसका पुत्र है? और जब प्राणी जन्म से लेकर प्राणियों के संग विविध सम्बन्ध को प्राप्त होते है तब कोई किसी का बांधव नहीं है। संबंधयुक्त मनुष्यगण जिस भाँति मृत्यु के द्वारा लोटते रहते हैं।३३-३४। इस संसार में बांधवगणों के सहित उत्पन्न हुए मनुष्यों का जो अखिल क्रम (सर्वानुगामी) संबंध है वह

अतो ब्रवीमि संसारे वसतः को न बान्धवः। को वापि सततं बन्धुः किं वो विभ्राम्यते मतिः ॥३६
पितृद्वयं मया प्राप्तमस्मिन्नेव हि जन्मनि । मातृद्वयं च किं चित्रं यदन्यद्देहसम्भवे ॥३७
सोऽहं तपः करिष्यामि त्वया यो ह्यस्य भूपतेः । विशालग्रामतः पुत्रश्चैत्र आनीयतामिह ॥३८

मार्कण्डेय उवाच

ततःस विस्मितो राजा सभार्यः सह बन्धुभिः । तस्मान्निवर्त्य ममतामनुमेने वनाय तम् ॥३९
चैत्रमानीय तनयं राज्ययोग्यं चकार सः । सम्मान्य ब्राह्मणं येन पुत्रबुद्ध्या स पालितः ॥४०
सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपे बाल एव महावने । कर्मणां क्षपणार्थाय विमुक्तेः परिपन्थिनाम् ॥४१
तपस्यन्तं ततस्तं च प्राह देवः प्रजापतिः । किमर्थं तप्यसे वत्स तपस्तीव्रं वदस्व तत्॥४२

आनन्द उवाच

आत्मनः शुद्धिकामोऽहं करोमि भगवंस्तपः । बन्धाय मम कर्माणि यानि तत्क्षपणोन्मुखः ॥४३

ब्रह्मोवाच

क्षीणाधिकारो भवति मुक्तियोग्यो न कर्मवान्। सत्त्वाधिकारवान्मुक्तिमवाप्स्यति ततो भवान्॥४४
भवता मनुना भाव्यं षष्ठेन व्रज तत्कुरु । अलं ते तपसा तस्मिन्कृते मुक्तिमवाप्स्यसि ॥४५

भी इसी प्रकार देह के विनाश के बाद विनाश को प्राप्त होता है।३५। इसी कारण कहता हूँ संसार में वास करने वालों का कोई बंधु नहीं है और नित्य बंधु ही कौन है ? अत एव किस निमित्त अपनी बुद्धि भ्रान्त होती है।३६। मैं इसी जन्म में दो पिता और माता को प्राप्त हुआ हूँ, अन्य देह धारण में जो ऐसा संबंध होगा तो फिर आश्चर्य ही क्या है।३७। अब मैं तपस्या करूँगा। आप विशालग्राम से इन भूपति के पुत्र उस चैत्र को इस स्थान में ले आइये।३८

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर राजा ने भार्या और बंधुगणों के सहित विस्मित हो, उस पुत्र से मोह छोड़ उसको वन जाने की अनुमति दी।३९। और जिस ब्राह्मण ने चैत्र को पाला था, उस ब्राह्मण को सन्मानित कर अपने पुत्र को लाकर, राजा ने उसको राज्य में अभिषिक्त किया।४०। इधर वह आनन्द मोक्षविरोधी सब कर्मों को क्षय करने की इच्छा से बाल्य अवस्था से ही महावन में तपस्या करने लगा।४१। जब आनन्द इस प्रकार तपस्या करने में प्रवृत्त हुआ, तब देव प्रजापति ने उससे कहा—हे वत्स! किस निमित्त ऐसी तीव्र तपस्या करते हो ? वह कहो।४२

आनन्द ने कहा—हे भगवन्! जो सब कर्म मेरे संसार बंधन का हेतुस्वरूप हैं, उनके नाश करने की इच्छा से मैं आत्मशुद्धि के लिये तपस्या करता हूँ।४३

ब्रह्मा जी बोले—क्षीणाधिकार मनुष्यगण मुक्ति के योग्य होते हैं, वह कर्मवान् नहीं होते तो तुम सत्त्वाधिकारी (प्राणियों के ऊपर आधिपत्यशाली) होकर किस प्रकार मुक्ति को प्राप्त होगे।४४। तुम छठे मनु होगे अब जाओ—वैसा ही कार्य करो, तो मुक्त होगे, अब तुम्हें तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है।४५

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तो ब्रह्मणा सोऽपि तथेत्युक्त्वा महामतिः । तत्कर्माभिमुखो यस्तु तपसो विरराम ह ।।४६
चाक्षुषेत्याह तं ब्रह्मा तपसो विनिवर्तयन् । पूर्वं नाम्ना बभूवाथ प्रख्यातश्चाक्षुषो मनुः ।।४७
उपयेमे विदर्भां स सुतामुग्रस्य भूभृतः । तस्यां चोत्पादयामास पुत्रान्प्रख्यातविक्रमान् ।।४८
तस्य मन्वन्तरेशस्य येऽन्तरे त्रिदशा द्विज । ये चर्षयस्तथैवेन्द्रो ये सुताश्चास्य ताञ्छृणु ।।४९
आप्या नाम सुरास्तत्र तेषामेकोऽष्टको गणः । प्रख्यातकर्मणां विप्र यज्ञे हव्यभुजामयम् ।।५०
प्रख्यातबलवीर्याणां प्रभामण्डलदुर्दृशाम् । द्वितीयश्च प्रसूताख्यो देवानामष्टको गणः ।।५१
तथैवाष्टक एवान्यो भव्याख्यो देवतागणः । चतुर्थश्च गणस्तत्र यूथगाख्यस्तथाष्टकः ।।५२
लेखसंज्ञास्तथैवान्ये तत्र मन्वन्तरे द्विज । पञ्चमे च गणे देवास्तत्संज्ञा ह्यमृताशिनः ।।५३
शतं क्रतूनामाहृत्य यस्तेषामधिपोऽभवत् । मनोजवस्तथैवेन्द्रः संख्यातो यज्ञभागभुक् ।।५४
सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुन्नतो मधुः। अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षयः ।।५५
उरूपुरुशतद्युम्नप्रमुखाः सुमहाबलाः । चाक्षुषस्य मनोः पुत्राः पृथिवीपतयोऽभवन् ।।५६
एतत्ते कथितं षष्ठं मया मन्वन्तरं द्विज । चाक्षुषस्य तथा जन्म चरितं च महात्मनः ।।५७
साम्प्रतं वर्त्तते योऽयं नाम्ना वैवस्वतो मनुः । सप्तमो येऽन्तरे तस्य देवाद्यास्ताञ्छृणुष्व मे ।।५८
(य इदं कीर्तयेद्धीमांश्चाक्षुषस्यान्तरं भुवि । शृणुते च लभेत्पुत्रानारोग्यसुखसंपदम्) ।।५९

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे षष्ठमन्वन्तरं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।७३।

मार्कण्डेय जी बोले—ब्रह्मा जी के इस प्रकार कहने पर वह महामति "यही हो" इस प्रकार कह उस कर्म के अभिमुख हो तपस्या से विरत हुए ।४६। ब्रह्मा जी ने उनको तपस्या से निवृत्त करके "चाक्षुष" इस पहले नाम से अभिहित किया, अनन्तर वह "चाक्षुषमनु' नाम से विख्यात हुए ।४७। इसके बाद उन्होंने उस राजा की कन्या विदर्भा से विवाह करके उसके गर्भ से अनेक विक्रमशाली पुत्र उत्पन्न किये ।४८। हे द्विज ! उन मन्वन्तराधिपति के मन्वन्तर में जो जो देवता, जो जो ऋषि जो इन्द्र और इनकी जो सन्तान हुई, वह सुनो ।४९। हे विप्र ! इस मन्वन्तर में देवताओं का प्रथमगण आप्यनामक है, उस गण में विख्यात कर्म और यज्ञ में हव्य भोजी आठ देवता थे ।५०। विख्यात बलवीर्य और प्रभामण्डलमध्यस्थ होने से दुर्दर्श अपर देवता थे देवताओं का प्रसूत नामक दूसरा गण है, इसमें भी आठ देवता हैं ।५१। हे द्विज ! तीसरे भव्याख्य देवतागण में आठ और चौथे यूथग नामक गण में आठ देवता थे ।५२। पंचमगण में देवता अमृताशी नाम से विख्यात हैं । हे द्विज ! उस मन्वन्तरमें अन्य देवगण लेखसंज्ञक हैं । इस पंचम गण में भी अमृतभोजी देवता पूर्व के समान अष्टसंज्ञक हैं ।५३। शत यज्ञ करके, यज्ञाभागभुक् "मनोजव" नामक इन्द्र उनके अधिपति हुए थे ।५४। सुमेधा, विरजा, हविष्यमान्, उन्नत मधु, अति और सहिष्णु, यह सप्तर्षि थे चाक्षुष मनु के ऊरु, पुरु, शतद्युम्न इत्यादि महाबलवान् पुत्र गण पृथ्वीपति हुए थे ।५५-५६। हे द्विज ! मैंने इस मन्वन्तर का विषय और महातमा चाक्षुष मनु का जन्म एवं चरित्र तुमसे कहा ।५७। अब वैवस्वतनामक जो सप्त मनु वर्त्तमान है, उनके मन्वन्तर के देवता इत्यादि का विषय मुझसे सुनो ।५८। जो बुद्धिमान् मनुष्य पृथ्वी में इस चाक्षुषमन्वन्तर का कीर्त्तन करेंगे अथवा इसको सुनेंगे, वह पुत्र आरोग्यता और सुखसंपदा को प्राप्त होंगे ।५९

श्रीमार्कण्डेयपुराण में षष्ठमन्वन्तर नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७३।

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

वैवस्वतमन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

मार्त्तण्डस्य रवेर्भार्या तनया विश्वकर्मणः । संज्ञा नाम महाभाग तस्यां भानुरजीजनत् ॥१
मनुं प्रख्यातयशसमनेकज्ञानपारगम् । विवस्वतः सुतो यस्मात्तस्माद्वैवस्वतस्तु सः ॥२
संज्ञा च रविणा दृष्टा निमीलयति लोचने । यतस्ततः स रोषोऽर्कः संज्ञां निष्ठुरब्रवीत् ॥३
मयि दृष्टे सदा यस्मात्कुरुषे नेत्रसंयमम् । तस्माज्जनिष्यसे मूढे प्रजासंयमनं यमम् ॥४

मार्कण्डेय उवाच

ततः सा चपलां दृष्टिं देवी चक्रे भयाकुला । विलोलितदृशं दृष्ट्वा पुनराह च तां रविः ॥५
यस्माद्विलोलिता दृष्टिर्मयि दृष्टे त्वयाधुना । तस्माद्विलोलां तनयां नदी त्वं प्रसविष्यसि ॥६

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्यां तु संजज्ञे भर्तृशापेन तेन वै । यमश्च यमुना चेयं प्रख्याता सुमहानदी ॥७
सापि संज्ञा रवेस्तेजः सेहे दुःखेन भाविनी । असहन्ती च सा तेजश्चिन्तयामास वै तदा ॥८
किं करोमि क्व गच्छामि गतायाश्च निर्वृतिः । भवेन्मम कथं भर्ता कोपमर्कश्च नैष्यति ॥९

अध्याय ७४

वैवस्वतमन्वन्तर का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे महाभाग ! विश्वकर्मा की संज्ञा नामक कन्या मार्त्तण्डेदेव की पत्नी थी। उसके गर्भ द्वारा भास्कर के औरस से ।१। विख्यात यश, अत्यन्त ज्ञानसंपन्न मनु ने जन्म ग्रहण किया था। यह विवस्वान् के पुत्र हुए, इस कारण इन मनु का वैवस्वत नाम विख्यात हुआ था ।२। सूर्य को देखते ही संज्ञा दोनों नेत्र मूँद लेती थी इस निमित्त सूर्य देव ने एक दिन क्रोध करके उससे यह निष्ठुरवचन कहा ।३। हे मूढे ! जब कि तू सदा मुझको देखकर नेत्र संयम करती है, अर्थात् बंद करती है तो इसी प्रकार तू प्रजासंयमपरायण यम को उत्पन्न करेगी ।४

मार्कण्डेय जी बोले—तब से वह संज्ञा देवी भयाकुल होकर सूर्य के प्रति चंचल दृष्टि करने लगी। तब रवि ने चंचलनेत्रवाली देखकर फिर कहा ।५। अब तुम मुझको देखकर जब दृष्टि चंचल करती हो तब तुम इसी प्रकार विलोला नदीरूपिणी कन्या महानदी कन्या प्रसव करोगी ।६

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर इस प्रकार पति के शाप देने पर उसके गर्भ से यम ने जन्म ग्रहण किया और यमुना नामक विख्यात महानदी भी उत्पन्न हुई ।७। उस संज्ञानामक, कामिनी ने उतने समयपर्यंत दुःख के सहित रवि का तेज सहन किया था किन्तु अब वह तेज नहीं सहन कर सकने के कारण चिन्ता करने लगी ।८। "क्या करूँ कहाँ जाऊँ ? कहाँ जाने से निवृत्ति हो ? और किस-किस प्रकार से

इति सञ्चिन्त्य बहुधा प्रजापतिसुता तदा । बहु मेने महाभागा पितृसंश्रयमेव सा ।।१०
ततः पितृगृहे गन्तुं कृतबुद्धिर्यशस्विनी । छायामयीमात्मतनुं निर्ममे दयितां रवेः ।।११
तां चोवाच त्वया वेश्मन्यत्र भानोर्यथा मया । तथा सम्यगपत्येषु वर्तितव्यं यथा रवौ ।।१२
पृष्टयापि न वाच्यं ते तथैतद्गमनं मम । सैवास्मि नाम संज्ञेति वाच्यमेतत्सदा वचः ।।१३

छायासंज्ञोवाच

आकेशग्रहणाद्देवि आशापाच्च वचस्तव । करिष्ये कथयिष्यामि वृत्तं तु शापकर्षणात् ।।१४
इत्युक्ता सा तदा देवी जगाम भवनं पितुः । ददर्श तत्र त्वष्टारं तपसा धूतकल्मषम् ।।१५
बहुमानाच्च तेनापि पूजिता विश्वकर्मणा । तस्थौ पितृगृहे सा तु कञ्चित्कालमनिन्दिता ।।१६
ततस्तां प्राह चार्वङ्गी पिता नातिचिरोषिताम् । स्तुत्वा च तनयां प्रेमबहुमानपुरःसरम् ।।१७
त्वां तु मे पश्यतो वत्से दिनानि सुबहून्यपि । मुहूर्त्तार्द्धसमानि स्युः किन्तु धर्मो विलुप्यते ।।१८
बान्धवेषु चिरं वासो नारीणां न यशस्करः । मनोरथो बान्धवानां नार्या भर्तृगृहे स्थितिः ।।१९
सा त्वं त्रैलोक्यनाथेन भर्त्रा सूर्येण सङ्गता । पितृगेहे चिरं कालं वस्तुं नार्हसि पुत्रिके ।।२०
सा त्वं भर्तृगृहं गच्छ तुष्टोऽहं पूजितासि मे । पुनरागमनं कार्यं दर्शनाय शुभे मम ।।२१

मेरे भर्ता कोप के वशीभूत न हो" ।९। तब प्रजापति की कन्या उस महाभाग संज्ञा ने इस प्रकार अनेक भाँति चिन्ता करके पिता के गृह का ही आश्रय लेना ही अच्छा समझा ।१०। फिर उस यशस्विनी ने पिता के घर जाने का निश्चय कर अपने देह से रवि की प्रियतमा स्वीय छायामय शरीर निर्माण किया ।११। और फिर उस छाया से कहा, इन सूर्य के घर जिस प्रकार मैं रहती हूँ तुम भी वैसे हीभाव से रहना तथा पुत्र और स्वामी रवि के प्रति मेरे ही समान आचरण करना ।१२। भानु के पूँछने पर भी मेरे इस जाने की बात मत कहना, वरन् "वह संज्ञा मैं ही हूँ" सदा यही बात कहना ।१३। छायासंज्ञा बोली हे देवी ! जब तक वह मेरे केश ग्रहण नहीं करेंगे और शाप नहीं देंगे तब तक मैं तुम्हारे वचनानुसार कार्य करूँगी किन्तु शाप और केशाकर्षण होने पर संपूर्ण वृत्तान्त कह दूँगी ।१४। छाया संज्ञा के इस प्रकार कहने पर संज्ञा देवी पिता के घर चली गई और वहाँ तपस्या द्वारा विधूतपाप अर्थात् पाप रहित विश्वकर्मा को देखा ।१५। उन विश्वकर्मा ने इसका बहुत मान करके पूजन किया, अब आनन्दित होकर संज्ञा कुछ काल पिता के घर रही ।१६। फिर थोड़े काल के उपरान्त अपनी कन्या उस सुन्दरी से उसके पिता विश्वकर्मा ने अत्यन्त स्नेहभाव और अत्यन्त मान के सहित श्रेष्ठ वचनों द्वारा कहा ।१७। हे वत्स ! तुमको देखते-देखते मेरे बहुत दिन बीतने पर भी वह आधे मुहूर्त्त के समान जान पड़ते हैं, किन्तु इससे धर्म लुप्त होता है ।१८। बांधवगणों में सदा वास करना स्त्रियों के पक्ष में यशकारी कार्य नहीं है, स्त्रियों का भर्त्ता के घर ही वास करना बांधवों को अभिमत है ।१९। हे पुत्रिके त्रैलोक्यनाथ सूर्य तुम्हारे भर्त्ता हैं, तुम उनके संग विवाहसूत्र में बँध जाओ । पिता के घर सदा वास करना तुमको उचित नहीं है ।२०। अंत एव हे शुभे ! अब तुम पति के घर जाओ, मैं संतुष्ट हुआ हूँ, और मेरे द्वारा तुम भी सम्मानित हुई हो मेरे देखने के निमित्त फिर आ जाना ।२१

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा सा तदा पित्रा तथेत्युक्ता च सा मुने। सम्पूजयित्वा पितरं जगामाथोत्तरान्कुरून् ।।२२
सूर्यतापमनिच्छन्ती तेजसस्तस्य बिभ्यती । तपश्चचार तत्रापि वडवारूपधारिणी ।।२३
संज्ञेयमिति मन्वानो द्वितीयायामहस्पतिः । जनयामास तनयौ कन्यां चैकां मनोरमाम् ।।२४
छायासंज्ञा त्वपत्येषु यथा स्वेष्वतिवत्सला । तथा न संज्ञाकन्यायां पुत्रयोश्चान्ववर्त्तत ।।२५
लालनाद्युपभोगेषु विक्षेपमनुवासरम् । मनुस्तत्क्षान्तवानस्या यमस्तस्या न चक्षमे ।।२६
ताडनाय च वै कोपात्पादस्तेन समुद्यतः । तस्याः पुनः क्षान्तिमता न तु देहे निपातितः ।।२७
ततः शशाप तं कोपाच्छायासंज्ञा यमं द्विज । किञ्चित्प्रस्फुरमाणौष्ठी विचलत्पाणिपल्लवा ।।२८
पितुः पत्नीममर्यादं यन्मां तर्जयसे पदा । भुवि तस्मादयं पादस्तवाद्यैव पतिष्यति ।।२९

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य यमः शापं मात्रा दत्तं भयातुरः । अभ्येत्य पितरं प्राह प्रणिपातपुरःसरम् ।।३०

यम उवाच

तातैतन्महदाश्चर्यं न दृष्टमिति केनचित् । माता वात्सल्यमुत्सृज्य शापं पुत्रे प्रयच्छति ।।३१
यथा मनुर्ममाचष्टे नेयं माता तथा मम । विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा भवेत् ।।३२

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! पिता विश्वकर्मा के इस प्रकार कहने पर वह संज्ञा "वही हो" ऐसा कह और पिता की भलीभाँति पूजा करके उत्तरकुरुदेश में चली गई ।२२। सूर्य के तेज से डरी हुई वह संज्ञा के ताप में अनिच्छुक हो, वहाँ वडवा (घोड़ी) का रूप धारण करके तपस्या करने लगी ।२३। इस ओर "यही संज्ञा है" ऐसा मन में समझ दिनपति सूर्य ने दूसरी पत्नी में दो पुत्र और एक मनोहर कन्या उत्पन्न की ।२४। किन्तु छायासंज्ञा अपनी संतान के प्रति जिस प्रकार स्नेहवती थी, प्रकृत संज्ञा की कन्या और दोनों पुत्रों के प्रति वैसा नहीं थी ।२५। नित्य ही लालनादि उपभोग के समय दोनों संतान में भिन्न भाव दिखाती । मनु ने तो उसको क्षमा किया था, किन्तु यम ने उसके इस विषमभाव की क्षमा नहीं की ।२६। उन्होंने कोप के वशीभूत हो प्रहार करने के लिये चरण उठा लिया, किन्तु फिर उसी समय क्षमा करके उक्त चरण छायासंज्ञा के देह में निपतित नहीं किया ।२७। हे द्विज ! तदनन्तर उस छाया संज्ञा ने, क्रोधित हो अपना हाथ उठाये होठ कँपाकर यम को यह शाप दिया ।२८। कि, मैं तुम्हारे पिता की पत्नी हूँ । मेरी मर्यादा तोड़ चरण उद्यत करके मुझको घुड़कता है, इस कारण अभी तेरा यह चरण पृथ्वी में गिरे ।२९

मार्कण्डेय जी बोले—यम माता का दिया इस प्रकार शाप सुन, भयातुर हो, पिता के समीप जाकर प्रणाम पूर्वक कहने लगे ।३०

मार्कण्डेय जी बोले—हे तात ! माता स्नेह त्यागकर पुत्र को शाप दे, यह अत्यन्त आश्चर्य है और कभी किसी ने यह बात नहीं देखी है ।३१। मनु ने मुझसे जिस प्रकार कहा है, यह माता वैसी नहीं है, पुत्र असद्गुणयुक्त होने पर भी माता कभी उसके प्रति विपरीत नहीं होती ।३२

मार्कण्डेय उवाच

यमस्यैतद्वचः श्रुत्वा भगवांस्तिमिरापहः । छायासंज्ञां समाहूय पप्रच्छ क्व गतेति सा ।।३३
सा चाह तनया त्वष्टुरहं संज्ञा विभावसो । पत्नी तव त्वयापत्यान्येतानि जनितानि मे ।।३४
इत्थं विवस्वतः सा तु बहुशः पृच्छतो यदा । नाचचक्षे ततः क्रुद्धो भास्वांस्तां शप्तुमुद्यतः ।।३५
ततः सा कथयामास यथावृत्तं विवस्वतः । विदितार्थश्च भगवाञ्जगाम त्वष्टुरालयम् ।।३६
ततः स पूजयामास तदा त्रैलोक्यपूजितम् । भास्वन्तं परया भक्त्या निजगेहमुपागतम् ।।३७
संज्ञां पृष्टस्तदा तस्मै कथयामास विश्वकृत् । आगतैवेह मे वेश्म भवतः प्रेषितेति वै ।।३८
दिवाकरः समाधिस्थो वडवारूपधारिणीम् । तपश्चरन्तीं ददृशे उत्तरेषु कुरुष्वथ ।।३९
सौम्यमूर्तिः शुभाकारो मम भर्त्ता भवेदिति । अभिसन्धिश्च तपसो बुबुधेऽस्या दिवाकरः ।।४०
शातनं तेजसो मेऽद्य क्रियतामिति भास्करः । तं चाह विश्वकर्माणं संज्ञायाः पितरं द्विज ।।४१
संवत्सरभ्रमेस्तस्य विश्वकर्मा रवेस्ततः । तेजसः शातनं चक्रे स्तूयमानश्च दैवतैः ।।४२

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वैवस्वतमन्वन्तरे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।७४।

मार्कण्डेय जी बोले—भगवान् तिमिरारि (सूर्य) ने यम का वचन सुन छाया संज्ञा को सादर बुलाकर पूछा "संज्ञा कहाँ गई है" ।३३। उसने कहा—हे विभावसो ! मैं विश्वकर्मा की कन्या, तुम्हारी पत्नी संज्ञा हूँ । मेरे ही गर्भ से आपकी इस सन्तान ने जन्म ग्रहण किया है ।३४। विवस्वान् सूर्य के जब इस प्रकार बहुत बार पूँछने पर भी उसने यथार्थ उत्तर नहीं दिया । तब भास्वान् सूर्य क्रोधित होकर उसको शाप देने में उद्यत हुए ।३५। तब जो जो बात हुई थी, वह सब उसने विवस्वान् से कह दी भगवान् मार्त्तण्डदेव यह सब बात जानकर विश्वकर्मा के घर गये ।३६। इसके उपरान्त विश्वकर्मा ने अपने घर आये हुए त्रैलोक्यपूजित द्युतिमान् सूर्य की परम भक्तिसहित पूजा की ।३७। अनन्तर जब विश्वकर्मा से सूर्य ने संज्ञा का वृत्तान्त पूँछा, तब उन्होंने कहा संज्ञा मेरे घर आई तो थी किन्तु मैंने उसको आपके ही घर भेज दिया ।३८। तब दिवाकर ने ध्यान में स्थित होकर देखा कि, संज्ञा उत्तरकुरुवर्ष में घोड़ी का रूप धारण किये तपस्या कर रही है ।३९। और दिवाकर ने यह भी देखा कि, "मेरे भर्त्ता सुन्दराकृति और सौम्यमूर्ति हों" यह उसके तपस्या करने की अभिलाषा है ।४०। हे द्विज ! भगवान् भास्कर ने फिर संज्ञा के पिता विश्वकर्मा से कहा मेरा तेज क्षीण कीजिये ।४१। तब विश्वकर्मा ने देवताओं के स्तुति करने पर संवत्सरभ्रमणकारी उन रवि का तेज क्षय किया था ।४२

श्रीमार्कण्डेयपुराण में वैवस्वतमन्वन्तर वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७४।

अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

(६८)

वैवस्वतोत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तं तुष्टुवुर्देवास्तथा देवर्षयो रविम् । वाग्भिरीडचमशेषस्य त्रैलोक्यस्य समागताः ॥१

देवा ऊचुः

नमस्ते ऋक्स्वरूपाय सामरूपाय ते नमः । यजुःस्वरूपरूपाय साम्नां धामवते नमः ॥२
ज्ञानैकधामभूताय निर्धूततमसे नमः । शुद्धज्योतिःस्वरूपाय विशुद्धायामलात्मने ॥३
(चक्रिणे शंखिने धाम्ने शार्ङ्गिणे पद्मिने नमः) । वरिष्ठाय वरेण्याय परस्मै परमात्मने ॥
नमोऽखिलजगद्व्यापिस्वरूपायात्ममूर्त्तये ॥४
सर्वकारणभूताय निष्ठायै ज्ञानचेतसाम् ॥५
नमः सूर्यस्वरूपाय प्रकाशात्मस्वरूपिणे । भास्कराय नमस्तुभ्यं तथा दिनकृते नमः ॥६
शर्वरीहेतवे चैवं सन्ध्याज्योत्स्नाकृते नमः । त्वं सर्वमेतद्भगवञ्जगदुद्भ्रमता त्वया ॥७
भ्रमत्या विद्धमखिलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् । त्वदंशुभिरिदं स्पृष्टं सर्वं सञ्जायते शुचिः ॥८
क्रियते त्वत्करैः स्पर्शाज्जलादीनां पवित्रता । होमदानादिको धर्मो नोपकाराय जायते ॥९

अध्याय ७५

वैवस्वतोत्पति का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर देवता और देवर्षिगण समागत होकर सब त्रैलोक्य के पूज्य रवि की वाक्यद्वारा स्तुति करने लगे ।१

देवता बोले—हे देव ! तुम ऋक्स्वरूप हो, तुमको नमस्कार है । तुम सामस्वरूप हो, तुमको नमस्कार है, तुम्हीं यजुःस्वरूप और साम के द्युतिमान् हो तुमको नमस्कार है ।२। तुम्हीं ज्ञान के एकमात्र आधारस्वरूप हो, तमोनाशक हो, शुद्धज्योतिःस्वरूप हो, विशुद्ध और अमलात्मा हो, तुमको नमस्कार है ।३। तुम शंख चक्र शार्ङ्ग और पद्म धारण करने वाले हो तुम्हें नमस्कार है । तुम्हीं वरिष्ठ, वरेण्य, पर और परमात्मा हो तुम्हीं सम्पूर्ण जगद्व्यापी स्वरूप और आत्ममूर्ति हो तुमको नमस्कार है ।४। तुम्हीं ज्ञानचेता मनुष्यों की निष्ठा हो, सर्वभूतों के कारण स्वरूप हो ।५। तुम्हीं सूर्य स्वरूप प्रकाशरूपी भास्कर और दिनकर हो तुमको नमस्कार है ।६। तुम्हीं रात्रि के कारणस्वरूप हो एवं संध्या और तुम्हीं ज्योत्स्नाकारी हो, तुमको नमस्कार है, तुम्हीं भगवान् हो, तुम्हारे द्वारा ही जगत् जाग्रत् हो भामित होता है ।७। तुम्हारे द्वारा ही यह चराचरयुक्त अखिल ब्रह्माण्ड विद्रुतहोकर भ्रमण करता है । यह स्पर्श योग्य संपूर्ण द्रव्य तुम्हारी किरणों के स्पर्श से ही पवित्र होते हैं ।८। तुम्हारें किरणों द्वारा ही जलादि की पवित्रता साधित होती है । तब तक होमदानादि धर्म उपकार के निमित्त नहीं होता ।९। हे देव ! यह

तावद्यावन्न संयोगि जगदेतत्त्वदंशुभिः । ऋचस्ते सकला ह्येता यजूंष्येतानि चान्यतः ।।१०
सकलानि च सामानि निपतन्ति त्वदङ्गतः । ऋङ्मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च यजुर्मयः ।।११
यतः साममयश्चैव ततो नाथ त्रयीमयः । त्वमेव ब्रह्मणो रूपं परं चापरमेव च ।।१२
मूर्त्तामूर्त्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपस्तथा स्थितः । निमेषकाष्ठादिमयः कालरूपः क्षयात्मकः ।।
प्रसीद स्वेच्छया रूपं स्वतेजःशमनं कुरु ।।१३
(इदं स्तोत्रवरं रम्यं श्रोतव्यं श्रद्धया नरैः । शिष्यो भूत्वा समाधिस्थो दत्त्वा देयं गुरोरपि) ।।१४

मार्कण्डेय उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु देवैर्देवर्षिभिस्तथा । मुमोच स्वं तदा तेजस्तेजसां राशिरव्ययः ।।१५
यत्तस्य ऋङ्मयं तेजो भविता तेन मेदिनी । यजुर्मयेनापि दिवं स्वर्गः साममयं रवेः ।।१६
शातितास्तेजसो भागा ये त्वष्ट्रा दश पञ्च च । त्वष्ट्रैव तेन शर्वस्य कृतं शूलं महात्मना ।।१७
चक्रं विष्णोर्वसूनां च शंकवोऽथ सुदारुणाः । पावकस्य तथा शक्तिः शिबिका धनदस्य च ।।१८
अन्येषामसुरारीणामस्त्राण्युग्राणि यानि वै । यक्षविद्याधराणां च तानि चक्रे स विश्वकृत् ।।१९
ततश्च षोडशं भागं बिभर्ति भगवान्विभुः । तत्तेजः पञ्चदशधा शातितं विश्वकर्मणा ।।२०
ततोऽश्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरून् । ददृशे तत्र संज्ञां च वडवारूपधारिणीम् ।।२१
सा च दृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसो विशङ्कया । जगाम सम्मुखं तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा ।।२२
ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः । नासत्यदस्रौ तनयावश्वीवक्त्रविनिर्गतौ ।।२३

जगत् जब तक तुम्हारे किरणों के संयोग को प्राप्त नहीं होता, तुम्हारे अंग से जो किरणे निकलती है, वह समस्त ही ऋक् यजु: और साम हैं । हे जगन्नाथ ! तुम्हीं ऋग्मय, तुम्हीं यजुर्मय ।१०-११। और तुम्हीं साममय हो, अत एव हे प्रभो ! तुम्हीं त्रयीमय हो, तुम्हीं ब्रह्मरूपी, तथा तुम्हीं प्रधान और अप्रधान हो ।१२। तुम्हीं मूर्तिधारी और मूर्तिहीन हो, स्थूल और सूक्ष्मरूप से तुम्हीं स्थित हो हे देव ! तुम्हीं निमेषकाष्ठादिस्वरूप क्षयात्मककालरूपी हो, तुम प्रसन्न होओ, अपनी इच्छा से रूप और तेजक्षय करो ।१३। यह मनोहर स्तोत्र मनुष्यों को श्रद्धा से सुनना चाहिए और गुरु को भी समाधि में स्थित हो अपने शिष्य के निमित्त देना चाहिए ।१४

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर, देवता और देवर्षियों के इस प्रकार स्तुति करने पर तेजोराशि अव्यय सूर्य ने अपना तेज मुक्त किया ।१५। उन रवि के ऋङमय तेज से पृथ्वी, यजुर्मय तेज से आकाश और साममय तेज से स्वर्ग हुआ ।१६। त्वष्टा ने जो सूर्य के तेज के पंचदश भाग छील दिया था, महात्मा त्वष्टा ने उस तेज से ही महादेव का शूल ।१७। विष्णु का चक्र, और वसुगण, शंकर और पावनक की दारुणशक्ति निर्माण की और उसी के द्वारा कुबेर की पालकी ।१८। और अन्यान्य देवगणों के एवं यक्ष विद्याधरों के जो सब उग्र अस्त्र हैं, वह समस्त ही विश्वकर्मा ने निर्माण किये थे ।१९। अनन्तर भगवान् विभु सूर्य ने अपने तेज का षोडशभाग मात्र धारण किया । विश्वकर्मा ने उसको भी फिर पन्द्रह बार छीला ।२०। इसके बाद भानु ने अश्वरूप धारण कर, उत्तरकुरुवर्ष में जाकर वडवारूपधारिणी संज्ञा को देखा ।२१। वह संज्ञा उनको आता हुआ देख, पराये पुरुष की आशंका से, पीठ की रक्षा में तत्पर हो उनके सम्मुख गई ।२२। तदनन्तर उसी स्थान में उन दोनों की नासिका मिलने पर घोड़ी के मुख से नासत्य और

रेतसोऽन्ते च रेवन्तः खड्गी चर्मी तनुत्रधृक् । अश्वारूढसमुद्भूतो बाणतूणसमन्वितः ॥२४
ततः स्वरूपमतुलं दर्शयामास भानुमान् । तस्यैषा च समालोक्य स्वरूपं मुदमाददे ॥२५
स्वरूपधारिणीं चेमामानिनाय निजाश्रमम् । संज्ञां भार्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः ॥२६
ततः पूर्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतो मनुः । द्वितीयश्च यमः शापाद्धर्मदृष्टिरभूत्सुतः ॥२७
कृमयो मांसमादाय पादतोऽस्य महीतले । पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम् ॥२८
धर्मदृष्टिर्यतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते । ततो नियोगं तं याम्ये चकार तिमिरापहः ॥२९
यमुना च नदी जज्ञे कलिन्दान्तरवाहिनी । अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना ॥३०
गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तोऽपि नियोजितः । छायासंज्ञासुतानां च नियोगः श्रूयतां मम ॥३१
पूर्वजस्य मनोस्तुल्यश्छायासंज्ञासुतोऽग्रजः । ततः सावर्णिकीं संज्ञामवाप तनयो रवेः ॥३२
भविष्यति मनुः सोऽपि बलिरिन्द्रो यदा तदा । शनैश्चरो ग्रहाणां च मध्ये पित्रा नियोजितः ॥३३
तयोस्तृतीया कन्या तु तपती नाम सा कुरुम् । नृपात्सम्वरणात्पुत्रमवाप मनुजेश्वरम् ॥३४
तस्य वैवस्वतस्याहं मनोः सप्तममन्तरम् । कथयामि सुतान्भूपानृषीन्देवान्सुराधिपम् ॥३५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वैवस्वतमन्वन्तरे वैवस्वतोत्पत्तिर्नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।७५।

दस्र नामक दो पुत्र बाहर निकले ।२३। और उस वीर्य के शेष भाग से चर्म (ढाल) वर्म (कवच) खड्गधारी बाणतूणयुक्त अश्वारूढ़ रेवन्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।२४। तदनन्तर सूर्य ने उसको (अश्विनी को) अपना अतुलरूप दिखाया तब बडवारूपधारिणी संज्ञा ने उनका यथार्थ स्वरूप देख, प्रसन्न हो अपना स्वरूप धारण किया ।२५। तब जलशोषक भास्कर स्वरूपधारिणी संज्ञानाम्नी इस प्रीतिमती भार्या को अपने घर ले आये ।२६। तदनन्तर इसका ज्येष्ठ पुत्र ही वैवस्वत नामक मनु हुआ था, दूसरे पुत्र यम शाप के कारण धर्मदृष्टि हुए ।२७। "तुम्हारे चरण से माँस के सहित समस्त कृमि पृथ्वीतल में गिरेंगे" इस शाप का प्रतीकार उनके पिता ने स्वयं किया था ।२८। यम को धर्मदृष्टि और शत्रुमित्र में समदृष्टि देखकर तिमिरारि सूर्य ने उनको यमत्व में नियुक्त किया ।२९। यमुना नामक कन्या नदीरूप से कलिन्ददेश के मध्य में बहने लगी और दोनों अश्विनीकुमार महात्मा पिता के द्वारा नियुक्त होकर स्वर्ग के वैद्य हुए ।३०।और रेवन्त गुह्यकाधिपतित्व में नियुक्त हुए अब छायासंज्ञा के पुत्रों का नियोग मुझसे सुनो ।३१। इसके उपरान्त पूर्वज वैवस्वतमनु के तुल्य छायासंज्ञा के गर्भ से उत्पन्न रवि के ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि के नाम को प्राप्त हुए थे ।३२। जिस समय बलि इन्द्र होंगे तब यह भी मनु होंगे, शनैश्चर भी पिता के द्वार ग्रहों में नियुक्त हुए ।३३। सबसे छोटी एक कन्या थी, जिसका नाम तपती है, उसने संवरण नामक राजा से कुरुनामक एक पुत्र प्राप्त किया था ।३४। अब मैं उन सातवें मनु वैवस्वत के अनन्तर समस्त ऋषि, देवगण, इन्द्र और उनके पुत्रों का विषय कहता हूँ ।३५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में वैवस्वतोत्पत्ति वर्णन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।५७।

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

वैवस्वतमन्वन्तरे वर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणः । भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौ यत्र देवगणाः स्मृताः ।।१
आदित्या वसवो रुद्रा विज्ञेयाः कश्यपात्मजाः । साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रगणास्त्रयः ।।२
भृगोस्तु भृगवो देवाः पुत्रा ह्यङ्गिरसः सुताः । एष सर्गश्च मारीचो विज्ञेयः साम्प्रताधिपः ।।३
ऊर्ज्जस्वी नाम चैवेन्द्रो महात्मा यज्ञभागभुक् । अतीतानागता ये च वर्तन्ते साम्प्रतं च ये ।।४
सर्वे ते त्रिदशेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः । सहस्राक्षा कुलिशिनः सर्व एव पुरन्दराः ।।५
मघवन्तो वृषाः सर्वे शृङ्गिणो गजगामिनः । ते शतक्रतवः सर्वे भूताभिभवतेजसः ।।६
धर्माद्यैः कारणैः शुद्धैराधिपत्यगुणान्विताः । भूतभव्यभवन्नाथाः शृणु चैतत्त्रयं द्विज ।।७
भूर्लोकोऽयं स्मृता भूमिरन्तरिक्षं दिवः स्मृतम् । दिव्याख्यश्च तथा स्वर्गस्त्रैलोक्यमिति गद्यते ।।८
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपश्च महानृषिः । गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ।।९
तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः । जमदग्निस्तु सप्तैते मुनयोऽत्र तथान्तरे ।।१०
इक्ष्वाकुर्नाभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च । नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभागो दिष्ट एव च ।।११
करूषश्च पृषध्रश्च वसुमाँल्लोकविश्रुतः । मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः प्रकीर्तिताः ।।१२

अध्याय ७६

वैवस्वत नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्व, मरुत्, भृगु और अंगिरा, इस मन्वन्तर में यह आठ देवता हैं ।१। उनमें आदित्य वसु और रुद्रगण कश्यपजी की सन्तान हैं और साध्य, वसु एवं विश्वगण, यह तीन गण धर्म के पुत्र हैं ।२। भृगुगण देवता भृगु के पुत्र हैं, और अङ्गिरागण अंगिरा के पुत्र हैं । हे द्विज ! इस सर्ग को सम्प्रति मारीचसर्ग जानना चाहिए ।३। इस मन्वन्तर में महात्मा ऊर्जस्वी इन्द्र होकर यज्ञभाग भुक् (यज्ञभाग भोगनेवाले) हुए थे, पूर्व में इन्द्र हुए थे तथा बाद में जो इन्द्र होंगे और अब जो इन्द्रत्व वर्त्तमान हैं ।४। यह सब देवेन्द्र ही समलक्षण कहकर विख्यात हैं । सब ही सहस्राक्ष, वज्रधारी और पुरन्दर हैं ।५। सब ही मघवा, वृष शृंगधारी और गजगामी हैं और वह सब ही शतयज्ञकारी एवं भूतपराभवकारी तेजयुक्त हैं ।६। हे द्विज ! वह सब ही शुद्ध धर्मादि के कारण होने से आधिपत्यगुणयुक्त एवं भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान के अधिपति हैं । अब त्रैलोक्य का विभाग सुनो ।७। इस भूमि को "भूर्लोक" अन्तरिक्ष को "दिव्य" और स्वर्ग को "दिव्य" कहते हैं इन्हीं तीनों को त्रैलोक्य कहा है ।८। अत्रि, वसिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, कुशिकन्दन विश्वामित्र ।९। और महात्मा भगवान् ऋचीकनन्दन जमदग्नि, यही सात मुनि इस मन्वन्तर में सप्तर्षि हैं ।१०। इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्याति, नारिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ।११। करुष और पृषध्र, यह नौ वैवस्वतमनु के दीप्तिमान् और

वैवस्वतमिदं ब्रह्मन्कथितं ते मयान्तरम् । अस्मिञ्छ्रुते नरः सद्यः पठिते चैव सत्तम ॥
मुच्यत पातकैः सर्वैः पुण्यं च महदश्नुते ॥१३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वैवस्वतमन्वन्तरे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।७६।

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

सावर्णिके वर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

स्वायम्भुवाद्याः कथिताः सप्तैते मनवो मम । तदन्तरेषु ये देवा राजानो मुनयस्तथा ॥१
अस्मिन्कल्पे सप्त येऽन्ये भविष्यन्ति महामुने । मनवस्तान्समाचक्ष्व तथा देवादयश्च ये ॥२

मार्कण्डेय उवाच

कथितस्तव सावर्णिश्छायासंज्ञासुतश्च यः । पूर्वजस्य मनोस्तुल्यः स मनुर्भविताष्टमः ॥३
रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान्कृप एव च । ऋष्यश्रृङ्गस्तथा द्रोणस्तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥४
सुतपाश्चामिताभाश्च मुख्याश्चैव त्रिधा सुराः । विंशकः कथिताश्चैषां त्रयाणां त्रिगुणो गणः ॥५
तपस्तपश्च शक्रश्च द्युतिर्ज्योतिः प्रभाकरः । प्रभासो दयितो धर्मस्तेजोरश्मिश्च वक्रतुः ॥६
इत्यादिकस्तु सुतपा देवानां विंशको गणः । प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्यो विंशको गणः ॥७

जगत्विख्यात पुत्र थे ।१२। हे ब्रह्मन् ! मैंने इस वैवस्वतमन्वन्तर का तुम से वर्णन किया । हे मुनिश्रेष्ठ ! इसका श्रवण और पाठ करने पर मनुष्य शीघ्र ही सब पापों से छूटकर पुण्य भोग करते हैं ।१३

श्रीमार्कण्डेयपुराण में वैवस्वतमन्वन्तर नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७६।

अध्याय ७७

सावर्णिकमन्वन्तर नामक वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—स्वायम्भुवादि सात मनु का विषय और उनके मन्वन्तर में, जो जो देवता, जो जो राजा और जो जो ऋषि थे, वह तो आपने मुझसे कहा ।१। हे महामुने ! इस कल्प में और जो सात मनु होंगे उनका विषय और उस समय जो देवादि होंगे उनका वर्णन कीजिये ।२

मार्कण्डेय जी बोले—छाया संज्ञा के गर्भ से उत्पन्न पूर्वजात वैवस्वतमनु के तुल्य जिन सावर्णि का विषय तुमसे कहा है, वही आठवें मनु होंगे ।३। इस मन्वन्तर में राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, कृप, ऋष्यशृंग और द्रौणि (अश्वत्थामा) यह सात जन सप्तर्षि होंगे ।४। इस मन्वन्तर में सुतपा, अमिताभ और मुख्य, यह तीन प्रकार के देवगण हैं, इन देवताओं के प्रत्येक वीस गण है, इसलिए वह सब त्रिगुणित विंशक अर्थात् साठ हैं ।५। उनमें तपस्तपः, शक्र, द्युतिः ज्योतिः प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेजः, रश्मि और वक्रतु ।६। इत्यादि समस्त देवता सुतपा देवताओं के बीस गणों के अन्तर्गत हैं । प्रभु, विभु और विभासादि देवता, अमिताभ देवताओं के विंशक गण हैं ।७। इसके बाद तीसरे गण का विषय सुनो ।

सुराणाममितानां तु तृतीयमपि मे शृणु । दमो दान्त ऋतः सोमो विन्ताद्याश्चैव विंशतिः ॥८
मुख्या ह्येते समाख्याता देवा मन्वन्तराधिपाः । मारीचस्यैव ते पुत्राः काश्यपस्य प्रजापतेः ॥९
भविष्याश्च भविष्यन्ति सावर्णस्यान्तरे मनोः । तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु बलिर्वैरोचनिर्मुने ॥१०
पाताल आस्ते योऽद्यापि दैत्यः समयबन्धनः । विरजाश्चार्ववीरश्च निर्मोहः सत्यवाक्कृतिः ॥
विष्ण्वाद्याश्चैव तनयाः सावर्णस्य मनोर्नृपाः ॥११

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।७७।

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधवर्णनम्

ॐ नमश्चण्डिकायै

मार्कण्डेय उवाच

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः । निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम ॥१
महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः । स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥२
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः । सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले ॥३
तस्य पालयतः सम्यक्प्रजाः पुत्रानिवौरसान् । बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलविध्वंसिनस्तदा ॥४

दम, दान्त, ऋत, सोम और विन्त इत्यादि देवतागण मुख्य नामक तीसरे विंशक गण के अन्तर्गत हैं ।८। यह सब मन्वन्तराधिपति और सब मरीचि-तनय प्रजापति कश्यपजी की सन्तान हैं ।९। यह सावर्णि मन्वन्तर में देवता होंगे और हे मुने ! विरोचन के पुत्र बलि उस समय में इनके इन्द्र होंगे ।१०। जो दैत्यराज अब भी प्रतिज्ञापाश से बँधकर पाताल में वास करते हैं । सावर्णिमनु के विरजा, अर्ववीर, निर्मोह, सत्यवाक्, कृति और विष्णु इत्यादि नामधारी पुत्र उस समय में राजा होंगे ।११

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सार्वणिक मन्वन्तर नामक सत्तहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७७।

अध्याय ७८

मधुकैटभवध नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—सूर्य के पुत्र सावर्णि (अर्थात् सूर्य की छाया से उत्पन्न) की, जिसको अष्टम मनु कहते हैं, उसकी उत्पत्ति मैं विस्तारसहित कहता हूँ सुनो ।१। महामाया भगवती के अनुग्रह से वह महाभाग सूर्य का पुत्र सावर्णि जिस भाँति समस्त ऐश्वर्य से युक्त होकर मन्वन्तर का अधिपति हो गया, वह सुनो ।२। स्वारोचिष नामक दूसरे मनु के राज्याधिकार में कथा से पूर्व चैत्र के वंश में उत्पन्न सुरथ नाम सब पृथ्वीमण्डल का राजा हुआ ।३। जब वह सुरथ नामक नरपति अपनी प्रजा को नीति सहित और अपने पुत्रों की भाँति पालने लगा, तब उस समय उसके कोलाविध्वंसी नामक राजा वैरी हो गये ।४। और

शंकर

पा-

यम.

मार्कंडेय

तस्य तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदण्डिनः । न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥५
ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् । आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥६
अमात्यैर्बलभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः । कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥७
ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यःस भूपतिः । एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥८
स तत्राश्रममद्राक्षीद्द्विजवर्यः सुमेधसः । प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥९
तस्थौ कञ्चित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः । इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥१०
सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टमानसः । मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ॥११
न जाने सुप्रधानो मे शूरो हस्ती सदा मदः । मम वैरिवशं यातः कान्भोगानुपलप्स्यते ॥१२
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः । अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ॥१३
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् । सञ्चितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति ॥१४
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः । तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः ॥१५
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः । सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ॥१६
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् । प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥१७

उनका अत्यन्त प्रबल दंड देने वाले सुरथ के संग संग्राम हुआ । यद्यपि कोलाविध्वंसी राजा थोड़े थे किन्तु तो भी उन्होंने युद्ध में परास्त किया, अर्थात् जीत लिया ।५। अनन्तर प्रबल वैरियों से दबकर वह महाभाग राजा सुरथ अपने पुर में आकर अपने देश का राज्य करने लगा ।६। इसके उपरान्त उस पुर में भी बलवान् और दुष्ट मन्त्रियों ने उस दुर्बल राजा का कोशागार (खजाना) और सेना समस्त हरण कर लिया ।७। तदनन्तर वह राजा अपना संपूर्ण राज्य हरण हो जाने पर मृगया के बहाने अकेला घोड़े पर चढ़ गहन वन में गया ।८। वहाँ उसने पराई हिंसा न करने वाले पशुओं से पूर्ण और मुनि एवं उनके शिष्यों से शोभित मेधा नामक महर्षि का आश्रम देखा ।९। उस स्थान में उन मुनि ने उसका अत्यन्त सत्कार किया । तब वह राजा इधर-उधर विचरण करता हुआ कुछ काल तक उन मुनिवर के आश्रम में रहा ।१०। अनन्तर जब उसके मन को वहाँ भी ममता ने घुमाया तब वह चिन्ता करने लगा, कि जिस पुर का मेरे पुरखों ने पालन किया था, अब वह मुझसे रहित हो रहा है, वह मेरे दुराचारी सेवक उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करते होंगे या नहीं, यह मैं नहीं जानता हूँ ।११। सदा मदयुक्त मेरा वह प्रधान शूर हाथी शत्रुओं के वश होकर इस समय किस प्रकार भोगों को प्राप्त होगा ?।१२। और जो प्रतिदिन प्रसाद, धन और भोजन के देने से मेरे अनुगत अर्थात् आज्ञाकारी थे, वह अब निस्सन्देह अन्य राजाओं की सेवा करते होंगे ।१३। और अन्याय रीति से व्यय करने वाले निरन्तर व्यय करते हुए उन सेवकों के द्वारा अतीव कष्ट से संचित किया खजाना नष्ट हो जायगा ।१४। सुरथ राजा इस भाँति और अन्यान्य नाना प्रकार की चिन्ता करने लगे । अनन्तर राजा ने उन मुनि के आश्रम के निकट एक वैश्य को देखकर ।१५। पूँछा तुम कौन हो ? और तुम्हारे यहाँ आने का कारण क्या है ? और शोकयुक्त के समान तुम उदास क्यों दीखते हो ? ।१६। राजा के इस प्रकार प्रणयुक्त वचन सुनकर वैश्य ने अत्यन्त नम्रभाव से राजा को उत्तर दिया ।१७

वैश्य उवाच

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले । पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ।।१८
विहीनः स्वजनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् । वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ।।१९
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् । प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः ।।२०
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् । कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ।।२१

राजोवाच

यैर्निरस्तो भवाल्लुँब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः । तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ।।२२

वैश्य उवाच

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः । किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ।।२३
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः । पतिस्वजनहार्दं च हार्दितेष्वेव मे मनः ।।२४
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते । यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ।।२५
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते । करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ।।२६

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ । समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ।।२७

वैश्य बोला—मैं धनवान् पुरुषों के कुल में उत्पन्न हुआ समाधि नामक वैश्य हूँ, असज्जन स्त्रीपुत्र ने धन के लालच से ।१८। मेरा सब धन हरण करके मुझे घर से निकाल दिया है और पुत्र स्त्री तथा धनहीन मुझको मेरे मित्र और भाई बंधुओं ने भी त्याग दिया, इस कारण मैं दुःखी होकर इस वन में आया हूँ ।१९। और यहाँ वन में बैठा हुआ अपने पुत्रों बान्धवों तथा स्त्रियों के कुशलाकुशल की वार्त्ता नहीं जानता ।२०। किन्तु उनके घर में कुशल है, या कोई पीडा है और मेरे पुत्रों का आचरण अब अच्छा है या बुरा है ।२१

राजा ने कहा—जिन लालची पुत्र-स्त्री इत्यादि ने तुमको धन के लालच से निकाल दिया, उनके प्रति अब तुम्हारा चित्त किसलिये स्नेह करता है ।२२

वैश्य ने कहा—आपने मेरे संबंध में जो कहा वह सत्य है, किन्तु मैं क्या करूँ ? मेरा मन किसी प्रकार भी निष्ठुर नहीं होता ।२३। जिन पुत्रों ने धन के लालच से पितृस्नेह छोड़कर मुझे दूर किया, जिन पत्नियों ने पतिप्रेम और बंधुगणों ने बंधु के स्नेह को त्यागकर मुझको घर से निकाल दिया, उन्हीं असज्जन पुत्र, स्त्री और बंधुवर्ग में मेरा मन फँस रहा है, हे महामते ! प्रतिकूल बांधवों में मेरा चित्त क्यों इतना प्रेमपरायण होता है, यह मैं जानकर भी नहीं समझ सकता ।२४-२५। उन्हीं के निमित्त मेरा दीर्घ निःश्वास और चित्त खिन्न होता है, किन्तु क्या करूँ उन निर्मोहियों में मेरा मन कठोर नहीं होता ।२६

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुनिसत्तम ! इसके उपरान्त राजा सुरथ और समाधि नामक वैश्य दोनों एकत्र होकर उन मेधा मुनि के निकट उपस्थित हुए ।२७। तब राजा और वैश्य मुनि का

कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् । उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥२८

राजोवाच

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् । दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ॥२९
ममत्वं गतराज्यस्य राज्यांगेष्वखिलेष्वपि । जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ॥३०
अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः । स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ॥३१
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ । दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ॥३२
तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि । ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥३३

ऋषिरुवाच

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे । विषयाश्च महाभाग यान्ति चैवं पृथक्पृथक् ॥३४
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे । केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥३५
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं नु ते न हि केवलम् । यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ॥३६
ज्ञानं न तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् । मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ॥३७
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान्पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु । कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा ॥३८

यथोचित सन्मान कर पूजानुक्रम से अधिकारानुसार बैठ उनके संग अनेक प्रकार की बात-चीत करने लगे ।२८

राजा ने कहा—हे भगवन् ! जो विषय न समझ सकने से मेरा मन दुःखी रहता है, उसी विषय को आपसे पूछने की इच्छा करता हूँ, वह आप मुझको समझा दिजिये ।२९। मैं पूछता हूँ कि, यह भ्रम है, तथापि अज्ञ के समान मेरी राज्य और संपूर्ण राज्याङ्ग के ऊपर ऐसी ममता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! यह किस प्रकार है ।३०। और इस वैश्य को इसके पुत्रों ने अपमानित किया है, स्त्री, भृत्य और बांधवों ने परित्याग किया है, तो भी यह वैश्य उन सब दुष्ट पुत्रादि में अनुरक्त हैं ।३१। इस प्रकार मैं और यह वैश्य दोनों ही इस भाँति दृश्यमान दोषपूर्ण विषय में ममतायुक्तचित्त होकर अत्यन्त दुःख पाते हैं ।३२। हे महाभाग ! हम दोनों ज्ञानी होकर भी जो इस प्रकार विवेकान्ध के समान मोह को प्राप्त होते हैं, इसका कारण क्या है ।३३

ऋषि बोले—समस्त जन्तुओं को विषय के दृष्टिगोचर होने पर ज्ञान है। किन्तु हे महाभाग ! विषय इस पृथक्-पृथक् प्रकार से ज्ञान को प्राप्त होता है।३४। देखो कोई कोई प्राणी दिन में नहीं देख सकता कोई कोई रात्रि में नहीं देख सकता, और कोई कोई दिन रात्रि में समानदृष्टिवाले हैं अर्थात् उन्हें दिन और रात्रि में एक सा दीखता है।३५। आप जिस प्रकार ज्ञान की बात कहते हैं यद्यपि मनुष्यों को ऐसा ज्ञान है यह सत्य है, किन्तु केवल जो मनुष्यमात्र ही इस प्रकार ज्ञान के अधिकारी हैं, ऐसा नहीं है, क्योंकि पशु, पक्षी और मृगादि भी इसी प्रकार ज्ञानवान् हैं।३६। विषयगोचर ज्ञान जिस प्रकार पशु-पक्षी इत्यादि का है, मनुष्यों का भी उसी प्रकार है और मनुष्यों का जो विषयगोचर ज्ञान है, पशु-पक्षियों का भी वहीं है, अत एव इस प्रकार ज्ञान मनुष्य और इतर प्राणियों का समान हैं।३७। इस प्रकार ज्ञान होने पर भी परस्पर में विषय

मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान्प्रति । लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान्किं न पश्यसि ॥३९
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्त्ते निपातिताः । महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा ॥४०
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः । महामाया हरेश्चैषा तया सम्मोह्यते जगत् ॥४१
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥४२
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् । सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥४३
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी । संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥४४

राजोवाच

भगवन्का हि सा देवी महामायेति यां भवान् । ब्रवीति कथमुत्पन्ना कर्म चास्याश्च किं द्विज ॥४५
यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥४६

ऋषिरुवाच

नित्यैव सा जगन्मूर्त्तिस्तया सर्वमिदं ततम् । तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ॥४७
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा । उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ॥४८
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते । आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान्प्रभुः ॥४९

की कितनी विभिन्नता है, देखो यद्यपि यह पक्षी भूँख से पीड़ित हैं किन्तु तो भी अपने बच्चों की चोच में मोह से धान्यादि का कण देते हैं।३८। और हे मनुजश्रेष्ठ ! मनुष्य अपने पुत्रों के प्रति अभिलाषा होकर उनका भरण-पोषण करते हैं, मनुष्य केवल प्रत्युपकार के लोभ से ऐसा करते हैं, यह क्या नहीं देखते हो ।३९। इस प्रकार उपकार आदि की आशा के होने पर भी महामाया के संसारस्थितिकारी प्रभाव से संपूर्ण प्राणी वासनारूप भँवर वाले मोहरूपी गड्ढे में गिरते हैं ।४०। अत एव इस विषय में आश्चर्य करना उचित नहीं है "महामाया जगत्पति हरि की योगनिद्रास्वरूप है वही इस जगत् को मोहित करती हैं ।४१। वह भगवती माहामाया ही ज्ञानियों के चित्त को बलपूर्वक खींचकर मोह में डालती हैं ।४२। उसी देवी ने इस चराचर जगत् को उत्पन्न किया है वही प्रसन्न होकर मनुष्यों को मुक्तिप्रद वर देती है ।४३। वही मुक्ति की उत्कृष्ट हेतुस्वरूप सनातनी ब्रह्मज्ञानस्वरूपा विद्या हैं, वही संसारबन्धन अर्थात् जन्म और मृत्यु इत्यादि का हेतु हैं वही ईश्वर की भी ईश्वरी हैं" ।४४।

राजा बोला—हे भगवन् ! आपने जिसको महामाया कहा है वह देवी कौन है ? हे द्विज ! उनकी उत्पत्ति का वृत्तान्त किस प्रकार है और उनके कर्म किस प्रकार हैं ।४५। इसके अतिरिक्त उन देवी का स्वभाव और स्वरूप और वह जिससे उत्पन्न हैं, हे ब्रह्मश्रेष्ठ ! वह मैं सब विषय आपसे सुनने की इच्छा करता हूँ ।४६

ऋषि बोले—वह जगन्मूर्त्ति नित्य अर्थात् उत्पत्तिविनाशरहित हैं वह संपूर्ण विश्व में व्याप्त हो रही है, किन्तु तो भी उनके बहुत प्रकार उत्पन्न होने की कथा कहता हूँ, सुनो।४७। देवताओं की कार्यसिद्धि के लिये वह जब आविर्भूत होती है, तब नित्य होने पर भी लोक में "उत्पन्न हुई कही जाती हैं" ।४८। और कल्प के अन्त में जब जगत् जलमय हो गया, तब भगवान् विष्णु ने अनन्त शय्या का आश्रय कर योगनिद्रा

तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ । विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ॥५०
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः । दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ॥५१
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः । प्रबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रक्तितालयाम् ॥५२

ब्रह्मोवाच

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् । स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलतेजसः ॥५३
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका । सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता ॥५४
अर्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः । त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥५५
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् । त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥५६
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने । तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥५७
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः । महामोहा भगवती महादेवी महेश्वरी ॥५८
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी । कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥५९
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा । लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥६०

अवलम्बन की ।४९। उसी समय दो अत्यन्त भयंकर असुर, जिनका नाम मधु और कैटभ विख्यात था विष्णु के कान के मल से उत्पन्न होकर ब्रह्मा जी का संहार करने के लिये उद्यत हुए ।५०। विष्णु के नाभिकमल में स्थित अति दीप्तिमान् प्रजापति ब्रह्मा उन दोनों भयंकर असुरों को देख और विष्णु को सोता हुआ देख ।५१। विष्णु के जगाने को एकाग्र हृदय से भगवान् के नेत्रों में प्राप्त हुई, विष्णु की निद्रास्वरूप विश्वेश्वरी, जगत् की रचने वाली स्थिति, संहार करने वाली और विष्णु के तेज की अतुल मूर्ति ऐसी निद्रा भगवती की स्तुति करने लगे ।५२-५३

ब्रह्मा जी बोले—हे ब्रह्मस्वरूपे ! हे नित्ये ! तुम देवताओं के हवि देने के मंत्र स्वाहारूप हो, तुम्हीं पितरों के श्राद्धादि में स्वधारूप हो, तुम ही वषट्कार इन्द्र के हविर्दान मंत्र की स्वरस्वरूप हो, हे देवि ! तुम्ही सुधास्वरूप हो और तुम ही अक्षरों में ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत रूप तीन मात्रास्वरूप हो ।५४। जिस अर्द्ध मात्रा का उच्चारण विशेष रूप से नहीं होता तुम ही उस अर्द्धमात्रारूप में स्थित हो । हे देवि ! तुम ही वह प्रसिद्ध गायत्रीस्वरूप हो । हे देवि ! तुम ही वह सर्वोत्कृष्ट जगज्जननी प्रकृति स्वरूप हो ।५५। हे देवि ! तुम ही इस जगत् को उत्पन्न करती हो, तुम ही इसको धारण करती हो, तुम ही इसको पालन करती हो और प्रलयकाल में तुम ही इस जगत् को सदा ग्रास करती हो।५६। तुमही सर्गकाल में सृष्टिरूप, पालन में स्थितिरूप और हे जगन्मयि ! इस जगत् के विनाशकाल में तुम ही संहाररूप हो।५७। हे देवि ! तुम ही महाविद्या, तुम ही महामेधा, तुम ही महामाया और तुम ही महास्मृति हो। हे देवि ! तुम ही महामोहा, महादेवी और महासुरी हो ।५८। हे देवि ! तुम ही सत् रज, तमोगुणस्वरूप में समस्त चराचर की प्रकृति हो । तुम ही कालरात्रि अर्थात् भयंकर यमस्वरूप हो । तुम ही महारात्रि अर्थात् वस्तुमात्र की आवरक तमोमय प्रलयस्वरूप हो। तुम ही भयंकर मोहरात्रि अर्थात् जगत् की मोहजनक संसारस्वरूप हो।५९। हे देवि ! तुम्ही श्री अर्थात् लक्ष्मीबीज हो, तुम ही ईश्वरी, तुमही लज्जा, तुम ही बुद्धि और तुम ही दिव्यज्ञान की एक मात्र लक्ष्य हो। तुम ही लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षान्तिस्वरूप हो।६०। तुम

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा। शङ्खिनी चापिनी बाणा भुशुण्डीपरिघायुधा ॥६१
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी । परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥६२
यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाऽखिलात्मके। तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया ॥६३
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत्। सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥६४
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च। कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान्भवेत् ॥६५
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि: संस्तुता । मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥६६
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु । बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥६७

ऋषिरुवाच

एवं स्तुता तदा देवी तामसा तत्र वेधसा । विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ॥६८
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः । निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणा व्यक्तजन्मनः ॥६९
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः । एकार्णवे हि शयनात्ततः स ददृशे च तौ ॥७०
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ । क्रोधरक्तेक्षणौ हन्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ॥७१
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान्हरिः । पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ॥७२

ही खड्गिनी (खड्गधारिणी) शूलिनी (शूलधारिणी) तथा भयंकर स्वरूप हो। तुम ही गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी और चापिनी अर्थात् धनुषधारिणी हो। हे देवि ! बाण, भुशुंडी और परिघ भी तुम्हारे अस्त्र हैं।६१। हे देवि ! तुम्ही सौम्या और सौम्यतरा हो, अधिक क्या जगत् में जितने सुन्दर पदार्थ हैं तुम उन सब की अपेक्षा सुन्दरी हो। हे देवि ! तुम श्रेष्ठ, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर और तुम ही श्रेष्ठतरों की भी ईश्वरी हो।६२। हे अखिलात्मिके ! जो कुछ सत् और असत् वस्तु है, उनकी जो शक्ति है, तुम ही शक्तिस्वरूप हो, अत एव तुम्हारी किस प्रकार से स्तुति करूँ।६३। हे देवि ! जगत् की सृष्टि, स्थिति, प्रलय कर्त्ता उन भगवान् विष्णु को ही जब तुमने निद्राभिभूत कर रखा है, तब और कौन तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ होगा।६४। हे देवि ! विष्णु, ईशान और मुझको जब तुमने ही शरीर ग्रहण कराया है, तब दूसरा कौन पुरुष तुम्हारी स्तुति करने में समर्थ होगा।६५। हे देवि ! वह तुम इस प्रकार स्वकीय उदार प्रभाववर्णन द्वारा संतुष्ट होकर इन दुराधर्ष मधु और कैटभ नामक दोनों असुरों को मोहित करो।६६। और जगत् के स्वामी विष्णुभगवान् को शीघ्र जगाओ तथा इन महाअसुरों को मारने के लिये ज्ञान प्रदान करो।६७

ऋषि बोले—जब ब्रह्मा जी ने उन दोनों असुरों के विनाशार्थ विष्णु को जगाने के लिये इस प्रकार से उन तमोगुण मयी निद्रारूपा देवी की स्तुति की।६८। तब अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा जी के देखते हुए भगवान् विष्णु के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षःस्थल से निकल कर देवी स्थित हुई।६९। अनन्तर निद्रारूपा देवी के छोड़ देने पर भगवान् विष्णु ने एकार्णवस्थित अनन्तशय्या से उठकर देखा।७०। कि, वह दुरात्मा अत्यन्त वीर्य पराक्रमशाली क्रोध से लाल लाल नेत्र किये मधु और कैटभ नामक दोनों असुर ब्रह्मा जी के विनाश में उद्यत हुए हैं।७१। उठने के बाद भगवान् विभु हरि ने उन दोनों असुरों के संग पांच हजार वर्ष तक बाहुयुद्ध किया।७२। फिर उन अति बलोन्मत्त दोनों असुरों ने

तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ । उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥७३

श्रीभगवानुवाच

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि । किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मया ॥७४

ऋषिरुवाच

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् । विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान्कमलेक्षणः ॥७५
प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः । आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥७६

ऋषिरुवाच

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता । कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥७७
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् । प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥७८

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
मधुकैटभवधो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।७८।

महामाया के द्वारा मोहित होकर केशव से कहा "तुम हम से वर ग्रहण करो" ।७३

भगवान् बोले—तुम यदि मेरे ऊपर संतुष्ट हुए हो तो दोनों मेरे वध्य होओ अर्थात् मेरे हाथ से मारे जाओ, मेरा यही वर है, दूसरे वर से कोई प्रयोजन नहीं है ।७४

ऋषि बोले—जब भगवान् ने इस प्रकार दोनों को छला, तब उन दोनों असुरों ने संपूर्ण जगत् को जलमय देखकर भगवान् पुण्डरीकाक्ष से कहा ।७५। हे केशव ! तुम्हारे संग युद्ध में हम प्रसन्न हुए हैं, अत एव तुम्हारे हाथ से हमारी मृत्यु श्लाघनीय है किन्तु जो स्थान जल में डूबा हुआ न हो हमको उसी स्थान में वध करो ।७६

ऋषि बोले—"यही हो" यह कहकर भगवान् ने शंख, चक्र, गदा, धारणपूर्वक अपनी जंघा पर रख चक्र से उन दोनों असुरों का मस्तक काट डाला ।७७। स्वयं ब्रह्मा जी के स्तवन करने पर यह महामाया देवी इस प्रकार से उत्पन्न हुई थी अब तुमसे इन देवी के प्रभाव का वर्णन करता हूँ सुनो ।७८

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मधुकैटभवध नामक
अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।७८।

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

(८२)

देवीमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषिरुवाच

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा । महिषे सुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ।।१
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम् । जित्वा च सकलान्देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ।।२
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् । पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ।।३
यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् । त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ।।४
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च । अन्येषां चाधिकारांस स्वयमेवाधितिष्ठति ।।५
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि । विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ।।६
एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् । शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ।।७

ऋषिरुवाच

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः । चकार कोपं शंभुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ।।८
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः । निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ।।९
अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः । निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ।।१०

अध्याय ७९

देवीमाहात्म्य का वर्णन

ऋषि बोले—पूर्वकाल में जब पुरन्दर (इन्द्र) देवताओं के अधिपति और महिष नामक असुर असुरों का स्वामी था, उस समय एक सौ वर्षपर्यन्त देवता और असुरों का परस्पर युद्ध हुआ ।१। उस युद्ध में महावीर्यवान् असुरों ने देवताओं की सेना को पराजित किया और सब देवताओं को जीतकर फिर महिषासुर आप इन्द्र वन बैठा ।२। इसके बाद पराजित देवता पद्मयोनि प्रजापति ब्रह्मा जी को आगे करके जहाँ महादेव और विष्णु थे, उस स्थान में गये ।३। देवताओं ने शिव जी और भगवान् के सन्मुख जो कुछ वृत्तान्त हुआ था और जैसी कुछ महिषासुर ने चेष्टा की थी, तथा जिस भाँति देवता पराजित हुए थे, वह सब विस्तार सहित कह सुनाया ।४। कि, वह महिषासुर स्वयं ही सूर्य, इन्द्र, अग्नि, पवन, चन्द्रमा, यम, वरुण और अन्यान्य देवताओं के अधिकार में अधिष्ठान करता है ।५। उस दुरात्मा महिष के द्वारा स्वर्ग से निकाले जाकर देवता मर्त्यलोक के मनुष्यों के समान पृथ्वी में विचरण करते हैं ।६। आपके निकट उन असुरों का सब पराक्रम कहा गया । हम आपकी शरण में आये हैं अब आप असुर के मारने का उपाय विचारिये ।७

ऋषि बोले—देवताओं के इस प्रकार वचन सुनकर विष्णु और महादेव जी अत्यन्त क्रोधित हुए और क्रोध से उनका मुख तथा भृकुटी कुटिल हो गई ।८। इसके उपरान्त अत्यन्त कोप के पूर्ण विष्णु, महादेव और ब्रह्मा जी के मुख से एक बड़ा तेज निकला ।९। और इन्द्रादि अन्यान्य देवताओं के शरीर से

अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् । ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ।।११
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् । एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ।।१२
यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् । याम्येन चाभवन्केशा बाहवो विष्णुतेजसा ।।१३
सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यमैन्द्रेण चाभवत् । वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ।।१४
ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा । वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका ।।१५
तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा । नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ।।१६
भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च । अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ।।१७
ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् । तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ।।१८
ततो देवा ददुस्तस्यै स्वानि स्वान्यायुधानि च । ऊचुर्जय जयेत्युच्चैर्जयन्तीं ते जयैषिणः ।।१९
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकभृत् । चक्रं च दत्तवान्कृष्णः समुत्पाट्य स्वचक्रतः ।।२०
शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः । मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ।।२१
वज्रमिन्द्रः समुत्पाट्य कुलिशादमराधिपः । ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद्गजात् ।।२२
कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ । प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ।।२३
समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन्दिवाकरः । कालश्च दत्तवान्खड्गं तस्यै चर्म च निर्मलम् ।।२४

भी इसी प्रकार तेज निकला । फिर वह निकला हुआ संपूर्ण तेज एकत्र हुआ ।१०। अनन्तर उन देवताओं ने उस अधिक तेज के पुंज को, जिसकी ज्वाला समस्त दिशा में फैल गई थी, पर्वत के समान जलते हुए देखा ।११। इसके बाद देवताओं को देह से उत्पन्न हुआ और इकट्टा हुआ तथा अपनी कान्ति से तीनों लोक को प्रकाशित करने वाला वह तेज एक स्त्रीरूप हो गया ।१२। महादेव जी के मुख से जो तेज निकला था उसके द्वारा उस स्त्री का मुख बना । यम के तेज से केश और विष्णु के तेज से दोनों उसकी बाहु बनीं ।१३। चन्द्रमा के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज से मध्यप्रदेश, वरुण के तेज से जंघा और ऊरू, पृथ्वी के तेज से नितम्ब ।१४। ब्रह्मा के तेज से दोनों चरण, सूर्य के तेज से पैरों की अंगुली और वसुगणों के तेज से उसके हाथों की अंगुली बनीं । कुबेर के तेज से नासिका ।१५। प्रजापति के तेज से उसके दांत, पावक के तेज से तीनों नेत्र ।१६। दोनों संध्याओं के तेज से भृकुटि और वायु के तेज से उसके दोनों कान बने और अन्यान्य विश्वकर्मादि देवताओं के तेज से भी वह मंगलमयी देवी उत्पन्न हुई ।१७। तदनन्तर सब देवताओं के तेज समूह से उत्पन्न हुई उन देवी जी को देखकर महिषासुर के द्वारा पीड़ित हुए देवता अतिशय हर्ष को प्राप्त हुए ।१८। तब देवताओं ने उनके निमित्त अपने-अपने आयुध दिये और वह जय की इच्छा करने वाले जयन्ती के प्रति जय जय शब्द उच्चारण करने लगे ।१९। अनन्तर महादेव जी ने अपनेशूल से शूल उत्पन्न करके उनको दिया । नारायण ने अपने चक्र से चक्र उत्पन्न करके उनको दिया ।२०। वरुण ने उनको शंख दिया, हुताशन ने शक्ति दी, और वायु ने उनको धनुष और बाणों से पूर्ण तरकस दिया ।२१। अमरेश्वर सहस्राक्ष इन्द्र अपने वज्र से वज्र उत्पन्न करके उनको दिया और ऐरावत हाथी से घंटा खोलकर दिया ।२२। यम ने कालदण्ड से दंड उत्पन्न करके उनको दिया, वरुण ने उनको पाश दिया, दक्ष प्रजापति ने उनको अक्षमाला दी, ब्रह्मा जी ने उनको कमण्डलु दिया ।२३। दिवाकर सूर्य ने उन महादेवी के संपूर्ण रोमरोमकूप में अपनी किरणें प्रदान कीं । काल ने उनको निर्मल खड्ग और चर्म

क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे । चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ।।२५
अर्द्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान्सर्वबाहुषु । नूपुरौ विमलौ तद्वद्ग्रैवेयकमनुत्तमम् ।।
अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च ।।२६
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् । अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाऽभेद्यं च दंशनम् ।।२७
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् । अददाज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम् ।।२८
हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च । ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।।२९
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् । नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ।।३०
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा । सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ।।३१
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः । अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ।।३२
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे । चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ।।३३
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् । तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ।।३४
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः । सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।।३५
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः । अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।।३६
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा । पादाक्रान्त्यानतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ।।३७

(ढाल) प्रदान किया ।२४। क्षीरोदक समुद्र ने उनको निर्मल मोतियों का हार, दो उज्ज्वल वस्त्र, सुन्दर चूडामणि, दिव्य कुण्डल और कंगन दिये ।२५। इसके अतिरिक्त अर्द्धचन्द्र (स्वेतवैना) सब भुजाओं में बाजूबंध अत्यन्त सुन्दर पाजेब और एक अनुपम कंठ का आभूषण तथा संपूर्ण अंगुलियों में सुन्दर अँगूठियां दीं ।२६। अत्यन्त निर्मल परशु अनेक प्रकार के अस्त्र और जो किसी से न कट सके ऐसा कवच विश्वकर्मा जी ने उनको दिया ।२७। और समुद्र ने नवीन खिले हुए कमलपुष्पों की माला कंठ के लिये, और सिर पर धारण करने के लिये और दूसरी शोभायमान माला दी ।२८। हिमालय ने उनको वाहन सिंह और अनेक रत्न दिये । कुबेर ने उनको सुरापूर्ण पानपात्र दिया ।२९। जो इस पृथ्वी को धारण कर रहे हैं, उन सर्व नागेश अनन्त ने उन देवी को महामणि से विभूषित नागहार दिया ।३०। अन्यान्य देवताओं ने भी उनको अनेक प्रकार से अलंकार और शस्त्र दिये । इस भाँति उनके द्वारा सन्मानित होकर देवी अट्टहास के सहित बार-बार गर्जना करने लगी ।३१। उनके उस घोर गर्जन से संपूर्ण आकाशमण्डल भर गया और फिर आकाश से एक असंभव और बडा भारी प्रतिशब्द हुआ ।३२। उससे संपूर्ण लोक क्षुब्ध हुए अर्थात् डगमगा गये सब समुद्र काँप गये पृथ्वी हिलने लगी और संपूर्ण पर्वत भी चलायमान हो गये ।३३। तब देवता उन सिंहवाहिनी भगवती के सामने प्रसन्नता से जय जय शब्द कर उठे । मुनिगण भक्ति नम्र शरीर होकर उनकी स्तुति करने लगे ।३४। संपूर्ण त्रैलोक्य को इस प्रकार संचलित हुआ देखकर असुरगण सब सेना को सजाकर हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर उठ खड़े हुए ।३५। "आः ! यह क्या होता है ! " क्रोध से इस प्रकार कह संपूर्ण असुरों को साथ लिये महिषासुर उस शब्द की ओर दौडा ।३६। दौड़कर उस महिषासुर ने देखा कि, वह देवी अपनी प्रभा से तीनों लोक को व्याप्त करके स्थित हैं । और जो अपने चरण के आक्रमण से पृथ्वी को दबा रही हैं, मुकुट से आकाश को छू रही हैं ।३७। धनुष की प्रत्यंचा की टंकार से

क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् । दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद्व्याप्य संस्थिताम् ।।३८
ततः प्रववृत्ते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् । शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ।।३९
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः । युयुधे चामरश्चान्यश्चतुरङ्गबलान्वितः ।।४०
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः । अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ।।४१
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः । अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे ।।४२
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैरुग्रदर्शनः । वृतो रथानां कोटचा च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।।४३
बिडालाख्यो महादैत्यः पञ्चाशद्भिरथायुतैः । युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ।।४४
वृतः कालो रथानां च रणे पञ्चाशतायुतैः । युयुधे संयुगे तत्र तावद्भिः परिवारितः ।।४५
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः । युयुधः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ।।४६
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा । हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ।।४७
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा । युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ।।४८
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथा परे । देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।।४९
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका । लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ।।५०
अनायस्ताननना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः । मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ।।५१
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी । चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ।।५२

संपूर्ण पाताल कंपायमान हो रहा है, और देवी हजार भुजाओं से समस्त दिशाओं को आच्छादन करके स्थिति करती हैं ।३८। इसके बाद उन देवी के संग असुरों का युद्ध आरंभ हुआ, उस युद्ध में छूटे हुए बहुत प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से आकाश प्रकाशित हो गया ।३९। महिषासुर का चिक्षुर नामक सेनापति महासुर युद्ध करने लगा । चतुरांगिनी सेना से युक्त चामर नामक असुर अनुगामी सेना के सहित मिलकर युद्ध करने लगा ।४०। छः अयुत अर्थात् साठ हजार रथ लेकर उदग्र नामक महाअसुर युद्ध करने लगा । महाहनुनामक असुर हजार अयुत अर्थात् एक करोड रथ ले जाकर लड़ने लगा ।४१। असिलोम नामक महा असुर पांच करोड रथ सेना से रथ लेकर युद्ध करने लगा । बाष्कलनामक महाअसुर साठ हजार रथ लेकर युद्ध करने लगा ।४२। और अनेक हजार हाथी घोड़ों से युक्त होकर परिवारित नामक महाअसुर उस युद्ध क्षेत्र में करोड़ रथों के सहित युद्ध करने लगा ।४३। बिडाल नामक महाअसुर पांच लाख रथों को लेकर उस रणस्थल में युद्ध करने लगा ।४४। और इतने ही रथों को लेकर महासेना के साथ कालनामक दैत्य युद्ध करने लगा ।४५। और अन्यान्य अनेक महासुर रणस्थल में अयुत अयुत रथ हाथी और घोड़ों से वेष्टित होकर उन देवी के संग युद्ध करने लगे ।४६। करोड करोड हजार रथ हाथी और घोड़ों से वेष्टित होकर महिषासुर उस युद्ध में गया ।४७। तब असुरगण तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मुसल, खड्ग, फरसा और पट्टिश द्वारा देवी के संग युद्ध करने लगे ।४८। किसी ने शक्ति चलाई, किसी ने पाश और कोई खड्ग प्रहार से उन देवी को हनन करने में उद्यत हुआ ।४९। फिर उन देवी ने अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करके उनके अस्त्र-शस्त्र लीलापूर्वक ही काट डाले ।५०। उस काल प्रसन्नवदना देवी का देवता और ऋषिगण स्तवन करने लगे । अनन्तर देवी असुरों के देह में अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करने लगी ।५१। देवी का वह वाहन केसरी भी केसर कंपित करके वन में अग्नि के समान उस असुर सैन्य में

निश्वासान्मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका । त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ।।५३
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः । नाशयन्तोऽसुरगणान्देवीशक्त्युपबृंहिताः ।।५४
अवादयन्त पटहान्गणाः शङ्खांस्तथापरे । मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन्युद्धमहोत्सवे ।।५५
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शरवृष्टिभिः । खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ।।५६
पातयामास चैवान्यान्घण्टास्वनविमोहितान् । असुरान्भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ।।५७
केचिद्द्विधाकृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे । विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ।।५८
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः । केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।।५९
निरन्तरशरौघेण कृत्ताः केचिद्रणांजिरे । शैलानुकारिणः प्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ।।६०
केषाञ्चिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे । शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ।।६१
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः । एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधाकृताः ।।६२
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः । कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः ।।६३

विचरण करने लगा ।५२। युद्ध करते-करते देवी ने जो निःश्वास छोड़े, उसके द्वारा शत सहस्रगण तत्काल उत्पन्न होकर असुरों से युद्ध करने लगे ।५३। देवी के प्रभाव से वर्धित होकर वह गण फरशा, भिन्दिपाल, असि और पट्टिश के द्वारा असुरों को हनन करने लगे ।५४। किसी किसी गण ने उस युद्धमहोत्सव में शंखनाद किया कोई कोई ढोल कोई कोई मृदंग बजाने लगा ।५५। अनन्तर देवी ने त्रिशूल, गदा, शर, वृष्टि और खड्गादि द्वारा शत-शत महा असुरों का विनाश किया ।५६। किसी को घंटे के शब्द से मोहित करके मारा और अन्य असुरों को पाश द्वारा बांधकर पृथ्वी में खींचा ।५७ किसी किसी को अपने खड्ग की तीक्ष्ण धार से दो खंड कर दिया और किसी किसी को गदा के प्रहार से ऐसा मारा कि, वह पृथ्वी में लोट गया ।५८। कोई कोई मुसल के द्वारा ताडित होकर अतिशय रुधिर को वमन करने लगा और कितने ही छाती में त्रिशूल द्वारा विदारित होकर पृथ्वी में गिर पड़े ।५९। कोई कोई शुद्धभूमि में देवी के बाण समूह से निरन्तर अर्थात् मध्यदेश हीन हुए । असुरों की सेना के साथ वाले देवशत्रुगण इस प्रकार प्राणत्याग करने लगे ।६०। किसी किसी असुर की भुजायें कट गई, किसी किसी की ग्रीवा छिन्न हो गई, अन्यान्य अनेक असुरों के मस्तक कट गये, कोई कोई बीच में कट गया ।६१। किसी महाअसुरों की जंघा कटकर पृथ्वी में गिर पड़ी । देवी ने किसी किसी की एक एक बाहु, अक्षि (आंख) और चरण विनष्ट कर डाला, किसी का मध्यदेश के दो टुकड़े कर दिया ।६२। कोई कोई मस्तक कटने से पृथ्वी में गिरकर फिर उठे, कोई कबन्ध[१] उत्कृष्ट ग्रहण करके देवी के संग युद्ध करने लगे ।६३। कितने ही कबन्ध बाजे की लय के अनुसार नाचने लगे और उस युद्ध में कितने बड़े-बड़े असुर, जिनके मस्तक कट गये थे, और कबन्ध रह गये

---

१. "नागानामयुतं तुरंङ्ग नियुतं साङ्गं रथानां शतम् ।
पत्तीनां दशकोटयो निपतिता एकः कबन्धो रणे ।।"

अर्थात् अयुत (१००००) हाथी, नियुत (१०००००) घोड़े, डेढ़ सौ रथ और दश करोड़ पैदलों के निहत होने पर युद्ध में एक कबन्ध उठता है ।

ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः। कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः।।६४
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः । रुधिरौघविलुप्ताङ्गाः सङ्ग्रामे लोमहर्षणे ।।६५
पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा । अगम्या साऽभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः।।६६
शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र विसुस्रुवुः । मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ।।६७
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका । निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ।।६८
स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः । शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ।।६९
देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः । यथैनां तुष्टुवुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ।।७०

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सार्वणिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये एकोनाशीतितमोऽध्यायः ।७९।

अथाशीतितमोऽध्यायः

महिषासुरवधवर्णनम्

ऋषिरुवाच

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः । सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ।।१
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः । यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ।।२
तस्य च्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् । जघान तुरगान्बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ।।३
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् । विव्याध चैनं गात्रेषु च्छिन्नधन्वानमाशुगः ।।४

थे, वह हाथों में खड्ग, शक्ति और दोनों ओर धारवाली तलवार लेकर ।६४। देवी से 'ठहरो ठहरो' इस प्रकार कहने लगे। जिस स्थान में यह लोमहर्षण महासंग्राम हुआ, वह स्थान उन गिरे हुए रथ, हाथी, घोड़े और असुरों के द्वारा अगम्य हो गया अर्थात् ऐसा हो गया कि, जिसमें कोई जा न सके ।६५-६६। और वहाँ शीघ्र ही उस रण के मध्य में असुरों की सेना के हांथी, घोडे, असुर और इनके रुधिरसमूह से बड़ी नदियाँ बहने लगीं ।६७। अग्नि जिस प्रकार तृण काष्ठ के समूह को क्षण भर में भस्म करती है, ऐसे ही अम्बिका देवी ने उन असुरों के महासैन्य को क्षणमात्र में क्षय किया ।६८। देवी का वाहन सिंह भी बड़ा नाद करता हुआ अपने सटाके बालों को कँपाता हुआ अत्यन्त क्रोध से सब असुरों के प्राण हरण करने लगा ।६९। और असुरों के शरीरों में से मानों प्राणों ही को ढूँढने लगा। और देवी के सब गणों ने भी उन महा असुरों के संग ऐसा किया कि, जिससे स्वर्गवासी देवता अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उनके ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे ।७०

श्रीमार्कण्डेयपुराण में देवीमाहत्म्य नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।७९।

अध्याय ८०

महिषासुर वध नामक वर्णन

ऋषि बोले—उस सब सेना को निहत हुआ देखकर सेनापति महासुर चिक्षुर युद्ध करने के लिए क्रोध से अम्बिका के निकट आया ।१। जलधर जिस प्रकार सुमेरु पर्वत के शृंग में जल की वर्षा करते है, वह असुर भी इसी प्रकार देवी के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा ।२। फिर देवी ने लीलापूर्वक ही उसके बाणों को छेदन करके, रथ के घोड़े और सारथी को बाणों से मार डाला ।३। देवी ने उसी समय फिर

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥५
सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि । आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥६
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन । ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥७
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः । जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥८
दृष्ट्वा तदा पतच्छूलं देवीशूलममुञ्चत । तेन तच्छतधा नीतं शूलं स च महासुरः ॥९
हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ । आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥१०
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिकाद्रुतम् । हुङ्काराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥११
भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः । चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥१२
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुभान्तरे स्थितः । बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१३
युध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ । युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥१४
ततो वेगात्खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा । करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥१५
उदग्रश्चरणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः । दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥१६
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् । बाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥१७

उसका धनुष और अत्यन्त ऊंची ध्वजा काटकर उस टूटे हुए धनुषवाले चिक्षुर का शरीर मारे बाणों के बींध डाला ।४। फिर जब उसका धनुष कट गया, रथ टूट गया, तथा घोड़े और सारथी मर गये । तब वह असुर अपनी ढाल तलवार लेकर देवी की ओर धावमान हुआ ।५। और अत्यन्त वेग से अपनी पैनी धारवाली तलवार के द्वारा सिंह के मस्तक में आघात करके देवी के भी बांये हाथ में आघात किया ।६। हे नृपनन्दन ! उस असुर की वह तलवार देवी के हाथ का स्पर्श होते ही टूट गई । फिर क्रोधसहित लाल लाल नेत्र किये उस महाअसुर ने शूल ग्रहण करके ।७। उसने उसे भद्रकालीपर फेंका । तब देवी ने उस त्रिशूल को तेज से जाज्वल्यमान और आकाश से गिरते हुए दूसरे सूर्यमण्डल के ।८। समान देखकर अपना शूल चढ़ाया । उस देवी के चलाये शूल ने असुर के चलाये हुए शूल के शतखंड करके महाअसुर चिक्षुर के भी शत खंड कर डाले ।९। महिषासुर का सेनापति वह महावीर्यवान् चिक्षुर नामक असुर जब मारा गया, तब देवताओं का शत्रु चामर नामक असुर हाथी पर चढ़कर युद्धार्थ देवी के सन्मुख आया ।१०। फिर उस महाअसुर ने देवीको लक्ष्य करके शक्ति छोड़ी किंतु वह शक्ति देवी के हुंकार शब्द से अभिहत और प्रभाहीन होकर पृथ्वी में गिर गई ।११। अपनी शक्ति को टूटकर गिरता हुआ देखकर असुर ने क्रोधपूर्वक शूल चलाया पर देवी ने अपने बाणों से उस शूल का भी छेदन किया ।१२। अनन्तर देवी का वाहन सिंह उछलकर गज के मस्तक पर चढ गया और हाथी की पीठ पर बैठे हुए उस देवशत्रु असुर से बाहुयुद्ध करने लगा ।१३। सिंह और चामरासुर दोनों युद्ध करते-करते उस हाथी की पीठ से नीचे गिरे और परस्पर अत्यन्त क्रोधित होकर दारुण प्रहारों के द्वारा युद्ध करने लगे ।१४। अनन्तर कुछ कालोपरान्त ही सिंह ने आकाश में उछल और फिर वहाँ से पृथ्वी में गिरकर अपने पंजों के प्रहार द्वारा चामर असुर के मस्तक को देह से पृथक् कर दिया ।१५। देवी ने उग्रनामक असुर का पत्थर और वृक्षों की वृष्टि करके मार डाला । दाँत और घूँसों के प्रहार से कराल नामक असुर का विनाश किया ।१६। क्रोध में भरी हुई देवी ने गदापात द्वारा उद्धत नामक असुर को चूर्ण कर डाला । फिर बाष्कल नामक असुर को भिंदिपाल से तथा अन्धक

उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् । त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥१८
बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः । दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥
कालं च कालदण्डेन कालरात्रिरपातयत् ॥१९
"उग्रदर्शनमत्युग्रैः खड्गपातैरताडयत् । असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सा रणोत्सवे ॥
गणैः सिंहेन देव्या च जयक्ष्वेडा कृतोत्सवैः" ॥२०
एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः । माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान्गणान् ॥२१
कांश्चित्तुण्डप्रहारेण क्षुरक्षेपैस्तथापरान् । लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान् ॥२२
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च । निश्वासपवनेनान्यान्पातयामास भूतले ॥२३
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः । सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ॥२४
सोऽपि कोपान्महावीर्यः क्षुरक्षुण्णमहीतलः । शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चैश्चिक्षेप च ननाद च ॥२५
वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत । लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥२६
धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः । श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥२७
इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् । दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥२८
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् । तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥२९
ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः । छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥३०

नामक दोनों असुरों को बाणों से विनाश किया।१७। त्रिनेत्रा परमेश्वरी देवी ने त्रिशूल से उग्रास्य, उग्रवीर्य और महाहनुनामक तीन असुरों का संहार किया।१८। असिद्वारा असुरा का मस्तक देह से काटकर गिरा दिया। दुर्धर और दुर्मुख नामक दोनों असुरों को बाणों के द्वारा यमालय में भेज दिया। और कालरात्रि ने काल असुर को कालदण्ड में नष्ट कर गिरा दिया।१९। और उग्रदर्शन को बड़े उग्र खड्गपात से ताडन किया, और असिलोमा को असि द्वारा युद्धस्थल में नष्ट कर दिया, और गणों ने तथा सिंह ने जयपूर्वक सिंहनाद किया।२०। इस प्रकार से अपनी सेना को क्षय होता हुआ देख महिषासुर अपना महिषरूप धारण कर देवी के उन गणों को भय दिखाने लगा।२१। किसी को मुख के प्रहार द्वारा किसी को खुर के प्रहार द्वारा किसी को पूंछ के प्रहार द्वारा और किसी किसी को सींगों से विदारण करने लगा।२२। किसी को वेगद्वारा, किसी को गर्जना द्वारा, किसी को भ्रमणद्वारा और किसी को श्वास की पवन से मारकर भूमि में गिरा दिया।२३। इस प्रकार प्रमथसैन्य अर्थात् देवी के गणों को गिराकर वह असुर महादेवी के सिंह को मारने की इच्छा से दौडा, तब अम्बिका कुपित हुई।२४। महावीर्यवान् महिषासुर भी अत्यन्त क्रोधित हो खुरों से पृथ्वी खोदता हुआ दोनों सींगों से संपूर्ण ऊंचे पर्वतों को फेंककर गर्जना करने लगा।२५। और उसके वेगसहित भ्रमण करने पर खुदी हुई भूमि मृदुल हो गई तथा पूँछ से ताडित समुद्र चारों ओर फैलने लगा।२६। कंपायमान सींगों से फाडेहुए मेघों के टुकडे हो गये और इसके श्वास की पवन द्वारा सैकड़ों पर्वत आकाश से गिर पड़े।२७। इस प्रकार भरे हुए असुर को निकट आता देखकर चण्डिका देवी ने भी कुपित हो उसी समय उसके मारने की इच्छा की।२८। फिर देवी ने पाश फेंककर उस महा असुर को बांध लिया और उस महिषासुर ने भी उस युद्ध क्षेत्र में अपना महिषरूप त्याग।२९। तत्काल सिंहरूप धारण किया अनन्तर ज्योंही अम्बिका देवी उसका मस्तक काटने में उद्यत

तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः । तं खड्गचर्मणा सार्धं ततःसोऽभून्महागजः ।।३१
करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च । कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ।।३२
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुराश्रितः । तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ।।३३
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् । पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ।।३४
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः । विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ।।३५
सा च तान्प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः । उवाच तं मदोद्भूतमुखरागाकुलाक्षरम् ।।३६

देव्युवाच

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम् । मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ।।३७

ऋषिरुवाच

एवमुक्त्वा समुत्पत्य सारूढा तं महासुरम् । पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ।।३८
ततः सोऽपि पदाक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः । अर्द्धनिष्क्रान्त एवासीद्देव्या वीर्येण संवृतः ।।३९
अर्द्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः । तया महासिना देव्या शिरश्छित्वा निपातितः ।।४०
एवं स महिषो नाम ससैन्यः ससुहृद्गणः । त्रैलोक्यं मोहयित्वा तु तया देव्या विनाशितः ।।४१

हुई, तब वह खड्ग हाथ में लिये पुरुष रूप में दिखाई देने लगा ।३०। इसके उपरान्त देवी ने बाणों से ढाल और तलवार के सहित उस पुरुष को छेदन कर डाली, तब वह अत्यन्त बड़े हाथी का रूप धारण करके सूंड से देवी के वाहन महासिंह को खैंचता हुआ गर्जने लगा । तब देवी ने खड्ग से उस सिंह को खैंचते हुए हाथी की सूंड काट डाली ।३१-३२। अनन्तर महा असुर पुनर्वार महिषरूप धारण करके पूर्वोक्त प्रकार से सचराचर त्रैलोक्य को फिर क्षोभित (दुःखित) करने लगा ।३३। इसके पीछे जगत् की माता चण्डिका कुपित होकर उत्तम मधु पीने लगी और लाल नेत्र किये बारंबार हँसने लगी ।३४। तब वह बल, वीर्य, मतवाला असुर भी गर्जता हुआ दोनों सीगों के द्वारा चण्डिका देवी के ऊपर पर्वत फेंकने लगा ।३५। देवी चण्डिका अपने बाणों के द्वारा उसके चलाये सब पर्वतों को चूर्ण करके उस असुर से कहने लगी । किन्तु उस समय मद्य पीने के कारण चण्डिका वदन रक्तवर्ण हो गया और समस्त अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण नहीं हुआ ।३६

देवी बोली—रे मूढ ! जब तक मैं मधुपान करती हूँ, तब तक तू 'गर्ज ले गर्ज ले' मेरे द्वारा तुझको शीघ्र विनाश करने पर देवतागण इसी स्थान में गर्जना करेंगे ।३७

ऋषि बोले—देवी इस प्रकार कह फिर उछलकर उस महा असुर के ऊभर चढ गई और उसको अपने पैरों से दबाकर उसके कंठ में त्रिशूल से छेदन करने लगी ।३८। अनन्तर वह असुर भी देवी के पैरों से दबने के कारण देवी के पराक्रम के सम्मुख अस्त हो गया और उसके मुख की कान्ति आधी रह गई ।३९। तदनन्तर आधी कांतिवाले लड़ते हुए उस महा असुर का देवी ने उसे महाअसि के द्वारा मस्तक काटकर विनाश किया ।४०। इस प्रकार से वह महिषासुर अपनी सेना और सुहृद्गणों के सहित त्रिलोकी को मोहित कर अन्त में देवी के हाथ से निहत हुआ ।४१। उस समय महिषासुर के मरने पर त्रिलोकी के

त्रैलोक्यस्थैस्तदा भूतैर्महिषे विनिपातिते । जयेत्युक्तं ततः सर्वैः सदेवासुरमानवैः ।।४२
ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् । प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ।।४३
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।।४४
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नामाशीतितमोऽध्यायः ।८०।

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषिरुवाच

ततः सुरगणाः सर्वे देव्या इन्द्रपुरोगमाः । स्तुतिमारेभिरे कर्त्तुं निहते महिषासुरे ।।१
शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ।।२

देवा ऊचुः

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ।।३

देवता, मनुष्य और पातालवासी बलि आदि असुरों ने देवी का जय जयकार किया ।४२। तदनन्तर देवी ने हाहाकार करती हुई दैत्यों की सब सेना को नाश कर दिया जिससे कि, सब देवता गण अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुए ।४३। देवता और दिव्यमहर्षिगण देवी की स्तुति करने लगे । गन्धर्वपति तथा गण गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगी ।४४

श्रीमार्कण्डेयपुराण में देवीमाहात्म्य में महिषासुर वध वर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ।८०।

अध्याय ८१

देवीमाहात्म्य का वर्णन

ऋषि बोले—उस समय इन्द्र आदि सब देवता महिषासुर के मरने से प्रसन्न हो देवी की स्तुति करने लगे ।१। जब भगवती देवी ने देवताओं के बैरी अत्यन्त वीर्यवान् उस दुष्ट महिषासुर का वध किया, तब इन्द्र इत्यादि देवताओं के समूह कि, जिनके शोभायमान शरीर अति प्रसन्नता के कारण पुलकित हो गये थे, अपने मस्तक, कंठ और कंधों को झुकाकर नमस्कार पूर्वक नाना प्रकार के वचनों से दुर्गा का स्तवन करने लगे ।२

देवता बोले—जिन्होंने अपने प्रभाव से इस चराचर जगत् को विस्तारित किया है, संपूर्ण देवताओं के शक्तिसमूह से मिलकर जो मूर्त्तिरूप में परिणत हुई है और संपूर्ण देवता तथा महर्षियों की पूजनीय हैं हम भक्तिसहित उन अम्बिकादेवी को प्रणाम करते हैं वह हमारा मंगल करें ।३। भगवान् अनन्त देव,

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु॥४
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥५
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारिभूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु॥६
हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतमव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या॥७
यस्या समस्तसुरताः समुदीरणेन तृप्तिं प्रयान्ति सकलेषु मखेषु देवि।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतुरुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च॥८
या मुक्तिहेतुरविचिन्त्य महाव्रता त्वमभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि॥९
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय वार्त्तासि सर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री॥१०

ब्रह्मा और महादेव जिनके प्रभाव और बल का वर्णन करने में समर्थ नहीं होते वह चण्डिका देवी सम्पूर्ण जगत् का पालन करने के लिये निमित्त तथा अमंगल और भय विनाश के निमित्त इच्छा करें।४। जो पुण्यवान् मनुष्यों के घर में सम्पदास्वरूप हैं, जो पापियों के घर में अलक्ष्मीस्वरूप हैं, जो समस्त पढ़ने से निर्मल अन्तःकरण वाले के हृदय में बुद्धिस्वरूप हैं जो श्रेष्ठ आचरणवालों की श्रद्धास्वरूप और जो सत्कुलोत्पन्न मनुष्यों की लज्जास्वरूप हैं, हम उन्हीं तुमको नमस्कार करते हैं, हे देवि ! तुम विश्व का पालन करो।५। तुम्हारे इस प्रकार अचिन्त्यरूप का वर्णन करने में हम कैसे समर्थ हों। हे देवि ! तुम्हारा असुरक्षयकारी अपरिमित वीर्य तथा असुर और देवताओं के प्रति युद्ध क्षेत्र में वह सब अति अद्भुत व्यवहार हम किस भाँति से वर्णन करें।६। हे देवि ! तुम विकाररहित आद्याप्रकृति हो तथा सत्व, रज और तमोगुणात्मिका होने पर भी जगत् का हेतु हो, राग द्वेषादि युक्त विष्णु, महादेव आदि भी तुम्हारा प्रकृत तत्त्व नहीं जानते, हे देवि ! तुम अपार और सब पदार्थों की आश्रयस्वरूप हो, यह जगत् तुम्हारा ही अंशभूत है।७। हे देवी ! संपूर्ण यज्ञों में ही तुम्हारा नाम उच्चारण करने से समस्त देवता तृप्तिलाभ करते हैं, क्योंकि तुम्हीं देवता और ऋषियों को तृप्तिकारक स्वाहा और स्वधारूप कहकर उच्चारित होती हो।८। हे देवि ! तुम्हारी बृहत् उपासना का विषय अचिन्त्य है और जितेन्द्रिय तत्त्वसार तथा दोषहीन मोक्षार्थी मुनिगण तुमको मुक्ति का कारण कहकर सेवन करते हैं, हे देवि ! अत एव तुम्हीं भगवती सर्वोत्कृष्ट मोक्षविद्या हो।९। हे देवि ! तुम शब्दमय तीनों वेदस्वरूप हो और प्रणवयुक्त मनोहर पद पाठवाली ऋक्, यजु और सामवेद का आश्रयरूप हो, तुम्ही देवी सर्वैश्वर्ययुक्त हो, तुम्हीं संसार की जीवनरक्षा के निमित्त कृषिस्वरूप हो, हे देवि ! तुम्हीं संपूर्ण जगत् की विषम पीडा का विनाश करने वाली हो।१०। हे देवि ! तुम्हीं बुद्धिस्वरूप हो, क्योंकि तुम दुर्गम भवसागर में अद्वितीय नौकास्वरूप हो,

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥११
ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्ति कान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥१२
दृष्ट्वा तु देवि कुपितभृकुटीकरालमुद्यच्छशांकसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥१३
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेतन्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥१४
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति बन्धुवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥१५
धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्माण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादाल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥१६
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः, स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या, सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥१७

तुम्हीं कैटभ शत्रु के मारने वाले विष्णुभगवान् के हृदय में वास करने वाली लक्ष्मी हो और तुम्हीं शिवजी से अपने वामभाग में प्रतिष्ठा की गई गौरी हो।११। तथापि तुम्हारा मंद मंद मुसकुराता हुआ निर्मल, पूर्णचन्द्रमा के समान सुवर्णकान्ति और मनोहर मुख देखकर भी जो महिषासुर ने क्रोधित होकर अस्त्रप्रहार किया था, यही अत्यन्त आश्चर्य है, तात्पर्य यह है कि, तुम्हारा मुख संसार को मोहित करने वाला है, सो वह मोहित नहीं हुआ, इसलिए वह बड़ा ही दुष्ट था।१२। हे देवि ! क्रोध से युक्त और भृकुटियों से भीषण तथा उदय होते हुए पूर्णिमा के चन्द्र की सदृश, ऐसे तुम्हारे मुख को देखकर जो सद्यः ही महिषासुर ने प्राण नहीं छोड़े यह बड़ा ही अचंभा है, क्योंकि कुपित यमराज को देखकर कौन जीवित रह सकता है।१३। हे देवि ! तुम प्रसन्न होओ, तुम परमा अर्थात् लक्ष्मी हो और संसार का मंगल करने के लिये ही उत्पन्न होती हो, हे देवि ! तुम क्रोध करने पर संपूर्ण कुलों का नाश कर देती हो, यह अभी जाना गया क्योंकि महिषासुर की अत्यन्त बड़ी सेना और उसको तुमने विनाश किया।१४। हे देवि ! तुम प्रसन्न होकर जिनको अभ्युदय (कल्याण) प्रदान करती हो, वही देश में पूजित होते हैं, उनको ही धन और यश मिलता है, उनका ही धर्म नहीं घटता, वही धन्य और उनके ही पुत्र, स्त्री तथा सेवक उद्वेगहीन होते हैं।१५। हे देवि ! तुम्हारे ही प्रसाद से पुण्यशाली मनुष्य प्रतिदिन अत्यन्त आदर के सहित धर्मजनक कार्य करते हैं और मृत्यु के बाद तुम्हारे ही अनुग्रह से स्वर्ग में जाते हैं अत एव हे देवि ! तुम्हीं तीनों लोकों में फल प्रदान करती हो।१६। हे देवि ! तुम दुर्गत मनुष्यों के स्मरण करने से उनका भय हरण करती हो। और जो स्वस्थचित्त मनुष्य तुमको स्मरण करते हैं, तुम उनको अत्यंन्त मंगलजनक बुद्धि प्रदान करती हो हे दरिद्र दुःखभय हरने वाली ! तुम्हारे अतिरिक्त और किसका चित्त सबका उपकार करने के लिये सदा आर्द्र अर्थात् दया से कृपालु रहता है।१७। "इन सब असुरों के मरने से जगत् सुख लाभ करे और फिर वह

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
सङ्ग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु मत्वेति नूनमहितान्विनिहंसि देवि ।।१८
दृष्टचैव किं न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान्प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्वहितेषु साध्वी ।।१९
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्डयोग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ।।२०
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हंतृ हृतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ।।२१
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ।।२२
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन त्रातं त्वया समरमूर्द्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ।।२३

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके । घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ।।२४
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे । भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ।।२५

नरक के लिये बहुत कालतक पाप करे तो भी इस समय रणक्षेत्र में मरकर वह स्वर्ग में जाय" हे देवि ! तुम यही विचार कर निश्चय शत्रुओं को विनाश करती हो ।१८। केवल देखने मात्र से क्या तुम शत्रुओं को भस्म नहीं कर सकती हो ? किन्तु "शत्रुगण शस्त्र से पवित्र होकर स्वर्ग में जाँय" तुमने यही विचार कर शत्रुओं के ऊपर शस्त्र चलाया है । मरे हुए असुरों का भी उपकार करने के लिये जो तुम्हारी ऐसी मति है, वह अति साध्वी अर्थात् श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं ।१९। हे देवि ! खड्ग की उग्र प्रभा समूह के निकलने से और त्रिशूल के अग्रभाग की कान्तिसमूह से उन सब असुरों की दृष्टि जो विनाश को प्राप्त नहीं हुई, इसका कारण अन्य कुछ नहीं है, केवल तुम्हारे किरणों से शोभायमान चन्द्रखंड की सदृश मुख को देखने से उनके नेत्र अत्यन्त शीतल हो गये थे।२०। हे देवि ! तुम्हारा स्वभाव दुष्ट पुरुषों के दुराचार को नष्ट करने वाला है एवं तुम्हारा रूप तुलना रहित और अचिन्त्य है। हे देवि ! तुम्हारा वीर्य देवताओं का पराक्रम हरने वाले असुरों का नाशक है, इस प्रकार शत्रुओं के ऊपर भी तुम्हारी कृपा स्पष्ट प्रगट है।२१। हे देवि ! किसके संग तुम्हारे इस पराक्रम की तुलना हो सकती है? तुम्हारा रूप शत्रुओं को भयकारी और अत्यन्त मनोहर है। ऐसा रूप स्वर्ग, मर्त्य या पाताल में किसका है ! हे वरदे देवि ! तीनों भुवन के मध्य तुम्हारे ही चित्त में एक दया और समर में निष्ठुरता देखी जाती है और कहीं नहीं।२२। हे देवि ! तुमने शत्रु को मारकर त्रिभुवन की रक्षा की तथा रणक्षेत्र में उन शत्रुओं को मारकर स्वर्ग प्रदान किया और मदोद्धत असुरों से उत्पन्न हमारा भी भय दूर हुआ अत एव हे देवि ! तुमको नमस्कार है।२३

हे देवि ! हमारी शूल द्वारा रक्षा करो। हे अम्बिके ! हमारी खड्गद्वारा रक्षा करो ! हे देवि घंटा और धनुष की प्रत्यंचा टंकार से हमारी रक्षा करो।२४। हे चण्डिके ! हे ईश्वरी ! अपना शूल घुमाकर हमारी पूर्व

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते। यानि चात्यन्तघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥२६
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके । करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान्रक्ष सर्वतः ॥२७

ऋषिरुवाच

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः । अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥२८
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यधूपैः सुधूपिता । प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान्प्रणतान्सुरान् ॥२९

श्रीदेव्युवाच

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् । ददाम्यहमतिप्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता ॥३०
कर्त्तव्यमपरं यच्च दुष्करं तन्न विघ्नहे । इत्याकर्ण्य वचो देव्याः प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः ॥३१

देवा ऊचुः

भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते । यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ॥३२
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि । संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसीथाः परमापदः ॥३३
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने । तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ॥
वृद्धयेऽस्मत्प्रपन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥३४

में, पश्चिम में, दक्षिण और उत्तर में रक्षा करो ।२५। तुम्हारे जितने सौम्यरूप और जितने अत्यन्तभयंकर रूप त्रिभुवन में विचरण करते हैं, तुम उन सब से हमारी और पृथ्वी की रक्षा करो ।२६। हे अम्बिके ! तुम्हारे करपल्लव में खड्ग, शूल, गदादि जो अस्त्र रहते हैं, उन सब अस्त्रों से चारों ओर हमारी रक्षा करो ।२७

ऋषि बोले—देवताओं ने इस प्रकार उनकी स्तुति की और नन्दनवन में उत्पन्न हुए पुष्प, दिव्यगंधानुलेपन और दिव्यधूपद्वारा भक्तिसहित उन जगज्जननी का पूजन किया ।२८। उस काल वर देने की इच्छा से उनका मुखमण्डल अत्यन्त ही सुन्दर हो गया, तब वह सम्पूर्ण प्रणत देवताओं से कहने लगी ।२९

देवी बोली—हे त्रिदशगण ! तुम मुझसे अपना अभिलषित वर माँगो मैं तुम्हारे इस स्तव से सम्मानित हुई हूँ, मैं तुमको अत्यन्त प्रीति के सहित वर दूँगी ।३०। जो इस महिषासुर वध के उपरान्त कर्तव्य है वह हम नहीं जानती हैं जो कुछ तुमको दुस्साध्य हो वह हमसे कहो यह देवी के वचन सुनकर देवता कहने लगे ।३१

देवता बोले—हे भगवती ! जब तुमने हमारे इस प्रबल शत्रु महिषासुर का वध किया तो आपने हमारा समस्त कार्य ही संपादन किया है, अब कुछ अवशिष्ट नहीं है ।३२। और यदि तुम हमको वर देना ही चाहती हो तो यह वर दो कि हम जब तुमको स्मरण करें, तभी तुम हमारी परम आपदा नष्ट करो ।३३। हे अमलानने ! जो मनुष्य हमारे किये इस स्तव द्वारा तुम्हारी स्तुति करे, उनको तुम हमारे ऊपर प्रसन्न होकर ज्ञान की अधिकता और ऐश्वर्य के सहित धन, द्वारा इत्यादि सम्पत्ति की वृद्धि करना । क्योंकि हे अम्बिके ! तुम सब वस्तु के देने में समर्थ हो ।३४।

ऋषिरुवाच

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथात्मनः । तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३५
इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा । देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥३६
पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत् । वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥३७
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी । तच्छृणुष्व मया ख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥३८

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये एकाशीतितमोऽध्यायः ।८१।

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषिरुवाच

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः । त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥१
तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् । कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥२
तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च । अन्येषां चाधिकारान्स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥३
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः । महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥४

ऋषि बोले—हे नृप ! देवताओं से जगत् के लिये और अपने अर्थ प्रसन्न की हुई भद्रकाली यह कहकर कि "ऐसा ही होगा" अन्तर्धान हो गई ।३५। हे भूपते ! देवताओं के शरीर से तीनों जगत् का हित करने के लिये जिस प्रकार देवी पूर्व काल में उत्पन्न हुई थी, वह तुमसे कहा ।३६। अब पार्वती के देह से जिस प्रकार उत्पन्न होकर शुंभ, निशुंभ और अन्यान्य दुष्ट दैत्यों का नाश ।३७। लोकों की रक्षा और देवताओं का उपकार किया वह तुमसे यथावत् कहता हूँ सुनो ।३८

श्रीमार्कण्डेयपुराण में देवीमाहत्म्य वर्णन नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ।८१।

अध्याय ८२

देवीमाहात्म्य-वर्णन

ऋषि बोले—पूर्वकाल में शुंभ और निशुंभ नामक दो असुरों ने अपने घमंड के बल का आश्रय पाकर शचीपति इन्द्र के त्रैलोक्य का राज्य और संपूर्ण यज्ञभाग हरण किया।१। वह शुंभ और निशुंभ सूर्य, चन्द्र, कुबेर और वरुण अधिकार का कार्य स्वयं करने लगे और वही पवन का अधिकार तथा अग्नि का कार्य करने लगे और अन्य सब का भी अधिकार उन्होंने अपने ही हाथ में लिया।२। अनन्तर उन दोनों महाअसुरों के द्वारा हृताधिकार तिरस्कार किये राज्यहीन, पराजित।३। और निकाले हुए देवता उन अपराजिता देवी को स्मरण करने लगे।४। "विपद् काल में मुझको स्मरण करने में तत्काल तुम्हारी परम आपदा

तयास्माकं वरो दत्तो यथापत्सु स्मृताखिलाः । भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥५
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् । जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥६

देवा ऊचुः

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥७
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥८
ज्योत्स्नायै चन्द्ररूपिण्यै सुखायै सततं नमः । कल्याण्यै प्रणतामृध्यै सिद्धयै कूर्म्यै नमो नमः ॥९
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः । दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ॥
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥१०
अतिसौम्यातिरौद्रायै नमस्तस्यै नमो नमः । नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥११
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१३
या देवी सर्वभूतेष बुद्धिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१५
या देव सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६

नष्ट करूँगी'' पूर्व में हमको इस प्रकार देवी ने वर दिया है इस समय घोर विपद् उपस्थित है अत एव सम्यक् रीति से उनकी ही शरण लेनी चाहिए ।५। देवता इस प्रकार बुद्धि स्थिर कर पर्वतों में शिरोमणि हिमालय पर्वत में जाय उन विष्णुमाया की स्तुति करने लगे ।६

देवता बोले—देवी को नमस्कार है, महा देवी को नमस्कार है, शिवा को सर्वदा नमस्कार है, प्रकृति को नमस्कार है, भद्रा को नमस्कार है, हम प्रणत होकर उन देवी को नमस्कार करते हैं ।७। रौद्रा को नमस्कार है, नित्या, गौरी और धात्री को बार बार नमस्कार है । जगत् की प्रतिष्ठा और कृत्या को नमस्कार है ।८। उन प्रकाशरूप, चन्द्ररूप और परमानन्द रूप देवी को सदा नमस्कार करते हैं। कल्याणी और बुद्धिरूपा देवी को नमस्कार है, सिद्धिरूपा देवी को बार बार नमस्कार करते हैं ।९। नैऋतिस्वरूपा देवी को नमस्कार है । राजाओं के घर में लक्ष्मीरूपा देवी को नमस्कार है, शर्वाणीस्वरूप तुमको नमस्कार है नमस्कार है । दुर्गा, दुर्गपारा, सारा, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रास्वरूप देवी को हम सदा नमस्कार करते हैं ।१०। जो अत्यन्त सौम्य और अत्यन्त रौद्र है, उन देवी को हम अति विनयसहित बार बार नमस्कार करते हैं । जगत् की प्रतिष्ठारूप देवी को नमस्कार है, कृतिस्वरूप अर्थात् कार्यरूपिणी देवी को नमस्कार है ।११। जो देवी संपूर्ण प्राणियों में विष्णुमाया नाम से कहा जाता है, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।१२। जो देवी सब प्राणियों में चेतना नाम से कही जाती हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।१३। जो देवी सब प्राणियों में बुद्धिरूप से स्थित है, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।१४। जो देवी सब प्राणियों में निद्रारूप से अवस्थित हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।१५। जो देवी सब प्राणियों में क्षुधारूप से अवस्थान करती हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।१६। जो देवी संपूर्ण भूत में छायारूप से स्थिति करती हैं उनको

या देवी सर्वभूतेषु च्छायारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।१७
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।१८
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।१९
ये देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२०
ये देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२१
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२२
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२३
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्मै नमो नमः ।।२४
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२५
ये देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२६
या देवी सर्वभूतेषु धृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२७
ये देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।२८
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।३०
या देवी सर्वभूतेषु नीतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।३१
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।३२

नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार । ।१७। जो देवी सब प्राणियों में शक्तिरूप से विराजमान हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।१८। जो देवी सब प्राणियों में तृष्णारूप से वास करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ।१९। जो देवी सब प्राणियों में शान्तिरूप से स्थित हैं उनको नमस्कार। नमस्कार । नमस्कार ।२०। जो देवी सब प्राणियों में जातिरूप से विराजित हैं उनको नमस्कार । नमस्कार। नमस्कार ।२१। जो देवी सब प्राणियों में लज्जारूप से निवास करती है, उनको नमस्कार । नमस्कार। नमस्कार ।२२। जो देवी सब प्राणियों में शान्तिरूप से स्थित हैं उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ।२३। जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।२४। जो देवी सब प्राणियों में कान्तिरूप से अधिष्ठान करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ।२५। जो देवी सब प्राणियों में लक्ष्मीरूप से वास करती हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।२६। जो देवी सब प्राणियों में धृतिरूप से स्थित हैं उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।२७। जो देवी सब प्राणियों में वृत्तिरूप से विराजमान हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ।२८। जो देवी सब प्राणियों में स्मृतिरूप से स्थित हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ।२९। जो देवी सब प्राणियों में दयारूप से अवस्थान करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ।३०। जो देवी सब प्राणियों में नीतिरूप से अधिष्ठित हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।३१। जो देवी सब प्राणियों में तुष्टिरूप से अवस्थान करती हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।३२।

या देवी सर्वभूतेषु पुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।३३
ये देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।३४
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।३५
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानामखिलेषु या । भूतेषु सततं व्याप्त्यै तस्यै देव्यै नमो नमः ।।३६
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।३७

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेशदिनेशसेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ।।३८
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ।।३९

ऋषिरुवाच

एवं स्तवाभियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती । स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ।।४०
साऽब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का । शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ।।४१
स्तोत्रं ममैतत्क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः । देवैः समस्तैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ।।४२
शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका । कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ।।४३
तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती । कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ।।४४

जो देवी सब प्राणियों में वास करती हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।३३। जो देवी सब प्राणियों में मातृरूप से स्थित है, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।३४। जो देवी सब प्राणियों में भ्रान्तिरूप से अवस्थित हैं, उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।३५। जो देवी संपूर्ण इन्द्रियों की और सब प्राणियों की अधिष्ठात्री हैं तथा, जो सब प्राणियों में व्याप्तिरूप से विद्यमान हैं । उनको नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार । ३६। जो चैतन्यरूप से समस्त जगत् में व्याप्त होकर अवस्थित करती हैं, उन देवी को नमस्कार । नमस्कार । नमस्कार ।३७। पूर्वकाल में हमने अभीष्टलाभ करके जिनकी स्तुति की है, देवराज इन्द्र, शिव और सूर्य ने जिनकी सेवा की है और जो मंगल के समूह का कारण हैं, प्रचण्ड दैत्यों से पीड़ित होकर हम इस समय जिन ईश्वरी को नमस्कार करते हैं भक्ति नम्र शरीर होकर हमारे स्मरण करने पर जो तत्काल हमारी संपूर्ण विपद् नष्ट करती हैं, वह ईश्वरी देवी सब प्रकार मंगल करें और संपूर्ण विपत्तियों का नाश करें ।३८-३९

ऋषि बोले—हे नृपनन्दन ! देवतालोग इस प्रकार स्तुति करते थे इसी समय पार्वती देवी गंगाजल में स्नान करने के लिये जाने को उनके सन्मुख आई ।४०। वह सुन्दर भृकुटि से शोभित पार्वती देवताओं से बोली "तुम लोग किसकी स्तुति करते हो ?" उसी समय उन पार्वती के शरीर कोश से शिवा देवी ने उत्पन्न होकर कहा ।४१। "समर में निशुंभ के द्वारा हारे हुए फिर शुंभ के द्वारा निकाले हुए देवता एकत्र होकर मेरी ही स्तुति करते हैं" ।४२। अम्बिका उन पार्वती के शरीर से उत्पन्न हुई, इस कारण समस्त भुवन में वह "कौशिकी" नाम से कहीं गईहै ।४३। उन कौशिकी देवी के शरीर से निकल जाने पर पार्वती देवी ने कृष्णवर्ण धारण किया, तब से वह कालिका के नाम से विख्यात होकर हिमाचल में वास

ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् । ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ।।४५
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा। काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ।।४६
नैव तादृक्क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् । ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ।।४७
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा । सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान्द्रष्टुमर्हति ।।४८
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो । त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं तानि ते गृहे ।।४९
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् । पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ।।५०
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे । रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ।।५१
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् । किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ।।५२
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति । तथायं स्यन्दनवरो यः पुरासीत्प्रजापतेः ।।५३
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता । पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ।।५४
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः । वह्निश्चापि ददौ तुभ्यमग्निः शौचे च वाससी ।।५५
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते । स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ।।५६

ऋषिरुवाच

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः । प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरः ।।५७

करने लगी ।४४। फिर अम्बिका ने परममनोहर रूप धारण किया । अनन्तर शुंभ और निशुंभ असुर के भृत्य चण्ड और मुण्ड नामक दो असुरों ने उनका वह मनोहर रूप देखा ।४५। तब चण्ड और मुण्ड ने शुम्भासुर के समीप जाकर कहा—हे महाराज ! अत्यन्त मनोहर कोई स्त्री हिमालय पर्वत को शोभित करती हुई वास करती है ।४६। हे असुरेश्वर ! ऐसा उत्तम रूप कहीं किसी ने नहीं देखा, अत एव यह नारी कौन है ? ऐसा जानकर आप इस स्त्री को ग्रहण कीजिये ।४७। वह सुन्दर अंगवाली नारी स्त्रियों में रत्नरूप है । हे दैत्येन्द्र ! वह नारी अपने देह की कान्ति से संपूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करके वास कर रही है, उसको आपको देखना उचित है ।४८। हे प्रभो ! त्रैलोक्य में श्रेष्ठ मणि और श्रेष्ठ हाथी घोड़े इत्यादि जो सब रत्न हैं, वह इस समय समस्त ही आप के घर में शोभा पाते हैं ।४९। हाथियों में रत्न ऐरावत, मनोहर पारिजात वृक्ष और उच्चैःश्रवा घोड़ा इन्द्र के यहाँ से लाया गया ।५०। विधाता का रत्नस्वरूप जो अद्भुत हंसयुक्त विमान है, वह भी लाया जाकर आपके आँगन में रखा हुआ है ।५१। यह महापद्म नामक निधि भी जो कुबेर के निकट से लाई गई है, किञ्जल्किनी नामक बिना मुरझाये कमलों की माला समुद्र ने आपको अर्पण की है ।५२। वरुण का कांचनस्रावि नामक छत्र और यह जो श्रेष्ठ रथ पहले प्रजापति के निकट था, वह भी आपके घर में विद्यमान है ।५३। यम की मरणप्रदा जो शक्ति थी, हे ईश ! वह भी आपने हरण की है । और आपके भ्राता निशुंभ के यहाँ वरुण का पाश ।५४। और समुद्र में उत्पन्न हुए संपूर्ण रत्न हैं, अग्नि ने उनको वह्नि द्वारा पवित्र करके वस्त्र और उत्तरीय प्रदान किया है ।५५। हे दैत्येन्द्र ! इस प्रकार यह संपूर्ण रत्न आपने हरण किये हैं, अब इस स्त्रीरत्न कल्याणी को आप किसलिये ग्रहण नहीं करते हैं ।५६

ऋषि बोले—चण्ड और मुण्ड के इस प्रकार वचन सुनकर महासुर शुंभ ने सुग्रीवनामक दूत को देवी के निकट भेजा ।५७

शुम्भ उवाच

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम । यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥५८
स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने । तां च देवीं ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥५९

दूत उवाच

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः । दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥६०
अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु । निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥६१
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः । यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक्पृथक् ॥६२
त्रैलोक्ये वररत्नानि ममवश्यान्यशेषतः । तथैव गजरत्नं च हृतं देवेन्द्रवाहनम् ॥६३
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः । उच्चैःश्रवससंज्ञं तु प्रणिपत्य समर्पितम् ॥६४
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च । रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥६५
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् । सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥६६
मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् । भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः ॥६७
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् । एतद्बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥६८

ऋषिरुवाच

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ । दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥६९

शुंभ ने कहा—"तुम जाकर मेरे वचनानुसार उससे इस प्रकार कहना और जिस भाँति वह अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र यहाँ आ जाय तुम वैसा ही कार्य करना।" ।५८। अत्यन्त शोभायमान पर्वत प्रदेश में जहाँ पार्वती स्थित थी, वही दूत उस स्थान में जाकर मधुर वचनों के द्वारा उनसे कहने लगा।५९

दूत बोला—हे देवि ! दैत्येश्वर शुंभ त्रैलोक्य के परमेश्वर हैं, उन्होंने ही तुम्हारे निकट मुझ को दूत बनाकर भेजा है, इसी कारण मैं इस स्थान में आया हूँ ।६०। समस्त देवताओं में उनकी आज्ञा अटल है, उन्होंने सब देवताओं को जीत लिया है, अब उन्होंने मुझसे जो कहा है, वह सुनो ।६१। उन्होंने कहा है, यह संपूर्ण त्रैलोक्य मेरा है, समस्त देवता भी मेरे वशीभूत और अनुगत हैं, मैं ही पृथक् पृथक् समस्त यज्ञभाग भोजन करता हूँ ।६२। और त्रिलोकी में जितने सुन्दर रत्न हैं, वह सब मेरे वश में हैं और संपूर्ण गजरत्न तथा इन्द्र का वाहन ऐरावत है, वह भी मैंने हर कर ले लिया है ।६३। और समुद्र के मथने से निकला हुआ जो उचैःश्रवा नामक अश्वरत्न है, उसको भी देवताओं ने प्रणामपूर्वक मुझे अर्पण किया है ।६४। अन्यान्य जो सब रत्न देवता, गंधर्व अथवा सर्पों के थे, हे शोभने ! इस समय वह सब मेरे ही हैं ।६५। हे देवि ! तुमको हम लोक में स्त्री रत्न समझते हैं अत एव तुम रत्नस्वरूप हो, तुम हमारे घर चलो, क्योंकि इस समय हम ही रत्नों के भोगने वाले हैं ।६६। हे चंचलकटाक्षवाली ! मुझे या मेरे बड़े पराक्रमी छोटे भाई निशुंभ को भजो, क्योंकि तुम रत्नस्वरूप हो ।६७। मेरा भजन करने से तुम अतुलनीय परमैश्वर्य को प्राप्त होगी यह सब बात बुद्धिपूर्वक विचार कर मेरा भजन करो ।६८

ऋषि बोले—दूत के इस प्रकार कहने पर जो इस जगत् को धारण कर रही हैं वह भगवती भद्रा

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चित्त्वयोदितम्। त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ।।७०
किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् । श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ।।७१
यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति । यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्त्ता भविष्यति ।।७२
तदा गच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः । मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ।।७३

दूत उवाच

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः । त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ।।७४
अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि । तिष्ठन्ति सम्मुखा देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ।।७५
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे । शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ।।७६
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः । केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ।।७७

श्रीदेव्युवाच

एवमेतद्बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान् । किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ।।७८
स त्वं गच्छ मयैवोक्तं यदेतत्सर्वमादृतः । तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ।।७९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।८२।

दुर्गा देवी गंभीर और गूढ भाव से कुछेक हँसकर कहने लगी ।६९। देवी बोली—हे दूत ! तुमने सत्य कहा, इस तुम्हारे कहने में कुछ भी मिथ्या नहीं है शुम्भ त्रैलोक्य के अधिपति और निशुंभ भी उनके ही समान हैं, इसमें सन्देह नहीं ।७०। किन्तु मैंने जो पूर्व में एक प्रतिज्ञा की है, उसको इस स्थल में कैसे मिथ्या करूँ ? मैंने अल्पबुद्धि के वश होकर जो प्रतिज्ञा की है, वह सुनो ।७१। "जो पुरुष मुझको युद्ध में जीत लेगा, जो मेरे अभिमान को तोड़ेगा और जो पुरुष संसार में मेरे समान बली होगा, वही मेरा स्वामी होगा" ।७२। अब महा असुर शुंभ वा निशुंभ आवें, उनमें जो समर्थ हो, वह मुझको जीतकर शीघ्र विवाह कर ले, विलम्ब का क्या प्रयोजन है ? ।७३

दूत बोला—हे देवि ! तुम अत्यन्त गर्वित हुई हो । मेरे निकट ऐसी बात मत कहो, तीनों लोक में शुंभ और निशुंभ के आगे कौन पुरुष ठहर सकता है ।७४। शुंभ अथवा निशुंभ की बात तो दूर रहे, उनके अनुचर अन्यान्य दैत्यों के सन्मुख देवता भी स्थिर नहीं रह सकते, फिर तुम अकेली स्त्री होकर किस प्रकार स्थिर रहोगी ।७५। इन्द्रादि देवतागण जिन शुम्भादि के सन्मुख खड़े नहीं रह सकते, तो तू स्त्री होकर उनसे किस प्रकार युद्ध करने जाओगी ।७६। अत एव मेरे वचनानुसार शुंभ-निशुंभ के समीप चलो और नहीं तो मैं तुम्हारे केश पकड़कर ले चलूंगा , जिससे तुम्हारा गौरव नष्ट हो जायेगा ।७७

देवी बोली—हे दूत ! शुंभ ऐसे ही बली और निशुंभ भी निःसन्देह अत्यन्त वीर्यवान् है, किन्तु क्या करूँ ? अल्पबुद्धि से पहले इस प्रतिज्ञा के विषय में मैंने विचार नहीं किया ।७८। वह तुम जाओ और मैंने जो कहा है वह सब आदरपूर्वक असुरेन्द्र शुंभ से कहो । फिर वह जो उचित समझेंगे, वह करेंगे ।७९

श्रीमार्कण्डेयपुराण में देवीमाहात्म्यवर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त ।८२।

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः (८६)

धूम्रलोचनवधवर्णनम्

ऋषिरुवाच

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः । समाचष्टे समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥१
तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः । सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥२
हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः । तामानय बलाद्दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥३
तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठते परः । स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥४

ऋषिरुवाच

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः । वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥५
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् । जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥६
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्त्तारमुपैष्यसि । ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥७

श्रीदेव्युवाच

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान्बलसंवृतः । बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥८

ऋषिरुवाच

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः । हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥९

अध्याय ८३

धूमलोचन-वध-वर्णन

ऋषि बोले—देवी के इस प्रकार वचन सुन उस दूत ने अत्यन्त क्रोध में भर दैत्येश्वर के निकट जाकर सब वृत्तान्त विस्तार सहित कहा ।१। दूत के यह वचन सुनकर असुरराज शुंभ ने क्रोधपूर्वक दैत्याधिपति धूमलोचन से कहा ।२। हे धूमलोचन ! तुम अपनी सेनासहित वहाँ जाकर, उस दुष्ट स्त्री के केश खींचकर विह्वल करते हुए शीघ्र उसको ले आओ ।३। यदि उसकी रक्षा करने के लिये कोई अपर उद्यत हो, वह देवता यक्ष या गन्धर्व क्यों न हो, उसको हनन करो ।४

ऋषि बोले—शुंभ की इस प्रकार आज्ञा पाकर वह धूम्रलोचननामक असुर साठ हजार असुरों के सहित शीघ्र गया ।५। फिर धूम्रलोचन ने हिमालय में बैठी हुई देवी को देखकर उच्चस्वर से कहा—हे देवि ! शुंभ और निशुंभ के निकट चलो ।६। यदि तुम इस समय प्रीतिसहित मेरे स्वामी शुंभ के निकट नहीं चलोगी तो मैं तुम्हारे केश खींच विह्वल करता हुआ बलपूर्वक ले जाऊँगा ।७

देवी बोली—दैत्येश्वर शुंभ ने तुमको भेजा है, तुम स्वयं बलवान् और सेना से युक्त हो, तुम यदि मुझको बलपूर्वक ले जाओगे, तो मैं तुम्हारा क्या करूँगी ।८

ऋषि बोले—देवी के इस प्रकार कहते ही वह धूम्रलोचननामक असुर उनके ऊपर दौड़ा । तब

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका । ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥१०
ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् । पपातासुरसेनायां सिंहो देव्यास्तु वाहनः ॥११
कांश्चित्करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् । आक्रम्य चरणेनान्यान्निजधान महासुरान् ॥१२
केषाञ्चित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी । तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान्पृथक् ॥१३
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे । पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥१४
क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना । तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥१५
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् । बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥१६
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः । आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥१७
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ । गच्छतं तत्र गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥१८
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि । तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥१९
तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते । शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥२०

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये धूम्रलोचनवधो
नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।८३।

अम्बिका देवी ने हुंकार द्वारा उन असुर को भस्म कर दिया ।९। अनन्तर उस असुर की सेना क्रोधित होकर अम्बिका के ऊपर तीक्ष्ण शर, शक्ति और फरशे की वृष्टि करने लगे ।१०। तब देवी का वाहन सिंह क्रोध से केसर कंपित करके भयंकर गर्जना करता हुआ असुरों की सेना के ऊपर गिरा ।११। और किसी को पंजों के प्रहार से किसी को मुखद्वारा किसी को आक्रमण द्वारा और किसी किसी महा असुर को होठ से पकड़-पकड़ कर मारने लगा ।१२। सिंह ने किसी-किसी महा असुर का हृदय नखद्वारा फाड़ डाला और किसी किसी असुर का मस्तक हथेली के प्रहार द्वारा देह से पृथक् कर दिया ।१३। कितने ही असुरों के बाहु और मस्तक काट डाले और केसर कंपित करके अन्यान्य असुरों के हृदय से रक्त पी लिया ।१४। क्षणकाल में ही उस देवी के वाहन महात्मा केसरी ने अत्यन्त कुपित होकर असुरों के उस महासैन्य को विनाश कर डाला ।१५। धूम्रलोचन असुर का देवी ने विनाश किया और संपूर्ण सेना का देवी के वाहन सिंह ने संहार कर डाला यह सुनकर ।१६। दैत्याधिपति शुंभ अत्यन्त कुपित हुआ । क्रोध से उसके होठ फड़कने लगे, तब शुंभ ने चण्ड और मुण्ड को आज्ञा दी ।१७। हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम बहुत सी सेना से युक्त होकर उस स्थान में जाओ और जाकर उस स्त्री को शीघ्र ले आओ ।१८। उसको केश पकड़कर अथवा बाँधकर ले आओ । और यदि इस प्रकार लाने में तुम असमर्थ हो तो संपूर्ण अस्त्रों से युक्त असुरों के द्वारा उसको मार डालना ।१९। उस दुष्टा और सिंह के मारे जाने पर उस अम्बिका को उसी दशा में बांधकर और लेकर शीघ्र आओ ।२०

श्रीमार्कण्डेयपुराण के देवीमाहात्म्य कल्प में धूम्रलोचनवध नामक
तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ।८३।

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः (८४)

चण्डमुण्डवधवर्णनम्

ऋषिरुवाच

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः । चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥१
ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् । सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥२
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः । आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥३
ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन्प्रति । कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥४
भृकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् । काली करालवदना विनिष्क्रान्तासि पाशिनी ॥५
विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा । द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥६
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा । निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥७
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् । सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत् तद्बलम् ॥८
पार्ष्णिग्राहांकुशग्राहयोधघण्टासमन्वितान् । समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥९
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह । निःक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥१०
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् । पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥११

अध्याय ८४

चण्डमुण्डवध नामक वर्णन

ऋषि बोले—अनन्तर शुंभ की इस प्रकार आज्ञा पाते ही चंड-मुंड इत्यादि दैत्य चतुरंगिणीसेनासहित अस्त्र-ग्रहण करके गये। उन्होंने जाकर देखा कि, बड़े सुवर्णमय हिमाचल के शिखर में सिंह के ऊपर स्थित हुई देवी मंदमंद मुस्कुरा रही हैं।१-२। वह असुर और उनके समीपवर्ती अन्यान्य असुरगण देवी को इस प्रकार देखने पर धनुष खींच और तलवार ग्रहण कर उनको पकड़ने के लिये उद्योग करने लगे।३। तब अंबिका ने उन सब शत्रुओं पर अत्यन्त क्रोध किया, उस क्रोध करने के कारण देवी का मुख श्यामवर्ण हो गया।४। अनन्तर भ्रकुटी के चढ़ाने से उसके ललाट से शीघ्र एक भयंकर मुखवाली खड्ग और पाश को धारण किये करालवदन काली प्रगट हुई।५। वह विचित्र खट्वाङ्ग को लिये मुंडो की माला से शोभायमान, बाघम्बर पहने अत्यन्त भयानक सूखे मांसवाली मुख को खोले हुए, जिह्वा को लहलहाती भयंकर रूप, भीतर को घुसे हुए लाल नेत्रवाली और अपने घोर शब्द से दिशाओं के मुखों को पूरित करती हुई उत्पन्न हुई।६-७। फिर वह भयंकरी देवी दैत्यों के सैन्यसमूह के ऊपर वेगसहित गिरकर संपूर्ण महाअसुरों को विनाश करते-करते असुरों की सेना का भक्षण करने लगी।८। और पार्श्वरक्षक, अंकुशवाले योद्धा तथा घंटा इनके सहित ही हाथियों को ही हाथ से पकड़ पकड़ कर मुख में फेंकने लगी।९। एवं अश्व रथ और सारथी के सहित योद्धाओं को ग्रहणपूर्वक मुख में डालकर अत्यन्त भयंकररूप से चर्वण करने लगी।१०। किसी के केश पकड़े किसी किसी असुर की ग्रीवा पकड़ी और किसी

तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः । मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ।।१२
बलिनां तद्बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् । ममर्दाभक्षच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ।।१३
असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः । जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहता रणे ।।१४
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां निपातितम् । दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ।।१५
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः । छादयामास चक्रैश्च मुण्डक्षिप्तैः सहस्रशः ।।१६
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् । बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ।।१७
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी । काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ।।१८
उत्थाय च महासिंहं देवी चडमधावत । गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ।।१९
छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रश्चक्रे नादं सुभैरवम् । तेन नादेन महता त्रासितं भुवनत्रयम् ।।२०
अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् । तमप्यपातयद्भूमौ खट्वाङ्गाभिहतं रुषा ।।२१
हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् । मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ।।२२
शिरश्चण्डस्य काली सा गृहीत्वा मौण्डमेव च । प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ।।२३
मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डो महापशू । युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ।।२४

किसी असुर की छाती को चरण से दबाकर मसल डाला ।११। उन सब असुरों के चलाये शस्त्र और महाअस्त्रों को देवी क्रोधपूर्वक मुख में ग्रहण कर दांतों से चबाने लगी ।१२। बलवान् और अत्यन्त बड़े शरीरवाले असुरों की उस समस्त सेना को इस प्रकार मसलती हुई देवी ने किसी को भक्षण कर लिया और किसी किसी को मार भगाया ।१३। कोई कोई असुर खड्ग के आघात से नष्ट हुये, और कोई कोई खट्वांग से ताडित तथा कोई कोई असुर दांतों के अग्रभाग से चीरे जाकर विनाश को प्राप्त हुए ।१४। असुरों के उस बड़ी भारी सेना को क्षणकाल में नष्ट हुआ देखकर चण्डासुर अत्यन्त भीषण उन काली देवी की ओर वेगसहित दौड़ा ।१५। और मुण्डासुर ने उन भीमाक्षी देवी के प्रति भयंकर बाणों की वर्षा और हजार हजार चक्र चलाकर उनको आच्छन्न कर दिया ।१६। वह समस्त चक्र भी उन देवी के मुख में प्रविष्ट होने लगे और प्रवेशकाल में वह सब चक्र मेघ में प्रवेश करते हुए अनेक सूर्यमण्डल के समान शोभा पाने लगे ।१७। अनन्तर घोरनादिनी कालीदेवी अत्यन्त क्रोध से भयंकर हास्य करने लगी । हँसने के समय कराल मुख में दुर्दर्श दातों की प्रभा से वह उज्ज्वल हुई ।१८। तब देवी महासिंह के ऊपर खडी होकर चण्डासुर के ऊपर दौड़ी और केश खीचकर अपनी असि से उसका मस्तक काट डाला ।१९। उस दैत्येन्द्र ने शिर कटने के समय अत्यन्त भयंकर गर्जना की, उस महत् गर्जना से तीनों भुवन त्रसित हो गये ।२०। चण्ड को गिरता देखकर मुण्ड देवी की ओर दौड़ा, तब देवी ने उसको भी खट्वांग से काटकर धराशायी किया ।२१। अनन्तर मरने से बची हुई सेना महावीर्यवान् चण्ड और मुण्ड को मरा हुआ देखकर भयातुर होकर चारों ओर दिशाओं में भागने लगी ।२२। इसके बाद चण्डासुर का मस्तक ग्रहण कर काली चंडिका के निकट उपस्थित होकर प्रचण्ड अट्टहास के सहित कहने लगी ।२३। "मैने महापशु चण्ड-मुण्ड नामक दो असुरों का हनन करके तुमको उपहार प्रदान किया किन्तु तुम युद्ध यज्ञ में स्वयं ही शुंभ और निशुंभ को हनन करना" ।२४

ऋषिरुवाच

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ । उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ॥२५

श्रीदेव्युवाच

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता । चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवी भविष्यति ॥२६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे चण्डमुण्डवधो नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ।८४।

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः (८८)

रक्तबीजवधवर्णनम्

ऋषिरुवाच

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते । बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥१
ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान् । उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥२
अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः । कम्बूनां चतुराशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥३
कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै । शतं कुलानि धूम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥४
कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः। युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥५
इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः । निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥६
आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् । ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥७

ऋषि बोले—उन चण्ड और मुण्ड नामक दोनों महाअसुरों को उस अवस्था में लाया हुआ देखकर कल्याणी चण्डिका देवी काली से अत्यन्त मधुर वचनों द्वारा कहने लगी ।२५

देवी बोली—तुम चण्ड और मुण्ड को ग्रहण करके आई हो, इस कारण हे देवी ! लोक में तुम "चामुण्डा के नाम से विख्यात होगी ।" ।२६

श्रीमार्कण्डेयपुराण में चण्डमुण्डवध नामक चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ।८४।

अध्याय ८५

रक्तबीजवध नामक वर्णन

ऋषि बोले—चण्ड और मुण्ड के नाश को प्राप्त होने पर तथा समस्त सेना के मारे जाने पर असुरों के स्वामी ।१। प्रतापवान् शुंभ ने अत्यन्त क्रोध के वशीभूत होकर असुरों की समस्त सेना को युद्ध करने की आज्ञा दी ।२। कि, अभी अपनी सब प्रकार की सेना को संग लेकर छियासी (८६) उदायुध नामक दैत्य और कम्बु नामक चौरासी (८४) दैत्य जाँय ।३। कोटिवीर्य नामक असुरों की पचास कुल और धूम्रवंशजात एक सौ कुलोत्पन्न असुरगण मेरी आज्ञा से निर्गत हों ।४। कालक, दौहृद् मुरवंशोत्पन्न और कालकेय असुरगण शीघ्र मेरी आज्ञा से सज्जित होकर युद्ध में जाँय ।५। असुरपति भैरवशासन शुंभ इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों महासेना को साथ लेकर युद्ध के लिये निकला ।६। अत्यन्त भयंकर उस

स च सिंहो महानादमतीव कृतवान्नृप । घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चाप्यबृंहयत् ।।८
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा । निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ।।९
तन्निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् । देवी सिंहस्तथा काली शरौघैः परिवारिताः ।।१०
एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषम् । भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विता ।।११
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः । शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ।।१२
यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् । तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ ।।१३
हंसयुक्तविमानस्था साक्षसूत्रकमण्डलुः । आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ।।१४
माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी । महाहिवलया प्राप्ता चन्द्रलेखाविभूषणा ।।१५
कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना । योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ।।१६
तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता । शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ।।१७
जज्ञे वाराहमतुलं रूपं या बिभ्रती हरेः । शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ।।१८
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः । प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ।।१९
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता । सहस्रनयना प्राप्ता यथा शक्तिस्तथैव सा ।।२०

सेना के समूह को आता हुआ देखकर चण्डिका ने धनुष की प्रत्यंचा की टंकार से पृथ्वी और आकाश को परिपूर्ण कर दिया ।७। हे नृप ! अनन्तर देवी के वाहन सिंह ने अत्यन्त महानाद किया तब अम्बिका ने भी अपने घंटे के शब्द से उस सिंहनाद को दूना कर दिया ।८। धनुष के प्रत्यंचा की टंकार तथा सिंह और घंटे के नाद से दिशाओं के मुख भर गये । फिर काली ने अपने मुख को चौड़ा कर अत्यन्त भयंकर नाद से जय जय शब्द किया ।९। उस शब्द को सुनकर दैत्यों की सेना के क्रोधपूर्वक चण्डिका देवी काली देवी और सिंह को चारों ओर से घेर लिया ।१०। हे भूप ! इसी अवसर में असुरों का विनाश करने के लिये और देवताओं का कल्याण करने के निमित्त अत्यन्त वीर्य और बल से युक्त ।११। ब्रह्मा, शिव, स्वामी, कार्तिक, विष्णु तथा इन्द्र के शरीर से पृथक्-पृथक् शक्तियाँ निकलकर और उन्हीं देवताओं के समान रूपधारण पूर्वक चण्डिका के पास आईं ।१२। जिस देवता का जैसा रूप, जैसा भूषण और जैसा वाहन था उस देवता के शरीर से निकली हुई शक्ति भी उसी प्रकार रूप, उसी प्रकार भूषण और उसी प्रकार वाहन से मण्डित होकर असुरों से युद्ध करने के लिये आई ।१३। हंसयुक्त विमान के ऊपर हाथ में अक्षमाला और कमण्डलु लेकर जो ब्रह्मा जी की शक्ति आई वह ब्रह्माणी के नाम से विख्यात है ।१४। और बैल पर चढ़ी हुई त्रिशूल तथा वर को धारण किये, चन्द्ररेखा से शोभायमान और बड़े-बड़े सर्पों के कंकण पहने शिव की शक्ति माहेश्वरी आई ।१५। शक्ति हाथ में लिये गुहरूपिणी कौमारी शक्ति सुंदर मोर के वाहन पर चढ़कर युद्ध करने के लिये आई ।१६। गरूड के ऊपर स्थित हुई वैष्णवी शक्ति शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग और खड्ग धारण करके आई ।१७। यज्ञवराहरूपधारी भगवान् विष्णु की जो शक्ति है, वह भी वराहरूप धारण करके आई ।१८। नारसिंहीशक्ति नृसिंहरूप धारण करके आई और उनके सटाकेशों के हिलने से नक्षत्रों की पंक्ति इधर-उधर हिलने लगी ।१९। गजराज के ऊपर चढ़ी हुई हजार नेत्रवाली ऐन्द्री शक्ति

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः । हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याह चण्डिकाम् ॥२१
ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तिभीषणा । चण्डिका शक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥२२
सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता । दूत त्वं गच्छ भगवन्पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥२३
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ । ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥२४
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः । यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥२५
बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकांक्षिणः । तदा गच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥२६
यतो नियुक्तो दूत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् । शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥२७
तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुरः । अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥२८
ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः । ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥२९
सा च तत्प्रहितान्बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् । चिच्छेद लीलयाध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥३०
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् । खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन्कुर्वती व्यचरत्तदा ॥३१
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः । ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून्येन येन स्म धावति ॥३२
माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी । दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥३३

हाथ में वज्र लिये हुए आई, उसकी आकृति इन्द्र के ही अनुरूप थी ।२०। अनन्तर उन सब देवताओं की शक्तियों के समेत महादेव जी ने चण्डिका से कहा "इन सब असुरों को मेरी प्रसन्नता के लिये शीघ्र हनन करो" ।२१। इसके उपरान्त देवी के शरीर से अत्यन्त उग्र अत्यन्त भयंकर सौ शिवाओं के समान नाद करने वाली चण्डिका शक्ति निकली ।२२। उन अपराजिता चण्डिका देवी ने धूम्रवर्ण जटाशील महेश्वर से कहा—हे भगवन् ! तुम शुंभ और निशुंभ के निकट दूत होकर जाओ ।२३। और जाकर अत्यन्त गर्वित शुंभ-निशुंभ तथा युद्ध के निमित्त उपस्थित दानवों से कहो कि ।२४। "हे दानवों ! इन्द्र त्रैलोक्यलाभ करे, देवता पुनर्वार हवि भोजन करें और तुम यदि जीवित रहने की इच्छा करते हो तो पाताल में चले जाओ ।२५। अथवा बल के गर्व से गर्वित होकर यदि तुम युद्ध की इच्छा रखते हो तो आओ, मेरी यह शिवागण तुम्हारे रुधिर से तृप्ति लाभ करें ।२६। उन देवी ने स्वयं शिव को दूत कार्य में नियुक्त किया इस कारण वह इस लोक में शिवदूती के नाम से विख्यात हुई ।२७। महेश्वर के मुख से देवी के इस प्रकार वचन सुनकर वह महासुर क्रोधपूर्वक जहाँ कात्यायनी स्थित थी वहाँ गये ।२८। तदनन्तर वह अत्यन्त क्रोधित असुर प्रथम उन देवी के आगे शर, शक्ति और ऋष्टि इत्यदि की वर्षा करने लगे ।२९। उन सब असुरों के चलाये हुए बाण, शूल, चक्र और फरशे इत्यादि सब को चण्डिका देवी ने धनुष खींचकर छोड़े हुए बडे बड़े बाणों से लीला पूर्वक ही काट डाला।३०। उसी समय में उन चण्डिका देवी के सन्मुख काली किसी किसी असुर को शूल से चीरती और किसी को खट्वांग से कुचलती हुई विचरण करने लगी।३१। शत्रुगण जिस जिस ओर को दौड़ने लगे उसी उसी ओर में ब्रह्माणी शक्ति उनके ऊपर कमण्डलु का जल वर्षा कर उनको हतवीर्य और हततेज करने लगी ।३२। माहेश्वरी शक्ति त्रिशूलद्वारा और वैष्णवी शक्ति चक्र द्वारा दैत्यों का हनन करने लगी । अत्यन्त क्रोधित कौमारी शक्ति ने शक्तिद्वारा अनेक दैत्यों को हनन किया ।३३। और ऐन्द्री के वज्रप्रहार से विदारित सैकड़ों दैत्य दानव रुधिर को

ऐन्द्री कुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः । पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥३४
तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः । वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥३५
नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयन्ती महासुरान् । नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगन्तरा ॥३६
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः । पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥३७
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् । दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥३८
पलायनपरान्दृष्ट्वा दैत्यान्मातृगणार्दितान् । योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥३९
रक्तबिन्दुर्यदाभूमौ पतत्यस्य शरीरतः । समुत्पतति मेदिन्यास्तत्प्रमाणो महासुरः ॥४०
युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः । ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥४१
कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् । समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥४२
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः । तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥४३
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः । समं मातृभिरत्युग्रं शस्त्रपातातिभीषणम् ॥४४
पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा । ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥४५
वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह । गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४६
वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः । सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥४७

वमन करते-करते पृथ्वी में गिरने लगे ।३४। वराहमूर्त्ति शक्ति के मुख प्रहार से विध्वस्त चक्रप्रहार से विदारित और दंष्ट्रा के अग्रभाग से छाती के कट जाने पर दैत्यगण गिरने लगे ।३५। गर्जन द्वारा दिशा और आकाश को पूर्ण करके नारसिंही शक्ति नखविदारित असुरों को भक्षण करते-करते युद्धक्षेत्र में विचरण करने लगी ।३६। शिवदूती के प्रचंड अट्टहासद्वारा अभिहत होकर असुरगण पृथ्वी में गिरने लगे । तब देवी शिवदूती भी उन गिरे हुए असुरों को भक्षण करने लगी ।३७। इस प्रकार अनेक उपाय क्रोधसहित मर्दन करती हैं यह देखकर संपूर्ण असुरों की सेना भागने लगी ।३८। मातृगणों के द्वारा पीड़ित होकर दैत्यगण भागते है यह देखकर रक्तवीज नामक महाअसुर क्रोधपूर्वक युद्ध करने के लिये आया ।३९। इस रक्तबीज महाअसुर के शरीर से एक बूंद रक्त जब भूमि में गिरता तब उसी समय भूमि से उसके अनुरूप एक असुर उत्पन्न हो जाता ।४०। वही महाअसुर रक्तबीज गदा हाथ में ले इन्द्र की शक्ति के संग युद्ध करने लगा। तब ऐन्द्र ने अपने वज्र से रक्तबीज को तड़ित किया ।४१। फिर वज्रपीड़ित रक्तबीज के शरीर से जैसे ही रुधिर से उसी के अनुरूप और समान पराक्रमशील अनेक योद्धा उत्पन्न हो गये ।४२। रुधिर टपका वैसे ही उस टपके हुए उसके शरीर से रक्त की जितनी बूँदें गिरी उतने ही पुरुष उत्पन्न वह पुरुष-बल, वीर्य और पराक्रम में रक्तबीज के ही सदृश थे ।४३। वह रक्त की बूंदों से उत्पन्न हुए पुरुष भी मातृगणों के संग उस रणक्षेत्र में अत्यन्त उग्र शस्त्र चलाकर अतिभयंकर युद्ध करने लगे ।४४। फिर जब ऐन्द्री ने वज्रपात से इस असुर का मस्तक काटा, तब उस क्षतस्थान से रक्तप्रवाह बहने लगा, और उससे हजार असुर उत्पन्न हुए ।४५। वैष्णवी शक्ति ने युद्ध स्थल में उसको चक्र से काटा और ऐन्द्र ने गदा से इस असुरेश्वर को ताडन किया ।४६। वैष्णवी के चक्र से कटे हुए उस असुर के रुधिर बहने से उत्पन्न हुए उसी के सदृश हजारों बड़े बड़े असुरों से जगत् व्याप्त हो गया ।४७। कौमारी शक्ति

शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना । माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ।।४८
स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत्पृथक् । मातॄः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ।।४९
तस्या हतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि । पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ।।५०
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् । व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ।।५१
तान्विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा । उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ।।५२
मच्छस्त्रपातसम्भूतान्रक्तबिन्दून्महासुरान् । रक्तबीजात्प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ।।५३
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् । एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ।।
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा नैवोत्पत्स्यन्ति चापरे ।।५४

ऋषिरुवाच

इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् । मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ।।५५
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् । न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ।।५६
तस्या हतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् । यतस्ततः स्ववक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ।।५७
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः । तां चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ।।५८
देवी शूलेन चक्रेण बाणैरसिभिरिष्टिभिः । जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ।।५९

द्वारा वाराही असिद्वारा और माहेश्वरी त्रिशूलद्वारा उस महाअसुर रक्तबीज को मारने लगी ।४८। और वह महाअसुर रक्तबीज भी क्रोध युक्त होकर गदा द्वारा समस्त मातृगणों को पृथक्-पृथक् मारने लगा ।४९। शक्ति, शूल आदि नाना प्रकार के अस्त्रों से आहत उस रक्तबीज के शरीर से जो रक्तभूमि में गिरा उससे सैकड़ों असुर उत्पन्न हुए ।५०। उस असुर के रक्त से उत्पन्न हुए असुरों ने संपूर्ण जगत् को व्याप्त कर दिया । तब देवता अत्यन्त भीत हुए ।५१। अनन्तर देवताओं को इस प्रकार डरा हुआ देखकर चंडिका ने शीघ्रतासहित काली से कहा हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फैलाओ ।५२। और मेरे शस्त्र घात से उत्पन्न हुई रक्त की बूंदों को तथा रक्त की बूँदों से उत्पन्न हुए महाअसुरों को तुम इस मुख में वेगसहित ग्रहण करो ।५३। और उससे उत्पन्न हुए महाअसुरों को भक्षण करती हुई रण में विचरती रहो, ऐसा करने से जब इस दैत्य का रुधिर क्षीण हो जायेगा, तब यह विनाश को प्राप्त होगा ।५४। जब तुम उसको भक्षण करना आरंभ करोगी, फिर वह उत्पन्न नहीं हो सकेगा ।

ऋषि बोले—काली से यह बात कहकर चण्डिका देवी ने त्रिशूल से उस असुर को घायल किया और काली उस घायल रक्तबीज का शोणित मुख में ग्रहण करने लगी ।५५। तब उस रक्तबीज असुर ने रणक्षेत्र में गदा से देवी को आघात किया, किन्तु उस गदा के प्रहार से देवी को अल्प मात्र वेदना भी उत्पन्न नहीं कर सका ।५६। इधर उस घायल हुए असुर के शरीर से जो रुधिर गिरा, चामुण्डा ने वह सब शोणित मुख में ग्रहण किया ।५७। चामुण्डादेवी के मुख में रक्त गिरने से जो महाअसुर उत्पन्न हुए, वह उन सब असुरों को रुधिर सहित भक्षण करने लगी ।५८। जब चामुण्डा ने इस प्रकार रक्तबीज का शोणित पान किया तब चण्डिका देवी ने उसको शूल, चक्र, बाण, असि और रिष्टि से हनन किया ।५९। अनन्तर हे

स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसंहतितो हतः । नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः ।।६०
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप । तेषां मातृगणो मत्तो ननर्त्तासृङ्मदोद्धतः ।।६१
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।८५।

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

निशुम्भवधवर्णनम्

राजोवाच

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्भवता मम । देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ।।१
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते । चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ।।२

ऋषिरुवाच

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते । शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ।।३
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् । अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ।।४
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः । संदृष्टौष्ठपुष्टाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ।।५
आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः । निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ।।६

महीपाल ! वह महाअसुर रक्तबीज शस्त्रों के समूह से मारा हुआ नीरक्त अर्थात् रुधिरहीन होकर पृथिवीतल में गिर पड़ा ।६०। हे नृप ! ! तदनन्तर देवताओं ने अतुलहर्ष प्राप्त किया और मातृगण असुरों का रक्त पीने से मदोद्धत होकर नृत्य करने लगी ।६१

श्रीमार्कण्डेयपुराण के देवीमहात्म्य वर्णन में रक्तबीजवध वर्णन नामक
पचासीवाँ अध्याय समाप्त ।८५।

अध्याय ८६

निशुम्भवध नामक वर्णन

राजा ने कहा—हे भगवन् ! आपने रक्तबीजवधविषयक अद्भुत देवीचरित्र का महात्म्य मुझसे वर्णन किया ।१। अब रक्तबीज के मारे जाने पर अत्यन्त क्रोधित शुंभ और निशुंम्भ ने जो कार्य किया, उसके सुनने की इच्छा करता हूँ।२

ऋषि बोले—समर में रक्तबीज के मारे जाने पर और अन्यान्य सेना के निहत होने पर शुंभ और निशुम्भ दोनों असुर अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए।३। अनन्तर उस सब सेना को निहत होता देखकर अत्यन्त क्रोध से असुरों की मुख्य सेना को साथ लेकर निशुंभासुर देवी के सन्मुख दौड़ा।४। और उस दैत्य के आगे तथा पीछे और दोनों ओर बड़े-बड़े असुर अपने-अपने होठों को चबाते हुए क्रोधपूर्वक देवी को विनाश करने के निमित्त आये ।५। फिर अपनी सेना को साथ लिये महावीर्यवान् शुम्भासुर भी मातृगणों के संग युद्ध करके देवी को मारने के लिए क्रोधित होकर आया।६। तब देवी के संग जलवर्षणकारी दो मेघों के समान

ततो युद्धमतीवासीद्देव्याः शुम्भनिशुम्भयोः । शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥७
चिच्छेदास्तांश्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः । ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥८
निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् । अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥९
ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् । निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१०
छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः । तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागतम् ॥११
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः । आयांतं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥१२
अथादाय गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति । सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१३
ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् । आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥१४
तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भौ भीमविक्रमे । भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥१५
सरथस्थस्तदात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः । भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥१६
तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् । ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥१७
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च । समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥१८
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः । पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥१९
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् । कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥२०

अत्यन्त प्रचंड शरवर्षण करने वाले शुंभ और निशुंभ का भयंकर युद्ध होने लगा ।७। चण्डिका उन दोनों असुरों के चलाये शर समूह को अपने शर समूह द्वारा शीघ्र काटकर शस्त्रों से दोनों असुरेश्वर के अंगों में मारने लगीं ।८। पैनी तलवार और चमकती हुई ढाल लेकर निशुंभ ने देवी के उत्तम वाहन सिंह के मस्तक में मारी ।९। वाहन को ताड़ित देखकर देवी ने क्षुरप्र नामक अस्त्र से निशुंभ की उत्तम तलवार काटकर अष्टचन्द्रक ढाल भी काट डाली ।१०। तलवार और ढाल के कट जाने पर निशुंभासुर ने शक्ति छोड़ी किन्तु देवी ने उस सामने जाती हुई शक्ति के भी चक्र द्वारा दो खंड कर दिये ।११। अनन्तर कोप में भरे हुए असुर दानव ने शूल ग्रहण करके चलाया और देवी ने आते हुए उस शूल को भी मुष्टिपात ने चूर्ण कर डाला ।१२। तब उस असुर ने गदा घुमाकर चलाई, किन्तु उस गदा को भी देवी ने त्रिशूल से तोड़कर भस्म कर दिया ।१३। फिर फरसा हाथ में लेकर आये हुए उस दैत्यश्रेष्ठ निशुंभ को देवी ने बाणों से घायल करके पृथ्वी में गिरा दिया ।१४। भयंकर विक्रम भ्राता निशुंभ को भूमि में गिरता हुआ देखकर शुंभासुर अत्यन्त क्रोध से देवी को मारने गया ।१५। और बड़े बड़े आयुध लेकर तथा अत्यन्त लम्बी लम्बी अतुल पराक्रमवाली आठ भुजाओं से युक्त वह रथ में बैठकर और समस्त आकाशमण्डल में व्याप्त होकर देखने लगा ।१६। उसको आता हुआ देखकर देवी ने शंख बजाया और अत्यन्त दुःसह धनुष की प्रत्यंचा का शब्द किये ।१७। तथा समस्त दैत्यों की सेना का तेज विनाश करने वाले अपने घंटे के शब्द से संपूर्ण दिशाओं को पूरित कर दिया ।१८। फिर हाथियों के महामद को दूर करने वाले महानाद से सिंह ने भी आकाश, पृथ्वी और दशों दिशाओं को पूरित कर दिया ।१९। अनन्तर काली ने आकाश में उछलकर फिर दोनों हाथों से पृथ्वी में आघात किया, उस आघात के शब्द से पहला संपूर्ण शब्द मन्द हो

अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह । तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥२१
दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा । तदा जयेत्याभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥२२
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा । आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया॥२३
सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् । निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥२४
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् । चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२५
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् । स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥२६
ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः । आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ।२७
पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः । चक्रायुतेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥२८
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥२९
ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् । अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३०
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका । खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥३१
शूलहस्तं तमायान्तं निशुम्भममरार्दनम् । हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥३२
भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः । महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥३३
तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः । शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥३४

गया ।२०। शिवदूती ने भी शत्रुओं का अमंगल कारी अत्यन्त उच्च हास्य किया, उस शब्द से असुरगण त्रसित (दु खी) हुए और फिर शुंभ अतिशय क्रोधित हुआ ।२१। जब अम्बिका ने शुभ से "दुरात्मन् ! ठहर, ठहर" इस प्रकार कहा, तब आकाश में स्थित हुए देवता जय जय शब्द करने लगे ।२२। शुंभासुर ने आकर उग्रदीप्ति अतिभयंकर जो शक्ति छोड़ी उस अग्नि के समान आती हुई शक्ति को देवी ने महोल्कानाम्नी शक्ति से काटकर दूर फेंक दी ।२३। अनन्तर शुम्भ के सिंहनाद से तीनों लोक व्याप्त हो गये । तब हे अवनीपाल ! आकाश से उत्पन्न हुए विद्युत् के घोर शब्द ने उस शुंभ के नाद को जीत लिया ।२४। शुंभ के चलाये शतसहस्र बाण देवी ने अपने उग्र बाणों से काटडाले और शुंभ ने भी देवी के चलाये सैकड़ों हजारों बाणों को अपने उग्र बाणों से काट डाले ।२५। इसके बाद उन चण्डिका देवी ने क्रोधित होकर शूलद्वारा घायल किया और शूलाहत शुंभासुर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गया ।२६। अनन्तर निशुम्भासुर चेतना प्राप्त कर धनुषधारणपूर्वक बाणों से देवी काली और सिंह को घायल करने लगा ।२७। फिर दनुजपति निशुंभदैत्य ने दश हजार बाहु धारण करके चक्र और आयुधों के द्वारा चण्डिका देवी को आच्छादित कर दिया ।२८। तब संकटनाशिनी भगवती दुर्गा ने क्रोधित होकर उन समस्त चक्र और बाणों को अपने बाणों से काट डाला ।२९। तदनन्तर दैत्यों की सेना साथ लिये निशुंभ उन देवी को हनन करने के लिये गदा ग्रहण करके अत्यन्त वेग से दौड़ा ।३०। तब आती हुई निशुंभासुर की उस गदा को देवी चण्डिका ने तीक्ष्णधारवाले खड्ग से काट डाली फिर निशुंभ ने शूल ग्रहण किया ।३१। अनन्तर शूल ग्रहण करके सन्मुख आते हुए निशुम्भासुर को देवी ने अत्यन्त वेग से अपना त्रिशूल चलाकर हृदय में विद्ध किया ।३२। फिर शूल द्वारा भिन्न उस असुर के हृदय से अन्यं एक पुरुष महाबल और महावीर्यवान् देवी से "ठहर" यह बात कहता हुआ निकला ।३३। तब देवी ने नादपूर्वक

ततः सिंहश्चखादोग्रदंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् । असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ।।३५
कौमारी शक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः । ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ।।३६
माहेश्वरी त्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे । वाराही तुण्डघातेन केचिच्चूर्णी कृता भुवि ।।३७
खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः। वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे।।३८
केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् । भक्षिताश्चापरे काली शिवदूतमृगाधिपैः ।।३९

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवध-
वर्णनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः।८६।

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

शुम्भवध-वर्णनम्

ऋषिरुवाच

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम् । हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ।।१
बलावलेपाद्दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह । अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे यातिमानिनी ।।२

श्रीदेव्युवाच

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा । पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ।।३

हँसकर उस बाहर निकले हुए असुर का मस्तक खड्ग से काटडाला और वह भूमि पर गिर गया ।३४। अनन्तर तीक्ष्ण दांतों के द्वारा गर्दन चबाकर सिंह असुरों को भक्षण करने लगा तथा शिवदूती और काली अन्यान्य असुरों को भक्षण करने लगीं ।३५। कोई कोई महाअसुर कौमारीशक्ति की शक्ति से कटकर मर गये । ब्रह्माणी मंत्रपूत जल का स्पर्श करने से अपरापर अनेक असुर नष्ट हो गये ।३६। अपर अनेक असुर माहेश्वरी के त्रिशूलाघात से भिन्न होकर गिर पड़े और कोई कोई असुर वाराही के मुख के प्रहार से चूर्ण होकर भूमि पर गिर गये ।३७। अन्यान्य दानवों को वैष्णवी चक्र से खंड-खंड कर डाला और ऐन्द्री के हाथ से छूटे हुए वज्र द्वारा आहत होकर अपर असुरों में ।३८। कोई नष्ट हुए, कोई कोई महायुद्ध से भाग गये । तथा जो असुर बचे थे, उनको काली शिवदूती और सिंह ने भक्षण कर लिया ।३९

श्रीमार्कण्डेयपुराण के देवीमाहात्म्य कथन में निशुंभवध नामक
वर्णन का छियासीवाँ अध्याय समाप्त ।८६।

अध्याय ८७

शुम्भवध नामक वर्णन

ऋषि बोले—प्राणतुल्य भ्राता निशुंभ और सेना को मरा हुआ देखकर शुंभ ने क्रोधित होकर कहा ।१। हे दुष्टे दुर्गे ! तुम बल के अभिमान से गर्व मत करो, तुम औरों के बल के आश्रय से अत्यन्त मानवती होकर युद्ध करती है ।२

देवी बोली—रे दुष्ट ! इस जगत् में एक मैं ही विद्यामान हूँ, मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन है ? देख यह सब मेरी विभूति मुझमें ही प्रवेश करती हैं ।३

ऋषिरुवाच

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् । तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ।।४

श्रीदेव्युवाच

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता । तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ।।५

ऋषिरुवाच

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः । पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ।।६
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथा चास्त्रैः सुदारुणैः । तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयंकरम् ।।७
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका । बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ।।८
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी । बभञ्ज लीलयैवोग्रहुङ्कारोच्चारणादिभिः ।।९
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः । सा च तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ।।१०
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे । चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ।।११
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् । अभ्यधावत तां हन्तुं दैत्यानामधिपेश्वरः ।।१२
तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका । धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ।।१३
अश्वांश्च पातयामास रथं सारथिना सह । हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः ।।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ।।१४

ऋषि बोले—अनन्तर ब्रह्माणी इत्यादि समस्त शक्तियाँ देवी के शरीर में विलीन हो गई तब अम्बिका अकेली विद्यमान रह गई ।४।

देवी ने कहा—रे शुंभ ! मैं अपनी विभूति के द्वारा इस स्थान में बहुतरूप से स्थित थी अब उन सब रूपों का संहार करके युद्धक्षेत्र में अकेली रह गई हुँ तू स्थिर हो ।५

ऋषि बोले—अनन्तर देखते हुए देवता और असुरों के सन्मुख देवी और शुम्भासुर, इन दोनों का दारुण युद्ध उपस्थित हुआ ।६। फिर उन देवी और शुंभासुर की शरवृष्टि शोणित शस्त्र और दारुण अस्त्रों के परस्पर प्रहार द्वारा संपूर्ण लोकों को भय उत्पन्न करने वाला युद्ध आरम्भ हुआ ।७। अम्बिका ने जो शत-शत दिव्यास्त्र छोड़े उन समस्त दिव्य अस्त्रों को उस दैत्येन्द्र शुंभासुर ने, उन अस्त्रों को काटने वाले अस्त्रों के द्वारा काट डाला ।८। और शुंभासुर ने जो दिव्यास्त्र छोड़े उन सब दिव्य अस्त्रों को परमेश्वरी चण्डिका ने भी लीलापूर्वक ही उग्र हुँकारोच्चारणादिद्वारा तोड़ डाला ।९। फिर उस महाअसुर ने सैकड़ों बाण वर्षाकर देवी को ढक दिया । तब देवी ने भी कुपित होकर बाणों से उसका धनुष काट डाला ।१०। धनुष के कट जाने पर दैत्यपति ने शक्ति ग्रहण की, किन्तु देवी ने शुंभ के हाथ में स्थित उस शक्ति को भी चक्र से काट डाला ।११। तब दैत्याधिपति शुंभ खड्ग और दीप्तियुक्त शतचन्द्र विशिष्ट ढाल ग्रहण करके देवी के ऊपर दौड़ा ।१२। तब आते हुए शुंभ के खड्ग और सूर्य की किरण सदृश निर्मल चर्म (ढाल) को चण्डिका ने धनुष से छोड़े हुए पैने बाणों से काट डाला ।१३। जब उस दैत्यपति के रथ के घोड़े मर गये, धनुष टूट गया और सारथी निहत हो गया, तब वह घोर मुद्गर ग्रहण करके अम्बिका को मारने के लिए उद्यत

चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः । तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥१५
स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः । देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥१६
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले । स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥१७
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः । तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥१८
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् । चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥१९
ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह । उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥२०
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः । अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥२१
तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् । जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥२२
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः । चालयन्सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥२३
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन्दुरात्मनि । जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥२४
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः । सरितो मार्गवाहिन्यस्तथा शुम्भे निपातिते ॥२५
ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । बभूवुर्निहते तस्मिन्गन्धर्वा ललितं जगुः ॥२६
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः । ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥२७

हुआ ।१४। तब देवी ने सन्मुख आते हुए असुर का मुद्गर पैने बाणों से काट डाला, किन्तु तो भी वह महाअसुर घूंसा तानकर अत्यन्त वेग से देवी की ओर दौड़ा ।१५। दैत्यश्रेष्ठ ने वह घूँसा देवी के हृदय में मारा । तब देवी ने भी थप्पड़ द्वारा उसकी छाती में प्रहार किया ।१६। थप्पड़ के प्रहार से पीड़ित होकर दैत्यराज महीतल में गिर गया और तत्काल ही फिर उठा ।१७। अनन्तर देवी को ग्रहण पूर्वक उछलकर शुंभ आकाश में स्थित हुआ और देवी भी आकाश में निरालम्ब होकर उसके संग नियुद्ध[1] करने लगी ।१८। फिर आकाश में शुंभ और चण्डिका देवी प्रथम सिद्ध और मुनियों को आश्चर्य कराने वाला युद्ध करने लगी।१९। उस असुर के संग बहुत काल तक नियुद्ध करके उसे ऊपर को उछालकर घुमाया और फिर पृथ्वी पर पटक दिया ।२०। तब वह दुष्टात्मा असुर पृथ्वी पर गिर कर अत्यन्त वेग से घूँसा उठाकर चण्डिका को मारने की इच्छा से दौड़ा ।२१। उस सर्वदैत्येश्वर शुंभ को आता हुआ देखकर देवी ने अपने शूल से उसका हृदय वेधकर उसको भूमि में गिरा दिया।२२। देवी के शूलाग्रद्वारा शुंभासुर का हृदय घायल हुआ और जब वह प्राणरहित होकर भूमि में गिरा, उस समय समुद्र द्वीप और पर्वतों के सहित संपूर्ण पृथ्वी विचलित हुई ।२३। फिर उस दुरात्मा असुर के मारे जाने पर सब प्रसन्न हुए, जगत् अत्यन्त स्वस्थ हुआ और आकाश भी अत्यन्त निर्मल हो गया।२४। जो सब अनिष्टसूचक मेघ और उल्कागण शुंभ के रहते विद्यमान थे, शुंभ के मारे जाने पर वह अदृश हुए और नदियाँ अपने-अपने मार्गों में बहने लगी ।२५। और उसके निहत होने पर समस्त देवतागण अत्यन्त हर्षितचित्त हुए और गंधर्व मधुर गान करने लगे।२६। कोई बाजा बजाने लगे और अप्सरागण नृत्य करने लगे, सुंदर शीतल वायु चलने लगी और

---

१. शस्त्र हाथ में लिये विना केवल भुजा से युद्ध करने को "नियुद्ध" कहते हैं ।

जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तदिग्जनितस्वनाः ॥२८

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।८७।

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

नारायणिस्तुतिः

ऋषिरुवाच

देव्या हते तत्र महासुरेद्रे सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥१

देवाः ऊचु

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥२
आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्याय्यते कृत्स्नमलंघ्यवीर्ये ॥३
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥४

दिवाकर (सूर्य) ने भी सुन्दर प्रभा धारण की ।२७। बुझी हुई होम की अग्नि जलने लगी और दिशाओं में शांत शांत शब्द होने लगे ।२८

श्रीमार्कण्डेयपुराण के देवीमाहात्म्य कथन में शुम्भवध नामक वर्णन का
सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त ।८७।

अध्याय ८८

नारायणीस्तुति-वर्णन

ऋषि बोले—जब देवी ने उस महा असुरेन्द्र का संहार कर डाला, तब इन्द्र और अग्नि को आगे करके समस्त देवता अपने इष्ट फल की प्राप्ति हो जाने के कारण अपने प्रसन्न मुख कमलों से दिशाओं को प्रकाशित करते हुए उन कात्यायनी देवी का स्तव करने लगे ।१

देवता बोले—हे शरणागतदुःखहरे देवि ! प्रसन्न होओ, हे अखिलजगज्जननि ! प्रसन्न होओ, हे विश्वेश्वरि ! प्रसन्न होओ, तुम विश्व की रक्षा करो, हे देवि ! तुम्ही चराचर विश्व की ईश्वरी हो ।२। हे देवि ! तुम्हीं जगत् की अद्वितीय आधारस्वरूप हो, क्योंकि मही (भूमि) स्वरूप से स्थिति करती हो, हे देवि ! तुम्हीं जलस्वरूप से अवस्थान करती हुई इस संपूर्ण विश्व को तृप्त करती हो, हे देवि ! तुम्हारा वीर्य उल्लंघन करने के अयोग्य है।३। हे देवि ! तुम्हीं अनन्तर वीर्य वैष्णवी शक्ति हो, तुम्ही संसार की हेतु भूत परममाया हो, तुमने ही संपूर्ण विश्व को मोहित कर रखा है, हे देवि ! पृथ्वी में तुम्हीं प्रसन्न होकर

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ता सकलं जगच्च।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ।।५
सर्वभूता यदा देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी । त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्ति परमोक्तयः ।।६
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते । स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।७
कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि । विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ।।८
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।९
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि । गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१०
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।११
हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणी । कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१२
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि । माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१३
मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे । कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१४
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे । प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१५
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे । वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१६

मुक्ति का कारण होती हो ।४। हे देवि ! संपूर्ण विद्या ही तुम्हारी मूर्तिविशेष और त्रिभुवन में जितनी स्त्री हैं, सभी तुम्हारी मूर्तिविशेष हैं, हे जननि ! तुम एक ही इस विश्व में व्याप्त हो रही हो अधिक और तुम्हारी क्या स्तुति करें तुम स्तुति से परे और स्तुति की परम उक्ति हो ।५। तुम्हीं सर्वभूतस्वरूप में प्रकाशमान हो तुम्हीं स्वर्ग और मुक्ति प्रदान करती हो इस कारण तुम्हारी स्तुति करते हैं, किन्तु हे देवि ! तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मस्वरूप की स्तुति करने में कौन सी उक्ति श्रेष्ठ है, कोई भी नहीं, क्योंकि तुम में गुण नहीं है । निर्गुण की गुण कीर्त्तनरूप स्तुति किस प्रकार से संभव होसकती है ।६। तुम बुद्धिरूप से सब के हृदय में वास करती हो, हे स्वर्गमुक्ति देनेवाली ! हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ।७। हे विश्वविनाश में समर्थ ! तुम कला और काष्ठादिरूप से जगत् का परिणामविधान करती हो अर्थात् क्षणमुहूर्त्तादि कालकर के मनुष्यों को अंत करने वाली हो । हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ।८। हे सर्वमंगलमाङ्गल्ये ! हे शिवे ! हे सर्वार्थसाधिके ! हे शरण देने वाली ! हे तीन नेत्रवाली ! हे गौरी ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ।९। हे सनातनि ! हे गुणाश्रये ! हे गुणमये ! हे नारायणि ! तुम सृष्टि, स्थिति और विनाश की शक्तिस्वरूप हो तुमको नमस्कार है ।१०। हे देवि ! हे नारायणि ! तुम शरणागत, दीन और आर्त मनुष्यों की रक्षा करने वाली हो और सब का दुःख हरती हो, तुमको नमस्कार है ।११। हे देवि ! नारायणि ! तुमको ब्रह्माणीरूप से हंसयुक्त विमान में स्थित होकर युद्धक्षेत्र में कुशाभिमंत्रित जल छिडकती हो तुमको नमस्कार है ।१२। हे देवि ! तुमने माहेश्वरीरूप से बैल पर चढ़कर अर्द्धचन्द्र और नागभूषण से विभूषित होकर त्रिशूल धारण किया था, तुमको नमस्कार है ।१३। हे अनघ ! हे नारायणि ! तुमने कौमारीरूप धारणपूर्वक मयूर और कुक्कुट से युक्त होकर महाशक्ति धारण की थी, तुमको नमस्कार है ।१४। हे नारायणि ! तुमने वैष्णवशक्तिरूप से रणस्थल में शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुरूप महाअस्त्रों को धारण किया था तुम को नमस्कार है, तुम प्रसन्न होओ ।१५। हे शिवे ! हे नारायणि ! तुमने ही महावराहरूप धर दाँतों के द्वारा जल में डूबी हुई पृथ्वी को पाताल से उखाड़कर प्रचण्ड महाचक्र धारण किया था, तुमको

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान्कृतोद्यमे । त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१७
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले । वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१८
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्ये महाबले । घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥१९
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे । चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२०
लक्ष्मिलज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टे स्वधे ध्रुवे । महारात्रे महामाये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥॥२१
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि । नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२२
सर्वतः पाणिपादान्ते सर्वतोक्षिशिरोमुखे । सर्वतः श्रवणघ्राणे नारायणि नमोऽस्तु ते ॥२३
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते । भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥२४
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् । पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥२५
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् । त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥२६
हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् । सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्यो नः सुतानिव ॥२७
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः । शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥२८

नमस्कार है ।१६। हे नारायणि ! तुमने भयंकर नृसिहरूप से दैत्यों के वध करने में उद्यत होकर तीनों लोक की रक्षा की थी तुमको नमस्कार है ।१७। हे किरीट धारण करने वाली ! हे महावज्रवाली ! हे सहस्र नेत्रों से उज्ज्वला हे वृत्रासुर के प्राण हरने वाली ! हे ऐन्द्रि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ।१८। हे नारायणि ! तुमने शिवदूतीस्वरूप से भयंकर रूप धारण करके उत्कट शब्द के द्वारा ही दैत्यों की बड़ी भारी सेना का नाश किया था, तुमको नमस्कार है ।१९। हे नारायणि ! तुम दंष्ट्राकरालमुख से चामुण्डारूप धारण करके शिरोमाला द्वारा विभूषित हुई थी एवं चण्ड और मुण्ड नामक दोनों असुरों को विनाश किया था, तुमको नमस्कार है ।२०। हे नारायणि ! तुम्हीं लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, महारात्रि और महामोहस्वरूप और तुम्हीं ध्रुवा अर्थात् नित्या हो तुमको नमस्कार है ।२१। हे नारायणि ! तुम्हीं मेधा, सरस्वती, श्रेष्ठा, बाभ्रवी, भूति और तामसी हो तुमको नमस्कार है । हे नियते ! हे ईशे ! तुम प्रसन्न होओ ।२२। तुम सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर, मुख, श्रवण, नासिकावाली हो अर्थात् यह समष्टि शिर आदि तुम्हारे ही स्वरूप हैं हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ।२३। हे देवि ! तुम सर्वरूप ईश्वरी सर्वशक्तिसमन्वित हो अत एव हमारी भय से रक्षा करो, हे दुर्गे ! हे देवि ! तुमको नमस्कार है ।२४। हे कात्यायनि ! तुम्हारा यह तीन नेत्रों से विभूषित सौम्य मुख सब प्राणियों से हमारी रक्षाकरो, हे देवि ! तुमको नमस्कार है ।२५। हे भद्रकालि ! तुम्हारा यह जल ज्वालाओं से कराल अति उग्र और संपूर्ण असुरों को नाश करने वाला त्रिशूल हमारी भय से रक्षा करे, तुमको नमस्कार है ।२६। शब्द द्वारा संपूर्ण जगत् को पूर्ण करके जो घंटा दैत्यों के तेज का नाश करता है, तुम्हारा वह घंटा पुत्र के समान हमारे संपूर्ण पापों से रक्षा करे ।२७। हे चण्डिके ! हम तुमको नमस्कार करते हैं, असुरों के रक्त और वसा (चरबी) रूप पंक द्वारा चर्चित और किरणों से उज्ज्वल यह तुम्हारे हाथ का शोभायमान खड्ग हमारा मंगल करे ।२८। हे देवि ! संतुष्ट होने पर रोग विनाश करती हो और रुष्ट होने पर सब

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा ददासि कामान्सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥२९
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्त्ति कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥३०
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।
ममत्वगर्त्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयस्येतदतीव विश्वम् ॥३१
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥३२
विश्वेश्वरी त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ती विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥३३
देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीतेर्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः ।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥३४
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्त्तिहारिणि । त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥३५

श्रीदेव्युवाच

वरदाहं सुरगणाः वरं यं मनसेच्छथ । तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥३६

अभिलषित और प्रियवस्तुहरण करती हो । हे देवि ! तुम्हारे आश्रित मनुष्यों को विपद् नहीं रहती और जो तुमको आश्रय करते हैं, वह सब के आश्रयस्वरूप होते हैं ।२९। और हे देवि ! अनेक प्रकार की मूर्ति धारण करके जो आज तुमने धर्म के शत्रु ऐसे बड़े बड़े असुरों का वध किया है, सो क्या कोई अन्य स्त्री कर सकती है ।३०। और चतुर्दश विद्याओं के तथा षट्शास्त्रों के और ज्ञानरूपी दीपक ऐसे आद्यावाक्य कहिये वेदों के वर्त्तमान रहने पर भी घोर अंधकारवाले इस ममतारूपी गड्ढे में इस जगत् को तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा कौन अधिक घुमा सकता है ।३१। हे देवि ! जिस स्थान में राक्षस हैं, जिस स्थान में क्रूर सर्प हैं, जिस स्थान में शत्रु हैं, जिस स्थान में चोरों के झुंड हैं और जिस स्थान में दावानल है, तुम उसी उसी स्थान और समुद्र में स्थित होकर विश्व की रक्षा करती हो ।३२। हे देवि ! तुम विश्वेश्वरी हो, क्योंकि इस विश्व की रक्षा करती हो, तुम्हीं विश्वात्मिका हो । कारण कि, विश्व को धारण कर रही हो और विश्वेश्वरादि अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि की भी वन्दनीया हो क्योंकि जो ब्रह्मादि देवता विश्व का आश्रय हैं, वह भी तुम्हारे प्रति भक्तिनम्र होते हैं और जो मनुष्य तुम्हारे प्रति भक्तिनम्र होते हैं, वह विश्व का आश्रय होते हैं ।३३। हे देवि ! प्रसन्न होओ और जिस प्रकार असुरों का वध करके इस समय रक्षा की है, इसी प्रकार शत्रुभय से हमारी सदा रक्षा करो । और संपूर्ण जगत् के पापों का तथा उत्पातों के होने से उठे हुए जो जो महामारी आदि उपद्रव हैं, उनको शीघ्र शान्त करो ।३४। हे संसार की आपत्ति को दूर करने वाली देवि ! प्रणत मनुष्यों के ऊपर प्रसन्न होओ, हे त्रैलोक्यवासियों की पूजनीय ! तुम समस्त मनुष्यों को वर देने वाली होओ ।३५

देवी ने कहा—हे सुरगण ! मैं वरदा अर्थात् वर देने वाली हूँ, तुम तीनों जगत् के उपकार करने वाली जिस वर की मन में इच्छा करते हो, वह माँगो मैं उसको दूँगी ।३६

देवा ऊचुः

सर्वबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि । एवमेतत्त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ।।३७

श्रीदेव्युवाच

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे । शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ।।३८
नन्दगोपकुले जाता यशोदा गर्भसम्भवा । ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी ।।३९
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले । अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ।।४०
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान्वैप्रचित्तान्सुदानवान् । रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ।।४१
ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः । स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ।।४२
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्टयामनंभसि । मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा ।।४३
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् । कीर्त्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ।।४४
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः । भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ।।४५
शाकंभरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि । तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ।।
(दुर्गादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति । पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले) ।।४६
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।।४७
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः । भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।।४८
यदाऽरुणाख्यैस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति । तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।।४९

देवता बोले—हे अखिलेश्वरि ! त्रैलोक्य के सर्व प्रकार विघ्नों को शान्ति करो और इसी भाँति हमारे शत्रुओं को विनाश करती रहो, यही हमारा वर है ।३७

देवी ने कहा—वैवस्वत मन्वन्तर में जब अठ्ठाईसवां युग आवेगा, तब शुंभ और निशुंभ नामक अन्य दो महाअसुर जन्म ग्रहण करेंगे ।३८। तब मैं नन्दगोप के घर यशोदा के गर्भ से जन्मग्रहणपूर्वक विन्ध्याचलवासिनी होकर उनका भी विनाश करूँगी ।३९। फिर पृथ्वीतल में अत्यन्त भयंकररूप से अवतीर्ण होकर मैं वैप्रचित्त नामक दानवों का हनन करूँगी ।४०। उन वैप्रचित्त नामक उग्र असुरों के भक्षणकाल में मेरे दाँत दाडिमी कुसुम के समान रक्तवर्ण हो जायेंगे ।४१। अनन्तर स्वर्ग में देवता और मर्त्य में मनुष्यगण स्तव करने के समय सदा मुझको "रक्तदन्तिका" कहकर कीर्त्तन करेंगे ।४२। और फिर जब सौ वर्ष पर्यन्त वर्षा नहीं होगी, तब जल के अभाव में मुनिगण मेरी स्तुति करेंगे, उस काल मैं मनुष्य योनि के बिना ही उत्पन्न होऊँगी ।४३। तब मैं सौ नेत्रों के द्वारा मुनियों को देखूंगी, इसलिये मुनिगण मुझको "शताक्षी" कहेंगे ।४४। इसके बाद जब तक वर्षा नहीं होगी, तब तक हे देवताओं ! स्वकीय देह से उत्पन्न प्राणधारक शाकद्वारा संपूर्ण लोकों का पोषण करूँगी ।४५। इसकारण मैं पृथ्वी में "शाकम्भरी" नाम से विख्यात होऊँगी और उस अनावृष्टिकाल में ही दुर्गम नामक महाअसुरों का वध करूँगी । फिर जब मैं मुनियों की रक्षा करने के लिये हिमाचल में भयंकर रूप धारण करके राक्षसों को मारूँगी ।४६-४७। उस काल समस्त मुनिगण नम्रमूर्ति होकर मेरी स्तुति करेंगे और मेरा 'भीमादेवी' यह नाम विख्यात होगा ।४८। और जिस समय में अरुण नामक महाअसुर त्रैलोक्य को महाबाधा करेगा, उसकाल में

त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् । भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।।५०
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति । तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ।।५१
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये नारायणीस्तुतिर्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ।८८।

अथैकोननवतितमोऽध्यायः

शुम्भनिशुम्भवधवर्णनम्

श्रीदेव्युवाच

एभिःस्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः । तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ।।१
मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् । कीर्त्तयिष्यन्ति ये तद्वधं शुम्भनिशुम्भयोः ।।२
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः । स्तोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ।।३
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्दुष्कृतोत्था न चापदः । न भविष्यति दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ।।४
शत्रुतो न भयं तेषां दस्युतो वा न राजतः । न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्संभविष्यति ।।५
तस्मान्ममैतन्महात्म्यं पठितव्यं समाहितैः । श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं महत् ।।६
उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् । तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ।।७
यत्रैतत्पठ्यते सम्यक् नित्यमायतने मम । सदा न तद्विमोक्ष्यामि सानिध्यं तत्र मे स्थितम् ।।८

असंख्य षट्पदसमन्वित भ्रमरों का रूप धारण करके ।४९। त्रैलोक्य का हित करने के लिये उस असुर का वध करुँगी, इस कारण मनुष्य मेरा (भ्रामरी) के नाम से स्तव करेंगे ।५०। इस प्रकार जब-जब दानवों की हुई बाधा उपस्थित होगी, तब तब मैं अवतार लेकर शत्रुओं का विनाश करूँगी ।५१

श्रीमार्कण्डेयपुराण के देवीमाहात्म्य कथन में नारायणीस्तुतिवर्णन
नामक अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ।८८।

अध्याय ८९

शुम्भनिशुम्भवध नामक वर्णन

देवी बोली—इन सब स्तवों से सावधान होकर जब मनुष्य मेरी नित्य स्तुति करेगा, मैं उसकी संपूर्ण बाधा नष्ट करूँगी, इसमें सन्देह नहीं ।१। मधुकैटभ महिषासुर और शुंभनिशुंभवधरूप मेरा उत्तम माहात्म्य एकाग्र चित्त से भक्तिसहित जो अष्टमी, चर्तुदशी अथवा नवमी तिथि में कहेंगे या सुनेंगे ।२-३। उनका कुछ पाप या पाप से उत्पन्न हुई कोई आपत्ति नहीं रहेगी और दारिद्र्य तथा प्रिय जनों का विय़ोग नहीं होगा ।४। शत्रु से, चोरों से, अथवा राजा से किसी स्थल में भय नहीं होगा और शस्त्र, अनल तथा जल से भी कभी भय नहीं होगा ।५। इस कारण मेरा माहात्म्य सावधान होकर पढ़े और सुने । मेरा यह माहात्म्य ही सर्वोत्तम स्वस्त्ययन है।६। यह मेरा माहात्म्य महामारी से उत्पन्न हुए समस्त उपद्रवों को और तीन प्रकार से उत्पात को शमन करता है।७। जिस घर में मेरा यह माहात्म्य सम्यक् प्रकार पढ़ा जाता

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे । सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥९
जानताजानता वापि बलिं पूजां तथा कृताम् । प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥१०
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी । तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥११
सर्वबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः । मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१२
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथोत्पत्तीः पृथक् शुभाः । पराक्रमांश्च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१३
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते । नन्दते च कुलं पुसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥१४
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने । ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥१५
उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः । दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥१६
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् । संघातभेदं च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१७
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् । रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥१८
सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ॥१९
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ।विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रेक्षणीयैरहर्निशम् ॥२०
अन्यैश्च विवधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या । प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन्सकृदुच्चरितश्रुते ॥२१
श्रुतं हरति पापानि तथारोग्यं प्रयच्छति । रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्त्तनं मम ॥२२

है, मैं उस घर को परित्याग नहीं करती और उसी के समीप स्थित रहती हूँ ।८। बलि देने के समय, पूजा के समय तथा होमकार्य इत्यादि महोत्सव में मेरा यह संपूर्ण चरित्र उच्चारण और श्रवण करना चाहिए ।९। मनुष्यगण जानकर या बिना जाने जो कुछ बलि-पूजा करते हैं या अग्नि में होम करते हैं, उस सबको मैं प्रसन्नतासहित ग्रहण करती हूँ ।१०। शरत्काल में जो वार्षिकी महापूजा की जाती है, उस पूजा के समय मेरा यह माहात्म्य भक्तियुक्त होकर श्रवण करने पर ।११। मनुष्य मेरे प्रसाद से संपूर्ण विपद् से छूट जाते हैं, और धन, धान्य तथा पुत्रयुक्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।१२। मेरा यह माहात्म्य, इस शुभ उत्पत्ति की कथा और युद्ध में पराक्रम सुनने से मनुष्य निर्भय होता है ।१३। उसके शत्रु नष्ट होते हैं और कल्याण होता है । मेरे माहात्म्य सुनने वाले पुरुष का कुल आनन्दयुक्त होता है ।१४। सब शान्ति कर्मों में, दुःस्वप्न देखने में और भयंकर ग्रहपीडा के समय मेरा माहात्म्य सुने ।१५। इसके सुनने से उपद्रव और दारुण ग्रहपीडा शान्त होती है और मनुष्य को देखे हुए दुःस्वप्न के समान श्रेष्ठ फल प्रदान करते हैं ।१६। यह मेरा माहात्म्य पूतना, डाकिनी, शाकिनी, बालग्रहों से ग्रसित हुए बालकों की शान्ति करने वाला है, और यदि मनुष्यों में परस्पर फूट हो जाय, तो उत्तमरीति से मित्रता कराने वाला है ।१७। और सम्पूर्ण दुराचारी जनों के परमबल की हानि करने वाला है, इसके पाठ करने से ही राक्षस, भूत और पिशाचों का नाश हो जाता है ।१८। यह मेरा माहात्म्य पाठ को मेरे समीप करने वाला है । यह आदि, मध्य, अवसान में सर्वथा मेरी सब प्रकार प्रसन्नता करता है ।१९। उत्कृष्ट पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, गंध, दीप, ब्राह्मणभोजन, होम, प्रोक्षणीय ।२०। और अन्यान्य विविध भोग द्वारा एक वर्ष तक रातदिन पूजा करने से मैं जितनी प्रसन्न होती हूँ, इस माहात्म्य को केवल एक बार सुनने से ही उतनी प्रसन्न हो जाती हूँ ।२१। मेरा माहात्म्य सुना जाने से सब पापों को हरता है और आरोग्यता प्रदान करता है, मेरे जन्म

युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् । तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ॥२३
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः । ब्रह्मणा च कृता यास्ताः प्रयच्छन्ति शुभा गतिम् ॥२४
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः । दस्युभिर्वा युतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ॥२५
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः । राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्ते वध्ये बन्धगतोऽपि वा ॥२६
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे । पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ॥२७
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा । स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात् ॥२८
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा । दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥२९

ऋषिरुवाच

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा । पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ॥३०
तेऽपि देव्या निरान्तकाः स्वाधिकारान्यथा पुरा । यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ॥३१
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि । जगद्विध्वंसके तस्मिन्महोग्रेऽतुलविक्रमे ॥
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥३२
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः । सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥३३
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते । सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥३४

का कीर्त्तन करने पर भूतों से रक्षा होती है ।२२। तथा युद्धों में जो दुष्ट दैत्यों के नाश का चरित्र है, उसके श्रवण करने पर पुरुष को शत्रु से किया हुआ भय नहीं होता है ।२३। तुमने जो स्तुति की है, तथा ब्रह्मर्षियों ने जो स्तुतियाँ की हैं और ब्रह्मा जी ने जो स्तव कियां है, उन सब स्तुतियों के पढ़ने पर वह शुभ मति देती है ।२४। चोरों से घिरने पर, मित्ररहित स्थान में शत्रुओं से घिरने पर वन में प्रान्तर में दावाग्नि से पीडित होने पर ।२५। सिंह या व्याघ्र के पीछे दौडने पर वन में वन के हाथियों से घिरने पर अग्नि में गिरने पर क्रुद्ध राजा के द्वारा वध की आज्ञा दी जाने पर बंधन में प्राप्त होने पर ।२६। महासमुद्र में छोटी डोंगी पर बैठनेके कारण वायुद्वारा आघूर्णित होने पर, अत्यन्त भयंकर संग्राम में शस्त्रसमूह के गिरने पर ।२७। अधिक क्या ? सब प्रकार की विपत्तियों में ही यंत्रणा से ग्रसित होने पर मनुष्य यदि मेरा चरित्र स्मरण करे तो संपूर्ण संकट से छूट जाता है ।२८। मेरे चरित्र को जो मनुष्य स्मरण करता है, उसको देखकर मेरे प्रभाव से सिंहादि हिंसक जन्तु, चोर और शत्रुगण दूर भाग जाते हैं ।२९

ऋषि बोले—इस प्रकार कहकर उग्र पराक्रमवाली चण्डिका देखते हुए देवताओं के सामने से उसी स्थान में अन्तर्धान हो गई ।३०। तब वह शत्रुरहित देवता भी निर्भय यज्ञभाग भोजन करते हुए अपने विषय का अधिकार करने लगे ।३१। जगत् के विध्वंस करने वाले अतुल विक्रम देवशत्रु शुंभ और महावीर्यवान् जब युद्ध क्षेत्र में देवी के हाथ से मारे गये, तब बचे हुए दैत्यों ने पाताल में गमन किया ।३२। हे भूप ! वह देवी भगवती नित्या होने पर भी इस प्रकार वारंबार उत्पन्न होकर जगत् का पालन करती हैं ।३३। वही भगवती इस विश्व को मोहित करती हैं, वही इस विश्व को प्रसव (उत्पन्न) करती हैं और उनके निकट प्रार्थना करने से वह संतुष्ट होकर तत्त्वज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करती हैं।३४। हे मनुजेश्वर !

व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर । महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ।।३५
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा । स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ।।३६
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मी वृद्धिप्रदा गृहे । सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ।।३७
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्गन्धधूपादिभिस्तथा । ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ।।३८

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये शुम्भनिशुम्भवधवर्णनं
नामैकोननवतितमोऽध्यायः ।८९।

अथ नवतितमोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यवर्णनम्

ऋषिरुवाच

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् । एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ।।१
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया । तथा त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ।।
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ।।२
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् । आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ।।३

यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड उनसे ही व्याप्त हो रहा है और प्रलयकाल में महामारीरूपा महाकाली से व्याप्त होता है ।३५। और वही, जब काल आता है तो महामारीरूप हो जाती है, तथा संसारोत्पत्ति के समय वही सृष्टिरूप हो जाती है और रक्षाकाल में वही सनातनी देवी प्राणियों की रक्षा करती हैं ।३६। मंगल के समय में वही मनुष्यों के घर में अनेक प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करती हैं और उसी के अभाव में बिनाश के निमित्त लक्ष्मी अन्तर्धान हो जाती हैं ।३७। उसकी स्तुति करने और गन्ध, पुष्प, धूप, दीपादिद्वारा पूजा करने से वह धन, पुत्र और धर्म में शुभमति प्रदान करती हैं ।३८

श्रीमार्कण्डेयपुराण के देवीमाहात्म्य कथन में शुम्भनिशुम्भवध
नामक वर्णन का नवासीवाँ अध्याय समाप्त ।८९।

अध्याय ९०

देवीमाहात्म्य वर्णन

ऋषि बोले—हे राजन् ! आपके निकट मैंने यह उत्तम देवी माहात्म्य कहा । जो इस जगत् को धारण कर रही हैं, उनका प्रभाव इस प्रकार है वही भगवती विष्णु माया ही तत्त्वज्ञान देती हैं वही तुमको इस वैश्य और अन्यान्य विवेकी पुरुषों को भी मोहित करती हैं और किया है तथा उनके द्वारा ही भविष्य प्राणी मोहित होंगे ।१-२। हे महाराज ! उन भगवती परमेश्वरी की ही शरण में आओ । उनकी आराधना करने से ही वह मनुष्य को भोग, स्वर्ग और मुक्ति प्रदान करती हैं ।३

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः । प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं संशितव्रतम् ।।४
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च । जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।।५
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः । स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।।६
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्ति महीमयीम् । अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ।।७
निराहारौ यतात्मानौ तन्मनस्कौ समाहितौ । ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ।।८
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैयतात्मनोः । परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ।।९

श्रीदेव्युवाच

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूय त्वया च कुलनन्दन । मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ।।१०

मार्कण्डेय उवाच

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यग्रजन्मनि । अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ।।११
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः । ममेत्यहमिति प्राज्ञः संगविच्युतिकारकम् ।।१२

श्रीदेव्युवाच

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् । हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ।।१३

मार्कण्डेय जी बोले—हे महामुने ! अतिशय ममता और राज्य हरण हो जाने से अत्यन्त दुःखित वह नराधिप सुरथ ऋषि के यह वचन सुन कठोर व्रत सम्पन्न उन महाभाग ऋषि को प्रणाम कर तत्काल तपस्या के लिये चले गये और वह वैश्य भी इसी प्रकार तपस्या के लिये चला गया ।४-५। वह राजा और वैश्य नदी के किनारे स्थित हो भगवती के दर्शनार्थ उत्कृष्ट देवीसूक्त का जप करते हुए तपस्या में रत हुए ।६। वैश्य और राजा ने उस पुलिन में देवी की मिटटी के द्वारा मूर्ति बनाकर, पुष्प, धूप, होम और तर्पण इत्यादि से उसकी पूजा की ।७। उन्होंने कभी निराहार और नियमिताहारपूर्वक उसमें चित्त लगाकर तथा सावधान हो अपने अपने देह से रक्त टपकाकर बलि दी ।८। इस प्रकार संयतचित्त हो तीन वर्ष आराधना करने पर जगद्धात्री चण्डिका ने संतुष्ट होकर उनसे प्रत्यक्ष कहा ।९।

देवी बोली—हे राजन् ! तुम जो प्रार्थना करते हो, और हे कुलनन्दन वैश्य ! तुम भी जो प्रार्थना करते हो, तुम मेरे निकट से उन सब को प्राप्त होंगे, मैं संतुष्ट होकर वह प्रदान करती हूँ ।१०

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर राजा ने दूसरे जन्म में अखंडित राज्य और इस जन्म में बलप्रकाशपूर्वक शत्रुओं को वध करके जिससे अपना राज्य प्राप्त कर सकूँ यह वर माँगा ।११। और दुःखितचित्त उस बुद्धिमान् वैश्य ने भी "यह मेरा" और "यह मैं" इस प्रकार के मोह के संग का नाशक ज्ञान माँगा ।१२

देवी बोली—हे नृपते ! तुम थोडे ही दिनों में शत्रुकुल निर्मूलन करके अपने राज्य को प्राप्त होगे और इसके बाद फिर तुम्हें राज्य से भ्रष्ट होना नहीं पड़ेगा ।१३। फिर मृत्यु के उपरान्त तुम सूर्य देव से

मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः । सावर्णिको नाम मनुर्भवान्भुवि भविष्यति ॥१४
वैश्यवर्य त्वयास्मत्तो वरो यश्चाभिवाञ्छितः । तं प्रयच्छामि संसिद्धयै तव ज्ञानं भविष्यति ॥१५

मार्कण्डेय उवाच

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् । बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ॥१६
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः । सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥१७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सूर्यसावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये नवतितमोऽध्यायः ।९०।

॥ सम्पूर्णं देवीमाहात्म्यम् ॥

अथैकनवतितमोऽध्यायः

रौच्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सावर्णिकमिदं सम्यक्प्रोक्तं मन्वन्तरं तव । तथैव देवीमाहात्म्ये महिषासुरघातनम् ॥१
उत्पत्तयश्च या देव्या मातृणां च महाहवे । तथैव सम्भवो देव्याश्चामुण्डाया यथा भवः ॥२
शिवदूत्याश्च माहात्म्यं वधः शुम्भनिशुम्भयोः । रक्तबीजवधश्चैव सर्वमेतत्तवोदितम् ॥३
श्रूयतां मुनिशार्दूल सावर्णिकमथापरम् । दत्तपुत्रश्च सावर्णिर्भावी यो नवमो मनुः ॥४
कथयामि मनोस्तस्य ये देवा मुनयो नृपाः । पारा मरीचिभर्गाश्च सुधर्माणस्तथा सुराः ॥५

उत्पत्ति लाभ करके सावर्णिनाम से विख्यात मनु होगे ।१४। हे वैश्यश्रेष्ठ ! तुमने भी जिस वर की प्रार्थना की तुम्हारी सिद्धि के लिये वह तुमको देती हूँ, तुमको ज्ञान होगा ।१५

मार्कण्डेय जी बोले—देवी उनको इस प्रकार यथाभिलषित वर देकर तत्काल अन्तर्धान हो गई । अन्तर्धान होने के पहले उन्होंने भी उनका भक्तिपूर्वक स्तव किया था ।१६। इस प्रकार क्षत्रिय श्रेष्ठ सुरथ देवी के निकट से वर पाकर सूर्य देव से उत्पत्ति लाभ कर पृथ्वी में सावर्णिनामक मनु होंगे ।१७

श्रीमार्कण्डेयपुराण के सूर्यसावर्णि के कथन में देवीमाहात्म्य वर्णन
नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ।९०।

अध्याय ९१

रौच्य नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुनिसत्तम ! यह सावर्णिक मन्वन्तर तुमसे कहा गया और इसी के प्रसंग में देवीमाहात्म्य, महिषासुरविनाश ।१। महायुद्ध में मातृगणों की और देवी की उत्पत्ति चामुण्डा देवी की उत्पत्ति ।२। शिवदूती का माहात्म्य, शुम्भ-निशुम्भवध और रक्तबीज, इन सब का भी सम्यक् प्रकार तुमसे वर्णन किया ।३। हे मुनिशार्दूल ! अब होने वाले नवम मनु दक्ष-पुत्र सावर्ण के मन्वन्तर का वर्णन करता हूँ, सुनो ।४। उस मनु के मन्वन्तर में जो-जो देवता, जो-जो ऋषि और जो-जो राजा होंगे, वह कहता हूँ ।

एते त्रिधा भविष्यन्ति सर्वे द्वादशका गणाः । तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु सहस्राक्षो महाबलः ॥६
साम्प्रतं कार्तिकेयो यो वह्निपुत्रः षडाननः । अद्‌भुतो नाम शक्रोऽसौ भावी तस्यान्तरे मनोः ॥७
मेधातिथिर्वसुः सत्यो ज्योतिष्मान्द्युतिमांस्तथा । सप्तर्षयोऽन्यः सबलस्तथान्यो हव्यवाहनः ॥८
धृष्टकेतुर्बर्हकेतुः खड्गहस्तो निरामयः । पृथुश्रवास्तथार्चिष्मान्भूरिद्युम्नो बृहद्भयः ॥९
एते नृपसुतास्तस्य दत्तपुत्रस्य वै नृपाः । मनोस्तु दशमस्यान्यच्छृणु मन्वन्तरं द्विज ॥१०
मन्वन्तरे च दशमे ब्रह्मपुत्रस्य धीमतः । सुखासीना निरुद्धाश्च द्विप्रकाराः सुराः स्मृताः ॥११
शतसंख्या हि ते देवा भविष्या भाविनो मनोः । यत्पुत्राणां शतं भावि तद्देवानां तदा शतम् ॥१२
शान्तिरिन्द्रस्तथा भावी सर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः । सप्तर्षीस्तान्निबोध त्वं ये भविष्यन्ति वै तदा ॥१३
आपोमूर्तिर्हविष्मांश्च सुकृती सत्य एव च । नाभागोऽप्रतिमश्चैव वासिष्ठश्चैव सप्तमः ॥१४
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिषेणश्च वीर्यवान् । शतानीकोऽथ वृषभो ह्यनमित्रो जयद्रथः ॥१५
भूरिद्युम्नः सुपर्वा च तस्यैते तनया मनोः । भविष्या धर्मपुत्रस्य सावर्णस्यान्तरं शृणु ॥१६
विहङ्गमाः कामगाश्च निर्माणरतयस्तथा । त्रिःप्रकारा भविष्यन्ति एकैकस्त्रिंशको गणः ॥१७
मासर्तुदिवसा ये तु निर्माणपतयस्तु ते । विहङ्गमा रात्रयोऽथ मौहूर्त्ताः कामगा गणाः ॥१८
इन्द्रो वृषाख्यो भविता तेषां प्रख्यातविक्रमः । हविष्मांश्च वरिष्ठश्च ऋष्टिरन्यस्तथारुणिः ॥१९
निश्चरश्चानघश्चैव विष्टिश्चान्योमहामुनिः । सप्तर्षयोऽन्तरे तस्मिन्नग्नितेजाश्च सप्तमः ॥२०

पारा, मरीचि, भर्ग और सुधर्मदेवताओं के ।५। यह तीन गण और प्रत्येक गण में द्वादश-संख्यक देवता है । इस समय जो वह्नि-पुत्र षडानन कीर्त्तिकेय वर्त्तमान हैं, वही इस भावी मन्वन्तर में अद्भुत नामक महाबलशाली सहस्राक्ष इन्द्र होंगे ।६-७। मेघातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सबल और हव्यवाहन यह उस समय सप्तर्षि होंगे ।८। धृष्टकेतु, बर्हकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवाः, अर्चिष्मान्, भूरिद्युम्न और बृहद्भय ।९। यह कई दक्षपुत्र सावर्ण मनु के पुत्र राजा होंगे । हे द्विज ! इसके बाद दशवें मनु के अन्य मन्वन्तर को सुनो ।१०। इस मन्वन्तर में बुद्धिमान् ब्रह्मा जी के पुत्र दशवें मनु होंगे तथा उनके मन्वन्तर सुखासीन और निरुद्धादि नामक तीन प्रकार के देवता होंगे ।११। भावी मनु के मन्वन्तर में भविष्य देवता शतसंख्यक अर्थात् सौ हैं, क्योंकि इस मन्वन्तर में प्राणियों की संख्या शत है, इस कारण देवताओं की संख्या भी शत होगी ।१२। इन्द्र के संपूर्ण गुणों से युक्त शान्ति ही उस समय इन्द्र होंगे और जो सप्तर्षि होंगे, उनका विषय कहता हूँ सुनो ।१३। आपोमूर्ति, हविष्यमान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम और सप्तम वसिष्ठ, यह सप्तर्षि हैं ।१४। सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिषेण, वीर्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जयद्रथ ।१५। भूरिद्युम्न और सुपर्वा यह कई दशम मनु के पुत्र हैं, भावी मनु धर्मपुत्र सावर्ण का मन्वन्तर सुनो ।१६। विहंगम, कामग और निर्माणपति, देवताओं के यह तीन प्रकार के गण हैं और प्रत्येक गण में तीस देवता रहेंगे ।१७। जो मास, ऋतु और दिवस है, वही निर्माणपति हैं, रात्रि विहङ्गम देवता और समस्त मुहूर्तजात विषय कामग देवताओं के गण हैं ।१८। प्रसिद्धपराक्रम वृषाख्य उनके इन्द्र होंगे । इस मन्वन्तर में हविष्यमान् वरिष्ठ, अरुणतनय ऋषि ।१९। निश्चर, अनघ, महामुनि विशिष्ट और सप्तम अग्नि देव, यही सप्तर्षि हैं ।२०। सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरूद्वह, हेमधन्वा और दृढायु, यह उस

सर्वत्रगः सुशर्मा च देवानीकः पुरूद्वहः । हेमधन्वा दृढायुश्च भाविनस्तत्सुता नृपाः ॥२१
द्वादशे रुद्रपुत्रस्य प्राप्ते मन्वन्तरे मनोः । सावर्णाख्याश्च ये देवा मुनयश्च शृणुष्व तान् ॥२२
सुधर्माणः सुमनसो हरितो रोहितस्तथा । सुवर्णाश्च सुरास्तत्र पञ्चैते दशका गणाः ॥२३
तेषामिन्द्रस्तु विज्ञेय ऋतधामा महाबलः । सर्वैरिन्द्रगुणैर्युक्ताः सप्तर्षीनपि मे शृणु ॥२४
द्युतिस्तपस्वी सुतपास्तपोमूर्तिस्तपोनिधिः । तपोरतिस्तथैवान्यः सप्तमस्तु तपोधृतिः ॥२५
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः । मित्रवान्मित्रविन्दश्च भाविनस्तत्सुता नृपाः ॥२६
त्रयोदशस्य पर्यायै रौच्याख्यस्य मनोः सुरान् । सप्तर्षींश्च नृपाञ्श्चैव गदतो मे निशामय ॥२७
सुधर्माणः सुरास्तत्र सुकर्माणस्तथापरे । सुशर्माणः सुरा ह्येते समस्ता मुनिसत्तम ॥२८
महाबलो महावीर्यस्तेषामिन्द्रो दिवस्पतिः । भविष्यानथ सप्तर्षीन्गदतो मे निशामय ॥२९
धृतिमानव्ययश्चैव तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः ।निर्मोहः सुतपाश्चान्यो निष्प्रकम्पश्च सप्तमः ॥३०
चित्रसेनो विचित्रश्च नियतिर्निर्भयो दृढः । सुनेत्रः क्षत्रबुद्धिश्च सुव्रतश्चैव तत्सुताः ॥३१

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे रौच्यमन्वन्तर एकनवतितमोऽध्यायः ।९१।

मनु के पुत्र और भावी नरपति होंगे ।२१। रुद्रपुत्र सावर्णमनु के बारहवें मन्वन्तर में जो देवता और मुनि होंगे, अब उनका विषय सुनो ।२२। सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित और सुवर्ण, उस मन्वन्तर में यह पाँच प्रकार के देवगण हैं और प्रत्येक गण में दश देवता रहेंगे ।२३। संपूर्ण इन्द्र के गुणों से युक्त महाबलवान् ऋतधामा को उनका इन्द्र जानना चाहिये । अब मुझसे सप्तर्षियों का विषय सुनो ।२४। द्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति और सप्तम तपोधृति, यही सप्तर्षि हैं ।२५। देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान् और मित्रविन्द यही उस भावी मनु के पुत्र और राजा होंगे ।२६। रौच्य नामक तेरहवें मनु की पर्यायप्राप्ति में सप्तर्षि और उसको जो पुत्र राजा होंगे, उनका विषय कहता हूँ, सुनो ।२७। हे मुनिसत्तम ! उस मन्वन्तर में सुधर्मा, सुकर्मा, और सुशर्मा यह सब देवता हैं ।२८। महाबल महावीर्य दिवस्पति उनके इन्द्र होंगे । अब भविष्यत् सप्तर्षियों का विषय कहता हूँ, सुनो ।२९। धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और सप्तम निष्प्रकम्प यही सात जन सप्तर्षि हैं ।३०। चित्रसेन, विचित्र, नियति, निर्भय, दृढ, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि और सुव्रत, यही रौच्यमनु के पुत्र होंगे ।३१

श्रीमार्कण्डेयपुराण में रौच्यवर्णन नामक एक्यानबेवां अध्याय समाप्त ।९१।

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

रुच्युपाख्यानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

रुचिः प्रजापतिः पूर्वं निर्ममो निरहंकृतः । यत्रास्तमितशायी च चचार पृथिवीमिमाम् ।।१
अनग्निमनिकेतं तमेकाहारमनाश्रमम् । विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुस्तत्पितरो मुनिम् ।।२

पितर ऊचुः

वत्स कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसंग्रहः । स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद्बन्धस्तेनानिशं विना ।।३
गृही समस्तदेवानां पितृणां च तथार्हणाम् । ऋषीणामतिथीनां च कुर्वंल्लोकानुपाश्नुते ।।४
स्वाहोच्चारणतो देवान्स्वधोच्चारणतः पितॄन् । विभजत्यन्नदानेन भूताद्यानतिथीनपि ।।५
स त्वं दैवादृणाद्बन्धं बन्धमस्मदृणादपि । अवाप्नोषि मनुष्यर्षिभूतेभ्यश्च दिनेदिने ।।६
अनुत्पाद्य सुतान्देवानसन्तर्प्य पितॄंस्तथा । भूतादींश्च कथं मौढचात्सुगतिं गन्तुमिच्छसि ।।७
क्लेशमेवैहिकं पुत्र मन्यामोऽत्र भवेत्तव । मृतस्य नरकं तद्वत्क्लेशमेवान्यजन्मनि ।।८

रुचिरुवाच

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतेस्तथा । भवत्यतो मया पूर्वं न कृतो दारसंग्रहः ।।९

अध्याय ९२

रौच्य नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—पूर्वकाल में प्रजापति रुचि ममतारहित, अहंकाररहित और पर्यटन में जहाँ सूर्यास्त हो वहाँ शयन करने वाला होकर इस पृथ्वी में विचरण करते थे ।१। उनके पितर उनको अग्रिहींन, गृहहीन, एकाहार, आश्रमहीन और संगत्यागी मुनिव्रतचारी देखकर इस प्रकार कहने लगे ।२

पितरों ने कहा—हे वत्स ! तुमने दारपरिग्रह (विवाह) रूप पवित्रकार्य क्यों नहीं किया वह स्वर्ग और मुक्ति का कारण होने से विवाह के बिना समस्त ही बंधन है ।३। सम्पूर्ण देवता, पितर, पूज्य ऋषि और अतिथिगणों का सत्कार करके गृही पुरुष स्वर्गादि लोक भोग करते हैं ।४। "स्वाहा" उच्चारण करके देवताओं की "स्वधा" उच्चारण करके पितरों की और अन्नदान द्वारा अतिथि की सेवा रूप तीन ऋण निबटाकर पुरुष गृही होता है, किन्तु तुम दिन दिन (गृही न होकर) देवऋण, पितृऋण, मनुष्य और संपूर्ण प्राणियों के निकट बंधन को प्राप्त होते हैं ।५-६। बिना पुत्र उत्पन्न किये तथा देवता और पितरों का बिना तर्पण किये और बिना कर्म किये मूर्खता से किस प्रकार श्रेष्ठगति प्राप्त करने की इच्छा करते हो ।७। हे पुत्र ! तुमको जो जो क्लेश होगा, उस प्रत्येक को हथ जानते हैं, मृत पुरुष के नरक भोगने के समान तुमको अन्य जन्म में अनेक प्रकार का क्लेश होगा ।८

रुचि ने कहा—दारपरिग्रह अर्थात् विवाह करना अत्यन्त दुःखप्रद और पाप का कारणस्वरूप है,

आत्मनः संयमो योऽयं क्रियतेऽक्षनियन्त्रणात् । स मुक्तिहेतुर्न भवत्यासावपि परिग्रहात् ॥१०
प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं यदात्मा निष्परिग्रहैः । ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि चित्ताम्भोभिर्वरं हि तत् ॥११
अनेकभवसंभूतकर्मपङ्कांकितो बुधैः । आत्मा सद्वासनातोयैः प्रक्षाल्यो नियतेन्द्रियैः ॥१२

पितर ऊचुः

युक्तं प्रक्षालनं कर्तुमात्मनो नियतेन्द्रियैः । किन्तु लेपाय मार्गोऽयं यत्र त्वं पुत्र वर्तसे ॥१३
पञ्चवर्णदीनैरशुभं नुद्यतेऽनभिसन्धितैः । फलैस्तथोपभोगैश्च पूर्वकर्मशुभाशुभैः ॥१४
एवं न बन्धो भवति कुर्वतः कारणात्मकः । न च बन्धाय तत्कर्म भवत्यनभिसन्धितम् ॥१५
पूर्वकर्म कृतं भोगैः क्षीयतेऽहर्निशं तथा । सुखदुःखात्मकैर्वत्स पुण्यापुण्यात्मकैर्नृणाम् ॥१६
एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धाच्च रक्ष्यते । न त्वेवमविवेकेन पापपङ्केन लिप्यते ॥१७

रुचिरुवाच

अविद्या पठ्यते वेदैः कर्ममार्गः पितामहाः । तत्कथं कर्मणो मार्गे भवन्तो योजयन्ति माम् ॥१८

पितर ऊचुः

अविद्या सत्यमेवैतत्कर्म नैतन्मृषावचः । किन्तु विद्यापरिप्राप्तौ हेतु कर्म न संशयः ॥१९
विहिताकरणात्पुंभिरसद्भिः क्रियते तु यः । संयमो मुक्तये नासौ प्रत्युताऽधोगतिप्रदः ॥२०

उससे ही अधोगति होती है इसीलिये पूर्व में मैंने विवाह नहीं किया ।९। इन्द्रियदमनहेतु जो आत्मसंयम किया जाता है, वही मुक्ति का कारण है, विवाह करना कभी मुक्ति का कारण नहीं हो सकता ।१०। परिग्रहहीन पुरुष ममतारूपी कीचड़ में लिप्त आत्मा को प्रतिदिन जो चित्तरूप जल से धोते हैं, वही उत्तम हैं ।११। अनेक जन्मजनित कर्मरूपी कीचड़ में लिप्त आत्मा को सद्वासनारूपी जल से धोना ही संयतेन्द्रिय बुद्धिमानों का कर्त्तव्य हैं ।१२

पितरों ने कहा—यद्यपि संयतेन्द्रिय पुरुषों को आत्मा का प्रक्षालन करना कर्त्तव्य है, किन्तु हे पुत्र ! तुमने जिस मार्ग का अवलम्बन किया है यह क्या मोक्ष प्राप्त होने का मार्ग है ।१३। जिस प्रकार कामनारहित दान से अशुभ नष्ट होता है इसी प्रकार शुभाशुभ फल भी उसका उपभोग करने से पूर्वजन्मार्जित कर्म क्षय होता है।१४। इस प्रकार करुणात्मक कर्मकारियों को संसारबंधन नहीं होता, क्योंकि अनभिसंधि तो उस कर्म बंधन का हेतु नहीं है ।१५। हे वत्स ! सुखदुःखात्मक भोगद्वारा मनुष्यों के पूर्वजन्मकृत पुण्यापुण्यात्मक कर्म रात-दिन क्षय को प्राप्त होते हैं ।१६। बुद्धिमान् मनुष्य आत्मा को इस प्रकार प्रक्षालन करें और बंधन से रक्षा करें, किन्तु अविवेक रूप पापपंकद्वारा आत्मा को लिप्त न करे।१७

रुचि ने कहा—हे पितामहगण ! वेद में कर्ममार्ग को अविद्या कहकर पढ़ा है, तो फिर किस निमित्त आप मुझको कर्ममार्ग में प्रवृत्त करते है ।१८

पितर बोले—यह कर्ममार्ग जो अविद्या है वह सत्य है और कर्मद्वारा ही यह वचन मिथ्या होता है, क्योंकि कर्म जो विद्याप्राप्ति का हेतु है, इसमें सन्देह नहीं है ।१९। समस्त कर्त्तव्य कार्य बिना किये असत् पुरुष मुक्ति के निमित्त जो संयम करते हैं, वह अन्त काल में अधोगति प्रदान करते हैं ।२०। हे वत्स ! तुम

प्रक्षालयामीति भवान्वसात्मानं तु मन्यते । विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वं तु विलिप्यसे ॥२१
अविद्याप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम् । अनुष्ठिताभ्युपायेन बन्धायान्यायतो हि सा ॥२२
तस्माद्वत्स कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसंग्रहम् । मां जन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्य तु लौकिकम् ॥२३

रुचिरुवाच

वृद्धोऽहं साम्प्रतं को मे पितरः सम्प्रदास्यति । भार्यां तथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसंग्रहः ॥२४

पितर ऊचुः

अस्माकं पतनं वत्स भवतश्चाप्यधोगतिः । नूनं भावि भवित्री च नाभिनन्दसि नो वचः ॥२५

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम । बभूवुःसहसाऽदृश्या दीपा वाताहता इव ॥२६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रुच्युपाख्याने द्विनवतितमोऽध्यायः ।९२।

मन में यह समझते हो कि, मैं "आत्मा को प्रक्षालन करता हूँ" किन्तु विहितकर्मसम्पादन न करने से उसके पाप में दग्ध होते हो ।२१। अपकारक विष जिस प्रकार मनुष्य का उपकार साधन करता है, इसी प्रकार यह अविद्या भी मनुष्य का उपकार करने वाली है। यह अन्यरूप होने पर भी अनुष्ठित कार्य कल्याणकारी उपाय के सहित हमारे पक्ष में मंगलदायक है ।२२। हे वत्स ! इस कारण तुम विधिवत् दारपरिग्रह अर्थात् विवाह करो, जिससे लौकिकधर्म सम्यक् प्रकार प्राप्त न होने के कारण तुम्हारा जन्म विफल न हो ।२३

रुचि ने कहा—हे पितृगण ! अब मैं वृद्ध हो गया हूँ अतएव कौन मुझको स्त्री देगा ? विशेष कर दरिद्र के पक्ष में भार्याग्रहण अत्यन्त दुष्कर (कठिन) है ।२४।

पितर बोले—हे वत्स ! यदि तुम हमारे वचन का अनुमोदन नहीं करोगे अर्थात् स्वीकार नहीं करोगे तो हमारा पतन और तुम्हारी भी अधोगति होगी ।२५।

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुनिसत्तम ! यह कहकर उनके पितर देखते-देखते वायु से बुझे हुए दीपक के समान सहसा अन्तर्धान हो गये ।२६

श्रीमार्कण्डेयपुराण में रौच्यवर्णन नामक बानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९२।

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

पितृस्तवनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

स तेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानसः । कन्याभिलाषी विप्रर्षिः परिबभ्राम मेदिनीम् ॥१
कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्याग्निदीपितः । चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥२
किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसंग्रहः । क्षिप्रं भवेत्पितृणां यो ममाभ्युदयकारकः ॥३
इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः । तपसाराधयाम्येनं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥४
ततो वर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे स वेधसम् । दिदृक्षुः सुचिरं कालं परं नियममास्थितः ॥५
ततः स्वं दर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः । उवाच तं प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥६
ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम् । पितृणां वचनात्तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ॥
ब्रह्मा चाह रुचिं विप्रं श्रुत्वा तस्याभिवाञ्छितम् ॥७

ब्रह्मोवाच

प्रजापतिस्त्वं भविता स्रष्टव्या भवता प्रजाः । सृष्ट्वा प्रजाः सुतान्विप्र समुत्पाद्य क्रियास्तथा ॥८
कृत्वा कृताधिकारस्त्वं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि । स त्वं यथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ॥९

अध्याय ९३

पितृस्तवन नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—वह विप्रर्षि रुचि इस प्रकार पितरों का वचन सुन अत्यन्त उद्विग्नमन हो और कन्या की अभिलाषा करके पृथ्वी में भ्रमण करने लगे ।१। पितरों के वचनरूपी अग्नि में दीप्तिमान् होकर वह कन्या प्राप्त न कर सकने के कारण अत्यन्त उद्विग्नमन से बड़ी चिन्ता में प्राप्त हुए ।२। "क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ! किस प्रकार से मेरे पितरों का अभ्युदय करने वाला मेरा दारपरिग्रह (विवाह) कार्य शीघ्र सम्पन्न हो" ।३। इस प्रकार चिन्ता करते-करते उन महात्मा को यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि "मैं तपस्या द्वारा भगवान् कमलयोनि में ब्रह्मा जी की आराधना करूँ ।४। तब उन्होंने विधाता की आराधना के कारण यथावत् नियम में स्थित होकर दिव्य शतवर्ष तक तपस्या की थी ।५। तब लोकपितामह ब्रह्मा जी ने उनको अपनी मूर्त्ति का दर्शन देकर कहा "मैं प्रसन्न हुआ हूँ, अब तुम अपना अभीष्ट विषय वर्णन करो ।६। तब रुचि ने जगत् के गतिस्वरूप भगवान् ब्रह्मा जी को प्रणाम करके पितरों के वचनानुसार जो करने की इच्छा की है, वह कहा । तब ब्रह्मा जी ने विप्रर्षि रुचि का अभीष्ट विषय सुनकर उनसे कहा ।७

ब्रह्मा जी बोले—हे विप्र ! तुम प्रजापति होगे तुम्हारे द्वारा प्रजा उत्पन्न होगी, प्रजासृष्टि और सन्तान उत्पादन पूर्वक समस्त क्रिया ।८। करके जब तुम अधिकाररहित होगे, तब सिद्धिलाभ में समर्थ होगे, इस कारण ही तुम से पितृगण विवाह करने को कहते हैं ।९। "यह अवश्य कर्तव्य है" इस प्रकार

कामं चेममभिध्याय क्रियतां पितृपूजनम् । त एव तुष्टाः पितरः प्रदास्यन्ति तवेप्सितान् ।।
पत्नीं सुतांश्च सन्तुष्टाः किं न दद्युः पितामहाः ।।१०

मार्कण्डेय उवाच

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । नद्या विविक्ते पुलिने चकार पितृतर्पणम् ।।११
तुष्टाव च पितॄन्विप्रः स्तवैरेभिस्तथादृतः । एकाग्रः प्रयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ।।१२

रुचिरुवाच

नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धे ये वसन्त्यधिदेवताः । देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये च श्राद्धे स्वधोत्तरैः ।।१३
नमस्येऽहं पितॄन्स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः । श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ।।१४
नमस्येऽहं पितॄन्स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान् । श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः ।।१५
नमस्येऽहं पितॄन्भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैरपि । तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकीं पराम् ।।१६
नमस्येऽहं पितॄन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः ।।१७
नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । वाञ्छिताभीष्टालाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ।।१८
नमस्येऽहं पितॄन्ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः । वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्बिषैः ।।१९
नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैर्नैष्ठिकव्रतचारिभिः । ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः ।।२०
नमस्येऽहं पितॄञ्छाद्धै राजन्यास्तर्पयन्ति यान् । कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ।।२१

विचार कर तुम पितरों की पूजा करो । वह पितृगण सन्तुष्ट होने पर तुमको अभीष्ट पत्नी और पुत्र प्रदान करेंगे, क्योंकि पितर सन्तुष्ट होने पर क्या नहीं देते हैं ।१०

मार्कण्डेय जी बोले—अव्यक्तजन्मा ऋषि ब्रह्मा का इस प्रकार वचन सुनकर उन्होंने नदी के निर्जन पुलिन में पितरों का तर्पण किया ।११। हे विप्र ! उन्होंने आदरसहित, एकाग्रचित्त, प्रयत और भक्ति से नम्रग्रीव हो इस स्तोत्र से पितरों को संतुष्ट किया ।१२

रुचि ने कहा—श्राद्ध में जो अधिदेवता के रूप से वास करते हैं, देवता भी श्राद्ध में स्वाहा उच्चारण करके जिनको तृप्त करते हैं उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ।१३। स्वर्ग में मुक्ति की अभिलाषा करने वाले मनोमय श्राद्धद्वारा महर्षिगण भक्तिपूर्वक जिनको तृप्त करते हैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ।१४। स्वर्गमें सिद्धिगण श्राद्ध के समय अति उत्तम दिव्य सब उपहारों से जिनको तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार करता हूँ।१५। अत्युत्कृष्ट अत्यन्त समृद्धि के अभिलाषी गुह्यकगण तन्मयाभाव से भक्तिसहित जिनकी अर्चना करते हैं, उन पितरों को नमस्कार करता हूँ।१६। मर्त्यलोक में मनुष्य श्राद्ध में जिन अभीष्ट लोकों के देने वाले पितरों की श्रद्धासहित अर्चना करते हैं, उनको नमस्कार करता हूँ।१७। जो प्राजापत्य पद प्रदान करने वाले पितरगण वाञ्छित विषय प्राप्त होने के निमित्त ब्राह्मणों के द्वारा पृथ्वी में पूजित होते हैं, उनको नमस्कार करता हूँ ।१८। यताहारी और तप के द्वारा नष्ट हो गये हैं पाप जिनके, ऐसे अरण्यवासिगण वन्यश्राद्धद्वारा जिनको तृप्त करते हैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ।१९। संयतात्मा नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्राह्मण समाधिद्वारा जिनको तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार करता

नयस्येऽहं पितॄन्वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः ॥२२
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैर्ये शूद्रैरपि भक्तितः । सन्तर्प्यन्ते जगत्यत्र नाम्ना ख्याताः सुकालिनः ॥२३
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैः पाताले या महासुरैः । सन्तर्प्यन्ते स्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ॥२४
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले । भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः ॥२५
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान्सदा । तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥२६

पितॄन्नमस्ये निवसन्ति साक्षाद्ये देवलोके च तथान्तरिक्षे ।
महीतले ये च सुरादिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम् ॥२७
पितॄन्नमस्ये परमात्मभूता ये वै विमाने निवसन्ति मूर्त्ताः ।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥२८
पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु ॥२९
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान् ।
सुरत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकं वा सुतान्पशून्स्वानि बलं गृहाणि ॥३०
सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति ।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ॥३१

हैं।२०। राजन्य गण अर्थात् क्षत्रिय लोग जिन तीनों लोक में फलप्रद पितरों को श्रद्धापूर्वक अशेष कव्य (श्राद्धान्न) द्वारा तृप्त करते हैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ।२१। अपने कर्म में आसक्त वैश्यगण पृथ्वी में जिनको पुष्प, धूम्र, अन्न और जलद्वारा सन्तुष्ट करते हैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ।२२। इस जगत् में शूद्रगण जिन सुकालीन नामक विख्यात पितरों को भक्ति सहित श्राद्ध द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ।२३। पाताल में दम्भ मदत्यागी महासुरगण जिन स्वधाहार पितरों को सदा श्राद्धद्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ।२४। रसातल में कामाभिलाषी नागकुल जिनको अशेष भोग और श्राद्धद्वारा सर्वदा यथाविधि संतुष्ट करते हैं, उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ।२५। मंत्र, भोग और सम्पत्संयुक्त सर्पगण पाताल में सदा जिन पितरों को श्राद्ध द्वारा विधिवत् सन्तर्पित करते हैं, उन पितरों को प्रणाम करता हूँ ।२६। जो देवलोक और अंतरिक्ष में प्रत्यक्ष भाव से वास करते हैं और पृथ्वीतल में जो देवताओं द्वारा पूजित होते हैं, उन पितरों को प्रणाम करता हूँ, वह मेरी दी हुई पूजा ग्रहण करें ।२७। जो मूर्तिमान् परमात्माभूत और विमान में वास करते हैं और योगीश्वरगण विमल मन से क्लेशविमोचक ज्ञानद्वारा जिनकी यज्ञ में आराधना करते है उन पितरों को प्रणाम करता हूँ ।२८। जो स्वर्ग में मूर्तिमान् काम्यफलप्राप्तिविषय में स्वधाभोजी हैं, जो सब प्रार्थी गणों को इष्टप्रदान में समर्थ हैं और जो कामनावर्जित कार्य में विमुक्ति प्रदान करते हैं, उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ।२९। जो प्रार्थिगणों को प्रार्थना की हुई वस्तु देते हैं और जो सुरत्व, इन्द्रत्व या इससे भी अधिक अथवा पुत्र, पशु, अर्थ, बल, गृह इत्यादि कामनारूप दान करते हैं, मेरी इस पूजा से वह तृप्त हों ।३०। जो सदा चन्द्रमा की किरणों में सूर्यबिम्ब में और शुक्ल विमान में वास करते हैं, वह पितृगण मेरे द्वारा तृप्त हों और वे अन्न, जल तथा गन्धादि द्वारा पुष्टि को प्राप्त हों ।३१। अग्निमें घृत की आहुति देने से जो तृप्त होते हैं जो ब्राह्मण

येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः ।
ये पिण्दानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः ॥३२
ये खड्गिमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ।
कालेन शाकेन महर्षिवर्यैः सम्प्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥३३
कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषाममरार्चितानाम् ।
तेषां तु सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धान्नभोज्येषु मया कृतेषु ॥३४
दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्च्चां मांसातपूज्यां भुवि येऽष्टकासु ।
ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तृप्तिम् ॥३५
पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणां च नवार्कवर्णाः ।
तथा विशां ये कनकावदाता नीलीनिभाः शूद्रजनस्य ये च ॥३६
तेऽस्मिन्समस्ता मम पुष्पगन्धधूपान्नतोयादिनिवेदनेन ।
तथाग्निहोमेन च यान्तु तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३७
ये देवपूर्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहुतानि ।
तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३८
रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तस्त्वशिवं प्रजानाम् ।
आद्याः सुराणाममरेशपूज्यातृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३९

के शरीर में स्थित होकर भोजन करते हैं और पिण्डदान करने से जो संतुष्ट होते हैं, वही पितृगण इस अन्न, जलद्वारा इस विषय में तृप्त हों ।३२। देवता गैंडे के मांस और अभीष्ट दिव्य मनोहर काले तिलों से जिनको प्रसन्न करते हैं और महर्षिगण वर्ष के बाद काल शाकद्वारा जिनको तृप्त करते हैं वह पितृगण विषय में संतुष्ट ।३३। देवताओं से अर्चित उन पितृगणों के जो समस्त अभीष्ट कव्य है, मैंने वही पुष्प, गन्ध, अन्न, भोज्य संग्रह किया है, वह इनके समीप उपस्थित हों ।३४। जो प्रतिदिन पूजा ग्रहण करते हैं, पृथ्वी में जो प्रतिमास तीनों अष्टका[1] में पूजित होते हैं, और जो वर्ष के अन्त में उत्सव के दिन पूजे जाते हैं, वह पितृगण मेरी इस पूजा से तृप्त हों ।३५। जो पितृगण (कुमुद और चन्द्रमा) के सदृश शुक्लवर्ण प्रभायुक्त होकर देवताओं के पूज्य होते हैं, जो नवीन उदय हुए सूर्य के समान रक्तवर्णयुक्त होकर क्षत्रियों के पूज्य होते हैं, जो कनक के सदृश सुन्दर कान्तियुक्त होकर वैश्यों के पूज्य और जो (नीली की समान) रूप से शूद्रों के पूज्य होते हैं ।३६। वह सम्पूर्ण पितृगण मेरे पुष्प, गन्ध, धूप, अन्न और जलादिनिवेदन तथा अग्निहोम द्वारा मुझसे तृप्त हों, मैं सदा उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ।३७। जो अतितृप्ति हेतु देवताओं के आगे आहुति होमे हुए समस्त शुभ कव्य अन्न आहार करते हैं और जो तृप्त होकर अणिमादि अष्टैश्वर्य की सृष्टि करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त हों मैं उनको प्रणाम करता हूँ ।३८। जो राक्षस, भूत और उग्र असुरों के घातक तथा प्रजा के अमंगल का नाश करते हैं जो देवताओं के आदि पुरुष हैं और अमरेश इन्द्र के पूज्य हैं, वह पितृगण मेरे द्वारा तृप्त हों, मैं उनको प्रणाम करता हूँ ।३९। अग्निष्वात्ता, बर्हिषद,

---

१. शाकाष्टका, मांसाष्टका और पूगाष्टका ।

अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा।
व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पिता मया ॥४०
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम्।
तथा बर्हिषदः पान्तु याम्यां ये पितरः स्मृताः ॥४१
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः । रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ॥४२
सर्वतश्चाधिपस्तेषां यमो रक्षां करोतु मे। विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्यः शुभाननः ॥४३
भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितृणां ये गणा नव। कल्याणः कल्यताकर्त्ता कल्यः कल्यतराश्रयः ॥४४
कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः। वरो वरेण्यो वरदःपुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा ॥४५
विश्वपाता तथा धाता सप्तैवैते तथा गणाः। महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबलः ॥४६
गणाः पञ्च तथैवैते पितृणां पापनाशनाः। सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः ॥४७
पितृणां कथ्यते चैतत्तथागणचतुष्टयम् । एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥
ते मेऽनुतृप्तास्तुष्यन्तु यच्छन्तु च सदा हितम् ॥४८

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रौच्यमन्वन्तरे रुच्युपाख्याने
पितृस्तवनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः।९३।

आज्यपा और सोमपा पितृगण मेरे द्वारा तर्पित होकर इस श्राद्ध में तृप्ति लाभ करें।४०। अग्निष्वात्ता पितर मेरी पूर्वदिशा में और बर्हिषद पितर दक्षिण दिशा में रक्षा करें।४१। आज्यपा पितर पश्चिमदिशा में और सोमपा पितृगण इसी प्रकार उत्तर दिशा में राक्षस, भूत, पिशाच और असुरोत्पन्न दोष से रक्षा करें।४२। जिन पितरों के विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धान्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति यह नव संख्याकगण हैं, उनके अधिपति यम मेरी सब दिशाओं में रक्षा करें। कल्याण, कल्याणकर्त्ता, कल्य, कल्यतराश्रय।४३-४४। कल्याहेतु और अनघ, जिन पितृपुरुषों के यह छः प्रकार के गण हैं जिन पितृपुरुषों के वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद।४५। विश्वपाता और धाता यह सप्तविध गण हैं, महान् महात्मा, महित, महिमावान् और महाबल नामक।४६। जो पितरों के पापनाशक यह पाँच प्रकार के गण हैं और सुखद, धनद, धर्मद और भूतिदाता गण हैं।४७। पितरों के यह जो चार गण कहे गयें, सब समेत वह एकत्रिंशत् अर्थात् एकतीस पितृगण हैं, जो संपूर्ण जगत् को व्याप्त कर रहे हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त होकर मुझको संतुष्ट करें और मेरा सदा हित करें।४८

श्रीमार्कण्डेयपुराण के रुचिकृतपितृस्तवन वर्णन नामक तिरानबेंवाँ अध्याय समाप्त।९३।

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

पितृवरप्रदानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रितः । प्रादुर्बभूव सहसा गगनव्याप्तिकारकः ॥१
तद्दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समासाद्य स्थितं जगत् । जानुभ्यामवनिं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ ॥२

रुचिरुवाच

अमूर्तानां च मूर्त्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम् । नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ॥३
इन्द्रादीनां च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा । सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान् ॥४
मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा । तान्नमस्याम्यहं सर्वान्पितरश्चार्णवेषु ये ॥५
नक्षत्राणां ग्रहाणां च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा । द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥६
देवर्षीणां ग्रहाणां च सर्वलोकनमस्कृतान् । अक्षय्यस्य सदा दातॄन्नमस्येऽहं कृताञ्जलिः ॥७
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च । योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥८
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु । स्वयंभुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥९
सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्तिधरांस्तथा । नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ॥१०

अध्याय ९४

पितृवरप्रदान नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—जब रुचि ने इस प्रकार स्तवन किया, तब सहसा उनके निकट उच्छ्रित (उच्च शिखायुक्त) और गगनव्यापक तेज प्रादुर्भूत हुआ ।१। समस्त जगत् को आच्छादन करके अवस्थित उस तेज को देखकर रुचि जानुद्वारा पृथ्वीस्पर्शपूर्वक यह स्तोत्र कीर्त्तन करने लगे ।२

रुचि ने कहा—उन ध्यानरत, दिव्यचक्षु, दीप्ततेजा, अर्चित और मूर्त्तिहीन पितरों को नमस्कार करता हूँ ।३। दक्ष, मरीचि, सप्तर्षिगण तथा इन्द्रादि अन्यान्य सबके नेता, उन कामदाता पितरों को नमस्कार करता हूँ ।४। मनु इत्यादि मुनींद्रगणों के तथा सूर्य एवं चन्द्रमा के नेता और कामदाता तथा समुद्र और जल में स्थित उन समस्त पितरों को प्रणाम करता हूँ ।५। जो नक्षत्र, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथ्वी के नेता तथा कामदाता हैं, उन पितरों को कृताञ्जलि हो अर्थात् हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ ।६। जो देवर्षियों के उत्पन्न करने वाले, सर्वलोकनमस्कृत अक्षयत्व अर्थात् अक्षय फल के दाता हैं, उन पितरों को सदा हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ ।७। जो प्रजापतियों में कश्यप, एवं सोम, वरुण और योगेश्वररूपी है सदा हाथ जोड़कर मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ।८। जो सप्तलोक के मध्य सप्तगणों में स्थित हैं उनको नमस्कार करता हूँ और योगचक्षु स्वयम्भू ब्रह्मा के स्वरूप उन पितरों को प्रणाम करता हूँ ।९। जो सोम के आधार, योगमूर्त्तिधारी सोमरूपी और जगत् के पिता हैं, उन पितरों को

अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम् । अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ।।११
ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्त्तयः । जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ।।१२
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः । नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ।।१३

मार्कण्डेय उवाच

एव स्तुतास्ततस्तेन तेजसा मुनिसत्तम । निश्चक्रमुस्तेऽपि ततो भासयन्तो दिशो दश ।।१४
निवेदितं च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् । तद्भूषितानथ स तान्ददृशे पुरतः स्थितान् ।।१५
प्रणिपत्य पुनर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ।।१६
ततः प्रसन्नाः पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् । वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धरः ।।१७

रुचिरुवाच

साम्प्रतं सर्गकर्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम । सोऽहं पुत्रीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम् ।।१८

पितर ऊचुः

अद्यैव सद्यः पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा । तस्यां च पुत्रो भविता भवतो मनुरुत्तमः ।।१९
मन्वन्तराधिपो धीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षितः । रुचे रौच्य इति ख्यातिं यो यास्यति जगत्त्रये ।।२०
तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः । भविष्यन्ति महात्मानः पृथिवीपरिपालकाः ।।२१

मैं नमस्कार करता हूँ ।१०। जिन अशेष पितरों से अग्नि सोम यह विश्व उत्पन्न है, उन अग्निरूपी और अन्यान्य पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ।११। जो तेजः स्थित होकर सोम सूर्याग्निमूर्ति अवलम्बन करने से जगत्स्वरूपी और ब्रह्मस्वरूपी हैं उन संपूर्ण योगी पितरों को मैं संयतमन होकर वारंवार नमस्कार करता हूँ, वह स्वधाभोजी पितृगण मेरे प्रति प्रसन्न हों ।१२-१३

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुनि सत्तम ! रुचि के इस प्रकार स्तुति करने पर पितृगण तेज द्वारा दशों दिशाओं को प्रकाशमान करते हुए निकले ।१४। अनन्तर उन्होंने जो पुष्पगन्धानुलेपन कव्य निवेदन किया था, विप्रवर रुचि ने उनके द्वारा विभूषित होकर सन्मुख आते देखा ।१५। और फिर भी हाथ जोड़ भक्तिसहित प्रणाम पूर्वक पृथक्-पृथक् प्रत्येक से "तुमको नमस्कार तुमको नमस्कार" इस प्रकार आदर से कहने लगे ।१६। तदनन्तर पितरों ने प्रसन्न होकर उन मुनिश्रेष्ठ से कहा—वर मांगो । तब विप्रवर रुचि गर्दन झुकाकर उनसे बोले ।१७

रुचि ने कहा—इस समय ब्रह्मा जी ने मुझको सृष्टि उत्पन्न करने की आज्ञा दी है । इस कारण अब मैं धन्या दिव्य (सुंदरी) और संतान उत्पन्न करने में समर्थ पत्नी के प्राप्त करने की अभिलाषा करता हूँ ।१८

पितर बोले—तुमको अभी इस स्थान में मनोहर पत्नी प्राप्त होगी, उसके गर्भ से तुम्हारे श्रेष्ठ मनु पुत्र उत्पन्न होगा ।१९। हे रुचे ! मन्वन्तराधिप बुद्धिमान् तुम्हारा पुत्र तुम्हारे नामानुसार ही विख्यात होगा । अर्थात् तीनों जगत् में रौच्य नाम से प्रसिद्ध होगा ।२०। उस रौच्य के भी महाबल पराक्रमी महात्मा पृथ्वीपालक बहुत पुत्र जन्म ग्रहण करेंगे ।२१। तुम भी प्रजापति हो चार प्रकार की प्रजा उत्पन्न

त्वं च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः। क्षीणाधिकारो धर्मज्ञ ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥२२
स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मांस्तोष्यति भक्तितः। तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मज्ञानं तथोत्तमम् ॥२३
शरीरारोग्यमर्थं च पुत्रपौत्रादिकं तथा। प्रदास्यामो न सन्देहो यच्चान्यदभिवाञ्छितम् ॥२४
तस्मात्पुण्यफलं लोके वाञ्छद्भिः सततं नरैः। पितॄणां चाक्षयां तृप्तिं स्तव्याः स्तोत्रेण मानवैः ॥२५
वाञ्छद्भिः सततं स्तव्याः स्तोत्रेणानेन वै यतः। श्राद्धे च इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम् ॥२६
पठिष्यन्ति द्विजाग्र्याणां भुञ्जतां पुरतः स्थितः। स्तोत्रश्रवणसम्प्रीत्या सन्निधाने परे कृते ॥२७
अस्माकमक्षयं श्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयम्। यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत् ॥२८
अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा। अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथा कृतम् ॥२९
अकालेऽप्यथवाऽदेशे विधिहीनमथापि वा। अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य वा कृतम् ॥३०
अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात्। यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ॥३१
अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी। हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति ॥३२
शिशिरे द्विगुणाब्दांश्च तृप्तिं स्तोत्रमिदं शुभम्। वसन्ते षोडश समास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि ॥३३
ग्रीष्मे षोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम्। विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते ॥३४
वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे। शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ॥३५

करके जब धर्मज्ञ और क्षीणाधिकार होंगे, तब तुमको सिद्ध प्राप्त होगी।२२। जो नर इस स्तोत्र के द्वारा भक्ति सहित हमारी स्तुति करेंगे, हम उनके प्रति संतुष्ट होकर भोग और उत्तम आत्मज्ञान प्रदान करेंगे।२३। शरीर की आरोग्यता धन और पुत्रपौत्रादिक के चाहने वाले तथा और भी वांछित अभिलाष के चाहने वाले इस स्तोत्र के द्वारा सदा हमारी स्तुति करें, तो हम निःसंदेह उनकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करेंगे।२४। इस कारण लोक में पुण्य फल की इच्छा करने वालों को इस स्तोत्र से पितरों की अक्षयतृप्ति करनी चाहिए।२५। हमारी प्रीतिकी इच्छावालों को यह निरन्तर पढ़ना चाहिए श्राद्धकाल में भोजन करते हुए ब्राह्मणों के सन्मुख स्थित होकर जो हमारे प्रीतिकर।२६। इस स्तोत्र को भक्ति सहित पढ़ेगा और स्तोत्र श्रवण से उत्पन्न हुई प्रीतिद्वारा समीप में।२७। स्थिति को इष्ट समझेगा, उसके द्वारा निःसन्देह हमारा अक्षयश्राद्ध सम्पन्न होगा। यद्यपि श्राद्ध श्रोत्रियहीन या दूषित हो।२८। अथवा यदि अन्यान्य से उत्पन्न किये धन से संपादित या अन्यथा किया जाय, या अकाल में, अदेश में अविहित रूप से श्रद्धा से हीन दूषित उपहार के द्वारा किया जाय अथवा श्रद्धाहीन दंभी पुरुषों के द्वारा किया जाय।२९-३०। किन्तु तो भी इस स्तोत्र पाठ के कारण वह श्राद्ध हमारी तृप्ति करने वाला होगा जिस श्राद्ध में हमारा सुखकर यह स्तोत्र पढ़ा जाता है।३१। उस श्राद्ध से हम को बारह वर्ष तक तृप्ति होती है, यह स्तोत्र हेमन्तकाल में हमको द्वादश वार्षिक तृप्ति प्रदान करता है।३२। यह शुभ स्तोत्र शीतकाल में हमको चौबीस वर्ष पर्यन्त तृप्तिप्रदान करता है। वसन्त के समय श्राद्धकाल में इस स्तोत्र का पाठ करने से सोलह वर्ष तक तृप्ति प्रदान करता है।३३। और भी ग्रीष्मकाल में भी इस स्तोत्र का पाठ करने से सोलह वर्ष पर्यन्त तृप्तिकारक होता है किसी कारण से श्राद्ध के विकृत होने पर इस स्तोत्र पाठ द्वारा वह सम्पन्न होता है।३४ हे रुचे ! वर्षाकाल में श्राद्ध के समय इस स्तोत्र का पाठ करने से हमारी अक्षय तृप्ति होती है। पुरुष यदि शरत्काल में इस स्तोत्र का पाठ कर श्राद्धीय द्रव्य प्रदान करे।३५। तो पंचदश

अस्माकमेतत्पुरुषस्तृप्तिं पञ्चदशाब्दिकीम् । यस्मिन्गृहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा ॥३६
सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति । तस्मादेतत्त्वया श्राद्धे विप्राणां भुञ्जतः पुरः ॥३७
श्रवणीयं महाभाग अस्माकं पुष्टिहेतुकम् । इत्युक्त्वा पितरस्तस्य स्वर्गता मुनिसत्तम ॥३८
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रौच्ये मन्वन्तरे पितृवरप्रदानं नामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ।९४।

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

मालिनीपरिणयवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौ मनोरमा । प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्समीपे वराप्सराः ॥१
सा चोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम् । प्रश्रयावनता सुभ्रूः प्रम्लोचा वै वराप्सराः ॥२
अतीव रूपिणी कन्या मत्सुता तपतां वर । जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ॥३
तां गृहाण मया दत्तां भार्यार्थे वरवर्णिनीम् । मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पस्यति ते सुतः ॥४

मार्कण्डेय उवाच

तथेति तेन साऽप्युक्ता तस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् । उज्जहार ततः कन्यां मालिनी नाम नामतः ॥५
नद्याश्च पुलिने तस्मिन्स रुचिर्मुनिसत्तमः । जग्राह पाणिं विधिवत्समानाय्य महामुनीन् ॥६

---

(१५) वर्ष पर्यन्त हमारी तृप्ति होती है, जिस घर में यह स्तोत्र लिखा हुआ सदा रखा रहता है ।३६। उस घर में श्राद्ध करने से हमारा सन्निधान होता है, अर्थात् श्राद्ध के समय हम उस घर में उपस्थित होते हैं, इस कारण तुम श्राद्ध में भोजन करते हुए ब्राह्मणों के सन्मुख खड़े होकर ।३७। हे महाभाग ! हमारी पुष्टिका हेतु यह स्तोत्र सुनाओ । हे मुनिसत्तम ! पितरगण रुचि से इस प्रकार कहकर स्वर्ग में चले गये ।३८
श्रीमार्कण्डेयपुराण में पितृवरप्रदान वर्णन नामक चौरानबेंवाँ अध्याय समाप्त ।९४।

अध्याय ९५

मालिनीपरिणय नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—इसके उपरान्त उस नदी में से प्रम्लोचानामक क्षीणांगी मनोहर उत्तम अप्सरा रमणी निकलकर उन रुचि के समीप उपस्थित हुई ।१। फिर श्रेष्ठ अप्सरा प्रम्लोचा नामक सुन्दरी ने विनय से नम्र हो महात्मा रुचि के निकट मधुर वचनों के द्वारा कहा ।२। हे तापसश्रेष्ठ ! वरुणपुत्र महात्मा पुष्कर के द्वारा उत्पन्न हुई अत्यन्त रूपवती मेरी एक कन्या है ।३। मैं उस वरवर्णिनी को देती हूँ, आप उसको भार्या के लिये ग्रहण किजिए । उसके गर्भ से तुम्हारा पुत्र मनु जन्म ग्रहण करेगा ।४

मार्कण्डेय जी बोले—जब रुचि ने "यही हो" इस प्रकार कहा, तब उस प्रम्लोचा ने जल से सुन्दर कान्तियुक्त मालिनीनामक कन्या को निकाला ।५। मुनिवर रुचि ने उस नदी के पुलिन में महामुनियों को

तस्यां तस्य सुतो जज्ञे महावीर्यो महामतिः । रौच्योऽभवत्पितुर्नाम्ना ख्यातोऽत्र वसुधातले ॥७
तस्य मन्वन्तरे देवास्तथा सप्तर्षयश्च ये । तनयाश्च नृपाश्चैव ते सम्यक्कथितास्तव ॥८
धर्मवृद्धिस्तथारोग्यं धनधान्यसुतोद्भवः । नृणां भवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वन्तरे श्रुते ॥९
पितृस्तवं तथा श्रुत्वा पितॄणां च तथागणान् । सर्वान्कामानवाप्नोति तत्प्रसादान्महामुने ॥१०

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मालिनीपरिणयो नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।९५।

॥ इति रौच्यमन्वन्तरं समाप्तम् ॥

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

अग्निस्तोत्रनामवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः परं तु भौत्यस्य समुत्पत्तिं निशामय । देवानृषींस्तथा पुत्रांस्तथैव वसुधाधिपान्॥१
बभूवाङ्गिरसः शिष्यो भूतिर्नाम्नातिकोपनः । चण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्थे मुनिरागस्यसौम्यवाक् ॥२
तस्याश्रमे मातरिश्वा न ववावतिनिष्ठुरम् । नातितापं रविश्चक्रे पर्ज्जन्यो नातिकर्दमम् ॥३
नातिशीतं च शीतांशुः परिपूर्णोऽपि रश्मिभिः । चकार भीत्या वै तस्य कोपनस्यातितेजसः ॥४

बुलाकर विधिवत् पाणिग्रहण किया ।६। उसके गर्भ से महात्मा रुचि के एक महावीर्य महामति पुत्र उत्पन्न हुआ । वह पुत्र पितृनामानुसार रौच्यनाम से वसुधातल में विख्यात हुआ ।७। उनके मन्वन्तर में देवता सप्तर्षि और उनके समस्त नृपति पुत्रों का विषय तुमसे सम्यक् प्रकार कहा गया है ।८। इस मन्वन्तर की कथा सुनने से मनुष्य की धर्मवृद्धि, आरोग्य, धन-धान्य और पुत्रोत्पत्ति होती है ।९। हे महामुने ! पितरों की स्तुति और पितरों के गण श्रवण करने पर उनके प्रसाद से संपूर्ण कामना सिद्ध होती हैं ।१०

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मालिनीपरिणय नामक पंचानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९५।

अध्याय ९६

अग्निस्तोत्रनामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—इसके उपरान्त भौत्य मनु की उत्पत्ति तथा उस मन्वन्तर के देवता, ऋषि और उनके वसुधाधिपति पुत्रों का विषय सुनो ।१। मुनिश्रेष्ठ अंगिरा के भूतिनामक एक शिष्य थे, वह अत्यन्त कोपनस्वभाव और अल्प अर्थ अर्थात् थोड़े अपराध पर ही तीक्ष्ण शाप देते तथा निरपराध पुरुष के प्रति भी वह कटुवचन प्रयोग करते ।२। उन कोपनस्वभाव अमिततेजा ऋषि के भय से उनके आश्रम में वायु अत्यन्त निष्ठुरभाव से नही बहता सूर्य अत्यन्त तेज ताप प्रदान नहीं करते, और पर्जन्य देव (इन्द्र) भी अधिक जल वर्षाकर कीचड़ नहीं करते ।३। और परिपूर्ण चन्द्रमा भी अपनी किरणों से अत्यन्त शीतलता नहीं करते और उन कोपस्वभाव मुनि के भय से शीतलता विशेष नहीं करते थे ।४। उनकी

ऋतवश्च क्रमं त्यक्त्वा वृक्षेष्वाश्रमजन्मसु । तस्य पुष्पफलं चक्रुराज्ञया सार्वकालिकम् ॥५
ऊहुरापश्च छन्देन तस्याश्रमसमीपगाः । कमण्डलुगताश्चैव तस्य भीता महात्मनः ॥६
नातिक्लेशसहो विप्रः सोऽभवत्कोपनो भृशम् । अपुत्रश्च महाभागः स तपस्यकरोन्मनः ॥७
पुत्रकामो यताहारः शीतवातानलाहतः । तपस्यामि विचिन्त्येति तपस्येव मनो दधे ॥८
तस्येन्दुर्नातिशीताय नातितापाय भास्करः । अभवन्मातरिश्वा च ववौ नाति महामुने ॥९
आपीडचमानो द्वन्द्वैश्च स भूतिर्मुनिसत्तमः । अनवाप्याभिलाषं तं तपसः सन्यवर्त्तत ॥१०
तस्य भ्राता सुवर्च्चाऽभूद्यज्ञे तेनाभिमन्त्रितः । यियासुः शान्तिनामानं शिष्यमाह महामतिम् ॥११
प्रशान्तमक्षप्रतिमं विनीतं गुरुकर्मणि । सदोद्युक्तं शुभाचारमुदारं मुनिसत्तमम् ॥१२

भूतिरुवाच

अहं यज्ञं गमिष्यामि भ्रातुः शान्ते सुवर्च्चसः । तेनाहूतस्त्वया चेह यत्कर्त्तव्यं शृणुष्व तत् ॥१३
अतिजागरणं वह्नेस्त्वया कार्यं ममाश्रमे । तथा त्वया प्रयत्नेन यथाग्निर्न शमं व्रजेत् ॥१४

मार्कण्डेय उवाच

इत्याज्ञाप्य तथेत्युक्तो गुरुः शिष्येण शान्तिना । जगाम यज्ञं तं भ्रातुराहूतः स यवीयसः ॥१५
स च शान्तिर्वनाद्यावत्समित्पुष्पफलादिकम् । उपानयति भूत्यर्थं गुरोस्तस्य महात्मनः ॥१६

आज्ञानुसार ऋतुगण पर्याय त्यागकर उनके आश्रमस्थ वृक्षों में सर्वकाल के फल, पुष्प उत्पन्न करती ।५। आश्रमसमीपगामी जल महात्मा मूर्ति के भय से उनकी इच्छानुसार मुहूर्तमात्र के बीच उनके कमण्डलु में आ जाता ।६। हे विप्र ! वह अत्यन्त कोपनस्वभाव मुनि क्लेश नहीं सह सकते थे, किन्तु तो भी उन महाभाग ने अपुत्र होने के कारण मन में तपस्या करने की इच्छा की ।७। उन पुत्र की कामना करने वाले ऋषि ने "संयताहार और शीत, वायु, अग्नि का कष्ट सहकर तपस्या करूँगा" इस प्रकार चिन्ता करके तपस्या में ही मन लगाया ।८। हे महामुने ! तपस्याकाल के समय भी पक्ष में चन्द्र अत्यन्त शीत का कारण और सूर्य अत्यन्त ताप का कारण न हुए अर्थात् चन्द्रमा अधिक शीतलता और सूर्य अधिक उष्णता नहीं करते थे तथा वायु भी अत्यन्त प्रबलभाव से नहीं बहता था ।९। वह मुनिसत्तम् भूति जब द्वन्द्वभाव शीत उष्ण से पीड़ित होकर भी अपनी अभिलाषा को प्राप्त नहीं हुए, तब तप करना छोड़ दिया ।१०। सुवर्चा नामक उनके एक भाई थे, उन्होंने इनको यज्ञ में निमन्त्रण दिया । तब यह वहाँ जाने की इच्छा कर महामति, शान्तिनाम अपने शिष्य से बोले ।११। हे मुनिसत्तम ! यह अक्षर के समान शान्त गुरु के कार्य में विनीत सदा काम को उद्यत और शुभाचार तथा परमोदार थे ।१२

भूति ने कहा—हे शान्ते ! भ्राता सुवर्चा के बुलाने से मैं उनके यज्ञ में जाता हूँ, अब तुमको यहाँ रहकर जो करना चाहिए, वह सुनो ।१३। तुम मेरे आश्रम में नित्य अग्नि जगाये रखना और जिससे अग्नि न बुझे यत्नपूर्वक वही करना ।१४

मार्कण्डेय जी बोले—कि, गुरु जी की इस प्रकार आज्ञा पाकर शिष्य शान्ति ने "ऐसा ही होगा" यह कहा । तब भूति कनिष्ठ भ्राता के बुलाने पर भ्राता के उस यज्ञ में गये ।१५। वह शान्ति जब महात्मा गुरु की अग्निपोष के लिये वन से समिध, पुष्प, फलादि लाने लगे ।१६। और गुरु की भक्ति के वशीभूत

**अन्यच्च कुरुते कर्म गुरुभक्तिवशानुगः । प्रशान्तस्तावदनलो योऽसौ भूतिपरिग्रहः ॥१७
तं दृष्ट्वा सोऽनलं शान्तं शान्तिरत्यन्तदुःखितः । भीतश्च भूतेर्बहुधा चिन्तामाप महामतिः ॥१८
किं करोमि कथं वात्र भविता गमनं गुरोः । मयाद्य प्रतिपत्तव्यं किं कृते सुकृतं भवेत् ॥१९
प्रशान्ताग्निमिमं घिष्ण्यं यदि पश्यति मे गुरुः । ततो मां विषमे ह्यद्य व्यसने सन्नियोक्ष्यति ॥२०
यद्यन्यमग्निमत्राहमग्निस्थाने करोमि तत् । सर्वप्रत्यक्षदृग्भस्म सोऽवश्यं मां करिष्यति ॥२१
सोऽहं पापो गुरोस्तस्य निमित्तं कोपशापयोः । तथात्मानं न शोचामि यथा पापं कृतं गुरोः ॥२२
दृष्ट्वा प्रशान्तमनलं नूनं शप्स्यति मां गुरुः । यथा वा पावकः क्रुद्धस्तथा वीर्यो हि स द्विजः ॥२३
यस्य प्रभावाद्बिभ्यन्ते देवास्तिष्ठन्ति शासने । कृतागसं स मां युक्त्या कया नो धर्षयिष्यति ॥२४**

मार्कण्डेय उवाच

**बहुधैवं विचिन्त्यासौ भीतस्तस्य सदा गुरोः । ययौ मतिमतां श्रेष्ठः शरणं जातवेदसम् ॥२५
स चकार तदा स्तोत्रं सप्तर्च्चेर्यतमानसः । स चैकचित्तो मेदिन्यां न्यस्तजानुः कृताञ्जलिः ॥२६**

शान्तिरुवाच

**ओं नमः सर्वभूतानां साधनाय महात्मने । एकद्विपञ्चधिष्ण्याय राजसूये षडात्मने ।२७
नमः समस्तदेवानां वृत्तिदाय सुवर्च्चसे । शुक्ररूपाय जगतामशेषाणां स्थितिप्रदः ॥२८**

होकर अन्यान्य कार्य संपादन करने लगे, उसी समय में उन भूति की यत्नपूर्वक रखी हुई अग्नि शान्त हो गई ।१७। वह महामति शान्ति उस अनल को शान्त हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और भूति के भय से भीत होकर अनेक भाँति की चिन्ता करने लगे ।१८। क्या करूँ ? इस स्थान में किस प्रकार से गुरु का आगमन होगा अब मुझको क्या करना उचित है, क्या करने से भला हो ।१९। यदि मेरे गुरूजी इस अग्नि को गृह में शान्त अर्थात् बुझा हुआ देखेंगे, तो उसी समय निःसन्देह मुझको विषम दुःख में नियोजित करेंगे ।२०। यदि मैं इस अग्नि के स्थान में अन्य अग्नि स्थापन करूँ, तो वह सर्प प्रत्यक्षदर्शी मुनि मुझको अवश्य ही भस्म कर देंगे ।२१। यह पापात्मा में उन गुरु के कोप और शाप का हेतुभूत वैसा शोक नहीं करता जिस प्रकार गुरु के निकट किये पाप का शोक है ।२२। गुरु अग्नि को शान्त देखकर निश्चय ही मुझको शाप देगें अथवा पावक ही क्रोधित होंगे अर्थात् उनके भय से अग्नि भी मुझको शाप दे सकते हैं क्योंकि मेरे गुरु का वीर्य ही ऐसा है ।२३। देवता भी जिनके प्रभाव से भीत होकर शासनाधीन हुए हैं, वह मुझको अपराधी देखकर किस युक्तिद्वारा अवमानित नहीं करेंगे ।२४

मार्कण्डेय जी बोले—उन गुरु के भय से सदा भीत वह बुद्धिमान् शान्ति इस प्रकार अनेक भाँति की चिन्ता करके जातवेदाः अग्नि की शरणागत हुए ।२५। तदनन्तर वह शान्ति संयत मन से एकाग्रचित्त हो पृथ्वी पर घुटने टेक और हाथ जोड़कर सप्तशिखायुक्त अग्निका स्तोत्र पाठ करने लगे ।२६

शान्ति ने कहा—जो संपूर्ण प्राणियों के साधन हैं, जो महात्मा है जो एक दो पंचरूपी हैं, और जो राजसूययज्ञ में षण्मूर्तिधारी हैं, उनको नमस्कार है ।२७। जो समस्त देवताओं को वृत्ति प्रदान करते हैं जो सुवर्चाः हैं और जो सब जगत् की स्थिति प्रदान करते हैं उन शुक्ररूपी तुमको नमस्कार है ।२८

त्वं मुखं सर्वदेवानां त्वयात्तं भगवन्हविः । प्रीणयस्यखिलान्देवांस्त्वत्प्राणाः सर्वदेवताः ।।२९
हुतं हविस्त्वय्यनल मेधत्वमुपगच्छति । ततश्च जलरूपेण परिणाममुपैति यत् ।।३०
तेनाखिलौषधीजन्म भवत्यनिलसारथे । औषधीभिरशेषाभिः सुखं जीवन्ति जन्तवः ।।३१
वितन्वते नरा यज्ञांस्त्वत्सृष्टास्वोषधीषु च । यज्ञैर्देवास्तथा दैत्यास्तद्वद्रक्षांसि पावक ।।३२
आप्याय्यन्ते च ते यज्ञास्त्वदाधारा हुताशन । अतः सर्वस्य योनिस्त्वं वह्ने सर्वमयस्तथा ।।३३
देवता दानवा यक्षा दैत्या गन्धर्वराक्षसाः । मानुषाः पशवो वृक्षा मृगपक्षिसरीसृपाः ।।३४
आप्याय्यन्ते त्वया सर्वे संवर्ध्यन्ते च पावक । त्वत्त एवोद्भवं यान्ति त्वय्यन्ते च तथा लयम् ।।३५
अपः सृजसि देवत्वं त्वमत्सि पुनरेव ताः । पच्यमानास्त्वया ताश्च प्राणिनां पुष्टिकारणम् ।।३६
देवेषु तेजोरूपेण कान्त्या सिद्धेष्ववस्थितः । विषरूपेण नागेषु वायुरूपः पतत्रिषु ।।३७
मनुजेषु भवान्क्रोधो मोहः पक्षिमृगादिषु । अवष्टम्भोऽसि तरुषु काठिन्यं त्वं महीं प्रति ।।३८
जले द्रवस्त्वं भगवाञ्जवरूपी तथाऽनिले । व्यापित्वेन तथैवाग्ने नभसि त्वं व्यवस्थितः ।।३९
त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि पालयन् । त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधः पुनः ।।४०
त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञवाहमकल्पयन् । त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्ति परमर्षयः ।।४१
त्वामृते हि जगत्सर्वं सद्यो नश्येद्धुताशन । तुभ्यं कृत्वा द्विजः पूजां स्वकर्मविहितां गतिम् ।।४२

तुम्हीं सब देवताओं के मुखस्वरूप हो, भगवान् तुम्हारे द्वारा ही घृतपान करके सब देवताओं को संतुष्ट करते हैं तुम्हीं सब देवताओं के प्राणस्वरूप हो ।२९। तुममें ही हविः हुत होकर अमल मेध्यत्व को प्राप्त होती है और बाद में वह जलरूप में परिणत होती है ।३०। हे अनिलसारथे ! उससे ही समस्त औषधी उत्पन्न होती हैं और उन सब औषधियों से ही जीवगण सुखपूर्वक जीवित रहते हैं ।३१। हे पावक ! मनुष्यगण तुम्हारी उत्पन्न की हुई औषधियों के द्वारा जो यज्ञ करते हैं और उन यज्ञों के द्वारा ही देवता, दैत्य और राक्षसगण ।३२। आप्यायित अर्थात् तृप्त होते हैं । हे हुताशन ! तुम्हीं उन सब यज्ञों के आधारस्वरूप हो, अत एव हे वह्ने ! तुम्हीं सब के उत्पन्नकर्त्ता और सर्वमय हो ।३३। हे पावक ! देवता, दानव, यक्ष, दैत्य, गंधर्व, राक्षस, मनुष्य, पशु, वृक्ष, मृग, पक्षी और सरीसृपगण ।३४। तुम्हारे द्वारा ही तृप्त होते हैं, संवर्द्धित होते हैं और तुमसे ही उत्पन्न होकर अन्त समय तुममें ही विलीन होते हैं ।३५। हे देव ! तुम्हीं जल उत्पन्न करते हो और फिर तुम्हीं उसको पान करते हो तथा तुम्हारे द्वारा ही वह पाचित होकर प्राणियों का पुष्टिकारक होता है ।३६। हे भगवन् अग्ने ! तुम्हीं देवताओं में तेज रूप से, सिद्धों में कान्तिरूप से, नागों में विषरूप से और पक्षियों में वायुरूप से वर्त्तमान हो ।३७। हे देव ! तुम्हीं मनुष्यों से क्रोध रूप से, पक्षी और मृगादि में मोहरूप से, वृक्षों में स्थिति रूप से, पृथ्वी में काठिन्य अर्थात् कठिनतारूप से ।३८। और जल में द्रवत्वरूप से स्थिति करते हो तुम्हीं ने वायु में वेगरूप से औरआकाश में व्याप्ति रूप से आत्मा को अवस्थित किया है ।३९। हे अग्ने ! तुम्हीं पालन करते-करते सब जीवों के अन्तर में विचरण करते हो, कविगण तुमको एक कहकर निर्देश करते हैं, किन्तु फिर वही तुमको त्रिविध कहते हैं ।४०। कविगण तुमको अष्टधा कल्पित कर आद्य यज्ञ की कल्पना करते हैं तुम्हारे द्वारा ही जगत् उत्पन्न हुआ है, यह परमर्षिगण कहते हैं ।४१। हे हुताशन ! तुम्हारे नष्ट होने पर संपूर्ण जगत् तत्काल विनाश को प्राप्त

प्रयान्ति हव्यकव्याद्यैः स्वधास्वाहाभ्युदीरणात् । परिणामात्मवीर्याणि प्राणिनाममरार्चित ।।४३
दहन्ति सर्वभूतानि ततो निष्क्रम्य हेतयः । जातवेदस्त्वयैवेदं विश्वं सृष्टं महाद्युते ।।४४
तवैव वैदिकं कर्म सर्वभूतात्मकं जगत् । नमस्तेऽनल विङ्गाक्ष नमस्तेऽस्तु हुताशनं ।।४५
पावकाद्य नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन । त्वमेव सर्वभूतानां पावनाद्विश्वपावनः ।।
त्वमेव भुक्तपीतानां पाचानाद्विश्वपाचकः ।।४६
सस्यानां पाककर्त्ता त्वं पोष्टा त्वं जगतस्तथा । त्वमेव मेघस्त्वं वासुस्त्वं बीजं सस्यहेतुकम् ।।४७
पोषाय सर्वभूतानां भूतभव्यभवोह्यसि । त्वं ज्योतिः सर्वभूतेषु त्वमादित्यो विभावसुः ।।४८
त्वमहस्त्वं तथा रात्रिरुभे सन्ध्ये तथा भवान् । हिरण्यरेतास्त्वं वह्ने हिरण्योद्भवकारणम् ।।४९
हिरण्यगर्भश्च भवान्हिरण्यसदृशप्रभः । त्वं मुहूर्तं क्षणश्च त्वं त्वं त्रुटिस्त्वं तथा लवः ।।५०
कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणासि जगत्प्रभो । त्वमेतदखिलं कालः परिणामात्मको भवान् ।।५१
या जिह्वा भवतः काली कालनिष्ठाकरी प्रभो । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ।।५२
कराली नाम या जिह्वा महाप्रलयकारणम् । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ।।५३
मनोजवा च या जिह्वा लघिमागुणलक्षणा । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ।।५४
करोति कामं भूतेभ्यो या ते जिह्वा सुलोहिता । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात्।।५५

होता है ।४२। ब्राह्मणगण तुम्हारी हव्य कव्यादि के द्वारा पूजा करके स्वधा स्वाहा उच्चारण के कारण स्वकर्मविहित गति को प्राप्त होते हैं। हे अमरार्चित अर्थात् देवताओं से पूजित ! प्राणियों की परिणामात्मा वीर्यस्वरूप ।४३। समस्त अग्निशिखा तुम से ही निकल कर भूतगणों को दग्ध करती है । हे महाद्युते जातवेदाः ! यह विश्व तुम्हारी ही सृष्टि है ।४४। हे अनल ! वैदिक कर्म और सर्वभूतात्मक जगत् तुम्हारे ही अधीन है । हे पिंगाक्ष अनल ! तुमको नमस्कार करता हूँ । हे हुताशन ! तुमको प्रणाम करता हूँ ।४५। हे आद्य ! हे पावक ! तुमको प्रणाम करता हूँ तुम्हीं भुक्त (भोजन किये) और पीतद्रव्य (पिये हुए) को पचाने के कारण विश्वपावन हो । हे विश्वपावन ! तुम सर्व भूत को पवित्र करने वाले हो ।४६। तुम्हीं सस्य के पाककर्त्ता अर्थात् पकाने वाले और जगत् को पुष्टिकारक हो तुम्हीं मेघ, तुम्हीं वायु, तुम्हीं सस्योत्पादन के हेतु बीजस्वरूप ।४७। और तुम्हीं सब भूतों का पोषण करने के लिये भूत भविष्य तथा वर्त्तमानरूपी हो तुम्हीं समस्त भूतों में ज्योतिस्वरूप और आदित्य सूर्य हो ।४८। तुम्हीं दिन तुम्हीं रात्रि और तुम्हीं दोनों संध्या हों । हे वह्ने ! तुम्हीं हिरण्यरेता और हिरण्य (सुवर्ण) को उत्पन्न करने वाले हो ।४९। तुम्हीं हिरण्यगर्भ और हिरण्य के समान कान्तियुक्त हो । तुम्हीं मुहूर्त, तुम्हीं क्षण, तुम्हीं त्रुटि और तुम्हीं लव हो ५०। हे जगत्प्रभो ! तुम्हीं कला काष्ठा निमेषादि रूप में परिणामात्मक अनन्तकाल हो ।५१। हे प्रभो ! आपकी जो कालनिष्ठाकरी काली जीभ है, उसके द्वारा हे देव ! पाप भय और ऐहिकमहाभय से हमारी रक्षा कीजिये ।५२। महाप्रलय के कारण कराली नामक जो आपकी जीभ है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापों से हमारी रक्षा कीजिये ।५३। लघिमागुणयुक्त मनोजवा नामक जो आपकी जीभ है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापों से हमारी रक्षा कीजिये ।५४। जो तुम्हारी सुलोहिता नामक जीभ प्राणियों की कामना पूर्ण करती है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापों से हमारी रक्षा कीजिये ।५५। सुधूम्रवर्ण

सुधूम्रवर्णा या जिह्वा प्राणिनां रोगदायिका । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥५६
स्फुलिङ्गिनी च या जिह्वा यतः सकलपुद्गलाः । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥५७
याते विश्वसृजा जिह्वा प्राणिनां शर्मदायिनी । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥५८
पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्म हुताशन । त्राहि मां सर्वदोषेभ्यः संसारादुद्धरेह माम् ॥५९
प्रसीद वह्नेसप्तार्चिः कृशानो हव्यवाहन । अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टाभिरुदीरितः ॥६०
अग्नेऽग्रे सर्वभूतानां समुत्पत्तिर्विभावसो । प्रसीद हव्यवाहाख्य अभिष्टुत मयाव्यय ॥६१

त्वमक्षयो वह्निरचिन्त्यरूपः समृद्धिमन्दुष्प्रसहोऽतितीव्रः ।
तवाव्ययं भीममशेषलोकसंवर्धकं हन्त्यथवातिवीर्यम् ॥६२
त्वमुत्तमं तत्त्वमशेषसत्त्वहृत्पुडरीकस्थमनन्तमीडचम् ।
त्वया ततं विश्वमिदं चराचरं हुताशनैको बहुधा त्वमत्र ॥६३
त्वमक्षयः सगिरिवना वसुन्धरा नभः ससोमार्कमहर्दिवाखिलम् ।
महोदधेर्जठरगतश्च वाडवो भवान्विंभुः पिबति पयांसि पावक ॥६४
हुताशनस्त्वमिति सदाभिपूज्यसे महाक्रतौ नियमपरैर्महर्षिभिः ।
अभिष्टुतः पिबसि च सोममध्वरे वषट्कृतान्यपि च हवींषि भूतये ॥६५

नामक जो आपकी जीभ प्राणियों के रोग दग्ध करती है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापों से हमारी रक्षा कीजिए ।५६। आपकी स्फुलिङ्गिनी नामक जिस जीभ से जो पुद्गल अर्थात् आत्मा और देह उत्पन्न होता है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापों से हमारी रक्षा कीजिए ।५७। आपकी विश्वा नामक जो जीभ प्राणियों को मंगल प्रदान करती है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापों से हमारी रक्षा कीजिए ।५८। हे हुताशन ! आपके नेत्र पिंगल वर्ण ग्रीवा लोहितवर्ण और आप स्वयं कृष्ण वर्ण हैं। आप मेरी सब प्रकार के दोषों से रक्षा कीजिए और मेरा इस संसार से उद्धार कीजिए ।५९। हे वह्ने ! आप सप्तार्चिः, हव्यवाहन, कृशानु, अग्नि, पावक, शुक्र इत्यादि आठ नामों से कथित होते हो आप प्रसन्न हों ।६०। हे अग्ने ! आप संपूर्ण भूतों से आगे उत्पन्न हुए हैं। हे विभावसो ! हे अव्यय हव्यवाह ! मैं आपकी स्तुति करता हूँ आप स्तुति को प्राप्त होकर मेरे प्रति प्रसन्न हों ।६१। हे वह्ने ! आपका क्षय नहीं हैं, आपका रूप अचिन्त्य अर्थात् चिन्ताका भी अविषय है, आप समृद्धिसंपन्न, आश्रय और अत्यन्त तीव्र हैं, मूर्तिमान होने पर आप ऐसे बलशाली होते हैं, कि अव्यय और भीमरूप संपूर्ण जगत् को भी नाश करते हैं ।६२। हे हुताशन ! आप उत्तम सत्त्व और संपूर्ण प्राणियों के हृदयकमलस्वरूप हो, और आप सबके पूजनीय अनन्त ब्रह्मस्वरूप हो। आपने ही ब्रह्मस्वरूप से इस चराचर विश्व को व्याप्त कर रखा है, अत एव आप एक होकर भी बहुत प्रकार से इस संसार में अवस्थान करते हो।६३। हे अनल! आप अक्षय हैं आप ही पर्वतवनयुक्त पृथ्वींस्वरूप हैं, आप ही चन्द्रसूर्ययुक्त समस्त आकाशस्वरूप हैं आप ही दिन -रात इत्यादि निखिल कालस्वरूप हैं। आप ही महासमुद्र के भीतर वडवाग्नि हैं और आप ही परम विभूति के द्वारा सर्व किरण में अवस्थित हैं ।६४। हे हुताशन ! आप हुत हवि भोजन करते हैं, इस कारण नियमपरायण महर्षिगण महायज्ञ में आपकी सदा पूजा करते हैं और आप भी उनके द्वारा स्तुति को प्राप्त होकर जगत् के मंगलार्थ सोमरस और वषट्कार सहित हवि पान करते हैं।६५।

त्वं विप्रैः सततमिहेज्यसे फलार्थं वेदाङ्गेष्वथ सकलेषु गीयसे त्वम् ।
त्वद्धेतोर्यजनपरायणा द्विजेन्द्रा वेदाङ्गान्यधिगमयन्ति सर्वकाले।।६६
त्वं ब्रह्मा यजनपरस्तथैव विष्णुर्भूतेशः सुरपतिरर्यमा जलेशः ।
सूर्येन्दू सकलसुरासुराश्च हव्यैः सन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति।।६७
अर्चिभिः परममहोपघातदुष्टं संस्पृष्टं तव शुचि जायते समस्तम् ।
स्नानानां परममतीव भस्मना सत्सन्ध्यायां मुनिभिरतीव सेव्यसे तत्।।६८
तत्कृत्वा त्रिदिवमवाप्नुवन्ति लोकाः । सद्भक्त्या सुखनियताः संमूहगतिम् ।।६९
प्रसीद वह्ने शुचिनामधेय प्रसीद वायो विमलातिदीप्ते ।
प्रसीद मे पावक वैद्युताभ प्रसीद हव्याशन पाहि मां त्वम् ।७०
यत्ते वह्ने शिवं रूपं ये च ते सप्त हेतयः । तैः पाहि न स्तुतो देव पिता पुत्रमिवात्मजम्।।७१

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भौत्यमन्वन्तरेऽग्निस्तोत्रं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ।९६।

समस्त वेदाङ्ग में आप ही गाये जाते हैं और यज्ञपरायण आपके लिये द्विजश्रेष्ठगण सदा वेदाङ्ग अध्ययन करते हैं ।६६। आपही यजनपरायण ब्रह्मा हैं आप ही विष्णु और आप ही भूतनाथ महादेव हैं। देवराजेन्द्र, अर्यमा, जलेश्वर वरुण, सूर्य और चन्द्रमा भी आप ही हैं । देवता और असुर सभी हव्य द्वारा आपको संतुष्ट करके वांछित फल को प्राप्त होते हैं ।६७। अत्यन्त उपघात से दूषित संपूर्ण वस्तु आपकी शिखा के स्पर्श से पवित्र होती हैं, विविध स्नान में भस्म द्वारा स्नान ही श्रेष्ठ है, इस कारण मुनिगण सन्ध्याकाल में वही स्नान करते हैं ।६८। ऐसा करने से लोक स्वर्ग को प्राप्त होते हैं और सद्भक्ति कर अनेक सुख को प्राप्त करते हैं ।६९। हे वह्ने ! इस निमित्त ही आप शुचिनामधारी हैं आप उसी रूप से मेरे प्रति प्रसन्न हों आप ही विमल और अतिबल वायुस्वरूप हैं आप उसी रूप से प्रसन्न हों । हे पावक ! आप वैद्युताग्नि इत्यादि नामों से कीर्त्तित होते हैं आप उसी रूप से मेरे प्रति प्रसन्न हों । हे हव्याशन ! आप प्रसन्न होइये और मेरी रक्षा कीजिए ।७०। हे वह्ने ! आपका जो मंगलमयरूप और जो सप्तहेति (ज्वाला) हैं, हे देव ! मेरे द्वारा स्तुति को प्राप्त होकर उन सबसे, पिता जिस प्रकार पुत्र की रक्षा करता है, वैसे ही मेरी रक्षा कीजिए ।७१

श्रीमार्कण्डेयपुराण के भौत्यमन्वन्तर के कथन में अग्निस्तोत्र वर्णन
नामक छियानबेवां अध्याय समाप्त।९६।

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

(२००)

सम्पातिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं स्तुतस्ततस्तेन भगवान्हव्यवाहनः । ज्वालामालावृततनुस्तस्यासीदग्रतो मुने ।।१
देवो विभावसुः प्रीतस्तोत्रेणानेन वै द्विज । तं शान्तिमाह प्रणतं मेघगम्भीरवागथ ।।२

अग्निरुवाच

परितुष्टोऽस्मि ते विप्र भक्त्या या ते स्तुतिः कृता । वरं ददामि भवते प्रार्थ्यतां यत्तवेप्सितम् ।।३

शान्तिरुवाच

भगवन्कृतकृत्योऽस्मि यत्त्वा पश्यामि रूपिणम् । तथापि भक्तिनम्रस्य भवता श्रूयतां मम ।।४
भ्रातृयज्ञं गतो देव ममाचार्यो निजाश्रमान् । आगतश्चाश्रमं धिष्ण्यं त्वत्सनाथं स पश्यतु ।।५
ममापराधात्सन्त्यक्तं धिष्ण्यं यत्ते विभावसो । तत्त्वयाधिष्ठितं सोऽद्य पूर्ववत्पश्यतु द्विजः ।।६
तथान्यदपि मे देव प्रसादं कुरुषे यदि । पुत्रो विशिष्टो भवतु तदपुत्रस्य मे गुरोः ।।७
तथा च मैत्रीं तनये स करिष्यति मे गुरुः । तथा समस्तसत्त्वेषु भवत्वस्य मनो मृदु ।।८
यश्च त्वां स्तोष्यतेऽनेन प्रीतिं यातोऽसि मेऽव्यय । स्तोत्रेण तस्य वरदो भवेथा मत्प्रसादितः ।।९

अध्याय ९७

सम्पाति नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! शान्ति के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् हव्यवाहन ज्वालामाला से युक्त होकर वहाँ उनके सन्मुख प्रगट हुए ।१। हे द्विज ! देव विभावसु ने इस स्तोत्र के द्वारा प्रसन्न होकर उन प्रणत शान्ति से मेघ के समान गंभीर वचन द्वारा कहा ।२

अग्नि बोले—हे विप्र ! तुमने जो भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति की है, इसमें मैं संतुष्ट हुआ हूँ । मैं तुमको वर देता हूँ तुम अपने अभिलषित विषय की प्रार्थना करो ।३

शान्ति ने कहा—हे भगवन् ! आपको मूर्तिमान् दर्शन करके ही मैं कृतकृत्य हुआ हूँ । तो भी मैं भक्तिनम्र होकर जो कहता हूँ, वह सुनिये ।४। हे देव ! मेरे आचार्य अपने आश्रम से भ्राता के यज्ञ में गये हैं । वह आश्रम में आकर अग्निकुण्ड को अग्नियुक्त देखें ।५। हे विभावसो ! मेरे अपराध के कारण जिस अग्निकुण्ड को आपने त्याग दिया है वह द्विज उसको इस समय आपके द्वारा पूर्ववत् अधिष्ठित देखें ।६। हे देव ! आप यदि प्रसन्न हुए हैं, तो मेरी दूसरी प्रार्थना यह है, कि, मेरे अपुत्र गुरु के विशिष्ट (गुणशाली) पुत्र हो ।७। मेरे गुरु जिस प्रकार उस अपने पुत्र से स्नेह करें, उनका मन उसी प्रकार सब प्राणियों के प्रति मृदु अर्थात् स्नेहशाली हो ।८। हे अव्यय ! मुझ पर प्रसन्न हुआ देखकर जो आपकी स्तुति करे, मेरे प्रति प्रसन्न होकर आप उसके संबंध में इस स्तोत्र द्वारा वरदायक हों ।९।

मार्कण्डेय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य तमाह द्विजसत्तमम् । स्तोत्रेणाराधितस्तेन गुरुभक्त्या च पावकः ॥१०

अग्निरुवाच

गुरोरर्थे यतो ब्रह्मन्याचितं ते वरद्वयम् । नात्मार्थं तेन मे प्रीतिस्त्वय्यतीव महामुने ॥११
भविष्यत्येतदखिलं गुरोर्यत्प्रार्थितं त्वया । मैत्री समस्तभूतेषु पुत्रश्चास्य भविष्यति ॥१२
मन्वन्तराधिपः पुत्रो भौत्यो नाम भविष्यति । महाबलो महावीर्यो महाप्राज्ञो गुरुस्तव ॥१३
अनेन यश्च स्तोत्रेण स्तोष्यते मां समाहितः । तस्याभिलषितं सर्वं पुण्यं चास्य भविष्यति ॥१४
यज्ञेषु पर्वकालेषु तीर्थेज्याहोमकर्मसु । धर्माय पठतामेतन्मम पुष्टिकरं परम् ॥१५
अहोरात्रकृतं पापं श्रुतमेतत्सकृद्द्विज । नाशयिष्यत्यसन्दिग्धं मम तुष्टिकरं परम् ॥१६
अहोमकालदोषादीनयोग्यैरपि तत्कृतैः । ये दोषास्तानिदं सद्यः शमयिष्यति संश्रुतम् ॥१७
पौर्णमास्याममावास्यां पर्वस्वन्येषु च स्तवः । ममैष संश्रुतो मर्त्यैर्भविता पापनाशनः ॥१८

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा भगवानग्निः पश्यतस्तस्य वै मुने । बभूवादर्शनः सद्यो दीपस्थो निवृत्तो यथा ॥१९
स च शान्तिर्गते वह्नौ परितुष्टेन चेतसा । हर्षरोमाञ्चिततनुः प्रविवेशाश्रमं गुरोः ॥२०

मार्कण्डेय जी बोले—पावक गुरुभक्ति द्वारा और इस स्तोत्र द्वारा आराधित हो उस द्विजश्रेष्ठ शान्ति का वचन सुनकर उससे कहने लगे ।१०

अग्नि बोले—हे ब्रह्मन् ! तुमने जो गुरु के लिये दो वर माँगे और अपने लिये कुछ भी नहीं माँगा हे महामुने ! इससे मैं तुम्हारे प्रति और भी अधिक प्रसन्न हुआ हूँ ।११। तुमने गुरु के लिये जो प्रार्थना की है, वह समस्त ही पूर्ण होगी समस्त प्राणियों में उनकी मित्रता होगी और उनके पुत्र भी होगा ।१२। तुम्हारे गुरु महाप्राज्ञ हैं, उनके महाबल, महावीर्य भौत्य नामक मन्वन्तराधिपति पुत्र उत्पन्न होगा ।१३। और जो पुरुष सावधान होकर इस स्तोत्र द्वारा मेरी स्तुति करेगा, उसकी समस्त कामना पूर्ण होंगी और पुण्यसंचय होगा ।१४। यज्ञ में, पर्वकाल में, तीर्थयज्ञ में और होमकर्म में धर्मार्थ मेरा यह पुष्टिकारक स्तोत्र पाठ करने से ।१५। तथा इसको एक बार श्रवण मात्र करने से दिन और रात्रि का किया समस्त पाप निःसन्देह नष्ट होगा । हे द्विज ! यह स्तव मेरा अत्यन्त सन्तोषजनक है ।१६। होमकाल के बीत जाने पर या अनधिकारी मनुष्य के होमादि करने पर जो दोष होता है, इस स्तव के सुनने से वह तत्काल प्रशमित होता है ।१७। मेरा यह श्रेष्ठ स्तव पूर्णिमा, अमावस्या अथवा अन्य पर्वकाल में सुनने से मनुष्यों का पाप नष्ट होगा ।१८

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! दीपक की अग्नि जिस प्रकार सहसा निवृत्त हो जाती है, उसी प्रकार भगवान् अग्नि यह कहकर देखते-देखते उनके सन्मुख से अन्तर्धान हो गये ।१९। अग्नि के अन्तर्धान होने पर वह शान्ति संतुष्टचित्त और हर्ष से पुलकिततनु होकर गुरु के आश्रम में गये ।२०। अनन्तर वह शान्ति

जाज्वल्यमानं तत्रासौ गुरुधिष्ण्ये हुताशनम् । ददर्श पूर्ववत्प्राप ततः स परमां मुदम् ॥२१
एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि गुरुस्तस्य महात्मनः । भ्रातुर्यवीयसो यज्ञादाजगाम स्वमाश्रमम् ॥२२
तस्याग्रतश्च शिष्योऽसौ चक्रे पादाभिवन्दनम् । गृहीतासनपूजश्च तमाह स तदा गुरुः ॥२३
वत्सातिहार्दं त्वयि मे तथान्येषु च जन्तुषु । न वेद्मि किमिदं त्वं चेद्वेत्स्ये तत्कथयाशु मे ॥२४
ततः स शान्तिस्तत्सर्वमाचार्याय महामुने । अग्निनाशादिकं विप्रः समाचष्टे यथातथम् ॥२५
तच्छ्रुत्वा स परिष्वज्ये स्नेहार्द्रनयनो गुरुः । शिष्याय प्रददौ वेदान्साङ्गोपाङ्गान्महामुने ॥२६
भौत्यो नाम मनुस्तस्य पुत्रो भूतेरजायत । तस्य मन्वन्तरे देवानृषीन्भूपांश्च मे शृणु ॥२७
भविष्यस्य भविष्यास्तु गदतो मम विस्तरात् । देवेन्द्रो यश्च भविता तस्य विख्यातकर्मणः ॥२८
चाक्षुषाश्च कनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजिरास्तथा । धारावृकाश्चेत्येते वै पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥२९
शुचिरिन्द्रस्तदा तेषां त्रिदशानां भविष्यति । महाबलो महावीर्यः सर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ॥३०
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च शुचिर्मुक्तोऽथ माधवः । शुक्रोऽजितश्च सप्तैते तदा सप्तर्षयः स्मृताः ॥३१
गुरुर्गभीरो ब्रध्नश्च भरतोऽनुग्रहस्तथा । श्रीमानी च प्रतीरश्च विष्णुः संक्रन्दनस्तथा ॥३२
तेजस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः । चतुर्दशं मयैतत्ते मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥३३
श्रुत्वा मन्वन्तराणीत्थं क्रमेण मुनिसत्तम । पुण्यमाप्नोति मनुजस्तथाऽक्षीणां च सन्ततिम् ॥३४
श्रुत्वा मन्वन्तरं पूर्वं धर्ममाप्नोति मानवः । स्वारोचिषस्य श्रवणात्सर्वकामानवाप्नुते ॥३५

गुरु के अग्निकुण्ड में अग्नि को पूर्ववत् जाज्वल्यमान देखकर अत्यन्त मुदित हुए ।२१। इसी अवसर में वह महात्मा शान्ति के गुरु भी कनिष्ठ भ्राता के यज्ञ से अपने आश्रम में लौटकर आये ।२२। तब आगे जाकर उस शिष्य ने उनके चरणों की वंदना की । तदनन्तर गुरु ने पूजा और आसन ग्रहण करके शान्ति से कहा ।२३। हे वत्स ! तुम्हारे प्रति और अन्यान्य प्राणियों के प्रति मेरा स्नेह उत्पन्न होता है, ऐसा क्यों हुआ, वह मैं नहीं जानता । हे वत्स ! तुम यदि जानते हो तो शीघ्र मुझसे कहो ।२४। हे महामुने ! तब शान्तिनामक उस विप्र ने अग्निनाशादि वह समस्त घटना आचार्य से यथावत् कह सुनाई ।२५। हे महामुने ! उन गुरु ने यह समस्त सुनकर स्नेहार्द्रनेत्रों से शिष्य को आलिंगन करके उसको साङ्गोपाङ्ग संपूर्ण वेद प्रदान किये और ।२६। तदनन्तर उन भूति के पुत्र भौत्यनामक मनु ने जन्म ग्रहण किया था उन विख्यात कर्मा भविष्य मनु के मन्वन्तर में जो देवता, ऋषि, भूपति और जो इन्द्र होंगे उनका विषय मैं विस्तार सहित वर्णन करता हूँ सुनो ।२७-२८। चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भाजिर और धारावृक यह पाँच प्रकार के देवगण होंगे ।२९। उस समय संपूर्ण इन्द्र के गुणों से युक्त महाबल महावीर्य "शुचि" उन देवताओं के इन्द्र होंगे ।३०। आग्नीध्र, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शक्र और अजित, यह सात जन ही उस समय सप्तर्षि होंगे ।३१। गुह, गंभीर, ब्रध्न, भरत, अनुग्रह, श्रीमानी, प्रतीर, विष्णु, संक्रमण ।३२। और तेजस्वी सुबल, यही भौत्यमनु के पुत्र होंगे । यह मैंने तुम्हारे निकट चौदह मन्वन्तरों का वर्णन किया ।३३। हे मुनिसत्तम ! क्रमानुसार यह संपूर्ण मन्वन्तर श्रवण करने से मनुष्यगण पुण्यसंचय में समर्थ होते हैं और उनका वंश कभी क्षीण नहीं होता ।३४। मनुष्यगण प्रथम मन्वन्तर (स्वयाम्भुव) श्रवण करके धर्म को प्राप्त होते हैं, दूसरा स्वारोचिष मन्वन्तर सुनने से उनकी संपूर्ण कामना सिद्ध होती

औत्तमे धनमाप्नोति ज्ञानमाप्नोति तामसे । रैवते च श्रुते बुद्धिं सुरूपां विन्दते स्त्रियम् ॥३६
आरोग्यं चाक्षुषे पुंसां श्रुते वैवस्वते बलम् । गुणवत्पुत्रपौत्रांस्तु सूर्यसावर्णिके श्रुते ॥३७
माहात्म्यं ब्रह्मसावर्णेर्धर्मसावर्णिके शुभाम् । मतिमाप्नोति मनुजो रुद्रसावर्णिके जयम् ॥३८
ज्ञातिश्रेष्ठो गुणैर्युक्तो दक्षसावर्णिके श्रुते । निशातयत्यरिबलं रौच्यं श्रुत्वा नरोत्तम ॥३९
देवप्रसादमाप्नोति भौत्ये मन्वन्तरे श्रुते । तथाग्निहोत्रं पुत्रांश्च गुणयुक्तानवाप्नुते ॥४०
सर्वाण्यनुक्रमाद्यश्च शृणोति मुनिसत्तम । मन्वन्तराणि तस्यापि श्रूयतां फलमुत्तमम् ॥४१
तत्र देवानृषीनिन्द्रान्मनूंस्तत्तनयान्नृपान् । श्रुत्वा वंशांश्च सर्वेभ्यः पापेभ्यो विप्र मुच्यते ।४२
देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्ये ये तन्मन्वन्तराधिपाः । ते प्रीयन्ते तथा प्रीता प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ॥४३
ततः शुभां मतिं प्राप्य कृत्वा कर्म तथा शुभम् । शुभां गतिमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४४
सर्वे स्युर्ऋतवः क्षेम्याः सर्वे सौम्यास्तथा ग्रहाः । भवन्त्यसंशयं श्रुत्वा क्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥४५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे चतुर्दशमन्वन्तरवर्णनसमाप्तिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ।९७।

हैं ।३५। तीसरे औत्तममन्वन्तर के सुनने से धन और चौथे तामसमन्वन्तर के सुनने से ज्ञान लाभ होता है। पांचवें रैवतमन्वन्तर के सुनने से बुद्धि और स्वरूपवती स्त्री प्राप्त होती है ।३६। छठे चाक्षुषमन्वन्तर के सुनने से पुरुष आरोग्यता लाभ करते हैं, सातवें वैवस्वत मन्वन्तर के सुनने से बल और आठवें सूर्य सावर्णिक मन्वन्तर के सुनने से गुणवान् पुत्र पौत्र लाभ करते हैं ।३७। मनुष्यगण नवम ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर श्रवण करने से माहात्म्य द्वारा धर्मसावर्णिक सुनने से मंगल और ग्यारहवाँ रुद्रसावर्णिकमन्वन्तर सुनने से सुमति और जय प्राप्त होता है ।३८। हे नरोत्तम ! बारहवाँ दीक्षासावर्णिकमन्वन्तर सुनने से मनुष्य ज्ञाति में श्रेष्ठ और गुणयुक्त होता है । तेरहवां रौच्यमन्वन्तर सुनने से शत्रुबलध्वंस करने में समर्थ होता है ।३९। चौदहवाँ भौत्यमन्वन्तर सुनने से देवप्रसादलाभ होता है और अग्निहोत्र फल तथा गुणयुक्त पुत्र प्राप्त हो सकता है ।४०। हे मुनिसत्तम ! जो मनुष्य स्वायम्भुवमन्वन्तर से क्रमानुसार सब मन्वन्तर सुनते हैं, उनकी उत्तम फल प्राप्ति का विषय सुनो ।४१। हे विप्र ! उन उन मन्वन्तर के देवता समस्त ऋषि, मनु के नृपति, पुत्रगण और उनके वंश का वृत्तान्त सुनने पर मनुष्य संपूर्ण पापों से छूट जाता है ।४२। और देवता, ऋषि, नृपगण तथा अपर जो उस मन्वन्तर के अधिपति हैं, वह प्रसन्न होते हैं और वह प्रसन्न होने पर सुमति देते हैं ।४३। तदनन्तर सुमति को प्राप्त होकर शुभ कर्म करने से जब तक चौदह इन्द्र रहेंगे, तब तक मनुष्य शुभमति को प्राप्त होंगे ।४४। क्रमानुसार मन्वन्तरों की स्थिति सुनने से समस्त ऋतु क्षेमकारीहोतीहै और समस्त ग्रह सौम्य होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।४५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में चतुर्दशमन्वन्तर समाप्ति
वर्णन नामक सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त ।९७।

(१०२)

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

वंशानुकीर्तनवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन्कथिता सम्यक्त्वया मन्वन्तरस्थितिः । क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तो मया चैवावधारिता ।।१
ब्रह्माद्यमखिलं वंशं भूभुजां द्विजसत्तम । श्रोतुं ममेच्छतः सम्यग्भगवन्प्रब्रवीहि मे ।।२

मार्कण्डेय उवाच

शृणु वत्स नृपाणां त्वमशेषाणां समुद्भवम् । चरितं च जगन्मूलमादौ कृत्वा प्रजापतिम् ।।३
अयं हि वंशो भूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः । संग्रामजिद्भिर्धर्मज्ञैः शतसंख्यैरलंकृतः ।।४
श्रुत्वा चैषां नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनाम् । उत्पत्तयश्च पुरुषः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।५
मनुर्यत्र तथेक्ष्वाकुरनरण्यो भगीरथः । अन्ये च शतशो भूपाः सम्यक्पालितभूमयः ।।६
धर्मज्ञा यज्विनः शूराः परमार्थार्थवेदिनः । श्रुते तस्मिन्पुमान्वंशे पापौघाद्विप्रमुच्यते।।७
तदयं श्रूयतां वंशो यतो वंशाः सहस्रशः । भिद्यन्ते मनुजेन्द्राणामवरोहा यथा वटात् ।।८
ब्रह्मा प्रजापतिः पूर्वं सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम ।।९
वामाङ्गुष्ठाच्च तत्पत्नीं जगत्सूतिकरो विभुः । ससर्ज भगवान्ब्रह्मा जगतां कारणं परम् ।।१०

अध्याय ९८

वंशानुकीर्तन नामक वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! आपने मन्वन्तरों की स्थिति का विषय सम्यक् प्रकार से कहा है और मैंने भी क्रमशः वह विषय आपके निकट से विस्तार सहित सुना है ।१। हे द्विजसत्तम ! ब्रह्मा जी से आरंभ करके मै राजाओं का संपूर्ण वंश सुनने की इच्छा करता हूँ । हे भगवन् ! वह मुझसे भलीभाँति वर्णन कीजिए ।२

मार्कण्डेय जी बोले—हे वत्स ! तुम जगत्मूल प्रजापति ब्रह्मा जी से आरंभ करके संपूर्ण राजाओं के जन्म का वृत्तान्त और चरित्र सुनो ।३। अनेक यज्ञकारी रणविजयी, धर्मज्ञ शतशत राजाओं के द्वारा यह वंश अलंकृत है ।४। इन महात्मा राजाओं की उत्पत्ति का विषय और सब चरित्र सुनकर पुरुष समस्त पापों से छूट जाते हैं ।५। जिस वंश में मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ और अन्यान्य शत शत धर्मज्ञ, यज्ञकारीं शूर और परमज्ञानी भूपालगणों ने जन्म ग्रहण करके सम्यक् प्रकार से पृथ्वी का पालन किया था, उस वंश का विषय सुनने पर पुरुष संपूर्ण पापसमूह से छूट जाता है ।६-७। वटवृक्ष से अंकुर उत्पन्न होकर जिस प्रकार वह स्वतन्त्र वटवृक्षरूप में परिणत होता है, उसी प्रकार इस वंश से मनुजेन्द्रगणों के सहस्र-सहस्र वंश उत्पन्न हुए हैं, वह सुनो ।८। हे द्विजसत्तम ! पूर्वकाल में प्रजापति ब्रह्मा जी ने विविध प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा करके दाहिने अंगूठे से दक्ष को उत्पन्न किया था ।९। जगत्प्रसवकारी प्रभु भगवान् ब्रह्मा जी ने जगत् की सृष्टि के लिये बायें अंगूठे से उस दक्ष की पत्नी को उत्पन्न किया ।१०। उस

अदितिस्तस्य दक्षस्य कन्याजायत शोभना । तस्यां च कश्यपो देवं मार्तण्डं समजीजनत् ॥११
ब्रह्मा स्वरूपं जगतामशेषाणां वरप्रदम् । आदिमध्यान्तभूतं च सर्गस्थित्यन्तकर्मसु ॥१२
यतोऽखिलमिदं यस्मिन्नशेषं च स्थितां द्विज । यत्स्वरूपं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ॥१३
यः सर्वभूतः सर्वात्मा परमात्मा सनातनः । अदित्यामभवद्भास्वान्पूर्वमाराधितस्तया ॥१४

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि यत्स्वरूपं विवस्वतः । यत्कारणं चादिदेवः सोऽभवत्कश्यपात्मजः ॥१५
यथा चाराधितो देव्या सोऽदित्या कश्यपेन च । आराधितेन चोक्तं यत्तेन देवेन भास्वता ॥१६
प्रभावं चावतीर्णस्य यथावन्मुनिसत्तम । भवता कथितं सम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥१७

मार्कण्डेय उवाच

विस्पष्टा परमा विद्या ज्योतिर्भा शाश्वती स्फुटा । कैवल्यं ज्ञानमाविर्भूःप्राकाम्यं संविदेव च ॥१८
बोधश्चावगतिश्चैव स्मृतिर्विज्ञानमेव च । इत्येतानीह रूपाणि तस्यारूपस्य भास्वतः ॥१९
श्रूयतां च महाभाग विस्तराद्वदतो मम । यत्पृष्टवानसि रवेराविर्भावो यथाभवत् ॥२०
निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्वतस्तमसावृते । बृहदण्डमभूदेकमक्षरं कारणं परम् ॥२१
तद्विभेद तदन्तःस्थो भगवान्प्रपितामहः । पद्मयोनिः स्वयं ब्रह्मा यः स्रष्टा जगतां प्रभुः ॥२२

दक्ष की अदिति नामक सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई थी । उसके गर्भ और कश्यप के औरस से मार्तण्डदेव का जन्म हुआ ।११। हे द्विज ! जो ब्रह्मस्वरूप अशेष जगत् को वर देने वाले हैं, सृष्टि, स्थिति, प्रलय कर्म में जो आदि, मध्य, अनन्तस्वरूप है ।१२। जिनसे यह संपूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें यह संपूर्ण जगत् अवस्थित है, देवासुर और मनुष्य युक्त यह जगत् जिनका स्वरूप है ।१३। जो सर्वभूतस्वरूप है, जो सर्वात्मा हैं और जो सनातन परमात्मा हैं, उन्हीं भास्वान् सूर्य ने पूर्व में अदिति के द्वारा आराधित होकर उसके गर्भ से जन्म ग्रहण किया ।१४

क्रौष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! विवस्वान् सूर्य का जो स्वरूप है और जिस कारण से वह आदि देव कश्यप के पुत्र हुए यह सुनने की इच्छा करता हूँ ।१५। तथा वह जिस प्रकार कश्यप और देवी के द्वारा आराधित हुए थे औरं आराधित होकर उन भास्कर देव ने जो कहा था ।१६। और गृहीतजन्मा दिवाकर का प्रभाव इससे पहले आपने जिस प्रकार कहा है मुनिसत्तम ! वह भी सब भलीभाँति विस्तारसहित सुनने की अभिलाषा है ।१७

मार्कण्डेय जी बोले—विस्पष्टा, परमा, विद्या, ज्योतिः, शाश्वती और प्रकाशिता, दीप्ति, कैवल्य, ज्ञान, आविर्भाव, प्राकाम्य, संवित् ॥१८। बोध, अवगति, स्मृति और विज्ञान, यह समस्त ही सूर्यमूर्त्ति का स्वरूप है ।१९। हे महाभाग ! आपने जो पूछा कि, "रवि का किस प्रकार आविर्भाव हुआ था?" वह मैं विस्तार पूर्वक कहता हूँ, सुनो।२०। सृष्टि के पहले जब कुछ भी नहीं था, तब इस जगत् के प्रभाहीन और प्रकाशहीन होकर भलीभाँति अंधकार से ढक जाने पर परम कारण, क्षयरहित एक बड़ा अंडा उत्पन्न हुआ था।२१। उसके मध्य में भगवान् प्रपितामह, पद्मयोनि स्थित थे, जो जगत् के उत्पन्न कर्त्ता

तन्मुखादोमिति महानभूच्छब्दो महामुने । ततो भूस्तु भुवस्तस्मात्ततश्च स्वरनन्तरम् ।।२३
एता व्याहृतयस्तिस्रः स्वरूपं तद्विवस्वतः । ओमित्यस्मात्स्वरूपात्तु सूक्ष्मरूपं रवेः परम् ।।२४
ततो महरिति स्थूलं जनं स्थूलतरं ततः । ततस्तपस्ततः सत्यमिति मूर्त्तानि सप्तधा ।।२५
स्थितानि तस्य रूपाणि भवन्ति न भवन्ति च । स्वभावभावयोर्भावं यतो गच्छन्ति संशयम् ।।२६
आद्यन्तं यत्परं सूक्ष्ममरूपं परमं स्थितम् । ओमित्युक्तं मया विप्र तत्परब्रह्म तद्वपुः ।।२७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वंशानुकीर्त्तनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ।९८।

अथ नवनवतितमोऽध्यायः

(१०२)

मार्तण्डमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्मादण्डाद्विभिन्नात्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । ऋचोबभूवुः प्रथमं प्रथमाद्वदनान्मुने ।।१
जपापुष्पनिभाः सद्यस्तेजोरूपा ह्यसंहताः । पृथक्पृथग्विभिन्नाश्च रजोरूपवहास्ततः ।।२
यजूंषि दक्षिणाद्वक्रादनिरुद्धानि कानिचित् । यादृग्वर्णं तथा वर्णान्यसंहतिधराणि च ।।३

हैं, उन्हीं प्रभु ब्रह्मा जी ने स्वयं इस अंडे का भेदन किया ।२२। हे महामुने ! ब्रह्मा जी के मुख से उस समय "ॐ" महाशब्द हुआ था। इस ओंकार से प्रथम 'भू' फिर 'भुवः' और इसके बाद 'स्वः' उत्पन्न हुआ ।२३। यह तीन प्रकार की व्याहृति ही भगवान् सूर्य का स्वरूप है । इस 'ॐ' स्वरूप से ही रवि का परम सूक्ष्मरूप हुआ है ।२४। फिर उसने स्थूल रूप 'महः' इसके बाद स्थूलतररूप 'जन' फिर उसकी अपेक्षा स्थूल रूप 'तपः' और तदनन्तर उसकी अपेक्षा भी स्थूल रूप 'सत्य' उत्पन्न हुआ । सूर्य का यह समस्त रूप मूर्त्त अर्थात् स्थूल है ओंकार से विवस्वान् के स्थूल सूक्ष्म भेद से यह सात रूप उत्पन्न हुए हैं ।२५। भगवान् भास्कर के यह समस्त रूप होने पर भी कभी प्रकाशित होते हैं और कभी अप्रकाशित होते हैं, क्योंकि स्वभाव और भाव का अस्तित्व भी संशय को प्राप्त होता है ।२६। हे विप्र ! इस विश्व के आदि और अन्त में जो रूपविहीन परमसूक्ष्म परमात्मा स्थित हैं, मैंने जो ॐकार कहा, वह ॐकार वही है । हे विप्र ! वह परमब्रह्म ही मार्त्तण्ड देव का शरीर है ।२७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में वंशानुकीर्त्तन वर्णन नामक अट्ठानबेंवाँ अध्याय समाप्त ।९८।

अध्याय ९९

मार्त्तण्डमाहात्म्य का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! जब वह अण्डा विभिन्न हुआ अर्थात् फटा और उसमें से अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा जी निकले, तब उनके पहले मुख से ऋग्वेद उत्पन्न हुआ ।१। वह जपापुष्प के समान, तेजोरूप असंहत और परस्पर विभिन्न रजोरूपधारी था ।२। उनके दक्षिण मुख से कंचन के समान वर्णयुक्त असंहति धारण करने वाला समस्त यजुः अनिरुद्धभाव से बहिर्गत हुआ अर्थात् निकला ।३।

पश्चिमं यद्विभोर्वक्त्रं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । आविर्भूतानि सामानि तत्तच्छन्दांसि तान्यथ ॥४
अथर्वणामशेषं च भृङ्गाञ्जनचयप्रभम् । यावद्घोरस्वरूपं तदाभिचारिकशान्तिकम् ॥५
उत्तरात्प्रकटीभूतं वदनात्तस्य वेधसः । सुखसत्त्वतमःप्रायं सौम्यासौम्यस्वरूपवत् ॥६
ऋचो रजोगुणाः सत्त्वं यजुषां च गुणा मुने । तमोगुणानि सामानि तमःसत्त्वमथर्वसु ॥७
एतानि ज्वलमानानि तेजसाऽप्रतिमेन वै । पृथक्पृथगवस्थानभाञ्जि पूर्वमिवाभवन् ॥८
ततस्तदाद्यं यत्तेज ओमित्युक्त्वाभिशब्दचते । तस्य स्वभावाद्यत्तेजस्तत्समावृत्य संस्थितम् ॥९
यथा यजुर्मयं तेजस्तद्वत्साम्नां महामुने । एकत्वमुपयातानि परे तेजस संश्रये ॥१०
शान्तिकं पौष्टिकं चैव तथा चैवाभिचारिकम् । ऋगादिषु लयं ब्रह्मंस्त्रितयं त्रिष्वथागमत् ॥११
ततो विश्वमिदं सद्यस्तमोनाशात्सुनिर्मलम् । विभावनीयं विप्रर्षे तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥१२
ततस्तन्मण्डलीभूतं छान्दसं तेज उत्तमम् । परेण तेजसा ब्रह्मन्नेकत्वमुपगम्य तत् ॥१३
आदित्यसंज्ञामगमदादावेव यतोऽभवत् । विश्वस्यास्य महाभाग कारणं चाव्ययात्मकम् ॥१४
प्रातर्मध्यन्दिने चैव तथा चैवापराह्णिके । त्रयी तपति सा काले ऋग्यजुःसामसंज्ञिता ॥१५
ऋचस्तपन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्ने च यजूंषि वै । सामानि चापराह्णे वै तपन्ति मुनिसत्तम ॥१६
शान्तिकमृक्षु पूर्वाह्णे यजुःष्वेव च पौष्टिकम् । विन्यस्तं साम्नि सायाह्ने ह्याभिचारिकमन्ततः ॥१७

अनन्तर परमेष्ठी ब्रह्मा जी की पश्चिम दिशा में जो मुख है, उससे समस्त साम आविर्भूत हुआ। वह समस्त सामछन्दसंयुक्त था।४। उन ब्रह्मा जी के उत्तर मुख से इसी प्रकार मारण उच्चाटन आदि आभिचारिक और शान्तिकारक घोररूप भौरे और अंजन के समूह के समान कृष्णवर्ण प्रभायुक्त सुख, सत्व और तमोबहुल सौम्य और असौम्यरूपी अशेष अथर्व प्रगट हुआ।५-६। हे मुने ! समस्त ऋक् रजोगुणयुक्त समस्त यजुः सत्वगुणयुक्त, समस्त साम तमोगुणयुक्त और समस्त अथर्व सत्त्व तथा तमोगुणात्मक है।७। इन सबने ही अप्रतिम तेजद्वारा उज्ज्वल होकर पूर्ववत् पृथक्-पृथक् भाव से अवस्थान किया।८। तदनंतर प्रथम का वह जो तेज है, जिसको 'ॐ' कहा गया है, उसके स्वभाव से उत्पन्न हुआ जो तेज है उसको वह आवृत करके अवस्थित हुआ।९। हे महामुने ! इसी प्रकार उसने साममय तेज और यजुर्मय तेज को भी आवृत किया, इस भाँति समस्त तेज ही उस ओंकार रूप परम तेज को आश्रय करके एकता को प्राप्त हुए।१०। हे ब्रह्मन् ! अनन्तर ऋक् इत्यादि तीनों वेद में शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक यह त्रिविध अथर्व वेद लीन हुआ।११। हे विप्रर्षे ! फिर अंधकार का नाश होने से यह विश्व तत्काल निर्मल हुआ, इससे उसका ऊर्ध्व, अध और तिर्यक् (पार्श्व) देश प्रकाशित हुआ।१२। हे ब्रह्मन् ! इसके उपरान्त वह छान्दस (वैदिक) उत्तम तेज मण्डलीभूत, होकर फिर श्रेष्ठ तेज ओंकार के सहित एकता को प्राप्त हुआ।१३। इस प्रकार यह तेज आदि में (प्रथम में) उत्पन्न हुआ इस कारण आदित्यसंज्ञा को प्राप्त हुआ हे महाभाग ! यह इस विश्व का अव्ययात्मक कारण है।१४। ऋक, यजु और सामनाम्नी त्रयी ही प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और अपराह्नकाल में तपती है।१५। हे मुनिसत्तम ! उनमें प्रातःसमय ऋक मध्याह्न में यजुः और अपराह्न में साम तपता है।१६। पूर्वाह्न के समय ऋक् के शान्ति कर्म, मध्याह्न के समय यजुः में पौष्टिक और सायाह्न के समय साममंत्र में समस्त

मध्यन्दिनेऽपराह्णे च समे चैवाभिचारिकम् । अपराह्णे पितृणां तु साम्ना कार्याणि तानि वै ।।१८
विसृष्टौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मयः । रुद्रः साममयोऽन्ते च तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ।।१९
तदेवं भगवान्भास्वान्वेदात्मा वेदसंस्थितः । वेदविद्यात्मकश्चैव परः पुरुष उच्यते ।।२०
सर्गस्थित्यन्तहेतुश्च रजःसत्त्वादिकान्गुणान् । आश्रित्य ब्रह्मविष्ण्वादिसंज्ञामभ्येति शाश्वतः ।।२१

देवैः सदेडचः स तु वेदमूर्तिरमूर्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्तिः ।
विश्वाश्रयं ज्योतिरवेद्यधर्मा वेदान्तगम्यः परमः परेशः ।।२२

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्त्तण्डमाहात्म्ये नवनवतितमोऽध्यायः ।९९।

अथ शततमोऽध्यायः

(१०३)

आदित्यस्तववर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्य सन्ताप्यमाने तु तेजसोर्ध्वमधस्यथा । सिसृक्षुश्चिन्तयामास पद्मयोनिः पितामहः ।।१
सृष्टिः कृतापि मे नाशं प्रयास्यत्यभितेजसा । भास्वतः सृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः ।।२
अप्राणाः प्राणिनः सर्व आपः शुष्यन्ति तेजसा । न चाम्भसा विना सृष्टिर्विश्वस्यास्य भविष्यति ।।३
इति सञ्चिन्त्य भगवान्स्तोत्रं भगवतो रवेः । चकार तन्मये भूत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ।।४

आभिचारिक कार्य विन्यस्त हैं ।१७। मध्याह्न और अपराह्ण दोनों काल में आभिचारिक कार्य करे और केवल अपराह्ण में सामद्वारा पितरों का कार्य करना चाहिए ।१८। सृष्टिकाल में ब्रह्मा ऋग्मय, स्थितिकाल में विष्णु यजुर्मय और संहार काल में रुद्र साम कहे गये हैं, इसी कारण अपराह्ण को अशुचि कहा है ।१९। अत एव उल्लिखित प्रकार से वेदात्मा वेदसंस्थित और वेद विद्यामय भगवान् भास्वान् परमपुरुष कहे गये हैं ।२०। सृष्टिस्थितिप्रलयकारी यह शाश्वत आदित्य सत्त्व रज और तमोगुण का आश्रय करके ब्रह्मा, विष्णु और शिवनाम को प्राप्त होते हैं ।२१। सर्वदा देवताओं के द्वारा पूज्य वेदमूर्ति निराकार और संपूर्ण प्राणियों के मूर्त्तिरूप में मूर्तिमान् ज्योतिर्स्वरूप में आदिपुरुष वह भगवान् आदित्य विश्व के आश्रयस्वरूप अवेद्यधर्मा, वेदान्तगम्य और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर हैं ।२२

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मार्तण्डमाहात्म्य वर्णन नामक निनन्यानबेवां अध्याय समाप्त ।९९।

अध्याय १००

आदित्यस्तव नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—तदनन्तर आदित्य के तेज द्वारा ऊर्ध्व और अधः संतापित होने पर सृष्टि की कामना करने वाले पद्मयोनि पितामह चिन्ता करने लगे ।१। कि, मेरे सृष्टि करने पर भी सृष्टि स्थिति संहारकारी महात्मा भास्कर के तीव्र तेज से वह समस्त ही नष्ट होगी ।२। उनके तेज से समस्त प्राणी प्राणहीन और जल शुष्क होता है फिर जल के बिना इस विश्व की सृष्टि भी नहीं होगी ।३। लोकपितामह ब्रह्मा इस प्रकार चिन्ता करके तन्मय हो भगवान् रवि की स्तुति करने लगे ।४

ब्रह्मोवाच

नमस्ये यन्मयं सर्वमेतत्सर्वमयश्च यः । विश्वमूर्तिः परं ज्योतिर्यत्तद्ध्यायन्ति योगिनः ॥५

य ऋङ्मयो यो यजुषां निधानं साम्नां च यो योनिरचिन्त्यशक्तिः ।
त्रयीमयः स्थूलतयार्धमात्रा परस्वरूपो गुणपारयोग्यः ॥६

त्वां सर्वहेतुं परमं च वेद्यमाद्यं परं ज्योतिरवेद्यरूपम् ।
स्थूलं च देवात्मतया नमस्ते भास्वन्तमाद्यं परमं परेभ्यः ॥७

सृष्टिं करोमि यदहं तव शक्तिराद्या तत्प्रेरितो जलमहीपवनाग्निरूपाम् ।
तद्देवतादिविषयां प्रणवाद्यशेषां नात्मेच्छया स्थितिलयावपि तद्वदेव ॥८

वह्निस्त्वमेव जलशोषणतः पृथिव्याः सृष्टिं करोषि जगतां च तथाद्य पाकम् ।
व्यापी त्वमेव भगवन्गगनस्वरूपं त्वं पञ्चधा जगदिदं परिपासि विश्वम् ॥९

यज्ञैर्यजन्ति परमात्मविदो भवन्तं विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयं विवस्वन् ।
ध्यायन्ति चापि यतयो नियतात्मचित्ताः सर्वेश्वरं परममात्मविमुक्तिकामा ।१०

नमस्ते देवरूपाय यज्ञरूपाय ते नमः । परब्रह्मस्वरूपाय चिन्त्यमानाय योगिभिः ॥११

उपसंहर तेजो यत्तेजसः संहतिस्तव । सृष्टेर्विधाताय विभो सृष्टौ चाहं समुद्यतः ॥१२

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं संस्तुतो भास्वान्ब्रह्मणा सर्गकर्तृणा । उपसंहृतवांस्तेजः परं स्वल्पमधारयत् ॥१३

ब्रह्मा जी बोले—जो संपूर्ण विश्व के आत्मस्वरूप हैं और जो इस विश्वरूप में ही वर्त्तमान हैं, विश्व ही जिनकी मूर्त्ति है और योगिगण जिस अनिन्द्रियगाह्य परम ज्योति का ध्यान करते हैं मैं उनको नमस्कार करता हूँ ।५। जो अचिन्त्यशक्ति ऋग्वेदमय, जो यजुर्वेद के निधान (आधार) जो सामवेद की उत्पत्ति के कारण, जो स्थूलताप्रयुक्त त्रयीमय, जो अर्द्धमात्रास्वरूप एवं परमब्रह्मस्वरूप और गुणातीत है ।६। पहले उन्हीं सर्वकारणरूपी परमपूज्य, परमवेद्य अवह्निरूप परमज्योति, देवात्मताहेतु स्थूलरूप और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर आदि पुरुष भगवान् भास्वान् को नमस्कार करता हूँ ।७। हे देव ! तुम्हारी शक्ति ही आद्या है क्योंकि मैं उसीके द्वारा प्रेरित होकर जल, मही पवन और अग्निरूपा देवतादिविषय और प्रणवादि अशेष सृष्टि करता हूँ । इस प्रकार स्थिति और प्रलय भी अपनी इच्छा से नहीं करता, तुम्हारी शक्ति के द्वारा प्रेरित होकर ही करता हूँ ।८। हे भगवन् ! तुम्हीं वह्निरूपी हो । जब तुम पृथ्वी का जल सोखते हो तब मैं जगत् की सृष्टि और प्रथम पाक संपन्न करता हूँ । तुम्हीं सर्वव्यापक गगनस्वरूप हो, तुम्हीं पंचरूप इस विश्व की रक्षा करते हो ।९। हे विवस्वन् ! परमात्मविद्गण अखिल यज्ञमय विष्णुरूप में तुम्हारी यज्ञ द्वारा अर्चना करते हैं, आत्ममोक्षाभिलाषी जितेन्द्रिय यतिगण परम सर्वेश्वर जानकर तुम्हारा ध्यान करते हैं ।१०। तुम्हीं देवरूप हो, तुमको प्रणाम करता हूँ, तुम्हीं यज्ञरूप और तुम्हीं योगिजनों के चिन्तनीय परब्रह्मस्वरूप हो, तुमको प्रणाम करता हूँ ।११। हे विभो ! तुम तेज निवृत्त करो, मैं सृष्टि करने में उद्यत हुआ हूँ, तुम्हारा यह तेजसमूह सृष्टि में विघ्नकारी होता है ।१२

मार्कण्डेय बोले—भगवान् भास्वान् ने सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा जी के द्वारा इस प्रकार स्तुति को प्राप्त

चकार च ततः सृष्टिं जगतः पद्मसम्भवः । तथा तेषु महाभागः पूर्वकल्पान्तरेषु वै ॥१४
देवासुरादीन्मर्त्यांश्च पश्वादीन्वृक्षवीरुधः । ससर्ज पूर्ववद्ब्रह्मा नरकांश्च महामुने ॥१५
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे आदित्यस्तवो नाम शततमोऽध्यायः ।१००।

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः (१०१)

दिवाकरस्तुतिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सृष्ट्वा जगदिदं ब्रह्मा प्रविभागमथाकरोत् । वर्णाश्रमसमुद्राद्रिद्वीपानां पूर्ववद्यथा ॥१
देवदैत्योरगादीनां रूपस्थानानि पूर्ववत् । वेदेभ्य एव भगवानकरोत्कमलोद्भवः ॥२
ब्रह्मणस्तनयो योऽभून्मरीचिरिति विश्रुतः । कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत्काश्यपो नाम नामतः ॥३
दक्षस्य तनया ब्रह्मंस्तस्य भार्यास्त्रयोदश । बहवस्तत्सुताश्चासन्देवदैत्योरगादयः ॥४
अदितिर्जनयामास दैवांस्त्रिभुवनेश्वरान् । दैत्यान्दितिर्दनुश्चोग्रान्दानवानुरुविक्रमान् ॥५
गरुडारुणौ च विनता यक्षरक्षांसि वै खसा । कद्रूः सुषाव नागांश्च गन्धर्वान्सुषुवे मुनिः ॥६
क्रोधाया जज्ञिरे कुल्या रिष्टायाश्चाप्सरोगणाः । ऐरावतादीन्मातङ्गानिरा च सुषुवे द्विज ॥७
ताम्रा च सुषुवे श्येनीप्रमुखाः कन्यका द्विज । यासां प्रसूताः खगमाः श्येनभासशुकादयः ॥८

होकर परमतेज निवृत्त किया और केवल स्वल्पतेज धारण किया ।१३। तब महाभाग पद्मयोनि ब्रह्मा जी ने पूर्व कल्पान्तके समान उस कल्प में भी जगत् की सृष्टि की ।१४। हे महामुने ! ब्रह्मा जी ने पूर्व के समान देव, असुर, नर पशु, वृक्ष, लता, इत्यादि और सब नरक सृजन किए ।१५।

श्रीमार्कण्डेयपुराण में आदित्यस्तव वर्णन नामक सौवाँ अध्याय समाप्त ।१००।

अध्याय १०१

दिवाकरस्तुति नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—ब्रह्मा जी ने जगत् को उत्पन्न करके पूर्ववत् वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और समस्त द्वीपों का विभाग किया।१। भगवान् कमलयोनि (ब्रह्मा) जी ने देवता, दैत्य और उरगगणों का रूप तथा स्थान देवताओं से आरंभ करके पूर्ववत् निर्दिष्ट किया।२। मरीचि नाम से विख्यात ब्रह्मा जी के जो पुत्र थे, उनके कश्यप नाम से विख्यात एक पुत्र हुए, वह काश्यप नाम से भी प्रसिद्ध हुए थे।३। हे ब्रह्मन् ! दक्ष की तेरह कन्या उनकी भार्या हुई थीं उनके गर्भ से उनके देवता दैत्य और उरगादि अनेक पुत्र हुए थे ।४। अदिति ने त्रिभुवनेश्वर देवताओं को उत्पन्न किया था, दिति ने दैत्यों को और दनु ने महाविक्रम उग्र दानवों को ।५। विनता ने गरुड और अरुण को, खसा ने यक्ष और राक्षसों को कद्रू ने नागों को और मुनि ने गंधर्वों को उत्पन्न किया था ।६। हे द्विज ! क्रोधा ने कुल्यागण को रिष्टा ने अप्सराओं को और इरा ने ऐरावतादि हाथियों को उत्पन्न किया था ।७। ताम्रा ने श्येनी इत्यादि कन्याओं को उत्पन्न किया था । उक्त कन्याओं ने ही श्येन, भांस और शुकादि खेचरगण को उत्पन्न किया है ।८। इला से पादपगण

इलायाः पादपा जाताः प्रधाया यादसां गणाः । अदित्यां या समुत्पन्ना कश्यपस्येति सन्ततिः ॥९
तस्याश्च पुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रिकादिभिः । व्याप्तमेतज्जगत्सूत्या तेषां तासां च वै मुने ॥१०
तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः । सात्त्विका राजसास्त्वेते तामसाश्च मुने गणाः ॥११
देवान्यज्ञभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेश्वरान् । ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥१२
तानबाधन्त सहिताः सपत्ना दैत्यदानवाः । राक्षसाश्च तथा युद्धं तेषामासीत्सुदारुणम् ॥१३
दिव्यं वर्षसहस्रं तु पराजीयन्त देवताः । जयिनश्चाभवन्विप्र बलिनो दैत्यदानवाः ॥१४
ततो निराकृतान्पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा । हृतत्रिभुवनान्दृष्ट्वा ह्यदितिर्मुनिसत्तम ॥१५
आच्छिन्नयज्ञभागांश्च शुचा संपीडिता भृशम् । आराधनाय सवितुः परं यत्नं प्रचक्रमे ॥१६
एकाग्रा नियताहारा परं नियममास्थिता । तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम् ॥१७

अदितिरुवाच

नमस्तुभ्यं परां सूक्ष्मां सौवर्णीं बिभ्रते तनुम् । धाम धामवतामीश धाम्नामाधार शाश्वत ॥१८
जगतामुपकाराय तथापस्तव गोपते । आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥१९
ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनेन्दुमयं रसम् । बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत् ॥२०
तमेव मुञ्चतःसर्वं रसं वै वर्षणाय यत् । रूपमाप्यायकं भास्वंस्तस्मै मेघाय ते नमः ॥२१

और प्रधा से पतंगगण उत्पन्न हुए थे। हे मुने ! अदिति के गर्भ से कश्यप की जो सब सन्तति (सन्तान) उत्पन्न हुई थी।९। उनके पुत्र दौहित्र (धेवते) पौत्र दौहित्रिकादि और उनकी सन्तान से जगत् व्याप्त हो गया।१०। हे मुने ! कश्यप जी के पुत्रों में देवतागण ही प्रधान हैं, उनके सात्त्विक, राजस और तामस यह त्रिविधगण हैं।११। ब्रह्मश्रेष्ठी परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्मा जी ने देवताओं को त्रिभुवनेश्वर और यज्ञभुक् किया था।१२। किन्तु विमाता के दैत्य, दानव और राक्षसगण मिलकर शत्रुताचरण करते हुए देवताओं को बाधा देने लगे इस कारण देवताओं के संग उनका दिव्य सहस्रवर्षपर्यन्त दारुण युद्ध हुआ।१३। हे विप्र ! इस युद्ध में देवता पराजित हुए अर्थात् हार गये और बलशाली दैत्य दानव विजयी हुए।१४। हे मुनिसत्तम ! इसके उपरान्त दैत्य दानवों के द्वारा त्रिभुवन को हरण एवं पुत्रों को पराजित और यज्ञभाग से वंचित हुआ देख, अदिति शोक से अत्यन्त पीडित हो सवितृदेव (सूर्यदेव) की आराधना करने के लिये परम यत्नवती हुई।१५-१६। वह एकाग्रचित्त नियताहार और श्रेष्ठ नियमपरायण हो गगन में स्थित तेजोराशिस्वरूप दिवाकर की स्तुति करने लगी।१७

अदिति ने कहा—तुम सुन्दर सूक्ष्म सौवर्णतनुधारी हो तुम्हीं ज्योतिःस्वरूप हो, ज्योतिष्कगणों में तुम्ही प्रधान और, ज्योति के आधार हो तुमको नमस्कार है।१८। हे गोपते ! जगत् का उपकार करने के लिये जल ग्रहण करने के समय तुम्हारी जो वह मूर्त्ति तीव्र होतीहै, उसको मैं प्रणाम करती हूँ।१९। तुम आठ मास काल इन्दुमय रसग्रहण करने के लिये जो अत्यन्त तीव्रमूर्त्ति ग्रहण करते हो मैं उस मूर्त्ति को प्रणाम करती हूँ।२०। हे भगवन् ! वह समस्त रस वर्षणार्थ परित्याग करने के समय तुम जो तृप्तिकारिणी मेघरूप मूर्ति ग्रहण करते हो तुम्हारी उस मेघमूर्ति को प्रणाम करती हूँ।२१। जलवर्षण द्वारा

वार्युत्सर्गविनिष्पन्नमशेषं चौषधीगणम् । पाकाय तव यद्रूपं भास्करं तं नमाम्यहम् ॥२२
यच्च रूपं तवातीतं हिमोत्सर्गादिशीतलम् । तत्कालसस्यपोषाय तरणे तस्य ते नमः ॥२३
नातितीव्रं च यद्रूपं नातिशीतं च यत्तव । वसन्तर्त्तौ रवे सौम्यं तस्मै देव नमो नमः ॥२४
आप्यायनमशेषाणां देवानां च तथापरम् । पितॄणां च नमस्तस्मै सस्यानां पाकहेतवे ॥२५
यद्रूपं जीवनायैकं वीरुधाममृतात्मकम् । पीयते देवपितृभिस्तस्मै सोमात्मने नमः ॥२६
आप्यायदाहरूपाभ्यां रूपं विश्वमयं तव । समेतमग्नीषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने ॥२७
यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येन तपते तव । विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो ॥२८

मार्कण्डेय उवाच

यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिशब्दितम् । अस्थूलानन्तममलं नमस्तस्मै सदात्मने ॥२९
एवं स नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम् । निराहारा विवस्वन्तमारिराधयिषुर्मुने ॥३०
ततः कालेन महता भगवांस्तपनोऽम्बरे । प्रत्यक्षतामगादस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तम ॥३१
सा ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंश्रितम् । जगाद मे प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते ॥३२
यथा दृष्टवती पूर्वमम्बरस्थं सुदुर्दृशम् । निराहारा विवस्वन्तं तपन्तं तदनन्तरम् ॥३३
संघातं तेजसां तद्वदिह पश्यामि भूतले । प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर ॥

उत्पन्न हुई अशेष औषधियों को पकाने के लिये तुम अन्य जिस प्रकार की मूर्ति धारण करते हो, तुम्हारी उस भास्कर मूर्ति को प्रणाम करती हूँ ।२२। हे देव तरणे ! हेमन्तकाल में सस्यपोषण के लिये तुम्हारा जो हिमवर्षणादि द्वारा शीतलरूप होता है तुम्हारी उस मूर्ति को प्रणाम करती हूँ ।२३। हे रवे ! वसन्तऋतु में तुम्हारी जो मूर्त्ति अत्यन्त तीव्र नहीं है और अत्यन्त शीतल भी नहीं है, तथा सौम्य हे देव ! तुम्हारी उस मूर्ति को नमस्कार करती हूँ ।२४। तुम्हारा जो रूप अशेष देवता और पितरों को परम तप्त करने वाला तथा सस्य को पकाने वाला है, तुम्हारे उस रूप को नमस्कार करती हूँ ।२५। तुम्हारा जो अमृतमय रूप समस्त गुल्मलता के जीवन का कारण है और अमृतमय होने से जिसको देवता और पितर पान करते है, उस सोमस्वरूप तुम को नमस्कार है ।२६। अग्नि और सोम, यम दो अर्करूप मिलने से तुम्हारा विश्वमयरूप हुआ है उन गुणात्म को नमस्कार करती हूँ ।२७। हे विभावसो ! ऋक, यजु, और साम इन तीन वेद के मिलने से तुम्हारा जो त्रयी नामक रूप विश्व में तपता है, तुम्हारे उस रूप को नमस्कार है ।२८। उसकी अपेक्षा भी तुम्हारा जो श्रेष्ठ सूक्ष्म, अनन्त और विमलरूप ओंकार कहा गया है, तुम्हारे उस नित्यरूप को नमस्कार है ।२९

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! वह देवी अदिति इस प्रकार नियमयुक्त और निराहार हो विवस्वान् सूर्य का आराधना करने की इच्छा से दिनरात इस भाँति स्तुति करने लगी।३०। हे द्विजोत्तम ! अनन्तर बहुत काल बाद भगवान् तपन आकाश में ही इस दाक्षायणी के प्रत्यक्ष गोचर हुए।३१। जो दीप्तिशालिनी अंशुमाला द्वारा आकाशविवर में दुर्दर्श थे, उन्हीं तेजोराशिरूप रवि को अदिति ने धरातल में स्थिति करते देखा। उनको इस प्रकार देखकर वह अत्यन्त भय को प्राप्त हुई और कहने लगी हे गोपते! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ, मैं तुमको नहीं देख सकती ।३२। पहले निराहार होकर आकाशस्थित दुर्दर्श सूर्य को जिस प्रकार ताप प्रदान करते हुए देखा था, उसके बाद अब इस भूतल में भी उसी प्रकार तेज समूह की मूर्त्ति देखती हूँ। हे दिवाकर ! मुझ पर प्रसन्न होइये जिससे मैं तुम्हारा प्रकृतरूप

भक्तानुकम्पक विभो भक्ताहं पाहि मे सुतान् ॥३४

त्वं धाता विसृजसि विश्वमेतत्त्वं पासि स्थितिकरणाय सम्प्रवृत्तः।
त्वय्यन्ते लयमखिलं प्रयाति तत्त्वं त्वत्तोऽन्या न हि गतिरस्ति सर्वलोके ॥३५
त्वं ब्रह्मा हरिरजसंज्ञितस्त्वमिन्द्रो वित्तेशः पितृपतिरप्पतिः समीरः।
सोमोऽग्निर्गगनपतिर्महीधरोऽब्धिः किं स्तव्यं तव सकलात्मरूपधाम्नः ॥३६
यज्ञेश त्वामनुदिनमात्मकर्मसक्ताः स्तुन्वन्तो विविधपदैर्द्विजा यजन्ति।
ध्यायन्तो विनियतचेतसो भवन्तं योगस्थाः परमपदं प्रयान्ति मर्त्याः ॥३७
तपसि पचसि विश्वं पासि भस्मीकरोषि प्रकटयसि मयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भैः।
सृजसि कमलजन्मा पालयस्यच्युताख्यः क्षपयसि च युगान्ते रुद्ररूपस्त्वमेकः ॥३८

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दिवाकरस्तुतिर्नामैकाधिकशततमोऽध्यायः।१०१।

अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः (१०२)

मार्तण्डोत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः। अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमप्रभः ॥१

देखूँ। हे विभो! तुम भक्तों पर कृपा करते हो मैं तुम्हारी भक्त हूँ, मेरे पुत्रों की रक्षा कीजिये।३३-३४। तुम ब्रह्मा के रूप से इस विश्व को उत्पन्न करते हो, तुम्हीं स्थिति करने में प्रवृत्त होकर पालन करते हो और प्रलय के समय अखिलतत्त्व तुम में ही लय को प्राप्त होता है अत एव सर्व लोक में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य गति नहीं है।३५। तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं हरि, तुम्हीं अजसंज्ञित महादेव, तुम्हीं इन्द्र, धनेश्वर कुबेर पितृपति (यम), अम्बुपति (वरुण) और समीर हो तुम्हीं सोम, अग्नि, गगन, महीधर और समुद्र हो। तुम्हीं संपूर्ण तेज पदार्थों की आत्मास्वरूप हो और तुम्हारी क्या स्तुति करूँ।३६। हे यज्ञेश ! आत्मकर्मानुरक्त द्विजगण प्रतिदिन विविध (छन्दबद्धवाक्यादि) द्वारा स्तव करके तुम्हारी पूजा करते हैं। संयतचित्त योगिजन तुम्हारा ध्यान करते-करते योगमूर्तिद्वारा परमपद को प्राप्त होते हैं।३७। तुम्हीं विश्व में ताप देते हो, तुम्हीं विश्व को पक्व रक्षित, भस्म, किरणों से प्रकाशित करते हो तथा जलगर्भवाली किरण समूहों से आह्लादित और फिर उत्पन्न करते हो, देवता और मनुष्य तुमको ही प्रणाम करते हैं और पापकर्मकारी स्थिर भावना करने पर भी तुमको प्राप्त नहीं होते।३८

श्रीमार्कण्डेयपुराण में दिवाकरस्तुति वर्णन नामक एक सौ एकवाँ अध्याय समाप्त।१०१।

अध्याय १०२

सूर्य की उत्पत्ति का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—इसके उपरान्त प्रभु विभावसु उस अपने तेजोमण्डल के मध्य से तपे हुए ताँबे

अथ तां प्रणतां देवीं तस्य संदर्शनान्मुने । प्राह भास्वन्वृणुष्वेष्टवरं मत्तो यमिच्छसि ॥२
प्रणता शिरसा सा च जानुपीडितमेदिनी । प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम् ॥३
देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम । यज्ञभागाश्च दैत्यैश्च दानवैश्च बलाधिकैः ॥४
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते । अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा नाशय तद्रिपून् ॥५
यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो । भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ॥६
तथानुकम्पां पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम । कुरु प्रपन्नार्तिहर स्थितिकर्त्ता त्वमुच्यसे ॥७

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तामाह भगवान्भास्करो वारितस्करः । प्रणतामदितिं विप्र प्रसादसुमुखो विभुः ॥८
सहस्रांशेन ते गर्भे सम्भूयाहमशेषतः । त्वत्पुत्रशत्रूनदिते नाशयाम्याशु निर्वृतः ॥९
इत्युक्त्वा भगवान्भास्वानन्तर्द्धानमुपागमत् । निवृत्ता सापि तपसः संतृप्ताखिलवाञ्छिता ॥१०
ततो रश्मिसहस्रात्तु सौषुम्नाख्यो रवेः करः । विप्रावतारं संचक्रे देवमातुरथोदरे ॥११
कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि सा च चक्रे समाहिता । शुचिः संधारयामास दिव्यं गर्भमिति द्विज ॥१२
ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कोपप्लुताक्षरम् । किं मारयसि गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी ॥१३
सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत्पश्येति कोपना । न मारितं विपक्षाणां मृत्यवे तद्भविष्यति ॥१४

के समान कलेवर होकर प्रकट हुए ।१। हे मुने ! उनका दर्शन करते ही देवी अदिति ने उनको प्रणाम किया तब भास्वान् सूर्य ने उनसे कहा तुम्हारी जैसी इच्छा हो वही मुझसे अभीष्ट वर माँगो ।२। उन देवी अदिति ने जानुद्वारा पृथ्वी को स्पर्श कर मस्तक द्वारा प्रणामपूर्वक वर देने के लिये उपस्थित विवस्वान् से कहा हे देव ! प्रसन्न होइये । अधिक बलवान् दैत्य और दानवों ने मेरे पुत्रों का त्रिभुवन और यज्ञभाग हरण कर लिया है ।३-४। हे गोपते ! इसी निमित्त मुझपर प्रसन्न होइये और आप अंशरूप उनके भ्राता होकर शत्रुओं का विनाश कीजिये ।५। हे प्रभो दिवाकर ! जिस प्रकार मेरे पुत्र फिर यज्ञभाग भोजन में अधिकारी और त्रैलोक्य के अधिपति हों ।६। हे रवे ! मेरे प्रति प्रसन्न होकर मेरे पुत्रों पर उसी प्रकार कृपा-प्रकाश कीजिये । हे दुःखियों के भयहारिन् तुमको लोकस्थिति (पालन) कर्त्ता कहते हैं ।७

मार्कण्डेय जी बोले—हे विप्र ! तदनन्तर वारि सुखाने वाले भगवान् भास्कर ने प्रसन्नमुख होकर उन प्रणत अदिति से कहा ।८। हे अदिति ! मैं सहस्रांश में तुम्हारे गर्भसे जन्म ग्रहण कर तुम्हारे पुत्रों के समस्त शत्रुओं को समूल विनाश करूँगा । तुम्हारे पुत्र शीघ्र ही सुखी होंगे ।९। यह कहकर भगवान् वहाँ से अन्तर्धान हो गये और वह अदिति भी वांछित वर को प्राप्त कर तपस्या से निवृत्त हो गई ।१०। हे विप्र ! इसके उपरान्त रवि की सौषुम्न नामक किरण सहस्रांशु से देवमाता अदिति के गर्भ से अवतीर्ण हुई ।११। हे द्विज ! वह अदिति सावधान होकर कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रतानुष्ठान पूर्वक पवित्रता से दिव्यगर्भ धारण करने लगी ।१२। तब कश्यप जी ने उससे कुछेक कोपयुक्त वचन द्वारा कहा, तू नित्य उपवासी होकर क्या इस गर्भस्थ अण्ड को मारित अथात् नष्ट करेगी ।१३। अदिति ने उनसे कहा—हे क्रुद्धस्वभाव ! यह जो गर्भाण्ड देखते हो, इसको मारती नहीं हूँ, यह शत्रुओं के विनाश का कारण होगा ।१४।

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससर्ज्ज सुरारणिः । जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता ॥१५
तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद्भास्करवर्च्चसम् । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा ऋग्भिराद्याभिरादरात् ॥१६
संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात्प्रकटोऽभवत् । पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः ॥१७
अथान्तरिक्षादाभाष्य कश्यपं मुनिसत्तमम् । सतोयमेघगम्भीरवागुवाचाशरीरिणी ॥१८
मारितं ते यतः प्रोक्तमेतदण्डं त्वया मुने । तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्त्तण्डाख्यो भविष्यति ॥१९
सूर्याधिकारं च विभुर्जगत्येष करिष्यति । हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन् ॥२०
देवा निशम्येति वचो गगनात्समुपागमन् । प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हृतौजसः ॥२१
ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः । सह देवैर्मुदा युक्तो दानवाश्च समभ्ययुः ॥२२
तेषां युद्धभमूद्धोरं देवानामसुरैः सह । शस्त्रास्त्रदीप्तिसंदीप्तं समस्तभुवनान्तरम् ॥२३
तस्मिन्युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिताः । तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महासुराः ॥२४
ततः प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः सर्वे दिवौकसः । तुष्टुवुस्तेजसां योनिं मार्त्तण्डमदितिं तथा ॥२५
स्वाधिकारांस्तथा प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्ववत् । भगवानपि मार्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत् ॥२६
कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वं च रश्मिभिः । वृत्ताग्निपिण्डसदृशो दध्रे नातिस्फुरद्वपुः ॥२७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्तण्डोत्पत्तिर्नाम द्वयधिकशततमोऽध्यायः ।१०२।

मार्कण्डेय जी बोले—यह कहकर सुरमाता अदिति ने पति के वचन द्वारा क्रोधित होकर तेज से जाज्वल्यमान उस गर्भ को परित्याग किया ।१५। कश्यप उदयकालीन भास्कर के समान प्रभाशाली वह गर्भ देखकर प्रणामपूर्वक आदरसहित आद्यऋक् मंत्रसमूह द्वारा स्तव करने लगे ।१६। तब उनके द्वारा स्तुति को प्राप्त हो वह भास्कर तेज द्वारा दिशाओं के मुख व्याप्त करते हुए पद्मपत्र के समान वर्णयुक्त हो गर्भाण्ड से बाहर निकले ।१७। अनन्तर सजल जलद के समान गंभीर अशरीरिणी वाणी अन्तरिक्ष से मुनिवर कश्यप को संबोधन देकर कहने लगी ।१८। हे मुने ! तुमने इस अण्ड को "मारित" कहा था, तुम्हारे पुत्र का नाम "मार्त्तण्ड" होगा ।१९। यह विभु जगत् में सूर्य का कार्य करेंगे, और यज्ञभागहारी देवशत्रु असुरों को यही विनाश करेंगे ।२०। देवतागण उक्त वचन श्रवण पूर्वक अतुल हर्ष को प्राप्त हो आकाश से आये और दानवगण तेजहीन हो गये ।२१। तदनन्तर देवताओं के सहित शतक्रतु (इन्द्र) ने युद्ध के लिये दैत्यों को बुलाया, तब दानवगण प्रसन्नचित्त होकर आये ।२२। उस काल असुरों के सहित देवताओं का घोर युद्ध होने लगा और संपूर्ण भुवनान्तर देवता और असुरों के अस्त्रशस्त्रों की दीप्ति से सम्यक् प्रकार से दीप्तिमान् हो गया ।२३। उस युद्ध में महाअसुरगण भगवान् मार्त्तण्ड देवके देखने से तथा उनके तेज द्वारा दग्ध होकर भस्म हो गये ।२४। तब संपूर्ण देवताओं ने अतुलहर्ष को प्राप्त हो समस्त तेज के आकारस्वरूप मार्त्तण्ड देव की और अदिति की स्तुति की ।२५। देवता पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञभाग को प्राप्त हुए और भगवान् मार्त्तण्ड भी इस स्वीय अधिकारानुरूप सूर्य का कार्य करने लगे ।२६। वह कदम्बपुष्पवत् नीचे और ऊपर में किरणों द्वारा दीप्तिशाली होकर गोलाकार अग्निपिण्ड के समान दिखाई देने लगे और अधिक स्फुरणा से रहित शरीर धारण किया ।२७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मार्तण्डोत्पत्ति नामक एक सौ दोवाँ अध्याय समाप्त ।१०२।

(204)

अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

भानुतनुलेखनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अथ तस्मै ददौ कन्यां संज्ञां नाम विवस्वते । प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥१
वैवस्वतस्तु सम्भूतो मनुस्तस्यां विवस्वतः । पूर्वमेव तथाख्यातं तत्स्वरूपं विशेषतः ॥२

क्रौष्टुकिरुवाच

(भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि मार्त्तण्डस्य महात्मनः । चरितं हन्ति यत्पापं कलौ संश्रृण्वतां नृणाम् ॥)

मार्कण्डेय उवाच

त्रीण्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः । द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्यां च यमुनां मुने ॥३
मनुर्वैवस्वतो ज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः । ततो यमो यमी चैव यमलौ सम्बभूवतुः ॥४
यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्तण्डस्य विवस्वतः । तेनातितापयामास त्रीँल्लोकान्सचराचरान् ॥५
गोलाकारं तु तद्दृष्ट्वा संज्ञारूपं विवस्वतः । असहन्ती महत्तेजः स्वां छायां प्रेक्ष्य साऽब्रवीत् ॥६

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः । निर्विकारं त्वयाप्यत्र स्थेयं मच्छासनाच्छुभे ॥७

अध्याय १०३

भानुतनुलेखन नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर प्रजापति विश्वकर्मा ने प्रणत होकर भगवान् विवस्वान् को प्रसन्न करके संज्ञानाम्नी अपनी कन्या दी ।१। उस संज्ञा के गर्भ से विवस्वान् के "वैवस्वत' मनु नामक जिस पुत्र का जन्म हुआ, उसका वृतान्त पहले ही विशेष करके कहा है ।२

क्रौष्टुकि ने कहा—मैं मार्तण्डमहात्मा का चरित्र फिर भी सुनने की इच्छा करता हूँ जो चरित्र सुनने वालों के कलिसम्बन्धी पापों का विनाश करता है ।

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! गोपति सूर्य ने संज्ञा के गर्भ से दो महाभाग पुत्र और यमुना नामक एक कन्या यह तीन संतान उत्पन्न की ।३। उनमें श्राद्ध देव प्रजापति वैवस्वत मनु ज्येष्ठ हैं । तदनन्तर यम और यमी नामक यमल सन्तान की उत्पत्ति हुई ।४। उस काल विवस्वान् मार्त्तण्ड का जो अधिक तेज था, उसके द्वारा वह सचराचर तीनों लोकों को तापित करते थे ।५। संज्ञा विवस्वान् का वह गोलाकाररूप देख और उनका महत्तेज सहने में असमर्थ हो अपनी छाया की ओर देखकर कहने लगी ।६।

संज्ञा बोली—हे शुभे ! तुम्हारा कल्याण हो । मैं अपने पिता के घर जाती हूँ, तुम मेरी आज्ञा पालन करती हुई निर्विकारचित्त से इस स्थान में रहना ।७। मेरे इन दोनों बालक और इस वरवर्णिनी

इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी । सम्भाव्यौ नैव चाख्येयमिदं भगवते त्वया ।।८

छायोवाच

आकेशग्रहणाद्देवि आशपन्नैव कर्हिचित् । आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यतां यत्र वाञ्छितम् ।।९
इत्युक्ता छायया संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम् । तत्रावसत्पितुर्गेहे कञ्चित्कालं शुभेक्षणा ।।१०
भर्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः । अगच्छद्वडवा भूत्वा कुरून्विप्रोत्तरांस्ततः ।।११
तत्र तेपे तपः साध्वी निराहारा महामुने । पितुः समीपं यातायाः संज्ञाया वाक्यतत्परा ।।१२
तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता । तस्यां च भगवान्सूर्यः संज्ञेयमिति चिन्तयन् ।।१३
तथैव जनयामास द्वौ सुतौ कन्यकां तथा । पूर्वजस्य मनोस्तुल्यः सावर्णिस्तेन सोऽभवत् ।।१४
यस्तयोः प्रथमं जातः पुत्रयोर्द्विजसत्तम । द्वितीयो योऽभवच्चान्यः स ग्रहोऽभूच्छनैश्चरः ।।१५
कन्याभूत्तपती या तां वव्रे संवरणो नृपः । संज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां यथाऽकरोत् ।।१६
स्नेहान्न पूर्वजातानां तथा कृतवती सती । मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमश्चास्या न चक्षमे ।।१७
बहुशो याच्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः । स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ।।१८
पदा सन्तर्जयामास छायासंज्ञां यमो मुने । ततः शशाप च यमं संज्ञा सामर्षिणी भृशम् ।।१९

कन्या के प्रति सस्नेह व्यवहार करना और यह वृत्तान्त भगवान् के निकट कभी प्रकाश नहीं करना ।८

छाया ने कहा—हे देवि ! जब तक वह मेरे केश ग्रहण न करेंगे और जब तक मुझको शाप नहीं देंगे, तब तक मैं भगवान् के निकट अपनी बात नहीं करूँगी, तुम अपने अभिलषित स्थान में जाओ ।९। छाया के इस प्रकार कहने पर शुभदर्शन संज्ञा ने पिता के घर जाकर कुछ काल वहाँ वास किया ।१०। हे विप्र ! अनन्तर ''भर्त्ता के घर जाओ'' यह वचन पिता विश्वकर्मा के बारंबार कहने पर संज्ञा बड़वा (घोडी) का रूप धारण कर उत्तर कुरुदेश में चली गई ।११। हे महामुने ! साध्वी संज्ञा वहाँ अनाहार हो तपस्या करने लगी । जब संज्ञा पिता के घर चली गई, तब छाया उसी के वचनानुसार ।१२। उसी का रूप धारण कर भगवान् भास्कर की भजन करने लगी। भगवान् सूर्य नें भी उसको अपनी पत्नी संज्ञा विचारकर ।१३। उसके गर्भ से भी दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न की । हे द्विजसत्तम ! इन दो पुत्रों में जो ज्येष्ठ पुत्र थे, वह संज्ञा के पूर्वोत्पन्न वैवस्वतमनु के समान सावर्णि नामक मनु हुए और दूसरे पुत्र शनैश्चर नामक ग्रह हुए ।१४-१५। और तपती नामक जो कन्या उत्पन्न हुई, बाद में संवरण नामक नरपति ने उससे ही विवाह किया । छाया संज्ञा सावर्णि मनु इत्यादि अपने पुत्रों के प्रति जैसा स्नेह व्यवहार करती ।१६। संज्ञा के गर्भ से उत्पन्न हुए वैवस्वतमनु इत्यादि के प्रति वैसा व्यवहार नहीं करती । छाया संज्ञा का इस प्रकार असमान व्यवहार देखकर भी वैवस्वत मनु ने उसको सह लिया, किन्तु यम ने कहा ।१७। और इससे अत्यन्त दुःखित होकर पितृपत्नीकर्तृक बार-बार याचित होकर भी उसको न सह सके । हे मुने ! यम ने कोपावल और भावी अर्थ-बल के कारण अर्थात् होने वाली बात के वशीभूत हो ।१८। छायासंज्ञा को घुडककर चरण उठाया, इससे छाया संज्ञा ने अत्यन्त क्रोधित हो यम को यह कहकर शाप दिया ।१९

छायोवाच

पदा तर्जयसे यस्मात्पितृभार्यां गरीयसीम् । तस्मात्तवैव चरणः पतिष्यति न संशय ।।२०
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः । मनुना सह धर्मात्मा सर्वं पित्रे न्यवेदयत् ।।२१

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव न वर्तते । विसृज्य ज्यायसोऽप्यस्मान्कनीयांसौ बुभूर्षति ।।२२
तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः । बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ।।२३
शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः । ततो न मन्ये जननीमिमां वै तपतां वर ।।२४
विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा पितः । पादस्ते पततां पुत्र कथमेतत्प्रवक्ष्यति ।।२५
तव प्रसादाच्चरणो न पतेद्भगवन्यथा । मातृशापादयं मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते ।।२६

रविरुवाच

असंशयमिदं पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम् । येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ।।२७
सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते । न तु मात्राभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्तनम् ।।२८
न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्तुं मातुर्वचस्तव । किञ्चित्तव विधास्यामि पुत्रस्नेहादनुग्रहम् ।।२९
कृमयो मांसमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम् । कृतं तस्या वचः सत्यं त्वं च त्रातो भविष्यसि ।।३०

संज्ञा ने कहा—"मैं तुम्हारे पूजनीय पिता की भार्या हूँ मुझको पद दिखाकर घुड़का अत एव तुम छिन्न पद होगे अर्थात् तुम्हारा यह चरण कटकर गिर जायगा, इसमें सन्देह नहीं" ।२०। धर्मात्मा यम ने इस शाप से अत्यन्त पीडितमन हो मनु के सहित पिता के समीप जाकर संपूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ।२१

यम ने कहा—हे देव ! माता हमारे प्रति तुल्यस्नेह न करके हमारे ज्येष्ठ होने पर भी हमारा अनादर करती हुई दोनों कनिष्ठ के भरण पोषण में इच्छा करती है ।२२। इस कारण मैंने बाल्यस्वभाव अथवा मोहवश से उसकी ओर चरण उठाया था, किन्तु आघात नहीं किया, आप मेरे उस अपराध को क्षमा कीजिये ।२३। हे तापदातृ श्रेष्ठ पिता ! यदि पुत्र दुराचारी भी हो, तो भी माता उसके प्रति कभी बुरा व्यवहार नहीं करती, अत एव पुत्र को "तुम्हारा चरण गिर जाय" ऐसा शाप कैसे देगी । जब जननी होकर पुत्र के प्रति कोप के कारण इस प्रकार शाप दिया, तब यह माता नहीं जान पड़ती ।२४-२५। हे भगवन् ! मातृशाप के कारण जिससे मेरा पैर न गिरे हे गोपते ! अनुग्रहपूर्वक उसी उपाय की चिन्ता कीजिये ।२६

सूर्य ने कहा—हे पुत्र ! तुम धर्मज्ञ और सत्यवादी होकर भी जब क्रोध के वशीभूत हुए, तब निःसन्देह ऐसा होने की संभावना है ।२७। अन्यान्य समस्त शाप ही प्रतिहत हो सकते हैं, किन्तु मातृशाप मोचन करने का कोई उपाय नहीं है ।२८। अत एव मैं तुम्हारी माता का वचन मिथ्या करने मे समर्थ नहीं हूँ किन्तु पुत्रस्नेह के वश होकर कुछेक अनुग्रह विधान करूँगा ।२९। "कि तुम्हारे पैर का मांस ग्रहण करके कीड़े महीतल में ले जायेंगे" ऐसा होने से तुम्हारी माता का वचन सत्य होगा और तुम भी रक्षित होगे ।३०

मार्कण्डेय उवाच

आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किमर्थं तनयेषु वै । तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकत्र क्रियते त्वया ॥३१
नूनं नैषां त्वं जननी संज्ञा कापि त्वमागता । विगुणेष्वप्यपत्येषु कथं माता शपेत्सुतम् ॥३२

मार्कण्डेय उवाच

सा तत्परिहरन्ती च नाचचक्षे विवस्वतः । स चात्मानं समाधाय युक्तस्तत्त्वमपश्यत ॥३३
तं शप्तुमुद्यतं दृष्ट्वा छायासंज्ञा दिवस्पतिम् । भयेन कंपिता ब्रह्मन्यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥३४
विवस्वांस्तु ततः क्रुद्धः श्रुत्वा श्वशुरमभ्यगात् । स चापि तं तथान्यामर्चयित्वा दिवाकरम् ॥
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास सुव्रतः ॥३५

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसा व्याप्तमिदं रूपं सुदुःसहम् । असहन्ती ततः संज्ञा वने चरति वै तपः ॥३६
द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वभार्यां शुभचारिणीम् । रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्तीं समुहत्तपः ॥३७
स्मृतं मे ब्रह्मणो वाक्यं यदि ते देव रोचते । रूपं निवर्तयाम्येतत्तव कान्तं दिवस्पते ॥३८

मार्कण्डेय उवाच

यतो हि भास्वतो रूपं प्रागासीत्परिमण्डलम् । ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान्रविः ॥३९
विश्वकर्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः । भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातनायोपचक्रमे ॥४०

मार्कण्डेय जी बोले—फिर आदित्य ने छाया से कहा "तुम्हारे समस्त पुत्र ही तुल्य स्नेह के पात्र हैं, किन्तु ऐसा न करके एक के प्रति स्नेह करती हो ।३१। इस कारण बोध होता है तुम इनकी माता संज्ञा नहीं हो, अपर कोई संज्ञा के रूप में अवस्थान करती हो, पुत्र के दुराचारी होने पर माता क्या कभी शाप दे सकती है ।३२"

मार्कण्डेय जी बोले—छाया संज्ञा ने समस्त छिपाकर दिवाकर से कुछ भी नहीं कहा । किन्तु दिवस्पति समाधि के बल से सब सत्य वृत्तान्तं अवलोकन कर ।३३। शाप देने में उद्यत हुए हे ब्रह्मन् ! यह देख छाया संज्ञा ने भय से काँपते हुए सब वृत्तान्त ज्यों का त्यों कह दिया ।३४। विवस्वान् यह सब वृत्तान्त सुनकर क्रोधित चित्त हो श्वशुर के समीप गये । जब सुव्रत विश्वकर्मा ने देखा कि, इन्होंने रोष द्वारा समस्त ही दग्ध करने की अभिलाषा की है, तब इनकी यथाविधि पूजा करके समझाया ।३५

विश्वकर्मा ने कहा—संज्ञा आपका यहाँ अतिरिक्त तेज से व्याप्त दुःसह रूप न सह सकने के कारण वन में तपस्या करती है ।३६। आप अभी अपने रूप के कारण वन में महातप करती हुई, शुभकार्य में तत्पर उस अपनी भार्या को देखिये ।३७। हे देव ! मुझको ब्रह्मा जी का वचन स्मरण होता है उसमें यदि आपकी अनुमति हो, तो हे दिवस्पते ! आपके इस रूप को कान्त रूप में परिवर्त्तित करूँ ।३८

मार्कण्डेय जी बोले—अपने उपस्थित रूप की मण्डलाकारता होने से भगवान् रवि ने त्वष्टा को उस कार्य में आज्ञा दी ।३९। विश्वकर्मा ने भी आज्ञा पाकर शाकद्वीप में विवस्वान् को भ्रमियंत्र (शान) में आरोग्यपूर्वक शातन करने (निराकरण करने) का उपक्रम किया ।४०। हे ब्रह्मन् ! संपूर्ण जगत् के

भ्रमताऽशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता । समुद्राद्रिवनोपेता सा रुरोह मही नभः ॥४१
गगनं चाखिलं ब्रह्मन्सचन्द्रग्रहतारकम् । अधोगतं महाभाग बभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥४२
विक्षिप्तसलिलाः सर्वे बभूवुश्च तथाब्धितः । व्यभिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ॥४३
ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तम । त्रुटद्रश्मिनिबन्धानि ह्यधो जग्मुः सहस्रशः ॥४४
वेगभ्रमणसंजात वायुक्षिप्ताः समन्ततः । व्यशीर्यन्त महामेघा घोररावविराविणः ॥४५
भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तं भूम्याकाशरसातलम् । जगादाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तम ॥४६
त्रैलोक्ये सकले विप्र भ्रममाणे सुरर्षयः । देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥४७
आदिदेवोऽसि देवानां ज्ञातमेतत्स्वरूपतः । स्वर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधा भेदेन तिष्ठसि ॥४८
स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ धर्मवर्षाहिमाकर । जुषस्व शान्तिं लोकानां देवदेव दिवाकर ॥४९
इन्द्रश्चागत्य तं देवं लिख्यमानं यथाऽस्तुवत् । जयदेव जगद्व्यापिञ्जयाशेषजगत्पते ॥५०
ऋषयश्च ततः सप्त वसिष्ठात्रिपुरोगमाः । तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्ति स्वस्तीति वादिनः ॥५१
वेदोक्ताभिरथाग्र्याभिर्वालखिल्याश्च तुष्टुवुः । भास्वन्तमृग्भिराद्याभिर्लिख्यमानं मुदायुताः ॥५२
त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः । त्वं गतिः सर्वभूतानां कर्मकाण्डेऽपि वर्तताम् ॥५३
शं प्रजाभ्योऽस्तु देवेश शन्नोऽस्तु जगतांपते । शन्नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शन्नश्चास्तु चतुष्पदे ॥५४

नाभिस्वरूप आदित्य के घूमने से समुद्र-गिरिवन-वेष्टित महीतल आकाश में मिल गया ।४१। और हे महाभाग ! चन्द्र, ग्रह, तारकादिसंकुल संपूर्ण गगन नीचे गिरता सा आकुल होने लगा ।४२। समुद्रों का जल उछलने लगा, महापर्वतसमूह शिखर बिखरने से विभिन्न होने लगे ।४३। और हे मुनिसत्तम ! ध्रुवाधार सब नक्षत्रकुल अपनी रशनाबंधन स्खलित होने से नीचे को जाने लगे ।४४। चारों दिशाओं में महामेघों के वेग से भ्रमण करने पर उठी हुई वायु द्वारा परस्पर घोर गर्जनसहित विचरण करते हुए विशीर्ण होने लगे ।४५। हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार स्वर्ग, मर्त्य, पाताल संपूर्ण जगत् ही सूर्य के भ्रमण के विभ्रान्त होकर अतिशय आकुल हो उठा ।४६। हे विप्र ! त्रैलोक्य के इस प्रकार घूमने पर सुरर्षि और देवता, ब्रह्मा जी के सहित सूर्य की स्तुति करने लगे ।४७। उन्होंने कहा—तुम देवताओं में आदिदेव हो, यह स्वरूप से ही ज्ञात होता है। सृष्टि, स्थिति और प्रलयकाल के भेद से तुम त्रिधा विभक्त होकर स्थिति करते हो ।४८। हे जगन्नाथ ! हे ग्रीष्म-वर्षा-हिमाकर ! तुम्हारा मंगल हो। हे देवदेव ! हे दिवाकर ! तुम लोकों की शान्तिविधान करो ।४९। आये हुए इन्द्र ने सूर्य देव की मूर्त्ति लिख "हे देव ! हे जगद्व्यापिन् ! हे अशेषजगत्पते ! तुम्हारी जय हो" इस प्रकार कहकर स्तुा की ।५०। इसके उपरान्त वसिष्ठ अत्रि इत्यादि सप्तऋषियों ने स्वस्ति वाक्य उच्चारण कर विविध स्तोत्रों के द्वारा स्तुति की ।५१। प्रसन्नचित्त वालखिल्यगण लिखी हुई भास्कर देव की वेदोक्त आद्य ऋक् के द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगे ।५२। हे नाथ ! तुम मुमुक्षु पुरुषों के पक्ष में मोक्ष ध्यानी पुरुषों के एक मात्र ध्येय और कर्मकांड में प्रवृत्त सब जीवों के भी तुम्हीं गति हो ।५३। हे देवेश ! हे जगन्नाथ ! सब प्रजा का, हमारा, एवं हमारे द्विपद और चतुष्पदों का मंगलविधान करो ।५४। तदनन्तर विद्याधर, यक्ष, राक्षस और

ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः । कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम् ॥५५
ऊचुरेवंविधा वाचो मनः श्रोत्रसुखावहः । सह्यं भवतु ते तेजो भूतानां भूतभावन ॥५६
ततो हाहा हुहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा । उपगायितुमारब्धा गान्धर्वं कुशला रविम् ॥५७
षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः । मूर्च्छनाभिश्च तानैश्च सम्प्रयोगैः सुखप्रदम् ॥५८
विश्वाची च घृताची च उर्वश्यथ तिलोत्तमा । मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसां वरा ॥५९
ननृतुर्जगतामीशे लिख्यमाने विभावसौ । ज्ञानभावविलासाढ्यान्कुर्वन्तोऽभिनयान्बहून् ॥६०
प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वेणुवीणादिझर्झराः । पणवाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गा पटहानकाः ॥६१
देवदुन्दुभयः शङ्खा शतशोऽथ सहस्रशः । गायद्भिश्चैव गान्धर्वं नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ॥६२
तूर्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् । ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ॥६३
लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्वदेवताः । ततः कोलाहले तस्मिन्सर्वदेवसमागमे ॥
तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥६४

इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
तनुपरिलिखनं निशम्य भानोर्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते॥६५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भानुतनुलेखने त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।१०३।

पन्नगगण कृताञ्जलिपुट से रवि को मस्तक द्वारा प्रणाम कर ।५५। "हे भूतभावन् ! आपका तेज समस्त भूत के सहने योग्य हो" इस प्रकार मन और कानों को सुखकर वचन कहने लगे ।५६। अनन्तर षड्ज, मध्यम और गांधार इन तीनों ग्राम में विशारद हाहा हूहू नारद तुम्बुरू इत्यादि संगीतविद्‌गणों ने मूर्च्छना और तालादि के सुप्रयोगानुसार रवि के सन्मुख सुखदायक संगीत आरंभ किया ।५७-५८। देव विभावसु के इस प्रकार लिख्यमान होने पर विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या और रम्भा इत्यादि श्रेष्ठ अप्सरायें ।५९। हाव, भाव विलासादि अनेक अभिनयसहित नृत्य करने लगीं ।६०। वेणु, वीणा, झर्झर, पणव, पुष्कर, मृदंग, पटह, आनक ।६१। देवदुन्दुभी और शंख इत्यादि सैकड़ों हजारों बाजों की ध्वनि होने लगी । इस प्रकार गन्धर्वों के संगीत स्वर्ग की अप्सराओं के नृत्य ।६२। और तूर्य बाजों के अनेक शब्द द्वारा उस काल संपूर्ण जगत् कोलाहल से पूर्ण हो गया । अनन्तर सब देवताओं ने हाथ जोड़ भक्ति कर नम्रमूर्त्ति हो ।६३। लिख्यमान सहस्रांशु को प्रणाम किया । देवता इत्यादि के समागम का उस समय कोलाहल उपस्थित होने पर विश्वकर्मा ने धीरे-धीरे तेज क्षीण किया ।६४। शिशिर, वर्षा और ग्रीष्मकाल के हेतुस्वरूप और हरि, हर तथा ब्रह्मा जी के द्वारा स्तुति को प्राप्त हुए भानुदेव की यह तनुपरिलिखन कथा सुनने से जीवन के अन्त में दिवाकरलोक की प्राप्ति होती है ।६५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में भानुतनुलेखन नामक
एकसौतीनवाँ अध्याय समाप्त ।१०३।

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यस्तवनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

लिख्यमाने ततो भानौ विश्वकर्मा प्रजापतिः । उद्भूतपुलकः स्तोत्रमिदं चक्रे विवस्वतः ।।१

विवस्वते प्रणतहितानुकम्पिने महात्मने समजवसप्तसप्तये।
सुतेजसे कमलकुलावबोधिने नमस्तमः पटलपटावपाटिने।।२
पावनातिशयपुण्यकर्मणे नैककामविषयप्रदायिने ।
भास्वरानलमयूखशायिने सर्वलोकहितकारिणे नमः।।३
अजाय लोकत्रयकारणाय भूतात्मने गोपतये वृषाय।
नमो महाकारुणिकोत्तमाय सूर्याय चक्षुःप्रभवालयाय।।४
विवस्वते ज्ञानमृतेंऽतरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैषिणे ।
स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः।।५
क्षणमुदयाचलमौलिमणिः सुरगणमहित हितो जगतः ।
त्वमु मयूखसहस्रवपुर्जगति विभासि तमांसि नुदन्।।६
भवतिमिरासवपानमदाद्भवति विलोहितविग्रहता ।
मिहिर विभासि यतः सुतरां त्रिभुवनभावनभानिकरैः।।७

अध्याय १०४

सूर्यस्तव नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—प्रजापति विश्वकर्मा ने भानुतनु क्षीण करते-करते पुलकित हो विवस्वान् की लिखित मूर्त्ति का यह कहकर स्तव किया था ।१। प्रणत मनुष्यों का हितानुष्ठान और उन पर कृपाकारी सम वेगयुक्त, सप्ताश्वशाली, कमलकुल खिलाने वाले और तमोराशिविनाशक तेजस्वी महात्मा विवस्वान् को नमस्कार करता हूँ ।२। अतिशय पावन, पुण्यकर्मा, अनेक काम्य विषयदायक भास्वर अग्निसदृश किरणशाली और सर्व लोकों के हितकारी देव को नमस्कार करता हूँ ।३। स्वयं उत्पत्तिरहित किन्तु तीनों लोकों को उत्पन्न करने के कारण स्वरूप भूतात्मा रश्मिपति, वृष (साक्षात् धर्मस्वरूप) महाकारुणिक श्रेष्ठ चाक्षुषविषयक के आलयस्वरूप सूर्य को प्रणाम करता हूँ ।४। ज्ञानियों का अन्तरात्मरूपी जगदाधार जगत् के हितैषी स्वयंभू समस्त लोक के चक्षुस्वरूप सुरश्रेष्ठ अमिततेजा विवस्वान् को नमस्कार करता हूँ ।५। तुम जगत् के हित की कामना से देवताओं से महित क्षणकाल उदयाचल के शिर की माल्यस्वरूप हो यह तेज किरणों के द्वारा वपुग्रहणपूर्वक अंधकार के समूह का विनाश करते हुए जगत् में प्रकाश पाते हो ।६। हे मिहिर ! जगत् के तिमिररूप आसव पीने की मत्तता के कारण लोहितमूर्ति होकर तुम त्रिभुवनप्रकाशक किरणों के द्वारा अतिशय दीप्ति पाते हो ।७। हे भगवन् !

रथमधिरुह्य समावयवं चारुविकम्पितमुरुरुचिरम् ।
सततमखिन्नहयैर्भगवंश्चरसि जगद्धिताय विततम् ।।८
अमृतमयेन रसेन समं विबुधपितॄनपि तर्पयसे । अरिगणसूदन तेन तव प्रणतिमुपेत्य लिखामि वपुः ।।९
शुकसमवर्णहयप्रथितं तव पदपांसुपवित्रतमम् । नतजनवत्सल मां प्रणतं त्रिभुवनपावन पाहि रवे ।।१०
इति सकलजगप्रसूतिभूतं त्रिभुवनभावनधामहेतुमेकम् ।
रविमखिलजगत्प्रदीपभूतं त्रिदशवर प्रणतोऽस्मि सर्वदा त्वाम् ।।११
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सूर्यस्तवनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।१०४।

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः (१०८)

रवेर्माहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं सूर्यस्तवं कुर्वन्विश्वकर्मा दिवस्पतेः । तेजसः षोडशं भागं मण्डलस्थमधारयत् ।।१
शाततिैस्तेजसो भागैर्दशभिः पञ्चभिस्तथा । अतीवकान्मितच्चारु भानोरासीत्तदा वपुः ।।२
शाततिं चास्य यत्तेजस्तेन चक्रं विनिर्मितम् । विष्णोः शूलं च शर्वस्य शिबिका धनदस्य च ।।३
दण्डः प्रेतपतेः शक्तिर्देवसेनापतेस्तथा । अन्येषां चैव देवानामायुधानि स विश्वकृत् ।।४

तुम जगत् का हित करने के लिये सदा समान अवयववाले अत्यन्त मनोरम कुछेक कंपायमान विस्तृत रथ में चढ़कर घोड़ों के द्वारा विचरण करते हो ।८। हे अरिनिषूदन ! तुम संजीवनी सुधाद्वारा देवता और पितरों की एक ही समय में तृप्ति संपादन करते हो । इसी कारण जगत् के हित की कामना से मैंने तुमको प्रणाम करके तुम्हारा वपुः (देह) लिखा है ।९। हे प्रणतजनवत्सल ! हे त्रिभुवनपावन भास्कर ! मैं तुम्हारी ही तोते के समान वर्णवाली अश्वसृष्टि के कारण विख्यात् हुआ हूँ और तुम्हारे चरणों से रज से इस समय अत्यन्त पवित्र हुआ हूँ इस प्रणतजन की रक्षा करो ।१०। इस प्रकार संपूर्ण जगत् के कारणरूपी, त्रिभुवन को पवित्र करने वाले, तेजस्वरूप, इस अखिल जगत् के प्रदीपतुल्य विश्वकर्मा (विश्वस्रष्टा) रविदेव को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ।११

श्रीमार्कण्डेयपुराण में सूर्यस्तवन वर्णन नामक एकसौचारवाँ अध्याय समाप्त ।१०४।

अध्याय १०५

सूर्यमाहात्म्य का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—विश्वकर्मा ने इस प्रकार दिवस्पति सूर्य की स्तुति करके उनके तेज का सोलहवाँ भाग मण्डल में रखा ।१। उस काल तेज के पन्द्रह भाग निकल जाने से सूर्य का कलेवर अतीव सुन्दर और कान्तियुक्त हुआ था ।२। सूर्य के निकले हुए तेज द्वारा शत्रुओं के विनाशार्थ विष्णु का चक्र, शिव का शूल, कुबेर की पालकी ।३। यम का दण्ड, कार्तिकेय की शक्ति और अन्यान्य देवताओं के सब

चकार तेजसा भानोर्भासुराण्यरिशान्तये । इति शातिततेजाः स शुशुभे नातितेजसा ।।५
वपुर्दधार मार्त्तण्डः सर्वावयवशोभनम् । स ददर्श समाधिस्थः स्वां भार्यां वडवाकृतिम् ।।६
अधृष्यां सर्वभूतानां तपसा नियमेन च । उत्तरांश्च कुरून्गत्वा भूत्वाऽश्वो भानुरागमत् ।।७
सा च दृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसो विशङ्कया । जगाम सम्मुखे तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा ।।८
ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः । वडवायं च तत्तेजो नासिकाभ्यां विवस्वतः ।।९
देवौ तत्र समुत्पन्नावश्विनौ भिषजां वरौ । नासत्यदस्रौ तनयावश्विवक्त्राद्विनिर्गतौ ।।१०
मार्त्तण्डस्य सुतावेतावश्वरूपधरस्य हि । रेतसोऽन्ते च रेवन्तः खड्गी धन्वी तनुत्रधृक् ।।११
अश्वारूढः समद्भूतो बाणतूणसमन्वितः । ततः स्वरूपममलं दर्शयामास भानुमान् ।।१२
तस्य शान्तं समालोक्य सा रूपं मुदमाददे । स्वरूपधारिणीं चेमां स निनाय निजालयम् ।।१३
संज्ञां भार्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः । ततः पूर्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतो मनुः ।।१४
द्वितीयाश्च यमः शापाद्धर्मदृष्टिरनुग्रहात् । यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः ।।१५
धर्मोऽभिरोचते यस्माद्धर्मराजस्ततः स्मृतः । कृमयो मांसमादाय पादतस्ते महीतलम् ।।१६
पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम् । धर्मदृष्टिर्यतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते ।।१७
ततो नियोगे तं याम्ये चकार तिमिरापहः । तस्मै ददौ पिता विप्र भगवाँल्लोकपालताम् ।।१८

प्रदीप्त अस्त्र विश्वकर्मा ने निर्माण किये थे ।४। इस प्रकार मार्तण्ड क्षीण तेज होकर शोभा पाने लगे और शत्रुओं के नाश के निमित्त उनका शरीर मनोहर हो गया ।५। और अत्यन्त तीव्रता रहित तेज द्वारा समस्त अंगों से युक्त शोभायमान शरीर धारण किया और फिर समाधिस्थ होकर अपनी भार्या को घोड़ीके रूप में देखा ।६। कि, वह उत्तरकुरुदेश में सब भूतों से अधर्षित होकर अत्यन्त नियमसहित तप करती है तदनन्तर भानु उत्तरकुरुदेश में जाकर अश्वरूप ग्रहणपूर्वक उसके निकट गये ।७। तब वडवाकृति संज्ञा उनको आता हुआ देखकर पराये पुरुष की शंका से पीठ की रक्षा के लिये सावधान होकर उनके सन्मुख गई ।८। तब समीपस्थ दोनों की नासिका संयुक्त होने से विवस्वान् का तेज नासिकायुगल द्वारा घोड़ी के गर्भ में प्रविष्ट होने पर ।९। उससे भिषक्श्रेष्ठ दो अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए और अश्व के मुख से निकले हुए 'नासत्य' एवं 'दस्र' यह दोनों ।१०। अश्वरूपधारी मार्त्तण्ड के ही पुत्र हैं वीर्य के शेषभाग से वर्मयुक्त शरीर खड्गधारी धनुष धारी, घोड़े पर चढ़े बाण और तरकस संयुक्त रेवन्त उत्पन्न हुए । अनन्तर अंशुमाली सूर्य ने अपना निर्मल रूप दिखाया ।।११-१२। उनका यह शान्त स्वरूप देखने से परम प्रसन्न हो संज्ञा ने भी अपना स्वरूप धारण कर लिया । तब वारिशोषक भास्कर प्रीतिमति अपनी भार्या को अपने घर ले आये । जो संज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र थे, वह वैवस्वत मनु हुए ।१३-१४। और दूसरेपुत्र यम शाप एवं अनुग्रह के कारण धर्मदृष्टि हुए थे । यम उस शाप के हेतु अत्यन्त व्यथित होकर ।१५। धर्माचरण में प्रवृत्त हुए थे, इस कारण वह धर्मराज के नाम से कीर्त्तित हुए हैं, कृमि तुम्हारे पैर से मांसग्रहण करके पृथ्वीतल में ।१६। पतित होंगे, उनके पिता ने इस प्रकार शापान्त किया था । यम धर्मदृष्टि होकर शत्रुमित्र में समान व्यवहार करते थे ।१७। इस कारण सूर्य ने उनको याम्य अधिकार में नियुक्त किया । हे विप्र ! भगवान् दिवाकर ने परितुष्ट होकर उनको लोकपालत्व ।१८। और पितरों

पितॄणामाधिपत्यं च परितुष्टो दिवाकरः । यमुनां च नदीं चक्रे कलिंदान्तरवाहिनीम् ॥१९
अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना । गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तो विनियोजितः ॥२०
एवमप्याह च ततो भगवाँल्लोकभावितः । त्वमप्यशेषलोकस्य पूज्यो वत्स भविष्यसि ॥२१
अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषु च । त्वां स्मरिष्यन्ति ये मर्त्या मोक्ष्यन्ते ते महापदः ॥२२
क्षेमं बुद्धिं सुखं राज्यमारोग्यं कीर्तिमुन्नतिम् । नराणां परितुष्टस्त्वं पूजितः सम्प्रदास्यसि ॥२३
छायासंज्ञासुतश्चापि सावर्णिः सुमहायशाः । भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णिकोऽष्टमः ॥२४
मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरति प्रभुः । भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहोऽभूच्छासनाद्रवेः ॥२५
यवीयसी तु या कन्याऽऽदित्यस्याभूद्द्विजोत्तम । अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा तपती लोकपावनी ॥२६
यस्तु ज्येष्ठो महाभागः सर्गो यस्येह साम्प्रतम् । विस्तरं तस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥२७
इदं यो जन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेत वा । विवस्वतस्तनूजानां रवेर्माहात्म्यमेव च ॥२८
आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महायशः । अहोरात्रकृतं पापमेतच्छमयते श्रुतम् ॥
माहात्म्यमादिदेवस्य मार्तण्डस्य महात्मनः ॥२९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रवेर्माहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।१०५।

का आधिपत्य भी प्रदान किया । पिता ने यमुना को कलिन्ददेशवाहिनी नदी किया ।१९। और उन्हीं महात्मा पिता ने दोनों अश्विनीकुमारों को देवताओं का वैद्य किया । रेवन्त गुह्यकगणों के आधिपत्य में नियुक्त हुए ।२०। और भूतभावन् भगवान् ने उनसे यह भी कहा कि, हें वत्स ! तुम अशेषलोकों के पूज्य होंगे ।२१। मनुष्यगण वन, दावानल, शत्रु और चोरों के भय से भीत होकर यदि तुमको, स्मरण करेंगे, तो तुम उन सब महाविपद् से छुडाओगे ।२२। और मनुष्यों के पूजा करने पर उनके प्रति संतुष्ट होकर उनको मंगल, सुबुद्धि, सुख, राज्य, आरोग्य, कीर्ति और उन्नति प्रदान करोगे ।२३। छायासंज्ञा के महायशवान् सावर्णनामक पुत्र भावी काल में सावर्णिकनाम से आठवें मनु होंगे ।२४। इस समय भी वह मेरुपृष्ठ पर घोर तपस्या करते हैं उनके भ्राता शनैश्चर आदित्य की आज्ञा से ग्रह हुए हैं।२५। हे द्विजोत्तम! आदित्य की युवती कन्या लोकपावनी यमुना नदियों से श्रेष्ठ हुई है ।२६। जो ज्येष्ठपुत्र वैवस्वत मनु हैं, इस समय जिनकी सृष्टि चलती है, उनके वंश का विस्तार बाद में वर्णन करूँगा ।२७। इन सूर्यपुत्र देवताओं के जन्म की कथा और रवि का माहात्म्य जो पुरुष सुनते हैं या पढ़ते हैं ।२८। वह उपस्थित विपद् से छूटकर महायश को प्राप्त होते हैं और आदिदेव महात्मा मार्तण्ड का माहात्म्य सुनने से अहोरात्र के किये संपूर्ण पाप नष्ट होते हैं ।२९

श्रीमार्कण्डेयपुराण में रविमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।१०५।

(१०८)

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

भानुस्तववर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन्कथितः सम्यग्भानोः सन्ततिसम्भवः । माहात्म्यमादिदेवस्य स्वरूपं चातिविस्तरात् ॥१
भूयोऽपि भास्वतः सम्यङ्माहात्म्यं मुनिसत्तम । श्रोतुमिच्छाम्यहं तन्मे प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ॥२

मार्कण्डेय उवाच

श्रूयतामादिदेवस्य माहात्म्यं कथयामि ते । विवस्वतो यच्चकार पूर्वमाराधितो जनैः ॥३
दमस्य पुत्रो विख्यातो राजाभूद्राज्यवर्धनः । स सम्यक्पालनं चक्रे पृथिव्या पृथिवीपतिः ॥४
धर्मतः पाल्यमानं तु तेन राष्ट्रं महात्मना । ववृधेऽनुदिनं विप्र जनेन च धनेन च ॥५
हृष्टपुष्टमतीवासीत्तस्मिन्राजन्यशेषतः । निर्भयः सकलश्चोर्व्यां पौरजानपदो जनः ॥६
नोपसर्गो न च व्याधिर्न च व्यालोद्भवं भयम् । न चावृष्टिभयं तत्र दमपुत्रे महीपतौ ॥७
स ईजे च महायज्ञैर्ददौ दानानि चार्थिनाम् । सुधर्मस्याविरोधेन बुभुजे विषयानपि ॥८
तस्यैवं कुर्वतो राज्यं सम्यक्पालयतः प्रजाः । सप्त वर्षसहस्राणि जग्मुरेकमहर्यथा ॥९
विदूरथस्य तनया दाक्षिणात्यस्य भूभृतः । तस्य पत्नी बभूवाथ मानिनी नाम मानिनी ॥१०

अध्याय १०६

भानुस्तुति नामक वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! आपने भानु की सन्तति का होना और उन आदिदेव का माहात्म्य तथा स्वरूप विस्तारपूर्वक भली भाँति वर्णन किया ।१। किन्तु हे मुनिसत्तम ! भास्कर के सम्यक् माहात्म्य का वृत्तान्त फिर सुनने की इच्छा करता हूँ उसको आप प्रसन्न होकर वर्णन कीजिये ।२

मार्कण्डेय जी बोले—आदिदेव विवस्वान् पूर्वकाल में जनों के द्वारा आराधित होकर जो जो संपादन किया था, वह समस्त माहात्म्य का विषय तुमसे कहता हूँ ।३। दम के पुत्र विख्यात राज्यवर्द्धन राजा होकर सम्यक् प्रकार से पृथ्वी का पालन करते थे ।४। हे विप्र ! उन महात्मा के स्वधर्मपूर्वक प्रजापालन करने पर उस समय राष्ट्र, धन, जन से नित्य वृद्धि को प्राप्त हुआ था ।५। और उनके राजा होने पर अन्यान्य राजागण, समग्र पृथ्वी और पौरजनगण निर्भय होकर अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट हुए थे ।६। दमपुत्र महीपति राज्यवर्द्धन के शासनकाल में कोई उपसर्ग, व्याधि, सर्पादि हिंसकजन्तु का भय या अवृष्टि का भय नहीं था ।७। वह महामहायज्ञकार्य में अर्थिगणों का दान करके अति धर्म के सहित विषयों को भोगते थे ।८। इस प्रकार राज्यकार्य और सम्यक् प्रकार प्रजापालन करके उन्होंने एक दिन के समान सात हजार वर्ष बिताये थे ।९। विदूरथनामक दक्षिणदेश के अधिपति की मानिनी नामक कन्या उनकी पत्नी

कदाचित्तस्य सा सुभ्रूः शिरसोऽभ्यञ्जनादृता । पश्यतो राजलोकस्य मुमोचाश्रूणि मानिनी ।।११
तदश्रुबिन्दवो गात्रे यदा तस्य महीपतेः । तदा वीक्ष्याश्रुवदनां तामपृच्छत मानिनीम् ।।१२
निःशब्दमश्रुमोक्षेण रुदन्तीं तां विलोक्य वै । किमेतदिति पप्रच्छ मानिनीं राज्यवर्धनः ।।१३
पृष्टा सा तु ततस्तेन भर्त्रा प्राह मनस्विनी । न किञ्चिदिति तां भूयः पप्रच्छ स महीपतिः ।।१४
बहुशः पृच्छतस्तस्य भूभृतः सा सुमध्यमा । (न किञ्चिदिति होवाच सा भूयो राज्यवर्धनम् ।।
किमेतदिति पप्रच्छ मानिनीं पार्थिवः पुनः । बहुशः प्रेरिता तेन सा भर्त्रा तत्र भामिनी ।।)
दर्शयामास पलितं केशभारान्तरोद्भवम् ।।१५
एतत्पश्येति भूपाल किमन्यन्मन्युकारणम् । ममातिमन्दभाग्याया जहासाथ नृपस्ततः ।।१६
स विहस्याह तां पत्नीं शृण्वतां सर्वभूभृताम् । पौराणां च महीपाला ये तत्रासन्समावृताः ।।१७
शोकेनालं विशालाक्षि रोदितव्यं न ते शुभे । जन्मर्द्धिपरिणामाद्या विकाराः सर्वजन्तुषु ।।१८
अधीताः सकला वेदा इष्टा यज्ञाः सहस्रशः । दत्तं द्विजानां पुत्राश्च समुत्पन्ना वरानने ।।१९
भुक्ता भोगस्त्वया सार्द्धं ये मर्त्यैरतिदुर्लभाः । सम्यक्च पालिता पृथ्वी शौर्यं युद्धेष्वनुष्ठितम् ।।२०
मित्रैः सहेष्टैर्हसितं विहृतं च वनान्तरे । किमन्यन्न कृतं भद्रे पलितेभ्यो बिभेषि यत् ।।२१
भवन्तु केशाः पलिता वलयः सन्तु मे शुभे । शैथिल्यमेतु मे कायः कृतकृत्योऽस्मि मानिनि ।।२२
मूर्ध्नि यद्दर्शितं भद्रे भवत्या पलितं मम । चिकित्सामेव तस्याहं करोमि वनसंश्रयात् ।।२३

थी ।१०। एक समय सुभ्रू मानिनी ने राजपुरुषों के सामने राजा के मस्तक में तेल मलते मलते आँसू गिराया ।११। क्रमानुसार वह आँसू राजा के गात्र में गिरा, तब राज्यवर्द्धन ने मानिनी को अश्रुपूर्ण नेत्र से देखकर इसका वृत्तान्त पूछा ।१२। किन्तु वह कुछ भी उत्तर न देकर केवल आँसू गिराती हुई निःशब्द भाव से रोने लगी । यह देखकर राज्यवर्द्धन ने फिर मानिनी से पूछा यह क्या ? तुम क्यों रोती हो ।१३। मनस्विनी ने स्वामी के इस प्रकार पूछने पर 'कुछ नहीं' केवल मात्र यह उत्तर दिया ।१४। राजा ने उस सुमध्यमा से बहुत ही पूंछा परन्तु फिर उसने राज्यवर्धन से कुछ न कहा, राजा ने उस मानिनी से फिर से पूछा कि, यह क्या है जब राजा ने बहुत ही पूछा तब भामिनी ने राजा को केशों के मध्य में एक श्वेतबाल दिखाया ।१५। हे राजन् ! इसको देखो क्रोध का कारण नहीं है यह मुझ मन्दभागिनी का भाग्य है यह सुनकर राजा को बड़ी हँसी आई ।१६। वह हँसते हँसते आये हुए राजागण और पौरगणों के सामने पत्नी से कहने लगे।१७। हे विशालाक्षि ! हे कल्याणि ! रोदन मत करो। समस्त जन्तुओं में ही जन्म वृद्धि और परिणामादि विकार दिखाई देते हैं इसलिए इसके लिये शोक करना निष्प्रयोजन है।१८। हे वरानने ! मैने संपूर्ण वेद अध्ययन सहस्र सहस्रयज्ञ संपादन ब्राह्मणों के अर्थादि दान पुत्रोत्पादन।१९। तुम्हारे संग मनुष्यों की अतिदुर्लभ समस्त भोगने योग्य विषय उपभोग सम्यक् प्रकार पृथ्वी का पालन न्यायपूर्वक युद्धानुष्ठान।२०। और प्रियमित्रों के सहित हास्य परिहास तथा वनविहार आदि अनेक कार्य किये हैं हे भद्रे ! ऐसा कार्य नहीं किया है, जो तुम मेरा पलित (पका केश) देखकर भीत होती हो।२१। हे शुभे ! मेरे केश पलित हों अर्थात् पक जाँय, बलि प्रकटित हों और शरीर शिथिलता को प्राप्त हो इससे कुछ हानि नहीं है क्योंकि हे मानिनी ! मैं इस समय कृतकृत्य हुआ हूँ।२२। हे भद्रे ! मेरे मस्तक में जो पका हुआ

बाल्ये बालक्रियापूर्वं तद्वत्कौमारके च या । यौवने चापि या योग्या वार्द्धके वनसंश्रया ॥२४
एवं मत्पूर्वजैर्भद्रे कृतं त्वत्पूर्वजैश्च यत् । अतो न तेऽश्रुपातस्य किञ्चित्पश्यामि कारणम् ॥२५
अलं ते मन्युना भद्रे नन्वभ्युदयकारि मे । दर्शनं पलितस्यास्य मा रोदीर्निष्प्रयोजनम् ॥२६

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रणम्य तं भूपाः पौराश्चैव समीपगाः । साम्ना प्रोचुर्महीपाला महर्षे राज्यवर्धनम् ॥२७
न रोदितव्यमनया तव पत्न्या नराधिप । रोदितव्यमिहास्माभिरथवा सर्वजन्तुभिः ॥२८
त्वं ब्रवीषि यथा नाथ वनवासाश्रितं वचः । पतन्ति तेन नः प्राणा लालितानां त्वया नृप ॥२९
सर्वे यास्यामहे भूप यदि याति भवान्वनम् । ततोऽशेषक्रियाहानिः सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥३०
भविष्यति न सन्देहस्त्वयि नाथ वनाश्रमे । सा च धर्मोपघाताय यदि तत्प्रविमुच्यताम् ॥३१
सप्त वर्षसहस्राणि त्वयेयं पालिता मही । तत्समुत्थं महापुण्यमालोकय नराधिप ॥३२
वने वसन्महाराज त्वं करिष्यसि यत्तपः । तन्महीपालनस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३३

राजोवाच

सप्त वर्षसहस्राणि मयेयं पालिता मही । इदानीं वनवासस्य मम कालोऽयमागतः ॥३४
ममापत्यानि जातानि दृष्ट्वा मेऽपत्यसन्ततीः । स्वल्पैरेवमहोभिर्मे ह्यन्तको न सहिष्यति ।३५

केश देखा है, मैं वनाश्रम का आश्रय करके उसकी चिकित्सा करूँगा ।२३। बालकपन में बालक्रीडा, तथा कौमार और यौवन में भी उसके योग्य कार्य (विद्याभ्यास विषयभोगादि) संपादन करके वृद्धावस्था में वन का ही आश्रय करना उचित है ।२४। हे भद्रे ! मेरे पूर्वपुरुषगण और उनके भी पूर्वपूर्व पुरुषगण इसी प्रकार करते आये हैं, अत एव मैं तुम्हारे अश्रुपात का कोई भी कारण नहीं देखता हूँ । हे भद्रे ! शोक परित्याग करो ।२५। मेरा यह पलित केश दीखना भाग्योदयकारी है, अत एव निष्प्रयोजन रोदन मत करो ।२६

मार्कण्डेय जी बोले—हे महर्षे ! अनन्तर समीपस्थ भूपाल और पौरगण राजा राज्यवर्द्धन को प्रणाम करके विनयपूर्वक कहने लगे ।२७। हे नराधिप ! आपकी पत्नी का रोदन अनावश्यक है किन्तु हमारा अथवा संपूर्ण जन्तुओं का ही इस समय रोदन काल उपस्थित हुआ है ।२८। हे नाथ ! आप हमारे प्रतिपालक हैं, हे नृप ! आपने जो वनवास आश्रय करने की बात कही इससे हमारे प्राण निकले जाते हैं ।२९। यदि आप वन में जायेंगे, तो हम भी सब वहाँ चलेंगे । हे नाथ आपके वनवासी होने पर पृथ्वीवासियों का निःसंदेह श्रौतस्मार्त्त क्रिया की हानि होगी ।३०। इसमें यदि धर्म की बाधा विचारते हो तो इस संकल्प का परित्याग कीजिये ।३१। हे नराधिप ! आपने सात हजार वर्ष इस पृथ्वी का पालन किया है, उससे कैसे महापुण्य का उदय हुआ है, देखिये ।३२। हे महाराज ! आप वन में वास करके जो तप करेंगे, वह इस पृथ्वीपालन के षोडश भाग के समान नहीं होगा ।३३

राजा ने कहा—मैंने सात हजार वर्ष इस पृथ्वी का पालन किया है, अब मेरे वनवास का ही उपयुक्त समय उपस्थित है।३४। मेरे पुत्र उत्पन्न हो गये हैं, अब उन सब पुत्रों की सन्तान को देखकर अन्तक (यम)

यदेतत्पलितं मूर्ध्नि तद्विजानीत नागराः । दूतभूतमनार्यस्य मृत्योरत्युग्रकर्मणः ।।३६
सोऽहं राज्ये सुतं कृत्वा भोगांस्त्यक्त्वा वनाश्रयः । तपस्तप्स्ये समायान्ति न यावद्यमसैनिकाः ।।३७

मार्कण्डेय उवाच

ततो यियासुः स वनं दैवज्ञानवनीपतिः । पुत्रराज्याऽभिषेकाय दिनलग्नान्यपृच्छत ।।३८
श्रुत्वा च ते तु नृपतेर्वचो व्याकुलचेतसः । दिनं लग्नं च होराश्च न विदुः शास्त्रदृष्टयः ।।३९
ऊचुश्च तं महीपालं दैवज्ञा बाष्पगद्‌गदम् । ज्ञानानि नः प्रणष्टानि श्रुत्वैतत्ते वचो नृप ।।४०
ततोऽन्यनगरेभ्यश्च भृत्यै राष्ट्रेभ्य एव च । ततस्तस्माच्च नगरात्प्राचुर्येणाभ्युपागमन् ।।४१
समुत्पत्य महीपालं तं यियासुं मुने वनम् । प्रकम्पिशिरसो भूत्वा प्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः ।।४२
प्रसीद पाहि नो राजन्पालिताः स्म यथा पुरा । सीदिष्यत्यखिलो लोकस्त्वयि भूप वनाश्रये ।।४३
त्वं कुरुष्व तथा राजन्यथा नो सीदते जगत् । यावज्जीवामहे वीर स्वल्पकालमिमे वयम् ।।
नेच्छामश्च भवच्छून्यं द्रष्टुं सिंहासनं विभो ।।४४

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं तैस्तथान्यैश्च द्विजैः पौरपुरःसरैः । भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्च राजा प्रोक्तः पुनः पुनः ।।४५
वनवासविनिर्बन्धं नोपसंहरते यदा । क्षमिष्यत्यन्तको नेति ददौ स च तदोत्तरम् ।।४६

अल्प काल के लिये सहन नहीं करेंगे अर्थात् शीघ्र ही आयु शेष होगी ।३५। हे नगरवासियों ! मेरे मस्तक में जो पलित केश देखा है, इसी को उग्रकर्मा अनार्य मृत्यु का दूत जानना चाहिए ।३६। अत एव मैं पुत्र को राज्य में अभिषिक्त करके भोगपरित्यागपूर्वक वनवासी हो यम सेना के आगमनकाल पर्यन्त तपस्या करूँगा ।३७।

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर पृथ्वीपति ने वन जाने में स्थिर संकल्प हो ज्योतिषियों से पुत्र के राज्याभिषेक का दिन लग्न पूँछा ।३८। ज्योतिषीगण शास्त्रदर्शी होकर भी राजा का वचन सुनने से व्याकुल चित्तता के कारण दिन लग्न होरा इत्यादि के देखने में असमर्थ होकर ।३९। वाष्पगद्‌गद वाणी के द्वारा राजा से कहने लगे हे नृप ! आपका वचन सुनने से हमारा ज्ञान नष्ट हो गया है ।४०। हे मुने ! फिर क्रमानुसार अन्यान्य नगर अधीन हुए राष्ट्र और उस राजधानी से अनेकानेक वृद्ध द्विजश्रेष्ठ गण ।४१। आकर वनवासेच्छुक से मस्तक कम्पायमान करते हुए कहने लगे ।४२। हे राजन् ! प्रसन्न होइये । अनुग्रहपूर्वक पूर्व के समान हमारा पालन कीजिए । हे भूपाल ! आपके वनगमन करने से समस्त मनुष्य अत्यन्त दुःखी हो जायेंगे ।४३। अत एव हे राजन् ! जिससे संपूर्ण जगत् दुःखी न हो, आप वही कीजिये हे वीर ! हम और केवल थोड़े काल जियेंगे इसके बीच में तुम्हारे शून्य सिंहासन को देखने की अभिलाषा नहीं करते ।४४

मार्कण्डेय जी बोले—इस प्रकार उन सब तथा अन्यान्य ब्राह्मणगण पौरगण भूपालगण अमात्य और भृत्यगण के बार-बार अनुरोध करने पर भी।४५। उन्होंने वनवास की कामना-परित्याग न करके 'यम कभी क्षमा न करेंगे' केवल यही उत्तर दिया।४६। तब ब्राह्मण, परिवृद्ध, अमात्य और भृत्यगण मिल

ततोऽमात्याश्च भूपाश्च पौरवृद्धास्तथा द्विजाः । समेत्य मन्त्रयामासुः किमत्र क्रियतामिति ॥४७
तेषां मन्त्रयतां विप्र निश्चयोऽयमजायत । अनुरागवतां तत्र महीपालेऽतिधार्मिके ॥४८
सम्यग्ध्यानपरा भूत्वा प्रार्थयामः समाहिताः । तपसाराध्य भास्वन्तमायुरस्य महीपतेः ॥४९
तत्रैकनिश्चयाः कार्ये केचिद्गेहे च भास्करम् । सम्यगर्घोपचाराद्यैरुपहारैरपूजयन् ॥५०
अपरे मौनिनो भूत्वा ऋग्जापेन तथापरे । यजुषामथ साम्नां च तोषयाञ्चक्रिरे रविम् ॥५१
अपरे च निराहारा नदीपुलिनशायिनः । तपांसि चक्रुरिच्छंतोभास्कराराधनं द्विजाः ॥५२
अग्निहोत्रपराश्चान्ये रविसूक्तान्यहर्निशम् । जेपुस्तत्रापरे तस्थुर्भास्करे न्यस्तदृष्टयः ॥५३
इत्येवमतिनिर्बन्धं भास्कराराधनं प्रति । बहुप्रकारं चक्रुस्ते तं तं विधिमुपाश्रिताः ॥५४
तथा तु यततां तेषां भास्कराराधनं प्रति । सुदामा नाम गन्धर्व उपगम्येदमब्रवीत् ॥५५
यद्याराधनमिष्टं वो भास्करस्य द्विजातयः । तदेतत्क्रियतां येन भानुः प्रीतिमुपैष्यति ॥५६
तस्माद्गुरुविशालाख्यं वनं सिद्धनिषेवितम् । कामरूपे महाशैले गम्यतां तत्र वै लघु ॥५७
तस्मिन्नाराधनं भानोः क्रियतां सुसमाहितैः । सिद्धक्षेत्रं हितं तत्र सर्वकामानवाप्स्यथ ॥५८

मार्कण्डेय उवाच

इति ते तद्वचः श्रुत्वा गत्वा तत्काननं द्विजाः । ददृशुर्भास्वतस्तत्र पुण्यमायतनं शुभम् ॥५९
तत्र ते नियताहारा वर्णा विप्रादयो द्विज । धूपपुष्पोपहाराढ्यां पूजां चक्रुरतन्द्रिताः ॥६०

कर परामर्श करने लगे कि, "इस समय क्या किया जाय ?" ।४७। हे विप्र ! धार्मिकप्रवर राजा के प्रति अनुरागी उन सब ब्राह्मणादिकों ने परामर्श में यही स्थिर किया कि ।४८। हम सम्यक् प्रकार ध्यान में रत होकर तपस्या के द्वारा भास्कर की आराधना करें और उनसे महीपति की आयु माँगे ।४९। अनन्तर वह सब इस कार्य में एक निश्चय हो कोई-कोई घर में अर्घोपचारादि उपहार द्वारा भास्कर की पूजा करने लगे ।५०। कोई मौनी होकर ऋक् मंत्र के जपद्वारा, कोई यजुर्वेदानुयायी और कोई सामानुयायी जप द्वारा रवि का संतोष साधन करने लगे ।५१। अपर कोई नदी के पुलिन में निराहार तपस्या चरण करके परिश्रमसहित भास्कर की आराधना करने लगे ।५२। कोई अग्निहोत्र में तत्पर हुए दिनरात रविसूक्त का जप करने लगे और भास्कर की ओर दृष्टि लगाकर खड़े रहे ।५३। इस भाँति वह उस प्रसिद्ध विधि के अनुसार अनेक प्रकार से सूर्य की आराधना में दृढसंकल्प रहे ।५४। उनका इस प्रकार सूर्य की आराधना में अतिशय यत्न देख, सुदामा नामक गन्धर्व ने वहाँ आकर कहा ।५५। हे ब्राह्मणों ! यदि भानु की आराधना करना ही आपको अभीष्ट है, तो जिससे वह प्रसन्न हों, उसी कार्य के करने की चेष्टा करो ।५६। कामरूप महापर्वत में सिद्ध के द्वारा सेवित 'गुहविशाल' नामक वन में शीघ्र जाकर ।५७। वहाँ सावधान चित्त से भानु की आराधना करो, इससे आपकी वांछित अभिलाषा सिद्ध होगी, क्योंकि इन सब कार्यों में सिद्ध क्षेत्र ही अधिक फलदायक है ।५८

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विजोत्तम ! ब्राह्मगण गन्धर्व के उक्त वचन सुनकर उस वन में गये और वहाँ भगवान् भास्कर का पवित्र मन्दिर देखा ।५९। ब्राह्मणादि सब वर्णों ने ही उस स्थान में नियताहार अवलम्बन पूर्वक आलस्य रहित धूप और धूपादि उपहार द्वारा भास्कर देव की पूजा

पुष्पानुलेपनाद्यैश्च धूपगन्धादिकैस्तथा । जपहोमान्नदानाद्यैः पूजनं ते समाहिताः ॥
कुर्वन्तस्तुष्टुवुर्ब्रह्मन्विवस्वन्तं द्विजातयः ॥६१

ब्राह्मणा ऊचुः

देवदानवयक्षाणां ग्रहाणां ज्योतिषामपि । तेजसाभ्यधिकं देवं व्रजाम शरणं रविम् ॥६२
दिवि स्थितं च देवेशं द्योतयन्तं समन्ततः । वसुधामन्तरिक्षं च व्याप्नुवन्तं मरीचिभिः ॥६३
आदित्यं भास्करं भानुं सवितारं दिवाकरम् । पूषाणमर्यमाणं च स्वर्भानुं दीप्तदीधितिम् ॥६४
चतुर्युगान्तकालाग्निदुष्प्रेक्ष्यं प्रलयान्तगम् । योगीश्वरमनन्तं च रक्तं पीतं सितासितम् ॥६५
ऋषीणामग्निहोत्रेषु यज्ञदेवेष्ववस्थितम् । व्रजाम शरणं देवं तजोराशिं तमच्युतम् ॥
अक्षरं परमं गुह्यं मोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥६६
छन्दोभिरश्वरूपैश्च सकृद्युक्तैर्विहङ्गमम् । उदयास्तमने युक्तं सदा मेरोः प्रदक्षिणे ॥६७
अनृतं च ऋतं चैव पुण्यतीर्थं पृथग्विधम् । विश्वस्थितिचिन्त्यं च प्रपन्नाः स्म प्रभाकरम् ॥६८
यो ब्रह्मा यो महादेवो यो विष्णुर्यः प्रजापतिः । वायुराकाशमापश्च पृथिवीगिरिसागराः ॥६९
ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्या वानस्पत्यं द्रुमौषधम् । व्यक्ताव्यक्तेषु भूतेषु धर्माधर्मप्रवर्त्तकः ॥७०
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव ते तनुः । त्रिधा यस्य स्वरूपं तु भानोर्भास्वान्प्रसीदतु ॥७१
यस्य सर्वमयस्येदमङ्गभूतं जगत्प्रभोः । स नः प्रसीदतां भास्वाञ्जगतां यश्च जीवनम् ॥७२
यस्यैकमक्षरं रूपं प्रभामण्डलदुर्दृशम् । द्वितीयमैन्दवं सौम्यं स नो भास्वान्प्रसीदतु ॥७३

की ।६०। हे ब्रह्मन् ! अनुलेपन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, जप, होम और नैवेद्य इत्यादि के द्वारा सावधानचित्त से पूजा करते-करते ब्राह्मगण सूर्यदेव की स्तुति करने लगे ।६१

ब्राह्मण बोले—देव, दानव, यक्ष और ज्योतिष्कग्रहों में अधिक तेजस्वी सूर्य देव की शरणागत हुये हैं ।६२। जो देवेश्वर आकाश में स्थित होकर संपूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करते हैं, जो किरणों से वसुधा और अन्तरिक्ष को व्याप्त कर रहे हैं।६३। जो भास्कर, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु, दीप्तदीधिति ।६४। और योगीश्वर नाम से कथित हैं, जो चारों युग के अन्त में दुर्निरीक्ष्य कालाग्निस्वरूप हैं जो अनन्त रक्त, पीत, श्वेत, कृष्ण हैं ।६५। जो ऋषियों के अग्निहोत्रकाल में यज्ञदेवाधिष्ठाता हैं, जो अक्षर और परमगुह्य अति उत्तम मोक्ष द्वारा ब्रह्मस्वरूप हैं, जो एक बार जोड़े हुए छन्दोरूप अश्वद्वारा आकाशगामी हैं जो उदयास्त गमन में और सुमेरु की प्रदक्षिणा में सदा नियुक्त हैं ।६६-६७। जो मिथ्या, सत्य, पुण्यतीर्थ और पृथक् प्रकार से विश्वस्थितिरूप हैं, उन्हीं अदिति के गर्भ से उत्पन्न अनन्त अचिन्त्य आदि देव प्रभाकर का हमने आश्रय लियाहै ।६८। जों ब्रह्मा हैं, जो महादेव हैं, जो विष्णु हैं, जो प्रजापति हैं, जो वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र ।६९। ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रादि वनस्पति, वृक्ष और औषधिस्वरूप हैं जो व्यक्ताव्यक्त भूतगणों के धर्माधर्म प्रवर्तक हैं ।७०। और ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा वैष्णवी तनुभेद से जिनका स्वरूप त्रिधा विभिन्न हुआ है, वह भास्कर हमारे प्रति प्रसन्न हों ।७१। सब पदार्थ ही जिन अनादि जगत्प्रभु की गोदी में स्थित हैं और जो जगत् के जीवनस्वरूप हैं, वह भास्वान् हमारे प्रति प्रसन्न हों ।७२। जिनका अद्वितीय प्रकाशमान प्रभामण्डल दुर्निरीक्ष्य हैं दिवाकर और सौम्य सुधाकर यह दो

ताभ्यां च तस्य रूपाभ्यामिदं विश्वं विनिर्मितम् । आग्नीषोममयं भास्वान्स नो देवः प्रसीदतु ।।७४

मार्कण्डेय उवाच

इत्थं स्तुत्या तदा भक्त्या सम्यक्पूजाविधानतः । तुतोष भगवान्भास्वांस्त्रिभिर्मासैर्द्विजोत्तम ।।७५
ततः स मण्डलादुद्यन्निजबिम्बसमप्रभः । अवतीर्य ददौ तेभ्यो दुर्दृशो दर्शनं रविः ।।७६
ततस्ते स्पष्टरूपं तं सवितारमजं जनाः । पुलकोत्कम्पिनो विप्रा भक्तिनम्राः प्रणेमिरे ।।७७

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्ररश्मे सर्वस्य हेतुस्त्वमशेषकेतुः ।
पाता त्वमीड्योऽखिलयज्ञधामध्येयस्तथा योगविदां प्रसीद ।।७८

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भानुस्तवो नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ।१०६।

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

(११०)

भानोर्माहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रसन्नो भगवान्भानुराहाखिलाञ्जनान् । व्रियतां यदभिप्रेतं मत्तः प्राप्तुं द्विजादयः ।।१

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ते प्रणिपत्योचुर्विप्रक्षत्रादयो जनाः । ससाध्वसमशीतांशुमवलोक्य पुरः स्थितम् ।।२

रूप हैं, वह भास्कर देव हमारे प्रति प्रसन्न हों ।७३। जिनके उन प्रसिद्ध दो रूपों से यह अग्नीसोममय विश्व निर्मित हुआ है, वहीं भास्कर हमारे प्रति प्रसन्न हों ।७४

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार जब उन्होंने अत्यन्त भक्तिसहित तीन महीने तक स्तवपाठपूर्वक पूजा की तब भगवान् भास्कर सन्तुष्ट हुए ।७५। और स्वयं दुर्निरीक्ष्य होकर भी उन्होंने मण्डल से निकल अपने उदयकालीन मण्डल की प्रभा से उनको दर्शन दिया ।७६। तब उन मनुष्यों ने उनका स्पष्ट रूप देखने से पुलकित और भक्तिनम्र हो उन अनादि सविता को यह कहकर प्रणाम किया ।७७। हे सहस्ररश्मे ! तुमको नमस्कार है, तुम समस्त भूत के कारण और अखिल जगत् के पताकास्वरूप हो । हे अखिलयज्ञेश्वर ! तुम्हीं पूज्य, तुम्हीं सब यज्ञों के आधार और योगविद् पुरुषों के ध्यान का विषय हो, तुमहमारे प्रति प्रसन्न होओ ।७८

श्रीमार्कण्डेयपुराण में भानुस्तव नामक एकसौछवाँ अध्याय समाप्त ।१०६।

अध्याय १०७

सूर्यमाहात्म्य का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—इसके बाद भगवान् भानु ने प्रसन्न होकर उन संपूर्ण जनों से कहा हे द्विजातिगण ! तुमने मुझसे जो प्राप्त करने की अभिलाषा की है, उसको माँगो ।१। तब द्विजातिगणों ने उष्णांशु को सन्मुख देख, भ्रमसहित प्रणाम कर उन वर देनेवाले जगदीश्वर से कहा ।२

प्रजा ऊचुः

भगवन्यदि नो भक्त्या प्रसन्नस्तिमिरापह ।।३
दश वर्षसहस्राणि ततो नो जीवतां नृपः। निरामयो जितारातिः सुकोशः स्थिरयौवनः ।।४

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वा जनान्भास्वानदृश्योऽभून्महामुने । तेऽपि लब्धवरा हृष्टाः समाजग्मुर्जनेश्वरम् ।।५
यथा वृत्तं च ते तस्मै नरेन्द्राय न्यवेदयन् । वरं लब्ध्वा सहस्रांशो सकाशादखिलं द्विज ।।६
तच्छ्रुत्वा जहृषे तस्य सा पत्नी मानिनी द्विज । (प्रहर्षं परमं याता हर्षोद्गततनूरुहा) ।।
स च राजा चिरं दध्यौ नाह किञ्चिच्च तं जनम् ।।७
ततः सा मानिनी भूपं हर्षापूरितमानसा । दिष्ट्याऽऽयुषा महीपाल वर्द्धस्वेत्याह तं पतिम् ।।८
तथा तया मुदा भर्ता मानिन्याथ सभाजितः । नाहं किञ्चिन्महीपालश्चिन्ताजडमनाद्विज ।।९
सा पुनः प्राह भर्त्तारं चिन्तयानमधोमुखम् । कस्मान्न हर्षमभ्येषि परमाभ्युदये नृप ।।१०
दशवर्षसहस्राणि नीरुजः स्थिरयौवनः । भावी त्वमद्यप्रभृति किं तथापि न हृष्यसे ।।११
किन्तु तत्कारणं ब्रूहि यच्चिन्ताकृष्टमानसः । परमाभ्युदयेऽपि त्वं सम्प्राप्ते पृथिवीपते ।।१२

राजोवाच

कथमभ्युदयो भद्रे किं सभाजयसे च माम् । प्राप्तो दुःखसहस्राणां किं सभाजनमिष्यते ।।१३

प्रजा ने कहा—हे भगवन् ! हे तिमिरहारी ! यदि आप हमारी भक्ति से प्रसन्न हुए हैं ।३। तो हमारे राजा राज्यवर्द्धन निरामय रोगसहित विजितशत्रु पूर्णकोश और स्थिरयौवन होकर दश हजार वर्ष जीवित रहें ।४

मार्कण्डेय जी बोले—हे महामुने ! भगवान् उस सब प्रजा से तथास्तु कहकर अन्तर्ध्यान हो गये । और वह भी वरलाभ करने से प्रसन्नचित्त हो राजा के समीप आये ।५। हे द्विज ! सहस्रांशु सूर्य के समीप वरलाभ इत्यादि जो कुछ हुआ था ब्राह्मणों ने वह सब राजा से निवेदन किया ।६। हे द्विज ! नरेन्द्र पत्नी मानिनी यह सुनकर अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हुई तथा परमहर्ष से शरीर पुलकित हो गया किन्तु राजा ने उनसे कुछ न कहकर बहुतकाल तक चिन्ता करते रहे ।७। इसके उपरान्त मानिनी ने प्रसन्न हो पति से कहा हे महीपाल ! सुवृद्ध आयु के द्वारा आप वृद्धि को प्राप्त होइये ।८। हे द्विज ! आनन्द चित्त मानिनी के द्वारा इस प्रकार सत्कार को प्राप्त होकर भी राजा ने चिन्ताकुल चित्त से कोई उत्तर नहीं दिया ।९। तब मानिनी फिर नीचे को मुख किये चिन्ताकुल भर्ता से कहने लगी । हे नृप ! आप ऐसे आनन्द के समय में भी किस निमित्त हर्ष को प्राप्त नहीं होते ।१०। आप रोगरहित और स्थिरयौवन होकर अब से दश हजार वर्ष जीवित रहेंगे इस पर भी आप प्रसन्न क्यों नहीं होते ।११। हे पृथ्वीपते ! ऐसे आनन्दकाल के उपस्थित होने पर भी किस निमित्त आप चिन्ताकुल हो रहे हैं इसका कारण बताइये ।१२

राजा बोले—हे भद्रे ! मेरा क्या भाग्योदय हुआ तुम क्यों मेरा सत्कार करती हो ? सहस्रों दुःख के

दशवर्षसहस्राणि जीविष्याम्यहमेककः । न त्वं तव विपत्तौ मे किन्न दुःखं भविष्यति ।।१४
पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्च तथान्यानिष्टबान्धवान् । पश्यतो मे मृतान्दुःखं किमल्पं हि भविष्यति ।।१५
भृत्येषु चातिभक्तेषु मित्रवर्गे तथा मृते । भद्रे दुःखमपारं मे भविष्यति तु सन्ततम् ।।१६
यैर्मदर्थं तपस्तप्तं कृशैर्धमनिसन्ततैः । ते मरिष्यन्त्यह भोगी जीविष्यामीति धिक्करम् ।।१७
सेयमापद्वरारोहे प्राप्ता नाभ्युदयो मम । कथं वा मन्यसे न त्वं यत्सभा जयसेऽद्य माम् ।।१८

मानिन्युवाच

महाराज यथात्थ त्वं तथैतन्नात्र संशयः । मया पौरैश्च दोषोऽयं प्रीत्या नालोकितस्तव ।।१९
एवं गतेऽत्र किं कार्यं नरनाथ विचिन्त्यताम् । नान्यथा भावि यत्प्राह प्रसन्नौ भगवान्रविः ।।२०

राजोवाच

उपकारः कृतः पौरैः प्रीत्या भृत्यैश्च यो मम । कथं भोक्ष्याम्यहं भोगान्गत्वा तेषामनिष्कृतिम् ।।२१
सोऽहमद्यप्रभृत्यद्रिं गत्वा नियतमानसः । (पौरलोकहितार्थं च तोषयिष्यामि भास्करम् ।।
यथा पौरा मम कृते बान्धवाश्च समन्ततः । आराधनाय देवेशं तथाहमपि साम्प्रतम्) ।।
तपस्तप्स्ये निराहारो भानोराराधनोद्यतः ।।२२
दशवर्षसहस्राणि यथाहं स्थिरयौवनः । तस्य प्रसादाद्देवस्य जीविष्यामि निरामयः ।।२३

प्राप्त होने में क्या आनंद भोगूँगा ।१३। मैं अकेला दश हजार वर्ष जीवित रहूँगा, इसलिए तुम्हारी विपत्ति मे क्या मुझको दुःख नहीं होगा ।१४। पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और अन्यान्य प्रियबान्धवों की मृत्यु देखने से क्या मुझको अल्प दुःख होने की संभावना है ।१५। हे भद्रे ! अत्यन्त भक्त, भृत्यगण और मित्रों के मरने पर मुझको सदा अपार दुःख अनुभव करना पड़ेगा ।१६। जिन्होंने मेरे लिये ही नसों को सुखाकर तपस्या की है, उनकी भी मृत्यु होगी किन्तु मैं जीवित रहकर भोग सुख अनुभव करूँगा यह क्या मुझको धिक्कार नहीं है ।१७। हे वरारोहे ! यह जो दश हजार वर्ष की परमायु है वह मुझको आपदा उपस्थित हुई है, यह भाग्योदय नहीं है, तुम इस बात को बिना विचारे क्यों मुझे हर्षित करती हो ।१८

मानिनी बोली—हे महाराज ! आपने जो कहा यह इसी प्रकार दुःखकर है, इसमें सन्देह नहीं मैंने तथा पौरवर्ग ने आपके प्रति प्रीति से यह दोष नहीं देखा ।१९। हे नरनाथ ! ऐसा होने पर अब क्या कर्तव्य है, वह विचारिये क्योंकि भगवान् रवि ने प्रसन्न होकर जो कहा है वह मिथ्या होने वाला नहीं है ।२०

राजा बोले—पौर और भृत्यगणों ने प्रसन्न मन होकर मेरा जो उपकार किया है, मैं उससे बिना निष्कृति लाभ किये किस प्रकार भोगों का अनुभव करूँ ।२१। सो मैं अब प्रभृति पर्वत पर जाकर दुष्कर तपस्या कर पुरवासियों के हित के निमित्त दुष्कर तप करूँगा । जैसे पुरवासी और बांधवों ने मेरे निमित्त आराधना की है वैसे मैं भी उनके निमित्त आराधना करूँगा सूर्यदेव के आराधना के निमित्त हो तप करूँगा ।२२। जिस प्रकार उनके प्रसाद से स्थिर यौवन और निरामय (रोगरहित) होकर मैं दश हजार वर्ष पर्यन्त जीवित रहूँगा ।२३। हे वरानने ! उसी प्रकार मेरी समस्त प्रजा, भृत्य, तुम, कन्या, पुत्र, पौत्र,

तथा यदि प्रजाः सर्वा भृत्यास्त्वं च सुताश्च मे । पुत्रा पौत्रा प्रपौत्राश्च सुहृदश्च वरानने ।।२४
जीवन्त्येतं प्रसादं च करोति भगवान्रविः । ततोऽहं भविता राज्ये भोक्ष्ये भोगांस्तथा मुदा ।।२५
न चेदेवं करोत्यर्कस्तदाद्रौ तत्र मानिनि । तपस्तप्स्ये निराहारो यावज्जीवितसंक्षयः ।।२६

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्ता सा तदा तेन तथेत्याह नराधिपम् । जगाम तेन च समं साऽपि तं धरणीधरम् ।।२७
स तदायतनं गत्वा भार्यया सह पार्थिवः । भानोराराधनं चक्रे शुश्रूषानिरतो द्विज ।।२८
निराहारा कृशा सा च यथासौ पृथिवीपतिः । तेपे तपस्तथैवोग्रं शीतवातातपक्षमा ।।२९
तस्य पूजयतो भानुं तप्यतश्च तपो महत् । साग्रे सम्वत्सरे याते ततः प्रीतो दिवाकरः ।।३०
समस्तभृत्यपौरादिपुत्राणां च कृते द्विज । ददौ यथाभिलषितं वरं द्विजवरोत्तम ।।३१
लब्ध्वा वरं स नृपतिः समभ्येत्यात्मनः पुरम् । चकार मुदितो राज्यं प्रजा धर्मेण पालयन् ।।३२
ईजे यज्ञान्स च बहून्ददौ दानान्यहर्निशम् । मानिन्या सहितो भोगान्बुभुजे च स धर्मवित् ।।३३
दश वर्षसहस्राणि पुत्रपौत्रादिभिः सह । भृत्यैः पौत्रैः प्रमुदितः सोऽभवत्स्थिरयौवनः ।।३४
तस्येति चरितं दृष्ट्वा प्रमतिर्नाम भार्गवः । विस्मयाकृष्टहृदयो गाथामेतामगायत ।।३५
भानुभक्तेरहो शक्तिर्यद्राजा राज्यवर्द्धनः । आयुषो वर्द्धने जातः स्वजनस्य तथात्मनः ।।३६

प्रपौत्र और सुहृदगण भी जीवित रहें ।२४। भगवान् रवि यदि इस प्रकार अनुग्रह करेंगे तो मैं प्रसन्नचित्त से राज्य में राजा होकर समस्त राज्य सुख भोग करूँगा ।२५। और यदि सूर्य ऐसा अनुग्रह नहीं करेंगे तो हे मानिनी जब तक मेरा प्राण नष्ट न होगा तब तक उसी पर्वत में निराहार होकर तपस्या करूँगा ।२६

मार्कण्डेय जी बोले—मानिनी ने नराधिप का वचन 'तथास्तु' कहकर स्वीकार किया और फिर पति के संग पूर्वोक्त पर्वत में चली गई ।२७। हे द्विज ! राजा स्त्रीसहित पूर्वोल्लिखित मन्दिर में जाकर भास्कर की सेवा में तत्पर हो भानु की आराधना करने लगा ।२८। नरपति निराहार के कारण जिस प्रकार दिन-दिन कृश होते थे, रानी मानिनी भी उसी प्रकार क्षीण शरीर में शीत वायु गरमी इत्यादि का कष्ट सहकर उग्र तपस्या में नियुक्त हुई ।२९। हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार जब उन्होंने भानु की आराधना और महत् तपस्या करके एक वर्ष से अधिक समय बिताया तब दिवाकर ने प्रसन्न होकर ।३०। समस्त भृत्य, पौर और पुत्रादि के लिये अभिलषित वर दिया ।३१। अनन्तर राजा वर प्राप्त करके अपने घर आये और हर्षिता चित्त से धर्मपूर्वक प्रजापालन करके राज्य करने लगे ।३२। वह धर्मात्मा राजा अनेक भाँति के यज्ञ दिन-रात सत्पात्र में दान और महिषी मानिनी के संग विविध भोगों को भोगने लगे ।३३। इस प्रकार उन्होंने पुत्र-पौत्र, भृत्य और इत्यादि के सहित प्रसन्न चित्त से स्थिरयौवन होकर दशहजार वर्ष बिताये थे ।३४। उस समय भृगुवंशोत्पन्न प्रमति नामक ऋषि ने उनका यह चरित्र देखने से आश्चर्ययुक्त चित्त हो उस प्रकार गाथा गाई थी ।३५। "भानुभक्ति की क्या आश्चर्यप्रद शक्ति है ? जिसके बल से राजा राज्यवर्द्धन ने अपनी और आत्मीयजनों की आयु बढ़ाई है ।३६। हे विप्र ! तुमने आदिदेव

इति ते कथितं विप्र यत्पृष्टोऽहं त्वयोदितः । आदिदेवस्य माहात्म्यमादित्यस्य विवस्वतः ।।३७
विप्रैतदखिलं श्रुत्वा भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् । पठंश्च मुच्यते पापैः सप्तरात्रकृतैर्नरः ।।३८
अरोगी धनवानाढचः कुले महति धीमताम् । जायते च महाप्राज्ञो यश्चैतद्धारयेद्बुधः ।।३९
(यजते च महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणः । श्रुत्वा चरितमेतद्धि समानं लभते फलम् ।।
मन्त्राश्च येऽत्राभिहिता भास्वतो मुनिसत्तम । जपः प्रत्येकमेतेषां त्रिसंध्यं पातकापहः ।।४०
समस्तमेतन्माहात्म्यं यत्र चायतने रवेः । पठचते तत्र भगवान्सान्निध्यं न विमुञ्चति ।।४१
तस्मादेतत्त्वया ब्रह्मन्भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् । धार्यं मनसि जाप्यं च महत्पुण्यमभीप्सता ।।४२
सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गी पयस्विनीं गां प्रददाति यो हि ।
शृणोति चैतत्त्र्यहमात्मवान्नरः समं तयोः पुण्यफलं द्विजाग्र्य ।।४३
इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे भानोर्माहात्म्यवर्णनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः।१०७।

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

वंशानुक्रमवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवंप्रभावो भगवाननादिनिधनो रविः । यस्य त्वं क्रौष्टुके भक्त्या माहात्म्यं परिपृच्छसि ।।१

विवस्वान् आदित्य के माहात्म्य विषय में जो पूछा था वह तुमसे वर्णन किया ।३७। मनुष्यगण भानु का यह समस्त उत्तम माहात्म्य ब्राह्मण के मुख से श्रवण और पाठ करने के कारण सप्तरात्र के किये पाप से छूट जाते हैं ।३८। जो मनुष्य इन भानु का माहात्म्य बुद्धि में धारण करके रखते हैं वह बुद्धिमानों के महाकुल में धनवान्, अरोगी और महाप्राज्ञ होकर जन्म ग्रहण करते हैं ।३९। और बडी दक्षिणावाले यज्ञों से यजन करते हैं इस चरित्र को सुनकर अपने समान फल-लाभ करते हैं । हे मुनिसत्तम ! मूर्खमनुष्य भी पाप से युक्त होकर यदि भास्कर के इस जाप समूह में से जो कोई एक त्रिसंध्या में जप करते हैं उनके पातक नष्ट होते हैं ।४०। जिस देवमन्दिर में रवि का यह संपूर्ण माहात्म्य पढ़ा जाता है भगवान् उसकी समीपता को नहीं छोड़ते ।४१।अत एव हे ब्रह्मन् ! तुम भी महत् पुण्य की अभिलाषा से भानु का यह उत्तम माहात्म्य अन्तर में धारण करो और जप करो ।४२। हे द्विजश्रेष्ठ ! जो पुरुष सुवर्णशृंग मढ़ाकर अति सुन्दर पयस्विनी अर्थात् दूधवाली गाय दान करते हैं और जो पुरुष संयत होकर तीन दिन यह माहात्म्य सुनते हैं, इन दोनों का पुण्यफल समान जानना चाहिए ।४३

श्रीमार्कण्डेयपुराण में भानु-माहात्म्य वर्णन नामक एकसौ सातवाँ अध्याय समाप्त ।१०७।

अध्याय १०८

वंशानुक्रम नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे क्रौष्टुके ! तुमने भक्तिसहित मुझसे जिनका माहात्म्य पूँछा था, वह अनादिनिधन भगवान् रवि इस प्रकार प्रभावशाली हैं ।१। वह संयतचित्त योगियों के परमात्मा

परमात्मा स योगिनां युञ्जतां चेतसां लयम् । क्षेत्रज्ञः सांख्ययोगानां यज्ञेशो यज्विनामपि ॥२
सूर्याधिकारं वहतो विष्णोरीशस्य वेधसः । मनुस्तस्याभवत्पुत्रश्छिन्नसर्वार्थसंशयः ॥३
मन्वन्तराधिपो विप्र यस्य सप्तममन्तरम् । इक्ष्वाकुर्नाभगो रिष्टोमहाबलपराक्रमः ॥४
नरिष्यन्तोऽथ नाभागः पृषध्रो धृष्ट एव च । एते पुत्रा मनोस्तस्य पृथग्राज्यस्य पालकाः ॥५
विख्यातकीर्त्तयः सर्वे सर्वे शस्त्रास्त्रपारगाः । विशिष्टतरमन्विच्छन्मनुः पुत्रं तथा पुनः ॥६
मित्रावरुणयोरिष्टिं चकार कृतिनां वरः । यत्र चापहुते होतुरपचारान्महामुने ॥७
इला नाम समुत्पन्ना मनोः कन्या सुमध्यमा । तां दृष्ट्वा कन्यकां तत्र समुत्पन्नां ततो मनुः ॥८
तुष्टाव मित्रावरुणौ वाक्यं चेदमुवाच ह । भवत्प्रसादात्तनयो विशिष्टो मे भवेदिति ॥९
कृते मखे समुत्पन्ना तनया मम धीमतः । यदि प्रसन्नौ वरदौ तदियं तनया मम ॥१०
प्रसादाद्भवतो पुत्रो भवत्वतिगुणान्वितः । तथेति चाभ्यामुक्ते देवाभ्यां सैव कन्यका ॥११
इला समभवत्सद्यः सुद्युम्न इति विश्रुतः । पुनश्चेश्वरकोपेन मृगयामटता वने ॥१२
स्त्रीत्वमासादितं तेन मनुपुत्रेण धीमता । पुरूरवसनामानं चक्रवर्तिनमूर्जितम् ॥१३
जनयामास तनयं यत्र सोमसुतो बुधः । जाते सुते पुनः कृत्वा सोऽश्वमेधं महाक्रतुम् ॥१४
पुरुषत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नः पार्थिवोऽभवत् । सुद्युम्नस्य त्रयः पुत्रा उत्कलो विनयो गयः ॥१५
पुरुषत्वे महावीर्या यज्विनः पृथुलौजसः । पुरुषत्वे तु ये जातास्तस्य राज्ञस्त्रयः सुताः ॥१६

सांख्ययोगियों के क्षेत्रज्ञ और याज्ञिकगणों के यज्ञेश्वर हैं।२। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर स्वरूप सूर्याधिकार वहनकारी उन मार्तण्डदेव के सर्वार्थ संशयशून्य मनु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।३। जिस मनु का सप्तम मन्वन्तर इस समय वर्त्तमान है महाबलपराक्रमी इक्ष्वाकु, नाभग, रिष्ट।४। नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और धृष्ट नामक मनु के यह समस्त पुत्रगण पृथक्-पृथक् राज्य के परिपालक।५। सभी विख्यातकीर्ति, एवं शास्त्रपारग और विशेष अस्त्राभिज्ञ थे। इसके बाद कृतिश्रेष्ठ मनु ने विशिष्टतर पुत्र की कामना से।६। मित्रावरुण का यज्ञ किया था। हे महामुने! होता के अपचार से उस यज्ञ के अपहुत अर्थात् दूषित वा अंगहीन होने पर।७। इलानाम्नी सुमध्यमा कन्या की उत्पत्ति हुई थी। अनन्तर मनु यज्ञोत्पन्न उस कन्या को देखकर।८। मित्रावरुण की स्तुति करने लगे और बोले कि, आपके अनुग्रह से मैं असाधारण पुत्र प्राप्त करूँ।९। इसी अभिलाषा से यज्ञ करके यह कन्या पाई है हे वरदगण! यदि आप प्रसन्न हुए हैं, तो आपके अनुग्रह से मेरी यह कन्या।१०। अत्यन्त गुणवान् पुत्र हो जाय। फिर दोनों देवताओं के 'तथास्तु' कहने पर वह कन्या।११। इला तत्काल सुद्युम्ननामक पुत्र हो गई। एक समय यही बुद्धिमान् मनुपुत्र वन में मृगया (शिकार) के लिये जाकर ईश्वर के कोप से।१२। फिर यह मनुपुत्र स्त्री हुए थे। उसी समय सोमपुत्र बुध ने उसके गर्भ से पुरुरवा नामक तेजस्वी चक्रवर्त्ती पुत्र उत्पन्न किया, पुत्रोत्पत्ति के बाद फिर अश्वमेध यज्ञ करने से।१३-१४। वह सुद्युम्न पुरुषत्व को प्राप्त होकर राजा हुए थे सुद्युम्न के पुरुष होने पर उनके उत्कल, विनय और गय नामक।१५। महावीर याज्ञिक और विपुल तेजवाले तीन पुत्र हुए थे। उनके पुरुषकाल में जो तीन पुत्र उत्पन्न हुए।१६। वही राज्य लाभ करके

बुभुजुस्ते महीमेतां धर्मे नियतचेतसः । स्त्रीभूतस्य तु यो जातस्तस्य राज्ञः पुरूरवाः ॥१७
न स लेभे महाभागं यतो बुधसुतो हि सः । ततो वसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम् ॥
तस्मै दत्तं स राजाभूत्तत्रातीव मनोहरे ॥१८

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वंशानुक्रमो नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।१०८।

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

पृषध्रोपाख्यानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

पृषध्राख्यो मनोः पुत्रो मृगयामगमद्वनम् । तत्र चंक्रममाणोऽसौ विपिने निर्जने वने ॥१
नाससाद मृगं कञ्चिद्भानुदीधितितापितः । क्षुत्तृट्तापपरीताङ्ग इतश्चेतश्च चंक्रमन् ॥२
स ददर्श तदा तत्र होमधेनुं मनोहराम् । लतान्तर्देहच्छिन्नार्धां ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥३
स मन्यमानो गवयमिषुणा तामताडयत् । पपात सापि तद्बाणाविभिन्नहृदया भुवि ॥४
ततोऽग्निहोत्रिणः पुत्रो ब्रह्मचारी तपोरतिः । शप्तवान्स पितुर्दृष्ट्वा होमधेनुं निपातिताम् ॥५
गोपालः प्रेषितः पुत्रो बाभ्रव्यो नाम नामतः । कोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततो मुने ॥६
चुकोप विगलत्स्वेदजललोलाविलेक्षणः । तं क्रुद्धं प्रेक्ष्य स नृपः पृषध्रो मुनिदारकम् ॥७

धर्मानुसार पृथ्वी का पालन करते थे, राजा के स्त्रीकाल में जो पुरुरवा उत्पन्न हुए थे ।१७। वह बुध के पुत्र होने से पृथ्वी का भाग प्राप्त नहीं कर सके किन्तु वसिष्ठ जी की आज्ञा से उनको प्रतिष्ठान नामक उत्तम पुर दिया गया वह उसी मनोहर प्रदेश में राजा हुए थे ।१८

श्रीमार्कण्डेयपुराण में वंशानुक्रम वर्णन नामक एकसौआठवाँ अध्याय समाप्त ।१०८।

अध्याय १०९

पृषध्रोपाख्यान नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—मनुपुत्र पृषध्र एक समय मृगया की अभिलाषा से वन में गये थे । उन्होंने निर्जन वन में इधर-उधर भ्रमण करके भी ।१। कोई मृग नहीं पाया । किन्तु सूर्य की किरण से तप्त और भूख-प्यास से पीड़ित होकर इधर-उधर विचरण करते करते ।२। वहाँ किसी अग्निहोत्री ब्राह्मण की खुली हुई मनोहर होमधेनु को लता के अन्तर में छिपी देखी ।३। उन्होंने उसको गवय (गोसदृश जीव) जान बाण मारा और वह धेनु भी बाण से हृदय फट जाने के कारण पृथ्वी में गिर गई ।४। हे मुने ! अग्निहोत्री ऋषि का गोपालन में नियुक्त ब्रह्मचारी और तपस्यानुरागी बाभ्रव्यनामक पुत्र उस काल में पिता की होमधेनु को गिरता हुआ देख, क्रोधित हो अत्यन्त क्रोध से नष्टज्ञान एवं पसीने से आर्द्र देह और अश्रुपूर्ण घूर्णित नेत्रों से राजा को शाप देने में उद्यत हुआ ।५-६। राजा पृषध्र मुनिबाल के अंग में क्रोध से पसीना निकलता हुआ देखकर कहने लगे ।७। प्रसन्न होइये, क्यों शूद्र के समान् ऐसे क्रोध करते हो ? आप

प्रसीदेति जगौ कस्माच्छूद्रवत्कुरुषे रुषम् । न क्षत्रियो न वा वैश्य एवं क्रोधमुपैति वै ॥
यथा त्वं शूद्रवज्जातो विशिष्टे ब्रह्मणः कुले ॥८

मार्कण्डेय उवाच

इति निर्भर्त्सितस्तेन स राज्ञा मौलिनः सुतः । शशाप तं दुरात्मानं शूद्र एव भविष्यसि ॥९
प्रयास्यति क्षयं ब्रह्मन्यत्तेऽधीतं गुरोर्मुखात् । होमधेनुर्मम गुरोर्यदियं हिंसिता त्वया ॥१०
एवं शप्तो नृपः क्रुद्धस्तच्छापपरिपीडितः । प्रतिशापपरो विप्र तोयं जग्राह पाणिना ॥११
सोऽपि राज्ञो विनाशाय कोपं चक्रे द्विजोत्तमः । तमभ्येत्य त्वरायुक्तो वारयामास वै पिता ॥१२
वत्सालमलमत्यर्थं कोपेनातीव वैरिणा । ऐहिकामुष्मिकहितः शम एव द्विजन्मनाम् ॥१३
कोपस्तपो नाशयति क्रुद्धो भ्रश्यत्यथायुषः । क्रुद्धस्य गलते ज्ञानं क्रुद्धश्चार्थाच्च हीयते ॥१४
न धर्मः क्रोधशीलस्य नार्थं चाप्नोति रोषणः । नालं सुखाय कामाप्तिः कोपेनाविष्टचेतसाम् ॥१५
यदि राज्ञा हता धेनुरियं विज्ञानिना सता । युक्तमत्र दयां कर्तुमात्मनो हितबोधिना ॥१६
अथवाऽजानता धेनुरियं व्यापादिता मम । तत्कथं शापयोग्योऽयं दुष्टं नास्य मनो यतः ॥१७
आत्मनो हितमन्विच्छन्बाधते योऽपरं नरः । कर्तव्या मूढविज्ञाने दया तत्र दयालुभिः ॥१८
अज्ञानतः कृते दण्डं पातयन्ति बुधा यदि । बुधेभ्यस्तमहं मन्ये वरमज्ञानिनो नराः ॥१९
नाद्य शापस्त्वया देयः पार्थिवस्यास्य पुत्रक । स्वकर्मणैव पतिता गौरेषा दुःखमृत्युना ॥२०

उत्तम ब्राह्मण के कुल में जन्म ग्रहण करके जिस प्रकार शूद्र के समान आचरण करते हैं, इस प्रकार किसी क्षत्रिय या वैश्य को भी कोप के वशीभूत नहीं देखा जाता ।८

मार्कण्डेय जी बोले—जब राजा ने इस प्रकार "शूद्रवत्" कहकर तिरस्कार किया, तब अग्निहोत्री 'मौलि' ऋषि के उस पुत्र ने दुर्मति राजा को यह शाप दिया कि शूद्र ही होंगे ।९। और तुमने मेरे पिता की होमधेनु का वध किया है उस कारण तुम्हारी गुरु के मुख से पढ़ी हुई संपूर्ण ब्रह्मविद्या नष्ट हो जायेगी" ।१०। हे विप्र ! राजा ने इस प्रकार शाप को प्राप्त होकर शापव्यथित हृदय से क्रोधपूर्वक प्रतिशाप इच्छा कर हाथ में जल ग्रहण किया ।११। तब द्विजोत्तम मुनिबालक भी राजा के विनाश करने की कामना से अत्यन्त क्रोधित हुआ, इसी समय उसके पिता शीघ्रता सहित आकर उसका निवारण करते हुए कहने लगे ।१२। हे वत्स ! भावीकाल का अहितकारी कोप परित्याग करो । ब्राह्मणों की शान्ति ही इस लोक और परलोक में मंगलकारी है ।१३। कोप तपस्या का नाशकर्ता है और क्रोध होने से आयु क्षय होती है, ज्ञान लोप होता है, और अर्थहीनता अर्थात् दरिद्र होता है ।१४। क्रोधी पुरुष धर्म और अर्थ संचय नहीं कर सकता और कोपपरवशचित्त होने पर कामप्राप्ति सुख संपादन में समर्थ नहीं होती ।१५। यदि राजा ने जानकर ही इस धेनु की हत्या की है तो इनके ऊपर अपना हित चाहने वाले पुरुष को दया ही करनी उचित है ।१६। और यदि अज्ञान से उन्होंने मेरी धेनु को मारा है तो यह किस प्रकार शाप के योग्य हो सकते हैं। क्योंकि इनका अन्तःकरण निर्दोष है।१७। जो मनुष्य अपने हित की इच्छा से दूसरे को दुःख देते हैं उन मूढ़बुद्धि मनुष्यों के ऊपर भी दयालु पुरुषों को दया ही करनी चाहिए।१८। और बिना जाने अपराध करने पर जो बुद्धिमान् पुरुष दण्ड देते हैं, उनकी अपेक्षा मैं अज्ञानी पुरुषों को श्रेष्ठ समझता हूँ।१९। अत एव हे पुत्र ! इस समय तुम राजा को शाप मत दो। गाय अपने कर्मवश होकर ही इस दुःखकर मृत्युमुख में गिरी है।२०

मार्कण्डेय उवाच

पृषध्रोऽपि मुनेः पुत्रं प्रणम्यानम्रकन्धरः । प्रसीदेति जगादोच्चैरज्ञानाद्घातितेति च ॥२१
मया गवयबुद्धया गौरवध्या घातिता मुने । अज्ञानाद्धोमधेनुस्ते प्रसीद त्वं च नो मुने ॥२२

ऋषिपुत्र उवाच

आजन्मनो महीपाल न मया व्याहृतं मृषा । क्रोधश्चाद्य महाभाग नान्यथा मे कदाचन ॥२३
तन्नाहमेनं शक्नोमि शापं कर्तुं नृपान्यथा । यस्ते समुद्यतः शापो द्वितीयः स निर्वातितः ॥२४
इत्युक्तवन्तं तं बालमादाय स पिता ततः । जगाम स्वाश्रमं सोऽपि पृषध्रः शूद्रतामगात् ॥२५

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे वंशानुचरिते पृषध्रोपाख्याने नवाधिकशततमोऽध्यायः ।१०९।

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

नाभागाख्यानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

कारुषाः क्षत्रियाः शूराः करुषस्याभवन्सुताः । ते तु सप्तशतं वीरास्तेभ्यश्चान्ये सहस्रशः ॥१
दिष्टपुत्रस्तु नाभागः स्थितः प्रथमयौवने । ददर्श वैश्यतनयामतीव सुमनोहराम् ॥२
तस्यां संदृष्टमात्रायां मदनाक्षिप्तमानसः । बभूव भूपतनयो निःश्वासाक्षेपतत्परः ॥३

मार्कण्डेय जी बोले—फिर पृषध्र भी मस्तक झुका कर मुनिपुत्र को प्रणाम कर उच्चस्वर से कहने लगे, प्रसन्न होइये, मैंने बिना जाने धेनु की हत्या की है ।२१। हे मुने ! मैंने गवय विचार कर ही अवध्या गौ भी आपकी इस होमधेनु को नष्ट किया है, हे मुने ! आप मुझ पर प्रसन्न होइये ।२२

ऋषि पुत्र ने कहा—हे महापाल ! मैंने जन्म से लेकर कभी मिथ्या नहीं बोला है, इसलिए हे महाभाग ! मेरा यह क्रोध भी कभी मिथ्या नहीं होगा ।२३। अत एव हे नृप ! इस शाप को भी अन्यथा नहीं कर सकता । किन्तु आपको जो दूसरा शाप देने में उद्यत हुआ था, उससे निवृत्त होता हूँ, अर्थात् वह आपको नहीं देता ।२४। बालक के इस प्रकार कहने पर उसके पिता उसको आश्रम में ले गये । इसके उपरान्त वह पृषध्र भी शूद्रता को प्राप्त हुए ।२५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में पृषध्रोपाख्यान वर्णन में एकसौ नवाँ अध्याय समाप्त ।१०९।

अध्याय ११०

नाभागाख्यान नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—महावीर कारुष क्षत्रियगण करुष के पुत्र हैं । संख्या में सात सौ हैं और उन समस्त कारुषों से भी अन्य हजारों वीर उत्पन्न हुए थे ।१। दिष्टपुत्र नाभाग ने प्रथम यौवन के समय में किसी दिन एक अति मनोहर वैश्य की कन्या को देखा ।२। राजपुत्र ने केवलमात्र उसको देखते ही अत्यन्त कामासक्त मन होकर दीर्घ श्वास छोड़ते छोड़ते ।३। उसके पिता के समीप जाकर इस वैश्यकन्या की

तस्याः स गत्वा जनकं वव्रे तां वैश्यकन्यकाम् । ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिं नृपात्मजम् ।।४
तं चाह स पिता तस्या राजपुत्रं कृताञ्जलिः । बिभ्यत्तस्य पितुर्विप्र प्रश्रयावनतं वचः ।।५
भवन्तो भूभुजो भृत्या वयं वः करदायकाः । कथं सम्बन्धमसमैरस्माभिरभिवाञ्छसि ।।६

राजपुत्र उवाच

साम्यं मानुषदेहस्य काममोहादिभिः कृतम् । तथापि काले तैरेव योज्यते मानुषं वपुः ।।७
तथैव चोपकाराय जायन्ते तस्य तान्यपि । अन्यानि चान्ये जीवन्ति भिन्नजातिमतां सताम् ।।८
तथान्यान्यप्ययोग्यानि योग्यतां यान्ति कालतः। योग्यान्ययोग्यतां यान्ति कालवश्या हि योग्यता ।।९
आप्याय्यते यच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितैः । कालं ज्ञात्वा तथा भुक्तं तदेव परिशिष्यते ।।१०
इत्थं ममैषाभिमता तनया दीयतां त्वया । अन्यथा मच्छरीरस्य विपत्तिरुपलक्ष्यते ।।११

वैश्य उवाच

परतन्त्रा वयं त्वं च परतन्त्रो महीभुजः । पित्रा तेनाभ्यनुज्ञातस्त्वं गृहाण ददाम्यहम् ।।१२

राजपुत्र उवाच

प्रष्टव्या सर्वकार्येषु गुरवो गुरुवर्तिभिः । न त्वीदृशेष्वकार्येषु गुरूणां वाक्यगोचरः ।।१३

प्रार्थना की । कारण कि, काम से उनकी पराधीनवृत्ति हो गई थी ।४। हे विप्र ! उसका पिता भी महाराज दिष्ट के भय से भीत हो हाथ जोड़ कामासक्तचित्त राजनन्दन से विनीतभावद्वारा कहने लगा ।५। आप राजा और हम आपको कर देने वाले सेवक हैं, आप ऐसे असमान मनुष्य के साथ किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करने की अभिलाषा करते हो ।६

राजपुत्र ने कहा—मनुष्य देह में काम-क्रोधादि समानभाव से ही विधाता ने निर्मित किये हैं, किन्तु सदा ही जो काम-क्रोधादि मनुष्य देह में रहता है, ऐसा नहीं है किसी-किसी समय में उत्पन्न होता है ।७। और विभिन्न जाति के मनुष्यों में भी काम-क्रोधादि उपकारी होते हैं तो (दूसरे दूसरे से जीते हैं) अर्थात् मनुष्यगण काम क्रोधादि का अवलम्बन नहीं करते, अन्यभाव अवलम्बन करते हैं।८। काम क्रोधादि तथा अन्य और भी किसी के अयोग्य होने पर काल पाकर योग्य होते हैं और योग्य भी अयोग्य होते हैं अत एव योग्यता काल के ही अधीन हैं।९। आहारादि इष्टवस्तु द्वारा जो देह को तृप्त करते हैं वह भी नहीं रहता । केवल योग्यता का नियम बिगाड़नेवाला काल भुक्त करके उनको सुखा देता है ।१०। इसी कारण तुम्हारी कन्या मे मेरी अभिलाषा हुई है, वह मुझको प्रदान करो, नहीं तो मेरे शरीर का विनाश देखोगे ।११

वैश्य ने कहा—मैं पराधीन हूँ आप भी महीपाल के अधीन हैं, अत एव आप पिता की आज्ञा लेकर ग्रहण कीजिये मैं कन्या दूँगा ।१२

राजपुत्र ने कहा—गुरुजनों की आज्ञा में रहने वाले मनुष्यों को यद्यपि संपूर्ण विषयों में ही पूँछना उचित है, किन्तु तो भी ऐसी बात का गुरु के निकट प्रकाशित न करना ही अच्छा है ।१३। कहाँ कामकथा

क्व मन्मथ कथालापो गुरूणां श्रवणं क्व च । विरुद्धमेतदन्यत्र प्रष्टव्या गुरवो नृभिः ॥१४

वैश्य उवाच

एवमेतत्स्मरालापस्तवायं पृच्छ मा गुरुम् । अहं पृच्छामि नालापो मम कामकथाश्रयः ॥१५

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तः सोऽभवन्मौनी राजपुत्रः स चापि तत् । तत्पित्रे सर्वमाचष्ट राजपुत्रस्य यन्मतम् ॥१६
ततस्तस्य पिता विप्रानृचीकादीन्द्विजोत्तमान् । प्रवेश्य राजपुत्रं च यथाख्यानं न्यवेदयत् ॥१७
निवेद्य च ततः प्राह मुनीनेवं व्यवस्थिते । यत्कर्तव्यं तदादेष्टुमर्हन्ति द्विजसत्तमाः ॥१८

ऋषयः ऊचु

राजपुत्रानुरागस्ते यद्यस्यां वैश्यसन्ततौ । तदस्तु धर्म एवैष किं तु न्यायक्रमेण सः ॥१९
मूर्धाभिषिक्ततनयापाणिग्राहोत्सवः पुरा । भवत्वनन्तरं चेयं तव भार्या भविष्यति ॥२०
एवं न दोषो भवति तथेमामुपभुञ्जतः । अन्यथाऽभ्येति ते जातिरुत्कृष्टा बालकानयात् ॥२१

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तस्तदपास्येव वचस्तेषां महात्मनाम् । विनिष्क्रम्य गृहीत्वा तामुद्यतासिरथाब्रवीत् ॥२२
राक्षसेन विवाहेन मया वैश्यसुता हृता । यस्य सामर्थ्यमत्रास्ति स एतां मोचयत्विति ॥२३

का प्रसंग और कहाँ गुरुजनों का श्रवणगोचरत्व अर्थात् सुनना इन दोनों में बड़ा अन्तर है अत एव यह विरुद्ध है इसके अतिरिक्त और सब कार्यों में ही गुरुजनों से पूछना आवश्यक है ।१४

वैश्य बोला—आप सत्य ही कहते हैं कि, गुरु की आज्ञा लेना आपके पक्ष में कामकथा होगी अत एव मैं इस विषय को पूँछता हूँ इसमें फिर कामकथा की संभावना नहीं रहेगी ।१५

मार्कण्डेय जी बोले—जब वैश्य ने यह बात कहीं तब राजपुत्र निरुत्तर हो गये । तब वैश्य ने भी राजपुत्र का अभीष्ट विषय राजा से ज्यों का त्यों कहा।१६। तब राजा ने ऋचीक इत्यादिक द्विजश्रेष्ठगण और पुत्र को उपस्थित करके उपरोक्त समस्त विषय स्पष्ट रूप से ।१७। मुनियों से पूँछा हे द्विजश्रेष्ठगणों ! आप इस उपस्थित विषय में मुझको क्या आज्ञा देते हैं ।१८

ऋषि बोले—हे राजकुमार ! आप यदि वैश्य की कन्या में अनुरागी हुए हैं तो इसमें अधिक अधर्म नहीं है किन्तु न्यायपूर्वक होना आवश्यक है ।१९। पहले मूर्द्धाभिषिक्त (अभिषेकयोग्य राज्ञी) कन्या का पाणिग्रहण करके फिर इस कन्या को आप भार्या बनाइये ।२०। यदि आप इस प्रकार इस कन्या से भोग करेंगे तो आप को किसी दोष के होने की संभावना नहीं है, नहीं तो बालिका हरण के कारण आपको इस श्रेष्ठजाति में नीचा होना पड़ेगा ।२१

मार्कण्डेय जी बोले—जब उन समस्त महात्माओं ने इस प्रकार अभिप्राय प्रकट किया तब उनके वचनों को अस्वीकार करके राजपुत्र बाहर निकला और उस कन्या को ग्रहणपूर्वक खड्ग उद्यत करके कहने लगा ।२२। मैंने इस वैश्यकन्या को राक्षस विवाह द्वारा हरण किया, जिसमें सामर्थ्य हो, मुझसे इसको छुड़ाले।२३। हे द्विज ! तब वैश्य ने कन्या को राजपुत्र के द्वारा हरण होता देख शीघ्रपद से राजा के

ततः स वैश्यस्तां दृष्ट्वा गृहीतां तनयां द्रुतम् । त्राहीति पितरं तस्य प्रययौ शरणं द्विज ।।२४
ततस्तस्य पिता क्रुद्ध आदिदेश बलं महत् । हन्यतां हन्यतां दुष्टो नाभागो धर्मदूषकः ।।२५
ततस्तद्युयुधे सैन्यं तेन भूभृत्सुतेन वै । कृतास्त्रेण तदास्त्रेण तत्प्राचुर्येण पातितम् ।।२६
स श्रुत्वा निहतं सैन्यं राजपुत्रेण भूपतिः । स्वयमेव ययौ योद्धुं स्वसैन्यपरिवारितः ।।२७
ततो युद्धमभूत्तस्य भूभुजः स्वसुतेन यत् । राजपुत्रेण शस्त्रास्त्रैस्तत्रातिशयितः पिता ।।२८
ततोऽन्तरिक्षादागत्य परिव्राट् सहसा मुनिः । प्रत्युवाच महीपालं विरमस्वेति संयुगात् ।।२९
त्वत्पुत्रस्य महाभाग विधर्मोऽयं महात्मनः । तवापि वैश्येन सह न युद्धं धर्मवन्नृप ।।३०
ब्राह्मण्या ब्राह्मणः पूर्वं कुर्वन्दारपरिग्रहम् । ब्राह्मण्यात्सर्ववर्णेषु न हानिमुपगच्छति ।।३१
तथैव क्षत्रियसुतां क्षत्रियः पूर्वमुद्वहन् । इतरे च ततो राजंश्च्यवते न स्वधर्मतः ।।३२
पूर्वं वैश्यस्तथा वैश्यां पश्चाच्छूद्रकुलोद्भवाम् । न हीयते वैश्यकुलादयं न्यायः क्रमोदितः ।।३३
ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्याः सवर्णापाणिसंग्रहम् । अकृत्वाऽन्यभवापाणेः पतन्ति नृप संग्रहात् ।।३४
यस्या यस्या हि हीनायाः कुरुते पाणिसंग्रहम् । अकृत्वा वर्णसयोगं सोऽपि तद्वर्णभाग्भवेत् ।।३५
सोऽयं वैश्यत्वमापन्नस्तव पुत्रः समुन्दधीः । नास्याधिकारो युद्धाय क्षत्रियेण त्वया सह ।।३६
वयमेतन्न जानीमः कारणं नृपनन्दन । यथा भविष्यतीदं च निवर्त्त रणकर्मतः ।।३७

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे वंशानुचरिते नाभागाख्यानं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः ।११०।

समीप उपस्थित हो "रक्षा करो" यह कहकर आश्रय ग्रहण किया ।२४। अनन्तर राजा ने अत्यन्त क्रोधित हो "इस धर्मदूषक नाभाग को शीघ्र वध करो" यह कहकर सेना को आज्ञा दी ।२५। तब सेना ने राजा की आज्ञा से राजपुत्र के संग युद्ध आरंभ किया, किन्तु राजपुत्र ने अस्त्रों के द्वारा उस सेना के अधिकांश को गिरा दिया ।२६। फिर राजपुत्र के द्वारा सेना को निहत हुआ सुन भूपति स्वयं ही अन्यान्य सेना के सहित युद्ध में गये ।२७। अपने पुत्र के सहित भूपति का युद्ध होने पर अस्त्र शस्त्रादि द्वारा राजपुत्र की अपेक्षा पिता की ही अधिकता हुई ।२८। इसी अवसर में आकाश से सहसा परिव्राजक मुनि (नारद) आकर राजा दिष्ट से बोले—हे महीपाल ! युद्ध से निवृत्त होइये ।२९। हे नृप ! आपका पुत्र विधर्मी हो गया है, अत एव वैश्य के संग आपका युद्ध धर्मसंगत नहीं है ।३०। ब्राह्मण प्रथम ब्राह्मणी स्त्री का पाणिग्रहण करके फिर यदि समस्त वर्ण की स्त्री ग्रहण करे, तो भी उनके ब्राह्मणत्व की हानि नहीं होती ।३१। इसी प्रकार क्षत्रिय भी प्रथम क्षत्रिय कन्या से विवाह करके फिर वैश्य और शूद्र की कन्या ग्रहण करने पर भी अपने धर्म से च्युत नहीं होता ।३२। वैश्य भी इसी प्रकार पहले वैश्य कन्या से विवाह करके फिर शूद्र कन्या से विवाह करने पर भी वैश्यकुल से पतित नहीं होता इस भाँति क्रमानुसार नीति चली आती है ।३३। हे नृप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सवर्णा कन्या का पाणिग्रहण बिना किये अन्य वर्णा कन्या से विवाह करने पर जिस जाति की हीन वर्ण कन्या का पाणिग्रहण करते हैं, वह पतित होकर उसी की जाति प्राप्त होते हैं और प्रथम सवर्णा कन्या का पाणिग्रहण न करने से वह दायाधिकारी नहीं हो सकते ।३४-३५। आपका यह मन्दबुद्धि पुत्र वैश्यत्व को प्राप्त हुआ है और आप क्षत्रिय हैं अत एव आपके संग यह युद्ध करने का अधिकारी नहीं है ।३६। हे नृपनन्दन ! इससे किस प्रकारका कारण उत्पन्न होगा वह मैं नहीं जानता । अब आप युद्ध से निवृत्त होइये ।३७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में नाभागाख्यानवर्णन नामक एकसौदसवाँ अध्याय समाप्त ।११०।

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

नाभागचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

निवृत्तोऽसौ ततो भूपः संग्रामात्स्वसुतेन वै । उपयेमे च तां वैश्यतनयां सोऽपि तत्सुतः ।।१
ततः स वैश्यतां प्राप्तः समुपेत्याह पार्थिवम् । भूपाल यन्मया कार्यं तत्ममादिश्यतां मम ।।२

राजोवाच

धर्माधिकरणे युक्ता बाभ्रव्याद्यास्तपस्विनः । यदस्य कर्मधर्माय तद्वदन्तु तथाचर ।।३

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ते मुनयस्तस्य पाशुपाल्यं तथा कृषिम् । वाणिज्यं च परं धर्ममाचचख्युः सभासदः ।।४
तथैव चक्रे स सुतस्तस्य राज्ञो यथोदितम् । तैर्धर्मवादिभिर्धर्मं च्युतस्य निजधर्मतः ।।५
तस्य पुत्रस्ततो जातो नाम्ना ख्यातो भलन्दनः । स मात्रा प्रहितो गच्छद्गोपालो भव पुत्रक ।।६
मात्रा तथा नियुक्तोऽथ प्रणिपत्य स्वमातरम् । राजर्षिमगमन्नीपं हिमवत्पर्वताश्रयम् ।।७
तं समेत्य च जग्राह तस्य पादौ यथाविधि । प्रणिपत्याह चैवैनं राजर्षिं स भलन्दनः ।।८
आदिष्टो भगवन्मात्रा गोपालस्त्वं भवेति वै । मया च पालनीया क्ष्मा तस्याः स्वीकरणं कथम् ।।९

अध्याय १११

नाभागचरित्र का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर पुत्र के संग युद्ध करने से राजा निवृत्त हुए और उनका पुत्र भी उस कन्या से विवाह करके वैश्यत्व को प्राप्त हुआ ।१। तब उसने वैश्य को प्राप्त हो राजा के समीप जाकर पूँछा हे भूपाल ! अब मुझको क्या करना चाहिए, वह आज्ञा कीजिए ।२

राजा ने कहा—बाभ्रव्यादि जो समस्त तपस्वी धर्माधिकरणं में नियुक्त हैं वह जिस कर्म को धर्मानुयायी कहकर आज्ञा दें, उसी के अनुसार आचरण करो ।३

मार्कण्डेय जी बोले—तब उन सभासद मुनियों ने कहा पशुपालन, कृषि और वाणिज्य कर्म ही तुम्हारा उत्तम धर्म है ।४। राजपुत्र भी अपने धर्म से च्युत होकर राजा की आज्ञानुसार उन धर्मवादियों के निर्दिष्ट धर्म का आचरण करने लगे ।५। उनके भलन्दननामक पुत्र हुआ था उसकी माता ने उसको हे वत्स ! गोपाल होओ ।६। यह कहकर गोपालन में नियुक्त किया । तब वह माता की आज्ञा पाकर माता को प्रणामपूर्वक हिमालय पर्वतवासी नीपनामक राजर्षि के निकट गये ।७। भलन्दराजर्षि के समीप उपस्थित हो यथाविधि चरणवन्दनापूर्वक प्रणाम करके कहने लगे ।८। हे भगवन् ! माता ने मुझको "तुम गोपाल होओ" यह आज्ञा दी है, इसलिए पृथ्वीपालन अवश्य ही मेरा कर्त्तव्य है, किन्तु यह गोपालन किस प्रकार स्वीकार करूँ ।९। क्योंकि पृथ्वीपालन मेरे स्वीकार करने पर भी इस समय बलवान् ज्ञातिगण के

मया हि गौः पालनीया सा यदा स्वीकृता भवेत् । आक्रान्ता बलवद्भिः सा दायादैः पृथिवी मम ॥१०
तां यथा प्राप्नुयां पृथ्वीं त्वत्प्रसादादहं विभो । तथादिश करिष्यामि तवाज्ञां प्रणतोऽस्मि ते ॥११

मार्कण्डेय उवाच

ततः स नीपो राजर्षिस्तस्मै निरवशेषतः । भलन्दाय ददौ ब्रह्मन्नस्त्रग्रामं महात्मने ॥१२
प्राप्तास्त्रविद्यः स ययौ पितृव्यतनयान्द्विज । वसुरातादिकान्पुत्रानादिष्टः स महात्मना ॥१३
अयाचत स राज्यार्धं पितृपैतामहोचितम् । ते चोचुर्वैश्यपुत्रस्त्वं कथं भोक्ष्यसि मेदिनीम् ॥१४
ततस्तैर्युद्धमभवद्भलन्दस्यात्मवंशजैः । वसुरातादिभिः क्रुद्धैः कृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभिः ॥१५
स जित्वा तानशेषांस्तु शस्त्रविक्षतसैनिकान् । जहार पृथिवी तेषां धर्मयुद्धेन धर्मवित् ॥१६
स निर्जितारिः सकलां पृथ्वीं राज्यं तथा पितुः । निवेदयामास ततस्तत्पिता जगृहे न च ॥
प्रत्युवाच स तं पुत्रं भार्यायाः पुरतस्तदा ॥१७

नाभाग उवाच

भलन्द राज्यमेतत्ते क्रियतां पूर्वजैः कृतम् ॥१८
अहं न कृतवान्राज्यं नासामर्थ्ययुतः पुरा । वैश्यतां तु पुरस्कृत्य तथैवाज्ञाकरः पितुः ॥१९
कृत्वाऽप्रीतिं पितुरहं वैश्यकन्यापरिग्रहात् । न पुण्यलोकभाग्राजा यावदाभूतसम्प्लवम् ॥२०
उल्लंघ्याज्ञां पुनस्तस्य पालयामि महीं यदि । नास्ति मोक्षस्ततो नूनं मम कल्पशतैरपि ॥२१
न चापि युक्तं त्वद्बाहुनिर्जितं मम मानिनः । राज्यं भोक्तुमनीहस्य दुर्बलस्येव कस्यचित् ॥२२

द्वारा आक्रान्त हो रही है ।१०। अत एव हे विभो ! जिसमें आपके अनुग्रह से मैं पृथ्वीलाभ कर सकूँ इस प्रणतजन को वही आज्ञा दीजिये, मैं उसी का अनुष्ठान करूँगा ।११

मार्कण्डेय जी बोले—हे ब्रह्मन् ! तब राजर्षि नीप ने महात्मा भलन्दन को संपूर्ण अस्त्रविद्या प्रदान की ।१२। हे द्विज ! भलन्दन अस्त्रविद्यालाभ करके राजर्षि की आज्ञाग्रहणपूर्वक पितृव्यपुत्र वसुरात इत्यादि के निकट गये ।१३। और पितृपैतामहिक राज्य के अर्द्धांश की प्रार्थना की । उन्होंने उत्तर दिया, "तुम वैश्यपुत्र हो, पृथ्वीपालन तुमको उचित नहीं है" ।१४। तब अस्त्रलाभ किये क्रोधित भलन्दन का अस्त्रवर्षी ज्ञाति वसुरात इत्यादि के संग युद्धारंभ हुआ ।१५। तब धर्मातमा भलन्द ने धर्मयुद्ध मे ही सब सेना को शस्त्र से घायल करके पराजयपूर्वक पृथ्वी हरण की ।१६। भलन्द ने इस प्रकार शत्रुओं को जीत समस्त पृथ्वी राज्य पिता के चरणों मे समर्पण किया, किन्तु पिता उसको ग्रहण न करके पत्नी के सामने ही पुत्र से कहने लगे ।१७

नाभाग ने कहा—हे वत्स भलन्दन ! पूर्वपुरुषशासित यह राज्य तुम्हीं भोगो ।१८। मैं राज्य पालन में असमर्थ हूँ, ऐसा नहीं है पूर्व में पिता की आज्ञा में रहकर भी पिता की असम्मति से ।१९। वैश्यकन्या ग्रहण करने के कारण वैश्यत्व को प्राप्त हो राज्यभोग का अधिकारी नहीं हो सका । अब मैं फिर यदि पिता की आज्ञा उल्लंघन करके पृथ्वी का पालन करूँ तो मिथ्या आज्ञा के कारण राजा भी प्रलयकाल पर्यन्त पुण्यलोकभागी नहीं हो सकेंगे और शतकल्प में भी मुझको मुक्ति प्राप्त होने की संभावना नहीं है ।२०-२१। और मेरे समान निराकांक्षी मानी मनुष्य को, दुर्बल के परवर्जित विषय भोग के समान

राज्यं कुरु स्वयं पुत्र दायादेभ्यो विमुञ्च वा । ममाज्ञापालनं शस्तं पितुर्न क्षितिपालनम् ॥२३

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रहस्य तद्भार्या सुप्रभा नाम भामिनी । प्रत्युवाच पतिं भूप गृह्यतां राज्यमूर्जितम् ॥२४
न त्वं वैश्यो न चैवाहं जाता वैश्यकुले नृप । क्षत्रियस्त्वं तथैवाहं क्षत्रियाणां कुलोद्भवा ॥२५
पूर्वमासीन्महीपालः सुदेव इति विश्रुतः । तस्याभूच्च सखा राज्ञो धूम्राश्वस्य सुतो नलः ॥२६
स तेन सख्या सहितो जगामाम्रवनं वनम् । पत्नीभिः स समं रन्तुं माधवे मासि पार्थिव ॥२७
ततः पानान्यनेकानि भक्ष्याणि बुभुजे तदा । भार्याभिः सहितस्ताभिस्तेन सख्या समन्वितः ॥२८
ततः पुष्करिणीतीरे ददर्शातिमनोरमाम् । पत्नीं च्यवनपुत्रस्य प्रमतेः पार्थिवात्मजाम् ॥२९
सखा तस्य नलो मत्तो जगृहे तां च दुर्मतिः । पश्यतस्तस्य राज्ञश्च त्रातत्रातेति वादिनीम् ॥३०
आक्रन्दितं निशम्यैव स तस्याः प्रमतिः पतिः । आजगाम त्वरायुक्तः किमेतदिति वै वदन् ॥३१
ततो ददर्श राजानं सुदेवं तत्र संस्थितम् । गृहीतां च तथा पत्नीं नलेन सुदुरात्मना ॥३२
ततः सुदेवं प्रमतिः प्राहायं शास्यतामिति । त्वं च शास्ता भवद्राज्ये दुष्टश्चायं नलो नृप ॥३३

मार्कण्डेय उवाच

तस्यार्तस्य वचः श्रुत्वा सुदेवो नलगौरवात् । प्राह वैश्योऽस्मि गच्छान्यं क्षत्रियं त्राणकारणात् ॥३४

तुम्हारे बाहुबल से जीता हुआ राज्य भोगना भी उचित नहीं है ।२२। तुम स्वयं राज्यपालन करो अथवा ज्ञातिगण को फिर दे सकते हो, मुझको पिता की ही आज्ञा पालन करना उत्तम है, पृथ्वीपालन उचित नहीं है ।२३

मार्कण्डेय जी बोले—तब उनकी 'सुप्रभा' नामक भार्या ने हँसकर कहा हे भूप ! यह समृद्धशाली राज्य ग्रहण कीजिये ।२४। आप वैश्य नहीं है और मैंने भी वैश्यकुल में जन्म नहीं लिया है, आप भी क्षत्रिय है और मैं भी क्षत्रिय के कुल में उत्पन्न हुई हूँ ।२५। पूर्वकाल में सुदेवनामक एक विख्यात राजा थे और राजा धूम्राश्व के पुत्र नलनामक उनके सखा थे ।२६। हे पार्थिव ! एक दिन वैशाखमास में राजा इन सखा और पत्नियों के सहित आम्रवन में वनविहार करने को गये थे ।२७। वहाँ सखा और भार्याओं के सहित अनेक प्रकार से खाने-पीने की वस्तु भोगने लगे ।२८। तदनन्तर पुष्करिणी के तट में च्यवनपुत्र महर्षि प्रमति की मनोहर पत्नी को देखा तब राजा के सखा दुर्मति नल ने उसको ग्रहण किया । यह प्रमतिपत्नी किसी एक राजा की कन्या थी । फिर प्रमतिपत्नी राजा के सन्मुख "रक्षा करो रक्षा करो" यह कहकर रोने लगी ।२९-३०। उसके पति महर्षि प्रमति दूर से रोने का शब्द सुनकर "यह क्या है ? यह क्या है ? कहते-कहते शीघ्र वहाँ आये ।३१। वहाँ आकर देखा कि महाराज सुदेव बैठे हैं और दुरात्मा नल पत्नी को हरण कर रहा है ।३२। तब प्रमति ने सुदेव से कहा, इसको निवृत्त कीजिये आप ही राजा हैं आप ही शासनकर्त्ता हैं, अत एव तुम्हीं द्वारा इस दुष्ट नल को शासन करना उचित है ।३३

मार्कण्डेय जी बोले—प्रमति के इस प्रकार आर्त्तवचन सुनकर राजा सुदेव ने नल के गौरव की रक्षा करने को कहा "मैं वैश्य हूँ, आप रक्षा के लिये किसी क्षत्रिय के निकट जाइये' ।३४। प्रमति ने सुदेव के

ततः स प्रमतिः क्रुद्धस्तेजसा निर्दहन्निव । प्रत्युवाचाथ राजानं वैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम् ।।३५

प्रमतिरुवाच

एवमस्तु भवान्वैश्यः क्षत्रियः क्षतरक्षणात् । क्षत्रियैर्धार्यते शस्त्रं नार्त्तशब्दो भवेदिति ।।
स त्वं न क्षत्रियो भावी वैश्य एव कुलाधमः ।।३६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नाभागचरिते एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ।१११।

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः (११२)

मार्कण्डेय उवाच

तस्मै दत्त्वा ततः शापं नलं क्रुद्धोऽब्रवीद्द्विज । प्रमतिर्भार्गवः कोपात्त्रैलोक्यं निर्दहन्निव ।।१
मदोन्मत्तो यतो भार्यां भवानत्र ममाश्रमे । बलाद्गृह्णाति भस्मत्वं तस्माद्व्रजतु मा चिरम् ।।२
तेनोदाहृतमात्रे च वाक्ये तस्मिंस्तदा नलः । देहजेनाग्निना सद्यो भस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ।।३
दृष्ट्वा प्रभावं तं तस्य सुदेवो विमदस्ततः । प्रणामनम्रः प्राहेदं क्षम्यतां क्षम्यतामिति ।।४
यदुक्तवांस्त्वां भगवन्सुरापानमदाकुलम् । तत्क्षम्यतां प्रसीद त्वं शापोऽयं विनिवर्त्यताम् ।।५
एवं प्रसादितस्तेन प्रमतिः प्राह भार्गवः । गतकोपो नले दग्धे नावनीतेन चेतसा ।।६

वचन से अत्यन्त क्रोधित हो, अपने तेज से मानो दग्ध करते-करते ही "मैं वैश्य हूँ" इस प्रकार उक्तिकारी उस राजा से कहा ।३५

प्रमति बोले—तथास्तु तुम सत्य ही वैश्य हो, क्योंकि आर्त्तमनुष्यों की रक्षा के लिये ही क्षत्रियसंज्ञा की उत्पत्ति है, 'आर्त्त' शब्दपर्यन्त न हो, इसी अभिप्राय से क्षत्रियगण शस्त्रधारण करते हैं, अत एव तुम कभी क्षत्रिय नहीं हो, तुम कुलाधम वैश्य ही होगे ।३६

श्रीमार्कण्डेयपुराण में नाभागचरितवर्णन नामक एकसौग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।१११।

अध्याय ११२

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विज ! भार्गव प्रमति ने इस प्रकार सुदेव को शाप देकर क्रोध से मानो त्रैलोक्य के दग्ध करने में उद्यत हो नल से कहा।१। तुमने मदोन्मत्त होकर जब मेरी भार्या को बलात्कार से ग्रहण किया है, तो तू अभी भस्म हो।२। उनके वचन की समाप्ति होते ही नल स्वदेहज अग्निद्वारा तत्काल भस्म हो गया।३। तब सुदेव प्रमति का इस प्रकार प्रभाव देख, ममता छोड़ प्रणाम करके विनीत भाव से कहने लगे—हे भगवन् ! क्षमा करो।४। हे भगवन् ! सुरापाजनित मत्तता के कारण आप से जो कुछ कहा है, प्रसन्न होकर वह सब क्षमा कीजिये और यह शाप निवृत्त कीजिये।५। राजा के इस प्रकार प्रसन्न करने पर और नल को दग्ध करने पर तब भार्गवप्रमति का कोप शान्त हुआ। फिर वह अनासक्त चित्त से

नान्यथा भावि तद्वाक्यं यन्मया समुदीरितम् । तथापि ते करिष्यामि प्रसन्नोऽनुग्रहं परम् ।।७
भविता वैश्यजातीयो भवान्नास्त्यत्र संशयः । भविता क्षत्रियो वैश्यस्तस्मिन्नेवाशु जन्मनि ।।८
ग्रहीष्यति बलात्कन्यां यदा ते क्षत्रसम्भवः । तदा त्वं क्षत्रियो वैश्यः स्वगृहीतो भविष्यसि ।।९
एवं स वैश्यो भूपाल सुदेवोऽस्मत्पिताभवत् । अहं च या महाभाग तत्सर्वं श्रूयतां त्वया ।।१०
सुरतो नाम राजर्षिः प्रागासीद्गन्धमादने । तपस्वी नियताहारस्त्यक्तसङ्गो वनाश्रयः ।।११
ततः श्येनमुखभ्रष्टां दृष्ट्वैकां शारिकां भुवि । कृपाऽभूज्जनिता मूर्च्छा तथा तस्य महात्मनः ।।१२
ततो मूर्च्छावसानेऽहं तस्योत्पन्ना शरीरतः । स मां दृष्ट्वा च जग्राह स्निह्यमानेन चेतसा ।।१३
यस्मात्कृपाभिभूतस्य मम जातेयमात्मजा । तस्मात्कृपावती नाम्ना भविष्यत्याह स प्रभो ।।१४
ततोऽहमाश्रमे तस्य वर्धमाना दिवानिशम् । सखीभिः सह तुल्याभिर्विचरामि वनानि च ।।१५
ततो मुनेरगस्त्यस्य भ्रातागस्त्य इति श्रुतः । स चिन्वन्कानने वन्यं सखीभिः कोपितोऽशपत् ।।१६
यस्मान्मां वैश्य इत्याह भवती तेन ते शपे । वैश्या भविष्यसीत्युक्ते प्रसाद्योक्तो मया मुनिः ।।
नापराधं कृतवती तवाहं द्विजसत्तम । अन्यासामपराधेन किमर्थं शप्तवानसि ।।१७

ऋषिरुवाच

दुष्टतां दुष्टसंसर्गाददुष्टमपि गच्छति । सुराबिन्दुनिपातेन पञ्चगव्यघटो यथा ।।१८

कहने लगे यद्यपि मेरा वचन अन्यथा होनेवाला नहीं है, किन्तु तो भी प्रसन्नचित्त से आपके ऊपर अनुग्रह करता हूँ ।६-७। अवश्य ही कुछ दिन आपको वैश्यजातीय होना पड़ेगा, किन्तु इस जन्म में ही आप फिर क्षत्रिय हो जायेंगे ।८। जब कोई क्षत्रियकुमार बलपूर्वक आपकी कन्या को ग्रहण करेगा, हे वैश्य ! उसी समय आप फिर स्वयं क्षत्रिय होंगे।९। हे भूपाल ! इस प्रकार मेरे पिता सुदेव वैश्य हुऐ थे। हे महाभाग ! अब मैं अपना भी समस्त परिचय तुमसे कहती हूँ, सुनो ।१०। पूर्वकाल में सुरथनामक राजर्षि गंधमादन पर्वत में वनाश्रयपूर्वक नियताहार और संगरहित हो तपस्या करते थे ।११। एक समय पृथ्वीतल में एक बाज के मुख से छूटी हुई शरिका देखकर कृपा से उन महात्मा को मूर्च्छा उपस्थित हुई ।१२। हे प्रभो ! फिर मूर्च्छा के दूर होने पर मैं उनके शरीर में से उत्पन्न हुई । उन्होंने भी मुझको देखकर स्नेहार्द्रचित्त से ग्रहण कर लिया ।१३। और कहा "मेरे कृपाभिभूत होने पर इस कन्या ने जन्म ग्रहण किया है, अत एव इसका नाम "कृपावती" हुआ।१४। इसके बाद मैं उनके आश्रम में रहकर दिन-दिन बढ़ने लगी और समान अवस्थावाली सखियों के संग सदा वनों में विचरण करने लगी।१५। एक दिन अगस्त्य के समान प्रभावशाली अगस्त्यमुनि के भ्राता वन में पुष्पादि बीनते थे इसी समय में मेरी सखियों ने उनको क्रोधित किया, तब उन्होंने क्रोधित चित्त से मुझको यह कहकर शाप दिया कि, "तुमने मुझको वैश्य कहा है, इस कारण तू मेरे शाप से वैश्य की ही कन्या होगी" यह दारुण शाप सुनकर मैं उनसे कहा—हे द्विजसत्तम ! मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया है, अन्य के अपराध में मुझको शाप क्यों देते हो।१६-१७

ऋषि बोले—केवल एक बूँद सुरा के पड़ने से ही जिस प्रकार पंचगव्यपूर्ण घट दूपित हो जाता है, ऐसे ही निर्दोष मनुष्य भी दुष्ट का संसर्ग होने से दुष्ट हो जाता है।१८। हे बालिके ! तुमने प्रणामपूर्वक "मैं

प्रणिपत्य ह्यनिष्टोऽपि यत्त्वयाहं प्रसादितः । तस्मादनुग्रहं बाले शृणुष्व च करोम्यहम् ॥१९
वैश्ययोनौ यदा जाता त्वं पुत्रं बोधयिष्यसि । राज्याय जातिस्मरतां तदा त्वं समवाप्स्यसि ॥२०
ततो भूयः क्षत्रजातिं प्राप्ता त्वं पतिना सह । दिव्यानवाप्स्यसे भोगानाच्छभीतिरपैतु ते ॥२१
एवं शप्तास्मि राजेन्द्र तेन पूर्वं महर्षिणा । पिता च मे पूर्वमेवं शप्तः प्रमतिनाऽभवत् ॥२२
एवं वैश्यो न राजंस्त्वं न च वैश्यः पिता मम । न त्वं हि मय्यदुष्टायामदुष्टो दुष्यसे कथम् ॥२३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११२।

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः (११३)

भलन्दनवत्सप्रीचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा पुत्रस्य स च पार्थिवः । पुनः प्रोवाच धर्मज्ञस्तां पत्नीं तनयं तथा ॥१
यन्मया पितुरादेशात्त्यक्तं राज्यं न तत्पुनः । ग्रहीष्यामि वृथोक्तेन किमात्मा क्लिश्यते त्वया ॥२
अहं ते सम्प्रदास्यामि करं वैश्यव्रते स्थितः । भुङ्क्ष्वं राज्यमशेषं त्वमिच्छया वा परित्यज ॥३
इत्युक्तः स तदा पित्रा राजपुत्रो भलनन्दनः । चकार राज्यं धर्मेण तद्वद्दारपरिग्रहम् ॥४

दुष्टा नहीं हूँ" कहकर जो मुझे प्रसन्न किया है इस निमित्त मैं तुझ पर अनुग्रह करता हूँ सुन ।१९। तू वैश्ययोनि में उत्पन्न होकर जब अपने पुत्र को राज्यलाभ के लिये नियुक्त करेगी, उसी समय तू जातिस्मरता को प्राप्त होगी ।२०। और पति के संग फिर क्षत्रियत्व को प्राप्त होकर दिव्य भोग में अधिकारिणी होगी । अत एव अब आश्रम में जा और भय परित्याग कर ।२१। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार उन महर्षि के द्वारा पूर्व काल में मैं शाप को प्राप्त हुई थी और प्रमति ने पूर्वकाल में मेरे पिता को भी ऐसा ही शाप दिया था।२२। इसलिए हे राजन् ! आप या मेरे पिता कोई वैश्य नहीं है । इसी भाँति मेरे निर्दोष होने पर मेरे संसर्ग से आप किस प्रकार दूषित होंगे, अत एव ऐसा कभी नहीं, आप सदा अदुष्ट हैं।२३

श्रीमार्कण्डेयपुराण में एकसौबारहवाँ अध्याय समाप्त ।११२।

अध्याय ११३

भलन्दनवत्सप्रीचरित नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—धर्मज्ञराजा ने भार्या और पुत्र के यह वचन सुनकर फिर उनसे पृथक्-पृथक् कहा ।१। पत्नी से कहा मैंने पिता की आज्ञानुसार जिस राज्य को एक बार त्याग दिया है, उसको अब फिर ग्रहण नहीं करूँगा तुम वाक्य व्ययकरके क्यों वृथा कष्ट पाती हो ? ।२। पुत्र से कहा मैं वैश्यवृत्ति में रहकर तुमको वर दूँगा तुम यह संपूर्ण राज्य भोगो, अथवा इच्छा हो तो परित्याग भी कर सकते हैं ।३। राजपुत्र भलन्दन इस प्रकार पिता की आज्ञा पाकर धर्मानुसार राज्यपालन करने लगे और यथासमय में दारपरिग्रह अर्थात् विवाह किया ।४। हे द्विज ! पृथ्वी के समस्त स्थानों में ही उनका रथचक्र (बेरोक

अव्याहतं तस्य चक्रं पृथिव्यामभवद्द्विज । न चाधर्मे मनो भूपास्तस्य सर्वेऽभवन्वशे ।।५
तेनेष्टो विधिवद्यज्ञः सम्यक्शास्ति वसुन्धराम् । स एवैकोऽभवद्भर्त्ता पृथिव्यामरिशासनः ।।६
अजायत सुतस्तस्य वत्सप्रीरिति नामतः । पितातिशयितो येन गुणौघेन महात्मना ।।७
तस्यापि भार्या सौनन्दा विदूरथसुताऽभवत् । पतिव्रता महाभागा सा प्राप्ता तेन शौर्यतः ।।
हत्वा पुरन्दररिपुं कुजृंभं दितिजेश्वरम् ।।८

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवंस्तेन सम्प्राप्ता कुजृंभनिधनात्कथम् । एतदाख्यानमाख्याहि प्रसन्नेनान्तरात्मना ।।९

मार्कण्डेय उवाच

विदूरथोनाम नृपः ख्यातकीर्तिरभूद्भुवि । तस्य पुत्रद्वयं जातं सुनीतिः सुमतिस्तथा ।।१०
एकदा तु वनं यातो मृगयां स विदूरथः । ददर्श गर्तं सुमहद्भूमेर्मुखमिवोद्गतम् ।।११
तं दृष्ट्वा चिन्तयामास किमेतदिति भैरवम् । पातालविवरं मन्ये नैतद्भूमेश्चिरन्तनम् ।।१२
चिन्तयन्निति तत्रासौ ददर्श विजने वने । ब्राह्मणं सुव्रतं नाम तपस्विनमुपागतम् ।।१३
स तं पप्रच्छ च नृपः किमेतदिति विस्मितः । अतिगम्भीरमवनेर्दर्शितान्तर्गतोदरम् ।।१४

ऋषिरुवाच

किन्न वेत्सि महीपाल वागर्थस्त्वं हि मे मतः । ज्ञेयं सर्वं नरेन्द्रेण वर्तते यन्महीतले ।।१५

टोक सधर्म था) उनका मन भी कभी-कभी भ्रममार्ग में अग्रसर नहीं हुआ अत एव संपूर्ण भूपाल ही उनके वशीभूत हुए थे ।५। वह यथाविधि यज्ञानुष्ठान और वसुंधरा का सम्यक् प्रकार पालन करते थे क्रमानुसार सब पृथ्वी में ही उनका शासन व्याप्त होने से वह पृथ्वी के अद्वितीय अधीश्वर हुए थे ।६। वत्स- प्री नामक उनके एक पुत्र हुआ था और उस महात्मा ने गुणों से पिता को विवर्द्धित किया था ।७। विदूरथ कन्या सौनन्दा नामक वत्सप्री की भार्या थी वह इन्द्र के शत्रु कुजृम्भ नामक दैत्यनाथ को मारकर इस पतिव्रता महाभाग्यवती को प्राप्त हुए थे ।८

क्रौष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! वत्सप्री ने किस प्रकार कुजृम्भ को मारकर सौनन्दा को प्राप्त किया था, आप प्रसन्नचित्त से यह आख्यान वर्णन कीजिये ।९

मार्कण्डेय जी बोले—भूमण्डल में विदूरथ नामक विख्यात कीर्ति एक राजा थे, उनके सनीति और सुमित नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ।१०। किसी समय विदूरथ ने मृगया के लिये जाकर पृथ्वी का मुखस्वरूप निकला हुआ एक बड़ा गर्त्त (गड्ढा) देखा ।११। उन्होंने वह भयंकर गर्त्त देखकर पहले विचारा "यह क्या है ?" फिर सोचा "यह कभी पुरातन समय का भूमिविवर नहीं है मुझको बोध होता है कि, यह पाताल विवर है" ।१२। इस प्रकार चिन्ता करते थे, इसी अवसर में उस विजन में सुव्रत नामक एक ब्राह्मण तपस्वी को आता हुआ देखा ।१३। आश्चर्ययुक्त राजा ने उसको पृथ्वी का वह गंभीर विवर दिखाकर "यह क्या है" इस प्रकार कहकर उसका वृत्तान्त पूँछा ।१४

ऋषि ने कहा—हे महीपाल ! आप क्या इसको नहीं जानते ? जब पृथ्वी का समस्त वृत्तान्त ही

दानवः सुमहावीर्यो वसत्युग्रो रसातले । स जृम्भयति यत्पृथ्वीं कुजृम्भः प्रोच्यते ततः ॥१६
क्रियते तेन यत्किञ्चिद्रत्नभूतं महीतले । त्रिदिवे वा नरपते तं कथं वेत्ति नो भवान् ॥१७
सुनन्दं नाम मुशलं त्वष्ट्रा यन्निर्मितं पुरा । तज्जहार स दुष्टात्मा तेन हन्ति रणे रिपून् ॥१८
पातालान्तर्गतस्तेन भिनत्ति वसुधामिमाम् । ततोऽसुराणां सर्वेषां द्वाराणि कुरुतेऽसुरः ॥१९
तेन भिन्नात्र वसुधा सुनन्दमुशलेन तु । भोक्ष्यते वसुधामेतां तमजित्वा कथं भवान् ॥२०
यज्ञान्विध्वंसयत्युग्रो देवानामुपरोधकः । आप्याययति दैतेयान्स बली मुशलायुधः ॥२१
यद्यरिं घातयस्येनं पातालान्तरगोचरम् । ततः समस्तवसुधापतिस्त्वं परमेश्वरः ॥२२
मुशलं तस्य बलिनः सौनन्दं प्रोच्यते जनैः । तथा बलाबलं चैव तं वदन्ति विचक्षणाः ॥२३
तत्तु निर्वीर्यतां याति संस्पृष्टं योषिता नृप । तस्मिन्दिने द्वितीयेऽह्नि वीर्यवत्तदुदीर्यते ॥२४
न स वेत्ति दुराचारः प्रभावं मुशलस्य तम् । योषित्कराग्रसंस्पर्शे दोषं वीर्यविशातनम् ॥२५
एवं तस्य बलं भूप दानवस्य दुरात्मनः । मुशलस्य च ते प्रोक्तं यद्युक्तं तत्समाचर ॥२६
आसन्नमेतद्भवतः पुरस्य पृथिवीपते । कृतं तेन महारन्ध्रं निश्चिन्तः किं भवान्वृथा ॥२७
इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन्पुरं गत्वा महीपतिः । मन्त्रयामास मन्त्रज्ञैः पुरमध्ये तु मन्त्रिभिः ॥२८
यथाश्रुतमशेषं तत्कथयामास मन्त्रिणाम् । मुशलस्य प्रभावं च वीर्यशातनमेव च ॥२९

राजा को जानना उचित है, तो मेरे मत से आप यह सुनने के यथार्थ योग्य पात्र हैं ।१५। महावीर्यशाली उग्र एक दानव रसातल में वास करता है । वह पृथ्वी को जृम्भित (जँभाईवाला) करता है, इस कारण सब उसको कुजृम्भ कहते हैं ।१६। हे नराधिप ! इस भूमण्डल और स्वर्ग राज्य के प्रतिप्राणी में ही जो समस्त घटना होती है, वह सब इसी का कार्य है, आप क्या उसको जानते हैं ? ।१७। पूर्वकाल में विश्वकर्मा ने सुनन्दनामक जो मुशल निर्माण किया था, यह दुरात्मा उसी को ग्रहण करके युद्धकाल में उसी के द्वारा शत्रुओं का हनन करता है ।१८। और उसी के द्वारा ही रसातल में पृथ्वी भेदकर अन्यान्य सब असुरों के लिये द्वार बनाता है ।१९। उस सुनन्द मुशल के आघात से ही इस स्थान को पृथ्वी भेदकर उसने यह विचार किया है । आप उसको बिना पराजय किये किस प्रकार भोग करते हैं ? उग्रकर्मा दैत्य मुशलायुध से अधिक बलशाली होकर यज्ञकर्म का विनाश और देवताओं को व्यथित करता हुआ दैत्यों को तृप्त करता है ।२०-२१। आप यदि पाताल में रहने वाले इस शत्रु को पराजित कर सकेंगे तो आप संपूर्ण पृथ्वी के अधीश्वर होकर परमेश्वर (सम्राट्) होने में समर्थ होंगे ।२२। जनगण इस मुशल को "सौनन्द" कहते हैं और विचक्षण पुरुष भी उसके बलाबल सम्बन्ध में इस प्रकार कहते हैं ।२३। वह मुशल जिस दिन स्त्री के हाथ से छुआ जाय उस दिन वीर्यहीन होता है और उसके दूसरे ही दिन फिर पूर्ववत् बलशाली हो जाता है ।२४। किन्तु वह दुराचारी मुशल का यह प्रभाव और स्त्रीजाति के हस्ताग्रस्पर्श से भी उसके बलहानिरूप दोष की बात नहीं जानता है ।२५। हे राजन् ! दुरात्मा दानव का और मुशल का इस प्रकार बल आप से कहा गया । अब मेरे कहने के अनुसार कार्य कीजिए ।२६। हे महीपते ! तुम्हारे पुर के निकट ही उसने यह भूमिरन्ध्र किया है, फिर आप क्यों निश्चिन्त हो रहे हैं ? ।२७। जब ऋषि इस प्रकार कहकर चले गये तब राजा भी अपने पुर में आये और वहाँ मंत्रज्ञ मंत्रियों से मंत्रणा करने लगे ।२८। मुशल का प्रभाव और वीर्यहानि इत्यादि जो जो सुन आये थे, वह सब मंत्रियों से बताया

तं मन्त्रं क्रियमाणं तु मन्त्रिभिस्तेन भूभृता । तत्पार्श्ववर्तिनी कन्या शुश्रावाथ मुदावती ।।३०
ततः कतिपयाहे तु तां कन्यां वयसान्विताम् । जहारोपवनाद्दैत्यः कुजृम्भः स सखीवृताम् ।।३१
तच्छ्रुत्वा स महीपालः क्रोधपर्याकुलेक्षणः । पुत्रावुवाच त्वरितं गच्छतं वनकोविदौ ।।३२
निर्विन्ध्यायास्तटे गर्तस्तेन गत्वा रसातलम् । स हन्यतां योऽपहर्ता मुदावत्याः सुदुर्मतिः ।।३३

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तौ तत्सुतौ प्राप्य तं गर्त्तं तत्पदानुगौ । युयुधाते कुजृम्भेण स्वसैन्येनातिकोपितौ ।।३४
ततः परिघनिर्स्त्रिशशक्तिशूलपरश्वधैः । बाणैश्चाविरतं युद्धं तेषामासीत्सुदारुणम् ।।३५
ततो मायाबलवता तेन दैत्येन तावुभौ । राजपुत्रौ रणे बद्धौ निहताशेषसैनिकौ ।।३६
तच्छ्रुत्वा स महीपालः प्राहेदं सवसैनिकान् । बद्धपुत्रः परामार्तिमुपेतो मुनिसत्तम ।।३७
यस्तं निहत्य दैतेयं मोचयिष्यति मे सुताम् । तस्याहं सम्प्रदास्यामि तामेवायतलोचनाम् ।।३८
इत्येवं घोषयांचक्रे स राजा स्वपुरे तदा । निराशः पुत्रतनयाबन्धमोक्षाय वै मुने ।।३९
ततः शुश्राव वत्सप्रीर्भलन्दनसुतो हि तत् । आघोष्यमाणं बलवान्कृतास्त्रः शौर्यसंयुतः ।।४०
स चागम्याभिवाद्यैनं प्राह पार्थिवसत्तमम् । विनयावनतो भूत्वा पितुर्मित्रमनुत्तमम् ।।४१
आज्ञापयाशु मामेव तनयौ मोचयामि ते । तवैव तेजसा हत्वा तं दैत्यं तनयां च ते ।।४२

।२९। जब राजा मंत्रियों के संग यह परामर्श कर रहे थे, उनकी कन्या मुदावती भी उस समय पार्श्व में बैठी हुई सब सुन रही थी ।३०। इस घटना के कई दिन बाद ही सखियों के संग मुदावती जब उपवन में थी तब कुजृम्भदैत्य ने उस अवस्थावाली कन्या को उस उपवन से हरण किया ।३१। यह संवाद सुनते ही महीपाल ने क्रोध से नेत्र लाल कर वनप्रदेश के जानने वाले दोनों पुत्रों से कहा, तुम वनप्रदेश के जाननेवाले हो अत एव तुम शीघ्र जाओ ।३२। निर्विन्ध्यानदी के तट में जो गर्त्त है, उसके द्वारा रसातल में जाकर मुदावती के हरण करने वाले दुर्मति को मारो ।३३

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर दोनों राजपुत्र उस गर्त्त पर पहुँचे, उसमें उसके पैरों के अनुसरण से गमन करके अत्यन्तक्रोधपूर्वक अपनी सेनासहित कुजृम्भ के संग युद्ध किया ।३४। उस समय परिघ, निर्स्त्रिश (आयुध विशेष), शक्ति, शूल, फरशे और बाणों के द्वारा उनका अविरत दारुण युद्ध होने लगा ।३५। किन्तु माया के बल से बली दैत्यों ने युद्धस्थल में दोनों राजपुत्रों की संपूर्ण सेना मारकर दोनों को बाँध लिया ।३६। हे मुनिसत्तम ! दोनों पुत्रों के बंधन का सम्वाद जब महीपाल ने सुना तब हृदय में अत्यन्त दुःखित होकर सेना से कहा कि ।३७। जो उस दैत्य को मारकर मेरी कन्या और दोनों पुत्रों को छुड़ायेगा उसको अपनी वही बड़े नेत्रोंवाली मुदावती कन्या दूँगा ।३८। हे मुने ! राजा ने पुत्र, कन्या के छूटने के विषय में निराश होकर अपने नगर में इस प्रकार ढिढोरा पिटवाया था ।३९। बलवान् वीर्यशाली अस्त्रवित् भलन्दनपुत्र वत्सप्री यह घोषणा सुनकर आये और पिता के मित्र पार्थिवसत्तम विदूरथ को प्रणाम करके विनय से नम्र होकर कहा ।४०-४१। "मुझको आज्ञा दीजिये मैं अभी आपके तेज बल से उस दैत्य को मारकर आपकी कन्या और पुत्रों को छुड़ाता हूँ" ।४२

मार्कण्डेय उवाच

स तं मुदा परिष्वज्य प्रियसख्युरथात्मजम् । गम्यतामिति संसिद्धचै वत्सेत्याह स पार्थिवः ॥४३
स्थाने स्थास्यति मे वत्सो यद्येवं कुरुते विधिम् । वत्सैतत्क्रियतामाशु यद्युत्साहि मनस्तव ॥४४

मार्कण्डेय उवाच

ततः सखङ्गः सधनुर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् । जगाम वीर पातालं तेन गर्तेन सत्वरः ॥४५
ततो ज्यास्वनमत्युग्रं स चक्रे पार्थिवात्मजः । येन पातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ॥४६
ततो ज्यास्वनमाकर्ण्य कुजृम्भो दानवेश्वरः । आजगामातिकोपेन स्वसैन्यपरिवारितः ॥४७
ततो युद्धमभूत्तस्य तेन पार्थिवसूनुना । ससैन्यस्य ससैन्येन बलिनो बलशालिना ॥४८
दिनानि त्रीणि स यदा योधितस्तेन दानवः । ततः कोपपरीतात्मा मुसलायाभ्यधावत ॥४९
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैः पूज्यमानः स तिष्ठति । अन्तःपुरे महाभाग प्रजापतिविनिर्मितः ॥५०
ततो विज्ञातमुशलप्रभावा सा मुदावती । पस्पर्श मुशलश्रेष्ठमतिनम्रशिरोधरा ॥५१
पुनर्यावत्स गृह्णाति मुशलं तं महासुरः । तावत्सा वन्दनव्याजात्पस्पर्शानिकशः शुभा ॥५२
ततः स गत्वा युयुधे मुसलेनासुरेश्वरः । व्यर्था मुशलपातास्ते संजग्मुस्तेषु शत्रुषु ॥५३
परमास्त्रे तु निर्वीर्ये सौनन्दे मुशले मुने । अस्त्रैः शस्त्रैश्च दैतेयः सोऽयुध्यत रणेऽरिणा ॥५४
शस्त्रास्त्रैर्नः समस्तस्य राजपुत्रस्य सोऽसुरः । मुशलेन बलं तस्य तच्च तन्व्या निराकृतम् ॥५५

मार्कण्डेय जी बोले—राजा ने मित्र पुत्र वत्सप्री को सहर्ष आलिंगन करके कहा "हे वत्स ! कार्यसिद्धि के लिये जाओ ।४३। यदि यह कार्य कर सको तो तुम्हारे द्वारा यथार्थ मित्र पुत्र का कार्य संपन्न हुआ समझूँगा और हे वत्स ! यदि इस कार्य में तुम्हारा मन अत्यन्त उत्साहपूर्ण हो, तो कार्य को शीघ्र संपादित करो" ।४४

मार्कण्डेय जी बोले—इसके बाद महावीर वत्सप्री खड्ग, धनुष, गोधा और अंगुलित्राण (चर्मका अंगुली में पहना जाता है) इत्यादि धारण कर उसी गर्त्त के द्वारा शीघ्र पद से पाताल में घुसे ।४५। और वहाँ राजपुत्र ने अपने उग्र धनुष के प्रत्यंचा की टंकार की, जिससे संपूर्ण पातालविवर परिपूर्ण हो गया ।४६। दानवपति कुजृम्भ इस धनुष की प्रत्यंचा का शब्द सुनने से अत्यन्त क्रोधित हो अपने सेनासहित आकर उपस्थित हुआ ।४७। तब बलशाली सेना से युक्त राजपुत्र के संग सेना की अधिकाई से बली कुजृम्भा का युद्ध हुआ ।४८। दानव तीन दिन तक उनके संग संग्राम करके क्रोधित चित्त से मूशल लेने को दौड़ा ।४९। हे महाभाग ! प्रजापति निर्मित वह मूशल गंध, माल्य, धूप इत्यादि के द्वारा पूजित होकर अन्तःपुर में रखा रहता था ।५०। मुदावती पहले से ही मूशल का प्रभाव जानती थी, उसने मस्तक झुकाकर उसको स्पर्श कर दिया था ।५१। और जब असुर ने वह मूशल ग्रहण किया तब तक उस सुंदरी ने पूजा के बहाने उसको बारंबार स्पर्श किया था ।५२। इसके उपरान्त असुरपति रणस्थल में उपस्थित हो मूशल के द्वारा युद्ध करने लगा । किन्तु शत्रुओं में मुशलपात व्यर्थ होने लगा ।५३। हे मुने ! सौनन्द परम अस्त्र मुशल के वीर्यहीन होने पर दैत्य अस्त्रशस्त्र द्वारा ही संग्राम में शत्रु के संग युद्ध करने लगा ।५४। किन्तु दैत्यराज पुत्र के समान अस्त्रशस्त्र द्वारा युद्ध में पारदर्शी नहीं था और उसको जो मूशल

ततः पराजित्य स भूपसूनुरस्त्राणि शस्त्राणि च दानवस्य ।
चकार सद्यो विरथं ततश्च सचर्मखड्गः पुनरप्यधावत् ॥५६
तमापतन्तं रभसाऽभ्युदीर्णं विस्पष्टकोपं त्रिदशेन्द्रशत्रुम् ।
शस्त्रेण वह्नेर्भुवि राजपुत्रौ जघान कालानलसप्रभेण ॥५७
स पावकास्त्रेण हृदि क्षतो भृशं तत्याज देहं त्रिदशारिरात्मनः ।
बभूव सद्यश्च महोरगाणां रसातलान्तेषु महानथोत्सवः ॥५८
ततोऽपतत्पुष्पवृष्टिर्महीपालसुतोपरि । जगुर्गन्धर्वपतयो देववाद्यानि सस्वनुः ॥५९
स चापि राजपुत्रस्तं हत्वा तौ नृपतेः सुतौ । मोचयामास तन्वङ्गी तां च कन्यां मुदावतीम् ॥६०
तच्चापि मुसलं तस्मिन्कुजृम्भे विनिपातिते । जग्राह नागाधिपतिरनन्तः शेषसंज्ञितः ॥६१
तस्याश्च परितुष्टोऽसौ शेषः सर्वोरगेश्वरः । मुदावत्या मुदाध्यातमनोवृत्तिस्तपोधनः ॥६२
सुनन्दमुसलस्पर्शं यच्चकार पुनः पुनः । योषित्करतलस्पर्शप्रभावज्ञातिशोभना ॥६३
मुदावत्यास्ततो नाम नागराजस्तदाकरोत् । सुनन्दामिति सानन्दं सौनन्दगुणजं द्विज ॥६४
स चापि राजपुत्रस्तां भ्रातृभ्यां सहितां पितुः । समीपमानिनायाशु प्रणिपत्याह चैव तम् ॥६५
आनीतौ तनयौ तात तथैवेयं मुदावती । तवाज्ञया मयान्यद्यत्कर्तव्यं तत्समादिश ॥६६

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रहर्षसम्पूर्णहृदयः स महीपतिः । साधुसाध्वित्यथाहोच्चैर्वत्स वत्सेति शोभनम् ॥६७

का बल था, वह भी बुद्धिबल से व्यर्थ किया गया था ।५५। अत एव राजपुत्र ने उसके संपूर्ण अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ करके उसको तत्काल रथविहीन किया । तब दैत्य फिर तलवार और ढाल ग्रहण करके दौड़ा हुआ आया ।५६। इन्द्रशत्रु उस दैत्य के क्रोधयुक्त होकर वेगसहित आने पर राजपुत्र ने कालाग्नितुल्य चमकते हुए आग्नेयास्त्रद्वारा उसको वध किया ।५७। देवशत्रु कुजृम्भ ने उस आग्नेयास्त्र से हृदय में अत्यन्त घायल हो जैसे ही प्राण परित्याग किया, उसी समय पातालवासी उरगों में महाउत्सव उपस्थित हुआ ।५८। उस काल राजपुत्र के ऊपर पुष्पवृष्टि होने लगी, गंधर्वों ने संगीत आरंभ किया और समस्त देवबाजे बज उठे ।५९। राजपुत्र वत्सप्री ने भी दैत्य का विनाश करके सुनीति और सुमति नामक दोनों राजपुत्र और राजकन्या क्षीणाङ्गी मुदावती को छुड़ाया ।६०। कुजृम्भ के मारेजाने पर शेषनामक नागराज अनन्त ने उस मूशल को ग्रहण किया ।६१। और हे द्विज ! तपोधन नागराज राजकन्या मुदावती का अभिप्राय समझकर सहर्ष उसके प्रति संतुष्ट हुए ।६२। स्त्री के करतलस्पर्श का प्रभाव जानकर मुदावती ने जो बारम्बार मूशल को स्पर्श किया था ।६३। इस कारण नागराज ने सानन्द मुदावती का सौनन्द मूशल के गुण से 'सुनन्दा' यह नाम रखा ।६४। राजपुत्र ने दोनों भ्राताओं के सहित उस कन्या को शीघ्र पिता के समीप लाकर प्रणामपूर्वक कहा ।६५। हे तात ! आपकी आज्ञानुसार आपके यह दोनों पुत्र और मुदावती को ले आया हूँ, अब मुझको अन्य जो करना होगा, उसकी आज्ञा दीजिये ।६६

मार्कण्डेय जी बोले—तब महीपाल ने प्रतिपूर्ण हृदय हो उच्चस्वर और मधुर वचनों से "साधु वत्स !

सभाजितोऽस्मि त्रिदशैर्वत्साहं कारणैस्त्रिभिः । त्वं जामाता च यत्प्राप्तो यच्चारिर्विनिपातितः ॥६८
आगतान्यक्षतान्यत्र यच्चापत्यानि मे पुनः । तद्गृहाणाद्य शस्तेऽह्नि पाणिमस्या मयोदितम् ॥६९
त्वं राजपुत्र चार्वङ्ग्याः कन्याया दुहितुर्मम । मुदावत्या मुदा युक्तः सत्यवाक्यं कुरुष्व माम् ॥७०

राजपुत्र उवाच

तातस्याज्ञा मया कार्या यद्ब्रवीषि करोमि तत् । त्वमेव तात जानीषे नैवात्राधिकृता वयम् ॥७१

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तयोः स राजेन्द्रश्चक्रे वैवाहिकं क्रमम् । मुदावत्याश्च दुहितुर्भलन्दनसुतस्य वै ॥७२
ततः स तया रेमे वत्सप्रीर्नवयौवनः । रमणीयेषु देशेषु प्रासादशिखरेषु च ॥७३
कालेन गच्छता वृद्धः पिता तस्य भलन्दनः । वनं जगाम वत्सप्रीः स बभूव महीपतिः ॥७४
इयाज यज्ञान्सततं प्रजा धर्मेण पालयन् । पुत्रवत्पाल्यमानास्तु प्रजास्तेन महात्मना ॥७५
ववृधुर्विषये तस्य न चाभूद्वर्णसङ्करः । न दस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीच्च कस्यचित् ॥
नोपसर्गभयं चैव तस्मिञ्छासति भूपतौ ॥७६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भलन्दनवत्सप्रीचरितं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११३।

साधु वत्स !" इस प्रकार कहकर ।६७। फिर कहा हे वत्स ! आज मैं तीन कारणों से देवताओं के द्वारा भी प्रशंसित हुआ हूँ । प्रथम तो तुमको जामातृ प्राप्त किया, दूसरे शत्रु मारा गया ।६८। और तीसरे मेरे पुत्र-कन्या फिर अक्षत शरीर (स्वस्थ शरीर) से यहाँ लौट आये हैं, अत एव हे राजपुत्र ! आज शुभादि ने मेरी आज्ञानुसार सहर्ष शोभनाङ्गी लक्षणयुक्त मेरी इस दुहिता मुदावती का पाणिग्रहण करो, तो मैं सत्यवादी होऊँगा ।६९-७०

राजपुत्र ने कहा—हे तात ! आप की आज्ञा अवश्य ही प्रतिपालन करने योग्य है, अत एव जो आज्ञा देते हो वही करूँगा । हे तात ! आप भी जानते हैं कि, पूज्यपुरुषों की आज्ञा पालन में मैं कभी विमुख नहीं हुआ ।७१

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर राजेन्द्र विदूरथ ने कन्या मुदावती और भलन्दपुत्र वत्सप्री का विवाह कार्य संपादित किया ।७२। तदनन्तर नवयुवक वत्सप्री भी मुदावती के सहित रमणीय देश और प्रसादशिखर में बिहार करने लगे ।७३। कालक्रम में वत्सप्री के पिता भलन्दन वृद्ध होकर वन में चले गये, तब वत्सप्री राजा होकर ।७४। यज्ञानुष्ठान और धर्मानुसार प्रजा का पालन करने लगे । प्रजा उन महात्मा के द्वारा पुत्र के समान पाली जाकर ।७५। उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होने लगी और उनके राज्य में कहीं वर्णसंकर की उत्पत्ति नहीं हुई उनके शासनकाल में चोर, हिंसक जन्तु, दुर्वृत्त कुचाली और अन्यान्य विघ्नों से कोई भय नहीं था ।७६

श्रीमार्कण्डेयपुराण में भलन्दनवत्सप्रीचरित नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।११३।

अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

खनित्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्य तस्यां सुनन्दायां पुत्रा द्वादश जज्ञिरे । प्रांशुः प्रवीरः शूरश्च सुचक्रो विक्रमः क्रमः ।।१
बली बलाकश्चण्डश्च प्रचण्डश्च सुविक्रमः । सुनयश्च महाभागाः सर्वे संग्रामजित्तमाः ।।२
तेषां ज्येष्ठो महावीर्यः प्रांशुरासीन्नराधिपः । इतरे भृत्यवत्तस्य बभूवुर्वशवर्त्तिनः ।।३
तस्य यज्ञे द्विजत्यक्तैरनेकैर्द्रव्यराशिभिः । न्यूनवर्णविसृष्टैश्च सत्यनामा वसुन्धरा ।।४
सम्यक्पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान् । योऽभूद्धनचयः कोशे तेन निष्पादितास्तु ये ।।५
क्रतवः शतं सहस्रास्ते तेषां संख्या न विद्यते । अयुताद्येन कोटीभिर्न च पद्मादिभिर्मुने ।।६
प्रजातिस्तस्य पुत्रोऽभूद्यस्य यज्ञे शतक्रतुः । अवाप्य तृप्तिमतुलां यज्ञभागैः सुरैः सह ।।७
दानवानां सुवीर्याणां जघान नवतीर्नव । बलं च बलिनां श्रेष्ठो जम्भं चासुरसत्तमम् ।।८
अन्यांश्च सुमहावीर्यानाजघानामरद्विषः । प्रजातेस्तनयाः पञ्च खनित्रप्रमुखा मुने ।।९
तेषां खनित्रो राजाभूत्प्रख्यातो निजविक्रमैः । स शान्तः सत्यवाक्छूरः सर्वप्राणिहिते रतः ।।१०
स्वधर्माभिरतो नित्यं वृद्धसेवी बहुश्रुतः । वाग्मी विनयसम्पन्नः कृतास्त्रोऽप्यविकत्थनः ।।११
सर्वलोकप्रियो नित्यमुवाचैतदहर्निशम् । नन्दन्तु सर्वभूतानि स्निह्यन्तु विजनेष्वपि ।।१२

अध्याय ११४

खनित्रचरित्र वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—उस सुनन्दा के गर्भ से वत्सप्री के बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे उनके नाम प्रांशु प्रवीर, शूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम ।१। बल, बलाक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम और स्वरूप थे । यह सब महाभाग और संग्राम जीतने वाले थे ।२। उनमें ज्येष्ठ महावीर प्रांशु राजा हुए थे और अन्यान्य ग्यारह भ्राता भृत्य के समान उनके वशवर्त्ती रहते थे ।३। उनके यज्ञकाल में ब्राह्मणों ने और दूसरी जाति ने अनेकानेक द्रव्य का त्याग किया इसी कारण पृथ्वी ने "वसुन्धरा" यह सार्थक नाम धारण किया था ।४। औरस पुत्र के समान प्रजापालन करके भी उनके राजकोश में जो धन इकट्ठा होता ।५। उसके द्वारा ही जो समस्त असंख्य यज्ञकार्य सम्पादित हुए थे हे मुने ! उनकी अयुत, करोड़, पद्म इत्यादि संख्या द्वारा भी गिनती नहीं हो सकती ।६। प्रांशु के प्रजातिनामक पुत्र हुए थे, उनके यज्ञ में बलिश्रेष्ठ शतक्रतु इन्द्र ने देवताओं के सहित यज्ञ द्वारा तृप्ति लाभ करके महावीर्य शाली (९९) दानव बल और जम्म नामक दोनों असुरराज तथा अन्यान्य महाबली देवताओं के शत्रुओं को मारा था, हे मुने ! खनित्र इत्यादि प्रजाति के पाँच पुत्र थे ।७-९। उनमें खनित्र ही अपने विक्रम द्वारा विख्यात राजा हुए हैं, यह शान्त, सत्यवादी, शूर, सब प्राणियों का हित करने वाले ।१०। स्वधर्मपरायण सदा वृद्धसेवी, बहुशास्त्रदर्शी, वाग्मी, विनयी, अस्त्रज्ञ, अहंकाररहित ।११। और सर्वलोकप्रिय थे, वह सदा ही यह बात कहते "सब प्राणी आनन्द भोगें, विजनस्थान में भी प्रतिमान्

स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु निरातङ्कानि सन्तु च । मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च ॥१३
मैत्रीमशेषभूतानि पुष्यन्तु सकले जने । शिवमस्तु द्विजातीनां प्रीतिरस्तु परस्परम् ॥१४
समृद्धिः सर्ववर्णानां सिद्धिरस्तु च कर्मणाम् । भो लोकाः सर्वभूतेषु शिवा वोऽस्तु सदा मतिः ॥१५
यथात्मनि यथा पुत्रे हितमिच्छथ सर्वदा । तथा समस्तभूतेषु वर्त्तध्वं हितबुद्धयः ॥१६
एतद्वो हितमत्यन्तं को वा कस्यापराध्यते । यत्करोत्यहितं किञ्चित्कस्यचिन्मूढमानसः ॥१७
तं समभ्येति तन्नूनं कर्तृगामिफलं यतः । इति मत्वा समस्तेषु भो लोका हितबुद्धयः ॥१८
सन्तु मा लौकिकं पापं लोकाः प्राप्स्यथ वै बुधाः । यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि ॥१९
यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन्सोऽपि भद्राणि पश्यतु । एवं स्वरूपः पुत्रोऽभूत्खनित्रस्तस्य भूपतेः ॥२०
समस्तगुणसम्पन्नः श्रीमानब्जदलेक्षणः । तेन ते भ्रातरः प्रीत्या पृथग्राज्येषु योजिताः ॥२१
स्वयं च पृथिवीमेतां बुभुजे सागराम्बराम् । प्राच्यां तेन कृतः शौरिर्दक्षिणस्यामुदावसुः ॥२२
दिशि प्रतीच्यां मुनय उत्तरस्यां महारथाः । तेषां तस्य च भूपस्य पृथग्गोत्राः पुरोहिताः ॥२३
बभूवुर्मुनयश्चैव मन्त्रिवंशक्रमागताः । शौरेरत्रिकुलोद्भूतः सुहोत्रो नाम वै द्विजः ॥२४
उदावसोः कुशावर्त्तो गौतमान्वयजोऽभवत् । काश्यपः प्रमतिर्नाम सुनयस्य पुरोहितः ॥२५
महारथस्य वासिष्ठः पुरोधाऽभून्महीभृतः । बुभुजुस्ते स्वराज्यानि चत्वारोऽपि नराधिपाः ॥२६
खनित्रश्चाधिपस्तेषामशेषवसुधाधिपः । तेषु भ्रातृष्वशेषेषु खनित्रः स महीपतिः ॥२७

हो ।१२। सब जीवों का मंगल हो और सभी भयरहित हों प्राणियों की पीडा नष्ट हो, किसी को मनोव्यथा उपस्थित न हो ।१३। और समस्त प्राणी सब के प्रति मैत्रीभाव रखें, ब्राह्मणों का मंगल, परस्पर प्रीति ।१४। संपूर्ण वर्णों की समृद्धि और संपूर्ण कर्मों की सिद्धि संघटित हो, हे जनगण ! तुम्हारी सब प्राणियों में ही सदा मंगलमय बुद्धि प्रवृत्त रहे ।१५। तुम जिस प्रकार अपनी और अपने पुत्र के हित की कामना करते हो, इसी प्रकार सब जीवों के हित की कामना करो ।१६। यही तुम्हारा अत्यन्त हित कारक है, कौन किसके निकट अपराधी होता है, जो कोई मन्दबुद्धि किसी का अहित करता है ।१७। तो उसी का अहित होता है, क्योंकि कर्मफल कर्त्ता को ही भोगना पड़ता है, हे मनुष्यगण ! तुम यह विचारकर समस्त प्राणियों में हितबुद्धि होओ अर्थात् सदैव प्राणियों के हित की चेष्टा करते रहो ।१८। हे बुधगण ! तुम लौकिक पाप में प्रवृत्त न होना । ऐसा करने से तुम पुण्यलोकों को प्राप्त होंगे । जो इस समय मुझसे स्नेह रखता है, पृथ्वी में उसका सदा मंगल हो ।१९। और जो मुझसे द्वेष करता है, वह भी सदा मंगल भोगे । समस्तगुणसंपन्न, पद्मपलाशलोचन राजाके पुत्र वह श्रीमान् खनित्र इस प्रकार थे, वह प्रीतिपूर्वक भ्राताओं को पृथक्-पृथक् राज्य में नियुक्त कर ।२०-२१। स्वयं समुद्रपर्यन्त इस पृथ्वी को पालते-भोगते रहे । शौरि को पूर्वप्रदेश में, उदावसु को दक्षिणदेश में ।२२। पश्चिम में मुनि और उत्तर में महारथी उस राजा के पृथक् गोत्र के पुरोहित ।२३। खनित्र और उनके भ्राताओं के मंत्रिवंश के क्रम से प्राप्त पृथक् गोत्री जो मुनिगण पुरोहित थे उसी के अनुसार अत्रिकुलोत्पन्न सुहोत्र नामक ब्राह्मण शौरि के ।२४। गौतमवंशोत्पन्न कुशावर्त्त उदावसु के काश्यपगोत्रज प्रमति सुनय के ।२५। और वसिष्ठ महारथ के पुरोहित थे । उक्त चारों भाई राजा होकर अपने-अपने राज्य को भोगते थे ।२६। समस्त वसुधाधिपति

प्रजासु च समस्तासु पुत्रेष्विव सदा हितः । एकदा मन्त्रिणा शौरिः स प्रोक्तो विश्ववेदिना ॥२८
विविक्ते पृथिवीपाल किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति नः । यस्येयं पृथिवी कृत्स्ना यस्य भूपा वशानुगाः ॥२९
स राजा तस्य पुत्रश्च तत्पौत्राश्चान्वयस्ततः । इतरे भ्रातरस्तस्य प्राक्स्वल्पविषयाधिपाः ॥३०
तत्पुत्राश्चाल्पकास्तस्मात्तत्पौत्राश्चाल्पकाल्पकाः । कालेन ह्रासमासाद्य पुरुषात्पुरुषान्तरम् ॥३१
कृष्योपजीविनो भूप भवन्तीति तदन्वयाः । नोद्धारं कुरुते भ्राता भ्रातृस्नेहबलार्पणः ॥३२
स्नेहः कः पृथिवीपाल परयोर्भ्रातृपुत्रयोः । तत्पुत्रयोः परतरा मतिर्भवति पार्थिव ॥३३
तत्पुत्रः केन कार्येण प्रीतियुक्तो भविष्यति । अथवा येन तेनैव सन्तोषं कुरुते नृपः ॥३४
क्रियते तत्किमर्थं तु भूपैर्मन्त्रिपरिग्रहः । भुज्यते सकलं राज्यं मया ते मन्त्रिणा सता ॥३५
तत्किं मुधा धारयसे सन्तोषं कुरुते यदि । कार्यनिष्पादकं राज्यं करणं कर्तुरिष्यते ॥३६
राज्यलब्धुश्च ते कार्यं त्वं कर्त्ता करणं वयम् । सोऽस्माभिः करणै राज्यं पितृपैतामहं कुरु ॥
फलप्रदा भविष्यामः परलोकेन ते वयम् ॥३७

राजोवाच

ज्येष्ठो भ्राता महीपालो वयं तस्यानुजा यतः । ततः स भुङ्क्ते पृथिवीं वयं चाल्पवसुन्धराम् ॥३८

खनित्र उनके अधीश्वर थे । महाराज खनित्र सब भाई ।२७। और समस्त प्रजा के प्रति पिता जिस प्रकार पुत्र से व्यवहार करता है, सदा उसी प्रकार हित व्यवहार करते थे । एक दिन मन्त्री विश्ववेदी ने शौरि से कहा ।२८। हे महीपाल ! इस एकान्त समय में मुझे कुछ कहना है । यह समस्त पृथ्वी और भूपालगण जिनके वशीभूत हैं ।२९। वह और उनके पुत्र-पौत्र इत्यादि वंशधर ही राजा होते हैं और उनके अपर भाई प्रथम अल्प राज्य के अधिकारी होते हैं ।३०। क्रमानुसार उनके पुत्र उससे भी अल्प और फिर उनके पौत्र उनकी अपेक्षा भी अल्प राज्य के अधिकारी होते हैं, समय पाकर पुरुषानुक्रम से वह घटते-घटते अन्त में ।३१। उस वंश के मनुष्य खेती से जीविका निर्वाह करते हैं । हे पृथ्वीपाल ! भातृस्नेह में बद्ध होकर भ्राता कभी भ्राता का उद्धार नहीं करता ।३२। फिर उक्त दोनों भ्राताओं के दोनों पुत्र भी परस्पर को पराया विचारते हैं । हे पार्थिव ! उनके पुत्र उत्पन्न होने पर वह उत्पन्न हुआ पुत्र फिर और भी पराया विचारता है ।३३। और किस कार्य के करने से अपना पुत्र सुख में रहे, उस विषयों में ही वह अधिक मन लगाते हैं । और भी जो किसी प्रकार संतोष मात्र राजा का अवलम्बनीय हो ।३४। तो भूपालगण किस प्रयोजन के लिये मंत्रियों को रखते हैं, मेरे समान मंत्री रहने पर आप समस्त राज्य ही भोग सकेंगे ।३५। और मैं यदि चेष्टा करूँ तो क्यों आप वृथा संतोष धारण कर रहे हैं ? राज्य करने वाले का कार्य कर देना ही मंत्री का इष्ट है ।३६। किन्तु उनमें राज्यलाभ कार्य में आप कर्त्ता और मैं कारण हूँ अत एव कारण के द्वारा[1] पितृपैतामहिक राज्यशासन कीजिए । हम इसी लोक में आपको फलदाता होंगे परलोक के फलदाता नहीं होंगे ।३७

राजा ने कहा—महीपालक राजा हमारे ज्येष्ठ हैं और हम उनके अनुज हैं, अत एव वह सब पृथ्वी

---

१. जिसके द्वारा कार्य संपन्न हो, उसी को कारण कहते हैं ।

वयं तु भ्रातरः पञ्च पृथ्वी चैका महामते । अतोऽस्याः पृथगैश्वर्यं कथं कृत्स्नं भविष्यति ॥३९

विश्ववेद्युवाच

एवमेतद्भवत्वत्र यद्येका वसुधा नृप । तां त्वमेवाभिपद्यस्व ज्येष्ठः शास्तु यथा भवान् ॥४०
सर्वाधिपत्यः सर्वेभ्यो भव त्वमखिलेश्वरः । यतन्ते च यथाहं ते तेषामपि हि मन्त्रिणः ॥४१

राजोवाच

ज्येष्ठो राजा यथा प्रीत्या भजतेऽस्मान्सुतानिव । कथं तस्य करिष्यामि ममत्वं जगतीगतम् ॥४२

विश्ववेद्युवाच

राज्ये स्थितः पूजयेथा ज्येष्ठं भूपार्हणैर्धनैः । कनिष्ठज्येष्ठता केयं राज्यं प्रार्थयतां नृणाम् ॥४३

मार्कण्डेय उवाच

तथेति च प्रतिज्ञाते भूभुजा तेन सत्तम । विश्ववेदी ततो मन्त्री तद्भ्रातॄननयद्वशम् ॥४४
तेषां पुरोहितांश्चैव आत्मनः शान्तिकादिषु । नियोजयामास ततः खनित्रस्याभिचारके ॥४५
विभेद तस्य निभृतान्सामदानादिभिस्तथा । चक्रे च परमोद्योगं निजदण्डप्रभावने ॥४६
आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनि कुर्वताम् । पुरोधसां चतुर्णां च जज्ञे कृत्याचतुष्टयम् ॥४७
विकरालं महावक्त्रमतिभीषणदर्शनम् । समुद्यतमहाशूलं प्रभूतमतिदारुणम् ॥४८

भोगते हैं और हम अल्पमात्र पृथ्वी का भाग भोग करते हैं ।३८। हे महामते ! हम पाँच भाई हैं, किन्तु पृथ्वी केवल एक है इस कारण इस पृथ्वी का समस्त ऐश्वर्य हम किस प्रकार पृथक् भाव से भोग करने में समर्थ होंगे ।३९। विश्ववेदी बोले हे नृप ! आपने जो कहा वह सत्य है, पृथ्वी को यदि एक ही मान लिया जाय, तो आप ही उसको ग्रहण कीजिए और सब सब में प्रधान होकर आप ही इस पृथ्वी का शासन कीजिए ।४०। सर्वाधिपत्य लाभ करके सब भाइयों में आप ही अखिलेश्वर होइये, मेरे सामने उनके नियुक्त मंत्री भी इसी प्रकार चेष्टा करते हैं ।४१

राजा ने कहा—ज्येष्ठ भ्राता हमारा पुत्र के समान स्नेहसहित पालन करते चले आते हैं फिर मैं किस प्रकार उन राजा के राज्य में ममता (लोभ) करूँ ? ।४२

विश्ववेदी बोली—आप राज्य अधिकारपूर्वक ज्येष्ठ होकर भाँति-भाँति के सत्कार से पूजा द्वारा उनकी अर्चना कीजिए । अथवा राज्य की चाहना करने वाले मनुष्य को बड़े छोटे का विचार करना निष्प्रयोजन है ।४३

मार्कण्डेय जी बोले—हे सत्तम ! अनन्तर राजा के यह बात स्वीकार करने पर मंत्री विश्ववेदी ने उनके अन्यान्य भ्राताओं को वशीभूत कर लिया ।४४। और उनके पुरोहितों को अपने शान्तिकर्म और खनित्र के आभिचारिक कार्य में नियुक्त किया ।४५। खनित्र के विश्वासी भृत्यों को सामदानादि द्वारा भेदयुक्त करके अपने दण्ड के प्रभाव बढाने में उद्योग करने लगा ।४६। जब चार पुरोहित नित्य अत्युग्र आभिचारिक कार्य करने में प्रवृत्त हुए तब चार कृत्या उत्पन्न हुई ।४७। वह सब कराल देह, विकट वदन और देखने में अति भयंकर थी उनके हाथ में महाशूल उद्यत, देह अतिविशाल और वह अत्यन्त दारुण

ततस्तदागतं तत्र खनित्रो यत्र पार्थिवः । निरस्तं चाप्यदुष्टस्य तस्य पुण्यचयेन तत् ॥४९
कृत्याचतुष्टयं तेषु निपपात दुरात्मसु । पुरोहितेषु भूपानां तथा वै विश्ववेदिनि ॥५०
ततो निहन्त्या निर्दग्धाः कृत्यया ते पुरोहिताः । विश्ववेदी तथा मन्त्री स शौरेर्दुष्टमन्त्रदः ॥५१

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनित्रचरित्रे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।११४।

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

खनित्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः समस्तलोकस्य विस्मयः सोऽभवन्महान् । यदेककालं नेशुस्ते पृथक्पुरनिवासिनः ॥१
ततः शुश्राव निधनं यातान्भ्रातृपुरोहितान् । मन्त्रिणं च तथा भ्रातुर्दग्धं तं विश्ववेदिनम् ॥२
किमेतदिति सोऽतीव विस्मितो मुनिसत्तम । खनित्रोऽभून्महाराजो नाजानात्तच्च कारणम् ॥३
ततो वसिष्ठं पप्रच्छ स राजा गृहमागतम् । यत्कारणं विनेशुस्ते भ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः ॥४
तेन पृष्टस्तदा प्राह यथा वृत्तं महामुनिः । यच्छौरिमन्त्रिणा प्रोक्तं यच्च शौरिरुवाच तम् ॥५
यथा चानुष्ठितं तेन भ्रातॄणां भेदकारि वै । मन्त्रिणा तेन दुष्टेन यच्चक्रुश्च पुरोहिताः ॥६
यन्निमित्तं विनेशुस्ते अपापस्यापकारिणः । पुरोहितास्तस्य राज्ञः शत्रावपि दयावतः ॥७

थीं ।४८। इसके उपरान्त वह चारों कृत्या राजा खनित्र के समीप उपस्थित हुई । किन्तु निष्पाप राजा के पुण्य बल से तेजहत होकर ।४९। वह राजाओं के उन दुरात्मा चारों पुरोहित और विश्ववेदी के निकट लौटकर आई ।५०। तब यह पुरोहित और शौरि को दुष्ट परामर्श देनेवाला मंत्री विश्वेदी कृत्याओं के द्वारा निहत होकर भस्म हो गया ।५१

श्रीमार्कण्डेय पुराण में खनित्रचरित्र वर्णन का एकसौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।११४।

अध्याय ११५

खनित्रचरित्र वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—उस काल समस्त लोकों को ही यह एक महान् आश्चर्य उपस्थित हुआ था कि, पृथक्-पृथक् पुरवासी होकर भी यह किस प्रकार एक ही काल में नाश को प्राप्त हुए ।१। हे मुनिसत्तम ! इसके उपरान्त महाराज खनित्र भ्राता के पुरोहित और भ्राता के मन्त्री विश्ववेदी का दग्ध होकर मरना सुना ।२। इसका कारण ना जान, 'यह क्या हुआ ? इस प्रकार चिन्ता करके अत्यन्त आश्चर्य में हुए ।३। फिर वसिष्ठ जी के घर आने पर जिस कारण भ्राता के मंत्री और पुरोहित नष्ट हुए थे राजा ने वह उनसे पूँछा ।४। जब महामुनि वसिष्ठ जी से इस प्रकार पूछा गया, तब उन्होंने शौरि के मंत्री और शौरि की जो बातचीत हुई थी ।५। उस दुष्ट मंत्री के द्वारा भ्राताओं में भेद साधन करने वाले जो सब कार्य अनुष्ठित हुए थे पुरोहितों ने जो किया था ।६। और शत्रु पर भी दया करने वाले वह पुरोहित जिस कारण

स तच्छ्रुत्वा ततो राजा हा हतोऽस्मीति वै वदन्। निनिन्दात्मानमत्यर्थं वसिष्ठस्याग्रतो द्विज ॥८

राजोवाच

धिङ्मामपुण्यसंस्थानमल्पभाग्यमशोभनम्। दैवदोषकृतं पापं सर्वलोकविगर्हितम् ॥९
मन्निमित्तं विनष्टं तत्तद्‌ब्राह्मणचतुष्टयम्। मत्तः कोऽन्यः पापतरो भविष्यति पुमान्भुवि ॥१०
नाभविष्यं यदि पुमानहमत्र महीतले। ततस्ते न विनश्येयुर्मम भ्रातृपुरोहिताः ॥११
धिग्राज्यं धिक्च मे जन्म भूभुजां महतां कुले। कारणत्वं गतो योऽहं विनाशस्य द्विजन्मनाम् ॥१२
कुर्वन्तः स्वामिनां तेऽथ भ्रातॄणां मम याजकाः। नाशं ययुर्न दुष्टास्ते दुष्टोऽहं नाशकारणे ॥१३
किं करोमि क्व गच्छामि नान्यो मत्तो हि पापकृत्। पृथिव्यामस्ति हेतुत्वं द्विजनाशस्य योगतः ॥१४
इत्थमुद्विग्नहृदयः खनित्रः पृथिवीपतिः। वनं यियासुः पुत्रस्य कृतवानभिषेचनम् ॥१५
अभिषिच्य सुतं राज्ये क्षुपसंज्ञं महीपतिः। भार्याभिस्तिसृभिः सार्धं तपसे स वनं ययौ ॥१६
तत्रागत्वा तपस्तेपे वानप्रस्थविधानवित्। शतानि त्रीणि वर्षाणां सार्द्धानि नृपसत्तमः ॥१७
तपसा क्षीणदेहस्तु राजवर्यो द्विजोत्तम। निगृह्य सर्वस्रोतांसि तत्याजासून्वनेचरः ॥१८
ततः पुण्यान्ययौ लोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान्। अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरवाप्या ये नराधिपैः ॥१९
भार्याश्च तस्य तास्तिस्रः समन्तेनैव तत्यजुः। प्राणानवापुः सालोक्यं तेनैव सुमहात्मना ॥२०

निरपराधी का अपकार करने में उद्यत होकर नष्ट हुए थे, वह सब यथावत् कहा।७। हे द्विज ! राजा यह सब वार्ता सुन "हा हतोस्मि" इस प्रकार कह वसिष्ठ जी के सामने ही अपनी अत्यन्त निन्दा करने लगे।८

राजा बोले—मेरा पुण्यसंचय नहीं है, मैं अल्पभाग और शोभाहीन हूँ, दैव भी मेरे प्रतिकूल है और मैं सर्व लोक में निन्दित तथा पापी हूँ, मुझको धिक्कार है।९। क्योंकि मेरे निमित्त ही चार ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, अत एव मेरी अपेक्षा भूमण्डल में और अधिक पापी मनुष्य कौन है।१०। इस पृथ्वी में यदि पुरुष होकर जन्म ग्रहण नहीं करता, तो फिर मेरे भ्राताओं के पुरोहित नष्ट नहीं होते।११। मैं ही ब्राह्मणों के नाश का कारण हुआ हूँ, अत एव मेरे इस राज्य और महत् राजकुल में मेरे इस जन्म को धिक्कार है।१२। मेरे भ्राताओं के याजकगण प्रभु का प्रयोजन सिद्ध करने के लिये जाकर नष्ट हुये हैं, इसलिए वह दोषी नहीं है, उनके विनाश का कारण होकर मैं ही दोषी हुआ।१३। मैं अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? ब्रह्महत्या का कारण होकर मेरे समान पापकारी पृथ्वी में दूसरा नहीं है।१४। इस प्रकार महीपाल खनित्र ने उद्विग्नचित्त होकर वन जाने की इच्छा से पुत्र को राज्य में अभिषिक्त किया।१५। राजा क्षुप नामक पुत्र को राज्य में अभिषिक्त करके तीन पत्नियों के संग तपस्या के लिये वन में चले गये।१६। नृपसत्तम ! वन में उपस्थित होकर वानप्रस्थ विधानानुसार साढ़े तीन सौ वर्ष तपस्या की थी।१७। इसके उपरान्त हे द्विजोत्तम ! राजकुलतिलक वनवासी उन राजा ने तपस्या द्वारा क्षीण देह होने पर पर सर्व स्रोत्र (इन्द्रियपथ) निरोधकर के प्राणपरित्याग किया।१८। अन्यान्य राजा शत-शत अश्वमेध करके भी जिस लोक को प्राप्त नहीं हो सकते महाराज खनित्र मृत्यु के बाद उसी सर्वाभीष्टप्रद पुण्यलोक को प्राप्त हुए।१९। उनकी तीनों भार्या भी स्वामी के संग प्राण त्याग करके उन महात्मा के संग

एतत्खनित्रचरितं श्रुतं कल्मषनाशनम् । पठतां च महाभाग क्षुपस्यातो निशामय ।।२१

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनित्रचरितसमाप्तिर्नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११५।

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

विविंशचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

क्षुपः खनित्रपुत्रस्तु प्राप्य राज्यं यथा पिता । तथैव पालयामास प्रजाधर्मेण रञ्जयन् ।।१
स दानशीलो यष्टा च यज्ञानामवनीपतिः । समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारादिवर्त्मनि ।।२
एकदा स महीपालो निजस्थागनतो मुने । सूतैरुक्तो ययापूर्वं क्षुपो राजा तथाऽभवत् ।।३
ब्रह्मणस्तनयः पूर्वं क्षुपोऽभूत्पृथिवीपतिः । यादृक्चरितमस्यासीत्तादृक्तस्यैव चेष्टितम् ।।४

राजोवाच

श्रोतुमिच्छामि चरितं क्षुपस्य सुमहात्मनः । यदि तादृङ्मया शक्यं चेष्टितुं तत्करोम्यहम् ।।५

सूता ऊचुः

स चकाराकरान्भूप राजा गोब्राह्मणान्पुरा । षष्ठांशेन कृता चोर्व्यामिष्टिस्तेन महात्मना ।।६

ही समान लोक में गई ।२०। हे महाभाग ! इस प्रकार यह खनित्रचरित्र कहा गया । इसके सुनने या पढ़ने से पापसमूह नष्ट होते हैं । अब क्षुप के चरित्र का वर्णन करता हूँ सुनो ।२१

श्रीमार्कण्डेयपुराण में खनित्रचरित्र वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।११५।

अध्याय ११६

विविंशचरित का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—खनित्र-पुत्र क्षुप राज्य को प्राप्त हो पिता के समान प्रजा का मन प्रसन्न करते हुए धर्मपूर्वक प्रजापालन करने लगे ।१। यह राजा क्षुप भी यज्ञ करने वाले दाता और व्यवहारादि (स्मृति में कहे अठारह विवाद पद) मार्ग में शत्रु-मित्र के प्रति समान भाव वाले हुए थे ।२। हे मुने ! एक समय सूतगणों ने राज्यासन में बैठे राजा से कहा—आप ठीक पूर्ववर्ती क्षुप राजा के समान हैं ।३। ब्रह्मा के पुत्र क्षुप पूर्व में पृथ्वीपति हुए थे, उनके चरित्र और चेष्टा जिस प्रकार थी, आपकी भी वैसी ही है ।४

राजा ने कहा—महात्मा क्षुप का चरित्र सुनने की इच्छा करता हूँ, यदि मैं भी उनके समान आचरण करने में समर्थ हूँ, तो उसकी चेष्टा करूँगा ।५

सूतगण बोले—हे राजन् ! वह महात्मा क्षुप राजा गौ-ब्राह्मण से कर नहीं लेते थे और छठे अंश द्वारा पृथ्वी में यज्ञकार्य सम्पादन करते थे ।६

राजोवाच

तेषां महात्मनां राज्ञां कोऽनुयास्यति मद्विधः । तथाप्युत्कृष्टचेतानां चेष्टासूद्यमवान्भवेत् ।।७
तच्छ्रूयतां प्रतिज्ञा या साम्प्रतं क्रियते मया । क्षुपस्यानुकरिष्यामि महाराजस्य चेष्टितम् ।।८
त्रींस्त्रीन्यज्ञान्करिष्यामि सस्यापाते गतागते । पृथिव्यां चतुरन्तायां प्रतिज्ञेयं कृता मया ।।९
यच्च गोब्राह्मणाः पूर्वमददन्भूभृते करम् । तमेव प्रतिदास्यामि ब्राह्मणानां तथा गवाम् ।।१०

मार्कण्डेय उवाच

इति प्रतिज्ञाय वचः क्षुपस्तत्कृतवांस्तथा । सस्यापाते स यज्ञांस्त्रीनयजद्यजतांवरः ।।११
गोब्राह्मणाः पुरा राज्ञामददद्यं च वै करम् । तावत्संख्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणाय सः ।।१२
तस्य पुत्रोऽभवद्वीरः प्रमथायामनिन्दितः । यस्य प्रतापशौर्याभ्यां कृता वश्या महीभृतः ।।१३
तस्यापि नन्दिनी नाम वैदर्भी दयिताऽभवत् । विविंशं तनयं तस्यां जनयामास स प्रभुः ।।१४
विविंशे शासति महीं महीपाले महौजसि । महीतलमभूद्व्याप्तं निरन्तरतया नरैः ।।१५
ववर्ष काले पर्जन्यो मही सस्यवती तथा । सुफलानि च सस्यानि रसवन्ति फलानि च ।।१६
रसाः पुष्टिकराश्चासन्पुष्टिर्नोन्मादकारिणी । न वित्तनिचया नृणां प्रभूतां मदहेतवः ।।१७
तत्प्रतापेन रिपवो भयमापुर्महामुने । स्वास्थ्यं जनः सुहृद्वर्गो मुदमाप सुपूजितः ।।१८

राजा ने कहा—मेरे समान कौन मनुष्य उन महात्मा के कार्य का अनुकरण कर सकता है ? इसकी संभावना भी नही है किन्तु तो भी ऐसे महात्माओं का आचरण जिस प्रकार उत्कृष्ट है, वैसे आचरण में उद्यम करना उचित है ।७। अत एव मैं जो इस समय प्रतिज्ञा करता हूँ, वह सुनो ! मैं आज से महाराज क्षुप के कार्य का अनुकरण करूँगा ।८। मैंने चारों वर्ण और पृथ्वी में यह प्रतिज्ञा की है कि, खेती के आने वाले उपस्थित और बीतने के काल में तीन-तीन यज्ञ करूँगा ।९। और पूर्व काल में गो ब्राह्मण से राजाओं ने जो कर ग्रहण किया है, वह उनको लौटा दूँगा ।१०

मार्कण्डेय जी बोले—यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ नृप ने इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वैसे ही प्रतिज्ञा की रक्षा की अर्थात् उन याज्ञिक श्रेष्ठ ने सस्य के उपस्थित काल में तीन यज्ञ संपादित किये।११। और गौ ब्राह्मणों ने पहले जिन सब राजाओं को कर दिया था, उतना द्रव्य गौ ब्राह्मण को दे दिया।१२। उनके प्रमथा नामक महिषी के गर्भ से महावीर और सुंदर एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस पुत्र ने अपने शौर्य-वीर्य के बल से सब राजाओं को वशीभूत किया था ।१३। विदर्भराज कुमारी नन्दिनी उनकी पत्नी हुई थी उस महिषी के गर्भ से उन्होंने विविंश नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ।१४। महावीर विविंश नरपति के पृथ्वी शासन काल में महीतल प्रजासमूह से ऐसा व्याप्त हुआ था कि, कहीं भी स्थान नहीं था ।१५। उस समय मेघगण यथाकाल में वर्षा करते और पृथ्वी भी उसी प्रकार सस्य से परिपूर्ण हुई थी। और समस्त सस्यफलशाली, फलरसयुक्त।१६। रसपुष्टि और पुष्टि उन्माद करने वाली नहीं थी। मनुष्य बहुत धन के अधिकारी होकर भी उन्मत्त नहीं होते थे।१७। हे महामुने ! शत्रु उनके प्रभाव से सदा भीत रहकर स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकते थे तथा सुहृद्वर्ग संतुष्ट चित्त से रहते थे।१८। इस प्रकार विविंशराजा अनेकानेक

इष्ट्वा स यज्ञान्सुबहून्सम्यक्सम्पाल्य मेदिनीम् । सङ्ग्रामे निधनं प्राप्य शक्रलोकमितो गतः ।।१९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे विविंशचरितं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।११६।

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

220

खनीनेत्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्य पुत्रः खनीनेत्रो महाबलपराक्रमः । यस्य यज्ञेष्वगायन्त गन्धर्वा विस्मयान्विताः ।।१
खनीनेत्रसमो नान्यो भुवि यज्वा भविष्यति । तेन यज्ञायुते पूर्णे दत्ता पृथ्वी ससागरा ।।२
दत्त्वा च सकलां पृथ्वीं ब्राह्मणानां महात्मनाम् । तपसा द्रव्यमासाद्य मोदयन्साधितेन यः ।।३
यतश्च प्राप्य वित्तर्द्धिमतुलां दातृसत्तमात् । जगृहुर्ब्राह्मणा विप्र नान्यराज्ञः प्रतिग्रहम् ।।४
सप्तषष्टिसहस्राणि सप्तषष्टिशतानि च । सप्तषष्टिं च यो यज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान् ।।५
अपुत्रः स महीपालो मृगयामुपचक्रमे । पुत्रार्थं पितृयज्ञाय मांसकामो महामुने ।।६
अश्वारूढो विना सैन्यमेक एव महावने । बद्धगोधाङ्गुलित्राणो बाणखड्गधनुर्धरः ।।७
तं वाहयन्तं तुरगमन्यतो गहनाद्वनात् । विनिष्क्रम्य मृगः प्राह मां हत्वाभिमतं कुरु ।।८

यज्ञों का अनुष्ठान और भलीभाँति राज्यपालन करते हुए संग्राम में मृत्यु पाकर इन्द्रलोक को प्राप्त हुए थे।१९

श्रीमार्कण्डेयपुराण में विविंशचरित नामक वर्णन का
एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त।११६।

अध्याय ११७

खनीनेत्रचरित्र का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—विविंश के पुत्र महाबलवान् विक्रमशाली खनीनेत्र हुए उनका यज्ञानुष्ठान देखने से विस्मित होकर गंधर्वों ने इस प्रकार गाया था।१। कि, "खनीनेत्र के समान भूमण्डल में अन्य यज्ञ करने वाला नहीं होगा क्योंकि उन्होंने दश हजार यज्ञ संपादन करके सागरपर्यन्त पृथ्वी दान किया है" ।२। महाराज खनीनेत्र ने महात्मा ब्राह्मणों को सब पृथ्वी देकर तपस्या द्वारा अनेक द्रव्यलाभ करके उसको छुड़ाया था।३। हे विप्र ! ब्राह्मणों ने उन देनेवालों में श्रेष्ठ खनीनेत्र के निकट से विपुल धन को प्राप्त हो फिर उन्होंने दूसरे के निकट से दान नहीं लिया।४। उन्होंने तिहत्तर हजार सात सौ सरसठ यज्ञ किये थे और प्रत्येक यज्ञ में बहुत दक्षिणा दी थीं।५। हे महामुने ! एक समय महीपाल खनीनेत्र ने अपुत्र होने के कारण पुत्र की कामना से पितृयज्ञ करने के लिये मांस की इच्छा की थी और वह उस समय गोध और अंगुलित्राण बाँधकर हाथ में धनुष बाण और खड्ग धारणपूर्वक सेना के विना ही अकेले घोड़े पर चढ़कर महावन में मृगया के लिये गये थे।६-७। जब उन्होंने उस गहन वन से दूसरे वन में जाने के लिये घोड़ा दौड़ाया, उस समय एक मृग ने निकलकर कहा—हे महाराज ! मुझको मारकर अपना अभीष्ट संपादन कीजिए।८

राजोवाच

अन्ये मृगाः पलायन्ते महाभीत्या विलोक्य माम् । कथमात्मप्रदानं त्वं मृत्यवे कर्तुमिच्छसि ।।९

मृग उवाच

अपुत्रोऽहं महाराज वृथा जन्मप्रयोजनम् । विचारयन्न पश्यामि प्राणानामिह धारणम् ।।१०

मार्कण्डेय उवाच

अथाभ्येत्य मृगः प्राह तमन्यो वसुधाधिपम् । मृगस्य तस्य प्रत्यक्षमलमेतेन पार्थिव ।।११
घातयस्वेति मां मांसैर्मम कर्म समाचार । यथा कृतार्थता ते स्यान्मम चाप्युपकारि तत् ।।१२
पुत्रार्थं त्वं महाराज स्वपितॄन्यष्टुमिच्छसि । अपुत्रस्यास्य मांसेन लप्स्यसे वाञ्छितं कथम् ।।१३
यादृक्कर्म विनिष्पाद्यं तादृग्द्रव्यमुपाहरेत् । दुर्गन्धैर्न सुगन्धानां गन्धज्ञानविनिर्णयः ।।१४

राजोवाच

वैराग्यकारणं प्रोक्तमनेनापुत्रता मम । कथ्यतां प्राणसंत्यागे यत्ते वैराग्यकारणम् ।।१५

मृग उवाच

बहवो मे सुता भूप बह्व्यो दुहितरस्तथा । यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्ये वसाम्यहम् ।।१६
सर्वसाध्या नरेन्द्रेयं मृगजातिः सुकातरा । तेष्वपत्येषु मे चातिममत्वं तेन दुःखितः ।।१७
मनुष्यसिंहशार्दूलवृकादिभ्यो बिभेम्यहम् । विहीनात्सर्वसत्त्वेभ्यः श्वशृगालादपि प्रभो ।।१८

राजा ने कहा—अन्यान्य मृग मेरे देखने से भीत होकर भागते हैं फिर तू मृत्यु के लिए आत्मप्रदान करने की इच्छा क्यों करता है ? ।९

मृग बोला—हे महाराज ! मैं अपुत्र हूँ, इस कारण अपने जीवन धारण को वृथा विचारता हूँ ।१०

मार्कण्डेय जी बोले—इसी समय में और एक ने उपस्थित होकर पहले मृग के सामने कहा—हे पार्थिव ! इस मृग को लेकर आप क्या करेंगे ।११। मुझको मारकर मेरे मांस से कर्म संपादन कीजिये इससे आपका प्रयोजन सिद्ध होगा और मेरा भी उपकार हो जायगा ।१२। हे महाराज ! आप पुत्र की कामना से पितृयज्ञ करेंगे । किन्तु इस अपुत्र के मांस से किस प्रकार अभिलाषा सिद्ध होगी ।१३। क्योंकि जो कर्म जैसा हो, उसके लिये वैसा ही द्रव्य लाना चाहिए । देखो, दुर्गन्धद्वारा सुगंधित वस्तु का गंधज्ञान निर्णय नहीं हो सकता ।१४

राजा ने कहा—पहले मृग ने कहा है कि, अपुत्रता ही मेरे वैराग्य का कारण है, किन्तु तुमको प्राण परित्याग विषय में वैराग्य क्यों हुआ ? वह कहो ।१५

मृग बोला—हे राजन् ! मेरे पुत्र और कन्या बहुत हैं, उनकी चिन्ता से ही मैं दुःखदावानल में दग्ध होता रहता हूँ ।१६। हे नरेन्द्र ! यह कातर मृगजाति सहज में ही सब जीवों के अधीन हो जाती है, मेरी भी सन्तान के प्रति अधिक ममता है, इस कारण मुझको सदा ही दुःख भोगना पड़ता है ।१७। हे प्रभो ! मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, वृक, अधिक क्या सब जीवों में हीन गीदड़ और कुत्ते आदि से भी मैं डरता रहता

सोऽहं निमित्तं बन्धूनामिमां शून्यां वसुन्धराम् । नृसिंहादिभयात्सर्वामिच्छामि सुनृशंसकृत् ॥१९
तृणान्यन्येऽपि खादन्ति गोऽजावितुरगादिकाः । तांस्तेषां पोषणायाहमिच्छामि निधनं गतान् ॥२०
निष्क्रान्तेषु ततस्तेषु ममापत्येषु वै पृथक् । भवन्ति चिन्ताः शतशो ममत्वावृतचेतसः ॥२१
किं कूटपाशं किं वज्रं वागुरां किं सुतो मम । प्राप्तश्चरन्वने किं वा नृसिंहादिवशं गतः ॥२२
प्राप्तोऽयमेकः सम्प्राप्तास्तेऽवस्थां कीदृशीं मम । साम्प्रतं ते चिरायन्ते ये गताः सुमहावनम् ॥२३
दृष्ट्वा प्राप्तान्ममाभ्याशमहं तानात्मजान्नृप । ईषदुच्छ्वसितः क्षेममिच्छामि रजनीं पुनः ॥२४
प्रभाते दिवसं क्षेममस्तगेऽर्के निशामपि । वाञ्छाम्यहं कदा क्षेमं सर्वकालं भविष्यति ॥२५
एतत्ते कथितं भूप महोद्वेगस्य कारणम् । अतः प्रसादं कुरु मे बाणोऽयं पात्यतां मयि ॥२६
इति दुःखशताविष्टः प्राणान्नाहं त्यजामि यत् । तत्कारणं निबोध त्वं ब्रुवतो मम पार्थिव ॥२७
असूर्यानाम ते लोका यान्गच्छन्त्यात्मघातकाः । यज्ञोपयुक्ताः पशवः सम्प्रयान्त्युच्छ्रितीः प्रभो ॥२८
अग्निः पशुरभूत्पूर्वं पशुरासीज्जलाधिपः । भास्वानथोच्छ्रितीः प्राप्ता यज्ञे निष्ठामुपागताः ॥२९
तन्ममैतां कृपां कृत्वा नय मामुच्छ्रितिं नृप । आत्मनश्चेप्सितं कामं पुत्रलाभादवाप्स्यसि ॥३०

पूर्वमृग उवाच

राजेन्द्र नैष हन्तव्यो धन्योऽयं सुकृती मृगः । बहवस्तनया ह्यस्य हन्तव्योऽहमसन्ततिः ॥३१

हूँ ।१८। इसलिए इन मनुष्य, सिंह इत्यादि के भय से पृथ्वी रहित हो और मैं निर्विघ्न हूँ, सदा यही कामना करता रहता हूँ ।१९। गौ, मेष, बकरी, अश्व इत्यादि पशुओं के तृण भक्षण करने पर पृथ्वी में समस्त तृण शेष होंगे, तो मेरे पुत्र, कन्या खाकर जीवित रहेंगे । इसी कारण उनका पोषण करने के लिये मुझको तृणभोजी पशुओं की मृत्युकामना करनी पड़ती है ।२०। जब मेरे पुत्र कन्या अलग-अलग निकलते हैं, तो स्नेह के वश होकर मुझको सैकड़ों चिन्ता उपस्थित होती हैं ।२१। जान पड़ता है या तो कोई पुत्र कहीं कठिन पाश या वज्र अथवा जाल में पतित हुआ है या सिंहादि के द्वारा नष्ट हो गया है ।२२। और जो एक आता है तो दूसरों की चिन्ता होती है जो महावन में चरने गये हैं, नहीं जानता कि, उनकी वहाँ कैसी अवस्था हो रही है ? ।२३। हे नृप ! पुत्रगण जब मेरे समीप आते हैं, तब उनको देखकर कुछ संतोष प्राप्त होता है, किन्तु उस समय भी समस्त रात्रि के लिये मंगलचिन्ता करता हूँ ।२४। और फिर प्रभात होने पर दिन की और सूर्यास्त होने पर रात्रि की मंगलचिन्ता करता हूँ कि, वह सर्वकाल निरापद अवस्था में रहें, प्रतिक्षण इसी की चिन्ताकरता रहता हूँ ।२५। हे भूप ! यह मैंने उद्वेग का कारण कहा, अब अनुग्रह करके मेरे ही बाण मारिये ।२६। हे पार्थिव ! जिस कारण मैं इस प्रकार सैकडों दुःख से आक्रान्त होकर प्राण परित्याग करने की इच्छा करनेकी इच्छा करता हूँ, वह आप समझिये ।२७। हे प्रभो ! आत्मघाती असूर्य नामक नरक को प्राप्त होते हैं, और यज्ञार्थ में नियुक्त समस्त पशु सद्गतिलाभ करते हैं ।२८। पूर्वकाल में अग्नि, वरुण और सूर्य पशुत्व ग्रहण करके यज्ञकार्य में नियुक्त हुए थे, इसीकारण सद्गति प्राप्त की है ।२९। अत एव हे नृप ! मेरे ऊपर कृपा करके मुझको सद्गति प्रदान कीजिये । ऐसा करने से आपको पुत्र लाभ में अभीष्ट प्राप्ति होगी ।३०

पूर्व मृग ने कहा—हे राजेन्द्र ! यह मृग हत्या के उपयुक्त नहीं है, क्योंकि जिसके बहुत संतान है, वह सुकृती (पुण्यवान्) और धन्य हैं । मैं अपुत्र हूँ अत एव मुझको मारना चाहिए ।३१

उत्तरमृग उवाच

एकदेहभयं यस्य दुःखं धन्यः स वै भवान् । बहूनि यस्य देहानि तस्य दुःखान्यनेकधा ।।३२
एको यदाहमासं तु प्राक्तदा देहजं मम । दुःखमासीन्ममत्वे तु भार्यायास्तदभूद्द्विधा ।।३३
यदाजातान्यपत्यानि तदा यावन्ति तानि वै । तावच्छरीरभूमीनि मम दुःखान्यथाभवन् ।।३४
न कृतार्थो भवाम्यस्य नातिदुःखाय सम्भवः । इह दुःखाय मत्सूतिःपरत्र च विरोधिनी ।।३५
यतो रक्षणपोषार्थमपत्यानां करोमि तत् । चिन्तयामि च सम्भूतिस्तेन मे नरके ध्रुवम् ।।३६

राजोवाच

न वेद्मि किं सन्ततिमान्धन्योऽपुत्रोऽत्र किं मृग । पुत्रार्थश्चायमारम्भो मम दोलायते मनः ।।३७
दुःखाय सन्ततिः सत्यमैहिकामुष्मिकाय तत् । तथाप्यतनयान्यान्ति ऋणानीति श्रुतं मया ।।३८
सोऽहं यतिष्ये पुत्रार्थमृते प्राणिवधं मृग । तपसैव प्रचण्डेन यथापूर्वं महीपतिः ।।३९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनीनेत्रचरितवर्णनं
नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ।११७।

उत्तरमृग बोला—एकमात्र देह के कारण जिसको एकमात्र दुःख उत्पन्न होता है, वह तुम्हारे समान धन्य है किन्तु जिसके देह बहुत हैं, उसको दुःख भी अनेकानेक होते हैं ।३२। प्रथम जब मैं एक था, तब मुझको दुःख भी एक देह का था फिर जब भार्या हुई, तब स्नेहवश यही दुःख दो भाग में विभक्त हुआ ।३३। और अब जितनी संतान उत्पन्न हुई है, देह भी उतने ही भाग में विभक्त हुआ है, इस कारण मुझको अनेक देहजनित दुःख उत्पन्न हुआ है ।३४। तुमको जब अधिक दुःख भोगना नहीं पड़ता तब क्या कृतार्थ नहीं हो ? मेरी संतान इस लोक में भी दुःख का कारण और परलोक में भी विरोधी है ।३५। देखो मैं पुत्रों की रक्षा तथा उनका पोषण करने के लिये जो कुछ करता हूँ, जो कुछ चिन्ता करता हूँ निःसन्देह वह सब नरक में जाने का हेतु स्वरूप है ।३६

राजा ने कहा—हे मृग ! पुत्रवान् और अपुत्र में कौन धन्य हैं, यह मैं नहीं जान सकता, मेरा भी इस कार्य में पुत्र के लिये ही उद्योग है, अत एव मेरा मन अत्यन्त चंचल होता है ।३७। यद्यपि सन्तति के कारण इस लोक और परलोक में दुःख भोगना पड़ता है, यह बात सत्य है किन्तु तो भी मैंने ऐसी नीति सुनी है कि, अपुत्र मनुष्य ऋणी होता है ।३८। अत एव हे मृग ! मैं बिना ही प्राणी का वध किये पूर्वकाल के राजाओं के समान प्रचण्ड तपस्या द्वारा पुत्र प्राप्त होने की चेष्टा करूँ ।३९

श्रीमार्कण्डेयपुराण में खनीनेत्रचरित्र नामक वर्णन का
एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।११७।

(१२२)

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

करन्धमचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स नृपतिर्गत्वा गोमतीं पापनाशिनीम् । तत्र तुष्टाव नियतो भूत्वा देवं पुरन्दरम् ॥१
तप्यमानस्तपश्चोग्रं यतवाक्कायमानसः । तुष्टाव प्रयतः शक्रमपत्यार्थं महीपतिः ॥२
तस्य स्तोत्रेण तपसा भक्त्या चापि सुरेश्वरः । तुतोष भगवानिन्द्रः प्राह चैनं महामुने ॥३
अनेन तपसा भक्त्या स्तोत्रेणोच्चारितेन च । परितुष्टोऽस्मि ते भूप व्रियतां भवता वरः ॥४

राजोवाच

अपुत्रस्य सुतो मेऽस्तु सर्वशस्त्रभृतां वरः । सदा चाव्याहतैश्वर्यो धर्मकृद्धर्मवित्कृती ॥५

मार्कण्डेय उवाच

तथेति चोक्तः शक्रेण राजा प्राप्तमनोरथः । प्रजाः पालयितुं भूप आजगाम निजं पुरम् ॥६
तत्रास्य कुर्वतो यज्ञं सम्यक्पालयतः प्रजाः । अजायत सुतो विप्र तदा शक्रप्रसादतः ॥७
तस्य नाम पिता चक्रे बलाश्व इति भूपतिः । अस्त्रग्राममशेषं च ग्राहयामास तं सुतम् ॥८
पितर्युपरते विप्र सोऽधिराज्ये स्थितो नृपः । स बलाश्वो वशं निन्ये भुवि सर्वमहीक्षितः ॥९
करं च दापयामास सारग्रहणपूर्वकम् । स सर्वभूमिपान्राजा पालयामास च प्रजाः ॥१०
अथाखिलनरेन्द्रास्ते दायादास्तस्य दुर्मदाः । न चाभ्युत्थाय सततं त चास्मै प्रददुः करान् ॥११

अध्याय ११८

करन्धमचरित्र का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर राजा खनीनेत्र पापनाशिनी गोमती के तट पर जाकर संयतेन्द्रिय हो, देवपुरन्दर की स्तुति करने लगे ।१। हे महामुने ! जब महीपति ने काय-मन-वचन से संयत होकर पुत्र की कामना करके इन्द्र की स्तुति की, तब भगवान् सुरेश्वर ने उनकी भक्ति और स्तुति से संतुष्ट होकर उनसे कहा ।२-३। हे भूप ! तुम्हारे इस तप भक्ति और स्तोत्रउच्चारण के द्वारा मैं अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूँ अत एव वर माँगो ।४

राजा ने कहा—मैं अपुत्र हूँ मेरे सब शस्त्रधारियों की अपेक्षा श्रेष्ठ सदा प्रतिबंधरहित ऐश्वर्यवाला धर्मज्ञ, धर्मचारी और कृतकार्य पुत्र हो ।५

मार्कण्डेय जी बोले—जब राजा की प्रार्थना इन्द्र ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार की, तब राजा प्रजापालन के लिये अपने पुर में लौट आये ।६। वह यज्ञानुष्ठान और प्रजापालन करने पर इन्द्र के प्रसाद से उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।७। राजा ने उसका 'बलाश्व' नाम रखा । और उसको संपूर्ण अस्त्र विद्या प्रदान की ।८। हे विप्र ! बलाश्व ने पिता की मृत्यु के उपरान्त साम्राज्येश्वर राजा होकर पृथ्वी के समस्त राजाओं को अपने वशीभूत किया ।९। और सारग्रहणपूर्वक उनसे करग्रहण और प्रजा का सम्यक् प्रकार से पालन करने लगा ।१०। अनन्तर उन समस्त राजा और उनकी दुर्मद ज्ञातिगण ने अभ्युत्थानरूप

व्युत्थिताः स्वेषु राष्ट्रेषु न सन्तोषपरास्ततः । भुवं तस्य नरेन्द्रस्य जगृहुस्ते नराधिपाः ॥१२
स गृहीत्वा स्वकं राज्यं पृथिवीशो बलान्मुने । तस्थौ स्वनगरे भूपैर्विरोधो बहुभिः कृतः ॥१३
समेत्य सुमहावीर्याः ससाधनधनास्ततः । रुरुधुस्तं महीपालं पुरे तत्र नरेश्वराः ॥१४
पुररोधेन तेनाथ कुपितः स महीपतिः । स्वल्पकोशोऽल्पदण्डश्च वैक्लव्यं परमं गतः ॥१५
अपश्यमानः शरणं सबलो द्विजसत्तम । करौ मुखाग्रतः कृत्वा निशश्वासार्तमानसः ॥१६
ततोऽस्य हस्तविवरान्मुखानिलसमाहताः । निर्जग्मुः शतशो योधा रथनागतुरङ्गमाः ॥१७
ततः क्षणेन तत्सर्वं नगरं तस्य भूपतेः । व्याप्तमासीद्बलौघेन सारेणातिबलान्मुने ॥१८
अथ सोऽतिबलौघेन महता तेन संवृतः । निर्मथ्यनगरात्तस्मात्तान्विजिग्ये नराधिपः ॥१९
जित्वा च वशमानीय चकार करदान्पुनः । यथापूर्वं महाभाग महाभाग्यो नरेश्वरः ॥२०
धुतयोः करयोर्जज्ञे यतस्तस्यारिदाहदम् । बलं करन्धमस्तस्मात्स बलाश्वोऽभिधीयते ॥२१
स धर्मात्मा महात्मा च स मैत्रः सर्वजन्तुषु । करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥२२
सम्प्राप्तस्य परामार्त्तिं ददावरिविनाशनम् । बलं धर्मेण चाक्षिप्तमभ्युपेत्य स्वयं नृपम् ॥२३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे करन्धमचरितं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।११८।

सत्कार न देकर कर देना बंद कर दिया ।११। और वह अभ्युत्थानरहित होकर स्वाधीन भाव से राज्यशासन करके ही संतुष्ट नहीं हुए वरन् अन्त में उन्होंने उन नरेन्द्र बलाश्व की अधिकृत भूमि तक ग्रहण कर ली ।१२। पृथ्वीश्वर बलाश्व अनेक राजाओं के संग युद्ध में हीनबल हो अपना राज्यमात्र ग्रहण कर अपनी राजधानी में वास करने लगे ।१३। किन्तु तो भी इन सब साधन और धनसंपन्न महाबलवान् राजाओं ने उनको पुर में घेर लिया ।१४। तब महीपति पुर घिर जाने के कारण अत्यन्त कुपित हुए किन्तु वह बलशाली बलाश्व उस काल अत्यन्त अल्प को और अल्पदण्ड युक्त होने से ।१५। और रक्षा का दूसरा कोई उपाय ने देखकर अति विकल हुए और व्यथित हृदय से दोनों हाथ मुख पर रखकर लम्बी श्वास छोड़ने लगे ।१६। इससे मुख की वायु आहत होकर उसके मध्य से शत-शत योद्धा रथ, हाथी और घोड़े निकले ।१७। हे मुने ! इस प्रकार क्षणकाल में ही बलशाली सर्वोत्तम उस सैन्यसमूह द्वारा भूपति का संपूर्ण नगर व्याप्त हो गया ।१८। अनन्तर उस सब महत् सेना के सहित राजा ने नगर से निकलकर शत्रुओं को जीता ।१९। हे महाभाग ! तब नरपति उनको पराजयपूर्वक वशीभूत और पूर्व के समान कर दे अर्थात् कर देने वाला करके सौभाग्यशाली हुए ।२०। बलाश्व के धूत अर्थात् कम्पित दोनों हाथों के मध्य से जो शत्रुओं को हनन करने वाली सेना उत्पन्न हुई इस कारण बलाश्व 'करन्धम' नाम से विख्यात हुए थे ।२१। करन्धम तीनों लोक में विख्यात, धर्मात्मा, महात्मा और सब प्राणियों में मित्रभावापन्न थे ।२२। वह नृप स्वयं धर्मप्रदत्त बललाभ करके परमआर्त्त मनुष्यों के शत्रुओं का नाश कर देते थे ।२३

श्रीमार्कण्डेयपुराण में एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ।११८।

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अविक्षिच्चरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

वीर्यचन्द्रसुता सुभ्रूर्वीरा नाम शुभव्रता । स्वयंवरे सा जगृहे महाराजं करन्धमम् ।।१
तस्यां पुत्रं स राजेन्द्रो जनयामास वीर्यवान् । अविक्षितमिति ख्यातिमुपेतं जगतीतले ।।२
जाते तस्मिन्सुते राजा स दैवज्ञानपृच्छत । कच्चित्प्रशस्तनक्षत्रे शस्तलग्ने सुतो मम ।।३
कच्चिच्चालोकितं जन्म मम पुत्रस्य शोभनैः । ग्रहैः कच्चिन्न दुष्टानां ग्रहाणां दृक्पथं गतम् ।।४
इत्युक्तास्तेन दैवज्ञास्तमूचुर्नृपतिं ततः । शस्ते मुहूर्ते नक्षत्रे लग्ने चैव सुतस्तव ।।५
समुत्पन्नो महावीर्यो महाभागो महाबलः । भविष्यति महाराज महाराजस्तवात्मजः ।।६
अवैक्षतेमं देवानां गुरुः शुक्रश्च सप्तमः । सोमश्चतुर्थस्तनयं तवैनं समवैक्षत ।।७
उपान्तसंस्थितश्चैव सोमपुत्रोप्यवैक्षत । नावैक्षतेमं सविता न भौमो न शनैश्चरः ।।८
तव पुत्रं महाराज धन्योऽयं तनयस्तव । सर्वकल्याणसम्पत्ति समवेतो भविष्यति ।।९

मार्कण्डेय उवाच

इति दैवज्ञवचनं निशम्य वसुधाधिपः । हर्षपूर्णमनाः प्राह निजस्थानगतस्तदा ।।१०

अध्याय ११९

अविक्षितचरित्र नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विजोत्तम ! स्वयंवरस्थल में सुन्दरी शुभव्रता वीरा नाम्नी वीर्यचन्द्र की कन्या ने महाराज करन्धम को पतित्व में वरण किया था ।१। उन राजेन्द्र ने उसके गर्भ से अवीक्षित नामक जगद्विख्यात वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न किया ।२। उस पुत्र के उत्पन्न होने पर राजा ने ज्योतिषियों से पूँछा कि, मेरे इस पुत्र ने प्रशस्त लग्न और शुभ नक्षत्र में तो जन्मग्रहण किया है ।३। इसके लग्नस्थान में सब शुभग्रहों की दृष्टि तो है ? और यह दुष्टग्रहों की तो दृष्टि में पतित नहीं हुआ ? अर्थात् इस पर दुष्टग्रहों की तो दृष्टि नहीं पड़ी ।४। दैवज्ञगणों ने इस प्रकार पूँछे जाने पर उत्तर दिया—हे महाराज ! आपका पुत्र प्रशस्त मुहूर्त्त, प्रशस्त नक्षत्र और प्रशस्त लग्न में उत्पन्न हुआ है ।५। अत एव हे राजन् ! यह आपका पुत्र महाभाग्यवान्, अत्यन्त वीर्यवान् असीम बलशाली और महाराज होंगे ।६। यह देखिये, इस पुत्र को बृहस्पति और शुक्र सप्तम हैं या सप्तम घर पर देखते हैं और चतुर्थ स्थान को चन्द्र अवलोकन करता है ।७। और ग्यारहवें स्थान में स्थित बुध की इन पर दृष्टि है और आपके पुत्र पर रवि, मंगल तथा शनैश्चर की दृष्टि नहीं है ।८। अत एव हे महाराज ! यह आपके पुत्र धन्य और सर्व कल्याण संपत्तियुक्त होंगे ।९

मार्कण्डेय जी बोले—ज्योतिषीगणों के इस प्रकार वचन सुनकर वसुधेश्वर प्रीतिपूर्ण मन से अपने स्थान पर बैठे हुए कहने लगे ।१०। "बृहस्पति और बुध यह पुत्र को अवलोकन करते हैं, किन्तु रवि, शनि,

अवैक्षतेमं देवानां गुरुः सोमः सितो बुधः । नावैक्षतैनमादित्यो नार्कसूनुर्न भूमिजः ।।११
अवैक्षतेति यत्प्रोक्तं भवद्भिर्बहुशो वचः । अविक्षितेति तेनास्य ख्यातं नाम भविष्यति ।।१२

मार्कण्डेय उवाच

अविक्षितः सुतस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः । अस्त्रग्राममशेषं स कण्वपुत्रादथाग्रहीत् ।।१३
स्वरूपेणातिभिषजौ देवानां पार्थिवात्मजः। बुद्धया वाचस्पतिं कान्त्या शशाङ्कं तेजसा रविम् ।।१४
धैर्येणाब्धिं तथोर्वी च सहिष्णुत्वेन वीर्यवान् । शौर्येण न समस्तस्य कश्चिदासीन्महात्मनः ।।१५
स्वयंवरे तं जगृहे हेमधर्मात्मजा वरा । सुदेवतनया गौरी सुभद्रा बलिनः सुता ।।१६
लीलावती वीरसुता वीरभद्रसुता निभा । भीमात्मजा मान्यवती दम्भपुत्री कुमुद्वती ।।१७
याश्चैनं नाभिनन्दन्ति स्वयंवरकृतक्षणाः । ताश्चापि स बलाद्वीरो जग्राह नृपतेः सुतः ।।१८
निराकृत्य नृपान्सर्वांस्तासां पितृकुलानि च । स्वयं हि वीर्यमाश्रित्य बलवान्स बलोद्धतः ।।१९
एकदा तु विशालस्य विशालाधिपतेः सुताम् । वैशालिनीं स सुदतीं स्वयंवरकृतक्षणाम् ।।२०
परिभूयाखिलान्भूपान्स्वेच्छया न वृतस्तया । बलाज्जग्राह विप्रर्षे यथान्या बलगर्वितः ।।२१
ततस्ते भूभृतः सर्वे बहुशस्तेन मानिना । निराकृताः सुनिर्विण्णाः प्रोचुरन्योन्यमाकुलाः ।।२२
क्षमतां वञ्चनामेतामेकस्माद्बलशालिनाम् । बहूनामेकवर्णानां जन्म धिग्वो महीभृताम् ।।२३
क्षत्रियो यः क्षतात्त्राणं वध्यमानस्य दुर्मदैः । करोति तस्य तन्नाम वृथैवान्ये हि बिभ्रति ।।२४

मंगल नहीं देखते" ।११। आपने वारम्बार "अवैक्षत" शब्द कहा है, अत एव यह पुत्र 'अवीक्षित' नाम से विख्यात होगा ।१२

मार्कण्डेय जी बोले—उनके वेदवेदाङ्गपारग पुत्र अवीक्षित ने कण्वपुत्र से संपूर्ण अस्त्रविद्या ग्रहण की थी ।१३। राजपुत्र ने रूप में देववैद्य दोनों अश्विनीकुमार, बुद्धि में वाचस्पति, कान्ति में शशाङ्क (चन्द्रमा) तेज में सूर्य ।१४। धैर्य में समुद्र, और सहिष्णुता में पृथ्वी को अतिक्रम किया था और कोई पुरुष भी उन महात्मा के समान शौर्यशाली नहीं था ।१५। हेमधर्म की कन्या वरा, सुदेव की कन्या गौरी, बलि की पुत्री सुभद्रा ।१६। वीरभद्र की कन्या निभा, वीरकन्या लीलावती, भीमपुत्री मान्यवती और दम्भकन्या कुमुद्वती ने उनको स्वयंवर में वरण किया था ।१७। और जिन राजकन्याओं ने स्वयंवर में उनको सन्मानित नहीं किया अर्थात् वरण नहीं किया, बलवान् बलोन्मत्त राजपुत्र ने अपने पराक्रम से अन्यान्य राजाओं और उनके पितृकुल को पराजय करके उनको भी बलात्कार से ग्रहण किया ।१८-१९। हे विप्रर्षे ! एक समय वैदेशाधिपति विशालराजा की कन्या सुदती वैशालिनी ने स्वयंवर के समय उनको ।२०। वरने की इच्छा नहीं की, तब उन्होने बल के गर्व से जिस प्रकार अन्यान्य राजकन्याओं को ग्रहण किया, इसी प्रकार समस्त राजाओं को पराजित करके बलात्कार से उसको भी ग्रहण किया ।२१। इससे यह सब राजा मानी अवीक्षित के द्वारा बारम्बार पराजित होकर दुःखचित्त और व्याकुलभाव से परस्पर में कहने लगे ।२२। एकाजाति बलशाली समस्त इकट्ठे राजाओं के सामने एक मात्र वीर ने इस ललना को ग्रहण किया, यह देखकर भी तुम सहन कर गये अत एव तुम्हारे जन्म को धिक्कार है ।२३। दुष्टमनुष्य के मारने पर भी उसकी जो रक्षा करता है, उसी का नाम प्रकृतक्षत्रिय है, अन्य पुरुष क्षत्रिय

आत्मनोऽपि क्षतत्राणं दुष्टादस्मादकुर्वताम् । भवतां क्षत्रियकुले जातानां कीदृशी मतिः ॥२५
उच्चार्यते स्तुतिर्या वः सूतमागधबन्दिभिः । सा सत्या मा वृथा वीरा भवत्वरिविनाशनात् ॥२६
चरतां सा तथैवैषा भूपाश्चारैर्दिगन्तरे । पौरुषाश्रयिणः सर्वे विशिष्टकुलसम्भवाः ॥२७
बिभेति को न मरणात्को युद्धेन विनाऽमरः । विचिन्त्यैतन्न हातव्यं पौरुषं शस्त्रवृत्तिभिः ॥२८
एतन्निशम्य ते भूपा विस्पष्टामर्षपूरिताः । ऊचुः परस्परं सर्वे समुत्तस्थुश्च सायुधाः ॥२९
केचिद्रथानारुरुहुः केचिन्नागांस्तथा हयान् । अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेताः पदातयः ॥३०

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।११९।

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अविक्षिच्चरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति संग्रामसज्जास्ते भूपा भूपसुतस्तथा । निराकृताः सुबहुशस्तत्कालं चाप्यविक्षिता ॥१
ततो बभूव संग्रामस्तस्य तैः सह दारुणः । एकस्य बहुभिर्भूपैर्भूपपुत्रवरैर्मुने ॥२
तेऽसिशक्तिगदाबाणपाणयस्तं सुदुर्मदाः। अभिघ्नन्तो युयुधिरे तैः समस्तैरसावपि ॥३

नाम वृथा धारण करते हैं ।२४। दूसरे की तो बात ही क्या है, तुम लोग इस दुष्ट के हाथ से अपनी रक्षा करने का भी उद्योग नहीं करते क्षत्रियकुल में जन्मग्रहण करके यह तुम्हारी कैसी बुद्धि है ।? ।२५। हे वीरगण ! सूत, मागध और बन्दीगण तुम्हारी जो स्तुति करते हैं, वह वृथा न हो, शत्रुविनाश करके उसको सत्य में परिणत करो ।२६। तुम्हारा "भूप" शब्द दिगन्त में वृथा प्रचारित न हो, तुम सब ने ही श्रेष्ठ कुल में जन्म ग्रहण किया है, अत एव सब ही पौरुषशाली हो ।२७। कौन मनुष्य का भय नहीं करता और युद्ध परित्याग करके ही कौन अमर होता है ? यह सब विचार कर शस्त्रधारी मात्र को ही पौरुष छोड़ना उचित नहीं है ।२८। यह सब वचन सुनकर भूपगण अत्यन्त कुपित हो परस्पर उत्साहपूर्ण बातचीत करने लगे और फिर शस्त्रग्रहण करके उठ खड़े हुए ।२९। कोई रथ-हाथी तथा कोई घोड़े पर चढ़ गये और कोई-कोई क्रोधित चित्त से पदाति होकर अर्थात् पैदल ही अवीक्षित के समीप आये ।३०

श्रीमार्कण्डेयपुराण में अविक्षिच्चरित्रवर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।११९।

अध्याय १२०

अविक्षिच्चरित्र नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—उस काल भी अविक्षित के द्वारा बहुतबार हारे हुए वह राजपुत्र और राजालोग इस प्रकार संग्राम में सुसज्जित हुए ।१। हे मुने ! तब बहुत से उन राजा और राजपुत्रों के संग एकमात्र अविक्षित का दारुण संग्राम होने लगा ।२। वह संपूर्ण दुर्मद राजा असि, शक्ति, गदा और बाण हाथ में लिये उन पर आघात करते-करते युद्ध करने लगे और अविक्षित भी अकेले उनके संग युद्ध करने

स ताञ्छरशतैरुग्रैर्बिभेद नृपनन्दनः । कृतास्त्रो बलवान्बाणैस्ते च तं विभिदुः शितैः ।।४
कस्यचिच्चिच्छिदे बाहुमन्यस्य च शिरोधराम् । हृदि विव्याध चैवान्यमन्यं वक्षस्यताडयत् ।।५
करं चिच्छेद करिणस्तुरगस्य तथा शिरः । रथस्येषां तथैवाश्वान्रथस्यान्यस्य सारथिम् ।।६
बाणानापततश्चक्रे द्विधा बाणैस्तथा द्विषाम् । चिच्छेदान्यस्य खड्गं च धनुरन्यस्य लाघवात् ।।७
तनुत्रेऽपहृते तेन ननाशान्यो नृपात्मजः । अविक्षिताहतश्चान्यः पदातिः प्रजहौ रणम् ।।८
इत्याकुलीकृते तस्मिन्समग्रे राजमण्डले । तस्थुः सप्तशतं वीरा मरणे कृतनिश्चयाः ।।९
आभिजात्यवयःशौर्यलज्जाभारसमन्विताः । निर्जिते सकले सैन्ये पलायनपरायणे ।।१०
तैः समेत्य महीपालैः स तु पुत्रो महीभृतः । युयुधे धर्मयुद्धेन तेन तं नातिकोपितः ।।११
विच्छिन्नयन्त्रकवचान्स तानपि महाबलः । कर्त्तुं व्यवस्थितस्ते च ततः क्रुद्धा महामुने ।।१२
धर्ममुत्सृज्य युयुधुर्युध्यमानेन धर्मतः । नरेन्द्रपुत्राः प्रस्वेदजलक्लिन्नाननाः समम् ।।१३
विव्याध कश्चिद्बाणौघैः कश्चिच्चिच्छेद कार्मुकम् । ध्वजमस्यापरो बाणैश्छित्त्वा भूमावपातयत् ।।१४
जघ्नुरन्ये तथैवाश्वान्बभञ्जुश्चापरे रथम् । गदापातेनाथ चान्ये बाणैः पृष्ठमताडयन् ।।१५
छिन्ने धनुषि सक्रोधः स तदा नृपतेः सुतः । जग्राहासिं तथा चर्म तदप्यन्योन्वपातयत् ।।१६
च्छिन्नासिचर्मा जग्राह स गदां गदिनां वरः । तामप्यन्यः क्षुरप्रेण चिच्छेद कृतहस्तवत् ।।१७

लगे ।३। अस्त्रज्ञ बलवान् नृपनन्दन ने शतशत उग्र बाणों के द्वारा उनको विद्ध किया और वह भी निशित बाणों से उनको बिद्ध करने लगे ।४। राजपुत्र अवीक्षित ने किसी की बाहु और किसी का मस्तक काट डाला, किसी का हृदय विद्ध किया और किसी की छाती में आघात किया ।५। उन्होंने हाँथियों की सूँड़ घोड़ों के मस्तक और किसी के रथ के घोड़े और किसी के सारथी को छेदन किया ।६। शत्रुओं के आते हुए सब बाणों को अपने बाणों से अधबीच में ही दो खण्ड करने लगे और हाथ की लाघवता से किसी का खड्ग तथा किसी का धनुष काट डाला ।७। अवीक्षित किसी राजपुत्र का वर्म (बख्तर) काटने से वह मृत्यु को प्राप्त हुआ और किसी पदातिक ने आहत होकर रणस्थल परित्याग किया ।८। इस प्रकार जब उन्होंने समस्त राजमण्डल को व्याकुल कर दिया और हारी हुई सेना भागने में तत्पर हुई, तब केवल सात सौ वीर अपनी कुलीनता, अवस्था और शौर्य विचार, लज्जापूर्वक मरने में कृतनिश्चय हो रणक्षेत्र में स्थित हो गये ।९-१०। राजपुत्र अत्यन्त क्रोधित हो, उनके समीप आकर, यथाविहित धर्मयुद्ध द्वारा उन सब राजाओं के संग युद्ध करने लगे ।११। हे महामुने ! जब महाबलवान् अवीक्षित उनके अस्त्र कवचादि काटने में कृतसंकल्प हुए ।१२। तब जिनका मुख पसीने में भीग रहा है, ऐसे नरेन्द्रपुत्रगण धर्म त्यागकर उन धर्मयोद्धा के संग युद्ध करनें लगे ।१३। कोई बाणों से विद्ध करने लगा, किसी ने धनुष छेदन किया और किसी ने ध्वजा काटकर पृथ्वी में गिरा दी ।१४। किसी ने घोड़ों को मार डाला, किसी ने रथ तोड़ डाला और किसी ने उनकी पीठ में शस्त्राघात से ताडना की ।१५। धनुष के कटजाने पर नृपनन्दन ने अत्यन्त क्रोध से ढाल तलवार ग्रहण की, किन्तु किसी वीर ने उसको भी काट दिया ।१६। ढाल तलवार के छिन्न होने पर गदायुद्ध में चतुर अवीक्षित ने गदा ग्रहण की, परन्तु लघुहस्त अपर वीर ने क्षुर के समान तीक्ष्णबाण से उसको भी काट डाला ।१७। इसके उपरान्त धर्मयुद्ध से विमुख राजाओं ने उनको घेर लिया

अन्ये शरसहस्रेण शतेनान्ये नराधिपाः । विव्यधुः कोष्ठकीकृत्य धर्मयुद्धपराङ्मुखाः ॥१८
स विह्वलः पपातोर्व्यामेको बहुभिरर्दितः । राजपुत्रा महाभागा बबन्धुस्ते च तं ततः ॥१९
तमधर्मेण ते सर्वे गृहीत्वा नृपतेः सुतम् । विशालेन समं राज्ञा वैदिशं विविशुः परम् ॥२०
हृष्टाः प्रमुदिता बद्धं समादाय नृपात्मजम् । स्वयंवरा च सा कन्या न्यस्ता तेन ततः पुरः ॥२१
पुनः पुनश्च पित्रोक्ता तथापि च पुरोधसा । आलम्ब्यतामिति वरो यस्ते राजसु रोचते ॥२२
यदा सा मानिनी कञ्चिन्न जग्राह वरं मुने । तदा पप्रच्छ दैवज्ञं विवाहार्थं नरेश्वरः ॥२३
विशिष्टतरमेतस्या विवाहाय दिनं वद । अद्यैतदीदृक्सञ्जातं युद्धं विघ्नोपपादकम् ॥२४

मार्कण्डेय उवाच

इति पृष्टो नरेन्द्रेण स दैवज्ञो विमृश्य तत् । दुर्मनाः प्राह विज्ञातपरमार्थो महीपतिम् ॥२५
भविष्यन्त्यपराणीह दिनानि पृथिवीपते । प्रशस्तलग्नयुक्तानि शोभनान्यचिरेण वै ॥२६
करिष्यसि विवाहं त्वं तेषु प्राप्तेषु मानद । अलमेतेन यत्रायं महाविघ्न उपस्थितः ॥२७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२०।

और उनमें कितनों ही ने सहस्र बाणों के द्वारा और कितनों ही ने शतबाणों के द्वारा उनको विद्ध किया ।१८। अकेले राजकुमार बहुतजनों के द्वारा इस प्रकार विद्ध होने से विह्वल होकर पृथ्वी में गिर पड़े तब महाभाग राजपुत्रों ने उनको बाँध लिया ।१९। सब महीपाल उनको अधर्मयुद्ध में ग्रहण कर विशालराज के सहित वैदिशपुर में प्रविष्ट हुए ।२०। उन राजपुत्रों को बंधनपूर्वक ग्रहण करके वह सब हृष्ट और आह्लादित हुए थे तदनन्तर उस स्वयंवरा कन्या और राजपुत्र को उन्होंने विशाल नरपति के सन्मुख स्थापित किया ।२१। इसके बाद हे मुने ! "इन राजाओं में जिसकी अभिलाषा हो उसको ही वरो" उसके पिता और पुरोहितों के इस प्रकार वारम्बार कहने पर ।२२। भी उस कन्या ने जब किसी को भी वर रूप में ग्रहण नहीं किया तब नरेश्वर ने ज्योतिषी लोगों से विवाह के सम्बन्ध में पूँछा ।२३। "आज तो इस प्रकार विघ्नोत्पादक युद्ध उपस्थित हुआ, अत एव इसके विवाह का और कोई उत्तम दिन बताओ" ।२४

मार्कण्डेय जी बोले—जब नरेन्द्र ने ज्योतिषियों से इस प्रकार पूँछा, तब वह उस विषय की चिन्ता करने लगे और वृत्तान्त जानकर दुःखितचित्त हो राजा से कहने लगे ।२५। हे पृथ्वीपते ! इस विवाह का अच्छा लग्नयुक्त और सुन्दर दिन शीघ्र ही उपस्थित होगा ।२६। हे मानद ! उस दिन के उपस्थित होने पर विवाहकार्य सम्पादन किजिये, इस समय विवाह की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस समय ऐसा महाविघ्न उपस्थित हुआ है ।२७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में अविक्षिच्चरित वर्णन नामक
एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२०।

(224)

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अविक्षिच्चरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः शुश्राव तं बद्धं तनयं स करन्धमः । तस्य पत्नी तथा वीरा अन्ये चापि महीभृतः ॥१
तमधर्मेण तनयं बद्धं श्रुत्वा महीपतिः । समन्तैः पृथिवीपालैश्चिरं दध्यौ महामुने ॥२
केचिदूचुर्महीपाला वध्याः सर्वे महीभृतः । यैरेकः संयुगे बद्धः समस्तैस्तैरधर्मतः ॥३
युज्यतां वाहिनी शीघ्रमूचुरन्ये किमास्यते । विशालो बध्यतां दुष्टस्तत्र येऽन्ये समागताः ॥४
अन्ये तथोचुर्धर्मोऽत्र त्यक्तः पूर्वमहीक्षिता । अन्यायेन बलाद्येन गृहीता तमवाञ्छती ॥५
स्वयंवरेष्वशेषेषु तेन राजसुतास्तदा । खिलीकृतास्ततः सर्वे समेत्य स वशीकृतः ॥६
तेषामेतद्वचः श्रुत्वा वीरा वीरप्रजावती । वीरगोत्रसमुद्भूता वीरपत्नी प्रहर्षिता ॥७
उवाच भर्तुः प्रत्यक्षमन्येषां च महीक्षिताम् । भद्रं कृतं भद्रभुजा मम पुत्रेण पार्थिवाः ॥८
गृहीता यद्बलात्कन्या जित्वा सर्वमहीक्षितः । तदर्थं युध्यमानोऽयं बद्ध एको न धर्मतः ॥९
तदप्यस्मत्सुतस्याजौ मन्ये नापचयप्रदम् । एतदेवहि पौरुष्यं यदमर्षवशान्नरः ॥१०
नीतिं न गणयत्येवं जिघांसुरिव केसरी । स्वयंवराय विन्यस्ता मम पुत्रेण कन्यका ॥११

अध्याय १२१

अविक्षिच्चरित नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे महाराज ! करन्धम तथा उनकी पत्नी वीरा और अन्यान्य राजाओं ने राजपुत्र के बँधने का संवाद सुना ।१। हे महामुने ! उनको अधर्मयुद्ध में बँधा सुनकर राजा अपरापर सामन्त राजाओं के संग बहुतकाल तक चिन्ता करते रहे ।२। कोई कोई बोला—जिन बहुत राजाओं ने एकत्र होकर एक मात्र वीर को अधर्मयुद्ध में बाँध लिया है वह सब राजा वध्य अर्थात् मारडालने योग्य हैं ।३। कोई कोई बोला—अब निश्चिन्त क्यों बैठे हो शीघ्र सेना सजाओ, दुष्ट विशाल राजा और वहाँ आये हुए सब राजाओं को बाँध लो ।४। और कोई कोई कहने लगे पहले राजपुत्र ने ही अनभिलाषिणी कन्या को अन्यायरीति से बलपूर्वक ग्रहण करके धर्म त्यागा है ।५। और उन्होंने सब स्वयंवरों में ही इसी प्रकार राजपुत्रों को शत्रु बना लिया है इस कारण उन सबने मिलकर उन्हें बाँध लिया है।६। वीरवंशीयवीरपत्नी वीरप्रसू वीरा उनके यह वचन सुनकर हर्षित अन्तःकरण से।७। स्वामी और अन्यान्य राजाओं के सामने कहने लगी—हे पार्थिवगण ! संपूर्ण राजाओं को पराजित करके मेरे कल्याणास्पद पुत्र ने जो बलात्कार से कन्याग्रहण की है वह उत्तम ही किया है इसीलिये अधर्मयुद्ध में अकेले पुत्र को राजाओं ने बाँध लिया है ।८-९। मुझको बोध होता है कि, इससे भी मेरे पुत्र की कोई हानि नहीं हुई, यही पुरुषार्थ है जो क्रोध के वशीभूत होकर मनुष्य ।१०। मारने की इच्छावाले सिंह के समान अधर्म से मनुष्य की नीति को इस प्रकार नहीं गिनता है, अनेकानेक सम्मानित राजाओं के सामने बलात्कार से

बह्वचो गृहीता भूपानां पश्यतामतिमानिनाम् । क्व क्षत्रियकुले जन्म क्व याच्ञा हीनसेविता ॥१२
बलादेव समादत्ते क्षत्रियो बलिनां पुरः । लोहशृंखलबद्धा वा न वशं यान्ति कातराः ॥१३
प्रसह्यकारिणो यान्ति राजानो धर्मशालिनः । तदलं दौर्मनस्येन श्लाघ्यमेवास्य बन्धनम् ॥१४
युष्माकमपि ये पूर्वे कृत्वारीणां निपातनम् । हृत्वैव पृथिवीशानां पृथ्वीपुत्रादिकं वसु ॥१५
भार्यावीर्यनिमित्तानि ततो यातातिगौरवम् । तत्त्वर्यतां रणायाशु स्यन्दनान्यधिरोहत ।१६
सज्जीकुरुत नागाश्वमचिरेण ससारथिम् । मन्यध्वं किं महीपालैर्बहुभिः सह विग्रहम् ॥१७
प्रभूता एव तोषाय शूरस्याल्परणे क्रियाः । कस्य नाल्पेषु सामर्थ्यं नरेन्द्रादिषु जायते ॥१८
येभ्यो न विद्यते भीतिर्विक्रान्तस्यापि शत्रुषु । व्याप्य लोभान्समस्तान्यो ह्यभिभूय यतो नरः ॥
व्यरोचतेऽतिशूरः स तमांसीव दिवाकरः ॥१९

मार्कण्डेय उवाच

इत्थमुद्धर्षितो राजाऽनया पत्न्या करन्धमः । चकार स बलोद्योगं हन्तुं पुत्राहितान्मुने ॥२०
ततस्तस्य समं भूपैर्विशालेन च सङ्गरः । बभूव बद्धपुत्रस्य तैरशेषैर्महामुने ॥२१
दिनत्रयमभूद्युद्धं तेन राज्ञा समं तदा । करन्धमेन भूपानां विशालस्यानुकुर्वताम् ॥२२

मेरे पुत्र ने स्वयंवर के निमित्त उपस्थित की हुई बहुत कन्याओं को ग्रहण किया है तो क्षत्रियकुल में जन्म ग्रहण और कहाँ हीनजनोचित माँगने का कार्य ? इन दोनों में बहुत अन्तर है ।११-१२। अत एव क्षत्रियगण बलवानों के सामने ही बलप्रकाश करके ग्रहण करते हैं । यदि धार्मिक राजा को कोई लोहे की शृंखला अर्थात् जंजीर में बाँध भी ले, किन्तु तो भी वह कातरभाव से उसकी वश्यता स्वीकार नहीं कर सकता ।१३। किन्तु पहले वीरता प्रकाश करके फिर सहज में ही वश्यता स्वीकार कर सकता है अत एव इसमें बुरा मानने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मैं पुत्र के इस बँधने के विशेष श्लाघा का विषय विचारती हूँ ।१४। तुम्हारे पूर्वजों ने भी शत्रुओं का नाश करके राजाओं का पृथ्वी पुत्रादिक धन हरण किया है ।१५। और इस निमित्त आपके मस्तक में अस्त्रघात का होना भी श्लाघनीय है । राजा लोग पृथ्वी, पुत्रादि धन और भार्या इत्यादि सज्जनों के निकट से हरण करके संचय करते हैं और वही उनके गौरव का कारण होता है अत एव आप युद्ध के लिये शीघ्रता अवलम्बन कीजिये, शीघ्र रथ में चढ़कर ।१६। सारथी सहित हाथी और घोड़ो को सज्जित कीजिए । अनेक राजाओं के साथ एक व्यक्ति के युद्ध करने के विषय में आप क्या सोचते हैं ?।१७। शूर जन अल्प युद्ध में ही बड़ा पराक्रम संपादन करके अन्त में संतोष प्राप्त करते हैं, अल्प नरेंद्रादि शत्रुसमूह और जिनसे भय की संभावना नहीं है, ऐसे कातर शत्रुओं के ऊपर कौन सामर्थ्य प्रकाश करने की अभिलाषा नहीं करता ? ।१८। सूर्य जिस प्रकार दिगन्तव्याप्त अंधकार के समूह का नाश करते हैं, ऐसे ही जो शूर बल वीर्यादिके द्वारा भुवनव्यापी सब शत्रुओं को पराजित करके विराजमान होते हैं, वही यथार्थ शूर हैं ।१९

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! राजा करन्धम इस प्रकार पत्नी के द्वारा उत्तेजित होकर पुत्र के शत्रुओं का वध करने को सेना सजाने लगे ।२०। अनन्तर पुत्र के बँधेरहते ही विशालराज और अपरापर राजाओं के संग करन्धम का युद्ध आरंभ हुआ ।२१। उस समय विशालराज के अनुगामी राजाओं के सहित राजा करन्धम का तीन दिन युद्ध होने पर ।२२। जब वह सब विशाल भूपमण्डल पराजित हो गया

यदा पराजितप्रायं तत्सर्वं भूपमण्डलम् । तदा विशालोऽर्घ्यकरः करन्धममुपस्थितः ॥२३
करन्धमोऽपि सम्प्रीत्या तेन राज्ञाभिपूजितः । विमुक्ते तनये तत्र निशान्तां सुखमावसत् ॥२४
तां च कन्यामुपादाय विशालं समुपस्थितम् । अविक्षितप्राह विप्रर्षे विवाहार्थं पितुः पुरः ॥२५
नाहमेतां ग्रहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप । परैर्यस्या निरीक्षन्त्याः संग्रामेऽहं पराजितः ॥२६
अन्यस्मै सम्प्रयच्छेमामियं चान्यं वृणोतु तम् । अखण्डितयशो वीर्यो यः परैर्नापमानितः ॥२७
परैः पराजितोऽहं यत्कातरेयं यथाऽबला । किमङ्ग मानुषत्वं मे नैतस्या मम चान्तरम् ॥२८
स्वतन्त्रता मनुष्याणां परतन्त्रा सदाऽबला । नरोऽपि परतन्त्रो यस्तस्य कीदृङ्मनुष्यता ॥२९
सोऽहमस्या मुखं भूयो दृष्टं दर्शयिता कथम् । योऽहमस्याः पुरो भूमौ परैर्भूपैः खिलीकृतः ॥३०
इत्युक्ते तेन तनयामुवाच जगतीपतिः । श्रुतं ते वचनं वत्से वदतोऽस्य महात्मनः ॥
वरयान्यं पतिं यत्र मनस्ते रमते शुभे ॥३१
वयं वा सम्प्रयच्छामो यस्मिंस्तस्मिंस्तवादृतिः । एतयोर्ह्येकमातिष्ठ मार्गयो रुचिरानने ॥३२

कन्योवाच

पराजितोऽयं बहुभिर्न सम्यक्सम्यगाचरन् । संग्रामे तद्यशो वीर्यहानिकारि न पार्थिव ॥३३
एको बहूनां युद्धाय गजानामिव केसरी । यत्संस्थितः परं शौर्यं तेनास्य प्रकटीकृतम् ॥३४

तब विशाल उनकी पूजा करने के लिये अर्घ्य हाथ में लेकर करन्धम के समीप उपस्थित हुए ।२३। करन्धम ने भी राजा के द्वारा पूजित हो पुत्र को बँधने से छुड़ाया, प्रीतिपूर्वक उस रात्रि को वहाँ सुख से वास किया ।२४। हे विप्रर्षे ! इसके उपरान्त विशालराजकन्या को लेकर विवाहार्थ वहाँ उपस्थित हुए, तब अविक्षित ने पिता के सामने ही उनसे कहा ।२५। हे नृप ! जिस कन्या के सामने मैं शत्रुओं से परास्त हो गया हूँ, उसको तो कभी ग्रहण नहीं कर सकता और अन्य भी किसी कामिनी को मैं ग्रहण नहीं करूँगा ।२६। अत एव जो कभी शत्रुओं से अपमानित नहीं हुआ हो ऐसे अखंडित यश वीर्य से युक्त किसी और मनुष्य को आप कन्या दीजिये और यह कन्या भी उसी को वरण करे ।२७। इस कातर अबला के समान मैं शत्रुओं से पराजित हो गया हूँ अत एव मेरा मनुष्यत्व क्या है ? इसलिए मुझसे और इस कन्या में कोई भेद नहीं है ।२८। स्वतंत्रता सदा मनुष्य के अधीन है और ललनागण सदा ही पराधीन हैं, अत एव पुरुष होकर भी जो पराधीन हो, उसकी मनुष्यता कैसी है ? ।२९। जिसके सन्मुख मैं समस्त राजाओं से हार गया हूँ उसको अपना यह पूर्वदृष्ट मुख किस प्रकार दिखाऊँगा ।३०। जगतीपति विशाल ने राजपुत्र के यह वचन सुनकर कन्या से कहा हे वत्से ! इन महात्मा ने जो कहा, वह सुना । अब हे कल्याणी ! यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो अपने आप अन्य किसी को पतित्व में वरण करो ।३१। अथवा तुम्हारे प्रति अत्यन्त स्नेह के कारण मैं जिसको उचित समझूँ उसको प्रदान करूँगा हे रुचिरानने ! इन दोनों बातों में एक स्वीकार करो ।३२

कन्या बोली—हे पार्थिव ! यह राजकुमार धर्मभाग में स्थित रहकर बहुत जनों के संग संग्राम करके भी यशोवीर्य हानिकारक युद्ध में सम्यक् प्रकार पराजित नहीं हुए हैं ।३३। युद्ध के लिये आये हुए बहुत राजाओं में इन्होंने जो केसरी के समान अकेले ही युद्ध में स्थिति की थी, उसके द्वारा ही इनका विशेष

न केवलमयं तस्थौ युद्धे तेप्यखिला जिताः । बहुशोऽनेन यत्नेन विक्रमोऽपि प्रकाशितः ।।३५
शौर्यविक्रमसंयुक्तमिमं सर्वमहीक्षितः । धर्मयुद्धमधर्मेण जितवन्तोऽत्र का त्रपा ।।३६
न चापि रूपमात्रेऽहं लोभमस्य गता पितः । शौर्यविक्रमधैर्याणि हरन्त्यस्य मनो मम ।।३७
तत्किमुक्तेन बहुना याच्यतां मत्कृते नृपः । त्वया महानुभावोऽयं नान्यो मे भविता पतिः ।।३८

विशाल उवाच

राजपुत्रसुता प्राह ममैतच्छोभनं वचः । एवं चैव त्वया तुल्यः कुमारो न महीतले ।।३९
अविसंवादिते शौर्यमतीव च पराक्रमः । पावयास्मत्कुलं वीर दुहितुर्मे परिग्रहात् ।।४०

राजपुत्र उवाच

नाहमेतां ग्रहाष्यामि न चान्यां योषितं नृप । आत्मन्येवहि मे बुद्धिः स्त्रीमयी मनुजेश्वर ।।४१

मार्कण्डेय उवाच

ततः करन्धमः प्राह पुत्रेयं गृह्यतां त्वया । विशालतनया सुभ्रूस्त्वयि हार्दवती दृढम् ।।४२

राजपुत्र उवाच

नाज्ञाभङ्गः कदाचित्ते कृतः पूर्वं मया प्रभो । तथाऽऽज्ञापय मां तात यथाज्ञां करवाणि ते ।।४३

मार्कण्डेय उवाच

अत्यन्तनिश्चितमतौ तस्मिन्राजसुते सुताम् । तामुवाच विशालोऽपि व्याकुलीकृतमानसः ।।४४

शौर्य प्रकाशित हुआ है ।३४। यह केवल युद्धस्थल में स्थित ही नहीं थे, वरन् इन्होंने संपूर्ण राजमण्डल को बहुत बार पराजित करके यथेष्ट विक्रम भी प्रकाशित किया था ।३५। शौर्य और विक्रमशाली धर्मयुद्धकारी इन कुमार को जो बहुत राजाओं ने अधर्म व्यवहार से पराजित किया है, फिर इसमें लज्जा की क्या बात है ? ।३६। हे पिता ! मैं इनका केवल रूपमात्र देखकर लोभ नहीं करती वरन् शौर्य विक्रम और धैर्य ने मेरा मन हर लिया है ।३७। अत एव अधिक और क्या कहूँ हे नृप ! आप मेरे लिये इन महानुभाव का ही अनुरोध कीजिये । इनके अतिरिक्त दूसरा कोई मेरा पति नहीं होगा ।३८।

विशाल ने कहा—हे राजपुत्र ! मेरी कन्या ने जो कहा, वह सब युक्तिसंगत है । तुम्हारे समान पृथ्वीतल में अन्य कुमार दिखाई नहीं देता ।३९। तुम्हारा शौर्य अप्रतिहत है और पराक्रम भी अधिक है हे वीर ! तुम्हीं इस मेरी कन्या को ग्रहण करके मेरे कुल को पवित्र करो ।४०।

राजपुत्र ने कहा—हे नृप ! मैं इसको या दूसरी किसी स्त्री को ग्रहण नहीं करूँगा, हे मनुजेश्वर ! मैं स्वयं ही अपने को स्त्री समझता हूँ ।४१

मार्कण्डेय जी बोले—तब करन्धम भी पुत्र से कहने लगे हे पुत्र ! तुम इस कन्या को ग्रहण करो, क्योंकि यह सुंदरी विशालकन्या तुम्हारे प्रति दृढ़ अनुरागवती हुई है ।४२

राजपुत्र ने कहा—हे प्रभो ! मैंने पहले कभी आपकी आज्ञाभंग (अपालन) नहीं की, हे तात ! इस समय भी आप मुझको वैसे ही आज्ञा दीजिये जिसको मैं पालन करने में समर्थ हूँ ।४३

मार्कण्डेय जी बोले—राजा विशाल ने राजपुत्र को इस प्रकार स्थिर बुद्धि जान व्याकुलचित हो

निवर्त्यतां मनः पुत्रि एतस्माच्च प्रयोजनात् । अन्यं वरय भर्त्तारं सन्त्यनेके नृपात्मजाः ।।४५

कन्योवाच

वरं वृणोम्यहं तात मामेष यदि नेच्छति । तपसाऽन्यो न मे भर्त्ता जन्मन्यस्मिन्भविष्यति ।।४६

मार्कण्डेय उवाच

ततः करन्धमो राजा विशालेन समं मुदा । स्थित्वा दिनत्रयं तत्र निजमभ्याययौ पुरम् ।।४७
अविक्षितोपि तेनैव पित्रान्यैश्च नराधिपैः । निदर्शनैः पुरावृत्तैः सान्त्वितोऽभ्यागमत्पुरम् ।।४८
सापि कन्या वनं गत्वा निसृष्टा निजबान्धवैः । तपस्तेपे निराहारा वैराग्यं परमास्थिता ।।४९
निराहारा यदा सा तु मासत्रयमवस्थिता । सम्प्राप परमामार्त्तिं कृशाधमनिसन्तता ।।५०
मन्दोत्साहातितन्वङ्गी मुमूर्षुरपि बालिका । देहत्यागाय सा चक्रे तदा बुद्धिं नृपात्मजा ।।५१
आत्मत्यागाय तां ज्ञात्वा कृतबुद्धिं सुरास्ततः । समेत्य प्रेषयामासुर्देवदूतं तदन्तिकम् ।।५२
समुपेत्य स तां प्राह दूतोऽहं पार्थिवात्मजे । प्रेषितस्त्रिदशैस्तुभ्यं यत्कार्यं तन्निशामय ।।५३
न भवत्या परित्याज्यं शरीरमतिदुर्लभम् । त्वं भविष्यसि कल्याणि जननी चक्रवर्तिनः ।।५४
पुत्रेण च महाभागे भोक्तव्यानि हतारिणा । अव्याहताज्ञेन चिरं सप्तद्वीपवती मही ।।५५
हन्तव्यस्तेन तरुजिद्देवानां पुरतो रिपुः । अयःशंकुस्तथा क्रूरो धर्मे स्थाप्यास्ततः प्रजाः ।।५६

कन्या से कहा ।४४। हे पुत्रि ! इनकी ओर से मन को निवृत्त कर और अनेक राजपुत्र हैं उनमें किसी को पति वरण करो ।४५

कन्या बोली—हे तात ! यदि यह राजपुत्र मेरी अभिलाषा नहीं करते, तो मैं प्रार्थना करती हूँ कि तपस्या के अतिरिक्त इस जन्म में मेरा अन्य पति नहीं होगा ।४६

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर करन्धम विशाल राजा के सहित वहाँ प्रसन्न चित्त से तीन दिन बिताकर अपने नगर को चले गये ।४७। पिता और अन्यान्य राजाओं के अनेकानेक प्राचीन दृष्टांतों से समझानेपर अवीक्षित भी राजधानी में गये ।४८। और वह विशालराज की कन्या भी आत्मीय बांधवों से बिदा ले, वन में जाकर, परम वैराग्य के सहित निराहार होकर तपस्या करने लगी ।४९। इस प्रकार निराहार होकर तीन महीने बिताने पर उसके शरीर की नाड़ी दीखने लगी वह कृश होकर अत्यन्त दुःखित हुई ।५०। तब वह अत्यन्त दुबले अंगवाली मृत्यु के समीप हुई बालिका राजकन्या मन्दोत्साह होकर प्राण त्याग करने के लिये कृतनिश्चय हुई ।५१। इस ओर उसको प्राण त्याग करने में स्थिर निश्चय जानकर देवताओं ने मिलकर उसके निकट देवदूत को भेजा ।५२। दूत ने आकर कहा हे नृपात्मज ! मैं देवताओं का भेजा हुआ दूत हूँ जिस कार्य के लिये देवताओं ने मुझे तुम्हारे निकट भेजा है, वह सुनो ।५३। इस दुर्लभ शरीर को तुम परित्याग मत करो; हे कल्याणि ! तुम चक्रवर्ती राजा की जननी होगी ।५४। हे महाभागे ! तुम्हारा पुत्र शत्रुकुल का विनाश करके अप्रतिहत प्रभाव से बहुत काल तक इस सप्तद्वीपा पृथ्वी का भोग करेगा ।५५। देवशत्रुतरुजित् और क्रूर अयःशङ्कु देवताओं के सामने उसके द्वारा विनाश को प्राप्त होंगे वह प्रजा को धर्माचरण में लगायेंगे ।५६। समस्त चातुर्वर्ण्य को ही यथाधर्म में

परिपालनीयमखिलं चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मतः। हन्तव्या दस्यवो म्लेच्छा ये चान्ये दुष्टचेष्टिताः ॥५७
यष्टव्यं विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । वाजिमेधादिभिर्भद्रे षट्सहस्रैश्च संख्यया ॥५८

मार्कण्डेय उवाच

तं दृष्ट्वा साऽन्तरिक्षस्थं दिव्यस्रगनुलेपनम् । देवदूतमुवाचेदं राजपुत्री ततो मृदु ॥५९
सत्यं त्वमागतः स्वर्गाद्देवदूतो न संशयः। किन्तु भर्त्रा विना पुत्रः स कथं मे भविष्यति ॥६०
अविक्षितमृते भर्त्ता मम नान्योऽत्र जन्मनि । भवितेति प्रतिज्ञातं मयैतत्सन्निधौ पितुः ॥६१
स च नेच्छति मां प्रोक्तो मत्पित्रा जनकेन च। करन्धमेनाथ सम्यग्याचितश्च मया तथा ॥६२

देवदूत उवाच

किमनेन महाभागे बहुनोक्तेन ते सुतः । समुत्पत्स्यति मा त्याक्षीस्तवमात्मानमधर्मतः ॥६३
अत्रैव कानने तिष्ठ तनुं क्षीणां च पोषय । तपःप्रभावादेतत्ते सर्वं साधु भविष्यति ॥६४

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा देवदूतोऽसौ यथागतमगच्छत । चकारानुदिनं सुभ्रूः साप्यात्मतनुपोषणम् ॥६५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२१।

प्रतिपालन करेगा, म्लेच्छ दस्यु (तस्कर) इत्यादि दुराचारी उसके द्वारा विनाश को प्राप्त होंगे ।५७। और हे भद्रे ! वह विपुल, दक्षिणापूर्ण अश्वमेधादि अनेक प्रकार के छः हजार यज्ञ करेगा ।५८

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर दिव्यमालानुलेपनधारी आकाश में स्थित उस देवदूत को देखकर राजपुत्री ने मधुर स्वर से कहा ।५९। आप सत्य ही स्वर्ग से देवदूत आये हैं, इसमें सन्देह नहीं है, किन्तु भर्त्ता के बिना मेरे किस प्रकार पुत्र होगा ।६०। अवीक्षित के अतिरिक्त दूसरा कोई मेरा इस जन्म में भर्त्ता नहीं होगा, मैंने पिता के निकट इस प्रकार प्रतिज्ञा की है ।६१। किन्तु अवीक्षित ने भी मेरे पिता के, अपने पिता के और मेरे अनुरोध से भी मेरी अभिलाषा नहीं ।६२

देवदूत ने कहा—हे महाभागे ! अधिक कहने का प्रयोजन नहीं है, निःसन्देह तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा इस कारण आत्महत्यारूप अधर्माचरण मत करो ।६३। इसी वन में रहकर क्षीण देह का पोषण करो। तपस्या के प्रभाव से अवश्य तुमको सब भाँति से मंगल उपस्थित होगा ।६४

मार्कण्डेय जी बोले—देवदूत इस प्रकार कहकर जहाँ से आया था वहीं को चला गया और सुन्दरी राजकन्या भी नित्य शरीरपोषण करने लगी ।६५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में अविक्षितचरित वर्णन नामक
एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२१।

(१२२)

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अविक्षिच्चरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अथ साऽविक्षितो माता वीरा वीर प्रजावती । पुण्येऽहनि समाहूय प्राह पुत्रमविक्षितम् ।।१
पुत्राहमभ्यनुज्ञाता तव पित्रा महात्मना । उपवासं करिष्यामि दुष्करोऽयं किमिच्छकः ।।२
स चायत्तस्तव पितुस्त्वया साध्यो मयापि च । प्रतिज्ञाते त्वया पुत्र ततस्तत्र यताम्यहम् ।।३
द्रव्यस्यार्द्धं महाकोशात्तव दास्याम्यहं पितुः । धनं ते पितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मि तेन च ।।४
क्लेशसाध्यो मदायत्तः स हि श्रेयो भविष्यति । साध्यो भवेद्वा यदि ते कश्चिद्बलपराक्रमैः ।।५
स तेऽसाध्यो ह्यन्यथा वा दुःखसाध्यो भविष्यति । तत्त्वं प्रतिज्ञां कुरुषे यदि पुत्रात्र चैव ते ।।
तदैतदहमावाप्स्ये कथ्यतां यन्मतं तव ।।६

अविक्षिदुवाच

वित्तं मे पितुरायत्तं मत्स्वामित्वं न तत्र वै । यन्मच्छरीरनिष्पाद्यं तत्करिष्ये त्वयोदितम् ।।७
किमिच्छकं व्रतं मातर्निश्चिन्ता भव निर्व्यथा । राज्ञा पित्राऽभ्यनुज्ञातं यदि वित्तेश्वरेण मे ।।८

मार्कण्डेय उवाच

ततः सा राजमहिषी तद्व्रतं समुपोषिता । यथोक्तं साऽकरोत्पूजां राजराजस्य संयता ।।९

अध्याय १२२

अविक्षिच्चरित-वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—एक समय पवित्र दिन में अविंक्षित की माता वीरप्रसू वीर ने पुत्र अविक्षित को बुलाकर कहा ।१। हे पुत्र ! मैं किमिच्छक नामक उपवास के बाद एक दुष्कर व्रत करूंगी, तुम्हारे महात्मा पिता ने भी उसे करने की आज्ञा दे दी है ।२। वह व्रत तुम्हारे पिता, तुम और मैं इन तीन जनों के अधीन है अत एव हे पुत्र ! जब तुम उसकी प्रतिज्ञा कर लोगे, तब मैं व्रतकार्य में यत्नवती हूँगी ।३। तुम्हारे पिता के राजकोष का आधा धन दान करूँगी, इसलिए धन तुम्हारे पिता के अधीन है, किन्तु उनसे आज्ञा प्राप्त कर ली है ।४। क्लेशसाध्य विषय मेरे अधीन है वह मेरे द्वारा भली भाँति सम्पन्न भी होगा और जो कुछ बल तथा पराक्रमसाध्य है, वह सब तुम्हारे अधीन है ।५। वह तुमको सुसाध्य, दुःसाध्य अथवा असाध्य भी हो सकता है, अत एव हे पुत्र ! यदि अपने साध्यविषय में तुम अंगीकार करो तो इस व्रत का उद्योग करूँ अब तुम्हारा जो अभिप्राय हो, उसको कहो ।६

अविक्षित ने कहा—धन पिता के अधीन है उसमें मेरी कुछ प्रभुता नहीं है, मेरे शरीर से जो कार्य सिद्ध होगा, तुम्हारी आज्ञानुसार मैं उसके संपादन करने को प्रस्तुत हूँ ।७। यदि वित्तेश्वर पिता ही इसमें आज्ञा देते हैं तो हे माता ! तुम निश्चिन्त होकर संतुष्ट हृदय से किमिच्छक व्रत करो ।८

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर संयमपरायण राजमहिषी उस व्रत में उपवासपूर्वक काय, मन,

निधीनामप्यशेषाणां निधिपालगणस्य च । लक्ष्म्याश्च परया भक्त्या यतवाक्कायमानसा ।।१०
विविक्ते तु गृहस्थोऽयमथ राजा करन्धमः । आसीन उक्तः सचिवैर्नीतिशास्त्रविशारदैः ।।११

सचिवा ऊचुः

राजन्वयः परिणतं तवैतच्छासतो महीम् । एकस्ते तनयोऽविक्षित्त्यक्तदारपरिग्रहः ।।१२
अपुत्रः स च ते निष्ठां यदा भूप गमिष्यति । तदारिपक्षं पृथिवीनिश्चितं तव यास्यति ।।१३
वंशक्षयस्ते भविता पितृपिण्डोदकक्षयः । एतन्महत्तेऽरिभयं क्रियाहान्या भविष्यति ।।१४
तस्मात्कुरु तथा भूप यथा ते तनयः पुनः । करोति सततं बुद्धिं पितृणामुपकारिणीम् ।।१५

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे शब्दं शुश्राव जगतीपतिः । पुरोहितस्य वीराया गदतो ह्यर्थिनं प्रति ।।१६
कः किमिच्छति दुःसाध्यं कस्य किं साध्यतामिति । करन्धमस्य महिषी किमिच्छिकमुपोषिता ।।१७
राजपुत्रोऽप्यविक्षित्तु श्रुत्वा पौरोहितं वचः । प्रत्युवाचार्थिनः सर्वान्राजद्वारमुपागतान् ।।१८
मया साध्यं शरीरेण यस्य किञ्चिद्ब्रवीतु सः । मम माता महाभागा किमिच्छिकमुपोषिता ।।१९
शृण्वन्तु मेऽर्थिनः सर्वे प्रतिज्ञातं मया तदा । किमिच्छथ ददाम्येष क्रियमाणो किमिच्छिके ।।२०

वचन से संयत हो अत्यन्त भक्तिसहित यथोक्तविधान से निधिसमूह निधिपालगण और लक्ष्मी देवी की पूजा करने लगी ।९-१०। इस ओर राजा करन्धम नीतिशास्त्रविशारद मन्त्रियों के सहित मंत्रणागृह में विराजमान रहे ।११

सचिव बोले—हे राजन् ! पृथ्वीपालन करते हुए आपकी अवस्था बीत चली और आपके एकमात्र पुत्र ने दारपरिग्रह त्याग किया अर्थात् विवाह नहीं किया ।१२। हे भूप ! वह भी जब अपुत्र ही रहेंगे, दारसंग्रह न करेंगे तब निःसन्देह पृथ्वी आपके शत्रुओं का आश्रय करेगी ।१३। आपका भी वंशक्षय और पितरों का श्राद्ध, तर्पण नष्ट होगा ।फिर क्रियाहानि के कारण यह समस्त महत् शत्रुभय उपस्थित होगा ।१४। अत एव हे भूपाल ! जिससे आपका पुत्र फिर सदा पितरों का उपकार करने वाली बुद्धि अवलम्बन करे, उसका उपाय कीजिये ।१५

मार्कण्डेय जी बोले—इसी समय राजमहिषी वीरा के संबंध में पुरोहित अर्थिगणों से जो कहते थे राजा ने उन वचनों का शब्द सुना ।१६। पुरोहित कहते थे "करन्धम की महिषी किमिच्छक व्रत करती हैं तुम क्या क्या इच्छा करते हो ? किसका क्या दुःसाध्य कार्य साधन करना होगा । वह कहो" ।१७। जब राजपुत्र अविक्षित ने पुरोहितों का वचन सुना तब वह भी राजद्वार पर आकर सब अर्थियों से कहने लगे ।१८। हे अर्थिगणों ! मेरी प्रतिज्ञा सुनो—मेरी भाग्यवती माता किमिच्छकव्रत में स्थित हो रही है, इस समय मेरे शरीर से जो कुछ साधित हो सके, उसे कहो ।१९। इस किमिच्छकव्रत के समय तुम क्या क्या प्रार्थना करते हो वह कहो मैं वही देने को प्रस्तुत हूँ यह मेरी प्रतिज्ञा है ।२०

मार्कण्डेय उवाच

ततो राजा निशम्यैतद्वाक्यं पुत्रमुखाच्छ्रुतम् । समुत्पत्याब्रवीत्पुत्रमहमर्थी प्रयच्छ मे ॥२१

अविक्षिदुवाच

दातव्यं यन्मया तात भवते तद्ब्रवीहि माम् । कर्तव्यं दुष्करं वा ते साध्यं दुःसाध्यमेव वा ॥२२

राजोवाच

यदि सत्यप्रतिज्ञस्त्वं ददासि च किमिच्छकम् । पौत्रस्य दर्शय मुखं ममोत्सङ्गगतस्य तत् ॥२३

अविक्षिदुवाच

अहं तवैकस्तनयो ब्रह्मचर्यं च मे नृप । न मे पुत्रोऽस्ति पौत्रस्य दर्शयामि कथं मुखम् ॥२४

राजोवाच

पापाय ब्रह्मचर्यं ते यदिदं धार्यते त्वया । तस्मात्त्वं मोचयात्मानं मम पौत्रं च दर्शय ॥२५

अविक्षिदुवाच

विषमं स्यान्महाराज यदन्यत्तत्समादिश । वैराग्येण मया त्यक्तः स्त्रीसंभोगस्तथास्तु सः ॥२६

राजोवाच

बहुभिर्युध्यमानानां दृष्टो वै वैरिणां जयः । तत्रापि यदि वैराग्यमुपैषि तदपण्डितः ॥२७

मार्कण्डेय जी बोले—इसके उपरान्त राजा करन्धम ने पुत्र के मुख से निकले हुए यह वचन सुन उसके समीप जाकर कहा ।२१। 'हे पुत्र ! मैं अर्थी हूँ मुझको अभिलषित वस्तु दो'

अविक्षित ने कहा—"हे तात ! मैं आपको क्या दूँ ? आज्ञा कीजिये आपकी माँगी वस्तु साध्य दुःसाध्य या असाध्य ही क्यों न हो, मैं वह दूँगा" ।२२

राजा ने कहा—"यदि तुमने किमिच्छक में दान करने की सत्यप्रतिज्ञा की है तो मेरी गोदी में बैठालकर पौत्र का मुख दिखाओ" ।२३

अविक्षित ने कहा—हे नृप ! मैं ही आपका एकमात्र पुत्र हूँ, वह मैंने ब्रह्मचर्य धारण किया है और मेरे पुत्र भी नहीं है, अत एव किस प्रकार आपको पौत्र का मुख दिखाऊँ ! ।२४

राजा ने कहा—'यह जो तुमने ब्रह्मचर्य धारण किया है, वह यह पाप का हेतु है इसलिए इसको परित्याग करके उससे आत्मा को मुक्त करो और मुझको भी पौत्र का मुख दिखाओ' ।२५

अविक्षित ने कहा—यह कार्य अत्यन्त विषम अर्थात् ब्रह्मचर्य का विरोधी है । हे महराज ! मैंने वैराग्य के निमित्त ही स्त्रीसंभोग का परित्याग कया है जिससे वह वैराग्य खंडित न हो आप मुझे वैसी ही कोई दूसरी आज्ञा दीजिये ।२६

राजा ने कहा—"मैंने देखा है कि, बृहत् सेना से युक्त वैरियों को तुमने युद्ध में परास्त किया है, इस पर भी यदि तुम वैराग्य धारण करते हो तो तुम अपण्डित (मूर्ख) हो ।२७। अब मेरे अधिक कहने का

किं वा नो बहुनोक्तेन ब्रह्मचर्यं परित्यज । मातुस्त्वमिच्छया वक्त्र पौत्रस्य मम दर्शय ।।२८

मार्कण्डेय उवाच

यदा स बहुशस्तेन प्रोक्तः पुत्रेण पार्थिवः । नान्यत्प्रार्थयते किंचित्तदा पुत्रोऽब्रवीत्पुनः ।।२९
दत्त्वा किमिच्छकं तुभ्यं प्राप्तोऽहं तात सङ्कटम् । तत्करिष्यामि निर्लज्जो भूयो दारपरिग्रहम् ।।३०
स्त्रियाः समक्षं विजितः पतितो धरणीतले । स्त्रीपतिर्भविता भूयस्तातैतदतिदुष्करम् ।।३१
तथापि किं करोम्येष सत्यपाशवशङ्गतः । करिष्यामि यथाऽऽत्थ त्वं भुज्यतां निजशासनम् ।।३२

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।१२२।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अविक्षिच्चरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

कदाचिद्राजपुत्रोऽसौ मृगयामचरद्वने । मृगान्विध्यन्वराहांश्च शार्दूलादींश्च दंष्ट्रिणः ।।१
शुश्राव सहसा शब्दं त्राहित्राहीति योषितः । विक्रोशन्त्याः सुबहुशो भयगद्‌गदमुच्चकैः ।।२
माभैर्माभैरिति वदन्राजपुत्रः स वेगितः । चोदयामास तुरगं यतः शब्दः समागतः ।।३
ततश्च सापि चुक्रोश कन्यका विजने वने । गृहीता दनुपुत्रेण दृढकेशेन मानिनी ।।४

क्या प्रयोजन है ? तुम अपनी माता की इच्छानुसार ब्रह्मचर्यपरित्याग करो और मुझको पौत्र का मुख दिखाओ' ।२८

मार्कण्डेय जी बोले—राजपुत्र के बारंबार अनुरोध करने पर भी जब राजा ने दूसरी कोई प्रार्थना कहीं की, तब राजपुत्र ने फिर कहा ।२९। हे तात ! आप से किमिच्छकप्रदानविषय में अंगीकार करकें मैं संकट में पड़ गया हूँ इस कारण निर्लज्ज होकर फिर स्त्री ग्रहण करनी ही पड़ेगी ।३०। मैं स्त्री के सामने पराजित होकर पृथ्वी में गिर गया था, अत एव स्त्री मेरे पक्ष में पति के समान होगी, हे तात ! यह बड़ा ही कठिन कार्य है ।३१। किन्तु तो भी क्या करूँ ? जब कि, सत्यपाश में बँधगया हूँ, तब आप जो कहते हैं वह अवश्य करूँगा । अब आप निश्चिन्त चित्त से राज्यशासन कीजिये ।३२

श्रीमार्कण्डेयपुराण में अविक्षितचरित्र नामक वर्णन का एक सौ बाइसवाँ अध्याय समाप्त ।१२२।

अध्याय १२३

अविक्षिच्चरित-वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—किसी समय राजपुत्र वन में मृग, वराह, शार्दूल, इत्यादि दंष्ट्री जन्तुओं को विद्ध करके मृगया करते थे ।१। उसी समय सहसा रोती हुई कामिनी के कंठ का निकला हुआ भय से गदगद अत्युच्च 'त्राहि त्राहि' शब्द बारम्बार सुना ।२। राजपुत्र ने वह शब्द सुनते ही तत्काल 'भय नहीं, भय नहीं' कहकर जिस ओर से शब्द आता था, उसी ओर को वेगसहित घोड़ा दौडाया ।३। तदनन्तर दनुपुत्र दृढ़केश के द्वारा पकड़ी हुई वह मानिनी कन्या विजन वन में ऊँचे स्वर में इस प्रकार विलाप करने

करन्धमसुतस्याहं भार्या चाहमविक्षितः । हरत्यनार्यो विपिने पृथिवीशस्य धीमतः ।।५
यस्य सर्वे महीपालास्तथा गन्धर्वगुह्यकाः । न समर्थाः पुरः स्थातुं तस्य भार्या हृतास्म्यहम् ।।६
यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः । करन्धमसुतस्यैषा तस्य भार्या हृतास्म्यहम् ।।७

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य महीपालतनयः सशरासनी । चिन्तयामास किमिदं मम भार्यात्र कानने ।।८
मायेयं रक्षसां नूनं दुष्टानां काननौकसाम् । अथवा गत एवाहं सर्वं वेत्स्यामि कारणम् ।।९

मार्कण्डेय उवाच

त्वरितः स ततो गत्वा ददर्शातिमनोरमाम् । कानने कन्यकामेकां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।।१०
गृहीतां दनुपुत्रेण दृढकेशेन दण्डिना । त्राहित्राहीति करुणं विक्रोशन्ती पुनः पुनः ।।११
मा भैरिति स तामाह हतोऽसीति च तं वदन् । शासतीमां महीं दुष्टः को दूयेत करन्धमे ।।१२
यस्य प्रतापावनता भुवि सर्वे महीक्षितः । ततस्तमागतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्मुकम् ।।१३
मां त्राहीत्याह तन्वङ्गी हृतास्म्येषेति चासकृत् । राज्ञः करन्धमस्याहं स्नुषा भार्याप्यविक्षितः ।।
हृतास्म्येतेन दुष्टेन सनाथाऽनाथवद्वने ।।१४

मार्कण्डेय उवाच

ततो विममृशे वाक्यमविक्षित्स तथोदितम् । कथमेषा हि मे भार्या स्नुषा तातस्य वा कथम् ।।१५

लगी ।४। कि, ''मैं करन्धम के पुत्र बुद्धिमान् पृथिवीश्वर अविक्षित की भार्या हूँ, यह दुराचारी मुझको वन में हरण करता है'' ।५। जिनके सन्मुख संपूर्ण महीपाल और गुह्यक गंधर्व भी नहीं ठहर सकते, मैं उनकी ही भार्या हो कर हरी जाती हूँ ।६। जिनका क्रोध मृत्यु के समान और पराक्रम इन्द्र के समान है, मैं उन्ही करन्धम के पुत्र की भार्या हूँ यह मुझको हरण करता है ।७

मार्कण्डेय जी बोले—धनुष हाथ में लिये राजा ने यह बात सुनकर विचार किया कि, इस वन में मेरी भार्या यह कैसी बात है ।८। यह निःसन्देह वन में विहार करने वाले राक्षसों की माया है । जो हो निकट जाने पर सब बात ज्ञात हो जायगी ।९

मार्कण्डेय जी बोले—इसके उपरान्त राजपुत्र ने शीघ्र वहाँ पहुँचकर देखा कि, उस वन में समस्त गहनों से विभूषित अत्यन्तमनोहर एक कन्या।१०। दंड हाथ में लिये दानव दृढ केश के द्वारा पकड़ी जाकर ''त्राहि त्राहि'' शब्दसे बारंबार रोदन करती है ।११। उन्होंने उस कन्या से 'भय नहीं'' यह कहकर दानव से कहा—तेरी मृत्यु अत्यन्त निकट है करन्धम के पृथ्वी पालन के समय कौन दुःखी हो सकता है।१२। जिन करन्धम राजा के प्रताप से पृथ्वी के संपूर्ण महीपाल अवनत रहते हैं, उनके शासन काल में कौन दुष्ट मनुष्य जीवित रह सकता है? प्रचण्ड धनुर्धारी उन राजपुत्र को आया हुआ देखकर।१३। वह कृशांगी वारंबार कहने लगी ''मेरी रक्षा करो, यह मुझको हरण करता है, मैं करन्धमराजा की पुत्रवधू अविक्षित की भार्या हूँ, अत एव सनाथ होकर भी अनाथ के समान इस वन में दुष्ट के द्वारा हरी जाती हूँ''।१४

मार्कण्डेय जी बोले—कन्या का यह वचन सुनकर राजपुत्र चिन्ता करने लगे कि, यह कन्या मेरी

अथवा मोचयाम्येतां तन्वीं वेत्स्यामि तत्पुनः । क्षत्रियैर्धार्यते शस्त्रमार्तानां त्राणकारणात् ॥१६
ततः क्रुद्धोऽब्रवीद्वीरो दानवं तं सुदुर्मतिम् । जीवन्गच्छ विमुच्यैनामन्यथा न भविष्यसि ॥१७
ततः स तां विहायोच्चैर्दण्डमुत्क्षिप्य दानवः । तमप्यधावत्सोऽप्येनं शरवर्षैरवाकिरत् ॥१८
स वार्यमाणो बाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वितः । राजपुत्राय चिक्षेप दण्डं शंकुशतावृतम् ॥१९
तमापतन्तं चिच्छेद शरैर्भूपसुतस्ततः । सोऽप्यासन्नं गृहीत्वोच्चैर्द्रुममाजौ व्यवस्थितः ॥२०
सृजतः शरवर्षाणि तं चिक्षेप ततो द्रुमम् । स च तं तिलशश्चैके भल्लैः कार्मुकमोचितैः ॥२१
ततश्चिक्षेप च शिलां राजपुत्राय दानवः । सापि मोघा पपातोर्व्यामुज्झिता तेन लाघवात् ॥२२
राजपुत्राय कुपितो यद्यच्चिक्षेप दानवः । तत्तच्चिच्छेद बाणौघैर्भूभृत्सूनुः सलीलया ॥२३
ततो विच्छिन्नदण्डोऽसौ विच्छिन्नसकलायुधः । मुष्टिमुद्यम्य सक्रोधो राजपुत्रमधावत ॥२४
तस्यापतत एवासौ करन्धमसुतः शिरः । छित्त्वा वेतसपत्रेण पातयामास वै भुवि ॥२५
तस्मिन्विनिहते देवैर्दानवे दुष्टचेष्टिते । करन्धमसुतः सर्वैः साधुसाध्विति भाषितः ॥२६
वरं वृणीष्वेति तदा देवैरुक्तो नृपात्मजः । वव्रे पुत्रं महावीर्यं पितुः प्रियचिकीर्षया ॥२७

देवा ऊचुः

भविष्यति हि ते पुत्रश्चक्रवर्त्ती महाबलः । अस्यामेव हि कन्यायां मोक्षितायां त्वयानघ ॥२८

भार्या औरमेरे पिता की पुत्रवधू किस प्रकार हुई ।१५। जो हो,पहले इस कन्या को छुड़ा लूँ, बाद में सब बात जान लूँगा, क्योंकि, आर्त्त मनुष्यों की रक्षा के लिये ही क्षत्रिय शस्त्र धारण करते है ।१६। अनन्तर महावीर राजकुमार ने क्रोधित होकर दुर्मति दानव से कहा यदि जीवन की इच्छा की हो तो इसको छोड़कर भाग जा, नहीं तो अवश्य ही तेरी मृत्यु होनहार है ।१७। दानव राजपुत्र के वचन से कन्या को छोड़कर दण्ड हाथ में लिये उनकी ओर दौड़ा, तब उन्होंने भी बाणों की वर्षा करके उसको आच्छन्न कर डाला ।१८। दानव ने बाणों को निवारण करके अत्यन्त अहंकारसहित राजपुत्र के (सैकडों कीलों से व्याप्त) दण्ड चलाया ।१९। किन्तु राजपुत्र ने अधबीच में ही उसको बाणों से काटडाला, तब दानव समीप का एक बडा भारी वृक्ष हाथ में लेकर युद्धस्थल में उपस्थित हुआ ।२०। और बाणों की वर्षा करते हुए उस राजपुत्र के ऊपर चलाया, किन्तु राजपुत्र ने उसको भी धनुष से छुटे हुए भाले समूह द्वारा तिल तिल परिमाण खण्डित किया ।२१। इसके उपरान्त दानव राजपुत्र के ऊपर शिला चलाने लगा और वह लघुहस्त से उसको भी व्यर्थ करके पृथ्वीतल में गिराने लगे ।२२। इस प्रकार दानव ने क्रोधपूर्वक राजपुत्र के ऊपर जो कुछ चलाया उन्होंने भी बाणों के द्वारा उन सबको सहज में ही काट डाला ।२३। इस प्रकार दण्ड और संपूर्ण अस्त्र शस्त्रों के कटजाने पर दानव क्रोधितचित्त से घूँसा उठाकर राजपुत्र की ओर दौड़ा ।२४। किन्तु उसके आते-आते ही करन्धम् कुमार ने उसी समय वेतसपत्र बाण द्वारा उसका मस्तक काटकर भूमि में गिरा दिया ।२५। दुराचारी दानव के इस प्रकार मरने पर देवता करन्धमपुत्र को 'साधु साधु' कहने लगे ।२६। इसके उपरान्त 'वर माँगो' देवताओं के इस प्रकार आज्ञा देने पर राजपुत्र ने पिता की प्रियकार्य साधनं के अर्थ महावीर पुत्र की प्रार्थना की ।२७

देवता बोले—हे पापरहित !. तुमने जिसको छुड़ाया है इस कन्या के गर्भ से ही तुम्हारे बलवान् चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा ।२८

राजपुत्र उवाच

पित्राहं सत्यपाशेन बद्ध इच्छाम्यहं सुतम् । राजभिर्निर्जितेनाजौ त्यक्तो मे दारसंग्रहः ।।२९
सा च मे यावता त्यक्ता विशालनृपतेः सुता । तया च मत्कृते त्यक्तो मामृते नरसङ्गमः ।।३०
तत्कथं तामपास्याद्य विशालतनयामहम् । नृशंसात्मा करिष्यामि अन्यनारीपरिग्रहम् ।।३१

देवा ऊचुः

इयमेव हि ते भार्या श्लाघ्यते या त्वया सदा । विशालस्य सुता सुभ्रूस्त्वत्कृते याऽऽश्रिता तपः ।।३२
अस्यामुत्पत्स्यते वीरः सप्तद्वीपप्रसाधकः । यष्टा यज्ञसहस्राणां चक्रवर्त्ती सुतस्तव ।।३३

मार्कण्डेय उवाच

इत्युच्चार्य ययुर्देवाः करन्धमसुतं द्विज । सोऽप्याह तां तदा पत्नी कथ्यतां भीरु किन्त्विदम् ।।३४
सा चास्मै कथयामास त्यक्ताहं भवता यदा । त्यक्तबन्धुजनाऽरण्यं निर्वेदात्समुपागता ।।३५
अत्राहं तपसा वीर क्षीणप्रायं कलेवरम् । त्यक्तुकामा समभ्येत्य देवदूतेन वारिता ।।३६
भविष्यति च पुत्रस्ते चक्रवर्त्ती महाबलः । प्रीणयिष्यति यो देवानसुरांश्च हनिष्यति ।।३७
इति देवाज्ञया तेन देवदूतेन वारिता । न सन्त्यक्तवती देहं त्वत्सङ्गमनोरथा ।।३८
परश्वश्च महाभाग स्नातुं गङ्गाह्रदं गता । अवतीर्णा विकृष्टास्मि वृद्धनागेन केनचित् ।।३९
ततो रसातलं नीता तेन तत्र च मे पुरः । नागाः सहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यः कुमारकाः ।।४०

राजपुत्र ने कहा—मैं पिता के निकट सत्यपाश में बँध कर ही पुत्र की इच्छा करता हूँ नहीं तो युद्धस्थल में राजाओं से हारकर स्त्रीग्रहण करने की इच्छा त्याग दी थी ।२९। मेरे विशाल राजा की कन्या को परित्याग करने पर उस कन्या ने भी तब से मेरे ही कारण मेरे अतिरिक्त दूसरे पुरुष से संगम की इच्छा परित्याग की है ।३०। आज उस विशाल-कन्या को छोड़कर किस प्रकार नृशंस के समान अन्य नारी ग्रहण करूँ ? ।३१

देवता बोले—जिसकी तुम सदा प्रशंसा करते हो, यह तुम्हारी वही भार्या है। इस सुन्दरी विशालकन्या ने ही तुम्हारे लिये तपस्या की है ।३२। इसके गर्भ से तुम्हारे सप्तद्वीपप्रशासक, सहस्र सहस्र यज्ञकर्त्ता चक्रवर्ती वीर पुत्र जन्मग्रहण करेगा ।३३

मार्कण्डेय जी बोले—हे द्विज ! देवता करन्धमपुत्र से यह बात कहकर अन्तर्ध्यान हो गये । तब राजपुत्र ने पत्नी से पूछा—हे भीरु ! किस प्रकार यह घटना उपस्थित हुई वह कहो ।३४। कन्या उनसे कहने लगी 'जब आप मुझे छोड़कर चले गये, तब मैं अत्यन्त दुःखी हो बांधवों को त्यागकर इस वन में चली आई ।३५। हे वीर ! यहाँ तपस्या से देह अत्यन्त क्षीण होने पर मैंने एक दिन देह त्याग करने की इच्छा की, उसी समय एक देवदूत ने आकर मुझको निवारण किया ।३६। उसने कहा—"तुम्हारे महाबलवान् चक्रवर्ती पुत्र होगा । वह पुत्र असुरों को हनन करेगा और देवताओं की प्रीति संपादन करेगा । अत एव देवताओं की आज्ञा से तुम प्राणत्याग मत करो" ।३७। इस प्रकार निवारित होकर मैं भी उस काल आपके संग मिलने की आशा से जीवन त्याग नहीं कर सकी ।३८। परसों के दिन में गंगाह्रद में जाकर वहाँ स्नान करने को उतरी थी, उसी समय कोई बूढ़ा नाग मुझको खींचकर रसातल में ले गया ।३९। जब मैं रसातल में पहुँची तो वहाँ सहस्र नाग, नागपत्नी और कुमारगण मेरे सन्मुख स्थित

तुष्टुवुर्मां समभ्येत्य मामन्येऽपूजयंस्तथा । ययाचिरे सविनयं नागा मामङ्गनास्तथा ।।४१
प्रसादं कुरु सर्वेषां त्वमस्माकं सुतस्त्वया । अपराधमुपेतानां संनिवार्यो वधोन्मुखः ।।४२
अपराधं करिष्यन्ति त्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः । तन्निमित्तं निवार्योऽसौ प्रसादः क्रियतामिति ।।४३
तथेति च मया प्रोक्ते दिव्यैः पातालभूषणैः । भूषिताहं तथा पुष्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः ।।४४
समानीता तथा लोकमिमं तेनानिलाशिना । पुरा यथा कान्तिमती पूर्ववद्रूपशालिनी ।४५
इति रूपवतीं दृष्ट्वा सर्वालङ्कारभूषिताम् । जग्राह दृढकेशोऽयं हर्तुकामः सुदुर्मतिः ।।४६
युष्मद्बाहुबलेनाहं राजपुत्र विमोक्षिता । तत्प्रसीद महाबाहो मा प्रतीच्छ त्वया समः ।।
भूलोके राजपुत्रोऽन्यो नास्ति सत्यं ब्रवीम्यहम् ।।४७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२३।

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मरुत्तपुत्रोत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा स्मृत्वा पितृवचः शुभम् । किमिच्छके प्रतिज्ञाते यदुक्तं तेन भूभृता ।।१
प्रत्युवाच स तां कन्यामविक्षिन्नृपतेः सुतः । सानुरागमनाः कन्यां त्यक्तभोगां च तत्कृते ।।२

हो ।४०। कोई पूजा और कोई स्तुति करने लगा । इसके बाद नाग और नागपत्नियों ने विनयसहित मुझसे प्रार्थना की ।४१। "आप हम सबके ऊपर अनुग्रह कीजिये । तुम्हारे पुत्र के निकट यदि हमं अपराधी हों और वह हमको वध करने का उद्योग करे तो तुम उनको निवारण करना ।४२। अनिलाशन अर्थात् वायुभोगी नागगण जब तुम्हारे पुत्र का अपराध करें तो तुम इस निमित्त उसको निवारण करो अनुग्रहपूर्वक यह बात अंगीकार कीजिये" ।४३। जब मैंने "यही हो" कहकर स्वीकार किया तब दिव्य पाताल भूषण,मनोहर,गंध वस्त्र और पुष्पादि द्वारा मुझको भूषित करके ।४४। सर्पगण पृथ्वी में रख गये तब मैं पूर्वके समान कान्तिमती रूपवती हो गई ।४५। मुझको इस प्रकार सब गहनों से विभूषित रूपवती देखकर दुर्मति दृढकेश ने हरण की इच्छा से मुझको पकड़ा था ।४६। हे राजपुत्र ! मैंने आपके ही बाहुबल से इस समय छुटकारा पाया है अत एव हे महाबाहो ! अनुग्रह करके मुझको ग्रहण कीजिये । मैं सत्य ही कहती हूँ कि, पृथ्वीतल में आपके समान गुणशाली अन्य राजपुत्र नहीं है ।४७
श्रीमार्कण्डेयपुराण में अविक्षितचरित्र नामक वर्णन का एक सौ तेइसवाँ अध्याय समाप्त।१२३।

अध्याय १२४

मरुत्तपुत्रोत्पत्ति नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—राजकुमार अविक्षित ने कुमारी के इस प्रकार वचन सुनकर किमिच्छक व्रत के समय पिता के निकट प्रतिज्ञा करने पर महाराज करन्धम ने जो कहा था कि वह पिता का वचन स्मरण किया ।१। अपने ही लिये कन्या को भोग की इच्छा त्याग किये देखकर तब सानुरागचित्त से नृपनन्दन

यदाहं त्यक्तवांस्तन्वीं त्वामरातिपराजितः। विजित्य शत्रून्सम्प्राप्ता त्वं मयात्र करोमि किम् ॥३

कन्योवाच

मम पाणिं गृहाण त्वं रमणीयेऽत्र कानने। सकामायाः सकामेन सङ्गमो गुणवान्भवेत् ॥४

राजपुत्र उवाच

एवं भवतु भद्रं ते विधिरेवात्र कारणम्। अन्यथा कथमन्यत्र त्वामहं च समागतः ॥५

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो गन्धर्वतनयो मुने। वराप्सरोभिः सहितो गन्धर्वैरपरैर्वृतः ॥६

गन्धर्व उवाच

राजपुत्र सुतेयं 'मे भामिनी नाम मानिनी। अभिशापादगस्त्यस्य विशालतनयाऽभवत् ॥७
बालभावेन योऽगस्त्यः कोपितः क्रीडमानया। ततस्तेन तदा शप्ता मानुषी त्वं भविष्यसि ॥८
प्रसादितः स चास्माभिर्बालियमविवेकिनी। तवापराद्धा विप्रर्षे प्रसादः क्रियतामिति ॥९
प्रसाद्यमानः सोऽस्माभिरिदमाह महामुनिः। बालेति मत्वा शापोऽल्पो दत्तोऽस्या नान्यथैव तत् ॥१०
इति शापादगस्त्यस्य विशालभवने शुभा। जातेयं मत्सुता सुभ्रूर्भामिनी नाम नामतः ॥११
तदस्याहं कृते प्राप्तो गृहाणेमां नृपात्मजाम्। ममात्मजां सुतस्तेऽत्र चक्रवर्ती भविष्यति ॥१२

अविक्षित ने उसका उत्तर दिया।२। हे कृशाङ्गी! मैंने शत्रुओं से हारकर ही तुम्हें त्याग दिया था, और अब शत्रुओं को जीतकर ही फिर तुमको प्राप्त हुआ हूँ इस समय मुझको क्या करना चाहिए।३

कन्या बोली—इस रमणीय वन में ही आप मेरा पाणिग्रहण कीजिये तो सकामा कामिनी का सकाम पुरुष के सहित संगम गुणवान् होगा अर्थात् सुखशान्ति विधान करेगा।४

राजपुत्र ने कहा—यही हो तुम्हारा मंगल हो। दैव ही इस विषय में कारण है, नही तो तुम और मैं पृथक्-पृथक् स्थान में रहकर भी आज किस प्रकार एकत्रित हुए।५

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने! उसी समय में तनय नामक गंधर्व अनेक गंधर्व और अप्सराओं के सहित वहाँ उपस्थित हुआ।६

गन्धर्व ने कहा—हे राजपुत्र! यह मानिनी मेरी ही कन्या है। भामिनी इसका नाम हैं। अगस्त्य जी के शाप से ही यह कन्या राजा विशाल की पुत्री हुई है।७। एक समय भामिनी ने क्रीड़ा करते-करते बाल्य स्वभाव से महर्षि अगस्त्य जी को कोप उत्पन्न कराया था इस कारण अगस्त्य जी ने उस समय "तू मानुषी होगी" यह कहकर शाप दिया।८। हे विप्रर्षे! यह कन्या अबोध बालिका है इसी ने आपका अपराध किया है अत एव इसका अपराध ग्रहण न करके अनुग्रह किजिये।९। मैंने उस समय इस प्रकार कह उनको प्रसन्न किया। तब महामुनि अगस्त्य जी ने मेरी प्रार्थना से प्रसन्न होकर कहा—बालिका जानकर ही इसको सामान्य शाप दिया है किन्तु यह अन्यथा होनेवाला नहीं है।१०। मेरी कन्या कल्याणी सुभ्रू भामिनी ने अगस्त्य जी के इस शाप से ही विशाल के घर जन्मग्रहण किया है।११। मैं इसी के लिये यहाँ आया हूँ, अब राजकन्या इस मेरी कन्या को ग्रहण करो। इसके गर्भ से तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा।१२

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वेति तस्याश्च स पाणिं पार्थिवात्मजः । जग्राह विधिवद्धोमं चक्रे तत्र च तुम्बुरुः ॥१३
प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । पुष्पाणि ससृजुर्मेघा देववाद्यानि सस्वनुः ॥१४
विवाहे राजपुत्रस्य तया तत्र समेयुषः । समस्तवसुधात्राणकर्तृकारणभूतया ॥१५
ततो गन्धर्वलोकं ते सह तेन महात्मना । निःशेषेण ययुः सा च स राजसुतो मुने ॥१६
भामिन्या मुमुदे सार्द्धमविक्षिन्नृपनन्दनः । सा च तेन समं तत्र भोगसम्पत्समन्विता ॥१७
कदाचिदतिरम्येऽसौ नगरोपवने तया । विक्रीडति समं तन्व्या कदाचिदुपपर्वते ॥१८
कदाचित्पुलिने नद्या हंससारसशोभिते । कदाचिद्भवनस्यान्ते प्रासादे चातिशोभने ॥१९
विहारदेशेष्वन्येषु रमणीयेष्वहर्निशम् । स रेमे सहितस्तन्व्या सा च तेन महात्मना ॥२०
भक्ष्यानुलेपनं वस्त्रं स्रक्पानादिकमुत्तमम् । उपाजह्रुस्तयोस्तत्र मुनिगन्धर्वकिन्नराः ॥२१
तया च रमतस्तस्य भामिन्या सह दुर्लभे । गन्धर्वलोके वीरस्य पुत्रं सा सुषुवे शुभा ॥२२
तस्मिञ्जाते महावीर्ये गन्धर्वाणां महोत्सवः । बभूव मनुजव्याघ्रे तेन कार्यमवेक्षताम् ॥२३
जगुः केचित्तथैवान्ये मृदङ्गपटहानकान् । अवादयन्त चैवान्ये वेणुवीणादिकांस्तथा ॥२४
ननृतुश्च तथा तत्र बहवोऽप्सरसां गणाः । पुष्पवृष्टिमुचो मेघा जगर्जुर्मृदुनिस्वनाः ॥२५

मार्कण्डेय जी बोले—गंधर्व का वचन राजपुत्र ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार पूर्वक उस कन्या का पाणिग्रहण किया और गंधर्वों के पुरोहित तुम्बुरु ने यथाविधि होमकार्य संपादित किया ।१३। उस काल देवता गंधर्वों ने संगीत और अप्सराओं ने नाचना आरंभ किया । मेघों ने पुष्पों की वर्षा की और देवताओं के बाजे बजने लगे ।१४। हे मुने ! अनन्तर संपूर्ण पृथ्वीमण्डल के पालनकर्त्ताओं की कारण स्वरूप (जननी) इस कुमारी के संग राजपुत्र के विवाहकाल में ।१५। आये हुए सब गंधर्व उस महात्मा तनय के सहित गंधर्वलोक में चले गये और राजकन्या तथा वह राजपुत्र भी उन्हीं के संग गये ।१६। वहाँ नृपनंदन अविक्षित भामिनी के सहवास से जिस प्रकार आनन्दित हुए, भोगसम्पत्तशालिनी भामिनी भी अवीक्षित के सहवास से उसी प्रकार संतोष को प्राप्त हुई ।१७। वह वहाँ उस कृशाङ्गी के सहित कभी अत्यन्त मनोहर नगर के उपवन में और कभी उपपर्वतों में क्रीड़ा करने लगे ।१८। कभी हंस सारसशोभित नदी के पुलिन में, कभी मन्दिरों में मनोहर ऊँचे महलों पर ।१९। और कभी अन्यान्य रमणीय विहार प्रदेश में तन्वी के संग राजपुत्र और महानुभाव राजपुत्र के संग भामिनी, इस प्रकार वह परस्पर दिनरात रमण करने लगे ।२०। मुनि, गंधर्व और किन्नरगण उनको उत्तम भक्ष्य पानीय, वस्त्र, माल्य और अनुलेप इत्यादि उपहार प्रदान करने लगे ।२१। उस दुर्लभ गंधर्वलोक में भामिनी के संग महावीर राजकुमार के इस प्रकार विहार करने पर कालक्रम से कल्याणी ने एक पुत्र प्रसव किया ।२२। हे मनुजव्याघ्र ! महावीर्यशाली इस पुत्र के उत्पन्न होने पर उसके द्वारा भविष्यत् प्रयोजन सिद्ध होने की आशा से गंधर्वों में महाउत्सव उपस्थित हुआ था ।२३। उनमें कोई गान करने लगा तथा कोई मृदंग पटह (बाजे) आनक ढोलादि और कोई वेणु इत्यादि बजाने लगा ।२४। उस काल अप्सरायें नाचने लगीं और संपूर्ण मेघ फूलों की वर्षा करते-करते मृदु मन्द शब्द से गर्जने लगे ।२५। हे मुने ! इस प्रकार पूर्ण कोलाहल

तथा कोलाहले तस्मिन्वर्तमानेऽथ तुम्बुरुः । प्रणयेन स्मृतोऽभ्येत्य जातकर्माकरोन्मुनिः ॥२६
देवाः समाययुः सर्वे तथा देवर्षयोऽमलाः । पातालात्पन्नगेन्द्राश्च शेषवासुकितक्षकाः ॥२७
तथा देवासुराणां च ये प्रधाना द्विजोत्तम । यक्षाणां गुह्यकानां च वायवश्च तथाऽखिलाः ॥२८
तदाऽऽगतैरशेर्षाषदेवदानवपन्नगैः । मुनिभिश्चाकुलमभूद्गन्धर्वाणां महत्पुरम् ॥२९
ततः स तुम्बुरुः कृत्वा जातकर्मादिकाः क्रियाः । चक्रे स्वस्त्ययनं तस्य बालस्य स्तुतिपूर्वकम् ॥३०
चक्रवर्ती महावीर्यो महाबाहुर्महाबलः । महान्तं कालमीशित्वमशेषायाः क्षितेः कुरु ॥३१
इमे शक्रादयः सर्वे लोकपालस्तथर्षयः । स्वस्ति कुर्वन्तु त वीर वीर्यं चारिविनाशनम् ॥३२
मरुत्तव शिवायास्तु वाति पूर्वेण योऽरजाः । मरुत्ते विमलोऽक्षीणोऽवैषम्यायास्तु दक्षिणः ॥३३
पश्चिमस्ते मरुद्वीर्यमुत्तमं ते प्रयच्छतु । बलं यच्छतु चोत्कृष्टं मरुत्ते च तथोत्तरः ॥३४
इति स्वस्त्ययनस्यान्ते वागुवाचा शरीरिणी । मरुत्तवेति बहुशो यदिदं गुरुरब्रवीत् ॥३५
मरुत्त इति तेनायं भुवि ख्यातो भविष्यति । भुवि चास्य महीपाला यास्यन्त्याज्ञावशा यतः ॥३६
एष सर्वक्षितीशानां वीरः स्थास्यति मूर्द्धनि । चक्रवर्त्ती महावीर्यः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥३७
आक्रम्य पृथिवीपालानयं भोक्ष्यत्यवारितः । प्रधानः पृथिवीशानां भविष्यत्येष यज्विनाम् ॥
आधिक्यं शौर्यवीर्येण भविष्यत्यस्य राजसु ॥३८

की अवस्था में तनय के स्मरण करते ही तुम्बुरु ने वहाँ आकर जातकर्म संस्कार संपादन किया ।२६। हे द्विजोत्तम! क्रमानुसार संपूर्ण देवता, निष्पाप देवर्षिगण, पाताल से शेष, वासुकि, तक्षक इत्यादि पन्नग ।२७। राजगण, देव, असुर, यज्ञ और गुह्यकों में प्रधान व्यक्तिगण और समस्त वायुकुल आकर उपस्थित हुआ ।२८। उस काल आये हुए संपूर्ण ऋषि, देव, दानव, पन्नग और मुनियों से गंधर्वों का महानगर व्याप्त हो गया ।२९। तदनन्तर जातकर्मादि कार्यसंपादन के बाद उन तुम्बरु ने स्तुतिपूर्वक इस प्रकार बालक का स्वस्त्ययन किया ।३०। हे वीर ! तुम महाबल, महावीर्य और महाबाहु सार्वभौम होकर बहुत काल तक संपूर्ण पृथ्वी का आधिपत्य करो ।३१। यह समस्त इन्द्रादि लोकपाल और ऋषिगण तुम्हारा मंगलसाधक और शत्रुविनाशक वीर्य विधान करें ।३२। पूर्वदिशा से बहती हुई धूलिरहित मरुत् (वायु) तुम्हारा मंगल विधान करे । अक्षीण विमल दक्षिण का पवन तुम्हारे ऊपर अनुकूलता में स्थित हो ।३३। और पश्चिम का मरुत् तुमको महावीर्य और उत्तर का पवन तुमको उत्कृष्ट बल प्रदान करे ।३४। इस प्रकार स्वस्त्ययन कार्य के समाप्त होने पर आकाशवाणी हुई कि "गुरु ने बारंबार मरुत्" इस प्रकार उच्चारण किया है ।३५। इस कारण यह बालक 'मरुत्त' नाम से भूमण्डल में विख्यात होगा और संपूर्ण महीपाल इसके आज्ञावर्ती होंगे ।३६। अत एव यह बालक सब राजाओं का शीर्षस्थानीय होगा और महावीर्य चक्रवर्त्ती होकर सदा पृथ्वीपालगणों पर आक्रमण करके इस सप्तद्वीपवती पृथ्वी का भोग करेगा । यह बालक पृथ्वीश्वरों में यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ होगा और सब राजाओं की अपेक्षा शौर्य वीर्य में अधिकता लाभ करेगा ।३७-३८

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य वचः सर्वे केनाप्युक्तं दिवौकसाम् । तुतुषुर्विप्रगन्धर्वाश्चास्य माता तथा पिता ।।३९

इति श्री मार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितेऽविक्षितो मरुत्तपुत्रोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२४।

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मरुत्तचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स राजपुत्रस्तमादाय दयितं सुतम् । पत्नीं चानुगतो विप्र गन्धर्वैराययौ पुरम्।।१
स पितुर्भवनं प्राप्य ववन्दे पितुरादरात् । चरणौ सा च तन्वङ्गी ह्रीमती नृपतेः सुता ।।२
तथाह राजपुत्रोऽसौ गृहीत्वा बालकं सुतम् । धर्मासनगतं भूपं राज्ञां मध्ये करन्धमम् ।।३
मुखं पौत्रस्य पश्यैतदुत्सङ्गस्थस्य यन्मया । किमिच्छके प्रतिज्ञातं तुभ्यं मातुः कृते पुरा ।।४
इत्युक्त्वा पितुरुत्सङ्गे तं कृत्वा तनयं ततः । यथावृत्तमशेषं स कथयामास तस्य तत् ।।५
स परिष्वज्य तं पौत्रमानन्दास्राविलेक्षणः । स भाग्योऽस्मीत्यथात्मानं प्रशशंस पुनः पुनः ।।६
ततः सोऽर्घ्यादिना सम्यग्गन्धर्वान्समुपागतान् । सम्मानयामास मुदा विस्मृतान्यप्रयोजनः ।।७

मार्कण्डेय जी बोले—किसी देवता के उच्चारित यह वचन (देववाणी) सुनकर संपूर्ण विप्र, गंधर्व और बालक के माता-पिता परमसंतोष को प्राप्त हुए ।३९

श्रीमार्कण्डेयपुराण में अविक्षितचरितवर्णन में मरुत्तपुत्रोत्पत्ति नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२४।

अध्याय १२५

मरुत्तचरित्र का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे विप्र ! इसके उपरान्त राजपुत्र प्रिय पुत्र को लेकर स्त्री सहित अपने नगर में आये । आने के समय गन्धर्वों ने पैदल ही उनका अनुगमन किया था ।१। उन्होंने पिता के भवन में पहुँचकर भक्तिसहित पिता के चरणों की वंदना की और फिर कृशाङ्गी राजकन्या ने भी लज्जित भाव से मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ।२। तदनन्तर राजपुत्र ने बालक पुत्र को ग्रहण करके राजाओं के मध्य में धर्मासन में बैठे हुए पिता करन्धम से कहा ।३। ''मैंने पूर्व में जननी के कारण किमिच्छकव्रत के समय आप से जो प्रतिज्ञा की थी, यह उसी पौत्र को गोदी में लेकर पौत्रमुख देखिये'' ।४। यह कहकर पिता की गोदी में पुत्र को दे उनसे सब वृत्तान्त वर्णन किया ।५। राजा आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रों से पौत्र को आलिंगन करके ''सौभाग्यवान् हुआ हूँ'' इस प्रकार कहते हुए बारंबार अपनी प्रशंसा करने लगे ।६। इसके बाद हर्ष के कारण अन्यान्य कार्य भूलकर आये हुए गंधर्वों का अर्घ्यादि के द्वारा सन्मान किया ।७। हे महामुने !

ततः पुरे महानासीदानन्दः पौरवेश्मसु । अस्माकं सन्ततिर्जाता नाथस्येति महामुने ।।८
हृष्टपुष्टे पुरे तस्मिन्गीतवाद्यैर्वराङ्गनाः । विलासिन्योऽतिचार्वङ्ग्यो ननृतुर्लास्यमुत्तमम् ।।९
राजा च द्विजमुख्येभ्यो रत्नानि च वसूनि च । गावो वस्त्राण्यलङ्कारानददाद्धृष्टमानसः ।।१०
ततः स बालो ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी ।पितॄणां प्रीतिजनको जनस्येष्टश्च सोऽभवत् ।।११
आचार्याणां सकाशात्स प्राग्वेदाञ्जगृहे मुने । ततः शास्त्राण्यशेषाणि धनुर्वेदं ततः परम् ।।१२
कृतोद्योगो यदा सोऽभूत्खड्गकार्मुककर्मणि । अन्येषु च तथा वीरः शस्त्रेषु विजितश्रमः ।।१३
ततोऽस्त्राणि स जग्राह भार्गवाद्भृगुसम्भवात् । विनयावनतो विप्र गुरोः प्रीतिपरायणः ।।१४
गृहीतास्त्रः कृती वेदे धनुर्वेदस्य पारगः । निष्णातः सर्वविद्यासु न बभूव ततः परः ।।१५
विशालोऽपि सुतावार्त्तामुपलभ्याखिलामिमाम् । हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दौहित्रस्य च योग्यताम् ।।१६
अथ राजा सुतसुतं दृष्ट्वा प्राप्तमनोरथः । यज्ञाननेकान्निष्पाद्य दत्त्वा दानानि चार्थिनाम् ।।१७
कृतशेषक्रियो युक्तः स वर्णैर्धर्मतो महीम् । परिपाल्यारिविजयी बलबुद्धिसमन्वितः ।।१८
स यियासुर्वनं पुत्रमविक्षितमभाषत । पुत्र वृद्धोऽस्मि गच्छामि वनं राज्यं गृहाण मे ।।१९
कृतकृत्योऽस्मि नास्त्यन्यत्किञ्चित्त्वदभिषेचनात् । सुनिष्पन्नमतो राज्यं त्वं गृहाण मयार्पितम् ।।२०
इत्युक्तः पितरं प्राह सोऽविक्षिन्नृपनन्दनः । प्रश्रयावनतो भूत्वा यियासुस्तपसे वनम् ।।२१

उस समय नगर में समस्त पौर जनों के घर "हमारे रक्षाकर्त्ता राजा के सन्तान हुई है" यह कहकर महान् आनन्द उत्सव होने लगा।८। उस आनंदपूर्ण पुर के विशाल आँगन में सुन्दरी विलासिनीगण गीत वाद्यसहित उत्तम नृत्य करने लगी।९। राजा हर्षित चित्त से गुणशाली ब्राह्मणों को धन, रत्न, वस्त्र, गहने और गायें दान करने लगे।१०। तदनन्तर वह बालक शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़कर पिता को प्रीतिप्रद और साधारण मनुष्यों का प्रियतम हो गया।११। हे मुने! उस बालक ने यथाकाल में आचार्य के निकट से प्रथम वेद फिर अन्यान्य सब शास्त्र और इसके बाद धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की।१२। अन्त में वह वीर बालक जब शास्त्रों में श्रम कर चुका तब खड्ग, धनुष और अन्यान्य शस्त्र की प्रयोगशिक्षा में उद्योगी हुआ।१३। हे विप्र! तब उसने विनय से नम्र और गुरु को प्रीतिपरायण होकर भृगुवंशीय भार्गव के निकट से संपूर्ण अस्त्रग्रहण किये।१४। इसी प्रकार अस्त्र ग्रहण कर धनुर्वेद का पारगामी हो कृतकार्य हुआ धनुर्विद्या में पारग तथा और सब भी सब विद्या में पारदर्शी हो गया। उस काल इसकी अपेक्षा इन सब विषयों में और कोई श्रेष्ठ नहीं था।१५। अपनी कन्या की समस्त वार्त्ता जानकर और दौहित्री की योग्यता उपलब्ध करके विशालराजा का भी चित्त हर्ष से परिपूर्ण हो गया।१६। पौत्रमुख देखने से प्राप्त मनोरथ, शत्रुविजयी और बलबुद्धिमान् राजा करन्धम ने अनेकानेक यज्ञ संपादन कर अर्थियों को बहुत से दान।१७। और सब भाँति सत्कार्य हो बलबुद्धिपूर्वक यथाधर्म पृथ्वीपालन करते हुए।१८। कुछ काल बाद वन जाने की इच्छा करके पुत्र अविक्षित से कहा "हे पुत्र! मैं बूढ़ा हो गया हूँ अब वन में जाने की अभिलाषा करता हूँ तुम मुझसे यह राज्य ग्रहण करो।१९। मैं समस्त विषयों में ही कृतार्थ हो गया हूँ, अब तुम्हारे अभिषेक के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं है, अत एव तुम यह मेरा दिया सब भाँति सम्पन्न राज्य ग्रहण करो"।२०। नृपनन्दन अविक्षित ने पिता का वचन सुन, उन्होंने भी वन जाने की इच्छा कर

नाहं तात करिष्यामि पृथिव्याः परिपालनम् । नापैति ह्रीर्मे मनसि राज्येऽयं त्वं नियोजय ।।२२
तातेन मोक्षितो बद्धो न स्ववीर्यादहं यतः । ततः कियत्पौरुषं मे पुरुषैः पाल्यते मही ।।२३
योऽहं न पालनायालमात्मनोऽपि वसुन्धराम् । स कथं पालयिष्यामि राज्यमन्यत्र विक्षिप ।।२४
स स्त्रीसधर्मा पुरुषो यश्चान्येनावद्रुह्यते । आत्माऽमोहाय भवता बन्धनाद्येन मोक्षितः ।।२५
सोऽहं कथं भविष्यामि स्त्रीसधर्मा महीपतिः । स्त्रियः पुमान्भवेद्भर्त्ता य शूरः स महीपतिः ।।२६

पितोवाच

न भिन्न एव पुत्रस्य पिता पुत्रस्तथा पितुः । नान्येन मोक्षितो वीर यस्त्वं पित्रा विमोक्षितः ।।

पुत्र उवाच

हृदयं नान्यथा नेतुं मया शक्यं नरेश्वर ।।२७
हृदये ह्रीर्ममातीव यस्त्वहं मोक्षितस्त्वया ।।२८
पित्रोपात्तां श्रियं भुङ्क्ते पित्रा कृच्छ्रात्समुद्धृतः । विज्ञायते च यः पित्रा मानवः सोऽस्तु नो कुले ।।२९
स्वयमर्जितवित्तानां ख्यातिं स्वयमुपेयुषाम् । स्वयं निस्तीर्णकृच्छ्राणां या गतिः साऽस्तु मे गतिः ।।३०

मार्कण्डेय उवाच

इत्याह बहुशः पित्रा यदाप्युक्त्वाऽप्यसौ मुने । तदा तस्य सुतं राज्ये मरुत्तमकरोन्नृपः ।।३१

विनयसहित पिता से कहा ।२१। हे पिता ! मैं पृथ्वीपालन नहीं करूँगा, अब तक मेरी यह लज्जा दूर नहीं हुई है, अत एव आप अन्य किसी को राज्य में नियोजित कीजिये ।२२। मैं बद्ध होकर पिता के द्वारा छुड़ाया गया था, अपने वीर्य से नहीं छूट सका, इसलिए मेरा पौरुष कितना है ? पुरुष ही पृथ्वीपालन करते हैं ।२३। मैं जब आत्मा अर्थात् अपनी ही रक्षा करने में असमर्थ हूँ तो किस प्रकार पृथ्वीपालन करूँगा ? कारण किसी दूसरे के हाथ में राज्यभार सौंपिये ।२४। मंत्रणाशील और धर्मशील होकर भी जो पुरुष शत्रुओंसे पराजित हो गया है और जो कभी मोह के वशीभूत होने योग्य नहीं है, उस आत्मा को जिस पुरुष ने आपके (पिता के) यत्न से बंधनमुक्त किया है वह स्त्रीजाति के समान धर्मवाला मैं किस प्रकार महीपति हूँगा ? ।२५-२६

पिता ने कहा—हे वीर ! पिता पुत्र से और पुत्र पिता से पृथक् नहीं है, अत एव मेरे द्वारा छूटना पराये द्वारा छूटने में नहीं है ।२७

पुत्र ने कहा—हे नरेश्वर ! मैं अब हृदय के वेग को नहीं फिरा सकता आपके द्वारा छूटने से मेरे हृदय में अत्यन्त लज्जा जागृत रहती है ।२८। जो पुरुष पिता की उपार्जन की हुई सम्पत्ति भोगता है, विपत्ति में पिता के द्वारा छुटकारा पाता है और पिता के नाम से परिचित होता है, वंश में ऐसे पुत्र का जन्म न होना ही उत्तम है ।२९। जो स्वयं धन उपार्जित करता है, स्वयं ख्याति लाभ करता है और स्वयं दुःख से छूट सकता है, उसको जो गति होती है मेरी भी वही गति हो ।३०

मार्कण्डेय जी बोले—हे मुने ! पिता के बारंबार अनुरोध करने पर भी जब राजपुत्र ने यही उत्तर दिया, तब राजा करन्धम ने उनके पुत्र मरुत्त को राज्य में राजा किया ।३१। मरुत्त पिता की अनुमोदित

स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् । चकार सम्यक्सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥३२
राजा करन्धमश्चापि वीरामादाय तां तथा । वनं जगाम तपसे यतवाक्कायमानसः ॥३३
तत्र वर्षसहस्रं स तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । विहाय देहं नृपतिः शक्रस्याप सलोकताम् ॥३४
सास्य पत्नी तदा वीरा वर्षाणामपरं शतम् । तपश्चचार विप्रर्षे जटिलामलपङ्किनी ॥३५
सालोक्यमिच्छती भर्तुः स्वर्गतस्य महात्मनः । फलमूलकृताहारा भार्गवाश्रमसंश्रया ॥
द्विजातिपत्नीमध्यस्था द्विजशुश्रूषणादृता ॥३६

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरिते पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२५।

(१२-८)

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मरुत्तचरितवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन्विस्तरात्सर्वं ममैतत्कथितं त्वया । करन्धमस्य चरितमविक्षिच्चरितं च यत् ॥१
अविक्षितस्य नृपतेर्मरुत्तस्य महात्मनः । श्रोतुमिच्छामि चरितं श्रूयते सोऽतिचेष्टितः ॥२
चक्रवर्त्ती महाभागः शूरः कान्तो महामतिः । धर्मविद्धर्मकृच्चैव सम्यक्पालयिता भुवः ॥३

मार्कण्डेय उवाच

स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् । धर्मतः पालयामास पिता पुत्रानिवौरसान् ॥४

राज्य पितामह से प्राप्त कर सुहृद्गणों का आनन्द सम्पादन पूर्वक सम्यक् प्रकार उसको शासन करने लगे ।३२। काय, मन, वचन से, संयत होकर तपस्या करने के लिये राजा करंधम अपनी पत्नी वीरा को संग लेकर वन में चले गये ।३३। वहाँ राजा करन्धम हजार वर्ष पर्यन्त कठिन तपस्या करके देहपरित्याग पूर्वक इन्द्रलोक को प्राप्त हुए ।३४। और वह इनकी पत्नी वीरा और भी सौ वर्षपर्यन्त जटा बढ़ाये हुए तप करती रही ।३५। और स्वर्ग में प्राप्त हुए महात्मा भर्त्ता के सालोक्य की इच्छा करने लगी और फल-मूल आहार करके भार्गव के आश्रम में रहने लगी । द्विजातिपत्नियों के मध्य में स्थित हुई उनकी शुश्रूषा और आदर को प्राप्त हुई ।३६

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मरुत्तचरित्र वर्णन नामक एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२५।

अध्याय १२६

मरुत्तचरित्र का वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! आपने करन्धम और अविक्षित का संपूर्ण चरित विस्तारसहित वर्णन किया ।१। अब अविक्षित के पुत्र महात्मा मरुत्तराजा का चरित्र सुनने की इच्छा करता हूँ । सुना है कि वह अत्यन्त उद्यमशील, प्रतिष्ठित ।२। चक्रवर्ती, महाभाग, शूर, कमनीय, महामति, धर्मवित्, धर्मचारी और सम्यक् पृथ्वीपालक थे ।३

मार्कण्डेय जी बोले—मरुत्त पिता की अनुज्ञा से पितामह से राज्य को प्राप्त कर पिता जिस प्रकार

इयाज सुबहून्यज्ञान्यथावत्स्वाप्तदक्षिणान् । ऋत्विक्पुरोहितादेशादनिर्विण्णो महीपतिः ।।५
तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद्द्वीपेषु सप्तसु । गतिश्चाप्यनवच्छिन्ना स्वःपातालजलादिषु ।।६
ततः प्राप्य धनं विप्र यथावत्स्वक्रियापरः । अयजत्स महायज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ।।७
इतरे च यथावर्णाः स्वे स्वे कर्मण्यतन्द्रिताः । तदुपात्तधनाश्चक्रुरिष्टापूर्त्तादिकाः क्रियाः ।।८
पाल्यमाना मही तेन मरुत्तेन महात्मना । योऽस्पर्द्धात्त्रिदशावासवासिभिर्द्विजसत्तम ।।९
तेनातिशयिताः सर्वे केवलं न महीक्षितः । यज्विना देवराजोऽपि शतयज्ञाभिसन्धिना ।।१०
ऋत्विक्तस्य तु संवर्त्तो बभूवाङ्गिरसः सुतः । भ्राता बृहस्पतेर्विप्र महात्मा तपसां निधिः ।।११
सौवर्णो मुञ्जवान्नाम पर्वतः सुरसेवितः । पातितं तेन तच्छृङ्गं कृते तस्य महीपतेः ।।१२
तेन यस्याखिलं यज्ञे भूमिभागादिकं द्विज । प्रासादाश्च कृताः शुभ्रास्तपसा सर्वकाञ्चनाः ।।१३
गाथाश्चाप्यत्र गायन्ति मरुत्तचरिताश्रयाः । सातत्येनर्षयः सर्वे कुर्वन्तोऽध्ययनं यथा ।।१४
मरुत्तेन समो नाभूद्यजमानो महीतले । सदः समस्तं यद्यज्ञे प्रासादाश्चैव काञ्चनाः ।।१५
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः । विप्राणां परिवेष्टारः शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमाः ।।१६
यथा यज्ञे मरुत्तस्य तृप्ताः सर्वे महीपतेः । सुवर्णमखिलं त्यक्तं रत्नपूर्णगृहे द्विजैः ।।१७
प्रासादादिसमस्तं च सौवर्णं तस्य यत्क्रतौ । त्रयो वर्णाह्यलभ्यन्त तस्मात्केचित्तथा ददुः ।।१८

औरसपुत्र का प्रतिपालन करता है, यावतीय प्रजा को वसे ही धर्मानुसार पालन करने लगे ।४। याज्ञिक और पुरोहितों की आज्ञापालन में मन लगाकर उन महीपति ने महादक्षिणायुक्त यथाविधान से अनेकानेक यज्ञ संपादन किये थे ।५। सप्तद्वीप में उनका रथचक्र अप्रतिहत था और आकाश, पाताल और जलादि के स्थान में भी उनकी गति नहीं रुकती थी ।६। हे विप्र ! उन स्वकर्मपरायण मरुत्त ने धन को प्राप्त हो संपूर्ण महायज्ञों के अनुष्ठान द्वारा इन्द्र इत्यादि देवताओं का यजन किया था ।७। अन्यान्य समस्त वर्ण भी अपने अपने कर्म में तत्पर रहकर उनके ही निकट से प्राप्त किये धनद्वारा इष्टापूर्त्तादि क्रिया संपादन करते थे । हे द्विजश्रेष्ठ ! पृथ्वी महात्मा मरुत्त से प्रतिपालित होकर देवताओं के सहित भी स्पर्द्धा करती थी ।९। मरुत्त केवल महीपालों में ही प्रधानता को प्राप्त नहीं हुए थे, वरन् सैकड़ों यज्ञों का अनुष्ठान करके वह देवराज इन्द्र की अपेक्षा भी प्रधान हुए थे ।१०। हे विप्र ! अंगिरा के पुत्र, बृहस्पति के भ्राता तपोनिधि महात्मा संवर्त्त उनके ऋत्विक् थे ।११। हे द्वि ! देव-सेवित मुञ्जवान् नामक सुवर्णमय एक पर्वत है, ऋत्विक् तपोबल से उसका शृंग उखाड़कर राजा के लिये लाये थे ।१२। राजा की यज्ञीय समस्त भूभाग और भली भाँति के कांचनमय निर्मल महलों से युक्त इस शृंग के द्वारा तपोबल से निर्मित हुई थी ।१३। ऋषिगण इन मरुत्त का चरित अवलम्बन करके सदा इस प्रकार गाथा गान और अध्ययन करते थे ।१४। कि "जिनके यज्ञ में समस्त सभा और प्रासाद कांचनमय किये गये थे । इन्द्र सोम पीने से और ब्राह्मणगण दक्षिरा पाने से मत्त हो उठे थे तथा इन्द्रादि प्रधान-प्रधान देवता ब्राह्मणों को परोसने वाले घेरे हुए थे, उन मरुत्त के समान यज्ञशील किसी मनुष्य ने पृथ्वी में जन्मग्रहण नहीं किया ।१५-१६। महीपति मरुत्त के समान और किस के यज्ञ में ब्राह्मणगण सब रत्नपूर्ण घरों में सुवर्ण राशि को त्याग सके थे ? ।१७। उनके यज्ञ काल में ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण सुवर्णमय प्रासादादि समस्त वस्तु को प्राप्त हुए

(तेन त्यक्तेन शिष्टा ये जनाः पूर्णमनोरथाः । तेऽपि यज्ञान्यजन्ते स्म देशे देशे पृथक्पृथक् ।।)
तस्यैवं कुर्वतो राज्यं सम्यक्पालयतः प्रजाः । तपस्वी कश्चिदभ्येत्य तमाह मुनिसत्तम ।।१९
पितुर्माता तवाहेदं दृष्ट्वा तापसमण्डलम् । विषाभिभूतमुरगैर्मदोन्मत्तैर्नरेश्वर ।।२०
पितामहस्ते स्वर्यातः सम्यक्संपाल्य मेदिनीम् । पिता तव तथा शक्तो हित्वा ग्रामं वनं गतः ।।
(तपश्चरणशक्ताऽहमिह चौर्वाश्रमे स्थिता) ।।२१
साऽहं पश्यामि वैकल्यं तव राज्यं प्रशासतः । पितामहस्य तेनाभूद्यत्पूर्वेषां च ते नृप ।।२२
नूनं प्रमत्तो भोगेषु सक्तो वाऽविजितेन्द्रियः । चारान्धता यतोऽस्तीयं दुष्टादुष्टं न वेत्सि यत् ।।२३
पातालादभ्युपेतैस्तु भुजगैर्दंशशालिभिः । दष्टा मुनिसुताः सप्त दूषिताश्च जलाशयः ।।२४
स्वेदमूत्रपुरीषेण दूषितं सुभृतं हविः । अपराधं समुद्दिश्य दत्तो नागबलिश्चिरात् ।।२५
एते समर्था मुनयो भस्मीकर्तुं भुजङ्गमान् । किन्त्वेषां नाधिकारोऽत्र त्वमेवाधिकारवान् ।।२६
तावत्सुखं भूपतिजैर्भोगजं प्राप्यते नृप । अभिषेकजलं यावन्न मूर्ध्नि विनिपात्यते ।।२७
कानि मित्राणि कः शत्रुर्मम शत्रोर्बलं कियत् । कोऽहं के मन्त्रिणः पक्षे के वा भूपतयो मम ।।२८
(कियान्कोशो बलं किंवा कोऽनुरक्तो जनो मम) । विरक्तो वा परैर्भिन्नः परेषामपि कीदृशः ।।
कः सम्यगत्र नगरे विषये वा जनो मम ।।२९

थे। उनके अतिरिक्त और किसने ऐसा दान किया था।१८। (उनका दिया हुआ धन पाकर जो शिष्टपुष्ट उनके यज्ञ में पूर्णमनोरथ हुए थे, उन्होंने भी पृथक्-पृथक् देश में पृथक्-पृथक् सब यज्ञ संपादन किये थे) हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार उनके सम्यक् राज्यशासन और प्रजापालन काल में एक समय किसी तपस्वी ने आकर उनसे कहा।१९। हे नरेश्वर ! तापसमण्डली को मदोन्मत्त सर्पों के विष द्वारा पीड़ित होता देखकर तुम्हारी पितामही दादी ने यह बात कहला भेजी है।२०। "कि, तुम्हारे पितामह सम्यक् प्रकार पृथ्वी पालन करके स्वर्ग में गये हैं और तुम्हारे पिता भी ग्राम में छोड़कर वन को गये हैं (मैं भी इस समय तपस्या में आसक्त होकर औौर्वाश्रम में वास करती हूँ।२१। हे नृप ! तुम्हारे पितामह या तुम्हारे अन्यान्य पूर्वपुरुषों के राज्यसमय में जो घटना कभी नहीं हुई, तुम्हारे शासनकाल में वही विकलता देखती हूँ।२२। तुम निस्सन्देह प्रमत्त अथवा अजितेन्द्रिय होकर भोग में आसक्त हुए हो और तुमको दूतों का ना रखना उपस्थित हुआ है इसी कारण तुम दुष्टादुष्ट जानने में असमर्थ हो।२३। दंशनशाली भुजङ्गगणों ने पाताल से आकर सात मुनिपुत्रों को डसा है और स्वेद, मूत्र तथा पूरीषद्वारा समस्त जलाशय और होम की हवि को दूषित कर डाला है। इस कारण मुनिगण अपराध हुआ समझकर नागों को बलि देते हैं।२४-२५। यह समस्त मुनि सर्पों को भस्म करने में समर्थ हैं किन्तु इसमें (शासनविषय में) उनका अधिकार नहीं है, तुम्हीं उस कार्य में अधिकारी हो।२६। हे भूप ! राजपुत्रगण तब तक भोगजनित सुख भोग सकते हैं जब तक उनके मस्तक में अभिषेक का जल नहीं गिरता।२७। "कौन मित्र है ? कौन शत्रु है ? कितना शत्रुका बल है ? मैं कौन हूँ ? कौन मंत्री है ? कौन कौन राजा अपने पक्ष में है।२८। (मेरे पास कितना कोष और बल है ? मुझमें कौन जन अनुरक्त है ?) कौन विरक्त है ! कौन शत्रु के द्वारा भेद को प्राप्त हुआ है ? शत्रुओं में कौन किस प्रकार है ? अपने नगर या राज्य में कौन भली भाँति

धर्मकर्माश्रियो मूढः कः सम्यगपि वर्त्तते । को दण्डचः परिपाल्यः कः के चोपेक्ष्या नरा मया ॥३०
सामभेदतया दम्या देशकालमवेक्षता । चारांश्च चारयेदन्यैरज्ञातान्भूपतिश्चरैः ॥३१
सचिवादिषु सर्वेषु चरान्दद्यान्महीपतिः । इत्यादौ भूपतिर्नित्यं कर्मण्यासक्तमानसः ॥३२
नयेद्दिनं तथा रात्रिं न तु भोगपरायणः । राज्ञां शरीरग्रहणं न भोगाय महीपते ॥३३
क्लेशाय महते पृथ्वी स्वधर्मपरिपालने । सम्यक्पालयतः पृथ्वीं स्वधर्मं च महीपते ॥३४
इह क्लेशो महान्स्वर्गे परमं सुखमक्षयम् । तदेतदवबुध्यस्व हित्वा भोगान्नरेश्वर ॥३५
पालनाय क्षितेः क्लेशमङ्गीकर्तुमिहार्हसि । इति वृत्तमृषीणां यद्व्यसनं त्वयि शासति ॥३६
भुजङ्गहेतुकं भूप चारान्धो नापि वेत्सि तत् । बहुनात्र किमुक्तेन दुष्टे दण्डो निपात्यताम् ॥३७
शिष्टान्पालय राजंस्त्वं धर्मषड्भागमाप्स्यसि । अरक्षन्पापमखिलं दुष्टैरविनयात्कृतम् ॥३८
समवाप्स्यस्यसन्दिग्धं यदिच्छसि कुरुष्व तत् । एतन्मयोक्तं सकलं यत्तवाहं पितामहः ॥
कुरुष्वैवं स्थिते यत्ते रोचते वसुधाधिप ॥३९

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरितवर्णनं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२६।

धर्मकर्माश्रयी है ।२९। और कौन मूर्ख वास करता है ? कौन दण्डनीय अर्थात् दण्ड देने योग्य है ? कौन पालन करने योग्य है ? कौन उपेक्षा के योग्य है ? ।३०। संधिभेद के भय से देशकाल का विचार कर किसके प्रति दृष्टि रखनी उचित है ?" यह सब वृत्तान्त जानने के लिये राजा अन्यचर (दूत) के अपरिचित चर को नियुक्त करे ।३१। महीपति समस्त सचिवादि के प्रति भी दूत को नियुक्त करें । भूपति इस प्रकार कार्य में सदा आसक्तचित्त हो ।३२। दिन रात बितावें कभी भोगपरायण होना राजा को उचित नहीं है । हे महीपते ! राजाओं का शरीर धारण करना भोग के निमित्त नहीं है ।३३। पृथ्वी और अपना धर्म पालन के कारण महाक्लेश ही उनको भोगना होता है । राजाओं को स्वधर्म और पृथ्वीपालन करने से ।३४। इस जन्म में अत्यन्त क्लेश भोगने पर भी परकाल में स्वर्ग जाने पर उनको अक्षय सुख प्राप्त होता है, हे नरेश्वर ! यह सब विचार कर भोग परित्यागपूर्वक ।३५। तुमको पृथ्वीपालन के कारण क्लेश अंगीकार करना उचित है । हे भूप ! तुम्हारे शासनकाल में यह जो ऋषियों का सर्पों से दुःख उपस्थित हुआ है ।३६। तुम दूतों के न रखने कारण ही उसको नहीं जान सके अधिक और क्या कहूँ ? हे राजन् ! तुम दुष्टों को दंड ।३७। और शिष्ट पुरुषों का प्रतिपालन करो । इसमें धर्मफल का छठा भाग प्राप्त होगा । दुष्टगण उद्धताके सहित जो करते हैं उससे रक्षा न करने पर ।३८। तुम निस्सन्देह पाप के भागी होंगे । अब जो कर्त्तव्य विचारो, वह करो । हे वसुधाधिप ! मैं ही तुम्हारी पितामही हूँ इसी कारण मैंने यह सब कहा । इस स्थल में जो तुम्हें अच्छा लगे उसी के अनुसार कार्य करो ।३९

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मरुत्तचरित्र वर्णन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२६।

(१३०)

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मरुत्तचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति तापसवाक्यं स श्रुत्वा लज्जापरो नृपः । धिङ्मां चारान्धमित्युक्त्वा निःश्वस्य जगृहे धनुः ।।१
ततः स त्वरितं गत्वा तमौर्वस्याश्रमं प्रति । ववन्दे शिरसा वीरां मातरं पितुरात्मनः ।।२
तापसांश्च यथान्यायं तैश्चाशीर्भिरभिष्टुतः । दृष्ट्वा च तापसान्सप्त नागैर्दष्टान्मृतान्भुवि ।।३
निनिन्दात्मानमसकृत्पुरस्तेषां महीपतिः । उवाच चैतदद्याहं मद्वीर्यमवमन्यताम् ।।४
यत्करोमि भुजङ्गानां दुष्टानां ब्राह्मणद्विषाम् । तत्पश्यतु जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।।५

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा जगृहे कोपादस्त्रं संवर्तकं नृपः । नाशायाशेषनागानां पातालोर्वीविचारिणाम् ।।६
ततो जज्वाल सहसा नागलोकः समन्ततः । महास्त्रतेजसा विप्र दह्यमानोनिवारितः ।।७
हा हा तातेति हा मातर्हा हा वत्सेति संभ्रमे । तस्मिन्नस्त्रकृते वाचः पन्नगानामथाभवन् ।।८
केचिज्ज्वलद्भिः पुच्छाग्रैः फणैरन्ये भुजङ्गमाः । गृहीतपुत्रदाराश्च त्यक्ताभरणवाससः ।।९
पातालमुत्सृज्य ययुः शरणं भामिनीं तदा । मरुत्तमातरं पूर्वं यया दत्तं तदाभयम् ।।१०

अध्याय १२७

मरुत्तचरित का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—राजा ने तापस के यह वचन सुनने से लज्जित हो "मैं चारान्ध हूँ, मुझको धिक्कार है" यह कह, लम्बी श्वास छोड़ धनुष को ग्रहण किया ।१। और अत्यन्त शीघ्र और्वाश्रम में जाकर मस्तक झुकाकर पितामही वीरा को ।२। और तापसगणों को यथाविहित प्रणाम किया । उन्होंने भी उनकी सम्यक् प्रकार आशीर्वाद वचनों से स्तुति की । इसके उपरान्त राजा ने सर्पदष्ट सात तापसों को मृतक होकर भूमि में पड़ा देख ।३। मुनियों के सामने बारंबार अपनी निन्दा करके कहा—यह दुष्ट भुजंग मेरे बल का तिरस्कार करके ।४। ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं, मैं उनको अब जो अवस्था करता हूँ वह देव, दैत्य और नरलोक के सहित संपूर्ण जगत् देखे ।५

मार्कण्डेय जी बोले—राजा ने इस प्रकार कहकर पाताल और महीतलवासी संपूर्ण नागकुल के विनाशार्थ क्रोधपूर्वक संवर्त्तक अस्त्र-ग्रहण किया ।६। हे विप्र ! उस काल संपूर्ण नागलोक उस महाअस्त्रों के तेज से सहसा जाज्वल्यमान हो गया और अनिवारित दग्ध होने लगा ।७। इस अस्त्रकाण्ड में भय से उद्विग्न पन्नगगण "हा माता ! हा तात ! हा वत्स" कहकर आर्त्तनाद करने लगे ।८। किसी की पूँछ और किसी का फण जलने लगी । तथा किसी किसी ने वस्त्र आभरणादि संपूर्ण परित्यागपूर्वक स्त्री पुत्र समेत ।९। पाताल छोड़कर मरुत्त की माता भामिनी का आश्रय ग्रहण किया । क्योंकि उसने पहले

तामुपेत्योरगाः सर्वे सप्रणामं भयातुराः । सगद्गदमिदं प्रोचुः स्मर्यतां नः पुरोदितम् ।।११
प्रणम्याभ्यर्थितं पूर्वं यदस्माभिः रसातले । तस्य कालोऽयमायातस्त्राहि वीरप्रजायिनि ।।१२
पुत्रो निवार्यतां राज्ञि प्राणैः संयोज्यमस्तु नः । दह्यते सकलो लोको नागानामस्त्रवह्निना ।।१३
एवं संदह्यमानानामस्माकं तनयेन ते । त्वामृते शरणं नान्यत्कृपां कुरु यशस्विनि ।।१४

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां संस्मृत्यादौ च भाषितम् । भर्त्तारमाह सा साध्वी ससम्भ्रममिदं वचः ।।१५
पूर्वमेव तवाख्यातं पाताले यद्भुजङ्गमैः । प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्वं ममासीत्तनयं प्रति ।।१६
त इमेऽभ्यागता भीता दह्यन्ते तस्य तेजसा । मामेते शरणं पूर्वं दत्तमेभ्यो मयाऽभयम् ।।१७
ये मां शरणमापन्नास्ते त्वां शरणमागताः । अपृथग्धर्मचरणा याताहं शरणं तव ।।१८
तन्निवारय पुत्रं त्वं मरुत्तं वचनात्तव । मया चाभ्यर्थितोऽवश्यं शममभ्युपयास्यति ।।१९

राजोवाच

महापराधे नियतं मरुत्तः क्रोधमागतः । दुर्निर्वर्त्यमहं मन्ये तस्य क्रोधं सुतस्य ते ।।२०

अभयप्रदान किया था ।१०। भयातुर समस्त उरगगणों ने उसके निकट उपस्थित होकर प्रणामपूर्वक गदगद् वचनों से कहा । पहले रसातल में प्रणाम और अर्चनापूर्वक आपके निकट हमने जो प्रार्थना की थी उसको स्मरण कीजिये । हे वीरप्रसू ! यह उसका समय उपस्थित हुआ है, इससे हमारी रक्षा कीजिये ।११-१२। हे राज्ञि ! पुत्र को निवारण करके हमको प्राणदान दो । संपूर्ण नागलोक अस्त्राग्निसे दग्ध हुआ जाता है ।१३। हे यशस्विनी ! तुम्हारा पुत्र हमको इस प्रकार दग्ध करता है अत एव तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई भी शरण देने वाला नहीं है, हमारे ऊपर तुम कृपा करो ।१४

मार्कण्डेय जी बोले—साध्वी भामिनी ने उन सर्पों के इस प्रकार वचन सुनने से पूर्वोक्त अपना अभयवाक्य स्मरण कर स्वामी के निकट संभ्रमसहित वचन कहे ।१५

भामिनी बोली—पाताल में भुजङ्गगणों ने प्रार्थना के सहित मेरे पुत्र के संबंध में जो कहा था, वह मैंने पहले ही आपसे कहा है ।१६। वही भुजङ्गगण इस समय पुत्र के तेज से जले जाते हैं, इसलिए यह भीत होकर मेरी शरण में आये हैं मैंने भी पूर्व में इनको अभयप्रदान किया है ।१७। देखो, जो मेरी शरणागत हैं वह अवश्य आपके भी शरणागत हैं, क्योंकि मैं एकधर्म का आचरण करके आपकी शरण में प्राप्त हुई हूँ ।१८। अत एव तुम पुत्र मरुत्त को निवारण करो । आपके वचन और मेरे अनुरोध से वह अवश्य ही शान्त होगा ।१९

अविक्षित ने कहा—इनके सदा अपराध करने के कारण ही मरुत्त को क्रोध उपस्थित हुआ है इसलिए तुम्हारा पुत्र का क्रोध सहज में ही निवारित होगा ऐसा बोध नहीं होता ।२०

नागा ऊचुः

शरणागतास्तव वयं प्रसादः क्रियतां नृप । क्षत्रस्यार्तपरित्राणनिमित्तं शस्त्रधारणम् ॥२१

मार्कण्डेय उवाच

नागानां तद्वचः श्रुत्वा भूतानां शरणैषिणाम् । तया चाभ्यर्थितः पत्न्या प्राहावीक्षिन्महायशाः ॥२२

गत्वा ब्रवीमि तं भद्रे तनयं त्वरया तव । परित्राणाय नागानां न त्याज्याः शरणागताः ॥२३

नोपसंहरते सोऽस्त्रं यदि मद्वचनान्नृपः । तदास्त्रैर्वारयिष्यामि तस्यास्त्रं तनयस्य ते ॥२४

मार्कण्डेय उवाच

ततो गृहीत्वा स धनुरविक्षित्क्षत्रियोत्तमः । भार्यया सहितः प्रायात्त्वरावान्भार्गवाश्रमम् ॥२५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरितवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२७।

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

(१३१)

मरुत्तचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

स तु तत्र सुतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्मुकम् । धनुः शस्त्रं च तस्योग्रं ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥१

उद्गिरन्तं महावह्निं दीपिताखिलभूतलम् । पातालान्तर्गतं प्राप्तमसह्यं घोरभीषणम् ॥२

नागों ने कहा—हे नृप ! हम आपकी शरण में आये हैं, हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिये, क्षत्रियगण आर्तमनुष्यों की रक्षा के लिये ही अस्त्रधारण करते हैं ।२१

मार्कण्डेय जी बोले—महायशा अविक्षित ने शरणेच्छु नागों के यह वचन सुनकर और पत्नी के द्वारा इस प्रकार प्रार्थित होकर उत्तर दिया ।२२। हे भद्रे ! मैं अभी तुम्हारे पुत्र के समीप जाकर नागों की रक्षा के लिये उससे कहता हूँ, शरणागत को त्याग करना कभी उचित नहीं है ।२३। यदि तुम्हारा पुत्र मरुत्त राजा ने मेरे वचन से अस्त्रसंहार नहीं करेगा तो मैं अस्त्र द्वारा उसका अस्त्रनिवारण करूँगा ।२४

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर क्षत्रियश्रेष्ठ अविक्षित धनुष ग्रहण करके भार्या के सहित शीघ्र भार्गवाश्रम में गये ।२५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मरुत्तचरित्रवर्णन नामक एक सौ सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ।१२७।

अध्याय १२८

मरुत्तचरित नामक वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—उन्होंने वहाँ आकर धनुषधारी धनुषपर शस्त्र चढ़ाये पुत्र को देखा कि, उनके उग्र शस्त्र की ज्वाला से सब दिशामण्डल व्याप्त हो रहा है ।१। जिसमें से महाअग्नि निकल रही है पृथ्वी प्रदीप्त हो रही है और वह असह्य घोर भीषण अग्नि पाताल तक पहुँच गई है ।२। उन्होंने देखा कि, राजा

स तं दृष्ट्वा महीपालं भृकुटीकुटिलाननम् । मा क्रुधस्त्वं मरुत्तास्त्रमुपसंह्रियतामिति ॥३
प्राहासकृच्चानुलुप्तवर्णक्रममुदारधीः । स निशम्य गुरोर्वाक्यं दृष्ट्वा तं च पुनः पुनः ॥४
गृहीतकार्मुकः पित्रोः प्रणिपत्य सगौरवम् । प्रत्युवाचापराद्धा मे सुभृशं पन्नगाः पितः ॥५
शासतीमां मयि महीं परिभूय बलं मम । सप्ताश्रममुपागम्य दष्टा मुनिकुमारकाः ॥६
ऋषीणामाश्रमस्थानाममीषामवनीपते । मयि शासति दुर्वृत्तैर्दूषितानि हवींषि च ॥७
जलाशयास्तथाप्येतैः सर्व एव हि दूषिताः । तदेत्कारणं किञ्चिन्न वक्तव्यं त्वया पितः ॥
न निवारयितव्योऽहं ब्रह्मघ्नान्प्रतिपन्नगान् ॥८

अविक्षिदुवाच

यद्येभिर्निहता विप्रा यास्यन्ति नरकं मृताः । ममैतत्क्रियतां वाक्यं विरमास्त्रप्रयोगतः ॥९

मरुत्त उवाच

नाहमेषां क्षमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् । अहमेव गमिष्यामि नरकं यदि पापिनाम् ॥
न निग्रहे यताम्येषां मां निवारय मा पितः ॥१०

अविक्षिदुवाच

मामेते शरणं प्राप्ताः पन्नगा मम गौरवात् । उपसंह्रियतामस्त्रमलं कोपेन ते नृप ॥११

मरुत्त उवाच

नाहमेषां क्षमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् । स्वधर्ममुल्लंघ्य कथं करिष्यामि वचस्तव ॥१२

मरुत्त का मुख भृकुटी से कुटिल हो रहा है तब उन्होंने कहा हे मरुत्त ! अस्त्रसंहार करो क्रोध मत करो।३। बारंबार यह कहने से उनके वचन में वर्णक्रम लुप्त होने लगे तब उस उदारबुद्धि ने पिता के वचन सुन और उन्हें देख।४। पिता-माता को हाथ में धनुष लिये ही प्रणाम कर सन्मान पूर्वक कहा—हे पिता ! यह पन्नगगण मेरे अत्यन्त अपराधी हैं।५। मेरे शासनकाल में मेरेबल की अवज्ञा करके इन्होंने आश्रम में आकर सात मुनिकुमारों को काटा है।६। और हे अवनीपति ! मेरे शासनकाल में इन दुर्वृत्त सर्पगणों ने इन समस्त आश्रमवासी ऋषियों को हवि और समस्त जलाशयों को दूपित किया है।७। अत एव हे पिता ! आप इनके संबंध में कुछ न कहें और ब्रह्मघाती पन्नगों के निधनकार्य में निवारण भी न करें।८

अविक्षित ने कहा—यदि इन्होंने ब्रह्महत्या की हो तो मृत्यु के उपरान्त नरक को प्राप्त होगे, तुम अस्त्रप्रयोग से विरत होकर मेरे वचन की रक्षा करो।९

मरुत्त ने कहा—यदि इन पापियों के निग्रह में यत्न न करूँ, तो मैं ही नरकगामी हूँगा, अत एव हे पिता ! मुझको निवारण न कीजिये मैं इन दुष्ट अपराधियों को क्षमा नहीं करूँगा।१०

अविक्षित ने कहा—यह पन्नगगण मेरी शरण में आये हैं, इस कारण हे नृप मेरे गौरव की रक्षा के लिये तुम क्रोध रोक कर अस्त्र का उपसंहार करो।११

मरुत्त ने कहा—मैं इन दुष्टअपराधियों को क्षमा नहीं करूँगा अपना धर्म उल्लंघन करके किस

दण्ड्ये निपातयन्दण्डं भूपः शिष्टांश्च पालयन् । पुण्यलोकानवाप्नोति नरकांश्चाप्युपेक्षणात् ।।१३

मार्कण्डेय उवाच

एवं स बहुशः पित्रा वार्यमाणोऽम्बया सह । नोपसंहरते सोऽस्त्रं ततोऽसौ पुनरब्रवीत् ।।१४
हिंससे पन्नगान्भीतान्ममैताञ्छरणं गतान् । वार्यमाणोऽपि तस्मात्ते करिष्यामि प्रतिक्रियाम् ।।१५
मयाप्यस्त्राण्यवाप्तानि न त्वमेकोऽस्त्रविद्भुवि । ममाग्रतः सुदुर्वृत्तपौरुषं च कियत्तव ।।१६
ततः कार्मुकमारोप्य कोपताम्रविलोचनः । अविक्षिदस्त्रं जग्राह कालस्य मुनिपुङ्गव ।।१७
ततो ज्वालापरीवारमरिसंघघ्नमुत्तमम् । कालास्त्रं तु महावीर्यं योजयामास कार्मुके ।।१८
ततश्चुक्षोभ जगती संवर्त्तास्त्रप्रतापिता । साब्धिशैलाऽखिला विप्र कालस्यास्त्रे समुद्यते ।।१९

मार्कण्डेय उवाच

कालास्त्रमुद्यतं पित्रा मरुत्तः सोऽपि वीक्ष्य तत् । प्राहोच्चैरस्त्रमेतन्मे दुष्टशास्तिसमुद्यतम् ।।२०
न त्वद्वधाय कालास्त्रं मयि मुञ्चति किं भवान् । स्वधर्मचारिणि सुते सदैवाज्ञाकरे तव ।।२१
मया कार्यं महाभाग प्रजानां परिपालनम् । त्वयैवं क्रियते कस्मान्मद्वधायास्त्रमुद्यतम् ।।२२

अविक्षिदुवाच

शरणागतसंत्राणं कर्तुं व्यवसिता वयम् । तस्य व्याघातकर्त्ता त्वं न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ।।२३

प्रकार आपके वचन की रक्षा करूँ ।१२। दण्डनीय पुरुषों को दण्डप्रदान और शिष्ट पुरुषों का पालन करके राजा समस्त पुण्य लोकों को प्राप्त होते हैं किन्तु, इसमें उपेक्षा करने से ही नरकगामी होते हैं ।१३

मार्कण्डेय जी बोले—पिता के इस प्रकार वारंबार निषेध करने पर भी जब पुत्र मरुत्त ने अस्त्रसंहार किया, तब अविक्षित ने फिर उनसे कहा ।१४। यह पन्नगगण भीत होकर मेरी शरण में आये हैं, इस कारण मेरे बारंबार निवारण करने पर भी तुम इनकी हिंसा करते हो, अत एव मैं इसका प्रतिकार करूँगा ।१५। भूमण्डल में केवल एक मात्र तुम्हीं अस्त्रवेत्ता नहीं हो, मैंने भी अनेक अस्त्रलाभ किये हैं हे दुर्वृत्त ! मेरे सन्मुख तेरा पौरुष नहीं है ।१६। हे मुनिपुंगव ! अविक्षित ने इस वचन के बाद क्रोध से ताम्रलोचन हो, धनुष पर रोदा चढ़ाकर कालास्त्र ग्रहण किया ।१७। और ज्वालापरिवृत, शत्रुविनाशक महावीर्य वह उत्तम कालास्त्र धनुष पर चढ़ाया ।१८। हे विप्र ! मरुत्त के संवर्त्तकास्त्र से तपित पर्वत समुद्रयुक्त संपूर्ण जगत् इस समय कालास्त्र के छूटने से क्षुब्ध हो गया ।१९। मरुत्त ने भी उस चढाये हुए कालास्त्र को देखकर उच्च स्वर से कहा—मेरा संवर्तक अस्त्र दुष्टों की शान्तिविधान के लिये उद्यत हुआ है ।२०। तुम्हारे वध के लिये नहीं है, तो फिर सत्पथावलम्बी और सर्वदा अपनी आज्ञा प्रतिपालन करने वाले पुत्र के प्रति आप किस किस निमित्त कालास्त्र छोड़ते हैं ।२१। हे महाभाग ! प्रजा का पालन करना ही मेरा कर्त्तव्य है, आप मेरे विनाशार्थ क्यों इस प्रकार अस्त्र उद्यत करते हो ।२२

अविक्षित ने कहा—मैं शरणागत पुरुषों की रक्षा करने के लिये कृतसंकल्प हूँ, तुम उस कार्य में बाधा करते हो, इस कारण तुम जीवित रहते मेरे निकट से रक्षा नहीं पा सकोगे ।२३। इस समय या तो तुम्हीं

मां वा हत्वास्त्रवीर्येण जहि दुष्टानिहोरगान् । त्वां वा हत्वाऽहमस्त्रेण रक्षिष्यामि महोरगान् ॥२४
धिक्तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम् । योनार्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥२५
क्षत्रियोऽहमिमे भीताः शरणं मामुपागताः । अपकर्त्ता त्वमेवैषां कथं वध्यो न मे भवान् ॥२६

मरुत्त उवाच

मित्रं वा बान्धवो वाऽपि पिता वा यदि वा गुरुः ।प्रजापालनविघ्नाय यो हन्तव्यः स भूभृता ॥२७
सोऽहं ते प्रहरिष्यामि न क्रोद्धव्यं त्वया पितः । स्वधर्मः परिपाल्यो मे न मे क्रोधस्तवोपरि ॥२८

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तौ निश्चितौ दृष्ट्वा परस्परवधं प्रति । समुत्पत्यान्तरे तस्थुर्मुनयो भार्गवादयः ॥२९
ऊचुश्चैनं न मोक्तव्यं त्वयास्त्रं पितरं प्रति । त्वया च नायं हन्तव्यः पुत्रः प्रख्यातचेष्टितः ॥३०

मरुत्त उवाच

मया दुष्टा निहन्तव्याः सन्तो रक्ष्या महीक्षिता । इमे च दुष्टा भुजगाः कोऽपराधोऽत्र मे द्विजाः ॥३१

अविक्षिदुवाच

शरणागतसन्त्राणं मया कार्यमयं च मे । अपराध्यः सुतो विप्रा यो हन्ति शरणागतान् ॥३२

ऋषयः ऊचुः

इमे वदन्ति भुजगास्त्रासलोलविलोचनाः । संजीवयामस्तान्विप्रान्ये दष्टा दुष्टपन्नगैः ॥३३

अस्त्रबल से मुझको विनाश करके दुष्ट उरगकुल का वध करो अथवा मैं ही तुमको अस्त्र की सहायता से मारकर सर्पों की रक्षा करूँगा ।२४। शत्रुपक्षी मनुष्य के भी आर्त्त होकर शरण में आने पर जो मनुष्य उसकी रक्षा नहीं करता उस मनुष्य के जीवन को धिक्कार है ।२५। मै क्षत्रिय हूँ इन्होंने भीत होकर मेरी शरण ग्रहण की है और तुम्ही इनके अपकारी हो अत एव फिर किस निमित्त तुम मेरे द्वारा वध के योग्य नहीं हो ।२६

मरुत्त ने कहा—मित्र, बांधव, पिता अथवा गुरु जो प्रजापालन में विघ्नकारी हो,वह अवश्य ही राजा के द्वारा वध होने के योग्य है ।२७। इस प्रकार हे पिता ! मैं आप पर प्रहार करूँगा किन्तु आप इससे क्रोध न कीजिये, स्वधर्म का पालन करना ही मेरा उद्देश्य है आपके ऊपर मेरा क्रोध नहीं है ।२८

मार्कण्डेय जी बोले—उन दोनों को ही परस्पर के वध करने में कृतनिश्चय देखकर भार्गवादि मुनियों ने शीघ्र आकर दोनों के मध्य में खड़े हो।२९। मरुत्त से कहा कि पिता के ऊपर अस्त्र चलाना तुमको उचित नहीं है और अविक्षित ने कहा तुमको भी इस विख्यातकर्मा पुत्र का विनाश नहीं करना चाहिए।३०

मरुत्त ने कहा—हे द्विजगण ! मैं राजा हूँ दुष्टों का हनन और शिष्ट पुरुषों का पालन करना मेरा सम्यक् प्रकार कर्त्तव्य है, यह भुजङ्गगण भी दुष्ट हैं, अत एव इस विषय में मेरा क्या अपराध है ।३१

अविक्षित ने कहा—हे विप्रगण ! शरणागतपुरुषों की रक्षा करना ही मेरा कर्त्तव्य है, जो पुत्र मेरे उन शरणागतजनों को नष्ट करता है वह मेरा अपराधी है ।३२

ऋषियों ने कहा—डर से चंचलनेत्र हो भुजङ्गगण कहते हैं, जिन ब्राह्मणों को दुष्ट पन्नगगणों ने डसा है,

तदलं विग्रहेणोभौ राजवर्यौ प्रसीदताम् । उभावपि विनिर्व्यूढप्रतिज्ञे धर्मकोविदौ ।।३४

मार्कण्डेय उवाच

सा तु वीरा समभ्येत्य पुत्रमेतदभाषत । मद्वाक्यादेष ते पुत्रो हन्तुं नागान्कृतोद्यमः ।।३५
तन्निष्पन्नं यदा विप्रास्ते जीवन्ति तथा मृताः । सञ्जीवन्तश्च मुच्यन्ते यद्युष्मच्छरणं गताः ।।३६

भामिन्युवाच

अहमभ्यर्थिता पूर्वमेभिः पातालसंश्रयैः । तन्निमित्तमयं भर्त्ता मयात्र विनियोजितः ।।३७
तदेतदार्ये निर्वृत्तमुभयोरपि शोभनम् । मम भर्तुश्च पुत्रस्य त्वत्पौत्रस्यात्मजस्य च ।।३८

मार्कण्डेय उवाच

ततः सञ्जीवयामासुस्तान्विप्रांस्ते भुजङ्गमाः । दिव्यैरोषधिजातैश्च विषसंहरणेन च ।।३९
पित्रोर्ननाम चरणौ स ततो जगतीपतिः । मरुत्तश्च स तं प्रीत्या परिष्वज्येदमब्रवीत् ।।४०
मानहा भव शत्रूणां चिरं पालय मेदिनीम् । पुत्रपौत्रैश्च मोदस्व मा च ते सन्तु विद्विषः ।।४१
ततो द्विजैरनुज्ञातौ वीरया च नरेश्वरौ । समारूढौ रथं सा च भामिनी स्वपुरं गता ।।४२
वीराऽपि कृत्वा सुमहत्तपो धर्मभृतां वरा । भर्तुः सलोकतां प्राप्ता महाभागा पतिव्रता ।।४३
मरुत्तोऽपि चकारोर्व्यां धर्मतः परिपालनम् । विनिर्जितारिषड्वर्गो भोगांश्च बुभुजे नृपः ।।४४
तस्य पत्नी महाभागा विदर्भतनया तथा । प्रभावती सुवीरस्य सौवीरी चाभवत्सुता ।।४५

हम उनको जीवित करते हैं ।३३। अत एव अब युद्ध की आवश्यकता नहीं है, प्रसन्न होइये, आप दोनों ही राजश्रेष्ठ और दोनों ही जिस प्रकार धर्मवेत्ता हैं, इसी प्रकार प्रतिज्ञापालक हैं ।३४

मार्कण्डेय जी बोले—इसी समय में वीरा ने वहाँ उपस्थित होकर पुत्र अविक्षित से कहा—मेरे वचनानुसार ही तुम्हारा पुत्र सर्पों के विनाश करने में उद्यत हुआ था ।३५। और जब मेरे ब्राह्मण जीवित होते हैं तब वह कार्य संपन्न भी हो गया है अत एव तुम्हारे यह शरणागत भी मुक्त हुए ।३६। भामिनी ने कहा पातालवासी इन सब सर्पो ने पूर्व में मुझसे इस प्रकार अभय प्रार्थना की थी, इसी कारण मैंने भर्त्ता को इस विषय में अनुरोध किया है ।३७। इस समय मेरे स्वामी और पुत्र का एवं तुम्हारे पुत्र और पौत्र का यह कार्य सुन्दर रीति से सम्पन्न हुआ है ।३८

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर सर्पों ने दिव्य औषधियों के द्वारा विष हरण करके उन ब्राह्मणों को जीवित कर दिया ।३९। इसके उपरान्त महीपति मरुत्त ने भी मातापिता के चरणों में प्रणाम किया और अविक्षित ने भी मरुत्त को प्रीतिसहित आलिंगन करके इस प्रकार आशीर्वादवचन कहे ।४०। "शत्रुओं के मान नष्ट करने वाले होओ । सदा पृथ्वी पालन करो । पुत्र-पौत्र सहित सुखपूर्वक समय बिताओ । और तुम्हारे शत्रु विनाश को प्राप्त हों" ।४१। इसके उपरान्त ब्राह्मणगण और वीरा की आज्ञा ग्रहण कर दोनों राजाओं और भामिनी रथपर चढ़कर अपने नगर में चले गये ।४२। तत्पश्चात् धार्मिकश्रेष्ठ महाभाग्यवती पतिव्रता वीरा महातपस्याचरण करके स्वामी के सालोक्य को प्राप्त हुई ।४३। राजा मरुत्त ने भी छहों शत्रु पराजित करके धर्मानुसार पृथ्वीपालन और नाना प्रकार के भोग सुख अनुभव किये ।४४। विदर्भकन्या महाभागा प्रभावती, सुवीर की कन्या सौवीरी ।४५। मगधेश्वर की कन्या

सुकेशी केतुवीर्यस्य मागधस्यात्मजाऽभवत् । सुता च सिन्धुवीर्यस्य मद्रराजस्य केकयी ।।४६
केकयस्य च सैरन्ध्री सिन्धुभर्तुर्वपुष्मती । चेदिराजसुता चाभूद्भार्या तस्य सुशोभना ।।४७
तासां पुत्रास्तस्य चासन्भूभृतोऽष्टादश द्विज । तेषां प्रधानो ज्येष्ठश्च नरिष्यन्तः सुतोऽभवत् ।।४८
एवं वीर्यो मरुत्तोभून्महाराजो महाबलः । तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद्द्वीपेषु सप्तसु ।।४९
यस्य तुल्योऽपरो राजा न भूतो न भविष्यति । सत्त्वविक्रमयुक्तस्य राजर्षेरमितौजसः ।।५०
तस्यैतच्चरितं श्रुत्वा मरुत्तस्य महात्मनः । जन्म चाग्र्यं द्विजश्रेठ मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।।५१

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरितेऽष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।१२८।

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नरिष्यंतचरितवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

मरुत्तचरितं कृत्स्नं भगवन्कथितं त्वया । तत्सन्ततिमशेषेण श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते ।।१
तत्सन्ततौ क्षितीशा ये राज्यार्हा वीर्यशालिनः । तानहं श्रोतुमिच्छामि त्वया ख्यातान्महामुने ।।२

मार्कण्डेय उवाच

नरिष्यन्त इति ख्यातो मरुत्तस्याभवत्सुतः । अष्टादशानां पुत्राणां स ज्येष्ठः श्रेष्ठ एव च ।।३
वर्षाणां च सहस्राणि सप्तति दश पञ्च च । बुभुजे पृथिवीं कृत्स्नां मरुत्तः क्षत्रियर्षभः ।।४

सुकेशा, मद्रराज सिन्धुवीर्य की कन्या, केकय की दुहिता केकयी ।४६। सिन्धुराज की पुत्री सैन्धवी और चेदिराज की कन्या वपुष्मती, यह सुन्दरी ललना उनकी भार्या थीं ।४७। हे द्विज ! इन सब भार्याओं के गर्भ से राजा के अठारह पुत्र उत्पन्न हुए थे उनमें "नरिष्यन्त" नामक पुत्र ही ज्येष्ठ प्रधान थे ।४८। महाराज महाबलवान् मरुत्त ऐसे वीर्यवान् थे। सात द्वीपों में उनकी चक्र अप्रतिहत था ।४९। बलविक्रमशाली अमिततेजा जिन राजर्षि के समान और कोई राजा आविर्भूत नहीं हुआ और होगा भी नहीं ।५०। हे द्विजश्रेष्ठ ! उन महात्मा मरुत्त के यह चरित्र सुनने पर संपूर्ण पापों से मुक्ति और मृत्यु के बाद श्रेष्ठ जन्म प्राप्त होता है ।५१

श्रीमार्कण्डेयपुराण में मरुत्तचरित्र वर्णन में एक सौ अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ।१२८।

अध्याय १२०

नरिष्यन्तचरित नामक वर्णन

क्रौष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! आपने मरुत्तचरित्र संपूर्ण वर्णन किया । अब उनकी सन्तति का समस्त वृत्तान्त सुनने की इच्छा हुई है ।१। हे महामुने ! उनकी सन्तान में जो पृथ्वीपति राज्ययोग्य और वीर्यशाली थे आपके मुख से उन्ही की वृत्तान्त सुनने की इच्छा करता हूँ ।२

मार्कण्डेय जी बोले—मरुत्त के अठारह पुत्रों में नरिष्यन्त ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ थे ।३। क्षत्रिय श्रेष्ठ मरुत्त ने सत्तरसहस्र पन्द्रह वर्ष संपूर्ण पथ्वी भोग की थी ।४। वह धर्मानुसार राज्यशासन और उत्तमोत्तम

कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण इष्ट्वा यज्ञाननुत्तमान् । नरिष्यन्तसुतं ज्येष्ठमभिषिच्य ययौ वनम् ॥५
एकाग्रचित्तः स नृपस्तप्त्वा तत्र तपो महत् । आरुरोह दिवं विप्र यशसावृत्य रोदसी ॥६
नरिष्यन्तः सुतः सोऽस्य चिन्तयामास बुद्धिमान् । पितुर्वृत्तं समालोक्य तथान्येषां च भूभृताम् ॥७
अत्र वंशे महात्मानो राजानो मम पूर्वजाः । यज्विनो धर्मतः पृथ्वीं पालयामासुरूर्जिताः ॥८
दातारश्चापि वित्तानां संग्रामेष्वनिर्वर्तिनः । तेषां कश्चरितं शक्तस्त्वनुयातुं महात्मनाम् ॥९
किन्तु तैर्यत्कृतं कर्म धर्म्यमाहवनादिभिः । तदहं कर्तुमिच्छामि तच्च नास्ति करोमि किम् ॥१०
धर्मात्पालयतः पृथ्वीं को गणोऽत्र महीपतेः । असम्यक्पालनात्पापी नरेन्द्रो नरकं व्रजेत् ॥११
सति वित्ते महायज्ञाः कर्तव्या एव भूभृता । दातव्यं चात्र किं चित्रं सीदतामीश्वरो गतिः ॥१२
आभिजात्यं तथा लज्जा कोपश्चारि जनाश्रयः । कारयन्ति स्वधर्मश्च सङ्ग्रामादपलायनम् ॥१३
एतत्सर्वं यथा सम्यङ्मत्पूर्वैः पुरुषैः कृतम् । पित्रा च मे मरुत्तेन तथा तत्केन शक्यते ॥१४
तदहं किं करिष्यामि यत्तु तैः पूर्वजैः कृतम् । ये यज्विनो वरा दान्ताः सङ्ग्रामाच्चानिर्वर्तिनः ॥१५
महत्सङ्ग्रामसंमर्देष्वविसंवादिपौरुषाः । क्रमेणाहं यतिष्यामि कस्मै तानभिसन्धितुम् ॥१६
अथवा तैः स्वयं यज्ञाः कृताः पूर्वजनेश्वरैः । अविश्रमद्भिर्नान्यैस्तु कारितास्तत्करोम्यहम् ॥१७

यज्ञानुष्ठान पूर्वक पुत्र नरिष्यन्त को राज्याभिषिक्त कर अन्त में वन को चले गये ।५। हे विप्र ! इसके उपरान्त राजा मरुत्त ने वन में एकाग्रचित्त से महा तपस्या करके स्वर्गलोक मृत्युलोक यश से पूर्ण कर स्वर्गारोहण किया ।६। उनके पुत्र बुद्धिमान् नरिष्यन्त ने पिता और अन्यान्य राजाओं का व्यवहार देखकर विचार किया ।७। कि इस वंश मे मेरे सब पूर्वपुरुष महात्मा राजागण यज्ञानुष्ठान करने वाले प्रबल पराक्रमी, धनदाता और संग्राम में अपराङ्मुख अर्थात् विमुख नहीं थे और सब ने ही धर्मानुसार पृथ्वी का पालन किया है उन महात्माओं के चरित्र का अनुकरण करने में कौन समर्थ होगा ।८-९। उन्होंने आहवनादि द्वारा जो धर्मकार्य संपन्न किये हैं, मैं वही करने की इच्छा करता हूँ किन्तु वह भी तो अकृत नहीं है अत एव मैं क्या करूँ ।१०। यदि राजा धर्मानुसार पृथ्वी का पालन करे तो इसमें राजा का गुण क्या है ? वह उसके गुण में परिगणित नहीं है, क्योंकि सम्यक् प्रकार पृथ्वीपालन न करने से नरेन्द्र पापभागी होकर नरक में जाते हैं ।११। धन होने पर राजा को महायज्ञ संपादन और दान करना चाहिए । किन्तु इसमें भी फिर विचित्रता क्या है । इस प्रकार राजा के अवसन्न होने पर ईश्वर ही उसको एकमात्र गति है ।१२। राजा के स्वधर्म में रहने से ही वह जातिश्रेष्ठता लज्जा, शत्रु के प्रति कोप और युद्ध से पलायन नहीं करता है ।१३। यह समस्त कार्य मेरे पूर्वपुरुषगण और पिता मरुत्त ने जिस प्रकार संपादन किये हैं दूसरा और कौन उस प्रकार करने में समर्थ होगा ।१४। मेरे सब पूर्वपुरुषगण श्रेष्ठ यज्ञ करने वाले दाता दमगुणशालीय संग्राम में अपराङ्मुख ।१५। और महासंग्राम उपस्थित होने पर शत्रुओं के निकट पराक्रम करने वाले थे मैं इस समय ऐसा क्या कार्य करूँ, जो उन्होंने नहीं किया है । अत एव मैं कर्मद्वारा निष्काम कर्म का अनुष्ठान करूँगा ।१६। अथवा मेरे पूर्वपुरुषों ने स्वयं ही अविरत यज्ञ किये थे, अन्य किसी को भी वह नहीं कराये, मैं उन्ही का अनुष्ठान करूँगा ।१७।

मार्कण्डेय उवाच

इति सञ्चित्य यज्ञं स चकारैकं नरेश्वरः । यादृशं न चकारान्यो वित्तोत्सर्गोपशोभितम् ।।१८
द्विजानां जीवनायालं दत्त्वा तु सुमहाधनम् । ततः शतगुणं तेषां यज्ञार्थमददान्नृपः ।।१९
गावो वस्त्राण्यलङ्कारं धान्यागारादिकं तथा । प्रत्येकमददात्तेषां सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ।।२०
ततस्तेन यदा यज्ञः प्रारब्धो भूभुजा पुनः । प्रारब्धे स मखे यष्टुं ततो नालभत द्विजान् ।।२१
यान्यान्वृणोति स नृपो विप्रानार्त्विज्यकर्मणि । ते ते तमूचुर्यज्ञाय वयमप्यत्र दीक्षिताः ।।२२
अन्यं वरय यद्वित्तं त्वयास्माकं विसर्जितम् । तस्यान्तो नास्ति यज्ञेषु दद्यास्त्वं नृपते कथम् ।।२३

मार्कण्डेय उवाच

न चाप ऋत्विजो विप्रांस्तदाशेषक्षितीश्वरः । बहिर्वेद्यां तदा दानं स दातुमुपचक्रमे ।।२४
तथापि जगृहुर्नैव धनसम्पूर्णमन्दिराः । द्विजाय दातुं भूयोऽसौ निर्विण्ण इदमब्रवीत् ।।२५
अहोऽतिशोभनं पृथ्व्यां यद्विप्रो नाधनः क्वचित् । अशोभनं च यत्कोशो विफलोयमयज्विनः ।।२६
नार्त्विज्यं कुरुते कश्चिद्यजमानोऽखिलो जनः । द्विजानां न च नो दानं ददतां सम्प्रतीच्छते ।।२७

मार्कण्डेय उवाच

ततः कांश्चिद्द्विजान्भक्त्या प्रणिपत्य पुनः पुनः । स्वयज्ञे ऋत्विजश्चक्रे ते प्रचक्रुर्महामखम् ।।२८

मार्कण्डेय जी बोले—नरेश्वर ने इस प्रकार चिन्ता करके विपुल धन दान कर एक यज्ञ किया, वैसा यज्ञ पहले अन्य कोई नहीं कर सका था ।१८। उन्होंने उस यज्ञ में ब्राह्मणों को जीविका निर्वाह के लिये बहुत धन दिया उसकी अपेक्षा शतगुण अन्न दान किया था ।१९। पृथ्वीवासी ब्राह्मणों में प्रत्येक को ही उन्होंने गाय, वस्त्र अलंकार, धान्य, गृह इत्यादि बहुत दिये थे ।२०। उसके बाद जब राजा ने फिर यज्ञ का अनुष्ठान किया, तब फिर याजक करने के लिये कोई ब्राह्मण प्राप्त नहीं हुआ ।२१। जिस जिस ब्राह्मण को ही उन्होंने ऋत्विक्कार्य में वरण करना चाहा, उसी ने कहा, मैं यज्ञ के लिये अन्यत्र दीक्षित हुआ हूँ ।२२। आप अन्य को वरण कीजिये । हे नृपते ! आपने यज्ञकाल में दान करके हमको जितना धन दिया है, हमारे अनेकों के यज्ञों में भी वह निःशेष नहीं हुआ ।२३

मार्कण्डेय जी बोले—संपूर्ण पृथ्वी के ईश्वर होकर भी जब उन्होंने ऋत्विक् करने के लिये किसी ब्राह्मण को नहीं पाया तब बहिर्वेदी में दान करनेका यत्न किया ।२४। किन्तु तो भी धनपूर्ण गृह का ब्राह्मणों ने दान ग्रहण नहीं किया । जब राजा ब्राह्मणों को दान करने के निमित्त प्रवृत्त हो, उसमें विफलश्रम हुए अर्थात् ब्राह्मणों के दान नहीं लेने से उनका श्रम व्यर्थ हुआ, तब अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगे ।२५। कि अहो ! पृथ्वी के किसी स्थान में इस समय निर्धन ब्राह्मण नहीं है यह अवश्य ही सुख का विषय है, किन्तु यज्ञ के बिना मेरा राजकोष विफल होता है, यह अत्यन्त कष्ट का कारण है ।२६। ब्राह्मणों में इस समय सब ही स्वयं यज्ञ करने में प्रवृत्त हुए हैं, इसकारण कोई ऋत्विक् होने में सम्मत नहीं है और वह स्वयं ही दान करते हैं, अत एव मेरा दिया ग्रहण नहीं करते ।२७

मार्कण्डेय जी बोले—अनन्तर बारंबार भक्ति सहित प्रणामपूर्वक कई ब्राह्मणों को उन्होंने अपने

अत्यद्भुतमिदं चासीद्यदा तस्य महीपतेः । स यज्ञोऽभूत्तदा पृथ्व्यां यजमानोऽखिलो जनः ॥२९
द्विजन्मनामभून्नासीत्सदस्यस्तत्र कश्चन । यजमाना द्विजाः केचित्केचित्तेषां तु याजकाः ॥३०
नरिष्यन्तो नरपतिरियाज स यदा तदा । तत्प्रदातुर्धनैर्यागं कुर्युः पृथ्व्यामशेषतः ॥३१
प्राच्यां कोटचस्तु यज्ञानामासन्नष्टादशाधिकाः । प्रतीच्यां सप्त वै कोटचो दक्षिणस्यां चतुर्दश ॥३२
उत्तरस्यां च पञ्चाशदेककालं तदाभवन् । मुने ब्राह्मणयज्ञानां नरिष्यन्तो यदाऽयजत् ॥३३
एवं स राजा धर्मात्मा नरिष्यन्तोऽभवत्पुरा । मरुत्ततनयो विप्र विख्यातबलपौरुषः ॥३४

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नरिष्यन्तचरितं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१२९।

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

(१३२)

दमचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

नरिष्यन्तस्य तनयो दुष्टारिदमनो दमः । शक्रस्येव बलं तस्य दयाशीलं मुनेरिव ॥१
बाभ्रव्यामिन्द्रसेनायां स जज्ञे तस्य भूभृतः । नववर्षाणि जठरे स्थित्वा मार्तुर्महायशाः ॥२
यद्ग्राहयामास दम मातरं जठरे स्थितः । दमशीलश्च भविता यतश्चायं नृपात्मजः ॥३

यज्ञ में ऋत्विक् किया और उन्हीं ब्राह्मणों ने वह महायज्ञ संपादन किया ।२८। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात हुई थी कि, जब राजा का वह महायज्ञ आरंभ हुआ, तब पृथ्वी के मध्य ब्राह्मणों में सब ही स्वयं यजमान हुए थे ।२९। इसलिए उस यज्ञ में कोई सभासद नहीं हुआ । तब ब्राह्मणों में कोई स्वयं यजमान हुआ था और कोई उसका याजक हुआ था ।३०। राजा नरिष्यन्त ने जिस समय यज्ञ किया था, तब उनके दिये धनद्वारा ही पृथ्वी में ब्राह्मणगण अनेक यज्ञ करने में प्रवृत्त हुए थे हे मुने ! महाराज नरिष्यन्त जब यज्ञ करने में प्रवृत्त हुए थे तब पूर्व दिशा में अठारह करोड से भी अधिक यज्ञ संपादित हुए थे । और पश्चिम दिशा में सात करोड़, दक्षिण दिशा में चौदह करोड़ ।३१-३२। और उत्तरदिशा में पचास कोटि यज्ञ हुए । ब्राह्मणों के यह समस्त यज्ञ एक ही समय में संपादित हुए थे ।३३। हे विप्र और पूर्वकाल में मरुत्त के पुत्र विख्यातबल पौरुष राजा नरिष्यन्त ऐसे धर्मात्मा थे ।३४।

श्रीमार्कण्डेयपुराण में नरिष्यन्तचरित्र वर्णन का एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ।१२९।

अध्याय १३०

दमचरित्र का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—नरिष्यन्त के पुत्र दम हुए । वह दुर्वृत्त शत्रुओं को दमन करते थे । उनका इन्द्र के समान बल और मुनि के समान दया और शीलता थी ।१। दम ने बभ्रु की कन्या इन्द्र सेना के गर्भ से नरिष्यन्त के डर से जन्मग्रहण किया । यह महायशा नौ वर्ष माता के जठर में स्थित रहे थे ।२। इन राजपुत्र के इस प्रकार जठर में रहने के समय इनकी माता को दम गुण (इन्द्रियनिग्रह) अवलम्बन करना पड़ा था और यह राजपुत्र स्वयं भी दमशील ही होंगे ।३। ऐसा देखकर त्रिकालज्ञ राजपुरोहितों ने उन

ततस्त्रिकालविज्ञानः स हि तस्य पुरोहितः । दम इत्यकरोन्नाम नरिष्यन्तसुतस्य तु ।।४
स दत्तो राजपुत्रस्तु धनुर्वेदमशेषतः । जगृहे सुरराजस्य सकाशाद्वृषपर्वणः ।।५
दुन्दुभेर्दैत्यवर्यस्य तपोवननिवासिनः । सकाशाज्जगृहे कृत्स्नमस्त्रग्रामं च तत्त्वतः ।।६
शक्तेः सकाशाद्वेदांश्च वेदाङ्गान्यखिलानि च । तथार्ष्टिषेणाद्राजर्षेर्जगृहे योगमात्मवान् ।।७
तं सुरूपं महात्मानं गृहीतास्त्रं महाबलम् । स्वयंवरे कृता पित्रा जगृहे सुमना पतिम् ।।८
सुता दशार्णाधिपतेर्बलिनश्चारुवर्मणः । पश्यतां सर्वभूतानां ये तदर्थमुपागताः ।।९
तस्यां च सानुरागोऽभून्मद्रराजस्य वै सुतः । सुमनायां महानन्दो महाबलपराक्रमः ।।१०
तथा विदर्भाधिपतेः पुत्रः संक्रन्दनस्य च । वपुष्मान्राजपुत्रश्च महाधनुरुदारधीः ।।११
ते तदा तं वृतं दृष्ट्वा दुष्टारिदमनं दमम् । मन्त्रयामासुरन्योऽन्यं तत्रानङ्गविमोहिताः ।।१२
एतामस्य बलात्कन्यां गृहीत्वा रूपशालिनीम् । गृहं प्रयामस्तस्येयमस्माकं यं ग्रहीष्यति ।।१३
भर्तुबुद्धया वरारोहा स्वयंवरविधानतः । तस्येच्छया नो भवित्री भार्या धर्मोपपादिता ।।१४
अथ नेच्छति सा कञ्चिदस्माकं मदिरेक्षणा । ततस्तस्य भवित्री सा यो दमं घातयिष्यति ।।१५

मार्कण्डेय उवाच

इति ते निश्चयं कृत्वा त्रयः पार्थिवनन्दनाः । जगृहुस्तां सुचार्वङ्गी दमपार्श्वानुवर्त्तिनीम् ।।१६
ततः केचिन्नृपास्तेषां ये तत्पक्षा विचुक्रुशुः । चुक्रुशुश्चापरे भूपाः केचिन्मध्यस्थतां गताः ।।१७

नरिष्यन्त के पुत्र का नाम दम रखा । राजपुत्र दम ने नरराज वृषपर्वा के निकट से संपूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की ।४-५। और तपोवननिवासी दैत्यश्रेष्ठ दुन्दुभि के निकट से सब अस्त्रग्राम प्रयोग और संहार के सहित ग्रहण किये ।६। उन्होंने शक्ति मुनि के निकट से संपूर्ण वेद-वेदाङ्ग और आत्मवान् होकर आर्ष्टिषेण के निकट योगशिक्षा ग्रहण की थी ।७। दशार्णाधिपति महाबल चारुकर्मा की कन्या सुमना के पिता के द्वारा स्वयंवर में नियोजित होकर अपनी अभिलाषा से आये हुए संपूर्ण राजाओं के सामने ही महाबली अस्त्रधारी अपने अनुरूप महात्मा दम को पतित्व में वरण किया था ।८-९। मद्रराज के पुत्र महाबलवान महानन्द विदर्भाधिपति संक्रन्दन के पुत्र वपुष्मान् और महाधनु नामक उदारचेता राजपुत्र उस सुमना के प्रति अनुरागी हुए थे ।१०-११। दुष्ट वैरियों को दमन करने वाले, उन दम को राजकन्या ने वरण किया । यह देखकर वह कामबाण से मोहितचित्त हो परस्पर इस प्रकार परामर्श करने लगे ।१२। हम इस रूपशालिनी कन्या को इसके निकट से बलपूर्वक ग्रहण करके घर को जायँगे ।१३। इसके बाद वह वरारोहा स्वयंवर के विधानानुसार हममें जिसको इच्छानुसार स्वामिबुद्धि से ग्रहण करे, यह कन्या उसी की धर्मोपपादिता भार्या होगी ।१४। और यदि यह मदिरेक्षणा हममें से किसी को भी अपनी इच्छानुसार ग्रहण न करे तो जो दम को मारडाले, यह कन्या उसी की भार्या होगी ।१५

मार्कण्डेय जी बोले—उन तीन राजपुत्रों ने इस प्रकार निश्चय करके दम के पार्श्ववर्त्ती उस सुन्दरी को ग्रहण किया ।१६। उस अवसर में दम की ओर के कितने ही राजा उनकी निन्दा और भर्त्सना करने लगे और अपर कितने ही राजा क्रोध में भर गये तथा अन्य किसी ने मध्यस्थता की ।१७। हे

ततो दमस्तान्भूपालानवलोक्य समन्ततः । अनाकुलमना वाक्यमिदमाह महामुने ॥१८

दम उवाच

भो भूपा धर्मकृत्येषु यद्वदन्ति स्वयंवरम् । दशार्णपतिना भूपाः कृते धर्म्ये स्वयंवरे ॥
अधर्मो वाऽथ वा धर्मो यदेभिर्गृह्यते बलात् ॥१९
यद्यधर्मो न मे कार्यमन्यभार्या भविष्यति । धर्मो वा तदलं प्राणैर्ये रक्ष्यन्तेऽरिलङ्घने ॥२०
ततो दशार्णाधिपतिश्चारुवर्मा नराधिपः । निःशब्दं कारयित्वा तत्सदः प्राह महामुने ॥२१
दमेन यदिदं प्रोक्तं धर्माधर्माश्रितं नृपाः । तद्वदध्वं यथा धर्मो ममास्य च न लुप्यते ॥२२

मार्कण्डेय उवाच

ततः केचिन्महीपालास्तमूचुर्वसुधाधिपम् । परस्परानुरागेण गान्धर्वो विहितो विधिः ॥२३
क्षत्रियाणां परमयं न विट्शूद्रद्विजन्मनाम् । दममाश्रित्य निष्पन्नः स चास्या दुहितुस्तव ॥२४
इति धर्माद्दमस्यैषा दुहिता तव पार्थिव । योऽन्यथा वर्त्तते मोहात्कामात्मा सम्प्रवर्त्तते ॥२५
तथाऽपरे तदा प्रोचुर्महात्मानो हि भूभृताम् । पक्षे ये भूभृतो विप्र दशार्णाधिपतिं वचः ॥२६
मोहात्किमाहुर्धर्मोऽयं गान्धर्वं क्षत्रजन्मनः । न त्वेष शास्ता नान्यो हि राक्षसः शस्त्रजीविनाम् ॥२७
बलादिमां यो हरति हत्वा तु परिपन्थिनः । तस्यैषा स्याद्राक्षसेन विवाहेनावनीश्वराः ॥२८

महामुने ! इसके उपरान्त दम उन सब राजाओं को चारों ओर स्थित देखकर अनाकुलचित्त से कहने लगे।१८

दम ने कहा—हे भूपालगण ! स्वयंवर को जो सब धर्मकार्य में गिनते हैं, वास्तव में वह अधर्म है वा धर्म है ? इन्होंने जो इस स्वयंवर में प्राप्त हुई कन्या को बलपूर्वक ग्रहण किया है ।१९। यदि स्वयंवर अधर्म में गिना जाय तो इससे मेरा कार्य नहीं है, यह अन्य की भार्या हो और यदि उसको आप धर्म कहकर निश्चय करते हैं, तो इस शत्रु लांछित प्राण धारण की आवश्यकता है ? ।२०। हे महामुने ! अनन्तर दशार्णाधिपति महाराज चारुकर्मा ने सभास्थल निःशब्द कराकर कहा ।२१। हे नृपगण ! दम ने धर्माधर्म के संबंध में जो बात उठाई है, आप लोग इसके संबध में ऐसी सम्मति प्रकट कीजिये, जिससे आपका धर्म लोप न हो ।२२

मार्कण्डेय जी बोले—तब कितने ही महीपाल उन राजा से कहने लगे कि परस्पर के अनुराग से गांधर्वविवाह संपन्न होता है ।२३। यह विवाह क्षत्रियों के पक्ष में भी श्रेष्ठ है, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र के पक्ष में नहीं है, दम के संग ही आपकी इस कन्या का गांधर्व विवाह संपन्न हुआ है ।२४। अत एव हे पार्थिव ! आपकी कन्या उक्त धर्मानुसार दम की ही भार्या हुई है । जो कामात्मा हैं, वही मोह के वश होकर इसके विरोधी होते हैं ।२५। हे विप्र ! इसके उपरान्त विपक्ष राजाओं की ओर जो भूपाल थे, वह सब महात्मा दशार्णाधिपति से इस प्रकार कहने लगे ।२६। यह मोह के वश होकर क्या कहते हैं,। यह गांधर्व विवाह क्षत्रिय के पक्ष में तो प्रशस्त है ही नहीं इसके अतिरिक्त अन्य विवाह भी प्रशस्त नहीं है शस्त्रजीवियों का एकमात्र राक्षसविवाह ही प्रशस्त है ।२७। हे अवनीश्वरगण ! जो पुरुष विपक्ष का विनाश करके बलात्कार से इस कन्या को ग्रहण कर सकेगा राक्षस विवाह के विधानानुसार यह पत्नी उसी को प्राप्त

प्रधानतर एषोऽत्र विवाहद्वितये मतः । क्षत्रियाणामतो धर्मा महानन्दादिभिः कृतः ॥२९

मार्कण्डेय उवाच

अथ प्रोचुः पुनर्भूपा यैः पूर्वमुदितो नृपः । परस्परानुरागेण जातिधर्माश्रितं वचः ॥३०
सत्यं शस्तो राक्षसोऽपि क्षत्रियाणां परो विधिः । किन्त्वसौ जनकस्वाम्ये कुमार्यानुमतो वरः ॥३१
हत्वा तु पितृसम्बन्धं बलेन ह्रियते हि या । स राक्षसो विधिः प्रोक्तो नात्र भर्तृकरे स्थिता ॥३२
पश्यतां सर्वभूपानामनया यद्वृतो दमः । गान्धर्वस्येह निष्पत्तौ विवाहो राक्षसोऽत्र कः ॥३३
विवाहितायाः कन्यायाः कन्यात्वं नैव विद्यते । कन्यायाश्च विवाहेन सम्बन्धः पृथिवीश्वराः ॥३४
त इमे ये बलादेनां दमादादातुमुद्यताः । बलिनस्ते यदि ततः कुर्वन्तु न तु साधु तत् ॥३५

मार्कण्डेय उवाच

तच्छ्रुत्वाऽसौ दमः कोपकषायीकृतलोचनः । आरोपयामासधनुर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥३६
ममापि भार्या बलिभिः पश्यतो ह्रियते यदि । तत्कुलेन भुजाभ्यां वा को गुणः क्लीबजन्मनः ॥३७
धिङ्ममास्त्राणि धिक्छौर्यं धिक्छरान्धिक्छरासनम् । धिग्व्यर्थं मे कुले जन्म मरुत्तस्य महात्मनः ॥३८
यदि भार्यामिमे मूढाःसमादाय बलान्विताः । प्रयान्ति जीवतो धिक्तां मम व्यर्थमनुष्यताम् ॥३९
इत्युक्त्वा तान्महीपालान्महानन्दमुखान्बली । अथाब्रवीत्तदा सर्वान्महारिदमनो दमः ॥४०

होगी ।२८। क्षत्रियों के संबंध में इन दोनों विवाह के मध्य जब राक्षसविवाह ही प्रधान है तब महानन्द इत्यादि राजपुत्रों ने धर्मव्यवहार ही किया है ।२९

मार्कण्डेय जी बोले—जिन्होंने पहले राजाओं के सामने परस्परानुराग और जातिधर्मविषयक वचन कहे थे, वह सब राजा पुनः कहने लगे ।३०। सत्य है क्षत्रिय के पक्ष में राक्षसविवाह प्रशस्त और श्रेष्ठ विधि है किन्तु इस राजकन्या ने पिता के अधीन रहकर कुमारी अवस्था में दम को वरा है ।३१। पितृपक्ष को हत और आहत करके यदि कन्या हरण की जाय उसी को राक्षस विवाह कहते हैं, किन्तु पति के हस्तगत कन्या को हरण करने से वह राक्षस विवाह नहीं होगा ।३२। सब राजाओं के देखते हुए जब इस सुमना ने दम को ही वरा है, तो यह विवाह गान्धर्व विधान से संपन्न हुआ है, इसमें फिर राक्षसविधि क्या है ।३३। विवाहिता कन्या का कन्यात्व नहीं रहता है नृपतिगण ! विवाह के संग ही कन्या का सबंध जानना चाहिए ।३४। जो दम के हाथ से इसको बलपूर्वक ग्रहण करने में उद्यत हुए हैं वह बल के गौरव से ऐसा कर सकते हैं, किन्तु यह सत्यकार्य नहीं है ।३५

मार्कण्डेय जी बोले—दम ने यह वचन सुनकर कोप से लाल नेत्र करके धनुष पर ज्यारोपणपूर्वक कहा ।३६। मेरे देखते हुए बलवान् यदि बलात्कार से मेरी भार्या को हरण करते हैं, तब तो मैंने क्लीब (नपुंसक) होकर ही जन्म ग्रहण किया है फिर मेरे कुलगौरव और दोनों भुजा में ही क्या गुण रहा ।३७। यदि मेरे जीवित रहते यह मूढ बलयुक्त होकर मेरी भार्या ग्रहण करके चले जाँय तो मेरे सब अस्त्र, शौर्य शरसमूह और शरासन को धिक्कार है और महात्मा मरुत्त के वंश में मेरा जन्म-ग्रहण व्यर्थ तथा मेरी व्यर्थ मनुष्यता को भी धिक्कार है।३८-३९। बलवान् महाशत्रुदमनकारी दम ने यह बात कहकर फिर महानन्द इत्यादि सब राजाओं से कहा।४०। हे सन्मानित भूपालो ! "यह अत्यन्तमनोहर मदिरेक्षण सत्कुलोत्पन्न

एषातिशोभना बाला चार्वङ्गी मदिरेक्षणा । किं तस्य जन्मना भार्या न यस्येयं कुलोद्भवा ।।४१
इति सञ्चिन्त्य भूपालास्तथा यतत संयुगे । यथा निर्जित्य मामेतां पत्नीं कुरुत मानिनः ।।४२
इत्याभाष्य ततस्तत्र शरवर्षममुञ्चत । छादयन्पृथिवीपालांस्तमसेव महीरुहान् ।।४३
तेऽपि वीरा महीपालाः शरशक्त्यृष्टिमुद्गरान् । मुमुचुस्तत्प्रयुक्तांश्च दमश्चिच्छेद लीलया ।।४४
तेऽपि तत्प्रहितान्बाणांस्तेषां चासौ शरोत्करान् । चिच्छेद पृथिवीशानां नरिष्यन्तात्मजो मुने ।।४५
वर्त्तमाने तदा युद्धे दमस्य क्षितिपात्मजैः । प्रविवेश महानन्दः खड्गपाणिर्यतो दमः ।।४६
तमायान्तं दमो दृष्ट्वा खड्गपाणिं महामृधे । मुमोच शरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ।।४७
तदस्त्राणि ततस्तानि शरजालानि तत्क्षणात् । महानन्दः प्रचिच्छेद खड्गेनान्यानवञ्चयत् ।।४८
ततो रोषात्समारुह्य तं दमस्य तदा रथम् । महानन्दो महावीर्यो दमेन युयुधे सह ।।४९
बहुधा युध्यमानस्य महानन्दस्य लाघवात् । दमो मुमोच हृदये शरं कालानलप्रभम् ।।५०
तं लग्नमात्मनोत्कृष्य विभिन्नेन ततो हृदा । दमं प्रति विचिक्षेप महानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ।।५१
पतन्तं चैनमुल्काभं शक्त्या चिक्षेप तं दमः । शिरो वेतसपत्रेण महानन्दस्य चाच्छिनत् ।।५२
तस्मिन्हते महानन्दे प्राचुर्येण पराङ्मुखाः । बभूवुः पार्थिवास्तस्थौवपुष्मान्कुण्डिनाधिपः ।।५३
दमेन युयुधे चासौ बलगर्वमदान्वितः । दाक्षिणात्यमहीपालतनयो रणगोचरः ।।५४

सुन्दरी बालिका जिसकी भार्या नहीं हुई, उसका जन्म ही वृथा है"।४१। तुम इस प्रकार विचार कर जिससे मुझको पराजयपूर्वक इसको पत्नी कर सकोगे, संग्राम में वैसा ही यत्न करो।४२। दम यह कहकर उस काल अन्धकार द्वारा वृक्षराजि के समान राजाओं को आच्छादन करके बाणों की वर्षा करने लगे।४३। उन सब महावीर राजाओं ने भी शर, शक्ति, ऋषि और मुद्गर इत्यादि प्रयुक्त किये, किन्तु दम ने लीला पूर्वक ही उन सब अस्त्रों को काट डाला।४४। हे मुने ! उस समय वह महीपालगण दम के छोड़े अस्त्र और नरिष्यन्तपुत्र दम भी उनके समस्त अस्त्र-छेदन करने लगे।४५। राजपुत्रों के सहित दम का इस प्रकार युद्ध हो रहा था इसी अवसर में खड्ग हाथ में लिये महानन्द दम के सन्मुख आया।४६। दम ने उस महायुद्ध में खड्गपाणि उस को आया हुआ देखकर इन्द्र जिस प्रकार जल की वर्षा करते हैं, इसी प्रकार बाणों की वर्षा आरम्भ की।४७। महानन्द ने तत्काल खड्गद्वारा उनके अस्त्रसमूह और शरजाल को छेदन किया। हाथ की लाघवता से यह कार्य इतनी शीघ्र संपन्न किया कि अन्यान्य राजा उसको देख भी नहीं सके।४८। अनन्तर महावीर्यवान् महानन्द क्रोध में भरा हुआ दम के रथ पर चढ़कर उनके संग युद्ध करने लगा।४९। महानन्द के बहुत काल पर्यन्त युद्ध करने पर फिर दम ने अत्यन्त लघुहस्त से उसके हृदय में कालाग्नि के समान प्रभायुक्त बाण छोड़ा।५०। महानन्द ने हृदय में लगे हुए उस बाण को स्वयं ही हृदय से निकालकर विभिन्न हृदय से ही दम के ऊपर उज्ज्वल असि चलाई।५१। दम ने उस उल्का के समान असि के गिरते-गिरते ही शक्ति द्वारा छेदन करके तत्काल वेतसपत्र बाण से महानन्द का मस्तक काट डाला।५२। महानन्द के मरते ही अधिकांश राजा युद्ध से पराङ्मुख हुए, केवल कुण्डिनाधिपति वपुष्मान् स्थिति करने लगा।५३। वह दक्षिणशत्य भूपालतनय बल के गर्व से मत्त बपुष्मान् रण का आश्रय लेकर दम के सहित युद्ध करने लगा।५४। रणस्थल में दम ने तत्काल उस युद्ध करते हुए वपुष्मान्

युध्यमानस्य तस्योग्रं करवालं स वै लघु । चिच्छेद सारथेश्चैव शिरः संख्ये तथा ध्वजम् ॥५५
छिन्नखड्गो गदां सोऽथ जग्राह बहुकण्टकाम् । तामप्यस्य स चिच्छेद करस्थामेव सत्वरः ॥५६
यावदन्यत्समादत्ते स वपुष्मान्वरायुधम् । तावच्छरेण तं विद्धा दमो भूमावपातयत् ॥५७
स पातितस्ततो भूमौ विह्वलाङ्गः सवेपथुः । विनिवृत्तमतिर्युद्धाद्बभूव क्षितिपात्मजः ॥५८
तमालोक्य तथा भूतमयुद्धमतिमात्मवान् । उत्सृज्यादाय सुमनां सुमनाः प्रययौ दमः ॥५९
ततो दशार्णाधिपतिः प्रीतिमानकरोत्तयोः । दमस्य सुमनायाश्च विवाहं विधिपूर्वकम् ॥६०
कृतदारो दमस्तत्र दशार्णाधिपतेः पुरे । स्थित्वाऽल्पकालं प्रययौ सभार्यो निजमन्दिरम् ॥६१
दशार्णाधिपतिश्चासौ दत्त्वा नागांस्तुरङ्गमान् । रथगोऽश्वखरोष्ट्रांश्च दासीदासांस्तथा बहून् ॥६२
वस्त्रालङ्कारचापादिवरोपस्करमासनम् । अन्यैस्तैश्च तथा भाण्डैः परिपूर्णं व्यसर्जयत् ॥६३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३०।

अथैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

स तां लब्ध्वा तथा पत्नीं सुमनां सुमहामुने । प्रणम्य स पितुः पादौ मातुश्च क्षितिपात्मजः ॥१
सा च तौ श्वशुरौ सुभ्रूर्ननाम सुमना तदा । ताभ्यां तौ च तदा विप्र आशीर्भिरभिनन्दितौ ॥२

की उग्र तलवार व सारथी का मस्तक और ध्वजा काट डाली ।५५। तब वपुष्मान् ने खड्ग के कट जाने पर बहुत काँटों से युक्त गदा ग्रहण किया, किन्तु दम ने यह गदा उसके हाथ में रहते-रहते ही काट डाली।५६। फिर वपुष्मान ने अन्य उत्कृष्ट अस्त्र-ग्रहण किया, परन्तु दम ने उसको उसी समय बाणों से विद्ध करके भूमि में गिरा दिया।५७। राजपुत्र वपुष्मान् ने भूमि में गिरकर विह्वलाङ्ग और कम्पितकलेवर होने से युद्ध की इच्छा छोड़ दी।५८। मनस्वी दम ने उसको इस अवस्था और युद्ध में अनिच्छुक देखकर छोड़ दिया और सुमना को लेकर प्रसन्नचित्त से चले गये।५९। अनन्तर दशार्णाधिपति ने प्रसन्नचित्त से दम और सुमना का विवाह कार्य विधिपूर्वक संपादित किया।६०। दम, स्त्री ग्रहण कर दशार्णाधिपति के पुर में कुछ काल रहे और फिर भार्या के सहित अपने घर को चले गये।६१। दशार्णाधिपति ने उस समय अनेक हाथी, घोडे, रथ, गौ, खर, ऊंट, दास, दासी ।६२। वस्त्र, अलंकार, धनुष इत्यादि अनेक प्रकार की बहुमूल्य सामग्री यौतुकरूप से दानपूर्वक धन रत्नादि पूर्ण करके उनको विदा किया ।६३

श्रीमार्कण्डेयपुराण में दमचरित्र वर्णन नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय ।१३०।

अध्याय १३१

दमचरित्र का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—हे महामुने ! क्षितिपालनन्दन दम ने सुमना को पत्नीरूप में प्राप्त कर फिर माता पिता के चरणों में प्रणाम किया ।१। और सुन्दरी सुमना ने भी सास और श्वशुर को प्रणाम किया। हे

महोत्सवश्च सञ्जज्ञे नरिष्यन्तस्य वै पुरे । कृतदारे च सम्प्राप्ते दशार्णाधिपतेः पुरात् ॥३
सम्बन्धिनं दशार्णेशं जितांश्च पृथिवीश्वरान् । श्रुत्वा पुत्रेण मुमुदे नरिष्यन्तो महीपतिः ॥४
सोऽपि रेमे सुमनया महाराजसुतो दमः । वरोद्यानवनोद्देशे प्रसादगिरिसानुषु ॥५
अथ कालेन महता रममाणा दमेन सा । अवाप गर्भं सुमना दशार्णाधिपतेः सुता ॥६
सोऽपि राजा नरिष्यन्तो भुक्तभोगो महीपतिः । वयः परिणतिं प्राप्य दमं राज्येऽभिषिच्य च ॥७
वनं जगामेन्द्रसेना पत्नी चास्य तपस्विनी । वानप्रस्थविधानेन स तत्र समतिष्ठत ॥८
दाक्षिणात्यः सुदुर्वृत्तः संक्रन्दनसुतो वने । वपुष्मान्स मृगान्हन्तुं ययावल्पपदानुगः ॥९
स तं दृष्ट्वा नरिष्यन्तं तापसं मलपङ्किनम् । इन्द्रसेनां च तत्पत्नीं तपसातिसुदुर्बलाम् ॥१०
पप्रच्छ कस्त्वं भो विप्रः क्षत्रियो वा वनेचरः । वानप्रस्थमनुप्राप्तो वैश्यो वा मम कथ्यताम् ॥११
ततो मौनव्रती भूपो नहि तस्योत्तरं ददौ । इन्द्रसेना च तत्सर्वमाचष्टास्मै यथातथम् ॥१२

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञात्वा तं च नरिष्यन्तं वपुष्मान्पितरं रिपोः । प्राप्तोऽसीति वदन्कोपाज्जटासु परिगृह्य च ॥१३
हाहेति चन्द्रसेनायां रुदन्त्यां बाष्पगद्गदम् । चकर्ष कोपात्खड्गं च वाक्यं चेदमुवाच ह ॥१४
निर्जितः समरे येन येन मे सुमना हृता । दमस्य तस्य पितरं हनिष्येऽवतु तं दमः ॥१५

विप्र ! तब उन्होंने भी दोनों को आशीर्वाद वचनों के द्वारा अभिनन्दित किया ।२। जब स्त्री ग्रहण करके दम दशार्णाधिपति के पुर से आ गये, तब नरिष्यन्त के पुर में महोत्सव आरंभ हुआ ।३। महीपति नरिष्यन्त दशार्णेश्वर के सहित वैवाहिक संबंध और पुत्र के द्वारा अनेक राजाओं के हारने के संवाद सुनकर परसंतोष को प्राप्त हुए ।४। इसके उपरान्त राजपुत्र दम विचित्र उद्यान वनप्रदेश प्रासाद और पर्वत इत्यादि स्थानों से सुमना के संग विहार करने लगे ।५। दम के संग इस प्रकार विहार करते-करते कुछ काल बाद दशार्णराजा की कन्या सुमना ने गर्भ धारण किया ।६। इसी समय राजा नरिष्यन्त भोगसमूह उपभोग पूर्वक वयस की परिणति अवस्था अर्थात् वृद्धावस्था देख दम को राज्य में अभिषिक्त कर ।७। यशस्विनी पत्नी इन्द्र सेना के सहित वन में चले गये और वहाँ वानप्रस्थ विधानानुसार वास करने लगे ।८। एक समय दुराचारी दाक्षिणात्य राजा संक्रन्दन का पुत्र वपुष्मान् अल्प अनुगामी मनुष्यों के सहित उस वन में मृगया के लिये उपस्थित हुआ ।९। वहाँ मैल से युक्त शरीर वाले तपस्वी नरिष्यन्त और उनकी पत्नी से तप से दुबले अंग हुई इन्द्र सेना को देखकर पूँछा कि, तुम कौन हो ? ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य, कौन जाति तुम वानप्रस्थ अवलम्बन करके वनवासी हुए हो ? वह मुझसे कहो ।१०-११। राजा मौनव्रत होने से इस बात का उत्तर नहीं दे सके, किन्तु इन्द्र सेना ने उससे सब वृत्तान्त यथावत् कह दिया ।१२

मार्कण्डेय जी बोले—उनको शत्रु का पिता नरिष्यन्त जानकर वपुष्मान् ने "पाया है" शब्द उच्चारणपूर्वक क्रोध से उनकी जटा पकड़ ली ।१३। उस काल इन्द्रसेना हाहाकार शब्द और वाष्पगद्गद स्वर से रोने लगी । तब दुराचारी ने उसीसमय म्यान से तलवार खींचकर कहा ।१४। "जिसने मुझको समर में परास्त किया था, जो मेरी सुमना को हरकर ले गया है, आज उस दम के पिता को नष्ट करता हूँ,

येनाखिलमहीपालपुत्राः कन्यार्थमागताः । अवधूता हनिष्येऽहं पितरं तस्य दुर्मतेः ।।१६
यौवनास्त्रस्वरूपेषु मदो यस्य दुरात्मनः । स दमो वारयत्वेष हन्मि तस्या रिपोर्गुरुम् ।।१७

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा स दुराचारो वपुष्मानवनीपतिः । क्रंदन्त्यामिन्द्रसेनायां शिरश्चिच्छेद तस्य च ।।१८
ततो धिग्धिङ्मुनिजना अन्ये च वनवासिनः । तमूचुः स च तं हत्वा जगाम स्वपुरं वनात् ।।१९
गते तस्मिन्विनिश्वस्य सेन्द्रसेना वपुष्मति । प्रेषयामास पुत्रस्य समीपं शूद्रतापसम् ।।२०
गच्छेथा आशु मे पुत्रं दमं ब्रूहि वचो मम । अभिज्ञो ह्यसि मद्भर्तृवृत्तान्तं प्रोच्यतेऽत्र किम् ।।२१
तथापि वाच्यः पुत्रो मे यद्ब्रवीम्यतिदुःखिता । लंघनामीदृशीं प्राप्तां विलोक्यैतां महीपतेः ।।२२
मद्भर्त्राऽधिकृतो राजा चतुर्णां परिपालकः । त्वमाश्रमाणां किं युक्तं तापसान्यन्न रक्षसि ।।२३
भर्ता मम नरिष्यन्तस्तापसस्तपसि स्थितः । विलपन्त्यास्तथा नाथो यथा नासि तथा त्वयि ।।२४
आकृष्य केशेषु बलादपराधं विना ततः । हतो वपुष्मता ख्यातिमिति ते भूपतिर्गता ।।२५
एवं स्थिते तत्क्रियतां यथा धर्मो न लुप्यते । तथा च नैव वक्तव्यं माताहं तापसी यतः ।।२६
पिता वृद्धस्तपस्वी च नापराधेन दूषितः । निहतो येन यत्तस्य कर्तव्यं तद्विचिन्त्यताम् ।।२७

दम आकर रक्षा करे ।१५। कन्या के अर्थ आये हुए सब राजपुत्रों को जिसने अपमानित किया है उस दुर्मति दम के पिता का आज मैं वध करता हूँ ।१६। जो दुरात्मा स्वभाव से ही योद्धाओं को दमन करने वाला है, आज उसी शत्रु के पिता को निहत करता हूँ, दम आकर निवारण करे" ।१७

मार्कण्डेय जी बोले—यह कहकर दुरात्मा राजा वपुष्मान् ने रोती हुई इन्द्रसेना के सामने ही नरिष्यन्त का शिर काट डाला ।१८। तब मुनिगण और अपरापर वनवासी सब उसको धिक्कार देने लगे फिर वह भी नरिष्यन्त को इस अवस्था में देखकर वन में अपने पुर में चला गया ।१९। वपुष्मान् के चले जाने पर इन्द्र सेना ने लम्बे श्वास छोड़कर एक शूद्रतापस को पुत्र के पास भेजा ।२०। उससे कह दिया कि, तुम शीघ्र जाकर हमारे पुत्र दम से हमारा वृत्तान्त कहो । तुम मेरे स्वामी का वृत्तान्त समस्त ही जानते हो । अत एव तुमसे और इस विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है ।२१। किन्तु तो भी महीपति का उपस्थित ऐसा अपमान देखने से अत्यन्त दुःखित होकर मैं जो कहती हूँ मेरे पुत्र से वह सब कहो ।२२। तुम राजा हो, तुम चारों आश्रमों के प्रतिपालक भर्त्ता नियुक्त हुए हो, किन्तु तुम जो तपस्वी लोगों की रक्षा नहीं करते, यह क्या तुमको उचित है ।२३। मेरे स्वामी नरिष्यन्त तपस्वी होकर तपस्या करते थे । किन्तु तुम रक्षा कर्त्ता के वर्तमान होते हुए भी अनाथ के समान बिना अपराध उनके केश खींचकर मेरे विलाप करते-करते वपुष्मान् ने उनको मार डाला है । तुम्हारे संबंध में यह हुआ कि, तुमने राजा होकर इस प्रकार ख्याति लाभ की।२४-२५। इस अवस्था में जिससे धर्मलोप न हो उसी के उपयुक्त कार्य करो। मैं तापसी हूँ, इससे अधिक और मुझको कहना उचित नहीं है।२६। तुम्हारे पिता एक तो वृद्ध थे, इस पर भी तपस्वी और फिर वह किसी अपराध में अपराधी भी नहीं थे ऐसी अवस्था में जो उनका वध किया है, अब इसके संबंध में जो कर्त्तव्य हो, उस विषय की भली भाँति चिन्ता करो।२७। तुम्हारे शास्त्रवेत्ता वीरमंत्री

सन्ति ते मन्त्रिणो वीराः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः । तैः सहालोच्य यत्कार्यमेवंभूते कुरुष्व तत् ॥२८
नास्माकमधिकारोऽत्र तापसानां नराधिप । कुरुष्वैतदितीत्थं त्वमेवं भूपतिभाषितम् ॥२९
विदूरथस्य जनको यवनेन यथा हतः । तथायं तव पुत्रस्य कुलं तेन विनाशितम् ॥३०
जम्भस्यासुरराजस्य पिता दष्टो भुजङ्गमैः । तेनाप्यखिलपातालवासिनः पन्नगाः हताः ॥३१
पराशरेण पितरं शक्तिं तं रक्षसाऽऽहतम् । श्रुत्वाऽग्नौ पातितं कृत्स्नं रक्षसामभवत्कुलम् ॥३२
अन्यस्यापि स्ववंशस्य लंघना क्रियते हि या । तां नालं क्षत्रियः सोढुं कि पुनः पितृमारणम् ॥३३
नायं पिता ते निहतो नास्मिञ्छस्त्रं निपातितम् । त्वामत्र निहतं मन्ये त्वयि शस्त्रं निपातितम् ॥३४
बिभेत्यस्य हि कः शस्त्रं न्यस्तं येन वनौकसाम् । तव नृपस्य पुत्रस्य मा बिभेतु बिभेतु वा ॥३५
तवेयं लङ्घनायुक्ता यदस्मिंस्तत्समाचर । वपुष्मति महाराज सभृत्यज्ञातिबान्धवे ॥३६

मार्कण्डेय उवाच

इति संक्रान्तसन्देशमिन्द्रसेना विसृज्य तम् । पतिदेहमुपाश्लिष्य विवेशाग्निं मनस्विनी ॥३७

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरितवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३१।

विद्यमान हैं उनसे परामर्श करके इस अवस्था में जो कर्तव्य हो, वह करो ।२८। हे नराधिप, तुम्हारे पिता महाराज नरिष्यन्त ने मृत्यु के समय कहा है, कि "मैं तापस हूँ, इन विषय में मेरा कुछ अधिकार नहीं है तुम्ही इसका प्रतिकार करना" ।२९। विदूरथ के पिता जिस प्रकार यवन के द्वारा निहत हुए थे उसी प्रकार हे पुत्र ! तुम्हारे पिता का वध करके वपुष्मान् ने तुम्हारेकुल को नष्ट किया है ।३०। असुरराज जम्भ के पिता को जब सर्पों ने काटा था, तब जंभ ने संपूर्ण पातालवासी पन्नगों को निहत किया था ।३१। और राक्षस के द्वारा पिता को निहत हुआ सुनकर पराशर ने संपूर्ण राक्षसकुल को अग्नि में पातित अर्थात् दग्ध किया था ।३२। अपने वंश के अन्य किसी के अपमान होने पर क्षत्रिय जब उसको भी सहन नहीं कर सकते, तो फिर पिता के वध की बात क्या कहूँ ? ।३३। मेरे विचार से तुम्हारे पिता निहत नहीं हुए हैं, उनके प्रति शस्त्रपात भी नहीं हुआ है इसमें तुम्हीं निहत हुए हो और तुम्हारे ऊपर ही शस्त्र निपातित हुआ है ।३४। जो व्यक्ति वन वासियों के ऊपर शस्त्र चलाता है उसका कौन भय करता है और उसका पौरुष क्या है ? वह पापी है, तुम उनके पुत्र और राजा हो, तुम यदि शत्रु का विनाश करो तो सब तुमसे भय करेंगे । इसके अन्यथा होने से कोई भी तुमसे भय नहीं करेगा इस कारण तुम्हारे राज्यशासन में भी विघ्न होगा ।३५। यह अपमान तुम्हारा ही हुआ है अत एव हे महाराज ! भृत्य ज्ञाति और बान्धवों के सहित वपुष्मान् के संबंध में जो कर्त्तव्य है वह करो ।३६

मार्कण्डेय जी बोले—मनस्विनी इन्द्र सेना ने, तापस से यह सब बात कही और फिर उसको बिदा दे पति के देह को आलिंगनपूर्वक अनल में प्रवेश किया ।३७

श्रीमार्कण्डेयपुराण में दमचरित्र वर्णन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३१।

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

(232)

दमचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इन्द्रसेनासमाज्ञप्तः स गत्वा शूद्रतापसः । समाचष्ट यथापूर्वं दमाय निधनं पितुः ।।१
तापसेन समाख्याते दमस्तेन पितुर्वधे । क्रोधेनातीव जज्वाल हविषेवाग्निरुद्धतः ।।२
स तु क्रोधाग्निना धीरे दह्यमानो महामुने । करं करेण निष्पिष्य वाक्यमेतदुवाच ह ।।३
अनाथ इव मे तातो मयि पुत्रे तु जीवति । घातितः सुनृशंसेन परिभूय कुलं मम ।।४
तापं करोम्यहं किंवाप्येष क्लैब्यात्क्षमाम्यहम् । दुर्वृत्तशान्तौ शिष्टानां पालनेऽधिकृता वयम् ।।५
पितरं चापि निहतं दृष्ट्वा जीवन्ति शत्रवः । तत्किमेतेन बहुना हा तातेति च किं पुनः ।।६
विलापेनात्र यत्कृत्यं तदेषोऽत्र करोम्यहम् । यद्यहं तस्य रक्तेन देहोत्थेन वपुष्मतः ।।
न करोमि गुरोस्तृप्तिं तत्प्रवेक्ष्ये हुताशनम् ।।७

तच्छोणितेनोदककर्म तस्य मांसेन सम्यग्द्विजभोजनं च ।
कुर्यां न पितुस्तस्य च पिण्डदानं न चेत्प्रवेक्ष्यामि हुताशनं तत् ।।८
साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ।
कुर्वन्ति चेत्तानपि चास्त्रपूगैर्भस्मीकरोम्येष रुषा समेतः ।।९

अध्याय १३२

दमचरित्र का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—शूद्र तापस ने इन्द्र सेना की इस प्रकार आज्ञा पाकर, दमके समीप जाकर, उनके पिता की मृत्यु संवाद और रानी इन्द्र सेना ने जिस प्रकार आज्ञा दी थी वह सब कहा ।१। जब तापस ने पिता के वध होने का वृत्तान्त आदि से अंततक वर्णन किया तब राजा दम घृताहुति से उठी हुई अग्नि के समान क्रोध से जल उठे ।२। हे महामुने ! वह स्वभाव से धीर होने पर भी उस काल क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो हाथ से हाथ मलकर कहने लगे ।३। मुझ पुत्र के जीवित रहते वंश का अपमान करके नृशंस ने मेरे पिता को अनाथ के समान वध किया है ।४। मैं ताप करूँ या नपुंसकता से क्षमा करूँ मैं दुष्टों का दमन और शिष्ट पुरुषों के पालन करने में नियुक्त हुआ हूँ ।५। किन्तु पिता को निहत देखकर भी मेरे शत्रु अभी तक जीवित हैं, (इसलिए मैं नपुंसक के समान उनको क्षमा करता हूँ, इस प्रकार जनापवाद अवश्य उपयुक्त ही कहना चाहिए ।) अत एव अधिक बातचीत का क्या प्रयोजन है अथवा 'हा तात !' इस भाँति विलाप करने से ही क्या होगा ।६। अब जो कर्त्तव्य है, वह मैं करता हूँ यदि मैं वपुष्मान् के देह से निकले रक्त द्वारा पिता का तर्पण न करूँ तो अनल में प्रवेश करूँगा ।७। यदि युद्ध में उसको मारकर उसके शोणित से मृत पिता का उदक कर्म और मांस द्वारा (राक्षसकुलोत्पन्न) ब्राह्मणों को भोजन न करा सकूँ और उसके मांस से पितरों को पिंडदान न करूँ, तो मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा ।८। असुर, देव, यक्ष, गंधर्व, विद्याधर और सिद्धगण भी यदि उसकी सहायता करें तो तत्काल उनको भी मै क्रोध सहित अस्त्राग्निद्वारा

निःशूरमाधार्मिकमप्रशस्तं तं दाक्षिणात्यं समरे निहत्य।
भोक्ष्ये ततोऽहं पृथिवीं च कृत्स्नां वह्निं प्रवेक्ष्याम्यनिहत्य तं वा॥१०
सुदुर्मतिं तापसवृद्धघातिनं वनस्थगं साधुविधिं विदग्धगम्।
हन्ताहमद्याखिलबन्धुमित्रपदातिहस्त्यश्वबलैः समेतम्॥११
एषोऽहमादाय धनुःसखड्गो रथी तथैवारिबलं समेत्य।
करोमि वै यत्कदनं समस्ताः पश्यन्तु मे देवगणा समेताः॥१२
यो यः सहायो भविताद्य तस्य मया समेतस्य रणाय भूयः।
तस्यैव निःशेषकुलक्षयाय समुद्यतोऽहं निजबाहुसैन्यः॥१३
यदि कुलिशकरोऽस्मिन्संयुगे देवराजः पितृपतिरथ चोग्रं दण्डमुद्यस्य कोपात्।
धनपतिवरुणार्का रक्षितुं तं यतन्ते निशितशरवरौघैर्घातयिष्ये तथापि॥१४
नियतमतिरदोषः काननाखण्डलोका निपतितफलभक्षः सर्वभूतेषु मैत्रः।
प्रभवति मयि पुत्रे हिंसितो येन तातः पिशितरुधिरतृप्तास्तस्य सन्त्वद्य गृध्राः॥१५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१३२।

भस्म करूँगा।९। उस शौर्यहीन, अधार्मिक, निन्दित दाक्षिणात्य को समर में निहत करके फिर मैं संपूर्ण पृथ्वी का भोग करूँगा अथवा उसके मारने में असमर्थ होकर अग्नि में प्रवेश करूँगा।१०। मेरे वनवासी मौनव्रती, तपोनिरत वृद्ध पिता के उद्विग्न होकर शान्तिवचन कहने पर भी जिस दुर्मति ने उनका वध किया है, मैं अभी समस्त बंधु, मित्र, पदाति, हस्ती और सेना सहित उसका संहार करूँगा।११। मैं अब खड्ग और धनुष को ग्रहण कर, रथ पर चढ़ शत्रु की सेना में उपस्थित हो, उनके जिस प्रकार संहार कार्य में प्रवृत्त होता हूँ, वह सब देवगण देखें।१२। आज वह मेरे संग संग्राम में प्रवृत्त होने पर जो जो उसका सहायक होगा, अपनी इन स्वीय बाहुरूप सेना के द्वारा तत्काल उनका भी ससम्त कुलक्षय करने के लिये मैं उद्यत हुआ हूँ।१३। इस युद्ध में वज्रहस्त इन्द्र, क्रोधसहित उग्र दण्ड उद्यत करके यम, अथवा कुबेर वरुण और सूर्य भी यदि उसकी रक्षा करनें का यत्न करें तो भी मैं शोणित श्रेष्ठ बाणों के द्वारा उनका विनाश करूँगा।१४। मुझ प्रभावशाली पुत्र के वत्तर्मान रहते भी जिसने मेरे संयतचित्त, निर्दोष, वनवासी, गिरे हुए फलमात्र से जीविका निर्वाह करने वाले और सर्व प्राणियों में मैत्रीपरायण पिता को वध किया है आज उसके मांस और रुधिर से गृध्रकुल तृप्ति लाभ करे।१५

श्रीमार्कण्डेयपुराण में दमचरित्र वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त।१३२।

(२३५)

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वपुष्मद्वधवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति प्रतिज्ञाय तदा नरिष्यन्तसुता दमः । कोपामर्षविवृत्ताक्षः श्मश्रुमावृत्य पाणिना ।।१
हा हतोऽस्मीति पितरं ध्यात्वा देवं विनिंद्य च । प्रोवाच मंत्रिणः सर्वानानिनाय पुरोहितम् ।।२

दम उवाच

यदत्र कृत्यं तद्ब्रूत ताते प्राप्ते सुरालयम् । श्रुतं भवद्भिर्यत्प्रोक्तं तेन शूद्रतपस्विना ।।३
वृद्धस्तपस्वी स नृपो वानप्रस्थव्रते स्थितः । मौनव्रतधरोऽशस्त्रो मन्मात्रा चेन्द्रसेनया ।।४
प्रोक्तं संसृष्टया स्वात्म्याद्याथातथ्यं वपुष्मते । तेनापि खड्गमाकृष्य जटां सव्येन पाणिना ।।५
धृत्वा जघान दुष्टात्मा लोकनाथमनाथवत् । माता च संदिश्य हि मां धिक्छब्दं ब्रुवती सती ।।६
मन्दभाग्यं च निःश्रीकं प्रविष्टा हव्यवाहनम् । तमालिंग्य नरिष्यन्तं प्रयाता त्रिदशालयम् ।।७
सोऽहमद्य करिष्यामि यन्मे मातुरुदीरितम् । हस्त्यश्वरथपादातं सैन्यं च परिकल्प्यताम् ।।८
अनिर्याप्य पितुर्वैरमहत्वा पितृघातकम् । अकृत्वा च वचो मातुर्जीवितुं किमिहोत्सहे ।।९

मार्कण्डेय उवाच

मन्त्रिणस्तद्वचः श्रुत्वा हाहेत्युक्त्वा तथा च तत् । कृतवन्तो विमनसः सभृत्यबलवाहनाः ।।१०

अध्याय १३३

वपुष्मान् के वध का वर्णन

मार्कण्डेय जी बोले—नरिष्यन्त पुत्र दम ने इस प्रकार प्रतिज्ञा करके कोप और अमर्ष में भर घूर्णित नेत्रों से हाथ से श्मश्रुआवरणपूर्वक मूछों को चढाया ।१। ''हा हतोस्मि' कहकर पिता की चिन्ता और दैव की निन्दा करने लगे । इसके बाद पुरोहितों को बुलाकर सब मंत्रियों के सामने कहा ।२

दम बोले—पिता जी स्वर्ग में चले गये हैं, शूद्र तपस्वी ने जो कहा वह आप जान ही चुके हैं अब इस समय जो करना चाहिए, वह आप कहिये ।३। सब के शासनकर्त्ता वह नृप वृद्धावस्था में वानप्रस्थ व्रत अवलम्बनपूर्वक तपस्वी होकर मौनव्रती थे, वपुष्मान् के पूछने पर मेरी माता इन्द्र सेना ने ।४। वपुष्मान् को सब सत्य परिचय दिया । तब उस दुष्टात्मा ने खड्ग खींचकर दायें हाथ से ।५। लोकनाथ को अनाथ के समान पकड़कर मार डाला है । मेरी सती माता मुझ मन्दभागी और श्रीहीन को धिक्कार देती हुई मेरे पिता उन नरिष्यन्त को आलिंगनपूर्वक अग्नि में प्रवेश करके स्वर्ग को चली गई है ।६-७। माता ने मुझको जिस प्रकार आज्ञा कहला भेजी है, मैं अब उसी के अनुसार कार्य करूँगा हाथी, घोड़े रथ और पैदल यह चतुरङ्ग सेना सज्जित हो ।८। पिता के वैर लेने के निमित्त पितृघातक को बिना वध किये और माता की आज्ञा बिना पालन किये ही मैं जीवन धारण में किस प्रकार उत्साही होऊँगा ।९

मार्कण्डेय जी बोले—मंत्रियों ने उनके यह वचन सुन हाहाकार शब्द द्वारा शोक प्रकट कर उदास

निर्ययुः सपरीवाराः पुरस्कृत्य दमं नृपम् । गृहीत्वा चाशिषो विप्रात्त्रिकालज्ञात्पुरोधसः ॥११
अहिराडिव निःश्वस्य दमः प्रायाद्वपुष्मतम् । सीमापालादिसामन्तान्निघ्नन्याम्यां दिश त्वरा ॥१२
निरीक्ष्य तं समायान्तं वपुष्मान्मर्षपूरितः । संक्रन्दनसुतेनापि दमो ज्ञातो वपुष्मता ॥
आयातः सपरीवारः सामात्यः सपरिच्छदः ॥१३
अकंपितेन मनसा ससैन्यानि दिदेश ह । दूतं च प्रेषयामास निर्गम्य नगराद्बहिः ॥१४
त्वं शीघ्रतरमागच्छ नरिष्यन्तः प्रतीक्षते । सभार्यक्षत्रबन्धो त्वं समायाहि ममान्तिकम् ॥१५
इमे मद्बाहुनिर्मुक्ताः शिता बाणाः पिपासिताः । भित्त्वा शरीरं सङ्ग्रामे पास्यन्ति रुधिरं तव ॥१६
श्रुत्वा दमस्तु तत्सर्वं दूतप्रोक्तं ययौ त्वरन् । स्मृत्वा प्रतिज्ञां पूर्वोक्तां निःश्वसन्नुरगो यथा ॥१७
आहूतसमरे चैव पुमान्सेनाविकत्थनः । ततो युद्धमतीवासीद्दमस्य च वपुष्मतः ॥१८
रथी च रथिना नागी नागिना हयिना हयी । अयुध्यन्त च विप्रर्षे तद्युद्धं तुमुलं ह्यभूत् ॥१९
पश्यतां सर्वदेवानां सिद्धगन्धर्वरक्षसाम् । चकम्पे वसुधा ब्रह्मन्युध्यमाने दमे युधि ॥२०
न गजो न रथी नाश्वस्तस्य बाणसहस्तु यः । ततो दमेन युयुधे सेनाध्यक्षो वपुष्मतः ॥२१
हृदि विव्याध च दम इषुणागाद्यमान्तिकम् । तस्मिन्निपतिते सैन्यं पलायनपरं ह्यभूत् ॥२२
स स्वामिनं ततः प्राह दमः शत्रुं दमस्तथा । क्व यासि दुष्ट पितरं घातयित्वा तपस्विनम् ॥२३

राजा की आज्ञानुसार कार्य किया और भृत्य, सैन्य तथा बल वाहन के सहित ।१०। (खड्ग शक्ति और ऋष्टि हाथ में लिये) सपरिवार निकले । तब दम भी त्रिकालज्ञ विप्र पुरोहितों का आशीर्वाद ग्रहण कर ।११। उरगराज के समान श्वास छोड़ते हुए सीमापालादि सामन्तगणों को विनाश करते-करते शीघ्रता से दक्षिणदिशा में वपुष्मान् के लिये गये ।१२। परिवार कुटुम्ब और आमात्यगणों के सहित योद्धा के देश में दम आये हैं, यह संवाद पाकर संक्रन्दन के पुत्र वपुष्मान् भी अमर्ष में पूर्ण हो ।१३। अविचलित चित्त से अपनी सेना को युद्ध के लिये आज्ञा दी और नगर से बाहर जा यह कहकर दूत भेजा ।१४। कि रे क्षत्रियाधम ! तू अत्यन्त शीघ्र आ, भार्या के सहित नरिष्यन्त तेरी प्रतीक्षा करते हैं, इस कारण तू शीघ्र मेरे निकट आगमन कर ।१५। यह सब रुधिर के प्यासे शिला पर पैने बाण मेरी भुजाओं के द्वारा छूट संग्राम स्थल में तेरे शरीर को भेदन कर रुधिर पान करेंगे ।१६। दम दूत के यह सब वचन सुन और पहली प्रतिज्ञा स्मरण कर सर्प के समान श्वास छोड़ते-छोड़ते शीघ्रता सहित गये ।१७। और उसको समर में बुलाकर कहा "जो प्रकृत पुरुष हैं, वह कभी आत्मश्लाघा नहीं करते ।" अनन्तर दम और वपुष्मान् का घोरतर युद्ध उपस्थित हुआ ।१८। रथी के संग रथी, हाथी के संग हाथी और अश्वारोही के संग अश्वारोही युद्ध करने लगे । वह तुमुल संग्राम होने लगा ।१९। हे विप्रर्षे ! संपूर्ण देवगण, सिद्ध, गंधर्व और राक्षसगण देखने लगे । उनके सामने इस प्रकार युद्ध होने लगा । हे ब्राह्मण ! जिस काल दम क्रोधपूर्वक युद्ध करने में प्रवृत्त हुये, उस समय पृथ्वी काँपने लगी ।२०। ऐसा कोई हाथी, घोड़ा या रथी नहीं, जो उनके बाण सहन कर सकता। वपुष्मान् का सेनापति दम के संग युद्ध करता था।२१। दम के बाण द्वारा उसका हृदय गाढ रीति से विद्ध किया गया। सेनापति के गिरते ही वपुष्मान् सहित सब सेना भागने में तत्पर होकर प्रस्थान करने लगी।२२। तब शत्रुदमनकारी दम ने कहा रे दुष्ट !

अशस्त्रं च तपस्यन्तं क्षत्रियोऽसि निवर्तताम् । ततो निवृत्य स दमं योधयामास सानुजः ॥२४
स पुत्रः सह सम्बन्धिबान्धवैर्युयुधे रथी । ततः शरासनान्मुक्तबाणैर्व्याप्तास्ततो दिशः ॥२५
दमं च सरथं चाशु शरजालैरपूरयत् । ततः पितृवधोत्थेन कोपेन स दमस्तथा ॥२६
चिच्छेद ताञ्छरांस्तेषां विव्याधान्यैश्च तानपि । एकेनैकेन बाणेन सप्त पुत्रांस्तथा द्विज ॥२७
सम्बन्धिबान्धवान्मित्रान्निनाय यमसादनम् । वपुष्मान्स रथी क्रोधान्निहतात्मजबान्धवः ॥२८
युयुधे च स तेनाजौ शरैराशीविषोपमैः । चिच्छेद तस्य तान्बाणान्स दमश्च महामुने ॥२९
युयुधाते च संरब्धौ परस्परजयैषिणौ । परस्परशराघातविच्छिन्नधनुषौ त्वरा ॥३०
गृहीतखड्गावुत्तीर्य चिक्रीडाते महाबलौ । दमः क्षणं नृपं ध्यात्वा पितरं निहतं वने ॥३१
केशेष्वाकृष्य चाक्रम्य निपात्य धरणीतले । शिरोधरायां पादेन भुजमुद्यम्य चाब्रवीत् ॥३२
पश्यन्तु देवताः सर्वा मानुषाः पन्नगाः खगाः । पाटयमानं च हृदयं क्षत्रबन्धोर्वपुष्मतः ॥३३
एवमुक्त्वा च स दमो हृदयं च व्यदारयत् । पातुकामश्च स सुरैः क्षतजेन निवारितः ॥३४
ततश्चकार तातस्य रक्तेनैवोदकक्रियाम् । आनृण्यं प्राप्य स पितुः पुनः प्रायात्स्वमन्दिरम् ॥३५
वपुष्मतश्च मांसेन पिण्डदानं चकार ह । ब्राह्मणान्भोजयामास रक्षःकुलसमुद्भवान् ॥३६

मेरे तपस्वी पितरों को मारकर तू कहाँ जाता है ।२३। तुमने मेरे शस्त्रहीन तपस्वी पिता को निहत किया है, तू क्षत्रिय है, अत एव निवृत्त हो । अनन्तर वपुष्मान् ने अनुज, पुत्रसंबंधी और बांधवों के सहित निवृत्त होकर रथारोहणपूर्वक युद्ध आरम्भ किया । तब वपुष्मान् ने धनुष से छोड़े हुए बाणों के द्वारा आकाश और संपूर्ण दिशा आच्छन्न कर दी ।२४-२५। और बाण-जालद्वारा अश्व तथा रथसहित दम को ढक दिया । तब दम ने भी पिता के वध से उत्पन्न हुए कोप द्वारा ।२६। उसके बाणों को छेदन करके शत्रुओं का अंग बाणों से विद्ध किया और एक एक बाण से उसके सात पुत्र ।२७। अनुज, संबंधी और मित्रों को यमसदन में भेज दिया । तब रथी वपुष्मान् भी आत्मज बांधवों के मरने से अत्यन्त क्रोधित होकर ।२८। सर्प के समान बाणों से दम के सहित युद्ध करने लगा किन्तु हे महामुने ! दम ने उन सब बाणों को काट डाला ।२९। इस प्रकार अत्यन्त क्रोध सहित परस्पर के वध की इच्छा करके दारुण युद्ध करने लगे । दोनों ही बलवान् और दोनों ही क्रमशः परस्पर के शराघात से छिन्नधनु हो, दोनों ही खड्गग्रहणपूर्वक उठकर युद्ध क्रीडा करने लगे, वन में निहत पिता की क्षण काल चिन्ता करके दम ने उसके ।३०-३१। केश खींचकर उसको धरणीतल में गिरा दिया और उसकी गर्दन पैरों से दबाकर भुजा उठाकर इस प्रकार कहने लगे ।३२। इस क्षत्रियाधम वपुष्मान् का हृदय विदीर्ण करता हूँ । संपूर्ण देवता मनुष्य सिद्ध और पन्नग तथा खग यह वार्त्ता अवलोकन करें ।३३। इस प्रकार कहकर दम ने असिद्वारा उसका हृदय विदीर्ण किया और उसका रक्तपान करने में उद्यत हुए, तब देवताओं ने उनको निवारण किया ।३४। उन्होंने उस रक्त से अपने पिता की उदकक्रिया सम्पन्न कराई । दम ने वपुष्मान् के मांस द्वारा पितृपिण्ड प्रदान किये और राक्षसकुलोत्पन्न ब्राह्मणों को भोजन कराया । इस प्रकार पिता के ऋण से मुक्त होकर फिर अपने राज्य में लौट आये ।३५-३६। इस प्रकार के पराक्रमी राजा सूर्यवंश में प्रगट

मार्कंडेयऋषिः

बृहद्व्रतधरः शांतः जटिलो वल्क-
लाबरः ॥ बिभ्रत्कमण्डलुदण्ड मु-
पवीतं समेखलम् ॥ कृष्णाजिनं
साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये ॥

बालमुकुंद

एवंविधा हि राजानो बभूवुः सूर्यवंशजाः । अन्येऽपि सुधियः शूरा यज्विनो धर्मकोविदाः ।।३७
वेदान्तपारगास्ताञ्च न संख्यातुमिहोत्सहे । एतेषां चरितं श्रुत्वा नरः पापैः प्रमुच्यते ।।३८
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते वपुष्मद्वधो नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।१३३।

अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

(१३६)

श्रवणपठनवर्णनम्

पक्षिण ऊचुः

एवमुक्त्वा जैमिनेयं मार्कण्डेयो महामुनिः । विसृज्य क्रौष्टुकिमुनिं चक्रे माध्याह्निकीं क्रियाम् ।।१
अस्माभिश्च श्रुतं तस्माद्यत्ते प्रोक्तं महामुने । अनादिसिद्धमेतद्धि पुरा प्रोक्तं स्वयंभुवा ।।२
मार्कण्डेयाय मुनये यत्तेऽस्माभिरुदाहृतम् । पुण्यं पवित्रमायुष्यं धर्मकामार्थसिद्धिदम् ।।३
पठतां शृण्वतां सद्यः सर्वपापप्रमोचनम् । आदावेव कृता ये च प्रश्नाश्चत्वार एव हि ।।४
पितुः पुत्रस्य संवादस्तथा सृष्टिः स्वयंभुवः । तथा मनूनां स्थितयो राज्ञां च चरितं मुने ।।५
अस्माभिरेतत्ते प्रोक्तं किमद्य श्रोतुमिच्छसि । एतान्सर्वान्नरः श्रुत्वा पठते वा सभासु च ।।६
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मणोऽन्ते लयं व्रजेत् । अष्टादशपुराणानि यानि प्राह पितामहः ।।७
तेषां तु सप्तमं ज्ञेयं मार्कण्डेयं सुविश्रुतम् । ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।।८

हुए हैं और भी अनेक बुद्धिमान् शूर यज्ञ करने वाले धर्मात्मा और पंडित हुए हैं ।३७। वह ऐसे वेदान्त-पारगामी हुए हैं, जो कहने में नहीं आते न उनकी कोई संख्या कर सकता है इनका चरित्र श्रवण कर मनुष्य सब पापों से छूटता है ।३८

श्रीमार्कण्डेयपुराण के दमचरित्र में वपुष्मद्वध वर्णन नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ।१३३।

अध्याय १३४

श्रवणपठन का वर्णन

पक्षिगण बोले—हे जैमिने ! महमुनि मार्कण्डेय जी ने इस प्रकार कीर्त्तन कर, क्रौष्टुकि मुनि को बिदा दे मध्याह्न क्रिया सम्पन्न की।१। हे महामुने ! जो आपके निकट वर्णन किया, यह अनादिसिद्ध पुराण स्वयंभू ने मार्कण्डेयमुनि से कहा था, हमने उन्हीं के निकट से इसको सुना है।२। हमने जो आपसे कहा, यह मार्कण्डेय का कहा हुआ मनोहर पुराण पुण्य पवित्र कहा है इसके पाठ करने अथवा सुनने से आयुर्वृद्धि और सर्वकामार्थ की सिद्धि होती है।३। तथा इसके पढ़ने सुनने से मनुष्य संपूर्ण पापों से छूट जाता है । आपने पूर्व में मुझसे जो चार प्रश्न किये थे उन्हीं का उत्तर ।४। और पितापुत्र का संवाद स्वयंभू की सृष्टि मनुगणों की उत्पत्ति और राजाओं का चरित्र भी ।५। मैंने आपसे वर्णन किया। अब और क्या सुनने की इच्छा करते हो ? मनुष्य यह सब श्रवण करने और सभास्थल में पाठ करने पर।६। समस्त पापों से छूटकर ब्रह्म में लीन होता है। पितामह ब्रह्मा ने अष्टादश पुराण कीर्त्तन किये थे।७। उनमें यह विख्यात मार्कण्डेयपुराण सप्तम है। (१) ब्रह्म, (२) पाद्म, (३) वैष्णव, (४) शैव, (५) भागवत,

तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् । आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा ॥९
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् । वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कन्दमत्र त्रयोदशम् ॥१०
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा । मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम् ॥११
अष्टादशपुराणानां नामधेयानि यः पठेत् । त्रिसन्ध्यं जपते नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥१२
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ।१३
चतुःप्रश्नसमोपेतं पुराणं ह्येतदुत्तमम् । श्रुत्वा पुनश्च ते पापं कल्पकोटिशतैः कृतम् ॥१४
ब्रह्महत्यादिपापानि यान्यन्यान्यशुभानि च । तानि सर्वाणि नश्यन्ति तृणं वातहतं यथा ॥१५
पुष्करे दानजं पुण्यं श्रवणादस्य जायते । सर्ववेदाधिकफलं समाप्त्या चाधिगच्छति ॥१६
यः श्रावयेत्पूजयेत्तं यथा देवं पितामहम् । गन्धपुष्पैस्तथा वस्त्रैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥१७
यथाशक्त्या च दातव्यं नृपैर्ग्रामादिवाहनम् । एतत्पुराणमखिलं वेदार्थैरुपबृंहितम् ॥
धर्मशास्त्रैकनिलयं श्रुत्वा सर्वार्थमाप्नुयात् ॥१८
श्रुत्वा पुराणमखिलं व्यासं सम्पूज्येद्बुधः । धर्मार्थकाममोक्षाणां यथोक्तफलहेतवे ॥१९
दद्याद्गां गुरवे स्वर्णवस्त्रालङ्कारसंयुताम् । श्रवणस्य फलावाप्त्यै दानैः संतोषयेद्गुरुम् ॥२०
अपूज्य पाठकर्तारं श्लोकमेकं शृणोति यः । नासौ पुण्यमवाप्नोति शास्त्रचोरः स्मृतो हि सः ॥२१
न तस्य देवाः प्रीणन्ति पितरो नैव पुत्रकान् । दत्तं श्राद्धं तथेच्छन्ति तीर्थस्नानफलं न च ॥२२

---

(६) नारदीय, (७) मार्कण्डेय, (८) आग्नेय, (९) भविष्य, (१०) ब्रह्मवैवर्त्त, (११) लिंग, (१२) वाराह, (१३) स्कन्द, (१४) वामन, (१५) कौर्म, (१६) मत्स्य, (१७) गरुड और इसके बाद (१८) अठारहवाँ ब्रह्माण्ड है ।८-११। इन अठारह पुराणों के नाम जो मनुष्य पाठ करता है और तीनों संध्या में जप करता है, उसको अश्वमेधयज्ञ के फल के समान फल प्राप्त होता है ।१२। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंशवर्णन, मन्वन्तर और वंशानुचरित, यह पुराण के पाँच लक्षण हैं ।१३। चार प्रश्नयुक्त यह उत्तम मार्कण्डेयपुराण श्रवण करने से सौ करोड़ कल्प के किये पाप नष्ट होते हैं ।१४। और ब्रह्महत्यादि संपूर्ण महापाप तथा अन्यान्य सब अमंगल वायु से हत हुये तृण के समान इसके पाठ से नष्ट हो जाते हैं ।१५। पुष्कर में दान करने से जो पुण्य होता है, इसके सुनने से भी वैसा ही पुण्यलाभ होता है इसकी समाप्ति में सम्पूर्ण वेदपाठ के समान फल प्राप्त होता है ।१६। जो इस पुराण को सुनावे ब्रह्मा के समान उसका पूजन करना चाहिए, गंध पुष्प वस्त्रादि से पूजन कर ब्राह्मणों को भोजन करावे ।१७। राजाओं को यथाशक्ति ग्राम और वाहन देने चाहिए । यह पुराण सम्पूर्ण ही वेदार्थ से युक्त है, धर्मशास्त्र का स्थान है इसको सुनकर सब अर्थों की प्राप्ति होती है ।१८। यह सम्पूर्ण पुराण सुनकर बुद्धिमान् को व्यास का पूजन करना चाहिए, तो धर्म, अर्थ काम, मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त होते हैं ।१९। सुवर्ण वस्त्र अलंकार से युक्त गुरु के निमित्त गौ देनी चाहिए । श्रवण की फलप्राप्ति के निमित्त दान से गुरु को सन्तुष्ट करे ।२०। जो मनुष्य बिना वाचक की पूजा किये एक श्लोक भी सुनते हैं वह पुण्यलाभ नहीं कर सकते अपितु पण्डित उनको शास्त्रचोर कहते हैं ।२१। देवता उनके प्रति अप्रसन्न होते हैं, पितृगण भी ऐसे पुत्रों पर प्रसन्न नहीं होते, वह उनका दिया श्राद्ध भी ग्रहण नहीं करते तथा उनको तीर्थस्नान का फल भी नहीं मिलता ।२२।

लभेत शास्त्रचोरश्च निन्दां सज्जनसंसदि । अवज्ञया न श्रोतव्यं शास्त्रमेतद्विचक्षणैः ॥२३
पठ्यमाने त्ववज्ञाते साधुभिः शास्त्र उत्तमे । मूको भवति जन्मानि सप्त मूर्खः प्रजायते ॥२४
श्रुत्वा तत्पूजयेद्यस्तु पुराणं सप्तमं पुनः । सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्येव निजं कुलम् ॥२५
पूतो याति न सन्देहो विष्णुलोकं सनातनम् । च्युतस्ततः पुनर्नैव स भविष्यति मानवः ॥२६
पुराणश्रवणादेव परमयोगमवाप्नुयात् । नास्तिकाय न दातव्यं वृषले वेदनिन्दके ॥२७
गुरुद्विजातिनिन्दाय तथा भग्नव्रताय च । मातापित्रोर्निन्दकाय वेदशास्त्रादिनिन्दिने ॥२८
भिन्नमर्यादिने चैव तथा वै ज्ञातिकोपिने । एतेषां नैव दातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥२९
लोभाद्वा यदि वा मोहाद्भयाद्वापि विशेषतः । पठेद्वा पाठयेद्वापि स गच्छेन्नरकं ध्रुवम् ॥३०

मार्कण्डेय उवाच

एतत्सर्वमुपाख्यानं धर्म्यं स्वर्गापवर्गदम्। यः शृणोति पठेद्वापि सिद्धं तस्य समीहितम् ॥३१
आधिव्याधिजदुःखेन कदाचिन्नाभियुज्यते । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥३२
सन्तः स्वजनमित्राणि भवन्ति हितबुद्धयः । नारयः सम्भविष्यन्ति दस्यवो वा कदाचन ॥३३
सदर्थो मिष्टभोगी च दुर्भिक्षैर्नावसीदति । परदारपरद्रव्यपरहिंसादिकिल्बषैः ॥३४
मुच्यतेऽनेकदुःखेभ्यो नित्यं चैव द्विजोत्तम। ऋद्धिर्वृद्धिः स्मृतिः शान्तिः श्रीः पुष्टिस्तुष्टिरेव च॥
नित्यं तस्य भवेद्विप्र यः शृणोति कथामिमाम् ॥३५

शास्त्रचोर की सज्जनों की सभा में निन्दा होती है, बुद्धिमानों को यह शास्त्र अवज्ञा करके न सुनना चाहिए ।२३। जो साधुओं के शास्त्र पढ़ने में अवज्ञा करते हैं वह कई जन्म मूक होकर सात जन्म तक बहरे होते हैं ।२४। जो इस सप्तम पुराण को सुनकर पूजन करते हैं वह सब पाप से रहित हो अपने कुल को पवित्र करते हैं ।२५। इसमें सन्देह नहीं । वह पवित्र होकर विष्णु लोक को जाते हैं जहाँ से फिर इस संसार में नहीं आते ।२६। एकमात्र इस पुराण के सुनने से ही उत्कृष्ट योगलाभ होता है । किन्तु यह पुराण नास्तिक, शूद्र, वेदनिन्दक ।२७। गुरुद्वेषी, भग्नव्रत, मातापिता के त्यागी, निन्दक तथा वेदशास्त्र की निन्दा करने वाले को न दे ।२८। मर्यादा भंग करने वाले और ज्ञातिदूषक मनुष्यों को प्रदान न करे, यही क्या, ऐसों को प्राण कंठगत होने पर भी न दे ।२९। इन सब मनुष्यों मे यदि कोई लोभ, मोह या भय से इस पुराण का पाठ करता है, अथवा पाठ कराकर सुनता है, या उक्त कारणों से यदि कोई उसके निकट पाठ करता है, तो उसकी निस्सन्देह नरक में गति होती है ।३०

मार्कण्डेय जी बोले—यह संपूर्ण उपाख्यान धर्म, स्वर्ग और अपवर्ग का देनेवाला है, जो पढ़ता है सुनता है, उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ।३१। उसको कभी आधिव्याधियों के दुःख नहीं होते, इसमें सन्देह नहीं, वह ब्रह्महत्यादि पापों से छूट जाता है ।३२। उसके स्वजन और मित्र हितकारी होते हैं, उसका कोई शत्रु नहीं होता, तथा उसको चोरों की बाधा नहीं होती ।३३। उसके यहाँ अच्छा धन रहता है, वह मिष्टान्नभोजी होकर कभी दुर्भिक्ष से पीडित नहीं होता, पराई स्त्री, पराया द्रव्य, पराई हिंसा के पापों से ।३४। तथा और भी अनेक प्रकार के दुःखों से छूट जाता है, हे द्विज ! ऋद्धि, वृद्धि, स्मृति, शान्ति, लक्ष्मी, पुष्टि, तुष्टि उसको नित्य प्रति होती है जो इस कथा को सुनता है ।३५। इस संपूर्ण "मार्कण्डेय

मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलं शृण्वन्नशोच्यः पुमान्यो वा सम्यगुदीयरयेद्द्रसमयं शोच्यो न सोऽपिं द्विज।
योगज्ञानविशुद्धसिद्धिसहितः स्वर्गादिलोकेऽप्यसौ शक्राद्यैश्च सुरादिभिः परिवृतः स्वर्गे सदा पूज्यते।।३६
पुराणमेतच्छ्रुत्वा च ज्ञानविज्ञानसंयुतम् । विमानवरमारुह्य स्वर्गलोके महीयते।।३७
पुराणाक्षरसंख्या च प्रख्याता तत्त्वबुद्धिना । श्लोकानां षट्सहस्राणि तथा चाष्टशतानि च।।३८
श्लोकास्तत्र नवाशीतिरेकादशसमाहिताः । कथिता मुनिना पूर्वं मार्कण्डेयेन धीमता।।३९

जैमिनिरुवाच

भारतेनाभवद्यन्मे संशयस्फोटनं द्विजाः । तद्भवद्भिः कृतं यन्न कश्चिदद्य करिष्यति।।४०
यूयं दीर्घायुषः स्यात प्रज्ञाबुद्धिविशारदाः । सांख्ययोगे तथा चास्तु बुद्धिरव्यभिचारिणी।।४१
पितृशापकृताद्दुःखाद्दौर्मनस्यं व्यपेतु वः । एतावदुक्त्वा वचनं जगाम स्वाश्रमं मुनिः।।
चितयन्परमोदारं पक्षिणां वाक्यमीरितम् ।।४२

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे एतत्पुराणमाहात्म्यश्रवणपठनफलं
नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।१३४।

सम्पूर्णमिदं मार्कण्डेयमहापुराणम् ।। श्रीशः पायात्।।

पुराण" को सुनकर फिर शोच के योग्य नहीं रहता है। और जो ब्राह्मण इसको कहते हैं, वह भी शोच के योग्य नहीं होते, वह योग्य ज्ञान और विशुद्ध सिद्धि के सहित स्वर्गादिलोक को जाते हैं और इन्द्रादि देवताओं से युक्त होकर स्वर्ग में सदा पूजित होते हैं।३६। इस ज्ञान-विज्ञान से संयुक्त पुराण को सुनकर पुरुष अच्छे विमान में बैठ स्वर्गलोक को जाता है।३७। सूक्ष्मदर्शी महाबुद्धिमान् उन मार्कण्डेय जी ने प्रथम इस पुराण के अक्षरों की संख्या से इस पुराण में छः हजार नौ से श्लोक वर्णन किये।३८-३९।

जैमिनि बोले—हे पक्षिगण ! महाभारत में जो सन्देह नष्ट नहीं हुआ तुमने सख्य (मित्र) भाव से मेरा वह संशय दूर किया और कौन इस प्रकार कर सकता है।४०। तुम अत्यन्त दीर्घायु, रोगरहित और बुद्धि विशारद होओ, तुम्हारी बुद्धि सांख्ययोग में अव्यभिचारिणी हो।४१। तुम पिता के दिये शाप से दुःख को नहीं प्राप्त हुए, उनसे यह वचन कहकर और उन परमोदार पक्षियों के वचन स्मरण करते हुए मुनि अपने आश्रम में आये।४२

श्रीमार्कण्डेयपुराण के पुराणश्रवणपठन-फल वर्णन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त।१३४।

।। श्रीमज्जगदीश्वरार्पणमस्तु ।।